कविकुलगुरु - कालिदास - संस्कृत - विश्वविद्यालयः

This PDF you are browsing now is a digitized copy of rare books and manuscripts from the Jnanayogi Dr. Shrikant Jichkar Knowledge Resource Center Library located in Kavikulaguru Kalidas Sanskrit University Ramtek, Maharashtra.

KKSU University (1997- Present) in Ramtek, Maharashtra is an institution dedicated to the advanced learning of Sanskrit.
The University Collection is offered freely to the Community of Scholars with the intent to promote Sanskrit Learning.

Website
https://kksu.co.in/

Digitization was executed by NMM

https://www.namami.gov.in/

Sincerely,

Prof. Shrinivasa Varkhedi
Hon'ble Vice-Chancellor

Dr. Deepak Kapade
Librarian

Digital Uploaded by eGangotri Digital Preservation Trust, New Delhi
https://egangotri.wordpress.com/

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक
हस्तलिखित संग्रह

दाखल क्र. M-2168 विषय ____
नाव वामन पुराण (मुद्रित)
लेखक / लिपीकार - भाषा टीका सहितम्
पृ० 273 काळ शके 1825 पूर्ण / ~~अपूर्ण~~

Checked 2012

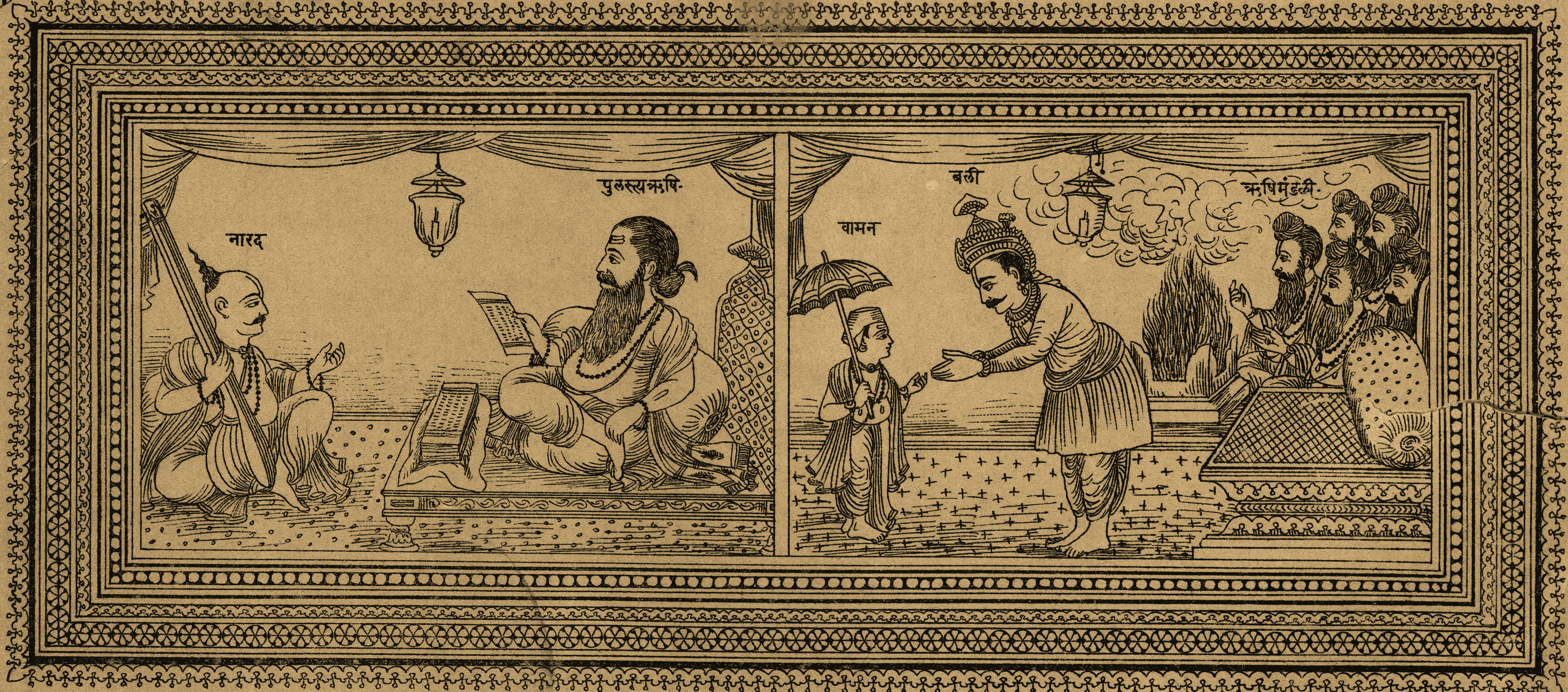
नारद
पुलस्त्यऋषि.
वामन
बळी
ऋषिमंडळी.

भूमिका.

आजकल वह समय आगयाहै कि, अधिकांश सनातनधर्मावलंबीगण अंग्रेजीशिक्षा और दीक्षाके प्रभावसे सनातनधर्मकी महिमाको नहीं जानते, और क्रमशः लक्ष्य मार्गसे भ्रष्ट होते जातेहैं, परन्तु तुलसीदासजीके इस वाक्यानुसार किः—

“जब जब होय धर्मकी हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥ तब तब प्रभुधर मनुजशरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥”

भारतधर्ममहामंडलका जन्म हुआ कि, जिसके महोपदेशकगणने पूर्वसागर और दक्षिणसागरतक सनातन धर्मके विजयदुन्दुभिको विघोषित किया । जो लोग धर्मके मार्गोंको भूलगयेथे उनको सत्य और यथार्थ मार्ग बताया. यह भारतधर्ममहामंडलकाही कार्य था, जिसके द्वारा अंग्रेज, जरमन, इटालियन, अमेरिकन और रशियन लोग सनातनधर्मकी श्रेष्ठताको स्वीकार करके उसके अनुयायी बननेलगे । भारतधर्ममहामंडलके जन्मदाता महामंत्री श्रीमान् पं० दीनदयालुजीकी प्रभावशाली ओजस्विनी वक्तृतासे आज पंजाब, बलूचिस्तान, सिंध, बम्बई, हैदराबादमें सनातनधर्मका डंका बजरहा है ।

ऐसे अवसरमें यहभी उचित समझागया कि, वेद उपनिषद्, पुराण, मीमांसा, दर्शन व व्याकरणादिके ग्रंथभी मूल और भाषाटीकासहित छाप २ कर प्रकाशित किये जायँ, जिससे उनलोगोंपर जो संस्कृत नहीं पढ़ेहैं सनातनधर्मकी महिमा विदित होजावै कि, हमारे सनातनधर्मके अक्षय भंडारमें कैसे २ ग्रंथरूप लाल भरे पड़ेहैं अत एव इसकार्यको अचेत समझकर कतिपय विद्वान् लोगोंने ग्रंथोंको संशोधित करके मूल और भाषाटीकासहित प्रकाशित करनेका विचार किया । अब यह विचार हुआ कि, ऐसा कौनसा परोपकारी उदारपुरुषहै जो अपना धन लगाकर इन ग्रंथोंको छापकर प्रसिद्ध करै. परन्तु घट २ वासी श्यामसुन्दर व्रजचंदने यह अभिलाषाभी पूर्ण की. पश्चिमोत्तरमें “मुन्शी नवलकिशोर प्रेस” लखनऊ, बम्बईमें “श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने इस कार्यमें पूर्ण २ सहायता दी, और सहस्रों ग्रंथोंको भाषाटीकासहित छापकर प्रकाशित किया” जिससे भारतवासी सनातनधर्मावलंबी लोगोंका विशेष उपकार हुआ तथा बराबर होता चलाजाताहै, उन्हीं

जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेसाधिप सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी बंबईनिवासीकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं ने महर्षि वेदव्यासप्रणीत इस "वामनपुराण" का भाषानुवाद किया जो पाठकगणके सन्मुख उपस्थितहै. पाठान्तर और टिप्पणियोंकोभी यथास्थानमें सन्निवेशित कियाहै; भाषानुवादको सरल बनानेमेंभी यथाशक्य चेष्टा कीगईहै. मूलग्रंथ जहाँ २ अशुद्ध था उसे भलीभाँतिसे शुद्ध कियाहै और इस बातपर विशेष ध्यान दियाहै कि, आजकल जो प्रायः धर्मशास्त्र और पुराणोंके ऊपर नवीन कुतर्कियोंके "क्यों, म्यों" जहाँ तहाँ सुननेमें आतेहैं अतः ऐसे स्थलोंपर सोपपत्तिक धर्मशास्त्रके वचनोंसे प्रमाणित करके नीचे टिप्पणिरूपसे अर्थांशको लिखदियाहै जिससे उनकी हठधर्मिता बहिर्भूत होकर पुराणोंमें दृढ़ श्रद्धा बढैगी क्योंकि विना दृढ़ श्रद्धा और विश्वासके कुछभी सफल नहीं होता. यहाँतक कि, अपने घटमें विद्यमान जगदीशकोभी मनुष्य नहीं देखसक्ता ऐसा लिखाभी है किः—

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ । याभ्यां विना न पश्यन्ति सन्तः स्वान्तस्थमीश्वरम्" ॥

इस पुराणमें जो विषय वर्णितहैं वह विषयानुक्रमणिकाके देखनेसे ज्ञात होंगे । बस इतनाही कहना बहुतहै कि, यह पुराण एक अमूल्य रत्नहै, उसके पठन पाठनसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होतीहै.

भगवद्भक्तिचरितामृतपिपासु पाठकगण इस पुराणकी एक एक प्रति भगवद्भक्तिरसास्वादनार्थ अपने पास रखकर सनातनधर्मके अटल सिद्धान्तोंको अवलोकन करैं तो मैं अपने श्रमको सफल समझूंगा ।

भगवद्भक्तोंका कृपाभिलाषी—
पंडित-श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी,
(मुहल्ला गुलाबनगर)-बाँसबरेली.

श्रीः ।

अथ भाषाटीकासहितवामनपुराणकी विषयानुक्रमणिका ।

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१	हरललित	१
२	नरोत्पत्तिप्रलयकथन	२
३	विष्णु और महादेवजीका संवाद.	५
४	विष्णुजीका वीरभद्रके साथ युद्ध.	८
५	शिवजीका कालस्वरूपकथन.	१०
६	कामदाह.	१३
७	प्रह्लादयुद्ध.	१८
८	प्रह्लादवरप्रदान.	२१
९	देवासुरयुद्ध, ...	२५
१०	अन्धकविजय.	२७
११	पुष्करद्वीपवर्णन.	३०
१२	कर्मविपाक.	३३
१३	भुवनकोशवर्णन.	३६
१४	सुकेश्यनुशासन.	३८
१५	सुकेशीचरित्र और लोलार्कजनन.	४४
१६	अशून्यशयनद्वितीया कालाष्टमीव्रत.	४७
१७	महिषासुरकी उत्पत्ति.	५०
१८	देवीजीका माहात्म्यवर्णन.	५३
१९	देवीजीका माहात्म्यवर्णन.	५५
२०	महिषासुरवध.	५८
२१	पार्वतीजीकी उत्पत्ति.	६०
२२	सरोमाहात्म्य.	६३
२३	राजा बलिका वंश व राज्यका वर्णन.	६६
२४	राजा बलिसे परास्त हो सम्पूर्ण देवताओंका कश्यपजीके शरणमें जाना और कश्यपजीकी आज्ञासे पुनः ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके शरणमें जाना	६७
२५	कश्यपादि ऋषियोंका क्षीरसागरके प्रति जाना.	६९
२६	कश्यपकृतभगवत्स्तुति.	७०
२७	अदितिकृतभगवत्स्तुति.	,,

अध्यायाः विषयाः पृष्ठाङ्काः

२८ अदितिको वरदान देना ७२
२९ प्रह्लादकृत बलिनिन्दा और शाप देना. ७३
३० ब्रह्मकृत वामनस्तुति. ७५
३१ वामनबलिचारित्र. ७७
३२ सरस्वतीस्तोत्र. ८२
३३ सरस्वतीमाहात्म्य. ८३
३४ अनेकतीर्थोंका माहात्म्यवर्णन. ८४
३५ अनेकतीर्थ और वनका माहात्म्यवर्णन. ८६
३६ अनेकतीर्थोंका माहात्म्यवर्णन. ८९
३७ ” ” ” ” ” ९२
३८ मंकणककृतशिवस्तुति. ९४
३९ औशनस आदि तीर्थोंका माहात्म्यवर्णन. ९५
४० अरुणा और सरस्वतीके संगमका माहात्म्य. ९७
४१ ऋणमोचनादितीर्थोंका और काम्यकादिवनोंका माहात्म्य. ... ९९
४२ दुर्गादितीर्थोंका और स्थाणुवटका माहात्म्यवर्णन. १००
४३ सृष्टिवर्णन और धर्मनिरूपण. १०२
४४ ब्रह्मादिदेवकृताशिवस्तुति. १०६
४५ स्थाणुलिङ्गका माहात्म्यवर्णन १०८
४६ विविधशिवलिङ्गस्थानमाहात्म्यवर्णन १०९
४७ वेनचरित्र और वेनकृतशिवस्तुति. ११२
४८ शिवजीका वेनको वरदान देना.... ... ... ११९
४९ ब्रह्माजीकृत शिवस्तुतिवर्णन. १२१
५० कुरुक्षेत्रका माहात्म्यवर्णन. १२३
५१ भिक्षुकरूपधारी शिवजीका पार्वतीजीसे संवाद.... ... ... ”
५२ पार्वतीजीके साथ महादेवजी विवाह करानेकी इच्छासे देवताओंकी हिमालयसे प्रार्थना करना. १२७
५३ गौरीविवाह. १३०
५४ गणेशजीकी उत्पत्ति १३३
५५ चण्डमुण्डका वध.... ... ... १३७
५६ शुंभनिशुम्भका वध. १४१
५७ कार्तिकेयकी उत्पत्ति. १४४
५८ महिषासुर और तारकके उपाख्यानमें क्रौञ्चका भेदन. १४९
५९ अन्धकासुरका पराजय. १५५
६० मुरदानवका चारित्र. १५७
६१ मुरका वध. १६१

॥ इति भाषाटीकासहित वामनपुराणकी अनुक्रमणिका समाप्ता ॥

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
६२	देवताओंका विष्णुभगवान्‌के हृदयमें शिवजीका दर्शन करना	१६४
६३	अन्धक और प्रह्लादके संवादमें राजा दण्डका उपाख्यान.	१६७
६४	जाबालिको बन्धनसे छुडाना.	१७१
६५	चित्राङ्गदाका विवाह	१७४
६६	राजा दण्डका भस्म होना.	१८२
६७	सदाशिवका दर्शन.	१८५
६८	अन्धककी सेनाका पराजय.	१८७
६९	जंभ और कुजम्भका वध.	१९१
७०	अंधककी पराजय और अन्धकको वर देना	१९८
७१	मरुत्‌की उत्पत्ति.	२०३
७२	” ”	२०५
७३	कालनेमिका वध.	२०८
७४	राजा बलिके प्रति प्रह्लादजीका उपदेश.	२११
७५	राजा बलिकी महिमाका वर्णन.	२१३
७६	अदितिको वर देना.	२१६
७७	प्रह्लादजीका राजा बलिको शिक्षा देना.	२१८
७८	धुन्धुदैत्यका पराजय.	२२१
७९	पुरूरवाका उपाख्यान.	२२५
८०	नक्षत्रपुरुषका व्रतवर्णन.	२२८
८१	जलोद्भवका वध.	२३०
८२	श्रीदामचरित्रका वर्णन.	२३२
८३	प्रह्लादजीकी तीर्थयात्राका वर्णन.	२३५
८४	” ” ” ”	”
८५	गजेन्द्रमोक्षण.	२३७
८६	सारस्वतस्तोत्र.	२४१
८७	पापप्रशमनस्तव.	२४७
८८	” ” ”	२४९
८९	वामनजीका जन्मवर्णन.	२५०
९०	वामनजीके विविधस्वस्थानकथन.	२५३
९१	शुक्राचार्य और राजा बलिका संवाद.	२५५
९२	राजा बलिका बंधन.	२६०
९३	वामनजीका प्रकट होना.	२६३
९४	भगवत्प्रशंसा.	२६५
९५	पुलस्त्य और नारदजीका संवाद, पुराणकी पूर्ति.	२६८

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ मंगलाचरणश्लोकाः—श्रीमान्भक्तजनान्सदानुसुखयन्यः शम्भुराख्यायते यत्पुत्रेण हृदि स्मृतेन सपदि प्रत्यूह उत्सार्यते ।
शं नित्यं वितनोतु शैलतनयाजानिः स मद्भारती यावच्चन्द्रदिवाकरस्थिति भृशङ्कुर्याज्जनाह्लादिनी ॥ १ ॥
वामनकेऽत्र पुराणे भारतभाषामयोऽनुवादोऽयम् । श्रीश्यामसुन्दराभिधसुधिया विहितो मुदेऽस्तु श्रीविष्णोः ॥ २ ॥
योऽपि मयाल्पधिया नावधारि मुनिवर्य्यहृद्गतो ह्यर्थः । सोऽपि विमृश्य सुधीभिर्भगवद्भक्तैरनुध्येयः ॥ ३ ॥
इत्यनुनयन्विदोऽयं निगदति निवसन्बरेलिकानगरे । श्रीमत्त्रिपाठिवाँकेलालसुधीसूनुरादरान्निभृतम् ॥ ४ ॥
मूलस्यास्य विशुद्धयै यत्नो बहुशो मयाऽस्थितस्तदपि । क्वचिदवशिष्टा शिष्टैरालोच्यापोह्य तामनुग्राह्यम् ॥ ५ ॥

॥ श्रीः ॥ जिन्होंने बलपूर्वक राजा बलिसे तीनोंलोकका राज्य छीनकर इन्द्रको देदिया, उन्हीं सर्वदा विराजमान वामनरूपी सुरेश्वरको नमस्कार है ॥ १ ॥ वक्ताओंमें
श्रेष्ठ श्रीमान् महर्षि पुलस्त्यजी अपने आश्रममें विराजमान थे उससमय उनसे देवर्षिनारदजी "वामनपुराण" सुननेकी इच्छासे पूँछते हुए ॥ २॥ हे भगवन् ! सबके ऊपर

ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवाय ॥ त्रैलोक्यराज्यमाच्छिद्यबलेरिंद्राययोददौ ॥ नमस्तस्मैसुरेशायसदा वामनरूपिणे
॥ १ ॥ पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमेवाग्विदांवरम् ॥ नारदःपरिपप्रच्छपुराणंवामनाश्रयम् ॥ २ ॥ कथंभगवताब्रह्मन्विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥
वामनत्वंधृतंपूर्वंतन्ममाचक्ष्वपृच्छतः ॥ ३ ॥ कथंचवैष्णवोभूत्वाप्रह्लादोदैत्यसत्तमः ॥ त्रिदशैर्युयुधेसार्द्धमत्रमेसंशयोमहान् ॥ ४ ॥ श्रूयतेचद्विजश्रे
ष्ठदक्षस्यदुहितासती ॥ शंकरस्यप्रियाभार्याबभूववरवर्णिनी ॥ ५ ॥ किमर्थंसापरित्यज्यस्वशरीरंवरानना ॥ जाताहिमवतोगेहेगिरींद्रस्यमहात्मनः ॥
॥ ६ ॥ पुनश्चदेवदेवस्यपत्नीत्वमगमच्छुभा ॥ एतंमेसंशयंछिंधिसर्ववित्त्वंमतोऽसिमे ॥ ७ ॥

दया और क्रोध करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुजीने पहले किसप्रकारसे वामनरूप धारण किया था सो मेरे श्रवण करनेकी अभिलाषा है, आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥
दैत्योंमें श्रेष्ठ प्रह्लादजीने किसप्रकारसे विष्णुके भक्तहोकर देवताओंके साथ युद्ध कियाथा इसमें भी मुझे महान् संदेह उत्पन्न हुआ है ॥ ४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा सुना
जाताहै कि, प्रजापति दक्षकी कन्या सुन्दरी सतीने शङ्करकी परमप्रीतिभागिनी पत्नीके पदको प्राप्त कियाथा ॥ ५ ॥ फिर उन्हीं श्रेष्ठमुखवालीने किसकारणसे
कायाको पलटकर सम्पूर्ण पर्वतोंके स्वामी महाराज हिमाचलके घर जन्म लिया॥ ६ ॥और फिर देवाधिदेव महादेवजीकी भार्या हुईं. हे प्रभु ! आप सर्वज्ञहो इसकारण

हमारे संदेहको दूर करो॥७॥ हेद्विज ! हे साधु ! सम्पूर्ण तीर्थोंके माहात्म्य, सब दानोंकी महिमा और अनेकव्रतोंके उपवास करनेकी रीतिकोभी वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ तपोनिधि नारदजीके ऐसे वचनोंको सुन वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनियोंमें परमपूजनीय पुलस्त्यजी नारदजीसे बोले ॥ ९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं आदिसे लेकर क्रमानुसार सम्पूर्ण "वामनपुराण" को वर्णन करताहूं तुम एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो ॥१०॥ पहले हिमालयकी पुत्री देवी सतीने ग्रीष्मऋतुको आताहुआ देखकर मंदराचलमें विराजमान महादेवजीसे कहा ॥ ११ ॥ कि, हे देवेश ! इस समय ग्रीष्मऋतुका आगमन हुआहै, परन्तु हमारा ऐसा घर नहींहै कि, जिसमें हम तुम दोनों जने बैठकर प्रचंडसूर्यके ताप और वायुसे रहित हो समयको बितासकैं ॥ १२ ॥ सतीजीके इसप्रकार वचनोंको सुनकर महादेवजी बोले कि, हे सुदति ! (शोभायमान दाँतोंवाली) हे शुभे ! (श्रेष्ठे) मैं तो निराश्रय (आश्रयहीन) और सर्वदा वनमें रहनेवालाहूं ॥ १३ ॥ हे नारद ! जब महादेवजीके मुखसे सतीने इसप्रकारके वचन सुने तो महादेवजीके साथ वृक्षोंकी छायाका आश्रय लेकर ग्रीष्मऋतुको व्यतीत किया ॥ १४ ॥ ग्रीष्मऋतुके बीतनेपर वर्षाऋतु आई, सम्पूर्ण मनुष्योंने इधर उधरका जाना आना छोड़दिया, स्थिरभावसे रहनेलगे, काले बादलोंके आनेसे चारों ओर दिशाओंमें अँधेरा छागया, मेघ घनघोर शब्दसे गर्जने लगे ॥१५॥ दक्षकी कन्या सती वर्षाऋतुको आयाहुआ देखकर परमस्नेहके साथ महादेवजीसे यह वचन बोली ॥ १६ ॥ सतीबोली हे महेश्वर ! वर्षाकालमें पवन अत्यन्त तीक्ष्ण चलताहै, सम्पूर्ण मेघ गर्ज २ कर हृदयको विदारण करतेहैं, बिजली नीलेबादलोंकी गोदमें बैठकर भयङ्करशब्दसे कड़कड़ा रहीहै और मोर ऊँचे स्वरसे " केका " शब्दको

तीर्थानांचैवमाहात्म्यंदानानांचैवसत्तम ॥ व्रतानांविविधानांचविधिमाचक्ष्वमेद्विज ॥ ८ ॥ एवमुक्तोनारदेनपुलस्त्योमुनिसत्तमः ॥ प्रोवाचवदतांश्रेष्ठो
नारदंतपसोनिधिम् ॥ ९ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ पुराणंवामनंवक्ष्येक्रमान्निखिलमादितः ॥ अवधानंस्थिरंकृत्वा शृणुष्वमुनिसत्तम ॥ १० ॥ पुराहैमवती
देवीमंदरस्थंमहेश्वरम् ॥ उवाचवचनंदृष्ट्वाग्रीष्मकालमुपस्थितम् ॥ ११ ॥ ग्रीष्मःप्रवृत्तोदेवेशनचमेविद्यतेगृहम् ॥ यत्रवातातपौग्रीष्मौस्थितयोर्नौग
मिष्यतः ॥ १२ ॥ एवमुक्तोभवान्यैतच्छंकरो वाक्यमब्रवीत् ॥ निराश्रयोऽहंसुदतिसदाऽरण्यचरःशुभे ॥१३॥ इत्युक्ताशंकरेणाथवृक्षच्छायासुनारद ॥
निदाघकालमनयत्समंशर्वेणसासती ॥ १४ ॥ निदाघांतेसमुद्भूतोनिर्जनाचरितोद्भुतः ॥ घनांधकारिताशोवैप्रावृट्कालोऽतिराववान् ॥ १५ ॥ तंदृष्ट्वादक्षत
नुजाप्रावृट्कालमुपस्थितम् ॥ प्रोवाचवाक्यंदेवेशंसतीसप्रणयंतदा ॥ १६ ॥ सत्युवाच ॥ निर्वांतिवाताह्रदयावदारणागर्जंत्यमीतोयधरामहेश ॥ स्फुरं
तिनीलाभ्रगणेषुविद्युतोवाशंतिकेकारवमेवबर्हिणः ॥ १७ ॥

कर रहे हैं ॥ १७ ॥ आकाशसे मूसलधारकी वर्षा होरहीहै, बगले अपनी २ स्त्रियोंकेसाथ मेघोंको आयाहुआ देखकर उनकी सेवा करनेमें लीन होगये हैं. कदम्ब, सर्ज (शालवृक्ष) अर्जुन (श्वेतपुष्प तन्नामक) वृक्ष और केतकीके वृक्षोंके फूलेहुए फूल वायुके वेगसे पृथ्वीपर गिरने लगेहैं ॥ १८ ॥ नीच और उपद्रवी मनुष्य जिसप्रकारसे धनवान् होकर सज्जनपुरुषोंकी शरण लेनेकी इच्छा करतेहैं और श्रेष्ठमनुष्य जिसप्रकार उनको त्यागदेतेहैं उसीप्रकार मेघोंके गर्जनशब्दको सुनकर हंसभी सरोवरोंको त्यागदेतेहैं ॥ १९ ॥ हे शम्भो ! तैसेही ये सब मृगोंके यूथ उत्सुक और वर्षोदकस्नानसे शुद्ध होकर क्रीड़ा कररहेहैं, तथा वनकी अकृत्रिमभूमियोंमें प्रसन्न होकर दौड़रहेहैं, सब भूमि मेघोंकी भलीभाँति वृष्टिसे शोभित होरहीहै और हरेतृणोंसे वेष्टित धानोंसे युक्त होरहीहै. हे देव ! उसीप्रकार बिजली नील मनोहर मेघोंके बीचमें अत्यन्त चमकरहीहै, और जैसे शूरमनुष्य दुर्जनकी समृद्धिको देख उसके अपहरणके अर्थ विचरतेहैं, वैसेही तरणसाधन नौकादिद्वारा गमनमें

पतंतिधारागगनात्परिच्युताबकाबलाकाश्चभजंतितोयदान् ॥ कदंबसर्ज्जार्जुनकेतकीनांपुष्पाणिमुंचंतिचमारुतादिना ॥ १८ ॥ श्रुत्वैवमेघस्यहृढंतुगर्जितं
त्यजंतिहंसाश्चसरांसितत्क्षणात् ॥ नीचोद्धतान्सत्पुरुषायथाश्रयान्प्रवृद्धमूलानपिसंत्यजंति ॥१९॥ इमानियूथानितथामृगाणांत्वरंतिधावन्तिरमंतिशंभो ॥
धावंतिहृष्टानिवनस्थलीषुसर्वाभुवस्तोयदसंप्रवृद्धचा ॥ २० ॥ राजंतिशष्पावृतसस्ययुक्तास्तथाऽचिराभाःसुतरांस्फुरंति ॥ रम्येषुनीलेषुघनेषुदेवनूनं
समृद्धिमलिनस्यहृष्ट्वा ॥ २१ ॥ चरंतिशूरास्तरणोद्गमेषुउद्धृत्तवेगाःसहसैवनिम्नगाः ॥ जाताःशशांकांकितचारुमौलेकिमत्रचित्रंयदनुज्ज्वलंजनम् ॥ २२ ॥
श्रयंतिनीचानुगताहियोषितोनीलेषुमेघेषुसमाश्रितंनभः ॥ पुष्पेषुसर्ज्जामुकुलेषुनीपाःफलेषुचश्रीश्चपयस्स्वथापगाः ॥ २३ ॥ पत्रेषुपद्मेषुमहासरां
सिसुदुस्तरःसंप्रतिवर्षकालः ॥ इतीदृशेशंकरदुःसहेद्भुतेकालेसुरौद्रेननुतेब्रवीमि ॥ २४ ॥ गृहंकुरुष्वात्रमहाचलोत्तमेसुनिर्वृतायेनभवामिशंभो ॥
इत्थंत्रिनेत्रःश्रुतिरामणीयकंश्रुत्वावचोवाक्यमिदंबभाषे ॥ २५ ॥

निम्नगा (नदी) अत्यन्त वेगवती होगईहै. हे शशाङ्काङ्कितचारुमौले ! (हे चन्द्रचूड !) जो कि नीचजनोंसे सहवास रखनेवाली स्त्रियें मलिनपुरुषका आश्रय लेतीहैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ? नीलवर्णमेघोंसे घिराहुआ आकाश, पुष्पोंके होनेसे सर्ज वृक्ष मुकुलोंके होनेसे, कदम्ब फलहोनेसे, श्रीफल और जलके अधिक होनेसे नदियें सुशोभित होरहीहैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ बड़े २ सरोवर सुहावने पुरैन और कमलोंसे शोभायमान होरहेहैं, अब इस वर्षाऋतुने अत्यन्त दुस्तररूपको धारण किया है, इसीप्रकारसे अतिविचित्र यह वर्षाकाल जिसप्रकारसे दुर्घट है उसीप्रकारसे अत्यन्त भयङ्करभीहै, इसकारण मैं तुमसे कहतीहूं नहीं तो कदापि नहीं कहती ॥ २४ ॥ यह मन्दर भूधर सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ है हे शम्भो ! इसीमें घर बनाना योग्यहै तभी आनन्दसे समय व्यतीत होगा महादेवजी पार्वतीजीके मुखसे ऐसे मनोहरशब्दोंको सुनकर बोले ॥ २५ ॥

हे प्रिये ! मेरेपास इतना धन नहींहै कि, जिससे घर बनवासकूं, देखो. वस्त्रोंके न होनेसे मेरा शरीर व्याघ्रके चर्मसे ढकरहा है, सूतके न होनेसे सर्पोंके राजा वासुकी
हमारे यज्ञोपवीतहैं पद्म और पिंगलनामके दोसर्प हमारे कानोंके कुण्डल हैं ॥२६॥ कंबल और धनंजयनामके दोसर्प हमारे हाथके बाजूबंद हैं, अश्वतर और तक्षक
नामके दो सर्प हमारे बाँये और दायेंहाथके कङ्कण हैं, और नील अंजनके समान वर्णवाले नीलनामक नागकी करधनी तगडी हमारी कमरमें विराजमान हैं ॥२७॥
पुलस्त्यजी बोले कि, महादेवजीके उपहासके साथ ऐसे अप्रिय, असत्य और पीछेसे आनन्दको देनेवाले वचनोंको सुनकर पार्वतीजी भय, लज्जा और क्रोधके
वशीभूत हो नीचेको देखने लगीं, और दीर्घश्वासोंको लेती हुईं बोलीं ॥ २८ ॥ हे अविनाशीस्वरूपिन् ! इसीप्रकार वृक्षोंकी जड़के आश्रयसेही क्या वर्षाऋतु बितानी

नमेऽस्तिवित्तंगृहसंचयार्थेंमृगारिचर्मावृतदेहिनःप्रिये ॥ ममोपवीतंभुजगेश्वरःफणीकर्णेंपिपद्मश्वतथैवपिंगलः ॥ २६ ॥ केयूरमेकंममकंबलस्त्वहिर्द्वितीयमन्योभुजगोधनंजयः ॥ नागस्तथैवाश्वतरोहिकंकणंसव्येतरेतक्षकउत्तरंतथा ॥ नीलोपिनीलांजनतुल्यवर्णःश्रोणीतटेराजातिसुप्रतिष्ठः ॥ २७ ॥
पुलस्त्यउवाच ॥ इतिवचनमथोग्रंशंकरात्सामृडानीश्रुतमपितदसत्यंश्रीमदाकर्ण्यभीता ॥ अवनितलमवेक्ष्यस्वामिनोवासकृच्छ्रात्परिवदतिसरोषंलज्जयोच्छ्वस्यचोष्णम् ॥ २८॥ देव्युवाच ॥ किमेवंसंश्रितायास्तुप्रावृट्कालोगमिष्यति ॥ वृक्षमूलेस्थितायास्तुसुनयेनवदाव्यय ॥ २९ ॥ शंकरउवाच ॥
घनावस्थितदेहायाःप्रावृट्कालःप्रयास्यति ॥ यथांबुधारानतवनिपतिष्यंतिविग्रहे ॥ ३० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततोहरस्तद्घनखंडमुन्नतमारुह्यतस्थौ
सहदक्षकन्यया ॥ ततोभवन्नाममहेश्वरस्यजीमूतकेतुस्त्वितिविश्रुतंदिवि ॥ ३१ ॥ इति श्रीवामनपुराणेहरललितेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥
ततस्त्रिनेत्रस्यगतःप्रावृट्कालोघनोपरि ॥ लोकानंदकरीरम्याशरत्समभवन्मुने ॥ १ ॥ त्यजंतिनीलांबुधरानभस्तलंवृक्षांश्चकंकाःसरितस्तटानि ॥ पद्मानिगंधंनिलयानिवायसारुरुर्विषाणंकलुषंजलाशयाः ॥ २ ॥

पड़ैगी ? हे नाथ ! कृपाकरके कहो तो सही ॥२९॥ महादेवजी बोले कि, हे प्रिये ! बदलीकी पीठपर बैठके तुम आनन्दसे वर्षाऋतुको बिताना. तो तुम्हारे शरीरपर
मेघकी बूँदभी नहीं पड़ैगी ॥ ३० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, यह वचन कहकर महादेवजी पार्वतीजीको साथ ले ऊँचे मेघपर चढ़कर उसकी पीठपर रहनेलगे, इसी
कारणसे उनका नाम स्वर्गमें जीमूतकेतु हुआ ॥ ३१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे पं० श्यामसुन्दरलालत्रिपाठीकृतभाषाटीकायां हरललितं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
पुलस्त्यजी बोले कि, इसके उपरान्त मेघकी पृष्ठ (पीठ) पर विराजमान् होकर महादेवजीने पार्वतीजीके साथ वर्षाऋतुको व्यतीत किया, वर्षाऋतुके बीतजानेपर
सबको आनन्दकी देनेवाली मनको हरण करनेवाली शरद्ऋतु आई ॥ १ ॥ उसके साथही साथ मेघ आकाशमें अन्तर्धान होगये, कंक (लौहपृष्ठ) आदिक बड़े

पक्षियोंने वृक्षोंका और नदियोंके किनारोंका छोड़ना प्रारम्भ किया, कमलकी सुगंध जाती रही, पक्षियोंने अपने २ घोंसलोंको छोड़दिया, कृष्णसारमृगोंके सींग गिरगये
और सरोवरोंका जल निर्मल होगया ॥ २ ॥ सम्पूर्ण कमल खिलगये, चन्द्रमाकी किरणैं शोभाको धारण करनेलगीं,सबलताओंमें फूलोंने खिलकर उनकी शोभाको बढ़ादिया,
गौवेंबड़ेआनन्दकेसाथ‘माँमाँ’शब्दको करनेलगीं और श्रेष्ठमनुष्योंने सन्तोषका अवलम्बन किया ॥ ३ ॥ सरोवरोंमें कमल,आकाशमंडलमें तारे,जलाशयोंमें जल,साधुओंके चित्तकी
वृत्ति और दिशायें, यह सभी चन्द्रमाकी कान्तिसे निर्मल होगईं ॥ ४ ॥ महादेवजी ऐसे सुन्दर मनोहर समयमें मेघकी पीठपर रहनेवाली पार्वतीजीको साथ ले मन्दरभूधरमें
आये ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त परमज्योतिर्मयमूर्त्ति भगवान् भूतपति महादेवजी मन्दराचलमें पार्वतीजीके साथ विहार करनेलगे ॥ ६ ॥ इसके पीछे शरदृऋतुके बीतजा

विकासमायांतिचपंकजानिचंद्रांशवोभांतिलताःसुपुष्पाः ॥ नंदंतिकृष्टान्यपिगोकुलानिसंतश्चसंतोषमनुव्रजंति ॥ ३ ॥ सरस्सुपद्मंगगनेचतारकाजलाश
येष्वेवतथापयांसि ॥ सतांचचित्तंहिदिशांमुखैःसमंवैमल्यमायांतिशशांककांतयः ॥ ४ ॥ एतादृशेहरःकालेमेघपृष्ठाधिवासिनीम् ॥ सतीमादायशैलेंद्रं
मंदरंसमुपाययौ ॥ ५ ॥ ततोमंदरपृष्ठेऽसौस्थितःसमाशिलातले ॥ रेमेसशंभुर्भगवान्सत्यासहमहाद्युतिः ॥ ६ ॥ ततोगतायांशरदिप्रबुद्धेचैवकेशवे ॥ दक्षः
प्रजापतिश्रेष्ठोयष्टुमारभतक्रतुम् ॥ ७ ॥ द्वादशैवसचादित्याञ्छक्रादींश्चसुरोत्तमान् ॥ सकश्यपान्समामंत्र्यसदस्यान्समचीकरत् ॥ ८ ॥ अरुंधत्यानुस
हितंवसिष्ठंशंसितव्रतम् ॥ सहानुसूययात्रिंचसहधृत्याचकौशिकम् ॥ ९ ॥ अहल्ययागौतमंचभरद्वाजममायया ॥ चंद्रयासंहितंब्रह्मन्नृषिमंगिरसंतथा ॥ १० ॥
आमंत्र्यकृतवान्दक्षःसदस्यान्यज्ञकर्मणि ॥ सदस्यान्गुणसंपन्नान्वेदवेदांगपारगान् ॥ ११ ॥ धर्मंचससमाहूयभार्ययाऽहिंसयासह ॥ निमंत्र्ययज्ञवाटस्यद्वार
पालार्थमादिशत् ॥ १२ ॥ अरिष्टनेमिनंचक्रेइध्माहरणकारिणम् ॥ चंद्रयासहितंब्रह्मन्नृषिमंगिरसंतथा ॥ १३ ॥ मृष्टान्नपानसंस्कारेसम्यग्दक्षःप्रयुक्त
वान् ॥ भृगुंचसत्रसंस्कारेसम्यग्दक्षःप्रयुक्तवान् ॥ १४ ॥

नेपर भगवान् केशव निद्रासे जागे, तब इसीसमयमें प्रजापतियोंमेंश्रेष्ठ राजादक्षने यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥ बारह आदित्य, इन्द्रादि प्रधान २ देवता और कश्यप
जीको निमंत्रणदेकर सभासद्के स्थानपर नियतकिया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने अरुन्धतीके साथ वसिष्ठको, अनसूयाके साथ अत्रिको, धृतिके साथ कौशि
कको ॥ ९ ॥ अहल्याके साथ गौतमको, मायाके साथ भरद्वाजको, चन्द्राके साथ महर्षि अङ्गिराको ॥ १० ॥ दक्षजीने निमंत्रण देकर यज्ञके कार्यमें सभासद्
बनाया, यह सभी गुणोंसे भूषित और वेद वेदांगके जाननेवालेथे ॥ ११ ॥ पीछेसे उन्होंने धर्मको उसकी स्त्री अहिंसाके साथ न्योता देकर यज्ञशालामें (यज्ञकरनेके
स्थानमें) द्वारपाल बनाया ॥ १२ ॥ अरिष्टनेमिको काष्ठके लानेमें नियुक्त किया, चन्द्राके साथ अंगिराको ॥ १३ ॥ शुद्ध अन्न और पान (पीनेकी वस्तु) के बना

नेमें लगाया; भृगुजीसे यज्ञके संस्कार करनेको कहा ॥१४॥ और रोहिणीके साथ भगवान् चन्द्रमाको धनसम्बन्धी कार्यके करनेका अधिकार दिया ॥ १५ ॥ इसी प्रकारसे प्रजापति दक्षने अपने सम्बन्धी जमाई, कन्या और देवतोंको यज्ञमें न्योता देकर बुलाया, केवल महादेव और सतीजीकोही न्योता नहीं दिया ॥ १६ ॥ नारदजी बोले-कि, धनके स्वामी महादेवजी वयसे बड़े पूज्य, अतिमहान् और सबके आदि होनेसेभी प्रजापतिदक्षने क्यों उनको अपने यज्ञमें निमंत्रण नहीं दिया ॥१७॥ पुलस्त्यजी बोले कि, सबके ऊपर दया और क्रोधकरनेमें समर्थ भगवान् महादेवजी बड़े, उत्तम और अतिमहान् तथा सबके आदिहोनेसेभी दक्षने उनको कपाली (खोपड़ियोंके धारणकरनेवाले) जानकर (अपने यज्ञमें) निमंत्रण नहीं दिया ॥ १८ ॥ नारदजी बोले-सबको परममङ्गलके देनेवाले भगवान् शूलपाणि महादेवजी सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधानहैं सो वह किसकारण और किसकर्मके वशीभूत होकर कपाली हुए ॥ १९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, आप सावधान होकर इस प्राचीन कथाको श्रवण करो. स्वयं अव्यक्तमूर्ति ब्रह्माजीने पहले इसका वर्णन आदिपुराणमें कियाहै ॥ २० ॥ पहले सभीलोकोंके जलमय होजानेसे चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोंके अन्तर्धान होजानेसे, अग्नि और वायुके नाश होजानेसे ॥ २१ ॥ अन्धकारमय अत्यन्तभयानक दुर्दिन होगया, उसमें तिनके और वेलें एकबारही डूबगईं, भाव और अभाव यह सभी दूर होगये, इसीकारण सब ज्ञानके परे और तर्कके परे होगये ॥ २२ ॥ भगवान्ने उससमुद्रमें एकहजारवर्षकी रात्रिमें शयन किया, रात्रिके बीतजानेपर राजस (ब्रह्मा) रूपको धारण करके सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए ॥२३॥ भगवान्ने राजसरूपके आश्रयसे सम्पूर्ण वेद वेदाङ्के जाननेमें निपुण पाँच मुखोंसे उत्पन्नहोकर अत्यन्त शोभाको बढ़ाया, इन अद्भुत पाँचमुखोंका देखनाही इस चराचरविश्वकी सृष्टिकरनेवाला है ॥ २४ ॥

तथाचंद्रमसंदेवंरोहिण्यासहितंशुचिम् ॥ धनानामाधिपत्येसयुक्तवान्हिप्रजापतिः ॥ १५ ॥ जामातॄन्दुहितॄश्चैवदौहित्रांश्चप्रजापतिः ॥ सशंकरांसतींमुक्त्वा मखेसर्वान्न्यमंत्रयत् ॥ १६ ॥ नारदउवाच ॥ किमर्थंलोकपतिनाधनाध्यक्षोमहेश्वरः ॥ ज्येष्ठःश्रेष्ठोवरिष्ठोपिआद्योपिनानिमंत्रितः ॥ १७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ज्येष्ठःश्रेष्ठोवरिष्ठोपिआद्योपिभगवाञ्छिवः ॥ कपालीतिविदित्वेशोदक्षेणननिमंत्रितः ॥ १८ ॥ नारदउवाच ॥ किमर्थंदेवताश्रेष्ठःशूलपाणिस्त्रिलोचनः ॥ कपालीभगवाञ्ज्ञातःकर्मणाकेनशंकरः ॥ १९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वाकथामेतांपुरातनीम् ॥ प्रोक्तांह्यादिपुराणेषुब्रह्मणाव्यक्तमूर्त्तिना ॥ २० ॥ पुरात्वेकार्णवेलोकेनष्टेस्थावरजंगमे ॥ नष्टचंद्रार्कनक्षत्रेप्रनष्टपवनानले ॥ २१ ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयंभावाभावविवर्जितम् ॥ निमग्नवीरुत्सतृणंतमोभूतंसुदुर्दिनम् ॥ २२ ॥ तस्मिन्सशेतेभगवान्निशांवर्षसहस्रकीम् ॥ रात्र्यंतेसृजतेलोकान्राजसंरूपमास्थितः ॥ २३ ॥ रेजेसपंचवदनोवेदवेदांगपारगः ॥ स्रष्टाचराचरस्यास्यजगतोद्भुतदर्शनः ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त उन्होंने तमोमयी दूसरी मूर्तिको धारण किया, तो शूलको हाथमें लियेहुए महादेवजी उत्पन्नहुए उनके हाथमें अक्षमालारही॥ २५॥ फिर उन महापुरुष भगवान्ने अहङ्कारको उत्पन्नकिया, इस अहङ्कारने ब्रह्मा और शङ्कर इन दोनोंकोही दबालिया ॥ २६ ॥ महादेवजीने अहङ्कारसे ढककर ब्रह्माजीसे पूंछा कि, आप कौनहो और किसने तुमको उत्पन्नकियाहै सो कहिये ॥२७॥ इसप्रकार महादेवजीके पूछनेपर ब्रह्माजीनेभी अहङ्कारके वश होकर कहा कि, तुम कौनहो ? तुम्हारे माता पिता कौनहैं इसवृत्तान्तको विस्तारसहित वर्णनकरो ॥ २८ ॥ जब ब्रह्माजी और महादेवजीमें इस प्रकारसे झगड़ा होनेलगा (पुलस्त्यजी बोले कि, हे नारद !) उसी समय तुम्हारा जन्म हुआ ॥२९॥ तुम उत्पन्नहोतेही इस अतुलनीयवीणाको धारणकर किलकिला शब्दको करतेहुए उसी समय आकाशको उछलगये ॥ ३० ॥

तमोमयस्तथैवान्यःसमुद्भूतस्त्रिलोचनः ॥ शूलपाणिःकपर्दीचअक्षमालांचदर्शयन् ॥ २५ ॥ ततोमहात्माह्यसृजदहंकारंसुदारुणम् ॥ येनाक्रांतावुभौदेवौ
तावेवब्रह्मशंकरौ ॥ २६ ॥ अहंकारावृतोरुद्रःप्रत्युवाचपितामहम् ॥ कोभवानिहसंप्राप्तःकेनसृष्टोऽसिमांवद ॥ २७ ॥ पितामहोप्यहंकारीप्रत्युवाचाथको
भवान् ॥ भवतोजनकःकोऽत्रजननीवातदुच्यताम् ॥ २८ ॥ इत्यन्योन्यंपुराताभ्यांब्रह्मेशाभ्यांकिलप्रियः ॥ परिवादोभवत्तत्रउत्पत्तिर्भवतोऽभवत्॥२९॥
भवानप्यंतरिक्षंहिजातमात्रस्तदोत्पतत् ॥ धारयन्नतुलांवीणांकुर्वन्किलकिलाध्वनिम् ॥ ३० ॥ ततोविनिर्जितःशंभुर्मानिनाब्रह्मयोनिना ॥ तस्थावधोमुखो
दीनोग्रहाक्रांतोयथाशशी ॥ ३१ ॥ पराजितेलोकपतौदेवेनपरमेष्ठिना ॥ क्रोधांधकारितंरुद्रंपंचमंमुखमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अहंतेप्रतिजानामितमोमूर्त्तौत्रि
लोचन ॥ दिग्वासावृषभारूढोलोकक्षयकरोभवान् ॥ ३३ ॥ इत्युक्तःशंकरःक्रुद्धोब्रह्माणंघोरचक्षुषा ॥ निर्दग्धुकामस्त्वनिशंददर्शभगवानजः ॥ ३४ ॥
ततस्त्रिनेत्रस्यसमुद्भवंतिवक्त्राणिपंचाथसुदुर्दृशानि ॥ सितंचरक्तंकनकावदातंनीलंतथापिंजरकंचरौद्रम् ॥ ३५ ॥ वक्त्राणिदृष्ट्वाऽर्कसमानिसद्यःपितामहो
वाक्यमुवाचरुद्रम् ॥ समाहतस्याथजलस्यबुद्बुदाभवंतिकिंतेषुपराक्रमोऽस्ति ॥ ३६ ॥

पीछेसे महादेवजी मानकरनेवाले ब्रह्माजीसे पराजित होकर ग्रहणसे ग्रसेहुए चन्द्रमाकी समान दीनभावसे नीचेको मुखकरके बैठगये ॥ ३१ ॥ महादेवजी भगवान् ब्रह्माजीसे पराजित होकर क्रोधसे मोहित होगये, तब पांचवाँ मुख उनसे कहने लगा ॥ ३२॥ हे तमोमूर्ति महादेव ! मैं तुम्हें भलीभाँतिसे जानताहूं कि, तुम्हारे दिशायें तो वस्त्रहैं और सवारीमें बैलहै, तथा सम्पूर्णलोकोंका संहारकरतेहो ॥ ३३ ॥ भगवान् अविनाशी महादेवजी इसप्रकार ब्रह्माजीका वचन सुनकर क्रोधके वश हो घोरनेत्रोंसे सबप्रकारसे दग्धकरनेके निमित्त एकटकलोचनसे ब्रह्माजीको देखनेलगे ॥३४॥ इसप्रकार महादेवजीके देखनेयोग्य नहीं ऐसे पाँचमुख उत्पन्नहुए. वह क्रमानुसार श्वेत, रक्त, कञ्चनकी समान शुद्धनील, पिङ्गल और भयानक वर्णके थे कि, जिनका वर्णन नहीं होसक्ताहै॥ ३५॥ ब्रह्माजी सूर्यके समान इन पाँचोंमुखोंको देखकर महादेवजीसे

बोले कि, जलका स्वाभाविक गुण है कि, मथितहोनेसे उसमें बुद्बुद (बबूले) होनेलगतेहैं, उसमें क्या किसीप्रकारका और पराक्रमहै ॥ ३६ ॥ महात्मा शिवजीने ब्रह्माजीके ऐसे वचनोंको सुन क्रोधितहो अपनी (अनामिका[1]के) नखसे उनका वह कठोरबोलनेवाला पाँचवांमुख काटकर फेंकदिया ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजीका शिर काटतेही महादेवजीके बायें हाथकी हथेली पर आकर गिरा और उनकी हथेलीसे वह शिर फिर कहीं नजासका ॥ ३८ ॥ पीछे अद्भुतकर्मको करनेवाले ब्रह्माजीने क्रोधित होकर कवच, कुंडल और बाण धारण करनेवाला एक परमबुद्धिमान् पुरुष उत्पन्नकिया ॥ ३९ ॥ उसके हाथमें बाणहै, कटिमें बड़ा तरकसहै, और उसकी दोनोंभुजायें जानुपर्यन्त लम्बी हैं; वह अविनाशी चारभुजाओंवाला सूर्यके समान रूपवान् बाण और शक्तिको धारणकियेहुए मनुष्य ॥ ४० ॥ महादेवजीको पुकारकर यह कहने लगा हे बुद्धिपूर्वक कार्यको

तच्छ्रुत्वाक्रोधयुक्तेनशंकरेणमहात्मना ॥ नखाग्रेणशिरश्छिन्नंब्राह्मंपरुषवादिनम् ॥ ३७ ॥ तच्छिन्नंशंकरस्यैवसव्येकरतलेऽपतत् ॥ पततेनकदाचिच्चतद
करतलाच्छिरः ॥ ३८ ॥ अथक्रोधावृतेनाथब्रह्मणाद्भुतकर्मणा ॥ सृष्टस्तुपुरुषोधीमान्कवचीकुंडलीशरी ॥ ३९ ॥ धनुःपाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरो
व्ययः ॥ चतुर्भुजोमहातूणीआदित्यसमदर्शनः ॥ ४० ॥ सत्वाहगच्छदुर्बुद्धेमात्वांशूलिन्निपातये ॥ भवान्पापसमायुक्तःपापिष्ठंकोजिघांसति ॥ ४१ ॥
इत्युक्तःशंकरस्तेनपुरुषेणमहात्मना ॥ प्रियायुक्तोजगामाथरुद्रो बदरिकाश्रमम् ॥ ४२ ॥ नरनारायणस्थानंपर्वतेहिहिमालये ॥ सरस्वतीयत्रपुण्यास्यं
दतेसरितांवरा ॥ ४३ ॥ तत्र गत्वाचतंदृष्ट्वानारायणमुवाचह ॥ भिक्षांप्रयच्छभगवन्महाकारुणिकोसिभोः ॥४४॥ इत्युक्तोधर्मपुत्रस्तुरुद्रंवचनमब्रवीत् ॥
सव्यंभुजंताडयस्वत्रिशूलेनमहेश्वर ॥ ४५ ॥

न करनेवाले ! तुम यहांसे चलेजाओ मैं तुम्हें नहीं मारूंगा. तुमने बड़ा अनुचित कामकियाहै (देखो) कहीं कोई पापीकोभी मारताहै ॥ ४१ ॥ उस महापुरुषके ऐसे वचनोंको सुनकर महादेवजी अपनी प्रियपत्नीके साथ बदरिकाश्रमको चलेगये ॥ ४२ ॥ यह स्थान नरनारायणका निवासस्थान है और हिमालयमें प्रसिद्ध है, नदियोंमें श्रेष्ठ पुण्यकी देनेवाली सरस्वतीजी इसस्थानमें बहरहीहैं ॥ ४३ ॥ महादेवजी उसस्थानपर जाकर भगवान् नारायणको देखकर बोले कि, हे भगवन् ! आप दयाकरनेवालेहैं. सो कृपाकर हमें भलीभाँतिसे उपदेश दीजिये ॥ ४४ ॥ धर्मपुत्रनारायणजी इसप्रकारसे उनके वचनोंको सुनकर बोले कि, हेमहेश्वर ! तुम हमारी बाँयी भुजाको अपने

---

[1] कुछ नाम न होनेके कारणही इसका नाम अनामिका हुआ. अंतएव इसमें पवित्री पहननेकी आवश्यकता होतीहै, विनापवित्री पहने यह अपवित्र है. यह कथा पुराणान्तरमें प्रसिद्धहै ॥

त्रिशूलसे ताड़न करो ॥ ४५ ॥ महादेवजीने नारायणके यह वचन सुनकर त्रिशूलसे उनकी बाँईंभुजाको ताड़ित किया ॥ ४६ ॥ तब उस त्रिशूलके लगनेसे उनकी
भुजामेंसे तीन धारैंनिकलीं, उनमेंसे एकधारा तारागणोंसे युक्त आकाशमार्गका आश्रय कर स्थितहुई ॥४७॥ दूसरी धारा पृथ्वीपर गिरी, तपोधन अत्रिने उसे ग्रहण किया
उसमें महादेवजीके अंशसे दुर्वासा ऋषि उत्पन्नहुए ॥ ४८॥ तीसरी धारा देखनेमें भयानक कपालपर गिरी, तब उससे कवचको धारणकियेहुए पुष्टशरीरवाला एक युवा
पुरुष उत्पन्नहुआ ॥ ४९ ॥ इसके पीछे वह शुद्धश्यामवर्णवाला धनुष हाथमें लिये, बाणोंको कसेहुए पुरुष. प्रावृट्समयमें उत्पन्नहुआ श्याममेघकी समान गर्जताहुआ
आगेबढ़कर यह वचनबोला कि, मैं इससमय किसका शिर गलेसे तालफलकी समान काटकर नाश करूं उसे बताओ॥५०॥तब महादेवजीने आकर नारायणकी भुजासे

नारायणवचःश्रुत्वात्रिशूलेनमहेश्वरः ॥ सव्यंनारायणभुजंताडयामासवेगवान् ॥ ४६ ॥ त्रिशूलाभिहतान्मार्गात्तिस्रोधाराविनिर्ययुः ॥ एकागगनमाश्रित्य
स्थितातारामिमंडितम् ॥ ४७ ॥ द्वितीयान्यपतद्भूमौतांजग्राहतपोधनः ॥ अत्रिस्तस्मात्समुद्भूतोदुर्वासाःशंकरांशतः ॥ ४८ ॥ तृतीयान्यपतद्धाराक
पालेरौद्रदर्शने ॥ तस्माच्छिशुःसमभवत्संनद्धःकवचीयुवा ॥ ४९ ॥ श्यामावदातःशरचापपाणिर्गर्जन्यथा प्रावृषितोयदोऽसौ ॥ इत्थंब्रुवन्कस्यविनाशया
मिस्कंधाच्छिरस्तालफलंयथैव ॥ ५० ॥ तंशंकरोवेत्यवचोबभाषेनरंहिनारायणबाहुजातम् ॥ निपातयैनंनरदुष्टवाक्यंब्रह्मात्मजंसूर्यशतप्रकाशम् ॥ ५१ ॥
इत्येवमुक्तःसतुशंकरेणआद्यंधनुस्त्वाजगवंप्रसिद्धम् ॥ जग्राहतूणानितथाक्षयाणियुद्धायवीरःसमतिंचकार ॥ ५२ ॥ ततःप्रबुद्धौसुभृशंमहाबलौब्रह्मात्मजो
बाहुभवश्चशार्वः॥ दिव्यंसहस्रंपरिवत्सराणांततोहरेणापिविरिंचिरूचे॥५३॥जितस्त्वदीयःपुरुषःपितामहनरेणदिव्याद्भुतकर्मणाबली॥महापृषत्कैरभिपत्यता
डितस्तदद्भुतंचेहदिशोदशैव ॥५४॥ ब्रह्मातमीशंवचनंबभाषेनेहास्यजन्मन्यजितस्यशंभो ॥ पराजितंचैष्यतेऽसौत्वदीयोनरोमदीयःपुरुषोमहात्मा ॥५५॥

उत्पन्नहुए, उसपुरुषसे कहा कि, तुम सौसूर्यके समान दुष्टबोलनेवाले ब्रह्माजीके पुत्र का नाशकरो ॥ ५१ ॥ महादेवजीके ऐसे वचनोंको सुनकर वह मनुष्य सबलोकोंमें
प्रसिद्ध आजगवनामकधनुष और अक्षयतरकस आदिको लेकर युद्धकरनेके निमित्त तैयार हुआ ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजीका पुत्र और यह पुरुष दोनोंही बलवान्हैं, यह दोनों
अत्यन्त उत्तेजित और उत्साहित होकर हजारवर्षतक युद्ध करतेरहे, तब महादेवजी ब्रह्माजीसे बोले ॥ ५३ ॥ हे पितामह ! दिव्य और अद्भुत कर्मकरनेवाले पुरुषने
गिरकर क्रमानुसार लम्बे बाणोंको छोड़ आगे बढ़कर अत्यन्तबलवान् तुम्हारे पुत्रको परास्त कियाहै, दशोंदिशाओंमें यह वृत्तान्त अतिआश्चर्यताके साथ प्रगट हुआहै ॥५४॥
तब ब्रह्माजी महादेवजीसे बोले कि, हेशम्भो ! मेरापुरुष अत्यन्त महाप्राण और प्रभावशाली है, वह कभी परास्त नहीं होसक्ता और उसका जन्मभी इसलोकमें नहीं है

कि, जिससे तुम्हारा पुरुष उसको मनुष्य जानकर पराजित करसकै ॥५५॥ ब्रह्माने महादेवसे यह वचन कहकर उस अपने पुरुषको सूर्य्यमें और नरको धर्मपुत्र नारायणके शरीरमें निक्षेपकिया ॥ ५६ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां नरोत्पत्तिप्रलयोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोलेकि, हे ब्रह्मन् ! वह दारुण कपाल महादेवजीके हाथपर आकरगिरा,तब उनका अन्तःकरण अत्यन्त सन्तापित और व्याकुल हुआ ॥ १ ॥इसी समय अत्यन्त भयङ्करी रौद्रमूर्त्ति उनके निकट आई उसके बाल अत्यन्तही लालथे और आकार नीले अञ्जनकी समानथा॥ २॥महादेवजी उस अत्यन्त करालमूर्त्ति ब्रह्महत्याको आयाहुआ देखकर बोले कि,हे रुद्ररूपिणि ! तुम कौन हो और किसकारणसे आईहो सो मुझसे कहो ॥ ३ ॥ तब अत्यन्त दारुणप्रकृति ब्रह्महत्या कपालशाली महादेवजीसे बोली कि, हे त्रिलोचन ! मैं ब्रह्महत्या हूं आप मेराग्रहण कीजिये॥

इत्येवमुक्त्वावचनंत्रिनेत्रं चिक्षेपसूर्येंपुरुषंविरिंचिः ॥ नरंनरस्यैवतदासविग्रहेचिक्षेपधर्मप्रभवस्यदेवः ॥ ५६ ॥ इति श्रीवामनपुराणेहरललिते नरोत्पत्ति
प्रलयोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततःकरतलेरुद्रःकपालेदारुणेस्थिते ॥ संतापमगमद्ब्रह्मंश्चिंतयाकुलितेंद्रियः ॥ १ ॥ ततः
समागतारौद्रानीलांजनचयप्रभा ॥ संरक्तमूर्धजाभीमाब्रह्महत्याहरांतिकम् ॥ २ ॥ तामागतांहरोदृष्ट्वापप्रच्छविकरालिनीम् ॥ कासित्वमागतारौद्रेके
नाप्यर्थेंनतद्वद ॥ ३ ॥ कपालिनमथोवाचब्रह्महत्यासुदारुणा ॥ ब्रह्महत्यास्मिसंप्राप्तामांप्रतीच्छत्रिलोचन ॥४॥ इत्येवमुक्त्वावचनंब्रह्महत्याविवेशतम् ॥
त्रिशूलपाणिनंरुद्रंसंप्रतापितविग्रहम् ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्याभिभूतश्चशर्वोबदरिकाश्रमम् ॥ आगच्छन्नोददर्शाथनरनारायणावृषी ॥ ६ ॥ अदृष्ट्वाधर्म
तनयौचिंताशोकसमन्वितः ॥ जगामयमुनांस्नातुंसापिशुष्कजलाऽभवत् ॥ ७ ॥ कालिंदींशुष्कसलिलांनिरीक्ष्यवृषकेतनः ॥ प्लक्षजांस्नातुमगमदंतर्द्धानं
चसागता ॥ ८॥ ततोऽनुपुष्करारण्यंमागधारण्यमेवच ॥ सैंधवारण्यमेवासौगत्वाश्रांतोयदृच्छया ॥ ९ ॥ तथैवनिमिषारण्यंधर्मारण्यंतथेश्वरः ॥
स्नातोनैवचसारौद्राब्रह्महत्याव्यमुंचत ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ ब्रह्महत्याने यह कहकर फिर शूलपाणिरुद्रमें आरूढ और उसीकारणसे उनकी देहमें प्रवेशकिया ॥५॥ तब शिवजी ब्रह्महत्याके द्वारा अभिभूत होकर बदरिकाश्रमको चलेगये, परन्तु नारायणको न देखसके ॥६॥ जब उन्होंने धर्मपुत्र नारायणको न देखा तब अत्यन्त चिन्तित और शोकित होकर स्नानकरनेकी इच्छासे यमुनाजीपर आये, तो उसीसमय यमुनाजीका जल सुखगया॥ ७॥वृषभध्वज भगवान् शिवजी यमुनाजीके जलको सूखाहुआ देखकर स्नानकरनेके निमित्त प्लक्षजाके किनारे आये तब प्लक्षजाभी अन्तर्धान होगई ॥ ८ ॥ तब वह इच्छानुसार धीरे २ पुष्करारण्यमें, मगधारण्य और सैन्धवारण्यमें जाकर शान्त होगये ॥ ९ ॥ उसी अवस्थामें उन्होंने

नैमिषारण्यमें और धर्मारण्यमें जाकर स्नान किया परन्तु तोभी भयङ्करी ब्रह्महत्याने उनको न छोड़ा ॥ १० ॥ तब वृषभध्वज योगमार्गके अवलम्बनकारी होनेपरभी सम्पूर्णतीर्थ, आश्रम और पवित्र देवस्थानोंमें स्नान करकेभी पापसे मुक्त नहीं हुए ॥ ११ ॥ तब वह व्याकुलहो कुरुक्षेत्रको गये वहाँ जाय गरुड़जीके ऊपर विराजमान चक्रपाणि (विष्णु) जीका दर्शनकिया॥ १२॥ तब यह शङ्ख, चक्र, गदाधारी पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) को देखकर हाथजोड़ उनकी इसप्रकार स्तुति करनेलगे ॥ १३ ॥ हे गरुड़वाहन ! तुम देवताओंकी रक्षाकरनेवाले हो तुमको नमस्कारहै, हे शंखचक्रगदाधारी वासुदेव ! तुमको नमस्कार है ॥ १४॥ तुम गुणातीत और देशकालादिसे अपरिच्छिन्न हो तुमको नमस्कार है,तुम सबके विधाताहो,तर्ककरकेभी तुम्हारे जिस रूपके निर्णयकरनेकी सामर्थ्य नहीं है, तुम्हारे उसस्वरूपको नमस्कार है, तुम ज्ञान अज्ञानके

सरित्सुतीर्थेषुतथाश्रमेषुपुण्येषुदेवायतनेषुसर्वतः ॥ समाप्लुतोयोगयुतोपिपापान्नावापमोक्षंवृषभध्वजोऽसौ ॥ ११ ॥ ततोजगामानिर्विण्णःशंकरःकुरुजांगलम् ॥ तत्रगत्वाददर्शाथचक्रपाणिंखगस्थितम् ॥ १२ ॥ तंदृष्ट्वापुंडरीकाक्षंशंखचक्रगदाधरम् ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाहरःस्तोत्रमुदीरयत् ॥ १३ ॥ हरउवाच ॥ नमस्तेदेवतानाथनमस्तेगरुडध्वज ॥ शंखचक्रगदापाणेवासुदेवनमोऽस्तुते ॥ १४ ॥ नमस्तेनिर्गुणानंतअप्रतर्क्यायवेधसे ॥ ज्ञानाज्ञाननिरालंबसर्वालंबनमोऽस्तुते ॥ १५ ॥ रजोयुक्तनमस्तेस्तुब्रह्ममूर्त्तेंसनातन ॥ त्वयासर्वमिदंनाथजगत्सृष्टंचराचरम् ॥ १६ ॥ सत्त्वाधिष्ठितलोकेशविष्णुमूर्त्तेंअधोक्षज ॥ प्रजापालमहाबाहोजनार्दननमोऽस्तुते ॥१७॥ तमोमूर्त्तेंअहंह्येषत्वदंशक्रोधसंभवः ॥ गुणाभियुक्तोदेवेशसर्वव्यापिन्नमोऽस्तुते ॥१८॥ भूरियंत्वंजगन्नाथजलमम्बरपावकौ ॥ वायुर्बुद्धिर्मनश्चापिशर्वरीत्वंनमोस्तुते ॥ १९ ॥ धर्मोयज्ञस्तपःसत्यमहिंसाशौचमार्जवम् ॥ क्षमादानंदयालक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यत्वमीश्वरः ॥ २० ॥

आश्रयशून्य होनेपरभी सबके अवलम्बनस्वरूप हो तुमको नमस्कार है ॥ १५ ॥ तुम रजोगुणप्रधान साक्षात् सनातन ब्रह्मरूपहो तुमको नमस्कारहै, हे नाथ ! तुमनेही इस स्थावर जंगमकी सृष्टि की है ॥ १६ ॥ तुम सत्त्वगुण प्रधान और सब लोकोंके ईश्वर साक्षात् अधोक्षज (सर्वातिशयज्ञानवान्) विश्वरूपी जनार्दन हो और तुम प्रजाओंका पालन करतेहो हे महाबाहो ! तुमको नमस्कार है॥ १७॥ तुम तमोगुण प्रधानहो, मैं तुम्हारे अंशक्रोधसे उत्पन्न हुआहूं,तुम देवताओंके ईश्वर और विश्वरूपसे संसारमें व्याप्त होकर विराजमान रहतेहो, और सब गुणोंके आधारहो तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम्हीं यह पृथ्वी हो, तुम्हीं जल, तुम्हीं अग्नि, तुम्हीं वायु, तुम्हीं बुद्धि, तुम्हीं मन और तुम्हीं रजनी हो तुमको नमस्कार है॥ १९॥ तुम्हीं धर्म, यज्ञ और तपस्या हो, तुम्हीं सत्य, अहिंसा, शौच और ऋजुताहो, तुम्हीं

क्षमा, दान और दया हो, तुम्हीं लक्ष्मी ब्रह्मचर्य और सबके ईश्वरहो ॥ २० ॥ तुम्हीं समस्तवेदांग और वेदसमूह हो, तुम्हीं वेद्य (समस्त वेदादिसे जानने योग्य) और वेदपारगहो. हे ईश्वर ! तुम्हीं सम्पूर्ण उपवेद (धनुर्वेदादि) और तुम्हीं सबके स्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ तुम्हीं अच्युत हो तुमको नमस्कार है, तुम्हीं चक्रपाणी हो तुमको नमस्कार है, तुम वामन और मत्स्यमूर्ति हो तुमको नमस्कार है, तुम्हीं संसारमें एकमात्र करुणागुणोंके आधार हो ऐसा हमें विश्वास है, इसकारण हे केशव ! मेरा इस पापरूपी बंधनसे उद्धार करो ॥ २२ ॥ मेरे शरीरमें ब्रह्महत्याका अभिभवरूप जो अशुभने प्रवेश किया है, उसका आप नाश कीजिये, मैं दग्ध हुआ मेरा नाश हुआ, मैं ने सर्वथा अविचारपूर्वक ब्रह्महत्यारूप कार्य कियाथा, अब तुम्हीं मेरी रक्षा करनेवाले हो मुझे पवित्रकरो इसकारण तुमको वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, महात्मा शंकरकी इसप्रकार स्तुति करनेपर भगवान् चक्रधारी ब्रह्महत्याके नाश करनेके निमित्त उनसे बोले कि ॥ २४ ॥ हे महेश्वर ! मेरे इनमधुरशब्दशाली पुण्यके बढ़ानेवाले वचनोंको श्रवण करो, इससे आपकी ब्रह्महत्याका नाश, और शुभका संचार एवं पुण्यका उदयहोगा ॥ २५ ॥ इस पवित्र ब्रह्मांडमें जो मेरे अंशसे उत्पन्न हुए अविनाशी सर्वदा प्रयागमें विराजमान योगशायी[1]नामसे त्रिलोकीमें विख्यात हैं ॥ २६ ॥ उनके दक्षिणचरणसे वरणानामसे विख्यात सब पापोंका नाश करनेवाली परममङ्गलरूपिणी श्रेष्ठनदी निकली है ॥ २७ ॥ इसीप्रकार असीनामसे प्रसिद्ध दूसरी नदीभी उनके दूसरे (वाम) चरणसे प्रगट हुई है, वह दोनों सबनदियोंमें प्रधान हैं अतएव सब मनुष्य उनकी विशेष पूजा करते हैं ॥ २८ ॥ उन दोनों नदियोंके मध्यभागमें

त्वंसांगाश्चचतुर्वेदास्त्वंवेद्योवेदपारगः ॥ उपवेदोभवानीशसर्वोसित्वंनमोऽस्तुते ॥ २१ ॥ नमोनमस्तेऽच्युतचक्रपाणेनमोऽस्तुतेवामनमीनमूर्त्ते ॥ लोके भवान्कारुणिकोमतोमेत्रायस्वमांकेशवपापबंधात् ॥ २२ ॥ ममाशुभंनाशयविग्रहस्थंयद्ब्रह्महत्याभिभवंबभूव ॥ दग्धोस्मिनष्टोस्म्यसमीक्ष्यकारीपुनीहिनाथोसिनमोनमस्ते ॥ २३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंस्तुतश्चक्रधरःशंकरेणमहात्मना ॥ प्रोवाचभगवान्वाक्यंब्रह्महत्याक्षयायहि ॥ २४ ॥ हरिरुवाच ॥ महेश्वरशृणुष्वेमांममवाचंकलस्वनाम् ॥ ब्रह्महत्याक्षयकरींशुभदांपुण्यवर्द्धनीम् ॥ २५ ॥ योसौब्रह्मांडकेपुण्येमदंशप्रभवोऽव्ययः ॥ प्रयागेवसतेनित्यंयोगशायीतिविश्रुतः ॥ २६ ॥ चरणाद्दक्षिणात्तस्यविनिर्यातासरिद्वरा ॥ विश्रुतावरणेत्येवंसर्वपापहराशुभा ॥ २७ ॥ सरिदन्याद्वितीयाच्चआसीरित्येवविश्रुता ॥ तेउभेतुसरिच्छ्रेष्ठेलोकपूज्येबभूवतुः ॥ २८ ॥ तयोर्मध्येतुयोदेशस्तत्क्षेत्रंयोगशायिनः ॥ त्रैलोक्यप्रवरंतीर्थंसर्वपापप्रमोचनम् ॥ २९ ॥

---

[1] योगासनमें शयन करनेसे योगशायी नाम हुआ ।

उल्लिखित योगशायी पुरुषका अधिष्ठान (रहनेका) क्षेत्र है, इसीकारणसे यह स्थान त्रिलोकीके बीचमें सबसे श्रेष्ठ है, इसकी सेवा करनेसे सबप्रकारके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ २९ ॥ वहाँ उनकेही योग्य पुण्यकी देनेवाली परममङ्गलरूपिणी ‘वाराणसी’[१] नामकी नगरी विराजमान है, संसारमें लगे हुए पुरुषभी यहाँ निवास करनेसे एक साथही संसारसे मुक्त हो जाते हैं, फिर उनको जन्म लेना नहीं पड़ता ॥ ३० ॥ वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके वेदपाठकी ध्वनि विलासिनीस्त्रियोंके नूपुरके साथ मिलकर सर्वदा गुञ्जारती रहती है, गुरु उस पवित्र स्वरको सुनकर ऊपर लिखीहुई विलासशालिनी कामिनियोंको देखकर वारम्वार हास्य करते हैं ॥ ३१ ॥ इसके अतिरिक्त उस नगरीके चौराहोंमें जब स्त्रियें चलने लगतीं हैं, तब उनके महावर लगे हुए लालवर्णके चरणोंकी परम्पराको देखकर जङ्गम स्थल पद्मिनीके भ्रमसे

तत्तादृशास्तिनगरीपुण्यावाराणसीशुभा ॥ यस्यांहिभोगिनोपीशप्रयांतिभवतोलयम् ॥ ३० ॥ विलासिनीनांरशनास्वनेनश्रुतिस्वरोब्राह्मणपुंगवानाम् ॥
शुचिस्वरत्वंगुरवोनिशम्यहास्यान्विताःसन्तिमुहुर्मुहुस्ताः ॥ ३१ ॥ व्रजत्सुयोषित्सुचतुःपथेषुपदान्यलक्तारुणितानिदृष्ट्वा ॥ ययौशशीविस्मयमेवयस्यां
किंस्वित्प्रयातास्थलपद्मनीयम् ॥ ३२ ॥ तुंगानियस्यांसुरमंदिराणिरुंधंतिचंद्रंरजनीमुखेषु ॥ दिवापिसूर्यंपवनान्विताभिर्दीर्घाभिरेवंसुपताकिकाभिः ॥
॥ ३३ ॥ भृंगाश्चयस्यांशशिकांतभित्तौप्रलोभ्यमानाःप्रतिबिंबितेषु ॥ आलक्ष्ययोषिद्विमलाननाब्जेष्वीयुर्भ्रमान्नैवचपुष्पकांतरम् ॥ ३४ ॥ परिश्रमश्चा
पिपराजितेषुनरेषुसंमोहनखेलनेन ॥ यस्यांजलक्रीडनसंगतासुनस्त्रीषुशंभोगृहदीर्घिकासु ॥ ३५ ॥ नचैवकश्चित्परमंदिराणिरुणद्धिशंभोसहमारुतेन ॥
नचाबलानांतरसापराक्रमंकरोतियस्यांसुरतांहिमुक्त्वा ॥ ३६ ॥

चन्द्रमाको विस्मय उत्पन्न होता है ॥ ३२ ॥ उस स्थानके अत्यन्त ऊँचे देवताओंके मन्दिर प्रतिदिन सायङ्कालके चन्द्रमाको ढकदेते हैं और दिनमेंभी पवनसे चलाई हुई सुन्दर सुहावनी पताकाओंकी सहायतासे सूर्यनारायणको ढकदेते हैं ॥ ३३ ॥ वहाँ चन्द्रकान्तमणियोंसे बनीहुई दीवारोंपर स्त्रियोंकी परछाँई पड़नेसे उनके श्रेष्ठ मुखकमलको देखकर भौंरोंने यह जाना कि, यही फूल खिला है. इस भ्रमसे अत्यन्त लोभके वशीभूत हो औरफूलोंपर नहीं जाते ॥ ३४ ॥ हे शम्भो ! उसस्थानमें परस्परमें मोहनेवाली क्रीड़ाको करके पराजित हुए पुरुषभी किसीप्रकारसे परिश्रमको नहीं मानते और वहाँकी स्त्रियेंभी बड़े २ घरोंकी तलैयोंमें सर्वदा जलक्रीडा करके किसी प्रकारभी परिश्रमसे थकित नहीं होतीं ॥ ३५ ॥ उन स्थानोंमें वायुके अतिरिक्त और कोई दूसरोंके घरोंमें नहीं जाता और सुरतके अतिरिक्त

---

[१] वर नाम श्रेष्ठ, अनस नाम जल, उसके समीपमें होनेवाली जो नगरी उसे ‘वाराणसी कहते’ हैं ।

अन्य कोई पुरुषभी स्त्रियोंके प्रति बलप्रकाश नहीं करते, अर्थात् पवनही केवल उन स्थानोंमें अनधिकारतासे प्रवेश करता है, चोर इत्यादि नहीं करसकते, और अपने २ पतिही केवल रतिके समयमें स्त्रियोंके ऊपर पराक्रम प्रकाश करते हैं और कोईभी उस प्रकार नहीं करता. सारांश यह है कि, वहाँ तो चोर और डाकुओंका तो स्पर्शतकभी नहीं है और कामी, दुष्कृति ऐसे मनुष्योंकाभी समागम नहीं है ॥ ३६ ॥ वहाँ के श्रेष्ठ हाथियोंके लियेही शृंखला बन्धन और मदच्युतिके समयमेंही दानच्छेद दिखाई देता है अर्थात् मतवाले हाथियोंको बन्धन करनेहीके निमित्त पाशग्रन्थिकी आवश्यकता होती है, चोर इत्यादिकोंके बाँधनेके लिये नहीं. कारण कि, वहाँ तो चोर इत्यादि दुष्ट मनुष्योंका तो स्पर्शतकभी नहीं है. इसप्रकार हाथियोंके मदक्षय होनेसे, दानच्छेद अर्थात् मदका नाश होता है और किसीप्रकारसे दानच्छेद नहीं है. कारण कि, वहाँ तो अगणित दानादिक्रियाओंका अनुष्ठान होता रहता है, फिर वहाँ मनुष्य और हाथियोंकी युवावस्थाके आनेसेही मान और मदका आविर्भाव होता है अर्थात् वहाँके निवासी अभिमान और मदसे रहित हैं ॥ ३७ ॥ जहाँके कौशिक (उल्लूपक्षी) मेंही प्रियदोष है और दूसरे मनुष्योंमें नहीं अर्थात् उल्लू पक्षीही तो दिनमें अन्धे होते हैं और रात्रिमें भलीप्रकारसे देखते हैं. इसकारण दोषा रात्रिही उनको प्यारी होती है (दोषा शब्दसे रात्रि है) दोषा अर्थात् रात्रि जिनको प्रिय है उनका नाम प्रियदोष है । दूसरे पक्षमें दोषशब्दसे अभिमान और मद इत्यादि है यहाँके निवासियोंमें कोईभी प्रियदोष नहीं है अर्थात् अभिमान आदिके वश नहीं है, इसका यही भावार्थ है. हे विभो ! वहाँके तारागणही अकुलीन हैं अर्थात् अत्यन्त ऊँचे आकाशमें स्थित हैं, कु अर्थात् पृथ्वीमें लीन नहीं हैं, वहाँके सम्पूर्ण निवासीही कुलीन (श्रेष्ठकुलवाले) हैं, वहाँके मेघही वृत्त (खगोल) से वृष्टिके अर्थ च्युत होते हैं इसके अतिरिक्त वहाँके निवासियोंमें कोईभी वृत्त (स्वधर्म) से च्युत नहीं है अर्थात् सदाचार धर्मकी किसी प्रकारसेभी हानि नहीं हैं, सभी अपने २ धर्ममें सावधान हैं ॥ ३८ ॥ हेशङ्कर ! तुम जैसे भूतिलुब्ध अर्थात् भस्म प्रिय और भुजङ्गों (सर्पों) से युक्तहो एवं चन्द्रमासे तुम्हारा शरीर भूषित है, उस स्थानकी विलासिनी स्त्रियेंभी उसीप्रकार भूतिलुब्ध अर्थात् ऐश्वर्यकी इच्छाके वश वर्त्तिनी, भुजंगोंसे युक्त अर्थात् विट्गणोंसे सेवित और चन्द्रभूषित अर्थात् चन्द्रकान्तमणिमण्डित शरीरवाली हैं ॥ ३९ ॥ हे सुरेशान ! (हे देवताओंके पति !)

पाशग्रंथिर्गजेंद्राणांदानच्छेदोमदच्युतौ ॥ यस्यांमानमदौपुंसांकरिणांयौवनागमे ॥ ३७ ॥ प्रियदोषाःसदायस्यांकौशिकानेतरेजनाः ॥ तारागणेऽकुली
नत्वंमेघेवृत्तच्युतिर्विभो ॥ ३८ ॥ भूतिलुब्धाविलासिन्योभुजंगपरिवारिताः ॥ चंद्रभूषितदेहाश्चयस्यांत्वमिवशंकर ॥ ३९ ॥ ईदृशायांसुरेशानवाराणस्यां
मदाश्रमे ॥ वसतेभगवाँल्लोलःसर्वपापहरोरविः ॥ ४० ॥

इसप्रकारके गुणोंसे युक्त वाराणसीमें मेरे प्रतिष्ठित आश्रममें भगवान् लोल (लोलार्क) नामके सूर्य सर्वदा विराजमान रहते हैं. वह सबप्रकारके पापोंको हरण करते हैं॥४०॥ उस स्थानमें जिसको दशाश्वमेध कहते हैं, उस देशमें मेरे अंश केशव विराजमान हैं. हेसुरश्रेष्ठ ! वहाँ जानेसे तुम सबपापोंसे छूटजाओगे ॥ ४१ ॥ गरुड़ध्वजके इसप्रकार कहनेपर वृषभध्वजने मस्तक नवाय प्रणाम किया और पापोंसे छूटनेकी अभिलाषासे गरुड़जीकी समान शीघ्रतासे काशीको गये ॥४२॥ उस परमपाविनी और श्रेष्ठ तीर्थ शोभायमान वाराणसीमें जाकर भगवान् लोलार्क और दशाश्वमेधका दर्शन करके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर पापोंसे छूट भगवान् केशवके दर्शनकी इच्छासे उस देशको गये ॥४३॥ इसके उपरान्त शंकर केशवका दर्शन करके हाथ जोड़कर बोले कि, हेहृषीकेश ! (इन्द्रियोंके स्वामी.)

दशाश्वमेधंयत्प्रोक्तंमदंशोयत्रकेशवः ॥ तत्रगत्वासुरश्रेष्ठपापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४१ ॥ इत्येवमुक्तोगरुडध्वजेनवृषध्वजस्तांशिरसाप्रणम्य ॥ जगामवेगाद्गरुडोयथाऽसौवाराणसींपापविमोचनाय ॥ ४२ ॥ गत्वासुपुण्यांनगरींसुतीर्थांदृष्ट्वाचलोलंसदशाश्वमेधम् ॥ स्नात्वाचतीर्थेषुविमुक्तपापःसकेशवंद्रष्टुमुपाजगाम ॥ ४३ ॥ केशवंशंकरोदृष्ट्वाप्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ त्वत्प्रसादाद्धृषीकेशब्रह्महत्याक्षयंगता ॥ ४४ ॥ नेदंकपालंदेवेशमद्धस्तंपरिमुंचति ॥ कारणंवेद्मिनैवैतत्तन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ ४५ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ महादेववचःश्रुत्वाकेशवोवाक्यमब्रवीत् ॥ विद्यतेकारणंवत्सतत्सर्वंकथयामिते ॥ ४६ ॥ योऽसौममाग्रतोदिव्योह्रदःपद्मोत्पलैर्वृतः ॥ एषतीर्थवरःपुण्योदेवगंधर्वपूजितः ॥ ४७ ॥ एतस्मिन्प्रवरेपुण्येस्नानंशोभनमाचर ॥ स्नातमात्रस्यचाद्यैवकपालंपरिमोक्ष्यति ॥ ४८ ॥ ततःकपालीलोकेचख्यातोरुद्रभविष्यसि ॥ कपालमोचनेत्येवंतीर्थंचेदंभविष्यति ॥ ४९ ॥

आपके प्रसादसे ब्रह्महत्याका नाश होगया है ॥४४॥ परन्तु यह कपाल (खप्पर) मेरे हाथसे अभीतक नहीं गिरा. हेदेवेश ! इसका क्या कारण है ? सो मैं नहीं जानता इसको कृपा करके आप कहिये ॥४५॥ पुलस्त्यजी बोले-कि, भगवान् केशव भवानीपतिके वचनोंको सुनकर बोले कि, हेवत्स ! इसका जो कुछ कारण है वह मैं सभी तुमसे कहताहूं ॥ ४६ ॥ मेरे सन्मुख यह जो पद्म[1] और [2]उत्पलसे मंडित दिव्य ह्रद दृष्टि आता है, यह सब तीर्थोंमें अग्रणीय और परम पवित्र है, देवता और गन्धर्व सभी इसकी पूजा करते हैं ॥ ४७ ॥ तुम इस परमपवित्र श्रेष्ठ तीर्थमें विधानपूर्वक स्नान करो, स्नान करनेसे आजही यह कपाल तुम्हारे हाथसे गिर जायगा ॥ ४८ ॥ तब हेरुद्र ! तुम कपाली नामसे सब लोकोंमें विख्यात होंगे और यह तीर्थभी कपालमोचननामको धारण करैगा ॥ ४९ ॥

१–२ पद्म और उत्पल कमलके भेद हैं।

पुलस्त्यजी बोले—कि, हेमुने ! देवाधिपति केशवके इसप्रकार कहनेपर उनकी आज्ञानुसार वेदकी विधिसे उस (तीर्थ) में महादेवजीने स्नान किया ॥ ५० ॥ स्नान करतेही शिवजीके हाथसे कपाल गिरपड़ा, उसी समयसे भगवान्‌के प्रसादसे उस श्रेष्ठ तीर्थने कपालमोचननामको प्राप्त किया ॥ ५१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसम्वादे भाषाटीकायां हरललितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे देवर्षे ! इसप्रकारसे भगवान् शिवजी कपाली हुये थे, दक्षने इसीकारणसे उनको निमन्त्रित नहीं किया था ॥ १ ॥ इसी अवसरमें गौतमकी कन्या जया सतीके देखनेकी अभिलाषासे शोभायमान कन्दराओंसे मंडित शैलेन्द्रमन्दरमें आई ॥ २ ॥ सती उसे इकली आई देख बोलीं कि, विजया जयन्ती और अपराजिता यह किसकारणसे नहीं आईं ॥ ३ ॥

पुलस्त्यउवाच ॥ एवमुक्तःसुरेशेनकेशवेनमहेश्वरः ॥ कपालमोचनेसस्नौवेदोक्तविधिनामुने ॥ ५० ॥ स्नातस्यतीर्थेत्रिपुरांतकस्यपरिच्युतंहस्ततलात्कपा
लम् ॥ नाम्नाबभूवाथकपालमोचनंतत्तीर्थवर्यंभगवत्प्रसादात् ॥ ५१ ॥ इति श्रीवामनपुराणेपुलस्त्यनारदसंवादेहरललितोनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
पुलस्त्य उवाच ॥ एवंकपालीसंजातोदेवर्षेभगवान्हरः ॥ अनेनकारणेनासौदक्षेणननिमंत्रितः ॥ १ ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवींद्रष्टुंगौतमनंदनी ॥ जयाजगामशैलेंद्रं
मंदरंचारुकंदरम् ॥ २ ॥ तामागतांसतीदृष्ट्वाजयामेकामुवाचह ॥ किमर्थंविजयानागाज्जयंतीचापराजिता ॥ ३ ॥ सादेव्यावचनंश्रुत्वाउवाचपरमेश्वरी ॥
गतानिमंत्रिताःसर्वामखेमातामहस्यताः ॥ ४ ॥ समंपित्रागौतमेनमात्राचैवाप्यहल्यया ॥ अहंसमागताद्रष्टुंत्वांतत्रगमनोत्सुका ॥ ५ ॥ किंत्वंनव्रजसे
तत्रतथादेवोमहेश्वरः ॥ नामंत्रितासिताातेनउताहोस्विद्व्रजिष्यसि ॥ ६ ॥ गतास्तुऋषयःसर्वेऋषिपत्न्यस्तथासुराः ॥ मातृष्वसःशशांकश्चसपत्नीको
गतःक्रतुम् ॥ ७ ॥ चतुर्दशसुलोकेषुजंतवोयेचराचराः ॥ निमंत्रिताःक्रतौसर्वेकिंवात्वंननिमंत्रिता ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ जयायास्तद्वचःश्रुत्वा
वज्रपातोपमंसती ॥ मन्युनाभिप्लुताब्रह्मन्पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ९ ॥

परमेश्वरी जयादेवी सतीके यह वचन सुनकर बोली—कि, वह सभी निमंत्रित होकर नानाके यज्ञमें पिता गौतम और माता अहिल्याके साथ गई हैं मैंभी वहाँ जानेके निमित्त उत्कण्ठित हो आपके दर्शन करनेको आई हूं ॥ ४ ॥ ५ ॥ आप और भगवान् शिवजी क्या उनके यज्ञमें नहीं जाँयगे ॥ ६ ॥ क्या पिताने आपको निमंत्रण नहीं दिया अथवा आपभी वहाँ जाँयगी हेमातृष्वसः ! (मौसी) सम्पूर्ण ऋषि और उनकी स्त्रिये, अपनी २ स्त्रियोंके साथ सम्पूर्ण देवता और अपनी स्त्रीके साथ चन्द्रमा यह सभी वहाँको जारहे हैं ॥ ७ ॥ जो चौदहलोकोंमें सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम दिखाई देते हैं. वह सभी उनके यज्ञमें निमंत्रित हुए हैं तब क्या आपको निमंत्रण नहीं दिया है ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले—कि, जयाके मुखसे इन वज्रकी समान वचनोंको सुनकर सतीने अत्यन्त क्रोधित हो उसी समय अपने

प्राणोंको त्याग दिया ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! जया सतीकी यह अवस्था देख शोकसे व्याकुल हो नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा वर्षाती हुई ऊँचे स्वरसे विलाप करनेलगी ॥ १० ॥ शूलपाणि त्रिलोचन महादेवजी रोनेके शब्दको सुनकर "आः यह क्या हुआ" कहकर जयाके सन्मुख गये ॥ ११ ॥ और जाकर देखा कि, देवि सती कुल्हाडीसे कटी हुई लताकी समान शिथिल देहसे पृथ्वीपर पड़ी हैं ॥ १२ ॥ महादेवजी देवीको पड़ी हुई देखकर जयासे बोले कि, सती किसकारणसे कटी हुई लताकी समान पृथ्वीपर पड़ी है ॥ १३ ॥ जया शिवजीके वचनको सुनकर बोली कि, यज्ञमें पिताने इनको निमंत्रण न देकर इनका निरादर किया है, और अपने अपने पतियोंके साथ सब भगिनी ॥ १४ ॥ इन्द्र इत्यादि देवताओंके साथ आदित्य यह सभी निमंत्रित होकर वहाँ गये हैं, यह वृत्तान्त सुनकर मनमें

जयामृतांसतींदृष्ट्वाक्रोधशोकपरिप्लुता ॥ मुंचतीवारिनेत्राभ्यांसुस्वरंविललापह ॥ १० ॥ आक्रंदितध्वनिंश्रुत्वाशूलपाणिस्त्रिलोचनः ॥ आःकिमेतदितीत्युक्त्वाजयाभ्याशमुपागतः ॥ ११ ॥ आगतोदृदृशेदेवींलतामिववनस्पतेः ॥ कृत्तांपरशुनाभूमौश्लथांगींपतितांसतीम् ॥ १२ ॥ देवींनिपतितांदृष्ट्वाजयांपप्रच्छशंकरः ॥ किमियंपतिताभूमौनिकृत्तेवलतासती ॥१३॥ साशंकरवचःश्रुत्वाजयावचनमब्रवीत् ॥ श्रुत्वामखेचस्वावज्ञांभगिन्यःपतिभिःसह ॥१४॥ आदित्यास्त्रिषुलोकेषुसमंशक्रादिभिःसुरैः ॥ मातृष्वसाविपन्नेयमंतर्दुःखेनदह्यती ॥ १५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तच्छ्रुत्वाथवचोरौद्रंरुद्रः क्रोधाप्लुतोबभौ ॥ क्रुद्धस्यसर्वगात्रेभ्योनिश्चेरुःपावकार्चिषः ॥ १६ ॥ ततःक्रोधात्रिनेत्रस्यगात्ररोमोद्भवामुने ॥ गणाःसिंहमुखाजातावीरभद्रपुरोगमाः ॥ १७ ॥ गणैःपरिवृतस्तस्मान्मंदराद्धिमसाह्वयम् ॥ ततः कनखलंतस्माद्यत्रदक्षोऽयजत्क्रतुम् ॥ १८ ॥ ततोगणानामधिपोवीरभद्रोमहाबलः ॥ दिशिप्रत्युत्तरायांचतस्थौशूलधरोमुने ॥ १९ ॥ जयाक्रोधाद्गदांगृह्यपूर्वदक्षिणतःस्थिता ॥ मध्येत्रिशूलभृच्छर्वस्तस्थौक्रुद्धोमहाक्रतौ ॥ २० ॥ मृगारिवदनंदृष्ट्वादेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःकिमिदंत्वित्यचिंतयन् ॥ २१ ॥

दुःखसे दग्धहो इन मेरी मौसीने अपने प्राणोंको त्यागदिया है ॥ १५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, शिवजी इस भयङ्कर समाचारको सुन क्रोधसे व्याप्त होगये, इस अवस्थामें उनके सब शरीरसे अग्निकी चिनगारियें निकलने लगीं ॥ १६ ॥ तब क्रोधसे शिवजीके शरीरके रुओंसे सिंहके समान मुखवाले गण उत्पन्न हुए वीरभद्र उन सबमें आगे हुआ ॥ १७ ॥ और उनगणोंको साथले मंदराचलसे हिमालय, हिमालयसे कनखल और कनखलसे जहाँ दक्षने यज्ञ कियाथा वहाँ गये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त गणाधिपति महाबलवान् वीरभद्र शूल हाथमें ले पश्चिम और उत्तरकी ओर खड़े होगये ॥ १९ ॥ जयाने क्रोधमें भरकर गदाको ले पूर्व और दक्षिण ओरका आश्रम किया, महादेवजीभी त्रिशूलको हाथमें ले उनके बीचमें खड़े हुए ॥ २० ॥ इसी समयमें इन्द्रइत्यादिदेवता ऋषि और गन्धर्वगण सिंहमुख वीरभद्रको

देखकर " यह क्या है ? " इसप्रकार चिन्ता करनेलगे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त द्वारपाल धर्म सर्पकी समान बाण और धनुषको लेकर उसी समय वीरभद्रके ओर दौड़े ॥ २२ ॥ गणपति वीरभद्र धर्मको सहसा आता हुआ देखकर एक हाथमें वज्रके समान त्रिशूलको धारण कर ॥ २३ ॥ और दूसरे हाथमें कार्मुक धनुषको तीसरे हाथमें बाणोंको और चौथे हाथमें गदाको लेकर उनके सन्मुख हुए॥ २४ ॥धर्मराज उन चार भुजावाले गणपति वीरभद्रको देख विविधभाँतिके आयुधधारी अविनाशी आठभुजाओंकी मूर्ति धारणकर खड़े हुए ॥ २५ ॥ इसप्रकारसे वह खड्ग, गदा, चर्म, पाश, परश्वध, श्रेष्ठ अङ्कुश और धनुषको धारणकर वीरभद्रके संहार करनेकी इच्छासे स्थित हुए ॥ २६ ॥ तब गणेश्वर वीरभद्रनेभी अत्यन्त क्रोधितहो सनातनधर्मके नाश करनेकी इच्छासे वर्षाकालके मेघकी समान तीक्ष्ण

ततस्तुधनुरादायशरानाशीविषोपमान् ॥ द्वारपालस्तदाधर्मोवीरभद्रमुपाद्रवत् ॥ २२ ॥ तमापतंतंसहसाधर्मंदृष्ट्वागणेश्वरः ॥ करेणैकेनजग्राहात्रिशूलं
वज्रसन्निभम् ॥ २३ ॥ कार्मुकंचाद्वितीयेनतृतीयेनाथमार्गणान् ॥ चतुर्थेनगदांगृह्यधर्ममभ्यद्रवद्गणः ॥ २४ ॥ ततश्चतुर्भुजंदृष्ट्वाधर्मराजोगणेश्वरम् ॥
तस्थावष्टभुजोभूत्वानानायुधधरोव्ययः ॥ २५ ॥ खड्गचर्म्मगदाप्रासपरश्वधवरांकुशैः ॥ चापमार्गणभृत्तस्थौहंतुकामोगणेश्वरम् ॥ २६ ॥ गणेश्वरो
पिसंक्रुद्धोहंतुंधर्म्मंसनातनम् ॥ ववर्षमार्गणांस्तीक्ष्णान्यथाप्रावृषितोयदः ॥ २७॥ तावन्योन्यंमहात्मानौशरचापधरौमुने ॥ रुधिरारुणसिक्तांगौकिंशुका
विवरेजतुः ॥ २८ ॥ मृधेवरास्त्रैर्गणनायकेनजितःसधर्मस्तरसाप्रसह्य ॥ पराङ्मुखोभूद्विमनामुनींद्रसवीरभद्रःप्रविवेशयज्ञम् ॥ २९ ॥ यज्ञवाटंप्रविष्टंतुवी
रभद्रंगणेश्वरम् ॥ दृष्ट्वातुसहसादेवाउत्तस्थुःसायुधामुने ॥ ३० ॥ वसवोऽष्टौमहाभागाग्रहानवसुदारुणाः ॥ इंद्राद्याद्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैवहि ॥
॥ ३१ ॥ विश्वेदेवाश्चसाध्याश्चसिद्धगंधर्वपन्नगाः ॥ यक्षाःकिंपुरुषाभूताःखगाश्चक्रधरास्तथा ॥ ३२ ॥ नृपावैवस्वताद्वंशाद्विविधायेचविश्रुताः ॥
सोमवंशोद्भवाश्चान्येभोजकीर्तिमहीभुजः ॥ ३३ ॥

बाणोंकी वर्षा की ॥ २७ ॥ हेमुने ! वह दोनोंही महात्मा धनुष बाणको धारण किये हुएथे और दोनोंही आपसमें एक दूसरेके प्राणनाश करनेकी इच्छासे बाणोंके आघातद्वारा रक्तधारासे सिक्तशरीरसे किंशुक वृक्षकी समान शोभायमान हुए ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त गणनायक वीरभद्रने युद्धमें एकवारही बलको प्रकाश कर श्रेष्ठ अस्त्रोंके प्रयोगसे धर्मको परास्त किया, तब वह युद्धसे विमुख हुए. उसी समय वीरभद्रने यज्ञमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ देवतालोक गणेश्वर वीरभद्रको यज्ञ भूमिमें आते देखतेही आयुधोंको निकालकर उसीसमय सहसा उठ खड़े हुए॥ ३० ॥ महाभाग अष्टवसु, अतिभयकारी नवग्रह, इन्द्र इत्यादि बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र ॥ ३१ ॥ विश्वेदेव, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, पन्नग, भूत और विहङ्गम तथा चक्रधारी ॥ ३२ ॥ वैवस्वतवंशमें उत्पन्न हुए प्रसिद्ध राजा,

सोम वंशमें उत्पन्नहुए राजा और भोजकीर्त्ति नामक अन्यान्य राजा ॥ ३३ ॥ दैत्य और दानव तथा और जो वहाँ आयेथे, वह सभी अपने २ आयुधोंको लेकर उग्र प्रकृति वीरभद्रके सन्मुख दौड़े ॥ ३४ ॥ उनके आतेही धनुषबाणधारी वीरभद्रने बाणोंकेद्वारा उन सभीपर आक्रमण किया ॥ ३५ ॥ वह सभी वीरभद्रके ऊपर शीघ्रतासे बाणोंकी वर्षा करनेलगे, तब गणपति वीरभद्रनेभी अपने श्रेष्ठ अस्त्रोंसे उन सबको छिन्न भिन्न करदिया ॥ ३६ ॥ इसप्रकारसे जब महाप्राण और महाप्रभाववान् वीरभद्रने निरन्तर बाणोंकी वर्षा करके उनपर प्रहार करना आरम्भ किया, तब देवता इत्यादि सभी युद्धसे निवृत्त हुए ॥ ३७ ॥ तब गणनायक वीरभद्रने विस्तारित यज्ञमें प्रवेश कर ऋषि जहाँ अग्निमें आहुति देरहेथे उनको जाकर बाँधा ॥ ३८ ॥ महर्षिगण उस मृगेन्द्रशरीरधारी गणपतिको देखकर भयभीतहो हवनको छोड़ भगवान् अच्युत (विष्णु) की शरणमें गये ॥ ३९ ॥ भगवान् विष्णु ऋषियोंको अत्यन्त व्याकुल और भयभीत देखकर "कुछ भय नहीं है" यह कहकर श्रेष्ठ अस्त्रोंको लेकर उसी समय उठे ॥ ४० ॥ और शार्ङ्गधनुषको चढ़ाकर वीरभद्रके ऊपर कवच (बख्तर) को विदीर्ण करनेवाले सर्पके समान बाणोंको वर्षाने लगे ॥ ४१ ॥ वह हरिके छोड़े हुए अमोघ (कभी व्यर्थ नहीं होनेवाले) बाण, नास्तिकके निकटसे जिसप्रकार याचक निराश होकर जाताहै, उसीप्रकार उस वीरभद्रके शरीरमें लगतेही निराश होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ४२ ॥ भगवान् केशव सम्पूर्ण अव्यर्थ बाणोंको व्यर्थ हुआ देखकर वीरभद्रको दिव्य अस्त्रोंके जलसे आच्छादित करनेके निमित्त उद्यत हुए ॥ ४३ ॥ वीरभद्रने गदा, शूल और बाणोंके द्वारा केशवके छोड़े हुए अस्त्रोंको

दितिजादानवाश्चान्येयेऽन्येतत्रसमागताः ॥ तेसर्वेऽप्यद्रवन्रौद्रंवीरभद्रमुदायुधाः ॥ ३४ ॥ तानापततएवाशुबाणचापधरोगणः ॥ अभिदुद्राववेगेनसर्वाने
वशरोत्करैः ॥ ३५ ॥ तेशस्त्रवर्षमतुलंगणेशायसमुत्सृजन् ॥ गणेशोपिवरास्त्रैस्तांश्चिच्छेदचबिभेदच ॥ ३६ ॥ शरैःशस्त्रैश्चसततंवध्यमानामहात्मना ॥
वीरभद्रेणदेवाद्यास्त्ववहारमरोचयन् ॥ ३७ ॥ ततोविवेशगणपोयज्ञमध्यंसुविस्तृतम् ॥ जुह्वानाऋषयोयत्रहवींषिप्रत्यबंधत ॥३८॥ ततोमहर्षयोदृष्ट्वामृगें
द्रवदनंगणम् ॥ भीताहोत्रंपरित्यज्यजग्मुःशरणमच्युतम् ॥ ३९॥ तानार्तांश्चक्रभृद्दृष्ट्वामहर्षींस्त्रस्तमानसान् ॥ नभेतव्यमितीत्युक्त्वासमुत्तस्थौवरायुधः ॥
॥ ४० ॥ समानम्यततःशार्ङ्गंशरानाशीविषोपमान् ॥ मुमोचवीरभद्रायकायावरणदारणान् ॥ ४१ ॥ तेतस्यकायमासाद्यअमोघावैहरेःशराः ॥
निपेतुर्भुविभग्नाशानास्तिकादिवयाचकाः ॥ ४२ ॥ शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमापन्नान्वीक्ष्यकेशवः ॥ दिव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रंप्रच्छादयितुमुद्यतः ॥ ४३ ॥
तानस्त्रान्वासुदेवेनप्रक्षिप्तान्गणनायकः ॥ वारयामासशूलेनगदयामार्गणैस्तथा ॥ ४४ ॥

काट डाला ॥ ४४ ॥ माधवने सम्पूर्ण अस्त्रोंको नष्ट हुआ देखकर गदाका प्रहार किया, वीरभद्रने शूलके प्रहारसे उस गदाको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४५ ॥ हरिने उस गदाको व्यर्थ हुआ देख हलको छोड़ा, गणेश्वर वीरभद्रने गदाके आघातसे उसको काटदिया ॥ ४६ ॥ तब हलायुधने उनके ऊपर मूसलका प्रयोग किया, वीरभद्रने मूसलके आघातकोभी पहलेके समान काट दिया ॥ ४७ ॥ इसप्रकारसे मूसलको हत और हलको निवारित हुआ देखकर गरुड़ध्वज हरिने क्रोधित होकर वीरभद्रके ऊपर चक्रका प्रहार किया ॥ ४८ ॥ तब उस शतसूर्यके समान सुदर्शनचक्रको आता हुआ देखकर, गणेश्वर वीरभद्रने शूलके प्रयोगकी सहायतासे सुरश्रेष्ठ विष्णुने जिसप्रकार मीनरूपको धारण कर मधुनामक दैत्यका संहार कियाथा उसी प्रकारसे वीरभद्र उस चक्रको निगल गये॥

दृष्ट्वाविपन्नान्यस्त्राणिगदांचिक्षेपमाधव ॥ त्रिशूलेनसमाहत्यपातयामास भूतले ॥ ४५ ॥ तांगदांविफलांदृष्ट्वालांगलंप्राक्षिपद्धरिः ॥ लांगलंचगणेशोऽपिगदयाप्रत्यवारयत् ॥ ४६ ॥ मुसलंवीरभद्रायसंचिक्षेपहलायुधः ॥ पूर्ववन्मुसलाघातंवीरभद्रोन्यवारयत् ॥ ४७ ॥ मुसलंसंहतंदृष्ट्वालांगलंचनिवारितम् ॥ वीरभद्रायचिक्षेपचक्रंक्रोधात्खगध्वजः ॥ ४८ ॥ तमापतंतंशतसूर्यकल्पंसुदर्शनंप्रेक्ष्यगणेश्वरस्तु ॥ शूलंपरित्यज्यजगारचक्रंतथामधुंमीनवपुःसुरेंद्रः ॥ ४९ ॥ चक्रेनिगीर्णेगणनायकेनक्रोधातिरक्तोऽसितचारुनेत्रः ॥ मुरारिरभ्येत्यगणाधिपेंद्रमुत्क्षिप्यवेगाद्भुविनिष्पिपेष ॥ ५० ॥ हरिबाहूरुवेगेनविनिष्पिष्टस्यभूतले ॥ सहितंरुधिरोद्गारैर्मुखाच्चक्रंविनिर्गतम् ॥ ५१ ॥ ततोनिःसृतमालोक्यचक्रंकैटभनाशनः ॥ समादायहृषीकेशोवीरभद्रंमुमोचह ॥५२॥ हृषीकेशेनमुक्तस्तुवीरभद्रोजटाधरम् ॥ गत्वानिवेदयामासवासुदेवात्पराजयम् ॥५३॥ ततोजटाधरोदृष्ट्वागणेशंशोणिताप्लुतम् ॥ निश्वसंतंयथानागंक्रोधंचक्रेतदाव्ययः ॥ ५४ ॥ ततःक्रोधाभिभूतेनवीरभद्रोऽथशंभुना ॥ पूर्वोद्दिष्टेतदास्थानेसायुधस्तुनिवेशितः ॥ ५५ ॥

॥ ४९ ॥ चक्रको विफल हुआ देखकर इन्दीवर (नीलकमल) नयन मुरारिने क्रोधित हो शीघ्रतासे वीरभद्रके सन्मुख जाकर अपनी भुजाओंसे वीरभद्रको उठाय पृथ्वीपर पटकदिया ॥ ५० ॥ हरिकी भुजाओंके महान् वेगसे पृथ्वीपर गिरकर कुचलगये वीरभद्रके मुखसे रुधिरकी धारा निकलने लगी और रुधिरके साथही चक्र निकल पड़ा ॥ ५१ ॥ भगवान् कैटभनाशीने उस निकलेहुए चक्रको देखकर उसे उठाय वीरभद्रको छोडदिया ॥५२॥ तब वीरभद्रने हृषीकेश भगवान्‌से छूटकर जटाधर महादेवजीके पास जाय वासुदेवसे पराजित होनेका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥५३॥ अविनाशी जटाधर महादेवजी वीरभद्रको रुधिरसे सना हुआ और सर्पकी समानं श्वासको लेते हुए देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए॥५४॥इसके उपरान्त उन्होंने क्रोधित होकर वीरभद्रको प्रथम बताये हुए देशमें आयुधोंके साथ भेजा ॥५५ ॥

और भद्रकालीकोभी वहीं आज्ञा देकर आप स्वयं क्रोधितहो लाल २ नेत्र कर त्रिशूलको हाथमें ले यज्ञस्थानमें गये ॥ ५६ ॥ इसप्रकार त्रिपुरान्तकारी त्रिशूलधारी सर्वलोकसंहारी देवताओंमें श्रेष्ठ जटाधर महादेवजीने जब दक्षके यज्ञमें प्रवेश किया, तब ऋषि मुनी आदि सभी अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ५७ ॥ इति श्रीवामनपु० भाषाटीकायां पुलस्त्यनारदसम्वादे हरललितो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, हरि त्रिलोचनके क्रोधमें रक्त नेत्र देखकर उस स्थानसे जाकर कुब्जाम्रमें अन्तर्धान होकर विराजमान हुए ॥ १ ॥ हेमुने ! आठ वसुओंने उनको देखकर शीघ्रतासे जाय सीतानामसे प्रसिद्ध नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी मूर्त्ति धारण की ॥ २ ॥ वृषभध्वजावाले त्रिलोचनके एकादश रुद्र शङ्करको देखकर भयभीतहो महादेवजीमें लय होगये ॥ ३ ॥ अश्विनीकुमारके साथ

वीरभद्रमथादिश्यभद्रकालीचशंकरः ॥ विवेशक्रोधताम्राक्षोयज्ञवाटंत्रिशूलभृत् ॥ ५६ ॥ ततस्तुदेवप्रवरेजटाधरेत्रिशूलपाणौत्रिपुरांतकारिणि ॥ दक्षस्ययज्ञंविशतिक्षयंकरेजातोमुनीनांप्रवरोहिसाध्वसः ॥ ५७॥ इति श्रीवामनपुराणेपुलस्त्यनारदसंवादेहरललितोनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ जटाधरंहरिर्दृष्ट्वाक्रोधादारक्तलोचनम् ॥ तस्मात्स्थानादपाक्रम्यकुब्जाम्रेंतर्हितःस्थितः ॥ १॥ वसवोऽष्टौहरंदृष्ट्वाससृपुर्वेगतोमुने ॥ सातुजातासरिच्छ्रेष्ठासीतानामसरस्वती ॥ २ ॥ एकादशतथारुद्रास्त्रिनेत्रावृषकेतनाः ॥ कांदिशीकालयंजग्मुःसमभ्येत्याथशंकरम् ॥ ३ ॥ विश्वेऽश्विनौचसाध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः ॥ समासाद्यपुरोडाशंभक्षयंतोमहामुने ॥४॥ चंद्रःसमंऋक्षगणैर्निशांसमुपदर्शयन् ॥ उत्पत्यारुह्यगगनंस्वमधिष्ठानमास्थितः ॥५॥ कश्यपाद्याश्चऋषयोजपंतःशतरुद्रियम् ॥ पुष्पांजलिपुटाभूत्वाप्रणताःसंस्थितामुने ॥ ६ ॥ असकृद्दक्षदयितादृष्ट्वारुद्रंबलाधिकम् ॥ शक्रादीनांसुरेशानां कृपणंविललापह ॥ ७ ॥ ततःक्रोधाभिभूतेनशंकरेणमहात्मना ॥ तलप्रहारैरमराबहवोविनिपातिताः ॥ ८ ॥ पादप्रहारैरपरेत्रिशूलेनापरेमुने ॥ दृष्ट्वाग्निनातथैवान्येदेवाद्याःप्रलयंगताः ॥ ९ ॥

विश्वेदेव, साध्य, मरुद्, अनल और आदित्य यह सब वृषकेतनको देखकर पुरोडाशको भक्षण करते हुए शीघ्रतासे चलेगये ॥ ४ ॥ चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ रात्रिको दर्शाते हुए छलांगमार आकाशमें जाकर अपने स्थानको चलेगये ॥ ५ ॥ कश्यपादि ऋषि "नमस्तेरुद्रमन्यव" इत्यादि यजुर्वेदोक्त शतरुद्रीय नामक सूक्तका जप करते हुए हाथोंकी अंजुली बनाय फूलोंको ले हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए खड़े होगये॥ ६ ॥ राजा दक्षकी स्त्री इन्द्रादि देवताओंसे रुद्रको अत्यन्त बलवान् देखकर वारम्वार विलाप करने लगी ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त महात्मा शङ्करने क्रोधित होकर अपने थप्पडके प्रहारसे बहुत देवताओंको परास्त किया ॥ ८ ॥ और दूसरोंको चरणोंके आघातसे तथा अन्य देवताओंको त्रिशूलके प्रहारसे परास्त किया यह देखकर शेष देवता आदिक अग्निके साथ उनके दर्शनसेही प्रलय (अदर्शन)

को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ महेश्वर इसप्रकारसे सम्पूर्ण देवताओंका संहार करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, यह देखकर पूषा नामक देवताने भयङ्कर क्रोधके वशीभूत हो
अपनी दोनों भुजाओंको पसार उनपर आक्रमण किया ॥ १० ॥ भगवान् त्रिलोचनने उसे अपने सन्मुख आता हुआ देखकर अपने एक हाथसे उसकी दोनों
भुजाओंको पकडलिया ॥ ११ ॥ इसप्रकारसे दोनों भुजाओंके पकड़े जानेपर अंशुमान् (पूषा) के भी हाथोंकी उँगलियोंसे रुधिरकी धारा निकलने लगी॥१२॥
इसके उपरान्त पशुपति महादेवजी अत्यन्त क्रोधित हो अंशुमान् दिवाकरको इसप्रकार वारम्वार घुमाने लगे, जैसे सिंह मृगके बच्चेको घुमाता है ॥१३ ॥ हे नारद ! अत्य
न्त वेगसे घुमनेपर दिवाकरकी भुजायें छोटी होगईं और उनके स्नायुबन्धन छिन्न भिन्न होगये ॥ १४ ॥ तब महेश्वरने रुधिरसे सनाहुआ दिवाकरका शरीर देखा तो

ततःपूषाहरंवीक्ष्यविनिघ्नंतंसुरासुरान् ॥ क्रोधाद्बाहूप्रसार्याथप्रदुद्रावमहेश्वरम् ॥ १० ॥ तमापतंतंभगवान्संनिरीक्ष्यत्रिलोचनः ॥ बाहुभ्यांप्रतिजग्राहकरे
णैकेनशंकरः ॥ ११ ॥ कराभ्यांप्रगृहीतस्यशंभुनांशुमतोऽपिहि ॥ करांगुलिभ्योनिश्चेरुरसृग्धाराःसमंततः ॥ १२ ॥ततोवेगेनमहताअंशुमंतंदिवाकरम् ॥
भ्रामयामाससततंसिंहोमृगशिशुंयथा ॥ १३ ॥ भ्रामितस्यातिवेगेननारदांशुमतोपिहि ॥ भुजौह्रस्वत्वमापन्नौत्रुटितस्नायुबंधनौ ॥ १४ ॥ रुधिराप्लुतसर्वा
गमंशुमंतंमहेश्वरः ॥ सन्निरीक्ष्योत्ससर्जैनमन्यतोभिजगामह ॥१५॥ ततस्तुपूषाविहसन्दशनानिविदर्शयन् ॥ प्रोवाचैह्येहिकापालिन्पुनःपुनरपीश्वरम् ॥
॥ १६ ॥ ततःक्रोधाभिभूतेनपूष्णोवेगेनशंभुना ॥ मुष्टिनाऽऽहत्यदशनाःपातिताधरणीतले ॥ १७ ॥ भग्नदंतस्तथापूषारुधिराभिप्लुताननः ॥ पपातभु
विनिःसंज्ञोवज्राहतइवाचलः ॥१८॥ भगोऽपिवीक्ष्यपतितंपूषणंरुधिरोक्षितम् ॥ नेत्राभ्यांघोररूपाभ्यांवृषभध्वजमैक्षत ॥ १९ ॥ त्रिपुरघ्नस्ततःक्रुद्धस्तले
नाहत्यचक्षुषी ॥ निपातयामासभुविक्षोभयन्सर्वदेवताः ॥ २० ॥ ततोदिवाकराःसर्वेपुरस्कृत्यशतक्रतुम् ॥ मरुद्भिश्चहुताशैश्चभयाज्जग्मुर्दिशोदश ॥२१॥

उनको छोड़कर दूसरे स्थानको चलेगये ॥ १५ ॥ यह देखकर दिवाकर दाँत निकाल हँसकर कहने लगे कि, हे कपालिन् ! आओ ! आओ ! वारम्वार ऐसे वचन
महादेवजीसे कहे ॥ १६ ॥ तब शम्भुने क्रोधमें भरकर शीघ्रताके साथ मुष्टि (मुक्के) के प्रहारसे उनके दाँतोंको उखाड़कर पृथ्वीपर डालदिया ॥ १७॥ तब पूषा दाँतोंके
टूट जानेसे वज्रसे कटेहुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा उसका सम्पूर्ण शरीर रुधिरसे लिप्त और अचेत होगया ॥ १८ ॥ तब भगदेवता रुधिरसे लिप्त मुखमंडल
और पृथ्वीपर पड़े हुए पूषाको देखकर भयङ्कर नेत्रोंसे महादेवजीको देखनेलगे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त त्रिपुरारि महादेवजीने क्रोधित होकर चपत्तोंके प्रहारसे
उनके नेत्रोंपर आघातकर भगदेवताको पृथ्वीपर डालदिया यह देखकर सम्पूर्ण देवता अत्यन्त क्षोभित हुए ॥ २० ॥ तब आदित्यगण शतक्रतुको आगेकर अनल

और मरुद्गणोंके साथ मिलकर भयसे दशों दिशाओंको चलेगये ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण देवताओंके चले जानेपर प्रह्लादादि दैत्येन्द्र महेश्वरको नमस्कार करके हाथ जोड़कर खड़े हुए ॥ २२ ॥ इस समय महात्मा शंकर क्रोधमें भरकर सुरासुर संभीको दग्ध करनेके निमित्त उस यज्ञभूमिको देखने लगे ॥ २३ ॥ ऐसी अवस्थामें उनको देखकर सम्पूर्ण वीरोंमेंसे कोई तो भयसे जाकर छिपगया और कोई प्रणाम करने लगा, कोई भागने लगा और कोई २ यमराजके स्थानको गये॥ ॥ २४ ॥ तब यज्ञकी तीनों अग्नि महादेवजीको देखने लगीं, उस समय त्रिलोचन महादेवजीका दर्शन करतेही यज्ञमें स्थित सम्पूर्ण अग्नि उसी समय भस्मीभूत होगई ॥ २५ ॥ अग्निके नाश होतेही यज्ञभी दिव्य देह मृगकी मूर्त्ति धारणकर दक्षिणाके साथ व्याकुलहो आकाशको चलागया ॥ २६ ॥ तब कालरूपी महेश्वर धनुषको खैंचकर उसपर पाशुपत शरको धारणकर शीघ्रताके साथ उसका अनुसरण करने लगे ॥ २७ ॥ उस समय उन्होंने अपने शरीरको दो अंशोंमें विभक्त किया, एक अंशसे तो यज्ञभूमिमें स्थित रहे इसी अंशका नाम जटाधर हुआ और दूसरे अंशसे आकाशमें स्थित हुए इस अंशका नाम कालरूपी प्रसिद्ध हुआ ॥ २८ ॥ नारदजी बोले-कि, आपने शम्भुको गगनमंडलविहारी देहार्द्धको कालरूपी कहकर व्याख्या की सो इस स्वरूपका लक्षण क्या है उसको कृपा करके कहिये ॥ २९ ॥ पुलस्त्यजी बोले- कि, मैं कालरूपी महेश्वरका स्वरूप वर्णन करूंगा, हे मुनिश्रेष्ठ ! उन्होंने सब लोकोंके हितकी कामनासे इस कालरूपी मूर्तिसे आकाश व्याप्त किया ॥ ३० ॥ जहाँ अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाका एक अंश है, वही मंगलका अधिष्ठान क्षेत्र मेषराशि इन कालरूपीका मस्तक है॥ ॥३१॥ इसीप्रकारसे कृत्तिकाके तीनों चरण, रोहिणी और मृगशिरका पूर्वार्द्ध जिसमें प्रतिष्ठित है, सो वही वृषराशि शुक्राचार्यका स्थान इन कालरूपीका मुख है३२॥

प्रतियातेषुदेवेषुप्रह्लादाद्यादितीश्वराः ॥ नमस्कृत्यततःसर्वैतस्थुःप्रांजलयोमुने ॥ २२ ॥ ततस्तंयज्ञवाटंतुशंकरोघोरचक्षुषा ॥ ददर्शदग्धुंकोपेनसर्वांश्चैवसुरासुरान् ॥ २३ ॥ ततोनिलिल्यिरेवीराःप्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा ॥ भयादन्येहरंदृष्ट्वागतावैवस्वतक्षयम् ॥ २४ ॥ ततोऽग्नयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसमंसमवैक्षत ॥ दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेणभस्मीभूताभवन्क्षणात् ॥ २५ ॥ अग्नौप्रणष्टेयज्ञोपिभूत्वादिव्यवपुर्मृगः ॥ दुद्रावविक्लवगतिर्दक्षिणासहितोंऽबरे ॥ २६ ॥ तमेवानुससारेशश्चापमानम्यवेगवान् ॥ शरंपाशुपतंकृत्वाकालरूपीमहेश्वरः ॥२७॥ अर्द्धेनयज्ञवाटान्तेजटाधरइतिश्रुतः ॥ अर्द्धेनगगनेशर्वःकालरूपीचकथ्यते ॥२८॥ नारद उवाच ॥ कालरूपीत्वयाख्यातःशंभुर्गगनगोचरः ॥ लक्षणंचस्वरूपं च सर्वंव्याख्यातुमर्हसि ॥ २९ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ स्वरूपंत्रिपुरघ्नस्यवदिष्येकालरूपिणः ॥ येनांबरंमुनिश्रेष्ठव्याप्तंलोकहितेप्सुना ॥ ३० ॥ यत्राश्विनीचभरणीकृत्तिकायास्तथांशकः ॥ मेषोराशिःकुजक्षेत्रंतच्छिरःकालरूपिणः ॥३१॥ आग्नेयांशास्त्रयोब्रह्मन्प्राजापत्यंकवेर्गृहम् ॥ सौम्यार्द्धंवृषनामेदंवदनंपरिकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥

मृगार्धमार्द्राऽदित्यांशास्त्रयःसौम्यगृहंत्विदम् ॥ मिथुनंभुजयोस्तस्यगगनस्थस्यशूलिनः ॥ ३३ ॥ आदित्यांशश्चपुष्यंचआश्लेषाशशिनोगृहम् ॥ राशिः
कर्कटकोनामपार्श्वेमखविनाशिनः ॥३४॥ पित्र्यर्क्षभगदैवत्यमुत्तरांशश्चकेसरी ॥ सूर्यक्षेत्रंविभोर्ब्रह्मन्हृदयंपरिगीयते ॥३५॥ उत्तरांशास्त्रयःपाणिश्चित्रार्द्धं
कन्यकात्विदम् ॥ सोमपुत्रस्यसद्मैतद्द्वितीयंजठरंविभोः ॥ ३६ ॥ चित्रांशद्वितयंस्वातिर्विशाखायांशकत्रयम् ॥ द्वितीयंशुक्रसदनंतुलानाभिरुदाहृता ॥
॥ ३७ ॥ विशाखांशमनुराधाज्येष्ठाभौमगृहंत्विदम् ॥ द्वितीयंवृश्चिकोराशिर्मेढ्रंकालस्वरूपिणः ॥ ३८ ॥ मूलंपूर्वोत्तरांशश्चदेवाचार्यगृहंधनुः ॥ ऊर्वोर्यु
गलमीशस्यअपरार्द्धंप्रगीयते ॥३९॥ उत्तरांशास्त्रयश्चर्क्षंश्रवणंमकरोमुने ॥ धनिष्ठार्द्धंशनिक्षेत्रंजानुनीपरिकीर्त्तिते ॥ ४० ॥ धनिष्ठार्धंशतभिषाप्रोष्ठपादां
शकत्रयम् ॥ सौरेःसद्मापरमिदंकुंभोजंघेचविश्रुते ॥ ४१ ॥ प्रोष्ठपादांशमेकंतुउत्तरारेवतीतथा ॥ द्वितीयंजीवसदनंमीनस्तौचरणावुभौ ॥ ४२ ॥ एवं
कृत्वाकालरूपंत्रिनेत्रोयज्ञंक्रोधान्मार्गणैराजघान ॥ विद्धश्चासौवेदनाबुद्धिमुक्तःखेसंतस्थौताराकाभिश्चितांगः ॥ ४३ ॥

मृगशिरका उत्तरार्द्ध, आर्द्रा और पुनर्वसुके तीनों पाद जो मिथुन राशि चन्द्रात्मज बुधका अधिष्ठान क्षेत्र है सो यही इन कालरूपीकी भुजायें हैं ॥ ३३ ॥ पुनर्वसुका शेष अंश, पुष्य और आश्लेषा इन तीनों नक्षत्रोंमें विराजमान कर्क राशि चन्द्रमाका गृह है सो यही उनके दोनों पार्श्व हैं ॥ ३४ ॥ मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके प्रथमचरणमें विद्यमान जो सिंहराशि सूर्यका गृह है सो इन कालरूपी शङ्करका हृदय है ॥ ३५ ॥ हेब्रह्मन् ! उत्तराफाल्गुनीके तीनों चरण, हस्त और चित्राका पूर्वार्द्ध कन्याराशि नामसे विख्यात जो सोमात्मजका दूसरा अधिष्ठान क्षेत्र है वही इन कालरूपी महेश्वरका उदर है ॥ ३६ ॥ चित्राका उत्तरार्द्ध, स्वाति और विशाखाके तीन चरणमें विराजमान जो तुलाराशि शुक्रका दूसरा स्थान है वही इन कालरूपी महादेवजीकी नाभि है ॥ ३७ ॥ विशाखाका अन्तिम चरण, अनुराधा और ज्येष्ठामें जो वृश्चिक राशि मंगलका दूसरा गृह है, वही इन कालरूपी महादेवजीका मेढ्र है ॥ ३८ ॥ मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ाके प्रथम चरणमें धनराशि जो बृहस्पतिजीका स्थानहै सो वही महेश्वरजीके दोनों ऊरुहैं ॥ ३९ ॥ उत्तराषाढ़ाके तीनों चरण, श्रवण और धनिष्ठाके पूर्वार्द्धमें जो मकर राशि शनैश्चरका स्थान है वही इनकी दोनों जानु हैं ॥ ४० ॥ धनिष्ठाका उत्तरार्द्ध, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदाके तीन चरणोंमें जो कुम्भराशि शनैश्चरका दूसरा स्थान है वही महेश्वरकी जंघायें हैं ॥ ४१ ॥ पूर्वाभाद्रपदाका अन्तिम चरण, उत्तराभाद्रपदा और रेवती नक्षत्रमें विराजमान जो मीनराशि बृहस्पतिजीका दूसरा स्थान है सो वोही इन कालरूपी महादेवजीके दोनों चरण हैं ॥ ४२ ॥ त्रिलोचनने इसप्रकारसे कालरूपको धारणकर क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षासे यज्ञको दग्ध किया, तब यज्ञ

बाणोंसे विद्धहो वेदना बुद्धियुक्त और तारागणोंसे वेष्टित देह होकर आकाशमें रहने लगा ॥ ४३ ॥ नारदजी बोले-कि, हेब्रह्मन् ! आपने जो हमारे निकट बारह राशियोंका वर्णन किया सो उनके लक्षण और उनका स्वरूप विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ४४ ॥ पुलस्त्यजी बोले- कि, हेनारद ! मैं राशियोंका स्परूप आपके निकट कहता हूं, तुम श्रवण करो वह जिसप्रकारसे जिस स्थानमें जाकर वास करतीं हैं सो मैं सभी वर्णन करूंगा ॥ ४५ ॥ धान्य और रत्नादिके समूहमें और नवीन हरी दूबसे आच्छादित हुई पृथ्वीके चारोंओर यह सम्पूर्ण राशियें जाती हैं ॥ ४६ ॥ इनके बीचमें मेष राशिकी मेढ़ेकी समान मूर्त्ति है और प्रफुल्ल (विकसित कमल आदिक युक्त) सरोवरके किनारे और अजाविक धनादिमें सर्वदा चलती है ॥ ४७ ॥ वृष राशिका बैलके समान रूप है, और बैलके रूपसे गोकुलादिमें जाती है और किसानकी खेतीके आश्रयसे निवास करती है ॥ ४८ ॥ मिथुन राशिकी स्त्री पुरुषोंके समान मूर्त्ति है, इसके हाथमें वीणा और शय्यासन इसका परिगृह है और सर्वदा गीत, नृत्य और शिल्पियोंमें ॥ ४९ ॥ इसकी स्थिति है, नित्य क्रीड़ामें इसकी प्रीति और रमणियोंमेंही इसका विहार है, यह राशि द्वैधात्मक (दो स्वरूपवाली) है इसकारण मिथुन नामसे विख्यात और शुभदायक है॥ ५० ॥ कर्क राशि कुलीरकी समान आकृतिसे जलमें चलती है, इसके अतिरिक्त केदार वापी(बावड़ी) के तटमें और विविक्त देशोंमें वास करतीहै ॥ ५१ ॥ सिंहराशि पर्वत,वन, दुर्ग,कन्दरा भूमि, व्याधपल्ली, (व्याधोंके रहनेके स्थान)गह्वर और गुहाओंमें वास करती है॥ ५२॥ कन्या राशि व्रीहि अन्न और प्रदीप हाथमें लिये भावमें भरी स्त्रियोंके रतिस्थानमें चलती है और नड्वलसमूह जलदेशोंमें विहार करती है, इसकी आकृति कन्याके समानहै॥ ५३ ॥ हे नारद ! तराजूको हाथमें लेनेवाली तुलाराशि पुरुषरूपसे बाजार और दूकानोंमें विचरती है और नगर तथा शालाओंमें वास करती है ॥ ५४ ॥

नारदउवाच ॥ राशयःकथिताब्रह्मंस्त्वयाद्वादशवैमम ॥ तेषांविस्तरतोब्रूहिलक्षणानिस्वरूपतः ॥ ४४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ स्वरूपंतववक्ष्यामिराशीनां शृणुनारद ॥ यादृशायत्रसंचारायस्मिन्स्थानेवसंतिच ॥ ४५ ॥ संचरस्थानमेवास्यधान्यरत्नाकरादिषु ॥ नवशाड्वलसंछन्नवसुधायांचसर्वशः ॥ ४६ ॥ नित्यंचरतिफुल्लेषुसरसांपुलिनेषुच ॥ मेषःसमानमूर्त्तिश्चअजाविकधनादिषु ॥ ४७ ॥ वृषःसदृशरूपेषुचरतेगोकुलादिषु ॥ तस्याधिवासभूमिस्तुकृषीवलधराश्रयः ॥ ४८ ॥ स्त्रीपुंसयोःसमंरूपंशय्यासनपरिग्रहम् ॥ वीणावाद्यधृङ्मिथुनंगीतनर्त्तनशिल्पिषु ॥ ४९ ॥ स्थितंक्रीडारतिर्नित्यंविहारंध्वनिकस्यतु ॥ मिथुनंनामविख्यातंराशिर्द्वैधात्मकःशिवः ॥ ५० ॥ कर्किःकुलीरेणसमःसलिलस्थःप्रकीर्त्तितः ॥ केदारवापीपुलिनविविक्तावनिरेवच ॥ ॥ ५१ ॥ सिंहस्तुपर्वतारण्यदुर्गकंदरभूमिषु ॥ वसतेव्याधपल्लीषुगह्वरेषुगुहासुच ॥ ५२ ॥ व्रीहिप्रदीपिककराभावारूढाचकन्यका ॥ चरतेस्त्रीरतिस्थाने वसतेनड्वलेषुच ॥ ५३ ॥ तुलापाणिश्चपुरुषोवीथ्यापणविचारकः ॥ नगराध्वनिशालासुवसतेतत्रनारद ॥ ५४ ॥

विच्छूके समान आकृतिवाली वृश्चिक राशि छिद्र और बँबईमें विचरती है और विष, गोबर, कीड़े, सर्प, और पत्थर इनमें वास करती है ॥ ५५ ॥ धन राशि घोड़ेके समान जंघावाला प्रकाशित धनु हाथमें लिये कलेवरसे दीप्यमान अस्त्र और शस्त्रकर्ममें अत्यन्त ज्ञानी बल विक्रमवाला गज और रथादिमें स्थिति करताहै॥ ५६ ॥ मकर राशिका शरीर मृगके समान, कंधे बैलकी समान और नेत्र हाथीके समान है, इसका विचरण नदियोंमें और वास महोदधिमें है ॥ ५७ ॥ कुम्भराशि पुरुषके कन्धेपर एक खाली और एक भरा हुआ घड़ेको लिये द्यूतशालामें विचरण करती और शौण्डिकके गृहमें वास करती है ॥ ५८ ॥ मीन राशि दो मीनोंसे युक्त है तीर्थादि इसके घूमनेके स्थान हैं पवित्र देश और ब्राह्मणोंके वरमें यह वास करती है॥ ५९ ॥हेमहामुने ! आपके निकट सम्पूर्ण मेषादि राशियोंके लक्षण कहे,इस प्राचीन

श्वभ्रवल्मीकसंचारीवृश्चिकोवृश्चिकाकृतिः ॥ विषगोमयकीटादिपाषाणादिषुसंस्थितः ॥ ५५ ॥ धनुस्तुरंगजघनोदीप्यमानोधनुर्धरः ॥ वाजिशूरास्त्रविद्वीरःस्थायीगजरथादिषु ॥ ५६ ॥ मृगास्योमकरोनामवृषस्कंधेक्षणोगजः ॥ मकरोऽसौनदीचारीवसतेचमहोदधौ ॥ ५७ ॥ रिक्तकुंभश्चपुरुषःस्कंधचारी जलाप्लुतः ॥ द्यूतशालाचरःकुंभःस्थायीशौंडिकसद्मसु ॥ ५८ ॥ मीनद्वयमथासक्तंमीनस्तीर्थाब्धिसंचरः ॥ वसतेपुण्यदेशेषुदेवब्राह्मणसद्मसु ॥ ५९ ॥ लक्षणागदितास्तुभ्यंमेषादीनांमहामुने ॥ नकस्यचित्त्वयाख्येयंगुह्यमेतत्पुरातनम् ॥ ६० ॥ एतन्मयातेकथितंसुरर्षेयथात्रिनेत्रःप्रममंथयज्ञम् ॥ पुण्यंपुराणंपरमंपवित्रमाख्यातवान्पापहरंशिवंच ॥ ६१ ॥ इति श्रीवामनपुराणेहरललितोनामपंचमोध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ बह्वृचोब्राह्मणो योसौधर्मोदिव्यवपुःसदा ॥ तस्यभार्यात्वहिंसाचतस्यामजनयत्सुतान् ॥ १ ॥ हरिंकृष्णंचदेवर्षेनरनारायणौतथा ॥ योगाभ्यासरतौनित्यंहरिकृष्णौ बभूवतुः ॥ २ ॥ नरनारायणौचैवजगतोहितकाम्यया ॥ तप्येतांचतपःसौम्यौपुराणऋषिसत्तमौ ॥ ३ ॥

आख्यानको गुप्त रखना योग्य है किसीके निकटभी इसको प्रकाश न करना ॥ ६० ॥ हे देवर्षे ! त्रिलोचन भगवान्ने इसप्रकारसे यज्ञको विध्वंस कियाथा. सो मैं ने आपके निकट वर्णन किया. यह आख्यान परमपवित्र और अत्यन्त प्राचीन परमार्थस्वरूप है, यह जैसा पुण्य पवित्र और कल्याणरूप है उसी प्रकारसे सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला है, उसीको मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ६१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां हरललितो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले–कि, हे नारद ! वह दिव्य शरीरधारी वह्वृच ब्राह्मणरूप धर्म हुआ. उससे अहिंसा नामकी भार्यामें चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ हे देवर्षे उनका नाम हरि, कृष्ण, नर और नारायण है, उनमें हरि और श्रीकृष्ण यह दोनोंही सर्वदा योगाभ्यासमें प्रवृत्त हुए ॥ २ ॥ और नर नारायण संसारके हितकी इच्छासे

तपस्या करने लगे, यह दोनोंही सौम्य मूर्त्ति और प्राचीन ऋषिसत्तम थे ॥ ३ ॥ इन दोनोंने हिमालयमें जाकर बदरिकाश्रम तीर्थमें भागरिथीके पवित्र तटका आश्रय
कर तपस्याके प्रसङ्गमें परब्रह्मकी स्तुतिका प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥ हे ब्रंह्मन् ! उन दोनोंकी तपस्यासे स्थावर जंगमात्मक यह सम्पूर्ण संसार अत्यन्त क्षुभित और सन्तप्त होगया
॥ ५ ॥ इन्द्रने उनके प्रसंगसे अत्यन्त क्षोभित होकर उनके क्षोभको सम्पादन करनेकी इच्छासे अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भाको उनके आश्रममें भेजा ॥ ६ ॥ अत्यन्त
दुर्धर्ष कन्दर्प आमकी मंजरीरूप महा आयुधकी सहायता और सहायक वसंतके साथ मिलकर शीघ्रही रम्भाके साथ कार्य साधनके निमित्त आकर स्थित हुए ॥ ७ ॥
इसके उपरान्त वसंत काम और रम्भा यह बदरिकाश्रममें जाकर अपनी इच्छाके अनुसार विविध भाँतिकी क्रीडा करने लगे ॥ ८ ॥ इस समय वसंतके समागमसे

प्रालेयाद्रिंसमागम्यतीर्थेंबदरिकाश्रमे ॥ गृणंतौतत्परंब्रह्मगंगायाविपुलेतटे ॥ ४ ॥ नरनारायणाभ्यांचजगदेतच्चराचरम् ॥ तापितंतपसाब्रह्मन्संक्षोभं
परमंययौ ॥ ५ ॥ संक्षुब्धस्तपसाताभ्यांक्षोभणायशतक्रतुः ॥ रंभामप्सरसांश्रेष्ठांप्रैषयत्समहाश्रमम् ॥ ६ ॥ कंदर्पश्चसुदुर्धर्षश्चूतांकुरमहायुधः ॥ समं
सहचरेणैववसंतेनाशुसंगतः ॥ ७ ॥ ततोमाधवकंदर्पौसाचैवाप्सरसांवरा ॥ बदर्याश्रममागम्यविचिक्रीडुर्यथेच्छया ॥ ८ ॥ ततोवसंतेसंप्राप्तेकिंशुका
ज्वलनप्रभाः ॥ निष्पत्राःसततंरेजुःशोभयंतोधरातलम् ॥ ९ ॥ शिशिरंनाममातंगंविदार्यनखरैरिव ॥ वसंतकेसरीप्राप्तःपलाशकुसुमैर्मुने ॥ १० ॥
मयातुषारैश्चकरीनिर्जितःस्वेनतेजसा ॥ तमेवमहसल्लोध्रैर्वसंतःकुंदकुड्मलैः ॥ ११ ॥ वनानिकार्णिकाराणांपुष्पितानिविरेजिरे ॥ यथानरेंद्रपत्राणिकन
काभरणानिवै ॥ १२ ॥ तेषामनुतथानीपाःकिंकराइवरेजिरे ॥ स्वामिसंलब्धसंमानाभृत्याराजसुताइव ॥ १३ ॥ रक्ताशोकवनाभांतिपुष्पिताःसहसो
ज्ज्वलाः ॥ भृत्यावसंतनृपतेःसंग्रामासृक्क्षताइव ॥ १४ ॥

अग्निके समान टेसूके समस्त वृक्ष पत्रहीन होकर पृथ्वीको शोभायमान करते हुए विराजमान होने लगे ॥ ९ ॥ हेमुने ! वसंतरूपी सिंहका पलाशकुसुमरूपी नखके
प्रहारसे शिशिररूपी मातंगको विदारित करके वहाँ प्रकट हुआ ॥ १० ॥ मैंने तुषाररूप हाथीको जीत लियाथा, यह कहकर वसंत लोध्र और कुन्द मुकुलके छलसे
हँसने लगा ॥ ११ ॥ कर्णिकाके पुष्पोंका वन परम्परासे विकसित पुष्पोंसे भूषित होकर अत्यन्त शोभायमान हुआ. उसे देखकर ऐसा बोध होताथा कि, मानों राजा
ओंकी सवारीके गजादिकोंने सम्पूर्ण आभरणोंसे शोभा पाई है ॥ १२ ॥ उसके पीछे सम्पूर्ण नीप (कदम्ब) किंकरकी समान अथवा स्वामीकेद्वारा सन्मानित सेवक जैसे
राजपुत्रोंके प्रति विराजमान होते हैं ॥ १३ ॥ रक्त अशोकसे सम्पूर्ण वन सहसा कुसुमित और प्रकाशित होगया और देखनेसे ऐसा विदित होताथा कि, वसंतराजके

सेवक मानों संग्राम करके रुधिरकी धारासे भीगे हुए हैं ॥ १४ ॥ अनेक वृक्षोंकी मंजरी उस गहनवनमें ऐसी प्रकाशित हुई है कि, जैसे मित्रोंके समागमसे पुलकित शरीरहो सज्जनपुरुष रोमाञ्चित होते हैं ॥१५॥ सम्पूर्ण नदियोंके किनारेमें वेतस लता अपनी मंजरीजालको विस्तारकर शोभायमान हुईं तब ऐसा बोध होताथा कि, मानों वह अपनी उँगलीके सङ्केतसे बताकर यही कहनेको उत्सुक हुई हैं कि, हमारी समान कौनसा वृक्ष है ? ॥१६॥ हे देवर्षे ! इस प्रकारसे रक्त अशोक रूपकर, पलाशरूप पद, नीलअशोकरूप केशकलाप श्यामरङ्ग प्रफुल्लित कमलरूप मुखवाली ॥ १७ ॥ नीलकमलरूपी नेत्र बेलके समान स्तन, विकसित कुंदके समान दंतपंक्ति, मंजरीरूप हाथसे शोभित॥ १८॥ दुपहरियारूप अधर, श्वेतसेनौरिरूप नखके अग्रभाग, पुंस्कोकिलके स्वरकी समान स्वर, कङ्कोलरूप वस्त्रवाली॥ १९॥ मयूरोंके समान केशसमूह, सारसके

भृंगवृंदापिंजरिताराजंतेगहनेवने ॥ पुलकाभिवृतायद्वत्सज्जनाःसुहृदागमे ॥ १५ ॥ मंजरीभिर्विराजंतेनदीकूलेषुवेतसाः ॥ वक्तुकामाइवांगुल्याकोऽस्मा
कंसदृशोनगः ॥ १६ ॥ रक्ताशोककरातन्वीदेवर्षेकिंशुकांघ्रिका ॥ नीलाशोककचाश्यामाविकासिकमलानना ॥ १७ ॥ नीलेंदीवरनेत्राचब्रह्मन्बिल्वफल
स्तनी ॥ प्रोत्फुल्लकुंददशनामंजरीकरशोभिता ॥ १८ ॥ बंधुजीवाधराशुभ्रसिंदुवारनखांकुरा ॥ पुंस्कोकिलस्वनादिव्याकंकोलवसनाशुभा ॥ १९ ॥
बर्हिवृंदकलापाचसारसस्वरनूपुरा ॥ प्राग्वंशरसनाब्रह्मन्मत्तहंसगतिस्तथा ॥ २० ॥ पुत्रजीवांशुकासंगरोमराजिविराजिता ॥ वसंतलक्ष्मीःसंप्राप्तात
स्मिन्बदरिकाश्रमे ॥ २१ ॥ ततोनारायणोदृष्ट्वाआश्रमस्यानवद्यताम् ॥ समीक्ष्यसदिशःसर्वास्ततोऽनंगमपश्यत ॥ २२ ॥ नारदउवाच ॥ कोऽसावनं
गोब्रह्मर्षेतस्मिन्बदरिकाश्रमे ॥ यंददर्शजगन्नाथोदेवोनारायणोऽव्ययः ॥ २३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ कंदर्पोहर्षतनयोयोऽसौकामोनिगद्यते ॥ सशंकरेणसं
दग्धोह्यनंगत्वमुपागतः ॥२४॥ नारद उवाच ॥ किमर्थंकामदेवोसौदेवदेवेनशंभुना ॥ दग्धश्चकारणेकस्मिन्नेतद्व्याख्यातुमर्हसि ॥२५॥ पुलस्त्य उवाच ॥
यदादक्षसुताब्रह्मन्सतीयातायमक्षयम् ॥ विनाश्यदक्षयज्ञंतंविचचारात्रिलोचनः ॥ २६ ॥

स्वरकी समान नूपुर, प्राग्वंशरूप रसना, मत्तहंसके समान चालवाली ॥ २० ॥ इन सबसे भूषित जियापोता (दुपहरिया) के समान ओढ़नीको ओढ़े रोमराजिसे विराजित वसन्तलक्ष्मी उस बदरिकाश्रममें प्रकट हुई ॥ २१ ॥ उस समय नारायणने आश्रममें ऐसी सुन्दरताको देख सब ओर दृष्टि चलाकर अनङ्गको देखा ॥ २२ ॥ नारदजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अविनाशी स्वरूप देव जगन्नाथ नारायणने जिसे बदरिकाश्रममें देखाथा वह अनङ्ग कौन था ? ॥ २३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, कन्दर्प हर्षका पुत्र है, इसीको काम कहते हैं, यही कन्दर्प शङ्करके नेत्रोंसे दग्ध होकर अनङ्गत्वको प्राप्त हुआथा ॥ २४ ॥ नारदजी बोले कि, हे देवाधिदेव ! शम्भुने किस अभिप्राय और किसकारणसे कामदेवको दग्ध कियाथा सो कृपाकर कहिये ॥२५ ॥ पुलस्त्यजी बोले—कि, हे ब्रह्मन् ! जब दक्षकी कन्या सतीके प्राण

त्यागनेपर महादेवजी दक्षके यज्ञको विध्वंसकर विचरने लगे ॥ २६ ॥ तब कुसुमायुध कन्दर्पने यह देखकर उन्माद नामक अस्त्रसे पत्नीहीन महादेवजीको ताड़ित किया ॥ २७ ॥ महादेवजी उन्माद शरसे ताडित हो शीघ्रही उन्मत्त होकर वन और सरोवरोंमें विचरने लगे ॥ २८ ॥ इस अवस्थामें वह सतीकी मूर्तिका स्मरण करते वह बाणसे विद्ध हुए हाथीके समान किसी प्रकारसे शान्ति प्राप्त न करसके ॥२९ ॥ हे मुने ! इसके उपरान्त महात्मा शङ्कर कालिन्दी (यमुनाजी) में धस गये, उनके उसमें गोता मारनेसे उस नदीका जल दग्ध हो कृष्णवर्णका होगया ॥ ३० ॥ उसीसमयसे कालिन्दीका जल भ्रमर (भौंरे) और अंजनके समान होगया, वह पुण्य तीर्थभूता नदी पृथिवीरूप स्त्रीके केशपाश (काले केश समूह) के समान बहने लगी ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त पवित्र नदी, पुण्य सरोवर, छोटी नदी, रमणीक

ततोवृषध्वजंदृष्ट्वाकंदर्पःकुसुमायुधः ॥ अपत्नीकंतदास्त्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत् ॥ २७ ॥ ततोहरःशरेणाथउन्मादेनाशुताडितः ॥ विचचारततोन्मत्तः
काननानिसरांसिच ॥ २८ ॥ स्मरन्सतींमहादेवस्तथोन्मादेनताडितः ॥ नशर्मलेभेदेवर्षेबाणविद्धइवद्विपः ॥२९॥ ततःपपातदेवेशःकालिंदीसरितंमुने ॥
निमग्नेशंकरेचापोदग्धाःकृष्णत्वमागताः ॥ ३० ॥ तदाप्रभृतिकालिंद्याभृंगांजननिभंजलम् ॥ आस्यंदत्पुण्यतीर्थासाकेशपाशइवावनेः ॥ ३१ ॥ ततो
नदीषुपुण्यासुसरस्सुचसरित्सुच ॥ पुलिनेषुचरम्येषुवापीषुनलिनीषुच ॥ ३२ ॥ पर्वतेषुचरम्येषुकाननेषुचसानुषु ॥ विचरन्स्वेच्छयानैवशर्मलेभेमहे
श्वरः ॥ ३३ ॥ क्षणंगायतिदेवर्षेक्षणंरोदितिशंकरः ॥ क्षणंध्यायतितन्वंगींदक्षकन्यांमनोरमाम् ॥ ३४ ॥ ध्यात्वाक्षणंस्वपितिचक्षणंस्वप्नायतेहरः ॥
स्वप्नेतथेदंगदतिदृष्ट्वादक्षस्यकन्यकाम् ॥ ३५ ॥ निर्घृणेतिष्ठकिंमूढेत्यजसेमामनिंदिते ॥ मुग्धेत्वयाविरहितोदग्धोस्मिमदनाग्निना ॥ ३६ ॥ सत्यंप्रकुपि
तादेविमाकोपंकुरुसुंदरि ॥ पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि ॥ ३७ ॥

नदीके किनारे, बावडी, नलिनी ॥ ३२ ॥ पर्वत और मनोहर वन इन सभीमें इच्छानुसार महादेवजी विचरने लगे, परन्तु किसी प्रकारसेभी शान्ति प्राप्त करनेमें समर्थ न हुए ॥ ३३ ॥ हेदेवर्षे ! वह उस अवस्थामें क्षणमें गाने लगते, क्षणमें रुदन करने लगते और क्षणमेंही उस मनोहारिणी तन्वङ्गी दाक्षायणीका ध्यान करने लगतेथे ॥ ॥ ३४ ॥ फिर ध्यानकरतेही क्षणकालको शयनकरते और क्षणकालमेंही स्वप्न देखने लगतेथे उस स्वप्नकी अवस्थामें दक्षकी पुत्रीका दर्शन कर यह कहतेथे ॥ ३५ ॥ कि, हेनिर्दये ! खड़ी रहो, हेमूढे ! किसकारणसे अपराधरहित मेरा त्याग करती हो, हे अनिन्दिते ! हेमुग्धे ! तुम्हारे विरहसे मैं मदनानलमें दग्ध हो रहाहूं ॥ ३६ ॥ हेदेवि ! तुम क्या सत्यही मेरे ऊपर कुपित हुईहो ? हेसुन्दरि ! इसप्रकारसे अवरुष्ट न होना मैं तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करताहूं मुझसे तुमको सम्भाषण करना

उचित है ॥ ३७ ॥ हे प्रिये ! मैं सर्वदा तुम्हैं देखताहूं, सुनताहूं, स्पर्श करताहूं और सर्वदा तुम्हारा वंदन करता हुआ आलिङ्गन करताहूं तौभी तुम किसकारणसे नहीं बोलतीहो ॥ ३८ ॥ विलाप करते हुए लोकको देख और विशेषकर पतिको देखकर किसको दया नहीं आती परन्तु हे बाले ! तुम अत्यन्त दयाहीन होगई हो ॥ ३९ ॥ हेकृशोदरि ! तुमने प्रथम मुझसे कहाथा कि, तुम्हारे विना मैं जीवन धारण नहीं कर सकती, सो इतने दिनोंमें आज इसवार्ताको तुमने असत्य कर दिया ॥ ४० ॥ हेसुलोचने ! आओ ? आओ ? मैं कामानलमें सन्तापित होरहाहूं; तुम मुझे आकर आलिङ्गन करो अन्यथा ताप शान्त न होगा. हे प्रिये ! यह मैं सत्यही शपथ करके कहताहूं ॥ ४१ ॥ इसप्रकारसे वह विलाप कर स्वप्नके अन्तमें जागकर वनके बीच इसप्रकार मुक्तकंठसे वारम्वार ऊँचे स्वरसे रोदन करने लगे

श्रूयसेदृश्यसेनित्यंस्पृश्यसेवंद्यसेप्रिये ॥ आलिंग्यसेचसततंकिमर्थंनाभिभाषसे ॥ ३८॥ विलपंतंजनं दृष्ट्वाकृपाकस्यनजायते ॥ विशेषतःपतिंबाले ननुत्वमतिनिर्घृणा ॥ ३९ ॥ त्वयोक्तानिवचांस्येवंपूर्वममकृशोदरि ॥ त्वयाविनानजीवेयंतदसत्यंत्वयाकृतम् ॥ ४० ॥ एह्येहिकामसंतप्तंपरिष्वजसुलोचने ॥ नान्यथानश्यतेतापःसत्येनापि शपेप्रिये ॥ ४१ ॥ इत्थंविलप्यस्वप्नांतेप्रतिबुद्धस्तुतत्क्षणात् ॥ उत्कूजतितथारण्येमुक्तकंठंपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ तंकूजमानंविलपंतमारात्समीक्ष्यकामोवृषकेतनंहि ॥ विव्याधचापंतरसाविनाम्यसंतापनाम्नासुशरेणभूयः ॥ ४३ ॥ संतापनास्त्रेणतदासविद्धोभूयःससंततरोबभूव ॥ संतापयंश्चापिजगत्समस्तंफूत्कृत्यफूत्कृत्यविवाशतेस्म ॥ ४४ ॥ तंचापिभूयोमदनोजघानाविजृंभणास्त्रेणततोविजृंभे ॥ ततोभृशंकामशरैर्वितुन्नोविजृंभमाणःपरितोभ्रमंश्च ॥ ४५ ॥ ददर्शयक्षाधिपतेस्तनूजंपांचालिकंनामजगत्प्रधानम् ॥ दृष्ट्वात्रिनेत्रोधनदस्यपुत्रंपार्श्वंसमभ्येत्यवचोबभाषे ॥ भ्रातृव्यवक्ष्यामिवचोयदद्यतत्त्वंकुरुष्वामितविक्रमोसि ॥ ४६ ॥ पांचालिक उवाच ॥ यन्नाथमांवक्ष्यसितत्करिष्येसुदुष्करंयद्यपिदेवसंघैः ॥ आज्ञापयस्वातुलवीर्यशंभोदासोस्मितेभक्तियुतस्तथेश ॥ ४७ ॥

॥ ४२ ॥ कामने दूरसेही महादेवजीको विलाप और रोदन करते हुए देखकर शीघ्रही बाणको ग्रहणकर सन्तापनामक अस्त्रसे उनको विद्ध किया ॥ ४३ ॥ वह सन्ताप नामक अस्त्रसे विद्धहो फिर अत्यन्तही सन्तापित होगये और सम्पूर्ण संसारको सन्तापित करते वारम्वार फुंकारैं छोड़ते हुए ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगे ॥ ॥ ४४ ॥ मदनने फिर उनको विजृम्भण नामक अस्त्रसे आहत किया, तब वह विजृम्भित होगये. उस समय कामशरसे अत्यन्त वितुन्न और विजृम्भमान हो इधर उधर भ्रमण करने लगे ॥ ४५ ॥ इसी अवस्थामें यक्षपतिके पुत्र संसारमें प्रधान पांचालिको देखा, त्रिलोचन भगवान् धनदके पुत्रको देखकर उसके पार्श्वमें जाकर बोले कि, हे भ्रातृव्य ! तुम्हारे विक्रमकी सीमा नहीं है, आज मैं जो कहताहूं सो तुम्हैं करना होगा ॥ ४६ ॥ पांचालिने कहा कि, आप सबकी रक्षा करने वाले हैं !

जो कहोगे, वह देवताओंकोभी दुष्कर क्यौंनहो परन्तु मैं अवश्यही करूंगा, हे अतुलवीर्य शम्भो ! आज्ञा कीजिये मुझे क्या करना होगा, मैं आपका दास और सर्वदा आपकी भक्ति करताहूं ॥ ४७ ॥ शिवजी बोले कि, सम्पूर्ण लोकोंको वर देनेवाली अम्बिकाके नष्ट होनेसे मेरा शरीर मदनानलसे अत्यन्त दग्ध होगया है, पर उसके ऊपर कामदेवके विजृम्भण और उन्माद नामक बाणसे विधकर किसी प्रकारसेभी धीरजको धारण, मनमें प्रीतिका अनुभव और सुख प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥ हे पुत्र ! एक तुम्हारे अतिरिक्त और कोई पुरुषभी कामसे प्रयोजित विजृम्भण, सन्तापन और उन्माद नामक उग्र अस्त्रोंको धारण करनेमें समर्थ नहीं है इसकारण तुम इनको ग्रहण करो ॥ ४९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, वृषध्वजके ऐसा कहनेपर पांचालिने विजृम्भणादि सम्पूर्ण अस्त्रोंका उसी समय प्रतिग्रह कर दिया तब आशुतोष त्रिशूली भगवान्को शीघ्रही सन्तोष प्राप्त हुआ. इसके उपरान्त वह सन्तोषित होकर इसप्रकारके वचन कहने लगे ॥ ५० ॥ हे वत्स ! जिस कारण तुमने इन दुर्धर विजृम्भणादि अस्त्रोंका प्रतिग्रह किया इसी कारणसे मैं तुमको पूजनके अर्थ सम्पूर्ण लोकोंमें दास्यकारी वर दूंगा ॥ ५१ ॥ चैत्रमासमें जो मनुष्य भक्तिके साथ तुम्हारा दर्शन, स्पर्श वा पूजन करैंगे वह वृद्ध हो या बालकहो, युवाहो वा स्त्रीहो वह सब उसी समय उन्माद युक्त होजाँयगे ॥ ५२ ॥ और यत्नके साथ तुम्हारे सन्मुख नृत्य, गान और आमोदादि करके विविधभाँतिके बाजे बजावैंगे और हास्ययुक्त वचनोंसे अभिरक्त तथा योगयुक्त होंगे ॥ ५३ ॥ तुम मेरेही नामसे पूजित और पांचालिकेश कहकर पृथ्वीमें विख्यात होंगे, अधिक क्या कहूं तुम मेरेही प्रसादसे सबको वर दोगे और सबके पूज्यातिपूज्य होंगे, इस समय जहाँ इच्छाहो वहाँ जाओ ॥ ५४ ॥ वह यक्ष महेश्वरके ऐसे वचनोंको सुन उसी समय सब देशोंमें गमन करता हुआ कालंजरके उत्तरमें और हिमालयके दक्षिणमें जो परमपवित्र देश

ईश्वर उवाच ॥ नाशंगतायांवरदांबिकायां कामाग्निनाप्लुष्टसुविग्रहोस्मि ॥ विजृंभणोन्मादशरैर्विभिन्नोधृतिंनविंदामिरतिंसुखंच ॥ ४८ ॥ विजृंभणंपुत्र तथैवतापमुन्मादमुग्रंमदनप्रणुन्नम् ॥ नान्यःपुमान्धारयितुंहिशक्तोमुक्त्वाभवंतंहिततःप्रतीच्छ ॥ ४९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्येवमुक्तोवृषभध्वजेनयक्षः प्रतीच्छन्सविजृंभणादीन् ॥ तोषंजगामाशुततस्त्रिशूलीतुष्टस्तदैवंवचनंबभाषे ॥ ५०॥ हर उवाच ॥ यस्मात्त्वयापुत्रसुदुर्धराणिविजृंभणादीनिप्रतीच्छितानि ॥ तस्माद्वरंत्वांप्रतिपूजनायदास्यामिलोकस्यचहास्यकारी ॥ ५१ ॥ यस्त्वांयदापश्यतिचैत्रमासेस्पृशेन्नरोवार्चयतेचभक्त्या ॥ वृद्धोऽथबालोऽथयुवाथयोषित्सर्वेतदोन्मादधराभवंति ॥ ५२ ॥ गायंतिनृत्यंतिरमंतियक्षवाद्यानियत्नादपिवादयंति ॥ तवाग्रतोहास्यवचोभिरक्ताभवंतितेयोगयुतास्तुतेस्युः ॥ ॥ ५३ ॥ ममैवनाम्नाभवितासिपूज्यःपांचालिकेशःप्रथितःपृथिव्याम् ॥ ममप्रसादाद्वरदोनराणांभविष्यसेपूज्यतमोभिगच्छ ॥ ५४ ॥ इत्येवमुक्तोविभुना सयक्षोजगामदेशान्सहसैवसर्वान् ॥ कालंजरस्योत्तरतःसुपुण्योदेशोहिमाद्रेरपिदक्षिणस्थः ॥ ५५ ॥

है वहाँ स्थित हुआ ॥ ५५ ॥ उस अत्यन्त पुण्यस्थानमें विराजमान हुए यक्षकी महादेवजीके प्रसादसे सभी पूजा करने लगे. दक्षके चले जानेपर भगवान् त्रिलोचनभी विन्ध्याचल पर्वतपर चले ॥ ५६ ॥ मदननेभी वहाँ जाकर उनको देखा और देखकर उनपर प्रहार करनेकी इच्छा की तब महादेवजी उस स्थानसेभी चले गये ॥ ५७ ॥ कामदेवने उनका पीछा किया, यह देखकर शिवजी घोर दारुण वनमें चले गये जहाँ ऋषि अपनी २ स्त्रियोंके साथ विराजमान थे ॥ ५८ ॥ उन्होंने महादेवजीको देखकर मस्तक नवाय प्रणाम किया, भगवान् महादेवजी बोले–कि, मुझे भिक्षादो ॥ ५९ ॥ हे नारद ! तब सब महर्षि मौन होगये इसके उपरान्त महादेवजी पवित्र आश्रममें विचरने लगे ॥ ६० ॥ तब इनको देख भार्गव और आत्रेय वंशवाले ऋषियोंकी स्त्रियें अत्यन्त क्षोभित और धीरज रहित होगईं ॥ ६१ ॥

तस्मिन्सुपुण्येविषयेनिविष्टोरुद्रप्रसादादापिपूज्यतेऽसौ ॥ तस्मिन्प्रयातेभगवांस्त्रिनेत्रोदेवोपिविंध्यंगिरिमभ्यगच्छत् ॥ ५६ ॥ तत्रापिमदनोगत्वाददर्शवृषकेतनम् ॥ दृष्ट्वाप्रहर्त्तुकामश्चततःप्राद्रुद्रुवेहरः ॥ ५७ ॥ ततोदारुवनंघोरंमदनाभिसृतोहरः ॥ विवेशऋषयोयत्रसपत्नीकाव्यवस्थिताः ॥५८॥ तेचापिऋषयःसर्वेदृष्ट्वामूर्ध्नानताभवन् ॥ ततस्तान्प्राहभगवान्भिक्षामेप्रतिदीयताम् ॥५९॥ ततस्तेमौनिनस्तस्थुःसर्वएवमहर्षयः ॥ तदाश्रमाणिपुण्यानिपरिचक्राम नारद ॥ ६० ॥ तंप्रविष्टंतदादृष्ट्वाभार्गवात्रेययोषितः ॥ प्रक्षोभमगमन्सर्वाहीनसत्त्वाःसमंततः ॥ ६१ ॥ ऋतेत्वरुंधतीमेकामनसूयांचभामिनीम् ॥ एतयोर्भर्तृपूजासुतच्चिन्तासुस्थितंमनः ॥ ६२ ॥ ततःसंक्षोभिताःसर्वायत्रायातिमहेश्वरः ॥ तत्रप्रयांतिकामार्त्तामदविह्वलितेंद्रियाः ॥ ६३ ॥ त्यक्त्वाश्रमाणिशून्यानिस्वानितामुनियोषितः ॥ अनुजग्मुर्यथामत्तंकरिण्यइवकुंजरम् ॥ ६४ ॥ ततस्तुऋषयोदृष्ट्वाभार्गवांगिरसोमुने ॥ क्रोधान्विताब्रुवन्सर्वेलिंगमापततांभुवि ॥ ६५ ॥ ततःपपातदेवस्यलिंगंपृथ्वींविदारयत् ॥ अंतर्द्धानंजगामाथत्रिशूलीनीललोहितः ॥ ६६ ॥ ततस्तत्पतितंलिंगंविभेद्यवसुधातलम् ॥ रसातलंविवेशाथब्रह्मांडेचोर्ध्वतोभिनत् ॥ ६७ ॥

भामिनी अरुन्धती और अनसूया केवल यही दोनों प्रकृतिमें स्थित रहीं कारण कि, इन दोनोंनेही एकाग्रचित्तसे अपने स्वामीका निरन्तर स्मरण (सान्निध्य और असान्निध्यमें) और सेवा कीथी उसीके प्रभावसे उनका मन किंचित् भी चलायमान नहीं हुआ ॥६२॥और यह सब स्त्रियें इसप्रकार क्षोभित हुईथीं कि,जहाँ महादेवजी जातेथे,वहीं कामसे आर्त्त होकर मदसे व्याकुलइन्द्रियवाली हो उनके पीछे २ जातीथीं ॥ ६३॥ इसप्रकार वह आश्रमको छोड़ सूनाकर मतवाले हाथीकी अनुगामिनी हथिनियोंकी यूथकी समान महादेवजीके पीछे चलीं ॥ ६४ ॥ भार्गव और अंगिरा आदि सब ऋषि इस चरित्रको देखकर क्रोधित हो कहने लगे कि, महादेवजीका लिंग पृथ्वीमें गिरजाय ॥ ६५ ॥ तब महादेवजीके लिङ्गने गिरकर पृथ्वीको विदारित किया, उसी समय नीललोहित त्रिशूलधारी अन्तर्धान होगये ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वह

लिङ्ग गिरकर पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ रसातलको गया, उससे ब्रह्माण्ड ऊर्द्ध्व ओरका विदीर्ण होगया ॥ ६७ ॥ सम्पूर्ण पृथ्वी विचलित हुई, सब पर्वत कंपायमान होने लगे, सम्पूर्ण सरोवर पादपसमूह और समस्त स्थावर जंगमात्मक पातालभुवनभी कम्पायमान होगये ॥ ६८ ॥ ब्रह्माजी भूर्लोकादि सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षोभित देखकर भगवान् केशवसे साक्षात् करनेकी इच्छासे क्षीरोदनामक सागरमें गये ॥ ६९ ॥ वहाँ हृषीकेशको देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बोले कि, हे देव ! हेविभो ! किस कारणसे सम्पूर्ण संसार क्षोभित होगया है ॥ ७० ॥ भगवान् हरि बोले कि, महर्षियोंने शिवजीका लिङ्ग गिरा दिया है, इसीकारणसे सम्पूर्ण पृथ्वी चलायमान होगई है ॥ ७१ ॥ पितामह ब्रह्माजी इस अद्भुत चरित्रको सुनकर वारंवार कहने लगे कि, हे देवेश ! मैं वहाँ जाताहूं ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त देव पितामह और जगतपति जनार्दन यह दोनोंही जहाँ महादेवजीका लिंग गिराथा वहाँ गये ॥ ७३ ॥ इसके उपरान्त विभु केशव उस अनन्त लिंगको देखकर गरुड़पर चढ़के विस्मययुक्त हो पातालको गये ॥ ७४ ॥ तब ब्रह्माजी हंसविमानपर चढ़कर सभी ऊर्द्ध्वदेशको आक्रमण कर उस लिङ्गके अन्तकी प्राप्तिमें असमर्थ और विस्मययुक्त हो वहाँसे लौटे ॥ ७५ ॥ इस ओर विष्णुजीनेभी पातालमें जाकर सातों भुवनोंकी परिक्रमा करी तौभी अन्त न पाकर अत्यन्त क्लेशित हुए ॥ ७६ ॥ हे महामुने ! विष्णु और ब्रह्माजी दोनोंही हरलिङ्गके समीप जाकर हाथ जोड़ स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥ हे शूलपाणे ! तुमको नमस्कार है, हे वृषभध्वज ! तुमको नमस्कार है, हे जीमूतवाहन !

ततश्चचालपृथिवीगिरयःसरितोनगाः ॥ पातालभुवनाःसर्वेजंगमाजंगमाश्रिताः ॥ ६८ ॥ संक्षुब्धान्भुवनान्दृष्ट्वाभूर्लोकादीन्पितामहः ॥ जगामममाधवंद्रष्टुंक्षी
रोदंनामसागरम् ॥६९॥ तत्रदृष्ट्वाहृषीकेशंप्रणिपत्यचभक्तितः ॥ उवाचदेवभुवनाःकिमर्थंक्षुभिताविभो ॥७०॥ अथोवाचहरिर्ब्रह्मञ्छार्वोलिंगोमहर्षिभिः ॥
पातितस्तस्यभारार्तासंचचालवसुंधरा ॥ ७१ ॥ ततस्तदद्भुततमंश्रुत्वादेवःपितामहः ॥ तत्रगच्छामदेवेशएवमाहपुनःपुनः ॥ ७२ ॥ ततःपितामहोदेवः
केशवश्चजगत्पतिः ॥ आजग्मतुस्तमुद्देशंयत्रलिंगंभवस्यतत् ॥ ७३ ॥ ततोऽनंतंहरिर्लिंगंदृष्ट्वारुह्यखगेश्वरम् ॥ पातालंप्रविवेशाथविस्मयांतरितोविभुः ॥
॥ ७४ ॥ ब्रह्माहंसविमानेनऊर्ध्वमाक्रम्यसर्वतः ॥ नैवांतमलभद्ब्रह्माविस्मितःपुनरागतः ॥ ७५ ॥ विष्णुर्गत्वाथपातालान्सप्तलोकपरायणः ॥ चक्रपाणि
र्विनिष्क्रांतोलेभेंऽतंनमहामुने ॥ ७६ ॥ विष्णुःपितामहश्चोभौहरलिंगंसमेत्यह ॥ कृतांजलिपुटौभूत्वास्तोत्रंदेवौप्रचक्रतुः ॥ ७७ ॥ हरिब्रह्माणावूचतुः ॥
नमोस्तुतेशूलपाणेनमोस्तुवृषभध्वज ॥ जीमूतवाहनकवेशर्वत्र्यंबकशंकर ॥ ७८॥

---

[1] यह कथा अध्यात्मविद्यासे युक्त और गूढ है शिवपुराणमें देखो ।

हेशर्व ! हेत्र्यम्बक ! तुमको नमस्कार है ॥ ७८ ॥ हेमहेश्वर ! हेमहेशान ! हेसुवर्णाक्ष ! हेवृषाकपे ! हेदक्षयज्ञक्षयकर ! हे कालरूप ! तुमको नमस्कार है ॥ ७९ ॥ हेपरमेश्वर ! तुम इस संसारके आदिहो, तुम्हीं इसके अन्त और मध्यहो, तुम षडैश्वर्यपूर्ण और सर्वान्तर्यामीहो तुमको नमस्कारहै ॥ ८० ॥ महात्मा पुलस्त्यजी बोले- कि, उस दारुवनमें इसप्रकार स्तुति करनेसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महादेवजी निज स्वरूप धारण कर उनसे कहने लगे ॥ ८१ ॥ हेदेवताओंके नाथ ! किसकारण तुम दोनों यहाँ आकर मेरी स्तुति करतेहो, कामानलसे मेरा शरीर दग्ध होता है और इसके अतिरिक्त मेरा शरीरभी स्वस्थ नहीं है, मैं मर्यादाज्ञानरहित होकर पडाहूं ॥ ८२ ॥ ब्रह्मा और केशव बोले- कि, हेशंकर ! आपका जो यह लिङ्ग पृथ्वीपर गिरगया, इसको फिर आप ग्रहण कीजिये इसीकारण हम आपकी स्तुति करते हैं॥

महेश्वरमहेशानसुवर्णाक्षवृषाकपे ॥ दक्षयज्ञक्षयकरकालरूपनमोस्तुते ॥ ७९ ॥ त्वमादिरस्यजगतस्त्वंमध्यंपरमेश्वर ॥ भवानंतश्चभगवान्सर्वगस्त्वंनमोस्तुते ॥ ८० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एवंसंस्तूयमानस्तुतस्मिन्दारुवनेहरः ॥ स्वरूपीताविदंवाक्यमुवाचवदतांवरः ॥ ८१ ॥ हरउवाच ॥ किमर्थंदेवतानाथौपरिभूतक्रमंत्विह ॥ मांस्तुवातेभृशास्वस्थंकामतापितविग्रहम् ॥ ८२ ॥ देवावूचतुः ॥ भवतःपातितंलिंगंयदेतद्भुविशंकर ॥ एतत्प्रगृह्यतांभूयःअतोदेववदावहे ॥ ८३ ॥ हर उवाच ॥ यद्यर्चयंतित्रिदशाममलिंगंसुरोत्तमौ ॥ तदेतत्प्रतिगृह्णीयांनान्यथेतिकथंचन ॥ ८४ ॥ ततःप्रोवाचभगवानेवमस्त्वितिकेशवः ॥ ब्रह्मास्वयंचजग्राहलिंगंकनकपिंगलम् ॥ ८५ ॥ ततश्चकारभगवांश्चातुर्वर्ण्यंहरार्च्चने ॥ शास्त्राणिचैषांमुख्यानिनानोक्तिविदितानिच ॥ ८६ ॥ आद्यंशैवंपरिख्यातमन्यत्पाशुपतंमुने ॥ तृतीयंकालदमनंचतुर्थंचकपालिकम् ॥ ८७ ॥ शिवश्चासीत्स्वयं[१]शक्तिर्वसिष्ठस्यप्रियःसुतः ॥ तस्यशिष्योबभूवाथगोपायनइतिश्रुतः ॥ ८८ ॥

॥ ८३ ॥ महादेवजी बोले- कि, हे सुरोत्तमयुगल ! यदि देवगण हमारे इस लिंगकी पूजा करैं तो मैं इसको धारण करसकता हूं, नहीं तो किसी प्रकारभी नहीं ॥ ८४ ॥ तब भगवान् केशव बोले- कि, ऐसाही होगा इसके उपरान्त भगवान् ब्रह्माजीने उस पिंगलवर्णके लिंगको ग्रहण कर ॥ ८५ ॥ महादेवजीको पूजनेके निमित्त चारों वर्णोंका विधान और उसके उपयोगी सम्पूर्ण शास्त्रोंको रचा यह सम्पूर्ण शास्त्र विविध भाँतिकी युक्तियोंसे युक्त है॥ ८६ ॥ यह चारों वर्णोंके बीचमें पहले शैव, दूसरें पाशुपत, तीसरे कालदमन और चौथे कापालिक कहकर विख्यात हुए ॥ ८७ ॥ इसमें वसिष्ठजीके प्रियपुत्र शक्ति स्वयं शिव और उनके शिष्य गोपायन नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ८८ ॥

---

[१] शक्तिनामा वसिष्ठस्य सुतः स्वयं शिवो बभूवेत्यर्थः ।

हे ऋषियो तपोधन भरद्वाज महापाशुपत हुए और राजा सोमकेश्वर उनके शिष्य हुए ॥ ८९ ॥ हे मुने ! तपोधन आपस्तम्ब कालदमन नामक और क्राथेश्वर नामके उनके शिष्य हुए ॥ ९० ॥ और धनद कुबेर महाव्रती कापालिक, और उनके शिष्य महावीर्यवान् महातपा अर्णोदर नामक जातिके शूद्र थे ॥ ९१ ॥ इसप्रकारसे भगवान् ब्रह्माजी महादेवजीकी पूजाके अर्थ चारों आश्रमको विधानकर अपने लोकको चले गये ॥ ९२ ॥ ब्रह्माजीके चलेजानेपर महादेवजीभी अपने लिङ्गको उपसंहृत कर और चित्रवलवनमें उस सूक्ष्माकृति लिंगकी प्रतिष्ठा कर विचरण करने लगे ॥ ९३ ॥ जब वह विचरण करनेमें प्रवृत्त हुए तब कुसुमायुध (कामदेव) पुनर्वार दूरसेही स्थितहो धनुष बाणको धारण कर उन्हें सन्तापित करनेके अर्थ तैय्यार हुआ ॥ ९४ ॥ महादेवजी उसको सन्मुख देखकर क्रोधयुक्त नेत्रोंद्वारा चरणसे लेकर शिखातक उसके समस्त शरीरको

महापाशुपतश्चासीद्भरद्वाजस्तपोधनः ॥ तस्यशिष्योप्यभूद्राजाऋषयःसोमकेश्वरः ॥ ८९ ॥ कालास्योभगवानासीदापस्तंबस्तपोधनः ॥ तस्यशिष्यो बभूवाथनाम्नाक्राथेश्वरोमुने ॥ ९० ॥ महाव्रतीचधनदस्तस्यशिष्यश्चवीर्यवान् ॥ अर्णोंदरइतिख्यातोजात्याशूद्रोमहातपाः ॥ ९१ ॥ एवंसभगवान्ब्रह्मा पूजनायशिवस्यतत् ॥ कृत्वातुचातुराश्रम्यंस्वमेवभवनंगतः ॥ ९२ ॥ गतेब्रह्मणिशर्वोंपिउपसंहृत्यतत्तदा ॥ लिंगंचित्रवनेसूक्ष्मंप्रतिष्ठाप्यचचारह ॥ ९३ ॥ विचरंतंतदाभूयोमहेशंकुसुमायुधः ॥ आरात्स्थित्वाग्रतोधन्वीसंतापयितुमुद्यतः ॥ ९४ ॥ ततस्तमग्रतोदृष्ट्वाक्रोधाध्मातदृशाहरः ॥ स्मरमालोकयामासशिखाग्राचरणांतिकम् ॥ ९५ ॥ आलोकितस्त्रिनेत्रेणमदनोद्युतिमानपि ॥ प्रादह्यततदाब्रह्मन्पादादारभ्यकक्षवत् ॥ ९६ ॥ प्रदह्यमानौचरणौ दृष्ट्वासौकुसुमायुधः ॥ उत्ससर्जधनुःश्रेष्ठंतज्जगामाथपंचधा ॥ ९७ ॥ यदासीन्मुष्टिबंधेतद्रुक्मपृष्ठंमहाप्रभम् ॥ सचम्पकतरुर्जातःसुगंधाढ्योमहाद्युतिः ॥ ॥ ९८ ॥ नाभिस्थानंशुभाकारंयदासीद्वज्रभूषितम् ॥ तज्जातंकेसरारण्यंबकुलंनामतोमुने ॥ ९९ ॥ याचकोटीशुभाह्यासीदिंद्रनीलविभूषिता ॥ जातासापाटलारम्याभृंगराजिविभूषिता ॥ १०० ॥

देखनेलगे ॥ ९५ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्रिनेत्र (रुद्र) से दृष्टहोतेही अतिसुन्दरशरीरभी कामदेव चरणोंसे लेकर शुष्कतृणके समान जलनेलगा ॥ ९६ ॥ हे मुने ! कुसुमायुधने अपने दोनों चरणोंको जलते देख अपने श्रेष्ठ धनुषको त्याग दिया, वह धनुष पाँच प्रकारको प्राप्त हुआ ॥ ९७ ॥ उस धनुषका मुष्टिबन्ध (मुठीसे पकड़नेका स्थान) जो अत्यन्त प्रभायुक्त और रुक्म (सुवर्ण) पृष्ठथा सो वह सुगन्धियुक्त प्रकाशमान चंपेका वृक्ष हुआ ॥ ९८ ॥ इसप्रकारसे उसका वज्रभूषित नाभि (बीच) का स्थान अनेक केशरयुक्त बकुलवृक्षके रूपसे उत्पन्न हुआ ॥ ९९ ॥ उसका इन्द्रनीलमणिसे भूषित शोभायमान कोटि (अटनी) स्थान भ्रमरपंक्ति विराजित रमणीक

पाटला पुष्पकी मूर्तिको धारण करताहुआ ॥ १०० ॥ उसका चन्द्रकान्तमणिसे युक्त अधोमुष्टिका स्थान चन्द्रमाकी किरणोंकी समान उज्ज्वल पंचगुल्म जातीरूपसे उत्पन्न हुआ ॥ १०१ ॥ इसके मुष्टिके ऊर्द्ध्व और कोटिके नीचेके विद्रुमभूषित स्थानने विविध जातिकी अनेकपुटा मल्लीकी मूर्त्ति धारण की ॥ १०२ ॥ और इसके अतिरिक्त वहाँसे स्वयं महादेवजी जिसका व्यवहार करते हैं ऐसे जातियुक्त सुगन्धसम्पन्न परममनोहर कुसुमके वृक्ष उत्पन्नहुए ॥ १०३ ॥ इसके उपरान्त शरीरके दग्ध होनेपर कामदेवने पाँच शरोंको त्याग दिया. वह सब शर सहस्र २ फलयुक्त वृक्षरूपसे उत्पन्न हुए ॥ १०४ ॥ वह पाँच शर चूत (आम्र) अरविन्द (कमल) अशोक, नवमल्लिका और नीलकमल ऐसे विविध प्रकारके स्वादु सुगन्धि वृक्षरूपसे उत्पन्न हुए, जो कि शिवजीके अनुग्रहसे सुरश्रेष्ठ इन्द्रादिकोंसे भोज्य (खाने और सूँघने योग्य) भी हुए ॥ १०५ ॥ इस प्रकारसे विभु शंकर कामदेवको दग्धकर जितेन्द्रियहो पुण्य प्राप्त करनेकी इच्छासे तप करनेके अर्थ हिमालयको चलेगये ॥ १०६ ॥ पूर्वकालमें देवाधिदेव महादेवने इसप्रकारसे शरशरासनके सहित कामदेवको दग्ध कियाथा, इसीसे वह महाधनुर्धारी कामदेव अनङ्ग (अङ्गरहित) हुआ है, देवगण उसकी स्तुति और देवश्रेष्ठभी उसकी पूजा करते हैं ॥ १०७ ॥ इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भाषानुवादे वामनप्रादुर्भावे कामदाहो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ पुलस्त्यजी बोले—कि, इसके उपरान्त विभु नारायण अनङ्गको देख हँसकर बोले कि, हे कन्दर्प ! तुम इस स्थानमें बैठो ॥ १ ॥ काम उनकी अक्षोभताको देखकर विस्मयको प्राप्त हुआ, हे महामुने ! वसन्तकेभी अन्तःकरणमें अति चिन्ताका उदय हुआ ॥ २ ॥

नाहोपरितथामुष्टौस्थानंचंद्रमणिप्रभम् ॥ पंचगुल्माभवज्जातीशशांककिरणोज्ज्वला ॥ १०१ ॥ ऊर्द्ध्वमुष्ट्याअधःकोटयोःस्थानंविद्रुमभूषितम् ॥ तस्माद्बहुपुटामल्लीसंजाताविविधामुने ॥ १०२ ॥ पुष्पोपगानिरम्याणिसुरभीणिचनारद ॥ जातियुक्तानिदेवेनस्वयमाचरितानिच ॥ १०३ ॥ मुमोचमार्गणान्रम्याञ्छरीरेदह्यतिस्मरः ॥ फलोपगानिवृक्षाणिसंभूतानिसहस्रशः ॥ १०४ ॥ चूतादीनिसुगंधीनिस्वादूनिविविधानिच ॥ हरप्रसादाज्जातानिभोज्यान्यपिसुरोत्तमैः ॥ १०५ ॥ एवंदग्ध्वास्मरंरुद्रःसंयम्यस्वतनुंविभुः ॥ पुण्यार्थीशिशिराद्रिंसजगामतपसेऽव्ययः ॥ १०६ ॥ एवंपुरादेववरेणशंभुनाकामस्तुदग्धःसशरःसचापः ॥ ततस्त्वनंगेतिमहाधनुर्द्धरोदेवैःस्तुतोदेववरैस्तुपूजितः ॥ १०७ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेपुलस्त्यनारदसंवादेवामनप्रादुर्भावेकामदाहोनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततोऽनंगंविभुर्दृष्ट्वाब्रह्मन्नारायणोमुनिः ॥ विहस्यैवंवचःप्राहकंदर्पइहआस्यताम् ॥ १ ॥ तदक्षुब्धत्वमीक्ष्यास्यकामोविस्मयमागतः ॥ वसंतोपिमहाचिंतांजगामाशुमहामुने ॥ २ ॥

इसके पीछे भगवान् नारायण आईहुई अप्सराओंको देखकर विशेषआदर करते हुए वसन्तसे बोले कि, आओ ! आओ ! यहाँ बैठो ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त भगवान्ने कुसुमावृत (पुष्पोंसे भरी हुई) मंजरी (मौल) को ग्रहणकर उसके पूर्वाग्र भागको अपनी दोनों जंघाओंके बीचमें लगाय इसकेद्वारा सुवर्णके समान अंगवाली बालाको निर्माण किया ॥ ४ ॥ कन्दर्प उस सर्वांग सुन्दरी (नारायणकी) जंघाओंसे उत्पन्न उस बालाको देखकर मनहीमनमें विचारने लगा कि, क्या यह बाला मेरी प्यारी रति है ॥ ५॥ कारण कि, रतिकेही समान इसके मधुर वचन, शोभायमान नेत्र, सुन्दर भ्रुकुटि, कुटिल अलक, सुभग नासावंश; सुन्दर अधर और सुन्दर ओष्ठ देखनेहीके योग्य हैं ॥ ६॥ इसके दोनों कुचभी उसीकी समान अविरल अर्थात् मिलेहुए बड़े पुष्ट मग्नचूचुकवाले सज्जनोंकी समान परस्पर मिले हुए हैं ॥ ७ ॥ उसीकी समान इस सुन्दरागीका उदर तनु (कृश) त्रिवलीसे शोभायमान, रोमराजिसे युक्त और चिकना है ॥ ८ ॥ उसकीही समान इसकी रोमा

ततश्चाप्सरसोदृष्ट्वास्वागतेनाभिपूज्यच ॥ वसंतमाहभगवानेह्येहिस्थीयतामितः ॥ ३ ॥ ततोविहस्यभगवान्मंजरींकुसुमावृताम् ॥ आदायप्राक्सुवर्णांगी
मूर्वौर्बालांविनिर्म्ममे ॥ ४॥ ऊरूद्भवांसकंदर्पोदृष्ट्वासर्वांगसुंदरीम् ॥ अमन्यततदानंगःकिमियंसाप्रियारतिः ॥५॥ तदेववचनंचारुस्वक्षिभ्रूकुटिलालकम् ॥
सुनासावंशाधरोष्ठमालोकनपरायणम् ॥ ६ ॥ तावेवचाप्यविरलौपीवरौमग्नचूचुकौ ॥ राजेतेस्याःकुचौपीनौसज्जनाविवसंहतौ ॥ ७ ॥ तदेवतनुचार्वंग्याव
लित्रयविभूषितम् ॥ उदरंराजतेश्लक्ष्णंरोमावलिविभूषितम् ॥ ८ ॥ रोमावलीचजघनाद्यातिस्तनतटद्वयम् ॥ राजतेभृंगमालेवपुलिनात्कमलाकरम् ॥
॥ ९ ॥ जघनंत्वतिविस्तीर्णंभात्यस्यारसनावृतम् ॥ क्षीरोदमथनेनद्धंभुजंगेनेवमंदरम् ॥ १० ॥ कदलीस्तंभसदृशैरूर्ध्वमूलैरथोरुभिः ॥ विभाति
सासुचार्वंगीपद्मकिंजल्कसन्निभा ॥ ११ ॥ जानुनीगूढगुल्फेचशुभेजंघेत्वरोमशे ॥ विभात्यस्यास्तथापादावलक्तकसमत्विषौ ॥ १२ ॥ इतिसं
चिंतयन्कामस्तामनिंदितलोचनाम् ॥ कामातुरोसौसंजातःकिमुतान्योजनोमुने ॥ १३ ॥

वली जंघासे लेकर दोनों स्तनोंतक, पुलिन (तट) से लेकर कमलसमूह पर्य्यन्त जाकर भृंग मालाकी समान विराजमान होरही है ॥९॥ उसकी समान इसका जघन अत्यन्त विस्तारित तगड़ीसे अलंकृत क्षीरसागरके मथनेके निमित्त वासुकिसे बँधेहुए मन्दराचलकी समान प्रकाशमान होरही है ॥ १० ॥ तैसेही उर्ध्व [ऊपर] जिसका मूल है ऐसा जो कदली [केले] का स्तम्भ उसके समान गौर वर्णा ऊरु युगलसे उपलक्षिता, कमल केशर सदृश गौरवर्णा, अत्यन्त मनोहरांगी वोही (मेरी प्रिया—रति) यह दिखाई दे रही है ॥ ११ ॥ उसहीके समान इसके दोनों जानु हैं जिसमें गुल्फ [घुटने] गुप्त हो रहे हैं और उसकीही समान उसकी जंघा नितम्ब रोमहीन और उसीकी समान इसके दोनों चरण महावर रंगकी समान कान्तियुक्त हैं ॥१२॥ हेमुने ! कामदेव उस अनिन्दितलोचनीकी इसप्रकारसे चिन्ताकर स्वयंही

माधवोप्युर्वशींदृष्ट्वासंचिंतयतिनारद ॥ किंस्वित्कामनरेंद्रस्यराजधानीस्वयंस्थिता ॥ १४ ॥ अज्ञाताशशिनोनूनमियंकांतिर्निशाक्षये ॥ रविरश्मिप्रतापा
तिंभीताशरणमागता ॥ १५ ॥ इत्थंसंचिंतयन्नेवअवष्टभ्याप्सरोगणम् ॥ तस्थौमुनिरिवध्यानमास्थितःसतुमाधवः ॥ १६ ॥ ततःसविस्मितान्सर्वान्कंदर्पा
दीन्महामुने ॥ दृष्ट्वाप्रोवाचवचनंस्मितंकृत्वाशुभव्रतः ॥ १७ ॥ इयंममोरुसंभूताकामाप्सरसमाधवी ॥ नीयतांसुरलोकायदीयतांवासवायच ॥ १८ ॥
इत्युक्ताःकंपमानास्तेजग्मुर्गृह्योर्वशींदिवम् ॥ सहस्राक्षायतेप्रोचूरूपयौवनशालिनीम् ॥ १९ ॥ आचख्युश्चरितंताभ्यांधर्मज्ञाभ्यांमहामुने ॥ देवराजा
यकामाद्यास्ततोभूद्विस्मयःपरम् ॥ २० ॥ एतादृशंहिचरितंख्यातिमग्र्यांजगामह ॥ पातालेषुतथामर्त्यैंदिक्ष्वष्टासुजगामच ॥ २१ ॥ एकदानिहतेरौद्रेहि
रण्यकशिपौमुने ॥ अभिषिक्तस्तदाराज्येप्रह्लादोनामदानवः॥२२॥तस्मिच्छासतिदैत्येंद्रेदेवब्राह्मणपूजके ॥ मखान्भूम्यांनृपतयोयजंतेविधिवत्तदा ॥२३॥
ब्राह्मणाश्चतपोधर्मतीर्थयात्रांचकुर्वते ॥ वैश्याश्चपशुवृत्तिस्थाःशूद्राःशुश्रूषणेरताः ॥ २४ ॥

कामसे आतुर होगया औरकी बात तो अब क्या कहूं॥ १३ ॥ हेनारद! वसन्तभी इस उर्वशीको देखकर चिन्ता करने लगा कि,क्या कामराजकी राजधानीही स्वयं यहां आई है॥ १४ ॥ अथवा रात्रिके अन्तमें चन्द्रमाकी कान्तिने सूर्यकी किरणोंके प्रतापसे भईहुई जो पीड़ा उसके भयसे अतर्कित रूपसे (छिपकर) शरण ली है ॥ १५ ॥ वसंत इस प्रकारकी चिन्ता करताहुआ अप्सराओंको हाव भाव करनेसे रोककर मुनिकी समान ध्यान करता हुआ वहाँ खड़ाहोगया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त, हे महामुने! महामुनि नारायण काम इत्यादि सबको विस्मित देखकर ईषत् हास्यके साथ कहने लगे ॥ १७ ॥ कि, हे काम! हे अप्सरागण! हे वसन्त! तुम सब हमारे ऊरुसे उत्पन्नहुई इस बालाको सुरलोकमें लेजाकर देवराज (इन्द्र) के हाथमें प्रदान करो ॥ १८ ॥ इसप्रकारसे कहे जाकर कम्पायमान शरीरसे रूप यौवनशालिनी उस उर्वशीको ग्रहण कर सुरलोकमें जाय उन्होंने इन्द्रके सामने निवेदन किया ॥ १९ ॥ और उसके साथही धर्मज्ञ नर नारायणके चरित्रभी कहे, हे महामुने! इससे सबको अत्यन्तही आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ इसप्रकारसे नारायणके चरित्र सम्पूर्ण पातालमें और मर्त्यलोकके आठों दिशाओंमें विख्यात होगये ॥ ॥ २१ ॥ हे मुने! एक समय रौद्र (भयानक) हिरण्यकश्यपके मरजानेपर प्रह्लाद नामक दानव राजपदपर विराजमान हुआ ॥ २२ ॥ दैत्यपति प्रह्लाद स्वयं देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें प्रवृत्त होकर राज्यशासन करने लगे, और उस समयके बीच उनके अधिकारी राजाओंनेभी पृथ्वीमें विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया ॥ २३ ॥ ब्राह्मणगण यथारीतिसे तपस्या, धर्म और तीर्थयात्रामें प्रवृत्त हुए, वैश्योंने पशुवृत्तिका अनुसरण किया, शूद्रगण सेवा करनेमें रतहुए ॥ २४ ॥

इसप्रकारसे चारों वर्णही अपने अपने आश्रयमें स्थितहो धर्म कर्मके अनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हुए देवताओंकीभी वृत्ति (जीवन) यज्ञसाध्य प्रभृतसे वृद्धिको प्राप्त होगई ॥ २५ ॥ इसी समय महातपस्वी भार्गवश्रेष्ठ च्यवनऋषि स्नान करनेके निमित्त नकुलेश्वराधिष्ठित तीर्थ नर्मदाको गये ॥ २६ ॥ वहाँ इन्होंने महादेवजीका दर्शन कर स्नान करनेके निमित्त नदीमें प्रवेश किया नदीमें प्रवेश करतेही केकर (बलिर) लोहित नागने इनको पकड़लिया ॥ २७ ॥ उस अवस्थामें इन्होंसे जैसेही मनमें हरिका स्मरण किया कि, वैसेही यह महोरग (नाग) विषहीन होगया ॥ २८ ॥ तब उस विषहीन भयानक नागोत्तमने च्यवनऋषिको रसातलमें लेजाकर छोडदिया ॥ २९ ॥ भार्गवोत्तम च्यवन नागसे छूटतेही वहां विचरनेलगे. नागोंकी कन्याओंने चारों ओरसे आकर उनकी पूजा करनी प्रारम्भ की ॥ ३० ॥

चातुर्वर्ण्यंततस्तस्थावाश्रमेधर्मकर्मणि ॥ अवर्त्ततततोदेवावृत्त्यायुक्ताभवन्मुने ॥ २५ ॥ ततस्तुच्यवनोनामभार्गवेंद्रोमहातपाः ॥ जगामनर्मदांस्नातुंतीर्थंवैनाकुलेश्वरम् ॥ २६ ॥ तत्रदृष्ट्वामहादेवंनदींस्नातुमवातरत् ॥ अवतीर्णप्रजग्राहनागःकेकरलोहितः ॥ २७ ॥ गृहीतस्तेननागेनसस्मारमनसाहरिम् ॥ संस्मृतेपुंडरीकाक्षेनिर्विषोभून्महोरगः ॥ २८ ॥ नीतस्तेनातिरौद्रेणपन्नगेनरसातलम् ॥ निर्विषश्चापितत्याजच्यवनंभुजगोत्तमः ॥ २९ ॥ संत्यक्तमात्रोनागेनच्यवनोभार्गवोत्तमः ॥ चचारनागकन्याभिःपूज्यमानःसमंततः ॥ ३० ॥ विचरन्प्रविवेशाथदानवानांमहत्पुरम् ॥ संपूज्यमानोदैत्येंद्रैःप्रह्लादोथददर्शतम् ॥ ३१ ॥ भृगुपुत्रोमहातेजाःपूजांचक्रेयथार्हतः ॥ संपूजितोपविष्टश्चपृष्टश्चानामयंप्रति ॥ ३२ ॥ सचोवाचमहातेजामहातीर्थंमहाफलम् ॥ स्नातुमेवागतोस्म्यद्यद्रष्टुंवैनाकुलेश्वरम् ॥३३॥ नद्यामेवावतीर्णोस्मिगृहीतश्चाहिनाबलात् ॥ समानीतोऽस्मिपातालेदृष्टश्चात्रभवानपि ॥३४॥ एतच्छ्रुत्वाचवचनंच्यवनस्यदितीश्वरः ॥ प्रोवाचधर्मसंयुक्तंसवाक्यंवाक्यकोविदः ॥ ३५ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ भगवन्कानितीर्थानिपृथिव्यांकानिचांबरे ॥ रसातलेचकानिस्युरेतद्वक्तुंत्वमर्हसि ॥ ३६ ॥ च्यवनउवाच ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमंतरिक्षेचपुष्करम् ॥ चक्रतीर्थंमहाबाहोरसातलसृतंविदुः ॥ ३७ ॥

इसप्रकारसे वह विचरते २ दैत्येन्द्रगणोंसे विशेष पूजितहो दानवोंके महापुरमें गये, वहां प्रह्लादजीने उनको देखा ॥ ३१ ॥ देखकर यथारीतिसे उन महातेजस्वी भृगुके पुत्रकी पूजा की, इसके उपरान्त पूजाके समाप्त होनेपर वह बैठे तब उन्होंने कुशल पूछी ॥ ३२ ॥ वह महातेजस्वी ऋषि (च्यवन) बोले कि, मैं आज महातीर्थ नर्मदाके किनारे स्नान करने और वहाँके महाफलको देनेवाले नकुलेश्वर शिवके दर्शनके निमित्त आयाथा ॥ ३३ ॥ नदीमें उतरतेही सर्पने बलपूर्वक मुझे पकड़ लिया, इसके उपरान्त उसके द्वारा पातालमें आकर तुमको देखा ॥ ३४ ॥ वचनचतुर दैत्यपति प्रह्लादजी महात्मा च्यवनजीके ऐसे वचन सुनकर धर्मयुक्त वचन कहने लगे ॥ ॥ ३५ ॥ कि, हेभगवन् ! पृथ्वीमें, आकाशमें और पातालमें कौन २ से तीर्थ हैं सो कृपा कर वर्णन कीजिये ॥ ३६ ॥ च्यवनजी बोले कि, हेमहाबाहो ! पृथ्वीमें

नैमिषारण्य, अन्तरिक्षमें पुष्कर और रसातलमें चक्रतीर्थ प्रतिष्ठित है ॥ ३७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हेमहामुने ! भार्गवके ऐसे वचन सुनकर दैत्यराज प्रह्लादजी नैमिषारण्यके जानेके लिये सन्नद्धहो दानवोंसे बोले ॥ ३८ ॥ कि, सभी उठो ! आजनैमिषारण्य तीर्थको स्नान करनेके अर्थ जाना होगा, वहाँ जाकर पीताम्बरधारी पुण्डरीकाक्षका दर्शन करैंगे ॥ ३९ ॥ पुलस्त्यजी बोले–कि, दानवेन्द्रके ऐसे कहनेपर दैत्य और दानव सभी अतुल उद्योगमें प्रवृत्तहो रसातलसे बाहर हुए ॥ ४० ॥ वह सभी महाबली दैत्य दानव मिलकर नैमिषारण्यमें आये और प्रसन्नतासहित स्नान किया ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त दितीश्वर प्रह्लादजीने मृगया (शिकार) में प्रवृत्त होकर इधर उधर भ्रमण करते हुए निर्मल जलशालिनी अत्यन्त पवित्र सरस्वतीको देखा ॥ ४२ ॥ उसके कुछ दूरमें युगयुगान्तके लगे हुए बड़ी २ शाखाओं

पुलस्त्यउवाच ॥ श्रुत्वातद्भार्गववचोदैत्यराजोमहामुने ॥ नैमिषंगंतुकामोभूद्दानवानिदमब्रवीत् ॥३८॥ प्रह्लादउवाच ॥ उत्तिष्ठध्वंगमिष्यामःस्नातुंतीर्थेहि नैमिषम् ॥ द्रक्ष्यामपुंडरीकाक्षंपीतवाससमच्युतम् ॥३९॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्युक्तादानवेंद्रेणसर्वेतेदैत्यदानवाः ॥ चक्रुरुद्योगमतुलंनिर्जग्मुश्चरसातलात् ॥ ४० ॥ तेसमभ्येत्यदैतेयादानवाश्चमहाबलाः ॥ नैमिषारण्यमागम्यस्नानंचक्रुर्मुदान्विताः ॥ ४१ ॥ ततोदितीश्वरःश्रीमान्मृगयांसचचारह ॥ चरन्सरस्वतींपुण्यांददर्शविमलोदकाम् ॥ ४२ ॥ तस्यादूरेमहाशाखंसालवृक्षंशरैश्चितम् ॥ ददर्शबाणानपरान्मुखेलग्नान्परस्परम् ॥ ४३ ॥ ततस्तानद्भुताकारान्बाणान्नागोपवीतकान् ॥ दृष्ट्वाऽतुलंतदाचक्रेक्रोधंदैत्येश्वरःकिल ॥ ४४ ॥ सददर्शततोदूरात्कृष्णाजिनधरौमुनी ॥ समुन्नतजटाभारौतपस्यासक्तमानसौ ॥ ४५ ॥ तयोश्चपार्श्वयोर्दिव्येधनुषीलक्षणान्विते ॥ शार्ङ्गमाजगवंचैवअक्षय्यौचमहेषुधी ॥ ४६ ॥ तौदृष्ट्वामन्यततदादांभिकाविति दानवः ॥ ततःप्रोवाचवचनंतावुभौपुरुषोत्तमौ ॥ ४७ ॥ किंभवद्भ्यांसमारब्धोदंभोधर्मविनाशनः ॥ क्वतपःक्वजटाभारःक्वचेमौप्रवरायुधौ ॥ ४८ ॥

युक्त शरोंसे व्याप्त शालके वृक्षोंको देखा औरभी परस्पर मुखमें मुख मिलेहुए बाणोंकोभी देखा ॥ ४३ ॥ वह उस अद्भुत आकृति नागोपवीतक समस्त शरोंको देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने कृष्णमृगचर्मधारी दो मुनियोंका दर्शन किया उनकी जटायें ऊँची और मन तपस्यामें लगा हुआ था ॥ ४५ ॥ उनके दोनों पार्श्वोंमें शार्ङ्ग और आजगव नामके सुलक्षण लक्षित दिव्य दो धनुष, अक्षय दो तरकस स्थितथे ॥ ४६ ॥ उनकी ऐसी अवस्थाको देखकर दोनोंकोही प्रह्लादजीने दाम्भिक जाना, तब वह उन पुरुषोत्तम नर और नारायणको सम्बोधन करके बोले ॥ ४७ ॥ तुम क्या धर्मका नाशकरनेवालेहो जो दम्भका अनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हुएहो–कारण कि, कहाँ तो तपस्या और कहाँ जटाओंका भार ! और कहां ऐसे दोश्रेष्ठ आयुध ? ॥४८॥

नर बोले कि, हेदितीश्वर ! तुम्हारी चिन्ताका विषय क्याहै ? सामर्थ्यके होनेपर जो कियाजाताहै वह सभी ठीक होताहै ॥ ४९ ॥ तब प्रह्लादजी उन दोनोंसे बोले–कि धर्मसेतुप्रवर्त्तक दैत्येन्द्र मेरे विद्यमान रहतेहुए तुम्हारी फिर क्या सामर्थ्य है ॥ ५० ॥ नरने उनको उत्तरदिया कि, हम दोनों नरनारायण प्रचंडशक्तियुक्त हैं, कोई मनुष्य युद्धकरके हमें जीतनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ ५१ ॥ तब दैत्येश्वर प्रह्लादने क्रोधित होकर प्रतिज्ञा की कि, किसी प्रकारसेभी हो मैं नरनारायणको युद्धमें जीतूंगा ॥ ५२ ॥ ऐसे वचन कहकर फिर महात्मा दितीश्वर (प्रह्लादजी) ने वनके बीच सम्पूर्ण सेनाको व्यूह और बाणोंका गुणआविष्कृतकर घोरतल (ज्याघात) ध्वनि की ॥ ५३ ॥ तब नर आजगवधनुषको चढ़ाकर वारंवार बाणोंको छोड़नेलगे, प्रह्लादने रुक्मपुंख (सुवर्णके परवाले) बाणोंका प्रयोगकरके उन सब बाणोंका

अथोवाचनरोदैत्यंकातेचिंतादितीश्वर ॥ सामर्थ्यैंसतियत्कुर्यात्तत्संपद्येततस्यहि ॥ ४९ ॥ अथोवाचदितीशस्तौकाशक्तिर्युवयोरिह ॥ मयितिष्ठतिदैत्येंद्रेधर्मसेतुप्रवर्त्तके ॥ ५० ॥ नरस्तंप्रत्युवाचाथआवाभ्यांशक्तिरूर्जिता ॥ नकश्चिच्छक्नुयाज्जेतुंनरनारायणौयुधि ॥ ५१ ॥ दैत्येश्वरस्ततःक्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोहच ॥ यथाकथंचिज्जेष्यामिनरनारायणौरणे ॥ ५२ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मादितीश्वरःस्थाप्यबलंवनांते ॥ वितत्यचापंगुणमाविकृष्यतलध्वनिंघोरतरंचकार ॥५३॥ ततोनरस्त्वाजगवंहिचापमानम्यबाणान्सुबहून्सिताग्रान् ॥ मुमोचतानप्रतिमैःपृषत्कैश्चिच्छेददैत्यस्तपनीयपुंखैः ॥ ॥५४॥ छिन्नान्समीक्ष्याथनरःपृषत्कान्दैत्येश्वरेणाप्रतिमेनसंख्ये ॥ क्रुद्धःसमानम्यमहाधनुस्ततोमुमोचचान्यान्विविधान्पृषत्कान् ॥ ५५ ॥ एकंनरोद्वौदितिजेश्वरश्चत्रीन्धर्मसूनुश्चतुरोदितीशः ॥ नरस्तुबाणान्प्रमुमोचपंचषड्दैत्यनाथोनिशितान्पृषत्कान् ॥ ५६ ॥ सचर्षिमुख्योद्विचतुश्चदैत्येनरस्तुषट्त्रीणिच दैत्यमुख्यः ॥ षट्सप्तचाष्टौनवषण्नरेणाद्विसप्ततिंदैत्यपतिःससर्ज्ज ॥ ५७ ॥ शतंनरस्त्रीणिशतानिदैत्यःषट्धर्मपुत्रोदशदैत्यराजः ॥ ततोथसंख्येयतरान्हिबाणान्मुमोचतुस्तौसुभृशंहिकोपात् ॥ ५८ ॥

छेदनकरदिया ॥ ५४ ॥ युद्धमें अप्रतिम (असदृश–जिसका सदृशनहो ऐसा) दैत्यपतिने सम्पूर्णबाणोंको छेदन करदियाहै,यह देखकर नर क्रोधितहो महाधनुषको चढ़ाय विविध प्रकारके बाणोंको छोड़ने लगे ॥ ५५ ॥ जब वह एकबाण छोडते तो प्रह्लादजी दोबाण छोड़ते, ऐसे जब वह तीनबाण छोड़ते तो प्रह्लादजी चारबाण छोड़ते फिर जब उन्होंने पांचबाण छोड़े तो प्रह्लादजीने तीक्ष्ण छैबाणोंकी वर्षा की॥ ५६ ॥ ऋषिमुख्यनरने छहबाण छोड़े तब दैत्यने नौबाण छोड़े, नरने फिर छत्तीस बाणोंको छोड़ा तब दैत्यपति प्रह्लादने बहत्तरबाणोंको छोड़ा ॥ ५७ ॥ जो नर एकसौबाण छोड़ते तो दैत्येश्वर प्रह्लाद तीनसौ बाण छोड़ते और जो नर छःसौबाण छोड़ते तो

दैत्यपति प्रह्लाद दशहजार बाण छोड़देते, इसके उपरान्त दोनोंने क्रोधमें भरकर असंख्यों बाणछोड़े ॥५८॥ इस समय नरने असंख्यों बाणोंके जालसे पृथ्वी, दिशायें और आकाशमंडल सभी छादिया, दैत्यपतिने वेगमें भरकर सुवर्णके परवाले बाणोंका संधान कर उन सब बाणोंको काटकर फेंकदिया ॥ ५९ ॥ वह दोनोंही अत्यन्त वीर्यवान् थे, दोनोंही परवालेबाण और भयङ्कररूप श्रेष्ठ अस्त्रों द्वारा बहुतकालतक परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त श्रेष्ठ अस्त्रपाणि दैत्यपतिने (प्रह्लादने) धनुषपर ब्रह्मास्त्रको चढ़ाया तब नरनेभी उग्र नारायणास्त्रको संधित किया ॥ ६१ ॥ जब दैत्याधिपति प्रह्लादने एक साथही आग्नेय महास्त्रका उस युद्धमें प्रयोगकिया-तब उन पुरुषोत्तम (नर) के द्वारा महेश्वरास्त्र प्रयोजित होतेही दोनों अस्त्र मिलकर एकसाथ पतित हुए ॥ ६२ ॥ ब्रह्मास्त्रके व्यर्थ होतेहैं

ततोनरोबाणगणैरसंख्यैरवास्तरद्भूमिमथोदिशःखम् ॥ सचापिदैत्यप्रवरःपृषत्कैश्चिच्छेदवेगात्तपनीयपुंखैः ॥ ५९ ॥ ततःपतत्रिभिर्वीरौसुभृशंनरदानवौ ॥ तदावरास्त्रैर्युध्येतांघोररूपैःपरस्परम् ॥ ६० ॥ ततस्तुदैत्येनवरास्त्रपाणिनाचापेनियुक्तंतुपितामहास्त्रम् ॥ नरस्तुचापेपरमायुधेपुनर्युयोजनारायणमस्त्रमुग्रम् ॥ ६१ ॥ दैत्याधिपेनाथपुनर्महास्त्रमाग्नेयमाजौयुगपत्प्रयुक्तम् ॥ महेश्वरास्त्रंपुरुषोत्तमेनसमंसमाहत्यानिपेततुस्तौ ॥ ६२ ॥ ब्रह्मास्त्रेतुप्रशमिते प्रह्लादःक्रोधमूर्छितः ॥ गदांप्रगृह्यतरसाप्रचस्कंदरथोत्तमात् ॥ ६३ ॥ गदापाणिंसमायांतंदैत्यंनारायणस्तदा ॥ दृष्ट्वातत्पृष्ठतश्चक्रेनरंयोद्धुमनाःस्वयम् ॥ ॥ ६४ ॥ ततोदितीशःसगदःसमाद्रवत्सशार्ङ्गबाणंतपसांनिधानम् ॥ ख्यातंपुराणर्षिमुदारविक्रमंनारायणंनारदलोकपालम् ॥६५॥ इति श्रीवामनपुराणे प्रह्लादयुद्धंनामसप्तमोऽध्यायः ॥७॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शार्ङ्गपाणिनमायांतंदृष्ट्वाग्रेदानवेश्वरः ॥ परिभ्राम्यगदांवेगान्मूर्ध्निसाध्यमताडयत् ॥१॥ ताडितस्याथगदयाधर्मपुत्रस्यनारद ॥ नेत्राभ्यामपतद्वारिवह्निवर्षनिभंभुवि॥२॥मूर्ध्निनारायणस्यापिसागदादानवार्पिता ॥ जगामशतधाब्रह्मञ्छैलशृंगेयथाशनिः ॥३॥

प्रह्लादजी क्रोधसे मूर्च्छितहो गदा हाथ लेकर अतिशीघ्र रथसे उतरपड़े ॥ ६३ ॥ नारायणने देखा कि, प्रह्लादजी गदा हाथमें लियेहुए आरहे हैं-तो वह स्वयं युद्धकी इच्छासे उसीसमय नरको पीछेकर आगे चले ॥ ६४ ॥ हेनारद ! तब दैत्यपति (प्रह्लादजी) गदा हाथमें ले शार्ङ्गधनुषबाणपाणि, तपोनिधि उदारविक्रम लोकपंति और पुराण ऋषि नामसे विख्यात नारायणके सन्मुख शीघ्रतासे गये ॥ ६५ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां प्रह्लादयुद्धं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पुलस्त्यजी बोले—कि,दानवेश्वर प्रह्लादजीने शार्ङ्गपाणि नारायणको अपने सन्मुख आता हुआ देखकर अपनी गदाको घुमाय शीघ्रही उनके मस्तकपर प्रहार किया ॥ १ ॥ हेनारद ! गदाके आघात लगनेसे उनके नेत्रोंमेंसे अग्नि वृष्टिके समान उज्वल (अश्रु) जलधारा गिरने लगी ॥ २ ॥ हे[1]ब्रह्मन् ! पहाड़ोंके शृंगोंमें जिसप्रकार वज्र लगकर

---

[1] यह सभावित उक्ति जानना, (यदि ऐसा हो तो वह इसकी उपमा होसक्तीहै.)

खंडशः होजाताहै, उसीप्रकार नारायणके मस्तकमें दानवेन्द्र (प्रह्लाद) की गदा लगतेही सहस्रों खंड होगई ॥ ३ ॥ दैत्येन्द्र (प्रह्लाद) यह देखकर निवृत्त हुए और शीघ्रही रथपर चढ़कर धनुषले तर्कशसे बाणोंको निकालने लगे ॥ ४ ॥ वेगसे धनुषको खींचकर शीघ्रही क्रोधसे अन्ध हो गृद्धपत्र लगे बाणोंको उनके उद्देशसे छोड़े ॥ ५ ॥ नारायणने उन अर्द्धचन्द्रबाणोंको आतेही अपने बाणोंसे शीघ्रही छेदनकर और दूसरे बाणोंसे दैत्यपतिको निर्भिन्न किया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त नारायण दैत्यपति प्रह्लादको और प्रह्लाद नारायणको मर्मभेदी बाणोंसे बद्ध करनेलगे ॥ ७ ॥ इसी समयमें उनके उस लघु, चित्र और सुष्टुभाव युक्त युद्धके देखनेकी इच्छासे आकाशमें देवगण आये ॥ ८ ॥ और महाआनन्दके साथ दुन्दुभी बजाय नारायण और दैत्य प्रह्लादके ऊपर पुष्प वर्षाने लगे ॥ ९ ॥

ततोनिवृत्त्यदैत्येंद्रः समास्थायरथंद्रुतम् ॥ आदायकार्मुकंवीरस्तूणाद्बाणंसमाददे ॥ ४ ॥ आनम्यचापंवेगेनगार्द्धपत्राञ्छिलीमुखान् ॥ मुमो
चसाध्यायतदाक्रोधांधीकृतमानसः ॥५॥ तानापततएवाशुबाणांश्चंद्रार्द्धसन्निभान् ॥ चिच्छेदबाणैरपरैर्निर्बिभेदचदानवम् ॥ ६ ॥ ततोनारायणंदैत्योदैत्यं
नारायणःशरैः ॥ आविध्येतांतदान्योन्यंमर्मभिद्भिरजिह्मगैः ॥ ७ ॥ ततोऽबरेसंनिपातोदेवानामभवन्मुने ॥ दिदृक्षूणांतदायुद्धंलघुचित्रंचसुष्टुच ॥ ८ ॥
ततःसुराणांदुंदुभ्यःखेवाद्यंतमहास्वनाः ॥ पुष्पवर्षमनौपम्यंमुमुचुःसाध्यदैत्ययोः ॥ ९ ॥ ततःपश्यत्सुदैत्येषुगगनस्थेषुतावुभौ ॥ अयुध्येतांमहेष्वासौप्रे
क्षकप्रीतिवर्द्धनम् ॥ १० ॥ बबंधतुस्तदाकाशंतावुभौशरवृष्टिभिः ॥ दिशश्चविदिशश्चैवछादयेतांशरोत्करैः ॥११॥ ततोनारायणश्चापंसमाकृष्यमहामुने ॥
बिभेदमार्गणैस्तीक्ष्णैःप्रह्लादंसर्वमर्मसु ॥१२॥ तदादैत्येश्वरःक्रुद्धश्चापमानम्यवेगवान् ॥ बिभेदहृदयेबाह्वोर्वदनेचनरोत्तमम् ॥१३॥ ततोस्यतोदैत्यपतेःका
र्मुकंमुष्टिबंधनात् ॥ चिच्छेदैकेनबाणेनचंद्रार्धाकारवर्चसा॥१४॥अपश्यतधनुश्छिन्नंचापमादायचापरम्॥अधिज्यंलाघवात्कृत्वाववर्षनिशिताञ्छरान्॥१५॥

इसके उपरान्त दैत्यभी आकाशमें आकर इस चरित्रको देखने लगे, नारायण और प्रह्लादने महाधनुषको धारणकर दर्शकोंकी प्रीतिबढ़ानेवाला युद्ध प्रारम्भ किया ॥ ॥ १० ॥ और ऐसी बाणोंकी वर्षा की कि, जिससे आकाश रुँधगया और सब दिशायें छादित होगईं ॥ ११ ॥ हे महामुने ! इसीसमय नारायणने धनुषको खैंचकर तीक्ष्णबाणोंको छोड़ प्रह्लादके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंको विदारित करदिया ॥ १२ ॥ तब तो दैत्यपति (प्रह्लाद) नेभी क्रोधित हो शीघ्रताके साथ बाण छोड़कर नरोत्तम (नारायण) का हृदय मुख और दोनों भुजाओंको विद्ध करदिया ॥ ॥ १३ ॥ नारायणने बाणवर्षानेमें प्रवृत्त दैत्यपति (प्रह्लाद) के कार्मुकका मुष्टिबन्ध अर्द्धचन्द्राकार एकबाणसे छिन्न भिन्न करदिया ॥ १४ ॥ प्रह्लादजी इस अवस्थामें धनुषको देखकर उसीसमय दूसरे धनुषको ले हाथकी शीघ्रता दिखा

उससे ज्या (प्रत्यञ्चा) योजनकर सम्पूर्ण तीक्ष्णबाणोंको वर्षाने लगे ॥ १५ ॥ नारायणने उन सब बाणोंको छेदनकर भयङ्कर बाण वर्षाय उसे आच्छादित कर क्षुरके प्रहारसे उसके उस कार्मुकको छिन्न करदिया ॥ १६ ॥ इसप्रकारसे उनके वारम्वार धनुषके छेदनकरनेपर दैत्यपति (प्रह्लाद) भी वारम्वार दूसरे धनुषको ग्रहण करने लगा. हे मुने ! प्रह्लादने जितनेही धनुष और बाण ग्रहण किये, नारायणने उन सबको हाथोंकी चतुराईसे छेदन करदिया ॥ १७ ॥ इसप्रकारसे जब सम्पूर्ण धनुष कटगये तब दितिजेश्वर (प्रह्लादजी) ने सर्व लोकमय, दीर्घ, दारुण, दृढ़परिघको ग्रहण किया ॥ १८ ॥ हे महामुने ! उस परिघको ग्रहणकर जैसेही यह घुमानेलगे कि, तैसेही नारायणने नाराच (बाण) से उसका छेदन कर दिया ॥ १९ ॥ परिघके छिन्न होतेही दैत्येश्वर श्रीमान् प्रह्लादजीने

तानप्यस्यशरान्साध्यश्छित्त्वाबाणैरवाकिरत् ॥ कार्मुकंचक्षुरप्रेणचिच्छेदपुरुषोत्तमः ॥१६॥ छिन्नंछिन्नंधनुर्दैत्यस्त्वन्यदन्यत्समाददे॥समादत्ततदासाध्यो
मुनेचिच्छेदलाघवात् ॥ १७ ॥ संछिन्नेष्वथचापेषुजग्राहदितिजेश्वरः ॥ परिघंदारुणंदीर्घंसर्वलोहमयंदृढम् ॥१८॥ परिगृह्याथपरिघंभ्रामयामासदानवः ॥
भ्राम्यमाणंसचिच्छेदनाराचेनमहामुने ॥ १९ ॥ छिन्नेतुपरिघेश्रीमान्प्रह्लादोदानवेश्वरः ॥ मुद्गरंभ्राम्यवेगेनप्रचिक्षेपनरोत्तमे ॥ २० ॥ तमापतंतंबलवान्मार्ग
णैर्दशभिर्मुने ॥ चिच्छेददशधासाध्यःसच्छिन्नोन्यपतद्भुवि ॥ २१ ॥ मुद्गरेवितथेजातेपाशमादायवेगवान् ॥ प्रचिक्षेपनराग्र्यायतंचाचिच्छेदधर्मजः ॥२२॥
पाशेछिन्नेततोदैत्यःशक्तिमादायचिक्षिपे ॥ तांचचिच्छेदबलवान्क्षुरप्रेणमहातपाः ॥ २३ ॥ छिन्नेषुतेषुशस्त्रेषुदानवोन्यन्महद्धनुः ॥ समादायततोबाणै
रवतस्तारनारद ॥ २४ ॥ ततोनारायणोदेवोदैत्यनाथंजगद्गुरुः ॥ नाराचेनाजघानाथहृदयेऽसुरतापनः ॥ २५ ॥ सभिन्नहृदयोब्रह्मन्देवेनाद्भुतकर्मणा ॥
निपपातरथोपस्थेतमपोवाहसारथिः ॥ २६ ॥

वेगमें भरकर मुद्गरको घुमाय नारायणके ऊपर छोड़ा ॥ २० ॥ हे मुने ! महाबलवान् नारायणने उस आतेहुए मुद्गरको देखकर दशबाणोंसे उसे दश खंड करके फेंकदिया, तब मुद्गरने छिन्न होकर पृथ्वीका आश्रय किया ॥ २१ ॥ मुद्गरके व्यर्थ होतेही उसने पाशास्त्रको ग्रहणकर नारायणके ऊपर छोड़ा. उन धर्म नंदन नारायणनेभी उसी समय उसे छेदन करडाला ॥ २२ ॥ पाशके छिन्न होतेही दैत्यपति प्रह्लादने शक्तिको ग्रहणकर छोड़ा. महाबली, महातपस्वी नारायणने क्षुरके प्रयोगसेही उसे काटकर फेंकदिया ॥ २३ ॥ हे नारद ! इन सम्पूर्ण शस्त्रोंके छिन्न होनेपर दैत्यपतिने दूसरे महाधनुषको ग्रहणकर बाणोंकी वर्षासे नाराणको आच्छादित करदिया ॥ २४ ॥ तब जगद्गुरुदेव असुरसंहारी नारायणने नाराचको चलाकर उस दैत्यपतिके हृदयको आहत किया ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकारसे

अद्भुतकर्मा देव नारायणकेद्वारा हृदयके विदारित होनेसे रथमें बैठाहुआ दैत्यपति प्रह्लाद मूर्च्छित होकर गिरगया. यह देखकर सारथीने रणस्थलसे रथको लौटाया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त दैत्येश्वर शीघ्रही चैतन्यको प्राप्तहो अति दृढ़धनुषको ग्रहणकर फिरं युद्धकरनेके लिये आया ॥ २७ ॥ नारायण प्रह्लादजीको युद्धके निमित्त आया हुआ देखकर कहने लगे कि, हे दैत्येन्द्र ! अब जाओ प्रातःकाल युद्ध किया जायगा; अभी संध्यादिक आह्निक कृत्यका समयहै उसे जाकर करो ॥ २८ ॥ अद्भुतकर्मके करनेवाले नारायणके ऐसा कहनेपर दैत्यपतिने नैमिषारण्यमें जाकर आह्निक क्रियाको किया ॥ २९ ॥ हे मुने ! जब इसप्रकारसे युद्ध करते बहुत समय बीतगया, तब एकदिन प्रह्लादने रात्रिको यह विचार किया कि, इस दाम्भिक मुनिको युद्धमें किसप्रकारसे जीतैं ॥ ३० ॥ हे नारद ! इसप्रकार नारायणके साथ दिव्य सहस्रवर्षतक युद्धकरके दैत्यपति प्रह्लाद किसी प्रकारसेभी जयप्राप्त नकरसके ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त जब सहस्रवर्षतक लड़नेसे नारायण परास्त नहुए तो दानव

ससंज्ञांत्वचिरेणैवप्रतिलभ्यदितीश्वरः ॥ सुदृढंचापमादायभूयोयोद्धुमुपागतः ॥ २७ ॥ तमागतंसंनिरीक्ष्यप्रत्युवाचनराग्रजः ॥ गच्छदैत्येंद्रयोत्स्यामः
प्रातस्त्वाह्निकमाचर ॥ २८ ॥ एवमुक्तोदितीशस्तुसाध्येनाद्भुतकर्मणा ॥ जगामनैमिषारण्यंक्रियांचक्रेतदाह्निकीम् ॥ २९ ॥ एवंयुध्यतिदेवेचप्रह्लादो
थास्मरन्मुने ॥ रात्रौचिंतयतेयुद्धेकथंजेष्यामिदांभिकम् ॥ ३० ॥ एवंनारायणेनासौसहायुध्यतनारद ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतुदैत्योदेवंनचाजयत् ॥ ३१ ॥
ततोवर्षसहस्रांतेह्यजितेपुरुषोत्तमे ॥ पीतवाससमभ्येत्यदानवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ किमर्थंदेवदेवेशसाध्यंनारायणंहरिम् ॥ विजेतुंनाऽद्यशक्रोमिएतन्मे
कारणंवद ॥ ३३ ॥ पीतवासाउवाच ॥ दुर्जयोऽसौमहाबाहुस्त्वयाप्रह्लादधर्मजः ॥ साध्योविप्रवरोधीमान्मृधेदेवासुरैरपि ॥ ३४ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ यद्यसौ
दुर्जयोदेवमयासाध्योरणाजिरे ॥ तत्कथंयत्प्रतिज्ञातंतदसत्यंभविष्यति ॥ ३५ ॥ हीनप्रतिज्ञोदेवेशकथंजीवेतमादृशः ॥ तस्मात्तवाग्रतोविष्णोकरिष्ये
कायशोषणम् ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंदेवाग्रेदानवेश्वरः ॥ शिरःस्नातस्तदातस्थौगृणन्ब्रह्मसनातनम् ॥ ३७ ॥

पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुजीके पास जाकर बोला ॥ ३२ ॥ कि, हे देवदेवेश ! मैं किसकारणसे आजतक नारायणको न जीतसका सो कहिये ॥ ३३ ॥ पीताम्बरधारी विष्णुजी बोले कि, हे प्रह्लाद ! धर्मनंदन महाबाहु नारायणको जीतना तुम्हारा कार्य नहींहै, समस्त देवासुरभी युद्धमें उन श्रीमान् द्विजाग्रणी नारायणको जीतनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे देव! जो रणभूमिमें उन नारायणको जीतनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है तो मैंने जो प्रतिज्ञा की है वह किसप्रकार मिथ्याहोगी ॥ ३५ ॥ हे देवेश ! प्रतिज्ञाके विफल होनेसे मैं किसप्रकारसे प्राणोंको धारण करसकूंगा, इसी कारणसे हे विष्णो ! आपके सन्मुखही मैं शरीरको निराहार व्रतसे शोषणकर त्याग दूंगा ॥ ३६ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, दैत्यपति प्रह्लाद विष्णुजीके सामने इसप्रकारके वचन कहकर उसीसमय शिरसे स्नानकर सनातन ब्रह्मका जप

करते हुए स्थित हुए ॥ ३७ ॥ यह देखकर पीतवसन विष्णु दैत्यपतिसे बोले कि, जाओ ! भक्तिकेद्वारा तुम उनको जीत सकोगे, युद्ध करके कदापि नहीं जीत
सकते ॥ ३८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे देव ! यद्यपि त्रिलोकीमें कोई भी उनको जीतनेमें समर्थ नहींहै, परन्तु तौ भी तुम्हारे क्रोधकी तौ बातही क्या है बरन् तुम्हारे
प्रसादसेही वह मेरे सन्मुख कदापि नहीं ठहर सकते ॥ ३९ ॥ देखो मैं ने आपही की कृपासे त्रिलोकी और इन्द्रकोभी जीतलिया था, इसकारण धर्मनंदनमें चाहैं
कितनी ही सामर्थ्य क्यों न हो परन्तु मैं अवश्यही उनको जीत सकता था पर क्यों नहीं जीतसका ॥ ४० ॥ पीतवासा बोले कि, हेदानवश्रेष्ठ ! मैंही उस नारायण रूपसे
सम्पूर्ण लोकोंके प्रति करुणा प्रकाशकर धर्मके प्रवर्त्तनके अर्थ तपस्या करताहूं ॥ ४१ ॥ इसकारण हे दानव ! जो जयकी प्रार्थना करतेहो तौ उनकी आराधना करो भक्तिसे

ततोदैत्यपतिंविष्णुःपीतवासाऽब्रवीद्वचः ॥ गच्छजेष्यसिभक्त्यातंनयुद्धेनकदाचन ॥ ३८ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ असौयद्यजयोदेवत्रैलोक्येष्वपिसुव्रत ॥
नस्थातुंत्वत्प्रसादेनशक्यंकिमुतरोषतः ॥ ३९ ॥ मयाजितंदेवदेवत्रैलोक्यमपिसुव्रत ॥ जितोयंत्वत्प्रसादेनशक्रःकिमुतधर्मजः ॥४०॥ पीतवासाउवाच ॥
सोऽहंदानवशार्दूललोकानामनुकंपया ॥ धर्मप्रवर्त्तनार्थायतपश्चर्यांसमास्थितः ॥ ४१ ॥ तस्माद्यदीच्छसिजयंतमाराधयदानव ॥ तंपराजेष्यसेभक्त्यात
स्माच्छुश्रूषधर्मजम् ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्युक्तःपीतवस्त्रेणदानवेंद्रोमहात्मना ॥ अब्रवीद्वचनंहृष्टःसमाहूयांधकंमुने ॥ ४३ ॥ प्रह्लादउवाच ॥
दैत्याश्चदानवाश्चैवपरिपाल्यास्त्वयांधक॥ मयोत्सृष्टमिदंराज्यंप्रतीच्छत्वंमहीभुज॥४४॥इत्येवमुक्तोजग्राहराज्यंहैरण्यलोचनः ॥ प्रह्लादोपितदागच्छत्पुण्यं
बदरिकाश्रमम् ॥४५॥ दृष्ट्वानारायणंदेवंनरंचदितिजेश्वरः ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाववंदेचरणौतयोः ॥४६॥ तमुवाच महातेजावाक्यंनारायणोव्ययः ॥ कि
मर्थंप्रणतोसीहमामजित्वामहासुर ॥४७॥ प्रह्लादउवाच ॥ कस्त्वांजेतुंप्रभोशक्तःकस्त्वत्तःपुरुषोऽधिकः ॥ त्वंहिनारायणोऽनंतःपीतवासाजनार्दनः ॥४८॥

निश्चयही तुम उनको जीतसकोगे, इसनिमित्त अब उन धर्मनंदनकी सेवा शुश्रूषा करो॥ ४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे मुने ! महात्मा पीतवासाके इसप्रकार कहनेपर
दानवेन्द्र प्रह्लादने हर्षित होकर अन्धकको बुलाया ॥ ४३ ॥ प्रह्लादने कहा हे अंधक ! आप दैत्य और दानवोंका पालनकर्ता हैं, मैंने यह राज्य छोडा हेमहीपते !
आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ४४ ॥ हिरण्याक्षतनय अंधकने इसप्रकार कहे जाकर राज्यको ग्रहण किया और प्रह्लादजी अत्यन्त पवित्र बदरिकाश्रमको गये ॥ ४५ ॥
वहां देवादिदेव नर और नारायण दोनोंको देखकर प्रह्लादने हाथ जोडकर उन दोनोंके चरणोंकी वंदना की ॥ ४६ ॥ यह देखकर अविनाशी महात्मा नारायण उनसे
बोले कि, हेमहाअसुर ! हमको नजीतकर किसकारणसे प्रणाम करतेहो ॥ ४७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हेप्रभो ! कौन पुरुष आपको जीतसकताहै अथवा कौनपुरुष

आपकी अपेक्षा उत्कर्ष युक्त है ? आप अनन्त (अविनाशी) नारायणहैं; आप पीतवासा जनार्दनहैं ॥ ४८ ॥ आप देव पुंडरीकाक्ष हैं आप शार्ङ्गचापधारी विष्णुहैं, आप अविनाशी महेश्वर हैं, आप नित्यवर्तमान पुरुषोत्तम हैं ॥ ४९ ॥ योगीगण आपका ध्यान करतेहैं, महर्षिगण आपकी अर्चना करतेहैं, स्नातकगण आपका जप करतेहैं, और याज्ञिकगण आपका यजन करतेहैं ॥ ५० ॥ आप अच्युत, हृषीकेश, चक्रपाणि और पृथ्वीधारणकरनेवाले हो, आपही मत्स्य, हयग्रीव और कूर्मावतारके धारण करनेवाले हो ॥ ५१ ॥ आपही हिरण्याक्षके शत्रु वराहमूर्तिके धारणकरनेवाले हो और मेरे पिता हिरण्यकशिपुके नाशकरनेहारे भगवान् नृसिंहजीभी आपही हैं ॥ ५२ ॥ हे विभो ! हे नाथ ! हे खगेन्द्रकेतो ! (गरुड़ध्वज !) आपही ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र और अग्निहैं, आपही यम, वरुण और वायु हैं, आपही सूर्य और चंद्रमाहैं, आपही सब स्थावर और जंगमादिकारण हो ॥ ५३ ॥ आप भूमि, जल, तेज, मरुत्, व्योम हो, आप सहस्र २ मूर्तिमें प्रगट होकर सम्पूर्ण जगत्में विराजमान् रहतेहो, हे

त्वंदेवःपुंडरीकाक्षस्त्वंविष्णुःशार्ङ्गचापधृक् ॥ त्वमव्ययोमहेशानशाश्वतःपुरुषोत्तम॥४९॥त्वांयोगिनश्चिंतयंतिचार्चयंतिमनीषिणः॥ जपंतिस्नातकास्त्वां
चयजंतित्वांचयाज्ञिकाः ॥५०॥ त्वमच्युतोहृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः ॥ महामीनोहयशिरास्त्वमेववरकच्छपः॥५१॥हिरण्याक्षरिपुःश्रीमान्भगवान्कार्यं
सूकरः ॥ मत्पितुर्नाशमकरोर्भगवानपिकेसरी ॥ ५२ ॥ ब्रह्मात्रिनेत्रोऽमरराड्हुताशःप्रेताधिपोनीरपतिःसमीरः ॥ सूर्योमृगांकोचलजंगमाद्योभवान्विभो
नाथखगेंद्रकेतो ॥ ५३ ॥ त्वंपृथ्वीज्योतिराकाशंजलंभूत्वासहस्रशः ॥ त्वयाव्याप्तंजगत्सर्वंकस्त्वांजेष्यतिमाधव ॥५४॥ भक्त्यायदिहृषीकेशतोषमेषि
जगद्गुरो ॥ नान्यथात्वंप्रशक्तोसिजेतुंसर्वगतोव्ययः ॥ ५५ ॥ भगवानुवाच ॥ परितुष्टोस्मितेदैत्यस्तवेनानेनसुव्रत ॥ भक्त्यात्वनन्ययाचाहंत्वयादैत्यपरा
जितः ॥५६ ॥ पराजितश्चपुरुषोदैत्यदंडंप्रयच्छति ॥ दंडार्थंतेप्रदास्यामिवरंवृणुयमिच्छसि ॥५७॥ प्रह्लादउवाच ॥ नारायणवरंयाचेयत्त्वंमेदातुमर्हसि ॥
तन्मेपापंलयंयातुशारीरंमानसंतथा ॥ ५८ ॥ वाचिकंचजगन्नाथयत्त्वयासहयुध्यतः ॥ नरेणयद्वाप्यभवद्वरमेनंप्रयच्छमे ॥ ५९ ॥

माधव ! (लक्ष्मीपते !) कौन आपको जीतसकताहै ? ॥ ५४ ॥ आप हृषीकेश और जगद्गुरुहैं; यदि जो आप भक्तिसे संतुष्ट होतेहैं तो ऐसा होनेसे आपको जीत सकताहूं, अन्यथा आपको जीतनेकी कोईभी सामर्थ्य नहीं है, आप सर्वान्तर्यामी और अविनाशीहैं ॥ ५५ ॥ भगवान् बोले हे सुव्रत ! तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं संतुष्ट हुआहूं, हे दैत्य ! तुमने इस अनन्यभक्तिसे मुझे जीतलिया ॥ ५६ ॥ हे दैत्य ! पराजितहोनेपर पुरुषको दंड देनाहोताहै, इसकारण मैं दंडके निमित्त तुमको वर दूंगा, जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो कहो ॥ ५७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, जो आप मुझे वर देना चाहतेहैं तो मैं वर मांगताहूं, हे नारायण ! हे जगन्नाथ ! दोनों महानुभावोंके साथ युद्धकरनेसे मुझे जो शारीरिक, मानसिक और वाचिक पाप हुआहै उसका नाश होजाय. हे भगवन् ! मुझे आप यही वरदान दीजिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

नारायण बोले कि, हे दैत्येन्द्र ! आपने जो प्रार्थना की वह सिद्धहोगी, तुम्हारे पापोंका क्षय होगा, हे प्रह्लाद ! अब दूसरा वर मांगो वह भी मैं तुम्हैं दूंगा ॥ ६० ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे विष्णो ! मुझमें जिस २ बुद्धिका उदय हो सो वही २ बुद्धि तुम्हारेही आश्रितहो, देवार्चनमें निरतहो और चित्त तुममें लगै, और तुम्हारेही परायणहो ॥ ६१ ॥ नारायण बोले कि, हे असुर ! ऐसाही होगा, फिर इच्छानुसार तीसरा वर मांगो, हेमहाबाहो ! मैं किसीप्रकारकाभी विचार न करके उसे दूंगा ॥ ६२ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे अधोक्षज ! आपके प्रसादसे मैं ने सब कुछ प्राप्त किया है, आपके चरणारविन्दोंकी सेवाकरनेमें मैं सर्वदा रतरहूं ॥ ६३ ॥ नारायणजी बोले कि, अच्छा ! यही होगा, इसके अतिरिक्त और यहभी होगा कि, हमारे प्रसादसे तुम नित्य अक्षय, अव्यय, अजर और अमर होंगे ॥

नारायणउवाच ॥ एवंभवतुदैत्येंद्रपापंतेयातुसंक्षयम् ॥ द्वितीयंप्रार्थयवरंतंददामितवासुर ॥ ६० ॥ प्रह्लादउवाच ॥ यायाजायेतमेबुद्धिःसासाविष्णोत्वदाश्रिता ॥ देवार्चनेचनिरतात्वच्चित्तात्वत्परायणा ॥ ६१ ॥ नारायणउवाच ॥ एवंभविष्यत्यसुरवरमन्यंयमिच्छसि ॥ तंवृणीष्वमहाबाहोप्रदास्याम्यविचारयन् ॥ ६२ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ सर्वमेवमयालब्धंत्वत्प्रसादादधोक्षज ॥ त्वत्पादपंकजाभ्यांहिरतिरस्तुसदामम ॥ ६३ ॥ नारायणउवाच ॥ एवमस्त्वपरंचास्तुनित्यमेवाक्षयोव्ययः ॥ अजरश्चामरश्चापिमत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ ६४ ॥ गच्छत्वंदैत्यशार्दूलस्वमावासंक्रियारतः ॥ नकर्मबंधोभवतोमच्चित्तस्यभविष्यति ॥ ६५ ॥ प्रशासयन्नमून्दैत्यान्राज्यंपालयशाश्वतम् ॥ स्वजातिसदृशंदैत्यकुरुधर्ममनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्युक्तोलोकनाथेनप्रह्लादोदेवमब्रवीत् ॥ कथंराज्यंसमादास्येपरित्यक्तंजगद्गुरो ॥ ६७ ॥ तमुवाचजगत्स्वामीगच्छत्वंनिजमाश्रमम् ॥ हितोपदेष्टादैत्यानांदानवानांतथाभव ॥ ६८ ॥ नारायणेनैवमुक्तःसतदादैत्यनायकः ॥ प्रणिपत्यविभुंतुष्टोजगामनगरंनिजम् ॥ ६९ ॥ दृष्टःसभाजितश्चापिदानवैरंधकेनच ॥ निमंत्रितश्चराज्यायनप्रत्यैच्छत्सनारद ॥ ७० ॥

॥ ६४ ॥ अब हे दैत्येश्वर प्रह्लाद ! अपने स्थानको जाओ, क्रियामें रतहो हममें चित्तको अर्पणकरो तुम्हैं कर्मबंधनमें नहीं पड़ना होगा ॥ ६५ ॥ अब इन सम्पूर्ण दैत्योंका शासन करतेहुए शाश्वत राज्यका पालन करो और स्वजातिके समान अति उत्तम धर्मका अनुष्ठान करो ॥ ६६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, लोकनाथ नारायणके ऐसा कहनेपर प्रह्लादजीने कहा हेजगद्गुरो ! मैंने राज्यको त्यागकरदियाहै; फिर अब किसप्रकारसे उसका ग्रहण करूं ॥ ६७ ॥ जगत्के स्वामी नारायण बोले तुम अपने आश्रमको जाओ दैत्य और दानवोंके हितका उपदेशदेनेवाले हो ॥ ६८ ॥ नारायणके इसप्रकार कहनेपर प्रह्लादजी उन्हैं प्रणामकर संतुष्टहो अपने नगरको गये ॥ ६९ ॥ हेनारद ! अंधक और दानवोंने इन्हैं आयाहुआ देखकर इनका उचित सत्कार किया और पुनः राज्यको ग्रहणकरनेके निमित्त

निमंत्रित किया; पर यह उसमें पराङ्मुख हुए, अर्थात् राज्यग्रहण न किया॥७०॥ इसप्रकारसे वह प्रह्लादजी राज्यको त्यागकर दानवेन्द्रोंको सन्मार्गमें नियोजितकर और सर्वदा अप्रमेयस्वरूप केशवका ध्यान स्मरणकर योगबलसे विशुद्धदेह होकर रहनेलगे॥७१॥हे नारद ! पूर्वकालमें पुरुषोत्तम नारायणसे दानवराज प्रह्लाद इसप्रकारसे पराजितहोकर राज्य त्याग, सबके विधाता उन नारायणमेंही मनको लगाकर रहा ॥ ७२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां प्रह्लादवरप्रदानं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ नारदजी बोले–कि, हे मुने ! प्रह्लादजी तो सनातन राजधर्मको विशेष जानते थे, फिर उन्होंने किसप्रकारसे नेत्रहीन अंधकको राज्यपर अभिषेकित किया ? ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हिरण्याक्षकी जीवित अवस्थामें उसने फिर नेत्रोंको प्राप्तकियाथा, इसीकारण प्रह्लादजीने उनको अपने राज्यपर अभिषेकित किया ॥ २ ॥ नारदजी बोले कि, हेसुव्रत ! अंधकके राज्यपदपर अभिषेकित होनेपर उसने किसप्रकारका अनुष्ठान किया था और देवताओंके साथ उसने किसप्रकारका व्यवहार किया सो शीघ्रही मेरे निकट कहिये ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! दैत्येन्द्र हिरण्याक्षके पुत्र अंधकके राज्यपर अभिषेकित होनेपर तपस्याके साथ देवताओंके भी ईश्वर शूलपाणि त्रिलोचनकी आराधना करके ॥४ ॥ सुर सिद्ध, ऋषि और पन्नगोंसे अजय रहूं और मरूं नहीं, अग्निसे न जलूं और जलमें नडूबूं न गलूं यह वर मांगा अर्थात् सुर, सिद्ध, ऋषि, पन्नग, अग्नि और जल इनका बल मुझपर कुछ न चलै ॥ ५ ॥ इसप्रकार वरको प्राप्तकर राज्य पालन करने लगा और शुक्राचार्यको पुरोहित बनाकर निश्चिन्त हृदयसे वास करता हुआ ॥६ ॥ इसके उपरान्त उस अंधक दैत्यने देवताओंके जीतनेका उद्योग किया और सम्पूर्ण पृथ्वीपर आक्रमण

राज्यंपरित्यज्यमहासुरेंद्रोन्ययोजयत्सत्पथिदानवेंद्रान् ॥ ध्यायन्स्मरन्केशवमप्रमेयंतस्थौतदायोगविशुद्धदेहः ॥ ७१ ॥ एवंपुरानारददानवेंद्रोनारायणेनोत्तमपूरुषेण ॥ पराजितश्चापिविमुच्यराज्यंतस्थौमनोधातरिसन्निवेश्य ॥७२॥ इतिश्रीवामनपुराणेप्रह्लादवरप्रदानोनामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ नारदउवाच ॥ नेत्रहीनःकथंराज्येप्रह्लादेनांधकोमुने ॥ अभिषिक्तोजानतापिराजधर्मंसनातनम् ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ लब्धचक्षुरसौभूयोहिरण्याक्षेपिजीवति ॥ ततोऽभिषिक्तोदैत्येनप्रह्लादेननिजेपदे ॥२॥ नारदउवाच ॥ सचराज्येभिषिक्तस्तुकिमाचरतसुव्रत ॥ देवादिभिःसहकथंसमास्तेतद्वदाशुमे ॥३॥ पुलस्त्यउवाच राज्येऽभिषिक्तोदैत्येंद्रोहैरण्याक्षस्तदांधकः ॥ तपसाराध्यदेवेशंशूलपाणिंत्रिलोचनम् ॥ ४ ॥ अजेयत्वमवध्यत्वंसुरसिद्धर्षिपन्नगैः ॥ अदाह्यत्वंहुताशेनअक्लेद्यत्वंजलेनच ॥ ५ ॥ एवंसवरलब्धस्तुदैत्योराज्यमपालयत् ॥ शुक्रंपुरोहितंकृत्वासमध्यास्तेततोऽधकः ॥ ६॥ ततश्चक्रेसमुद्योगंदेवानामंधकोऽसुरः ॥ आक्रम्यवसुधांसर्वान्मनुजेंद्रान्पराजयत् ॥ ७ ॥

---

१ ध्यान चिन्ताहै, जिसे स्मरणजनक व्यापार कहसकतेहैं, स्मरण तो उसके जन्य है, इतना ध्यान और स्मरणमें भेद जानना ।

कर समस्त राजाओंको पराजित किया ॥ ७॥ और पराजित हुए राजाओंको अपनी सहायताके निमित्त नियुक्तकर विचित्र दर्शनीय मेरुपर्वतके शिखरपर गया ॥ ८ ॥
इस ओर इन्द्रभी सम्पूर्ण देवताओंकी सेनाको साथले ऐरावत हाथीपर चढ़कर अमरावतीकी रक्षा करके फिर निकले ॥९॥ इसके उपरान्त महातेजस्वी और लोकपालगण
अपने २ वाहनोंपर चढकर आयुधोंको ले उनके पीछे चले ॥ १० ॥ इसके उपरान्त हाथी, घोडे और रथादि समेत देवताओंकी सेनाभी विचित्रकर्मा इन्द्रके साथ अत्यन्त
वेगसे चली ॥ ११ ॥ उस सेनाके आगे बारहों आदित्य पीछे त्रिलोचन (महादेवजी) बीचमें विश्वेदेवगण, साध्यगण,आश्विनीकुमार और मरुद् (वायु) गणों करके सहित
आठवसु, यक्ष और विद्याधर आदि सम्पूर्ण देवता अपने २ वाहनोंपर चढ़कर चले ॥ १२ ॥ नारदजी बोले कि, हे भगवन् ! रुद्रादिके सभी वाहनोंका विस्तार सहित

पराजित्यमहीपालान्सहायार्थेनियोज्यच ॥ ततस्तुमेरुशिखरंजगामाद्भुतदर्शनम् ॥८॥ शक्रोपिसुरसैन्यानिसमुद्योज्यमहागजम् ॥ समारुह्यामरावत्यांगु
प्तिंकृत्वापुनर्ययौ ॥९॥ शक्रस्यानुतथैवान्येलोकपालामहौजसः॥आरुह्यवाहनंस्वंस्वंस्वायुधानियर्युर्बहिः ॥१०॥ देवसेनापिचसमंशक्रेणाद्भुतकर्मणा ॥
निर्जगामातिवेगेनगजवाजिरथादिभिः ॥ ११ ॥ अग्रतोद्वादशादित्याःपृष्ठतश्चत्रिलोचनः ॥ मध्येऽष्टौवसवोविश्वेसाध्याश्विमरुतांगणैः ॥ यक्षविद्याधराद्या
श्चस्वंस्वंवाहनमास्थिताः ॥ १२ ॥ नारदउवाच ॥ रुद्रादीनांवदस्वेहवाहनानिचसर्वशः ॥ एकैकस्यापिधर्मज्ञपरंकौतूहलंमम ॥१३॥ पुलस्त्यउवाच ॥
शृणुष्वकथयिष्यामिसर्वेषामपिनारद ॥ वाहनानिसमासेनएकैकस्यानुपूर्वशः ॥ १४ ॥ दनुहस्ततलोत्पन्नंमहासत्त्वंमहागजम् ॥ श्वेतवर्णंमहावीर्यंदेवराज
स्यवाहनम् ॥ १५ ॥ रुद्रौजःसंभवंभीमंकृष्णवर्णमनोजवम् ॥ पौंड्रकंनाममहिषंधर्मराजस्यनारद ॥ १६ ॥ रुद्रकर्णमलोद्भूतंश्यामंजलधिसंज्ञकम् ॥
शिशुमारंदिव्यगतिंवाहनंवरुणस्यच ॥ १७ ॥ रौद्रंशकटचक्राक्षंशैलाकारंनरोत्तमम् ॥ अंबिकापादसंभूतंवाहनंधनदस्यतु ॥ १८ ॥

वर्णन कीजिये एक २ को क्रमक्रमसे सुननेके निमित्त मुझे अत्यन्तही उत्कंठा उत्पन्नहुई है ॥ १३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हेनारद ! श्रवण करो मैं सम्पूर्ण वाहनोंका
वर्णन क्रमानुसार संक्षेपसे करूंगा ॥ १४ ॥ देवराज इन्द्रका वाहन महागज ऐरावतहै, यह ऐरावत महावीर्यवान् और महासत्वसम्पन्न दनुके हस्ततलसे उत्पन्न और
यह श्वेतवर्णका है ॥ १५ ॥ हे नारद ! धर्मराजका वाहन पौंड्रक नामक महिष है यह महिष रुद्रके तेजांशसे उत्पन्न और अत्यन्त भयंकर मनकी समान वेगयुक्त और
कृष्ण वर्ण है ॥ १६ ॥ वरुणके वाहन दिव्यगति श्यामवर्ण शिशुमार (भेरिआ) रुद्रके कर्णमलसे उत्पन्न हुआ है इसका नाम जलधि है ॥ १७ ॥ कुबेरका वाहन
अम्बिकाके पादसे उत्पन्न नरोत्तम उसकी आकृति पर्वतकी समान और नेत्र उसके शकट चक्रकी समान और उसकी प्रकृतिभी अत्यन्त भयंकर है ॥ १८ ॥

हेमहामुने ! एकादश रुद्रके वाहन महाबलवान् गंधर्व और दारुण (भयंकर) सर्पेन्द्रगण सम्पूर्ण सुरभिके अंशसे उत्पन्न वृष हैं,यह श्वेतवर्ण और अत्यन्त वेगवान् हैं॥ १९॥
चंद्रमाके रथके वाहन ५०० हंस हैं, हे मुनिसत्तम ! आदित्योंके रथके वाहन हंस और ऊंट हैं ॥ २० ॥ वसुओंके वाहन कुंजर (हाथी) यक्षोंके वाहन नर, किन्न
रोंके वाहन सर्प और अश्विनीकुमारके वाहन तुरंग हैं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मरुद्गणोंके वाहन विकट दर्शनवाले शारंग,कवियोंके वाहन शुक और गंधर्व पैदल थे ॥ २२॥
महातेजस्वी श्रेष्ठ अमरगण इसप्रकारसे अपने २ वाहनोंपर चढकर बख्तर पहन हर्षयुक्तहृदयसे युद्धके निमित्त चले ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि, हे मुने ! तुमने देवताओंके
वाहनोंका वर्णन किया, अब इस समय आप दैत्योंके वाहनोंका ठीक २ वर्णनकीजिये ॥ २४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे द्विजोत्तम ! दानवादिके वाहनोंका वर्णन

एकादशानांरुद्राणांवाहनानिमहामुने ॥ गंधर्वाश्चमहावीर्याभुजगेंद्राःसुदारुणाः ॥ श्वेतानिसौरभेयाणिवृषाण्युग्रजवानिच ॥ १९ ॥ रथंचंद्रमसश्चार्द्धसह
स्रंहंसवाहनम् ॥ हयोष्ट्ररथवाहाश्चआदित्यामुनिसत्तम ॥ २० ॥ कुंजरस्थाश्ववसवोयक्षाश्चनरवाहनाः ॥ किन्नराभुजगारूढाहयारूढौतथाश्विनौ ॥ २१ ॥
सारंगाधिष्ठिताब्रह्मन्मरुतोघोरदर्शनाः ॥ शुकारूढाश्चकवयोगंधर्वाश्चपदातिनः ॥ २२ ॥ आरुह्यवाहनान्येवंस्वानिस्वान्यमरोत्तमाः ॥ संनह्यनिर्ययुर्हृ
ष्टायुद्धायसुमहौजसः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ गदितानिसुरादीनांवाहनानित्वयामुने ॥ दैत्यानांवाहनान्येवयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २४॥ पुलस्त्य उवाच ॥
शृणुष्वदानवादीनांवाहनानिद्विजोत्तम ॥ कथयिष्यामितत्त्वेनयथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥ २५ ॥ अंधकस्यरथोदिव्योयुक्तःपरमवाजिभिः ॥ कृष्णवर्णःसहस्रार
स्त्रिनल्वपरिमाणवान् ॥ २६ ॥ प्रह्लादस्यरथोदिव्यश्चंद्रवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ उह्यमानस्तथाष्टाभिःश्वेतरुक्ममयःशुभः ॥ २७ ॥ विरोचनस्यचगजःकुजं
भस्यतुरंगमः ॥ जंभस्यतुरथोदिव्योहयैःकांचनसन्निभैः ॥ २८ ॥ शंकुकर्णस्यतुरगोहयग्रीवस्यकुंजरः ॥ रथोमयस्यविख्यातोदुंदुभेश्चमहोरगः ॥२९॥
शंबरस्यविमानोभूदयःशंकोर्मृगाधिपः ॥ बलिवृत्रौचबलिनौगदामुसलधारिणौ ॥ ३० ॥

करता हूं, यथार्थरीतिसे कहूंगा, तुम्हें ठीक २ मन लगाकर श्रवण करना होगा ॥ २५ ॥ अंधकका दिव्य रथ श्रेष्ठघोड़ोंसे युक्त है, और उसका वर्ण काला है,
सहस्र चक्रोंसे युक्त बारहसौ हाथ परिमाणवाला है ॥ २६ ॥ प्रह्लादजीका दिव्य रथ श्वेतरत्नोंसे जटित चंद्रमाके समान वर्णवाले आठ घोड़ोंसे युक्त है ॥ २७ ॥
विरोचनका वाहन गज है, कुजम्भका वाहन अश्व है, जम्भका वाहन दिव्य रथ है, उसमें कांचनके समान वर्णवाले घोड़े जुतरहे हैं ॥ २८ ॥ शंकुकर्णका वाहन अश्व
है, हयग्रीवका वाहन हाथी है, मयका वाहन रथ जो विख्यात है, दुन्दुभिका वाहन विशाल सर्प है ॥ २९ ॥ शम्बरका वाहन विमान, अयःशंकुका वाहन सिंह है

और महाबलवान् बलि और व्रत यह दोनों गदा, मूसल धारण किये ॥ ३० ॥ यह दोनों पाद चारीही देवताओंकी सेनाके सन्मुख जायकर भिड़गये; इसके उपरान्त अत्यन्त भयंकर संकुल (गड़मड्ड) संग्राम होने लगा ॥ ३१ ॥ हे नारद ! पीतवर्णकी धूलिसे सम्पूर्ण लोक ढकगये उसके प्रभावसे पिता पुत्रको और पुत्र पिताको न पहँचान सका ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत ! उस समय कोई तो अपने आप मारनेलगा, कोई दूसरेकोभी अर्थात् जो अपनेको नहींभी मारता है उसेभी वह उसको विना जानेही मारने लगा, इसप्रकार बड़े वेगवान् एकरथी दूसरे रथीके ऊपर आक्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार गजारोही गजेन्द्रारोहीके और अश्वारोही अश्वारोहीके ऊपर आक्रमण करनेपर पैदलभी क्रोधित होकर रणोत्कटरोही पैदलोंके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ इसप्रकारसे सभी परस्पर जयकी अभिलाषासे परवशहो परस्परके प्रति आघात करने लगे. हे मुने ! तब वह देवासुरोंका घोर संग्राम होनेपर ॥ ३५ ॥ उस युद्धक्षेत्रमें एक भयंकर नदी धूलिको शान्त करतीहुई बहने

पद्भ्यांदैवतसैन्यानिअभिद्रवितुमुद्यतौ ॥ ततोरणोभूत्तुमुलःसंकुलोतिभयंकरः ॥ ३१ ॥ रजसासंवृतोलोकःपिंगवर्णेननारद ॥ नाज्ञासीच्चपितापुत्रंनपुत्रः
पितरंतथा ॥ ३२ ॥ स्वानेवान्येनिजघ्नुर्वैपरानन्येचसुव्रत ॥ अभिद्रुतोमहावेगोरथोपरिरथस्तदा ॥ ३३ ॥ गजोमत्तगजेंद्रंचसादीसादिनमन्वगात् ॥ पदाति
रपिसंक्रुद्धःपदातिनमथोल्बणम् ॥३४॥ परस्परंचप्रत्यघ्नन्नन्योन्यजयकांक्षिणः ॥ ततस्तुसंकुलेतस्मिन्युद्धेदैवासुरेमुने ॥ ३५ ॥ प्रावर्ततनदीघोराशमयं
तीरणेरजः ॥ असृक्तोयारथावर्त्तायोधसंघट्टवाहिनी ॥ ३६ ॥ गजकुंभमहाकूर्माशरमीनादुरत्यया ॥ तीव्राग्रप्रासमकरामहासिग्राहवाहिनी ॥ ३७ ॥
अंत्रशेवालसंकीर्णापताकाफेनमालिनी ॥ गृध्रकंकमहाहंसाश्येनचक्राह्वमंडिता ॥ ३८ ॥ वरवायसकादंबागोमायुश्वापदाकुला ॥ पिशाचमुनिसंकीर्णा
दुस्तराप्राकृतैर्जनैः ॥ ३९ ॥ रथप्लवैःसंतरंतःशूरास्तांप्रजगाहिरे ॥ आगुल्फाहवमज्जंतःसूदयंतःपरस्परम् ॥ समुत्तरंतोवेगेनयोधाजयधनेप्सवः ॥ ४० ॥

लगी, जिसमें रुधिरका जलथा, रथ उसके भँवरथे सम्पूर्ण योधा उसमें बहने लगे ॥ ३६ ॥ गजकुंभ उसका महाकूर्म, सम्पूर्ण बाण उसके मत्स्य, उसके पारहोना अत्यन्तही कठिन है, तीक्ष्ण मांस अग्रभागवाला उसका मकर, और महाखंग उसके ग्राहरूपसे प्रवाहित हुए ॥ ३७ ॥ यह नदी आँतैरूपी शिवारसे आच्छादित, पताकारूपी फेनोंकी परम्परासे परिपूर्ण, गृध्र और कंकरूप महाहंसोंसे युक्त श्येन (शिंकटा) रूप चक्रवाकोंसे मंडित ॥ ३८ ॥ श्रेष्ठ वायसरूप कादम्ब (कलहंस) और गोमायु (सृगाल) रूप जलजन्तुओंसे व्याप्त और पिशाचरूपी मुनियोंसे निषेवित थी, सामान्यलोक उसके उतरनेमें समर्थ नहींथे ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण शूर वीर रथरूपी नौकाकी सहायतासे सन्तरण करनेकी इच्छासे उसके भीतर घुस पडे, उन प्रवृत्तहुओंका गुल्फ (घुटनों) पर्यन्त मग्न होगया; उस अवस्थामें

आपसमें एक दूसरेको निपातित करने लगे, योद्धागण जयरूपी धनसंग्रहकी इच्छासे शीघ्रही उसे उतरने लगे ॥ ४० ॥ इसप्रकारसे भीरुगणोंको भय देनेवाला सुरदैत्य विनाशक भयंकर महायुद्ध प्रवृत्त हुआ. तब यक्ष, राक्षस, अत्यन्त हर्षित हुए और पिशाचगण परस्परमें क्रीड़ा करने लगे ॥ ४१ ॥ मांसके भक्षण करनेवाले पक्षी योद्धाओंके शरीरको आलिंगन कर उनके गाढ़े रुधिरको पी मांसको भक्षण कर उनकीचर्बीको चौंथने लगे; और अपने पंखोंको फैलाकर तुड़क फुड़क कर परस्परमें घोर शब्द करने लगे ॥ ४२ ॥ सृगाल फेत्कार (होआ २) शब्दको करने लगे, योद्धा पृथ्वीपर गिर वेदनासे कातरहो चीत्कार करते हुए और शस्त्रोंके लगनेके तापसे जलके पीनेकी इच्छा करने लगे, तब युद्धभूमि श्मशानकी समान प्रतीत होने लगी ॥ ४३॥ उस सृगालोंके शब्दसे शब्दायमान सुर और असुरोंके भय देनेवाले युद्धके

ततस्तुरौद्रेसुरदैत्यसादनेमहाहवेभीरुभयंकरेऽथ ॥ रक्षांसियक्षाश्चसुसंप्रहृष्टाःपिशाचयूथास्त्वभिरेमिरेच ॥ ४१ ॥ पिबंत्यसृग्गाढतरंभटानामालिंग्यमां
सानिचभक्षयंति ॥ वसांविलुंपंतिचविस्फुरंतिगर्जंत्यथान्योन्यमथोवयांसि ॥ ४२ ॥ मुंचंतिफेत्काररवाञ्शिवाश्चक्रंदंतियोधाभुविवेदनार्त्ताः ॥ शस्त्रप्रतप्तानि
पिबंतिचान्येयुद्धंश्मशानप्रातिमंबभूव ॥४३॥ तस्मिञ्शिवाघोरतरेप्रवृत्तेसुरासुराणांसुभयंकरेहि ॥ युद्धेबभौप्राणपणोपविद्धंद्वंद्वेतिशास्त्रज्ञगतंदुरोदरम् ॥
॥ ४४ ॥ हिरण्यचक्षोस्तनयोरणेंधकोरथेस्थितोवाजिसहस्रयोजिते ॥ मत्तेभपृष्ठस्थितमुग्रतेजसंसमेयिवान्देवपतिंशतक्रतुम् ॥ ४५ ॥ समापतंतंमहिषाधि
रूढंयमंप्रतीच्छन्बलवान्दितीशः ॥ प्रह्लादनामातुरगाष्टयुक्तंरथंसमास्थायसमुद्यतास्त्रः ॥ ४६ ॥ विरोचनश्चापिजलेश्वरंत्वगाज्जंभस्त्वथागाद्धनदंबलाढ्यम् ॥
वायुंसमभ्याच्छतसंचरोथमयोहुताशंयुयुधेमुनींद्र ॥ ४७ ॥ अन्येहयग्रीवमुखामहाबलादितेस्तनूजादनुपुंगवाश्च ॥ सुरान्हुताशार्कवसूरगेश्वरान्द्वंद्वं
समासाद्यमहाबलान्विताः ॥४८॥ गर्जंत्यथान्योन्यमुपेत्ययुद्धेचापानिकर्षंत्यतिवेगिताश्च ॥ मुंचंतिनाराचगणान्सहस्रशआगच्छहेतिष्ठसिकिंबिभेषि॥४९॥

प्रवृत्त होनेमें शास्त्रके जाननेवाले योद्धाओंने प्राणपणरूप द्यूतको युद्धमें लगाया॥ ४४ ॥ तब हिरण्याक्षका पुत्र अंधक सहस्र घोड़े जुते रथमें चढ़कर ऐरावत हाथीकी पीठ पर चढ़ेहुए परमतेजस्वी इन्द्रके साथ युद्ध करनेके निमित्त चला ॥ ४५॥ इस ओर धर्मराज (यम) भैंसेपर चढ़कर आपहुँचे, दितीश्वर बलवान् प्रह्लादजीने आठ घोड़े जुते रथपर चढ़कर सबप्रकारसे अस्त्र उद्यत कर उनके संग युद्धकरनेको गमन किया ॥ ४६ ॥ तब विरोचन वरुणके, जम्भ महाबलवान् कुबेरके, सतसं चार वायुके, और मय अग्निके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ ४७ ॥ हयग्रीव आदि महाबलवान् दैत्यश्रेष्ठोंने अग्नि सूर्य अष्टवसु शेषजी आदि महाबलियोंके साथ द्वन्द्व (दो २ मिलकर) युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ ४८ ॥ वे परस्पर सामने होहोकरअत्यन्त वेगयुक्तहो गर्जन कर बाणोंको खैंच हजारों बाणोंको छोड़कर, आओ !

हे वीर ! खड़ेहो तुम क्यों डरतेहो ? इसप्रकारके वचन कहने लगे ॥ ४९ ॥ और तीक्ष्णबाणोंसे परस्परमें सन्तापित करते तथा अमोघ अस्त्रोंसे चारों ओरको ताड़ित करते मंदाकिनीकी समान शीघ्रतासे बहीहुई रुधिरकी भयंकर नदीको प्रवृत्त करने लगे ॥ ५० ॥ हे नारद ! उग्रवीर वेगवान् सुर और असुर त्रिलोकीके प्राप्तिकी अभिलाषासे उत्साहित और उत्तेजित होकर पिशाच और राक्षसोंकी पुष्टिको बढ़ानेवालीस्रोतस्विनी (नदी) के उतरनेमें प्रवृत्त हुए, तब उनकी अत्यन्तही शोभा प्रगटहुई ॥ ५१ ॥ इसी अवसरमें देवता और असुरोंके बाजे बजने लगे मुनि, सिद्धगण आकाशमें स्थित होकर उनको देखने लगे. जब यह शूर सन्मुखके संग्राममें मारेगये तब अप्सरायें युद्धमेंसे वीरोंको स्वर्गमें ले जाने लगीं ॥ ५२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां देवासुरयुद्धं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले–कि, इसके उपरान्त भीरुपुरुषोंको भय देनेवाला संग्राम होने लगा, सहस्रलोचन राजा इन्द्र विशालधनुषको ग्रहणकर बाणोंको छोड़नेलगे ॥

शरैस्तुतीक्ष्णैरभितापयंतोमंदाकिनीवेगनिभांवहंतीम् ॥ प्रावर्त्तयंतोभयदांनदींचह्यस्त्रैरमोघैरभिताडयंतः ॥ ५० ॥ त्रैलोक्यमाकांक्षिभिरुग्रवेगैःसुरासुरैर्नारदसंप्रबुद्धैः ॥ पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनीमुत्तर्तुमिच्छद्भिरसृङ्नदीबभौ ॥ ५१ ॥ वाद्यंतितूर्याणिसुरासुराणांपश्यंतिखस्थामुनिसिद्धसंघाः ॥ नयंति तानप्सरसोरणाग्राद्धतारणेयेभिमुखास्तुशूराः ॥ ५२ ॥ इति श्रीवामनपुराणेदेवासुरयुद्धंनामनवमोऽध्यायः ॥९॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततःप्रवृत्तेसंग्रामेभीरूणांभयवर्धने ॥ सहस्राक्षोमहाचापमादायव्यसृजच्छरान् ॥ १ ॥ अंधकोपिमहावेगंधनुराकृष्यभास्वरम् ॥ पुरंदरायचिक्षेपशरान्बर्हिणवाससः ॥ ॥ २ ॥ तावन्योन्यंसुतीक्ष्णाग्रैःशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ रुक्मपुंखैर्महावेगैराजघ्नतुरुभावपि ॥ ३ ॥ ततःक्रुद्धःशतमखःकुलिशंभ्राम्यपाणिना ॥ चिक्षेपदैत्यराजायतंददर्शतथांधकः ॥ ४ ॥ आजघानचबाणौघैरस्त्रैःशस्त्रैःसनारद ॥ तान्भस्मसात्तदाचक्रेनागानिवहुताशनः ॥५॥ ततोतिवेगितंवज्रंदृष्ट्वाबलवतांवरः ॥ समाप्लुत्यरथात्तस्थौभुविबाहुसहायवान् ॥ ६ ॥ रथंसारथिनासार्धंसाश्वध्वजसकूबरम् ॥ भस्मकृत्वाथकुलिशमंधकंसमुपाययौ ॥ ७ ॥

॥ १ ॥ यह देखकर अंधकने प्रकाशमान धनुषको खैंचकर शीघ्रतासे अपने तर्कससे बाणोंको निकालकर इन्द्रके निमित्त छोड़े ॥ २ ॥ वे दोनों तीक्ष्ण अग्रभागवाले सन्नत (लम्बे) सोनेके पुंखवाले पर्व और महावेगवान् बाणोंसे परस्परमें एक दूसरे को ताड़न करने लगे ॥ ३॥ तब इन्द्रने क्रोधित होकर रथमें वज्र ले शीघ्रतासे घुमा कर दैत्यराज अंधकके ऊपर प्रहार किया. यह देखकर अंधकने ॥ ४ ॥ विकराल अस्त्र शस्त्रोंको लेकर वज्रके काटनेके निमित्त उसके ऊपर प्रहारकिया, हे नारद ! अग्नि जिसप्रकारसे काष्ठको जलाती है उसीप्रकारसे उस वज्रने उन सब अस्त्र शस्त्रों को भस्मीभूत कर दिया ॥ ५ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ अंधक उस अत्यन्त वेगवान वज्र को आताहुआ देखकर रथसे उतर पृथ्वीमें अपनी भुजाओंकी सहायतासे खड़ा होगया ॥ ६ ॥ तब वह वज्र अश्व, ध्वजा, कूबर (जुआ) और सारथीके साथ उसके

रथको भस्मकर अंधकके समीप पहुँचा ॥ ७ ॥ तब बलवान् अंधक शीघ्रतासे आयेहुए उस वज्रको मुष्टिकके प्रहारसे पृथ्वीपर गेरकर गर्जने लगा ॥ ८ ॥ तब
राजा इन्द्र उसको गर्जता हुआ देखकर उसके ऊपर दृढ़रूपसे बाणोंकी वर्षा करने लगे, तब वह दैत्य उन बाणोंके निवारण करनेके अर्थ उनके सन्मुख चला ॥ ९ ॥
तब अंधकने हाथोंकी मुट्ठियोंसे ऐरावतके मस्तकमें आघात कर और अपनी जंघाओंसे उसकी शूँडको दबाकर उसके विशाल दांतोंको तोड़दिया ॥ १० ॥ इसके
उपरान्त अंधकने शीघ्रताके साथ उसके वामपार्श्वमें आघात कर वारम्वार प्रहार करनेसे जर्जर हुआ उस गजेन्द्र ऐरावतको पृथ्वीमें पटकदिया ॥ ११ ॥ शतक्रतु
(इन्द्र) गिरता हुआ ऐरावतपरसे कूदकर हाथमें वज्रको ले अपनी अमरावती पुरीको चलेगये ॥ १२ ॥ इसप्रकार इन्द्रके चले जानेपर दैत्यपति अंधक हाथों

तमापतंतंवेगेनमुष्टिनाहत्यभूतले ॥ पातयामासबलवाञ्जगर्जचतदांधकः ॥ ८ ॥ तंगर्जमानंवीक्ष्याथवासवःसायकैर्दृढैम् ॥ ववर्षतान्वीरयितुमभ्ययात्स
शतक्रतुम् ॥ ९ ॥ आजघानतलेनेभंकुंभमध्येतदाकरम् ॥ जानुनाचसमाहत्यविषाणंप्रबभंजच ॥ १० ॥ वाममस्यतथापार्श्वंसमाहत्यांधकस्त्वरन् ॥
गजेंद्रंपातयामासप्रहारैर्जर्जरीकृतम् ॥ ११ ॥ गजेंद्रात्पतमानाच्चअवप्लुत्यशतक्रतुः ॥ पाणिनावज्रमादायप्रविवेशामरावतीम् ॥ १२ ॥ पराङ्मुखे
सहस्राक्षेतद्दैवतबलंमहत् ॥ पातयामासदैत्येंद्रःपादमुष्टितलादिभिः ॥ १३ ॥ ततोवैवस्वतोदंडंपरिभ्राम्यद्विजोत्तम ॥ समभ्यधावत्प्रह्लादंहंतुकामःसुरो
त्तमः ॥ १४ ॥ तमापतंतंबाणौघैर्ववर्षविनदन्मुहुः ॥ हिरण्यकशिपोःपुत्रश्चापमानम्यवेगवान् ॥ १५ ॥ तांबाणवृष्टिमतुलांदंडेनाहत्यभास्करिः ॥ शात
यित्वाप्रचिक्षेपदंडंलोकभयंकरम् ॥ १६ ॥ सवायुपथमास्थायधर्मराजकरेस्थितः ॥ जज्वालकालाग्निनिभोयद्धद्दग्धुंजगत्त्रयम् ॥ १७ ॥ जाज्वल्यमा
नमायांतंदंडंदृष्ट्वादितेःसुताः ॥ प्राक्रोशंतिहतःकष्टंप्रह्लादोयंयमेनहि ॥ १८ ॥

की मुट्ठी और चरण आदिके प्रहारसे देवताओंकी सेनाको निपातित करने लगा ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह देखकर धर्मराज यमदंडको घुमाकर प्रह्लाद
के मारनेकी अभिलाषासे बहुत शीघ्रतासे उसके सन्मुखको दौडे ॥ १४ ॥ हिरण्यकश्यपके पुत्र प्रह्लाद अपने सन्मुख आता हुआ देख धर्मराजके ऊपर
वारम्वार गर्जता हुआ बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १५ ॥ तब धर्मराजने यम दंडसे उस अतुल बाणोंकी वृष्टिको निवारण कर सम्पूर्णलोकोंको भय देनेवाला
दंड प्रह्लादके ऊपर छोड़ा ॥ १६ ॥ धर्मराजके हाथसे छूटाहुआ वह दंड वायुके मार्गका आश्रयकर कालाग्निके समान त्रिलोकीको दग्ध करनेके निमित्त प्रज्वलित
होगया ॥ १७ ॥ ऐसी अवस्थामें इस दंडको आता हुआ देखकर असुरगण चीत्कारकशब्द करके यह कहनेलगे कि, हाय ! प्रह्लादजी यमके हाथसे मारे गये ॥ १८ ॥

हिरण्याक्षका पुत्र अंधक इसप्रकारके आर्तरोदनको सुनकर कहने लगा कि, कुछ भय नहीं है । अभीतो मैंहूं, यह सुराधम कौन है अर्थात् कुछभी नहीं कर सकता ॥ १९ ॥ हे नारद ! यह कहकर उसने शीघ्रतासे चलकर अपने हाथमें उस दंडको ग्रहण करलिया ॥ २० ॥ ग्रहण करतेंही शीघ्रतासे घुमाकर वर्षाकालके मेघकी समान गंभीरस्वरसे गर्जनकर उठा ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण दानव और दैत्योंका यूथप (सेनापति) दैत्येश्वर (अंधक) के द्वारा प्रह्लादको यमदंडसे रक्षित देखकर उसे धन्यवाद देने लगा ॥ २२ ॥ हे मुने ! भानुनन्दन (यम) दंडको घुमाता हुआ देखकर अंधकको दुःसह और दुर्जय विचारकर उसी समय वहांसे अन्तर्धान होगये ॥ २३ ॥ धर्मराजके अन्तर्धान होतेही महाबलवान् प्रह्लादजीभी देवताओंके दलको दलन करनेलगे ॥ २४ ॥ यह देखकर वरुण शिशुमारनामक

तमाक्रंदितमाकर्ण्यहिरण्याक्षसुतोंधकः ॥ प्रोवाचमाभैष्टमयिस्थितेकोयंसुराधमः ॥ १९ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंवेगेनाभिससारच ॥ जग्राहपाणिनादंडं
सव्यहस्तेननारद ॥ २० ॥ तमादायततोवेगाद्भ्रामयामासचांधकः ॥ जगर्जचमहानादंयथाप्रावृषितोयदः ॥ २१ ॥ प्रह्लादंरक्षितंदृष्ट्वादंडाद्दैत्येश्वरेणहि ॥
साधुवादंतदाचक्रुर्दैत्यदानवयूथपाः॥ २२ ॥ भ्रामयंतंमहादंडंदृष्ट्वाभानुसुतोमुने ॥ दुःसहंदुर्धरंमत्वाअंतर्धानमगाद्यमः ॥ २३ ॥ अंतर्हितेधर्मराजेप्रह्लादो
पिमहामुने ॥ दारयामासबलवान्देवसैन्यंसमंततः ॥ २४ ॥ वरुणःशिशुमारस्थोबद्ध्वापाशैर्महासुरान् ॥ गदयादारयामासतमभ्यागाद्विरोचनः ॥ २५ ॥
तोमरैर्वज्रसंस्पर्शैःशक्तिभिर्मार्गणैरपि ॥ जलेशंताडयामासमुद्गरैर्वज्रसन्निभैः ॥ २६ ॥ ततस्तंगदयाभ्येत्यपातयित्वाधरातले ॥ अभिद्रुत्यबबंधाशुपाशै
र्मत्तगजंबली ॥ २७ ॥ तान्पाशाञ्छतधाचक्रेवेगाच्चदनुजेश्वरः ॥ वरुणंचसमभ्येत्यमध्येजग्राहनारद ॥ २८ ॥ ततोदंतीचदंताभ्यांप्रचिक्षेपतथाव्ययः ॥
ममर्दचतथापद्भ्यांसगदंसलिलेश्वरम् ॥ २९ ॥ तंवध्यमानंवीक्ष्याथशशांकःशिशिरांशुमान् ॥ अभ्येत्यताडयामासमार्गणैःकायदारणैः ॥ ३० ॥

वाहनपर चढ़ेहुए महाअसुरोंको अपनी पाशसे बाँधकर गदाके आघातसे दारित करनेमें सन्नद्ध हुए. तब विरोचन उनके सन्मुख हुआ ॥ २५ ॥ और वज्रकी समान लगनेवाले तोमर, शक्ति, बाण और वज्रके समान मुद्गरोंके प्रहारसे वारम्वार वरुणको ताड़न करनेलगा ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त उन महात्मा वरुणने सामने होकर गदाके आघातसे उस विरोचनको पृथ्वीमें पटककर शीघ्रही पाशोंसे बांधलिया, जैसे मतवाले हाथीको कोई बली बांधले॥ २७ ॥ हे नारद ! विरोचनने फिर शीघ्रही उन पाशोंके सहस्रों खंड करदिये, और उनके सन्मुखहो हाथीकेद्वारा वरुणकी कमरको पकडवालिया ॥ २८ ॥ तब अव्यय (दुर्मर) के हाथीने दोनों दांतोंसे वरुणको फेंकदिया; और दोनों चरणोंके प्रहारसे गदायुक्त वरुणको मर्दन करनेलगा ॥ २९ ॥ तब शीतल किरणोंवाला चंद्रमा वरुणको वध होते हुए

देखकर सन्मुख होकर शरीर विदारण करनेवाले बाणोंसे उस गजको ताडन करने लगा ॥ ३० ॥ वह हाथी चंद्रमाके बाणोंसे मर्दित होकर अत्यन्त पीडाको पा क्लेशपातेही बडे वेगसे वारम्वार चरणोंके प्रहारसे वरुणको मर्दित करनेलगा ॥ ३१ ॥ हे महर्षे ! वरुणने अत्यन्तही मर्दित होकर गजेन्द्रके दोनों चरणोंको अपने चरणोंसे दृढ़ताके साथ पकड हाथोंसे पृथ्वीका स्पर्श कर शीघ्रतासे मस्तकको उठाय ॥ ३२ ॥ उँगलियोंसे उस हाथीकी पूंछको पकड और नागपाशसे उसे बांधकर हाथीवानको विरोचनके सहित पीलवान और हाथीको आकाशमें फेंकदिया ॥ ३३ ॥ तब विरोचन वरुणकेद्वारा फेंकाजाकर सूर्यकेद्वारा स्वर्गसे गिराये जाकर सुकेशीनामक दैत्यने जैसे यंत्र, अर्गल, और हर्म्यके सहित पृथ्वीका आश्रय कियाथा उसी प्रकारसे कुंजरके साथ पृथ्वीमें गिरा ॥ ३४ ॥ यह देखकर वरुण शीघ्रताके साथ

संमर्द्यमानःशिशिरांशुबाणैरवापपीडांपरमांगजेंद्रः ॥ क्लिष्टश्चवेगात्पयसामधीशंमुहुर्मुहुःपादतलैर्ममर्द ॥ ३१ ॥ संमर्द्यमानोवरुणोगजेंद्रंपद्भ्यांसुगाढंजगृहेमहर्षे ॥ पादेषुभूमिंकरयोःस्पृशंश्चमूर्द्धानमुल्लास्यबलान्महात्मा ॥ ३२ ॥ गृह्यांगुलीभिश्चगजस्यपुच्छंकृत्वेहबंधंभुजगेश्वरेण ॥ उत्पाट्यचिक्षेपविरोचनंहिसकुंजरंखेसनियंतृवाहम् ॥ ३३ ॥ क्षिप्तोजलेशेनविरोचनस्तुसकुंजरोभूमितलेपपात ॥ स्वर्गात्स्वयंत्रार्गलहर्म्यभूमिपुरंसुकेशीरिवभास्करेण ॥ ३४ ॥ ततोजलेशःसगदःसपाशःसमभ्यधावद्दितिजंनिहंतुम् ॥ ततःसमाक्रंदमनुत्तमंतैर्मुक्तंहिदैत्यैर्घनरावतुल्यम् ॥ ३५ ॥ हाहाहतोऽसौवरुणेनवीरोविरोचनोदानवसैन्यपालः ॥ प्रह्लादहेजंभकुजंभकाद्यारक्षध्वमभ्येत्यसहांधकेन ॥ ३६ ॥ अहोमहात्माबलवाञ्जलेशःसंचूर्णयन्दैत्यभटान्सवाहान् ॥ पाशेनबद्ध्वागदयानिहंतियथापशून्वाजिमखेमहेंद्रः ॥ ३७ ॥ श्रुत्वाथशब्दंदितिजैःसमीरितंजंभप्रधानादितिजेश्वरास्ततः ॥ समभ्यधावंस्त्वरिताजलेश्वरंयथापतंगाज्वलितंहुताशनम् ॥ ३८ ॥ तानागतान्वैप्रसमीक्ष्यदेवःप्राह्लादिमुत्सृज्यवितत्यपाशम् ॥ गदांसमुद्भ्राम्यजलेश्वरस्तुदुद्रावताञ्जंभमुखानरातीन् ॥ ३९ ॥

गदा और पाशको हाथमें ले उस दैत्य विरोचनको मारनेके निमित्त दौड़े तब दैत्यगण घोर बादलोंकी समान शब्द करके चीत्कार करउठे ॥ ३५ ॥ और हाहाकार करते हुए कहने लगे कि, दानवोंके सेनापति वीरोंमें श्रेष्ठ विरोचन वरुणके हाथसे मारेजाते हैं, इसकारण हे प्रह्लाद ! हे जम्भ ! हे कुजंभ प्रमुख असुरगण ! तुम सब अंधकके साथ आकर उसकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ हाय ! महात्मा महाबलवानवरुणजीने वाहनके सहित दैत्योंकी सेनाको चूर्णित करतेहुए पाशसे बाँधकर गदासे मारा है; जैसे अश्वमेधयज्ञमें इन्द्र पशुओंको ॥ ३७ ॥ जम्भप्रमुख दैत्यपति दैत्योंके आर्त्तशब्दको सुनकर उसीसमय शीघ्रतासे प्रज्वलित अग्निमें गिरे हुए पतंगके समान वरुणके सन्मुखको दौड़े ॥ ३८ ॥ वरुणदेव उनको आता हुआ देखकर विरोचनको छोड़ पाशको लेकर गदा घुमाते हुए उन जम्भादि शत्रुओंके

ऊपर दौड़े ॥ ३९ ॥ जम्भको पाशसे बाँधकर और तारको वज्रके समान हस्ततलके प्रहारसे ताड़न कर और वृत्रको चरणोंके प्रहारसे तथा कुजंभको बड़े वेगसे और बलको मुष्टिसे ताड़न कर गिरा दिया ॥ ४० ॥ दैत्यगण देवताओंमेंश्रेष्ठ वरुणजीसे पीड़ित होकर शस्त्रोंको छोड़कर दशोंदिशाओंको भागगये, यह देखकर अंधक उनके साथ युद्ध करनेके निमित्त अत्यन्त शीघ्रतासे चला ॥४१॥वरुणजीने असुरेश्वर अंधकको आताहुआ देखकर पाशसे बांधकर गदाका आघात किया, असुरपतिने उनकी पाशको छुटाकर उसके सहित गदाको ले उनके ऊपर फेंका ॥ ४२ ॥ दाक्षायणीनंदन वरुण गदा और पाशको आता हुआ देखकर शीघ्रतासे सागरके मध्यमें जाछिपे, तब अंधक देवताओंकी सेनाको मर्दन करने लगा ॥ ४३ ॥ यह देखकर अग्निने पवनकी सहायतासे चलकर असुरोंकी सेनाको दग्ध करना प्रारंभ किया; तब दानवोंके विश्वकर्मा, उग्रवीर्य, महाबाहु मय उनके सामने हुए ॥ ४४ ॥ हे महर्षे ! शम्बरके साथ मयको आता

जंभंचपाशेनतथाविहत्यतारंतलेनाशनिसंनिभेन ॥ पादेनवृत्रंतरसाकुजंभंनिपातयामासबलंचमुष्टया ॥ ४० ॥ तेनार्दितादेववरेणदैत्याःसंप्राद्रवन्दिक्षुवि
मुक्तशस्त्राः ॥ ततोऽधकःसुत्वरितोभ्युपेयाद्रणाययोद्धुंजलनायकेन ॥ ४१ ॥ तमापतंतंगदयाजघानपाशेनबद्धावरुणोऽसुरेशम् ॥ तंपाशमाविद्धचगदां
प्रगृह्यचिक्षेपदैत्यःसजलेश्वराय ॥ ४२ ॥ तमापतंतंप्रसमीक्ष्यपाशंगदांचदाक्षायणिनंदनस्तु ॥ विवेशवेगात्पयसांनिधानंततोंधकोदेवबलंममर्द ॥ ४३ ॥
ततोहुताशःसुरशत्रुसैन्यंददाहरोषात्पवनावधूतः ॥ तमभ्ययाद्दानवविश्वकर्मामयोमहाबाहुरुदग्रवीर्यः ॥ ४४ ॥ तमापतंतंसहशंबरेणसमीक्ष्यवह्निः पवने
नसार्द्धम् ॥ शक्त्यामयंशंबरमेत्य कंठेसंताड्यजग्राहबलान्महर्षे ॥ ४५ ॥ शक्त्यासकोपंवरणेविदारितेसभिन्नदेहोन्यपतत्पृथिव्याम् ॥ मयःप्रजज्वालचशं
बरोपिकंठेविलग्नेज्वलनेप्रदीप्ते ॥ ४६ ॥ सदह्यमानोदितिजोऽग्निनाथसुविस्तरंघोररवंरुराव ॥ सिंहाभिपन्नोविपिनेयथैवमतंगजःक्रंदतिवेदनार्त्तः ॥ ४७ ॥
तंशब्दमाकर्ण्यचशंबरस्यदैत्येश्वरःक्रोधविरक्तदृष्टिः ॥ आःकिंकिमेतन्ननुकेनयुद्धेजितोमयःशंबरदानवश्च ॥ ४८ ॥ ततोब्रुवन्दैत्यभटादितीशंप्रदह्यतेने
नहुताशनेन ॥ रक्षस्वचाभ्येत्यनशक्यतेभो हुताशनोवारयितुंरणाग्रे ॥ ४९ ॥

हुआ देखकर वह्निने वायुके साथ इकठ्ठेहो शक्तिका प्रहार कर उन दोनोंके कंठमें आघात कर दोनोंकोही बलकरके ग्रहण किया (अर्थात् बड़े जोरसे लिपटपडे) ॥ ॥ ४५ ॥ क्रोधसे चलाई हुई शक्तिसे कवचके विदारित होनेपर मय और शम्बर दोनों भिन्न २ देह होकर पृथ्वीमें गिरपडे, और प्रदीप्त अग्निके कंठमें लगनेसे मय और शम्बर दोनोंही जलने लगे ॥ ४६ ॥ जिसप्रकारसे सिंहके पकडनेपर वनके बीचमें आर्त्तनादसे (दीनस्वरसे) हाथी चीत्कार करता है; उसीप्रकारसे मय और शम्बर अग्निसे जलते हुए घोर शब्दसे रोते हुए ॥४७॥शम्बरके उस आर्त्तरोदनको सुनकर दैत्यपति अंधक क्रोधसे आंखैं लालकर कहनेलगा कि " आः " यह क्या (किसकारणसे इसप्रकारका शब्द हुआ) किसने युद्धमें मय और शम्बरको पराजित किया ॥ ४८॥ तब दैत्योंके योद्धालोग उनसे कहनेलगे कि, अग्नि दोनोंहीको

दग्ध कररहाहै, आप शीघ्र जाकर उनकी रक्षा करो, रणके सामने कोईभी जाकर अग्निको निवारण नहीं करसकता ॥ ४९ ॥ हे महर्षे ! हिरण्याक्षका पुत्र अंधक इस प्रकार उनसे प्रेरितहो शीघ्रतासे परिघको उठाय “ खडारह ” इसप्रकारका शब्द कहकर अग्निके ऊपर दौडा ॥ ५० ॥ अविनाशी अग्निने अंधकके ऐसे वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित चित्तसे शीघ्रही उस दैत्यको पृथ्वीमें पटकदिया तब अंधकने अग्निपर आक्रमण किया ॥ ५१ ॥ और वरायुधसे उनके श्रेष्ठ मस्तकमें दृढ़ आघात किया, अग्नि अपने आघात लगनेसे शम्बरको छोड शीघ्रही अंधकके सन्मुखको दौडा ॥ ५२ ॥ अंधकने अग्निको आताहुआ देखकर पुनर्वार उनके मस्तकमें परिघका प्रहार किया, तब अग्नि उसकेद्वारा इसप्रकारसे ताडित होकर भयके वशसे रणभूमिसे भागगये ॥ ५३ ॥ तब अंधक मारुत, चंद्र, भास्कर, साध्य,

इत्थंसदैत्यैरभिनोदितस्तुहिरण्यचक्षोस्तनयोमहर्षे ॥ उद्यम्यवेगात्परिघंहुताशंसमाद्रवत्तिष्ठइतिब्रुवन्हि ॥५० ॥ श्रुत्वांधकस्यापिवचोव्ययात्मासंक्रुद्धचित्तस्त्वरितोहिदैत्यम् ॥ उत्पाट्यभूम्यांचविनिष्पिपेषततोंऽधकःपावकमाससाद ॥५१॥ समाजघानाथहुताशनंहिवरायुधेनाथवरांगमध्ये॥समाहतोग्निःपरिमुच्य शंबरंतथांधकंसत्वरितोभ्यधावत् ॥ ५२ ॥ तमापतंतंपरिघेणभूयःसमाहनन्मूर्ध्नितदांधकोपि ॥ सताडितोग्निर्दितिजेश्वरेणभयात्प्रदुद्रावरणाजिराद्बहिः ॥ ५३ ॥ ततोंऽधकोमारुतचंद्रभास्करान्साध्यान्वसूनश्विमरुन्महोग्रान् ॥ यान्याञ्छरेणस्पृशतेपराक्रमीपराङ्मुखांस्तान्कृतवान्रणाजिरात्॥ ॥ ५४ ॥ ततोविजित्यामरसैन्यमुग्रंसेंद्रंसरुद्रंसयमंससोमम् ॥ संपूज्यमानोदनुपुंगवैस्तुतदांधकोभूमिमुपाजगाम ॥ ५५ ॥ आसाद्यभूमिंकरदान्नरेंद्रान्कृत्वावशेस्थाप्यचराचरञ्च ॥ जगत्समस्तंप्रविवेशधीमान्पातालमग्र्यंपुरमश्मकाह्वम् ॥ ५६ ॥ तत्रस्थितस्यापिमहासुरस्यगंधर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ॥ सहाप्सरोभिःपरिचारणायपातालमभ्येत्यसमावसन्स्म ॥ ५७ ॥ इति श्रीवामनपुराणेअंधकविजयोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारदउवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तंसुकेशिपुरमंबरात् ॥ पातितंभुविसूर्येणतदाचक्ष्वद्विजोत्तम ॥ १ ॥

वसु और महोरग दोनों अश्विनीकुमार इनके बीचमें जिनको पराक्रम प्रकाशकर बाणोंसे स्पर्श करने लगा, उन सभीको रणभूमिसे विमुख करदिया॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त इन्द्र, रुद्र और सोम, (चंद्रमा) के सहित सम्पूर्ण देवताओंकी सेनाको परास्त करके असुरोंसे पूजित होकर अंधक पृथ्वीमें प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ भूमिमें आकर राजाओंको कर देनेवाला कर और चराचर विश्वको अपने वशमें करके उस बुद्धिमानने अपनी अश्मक नामकी अत्यन्त पवित्र पाताल पुरीमें प्रवेश किया ॥ ५६ ॥ उस पुरीमें जातेही गंधर्व, विद्याधर और सिद्धसमूह अप्सराओंके साथ उसकी सेवा करनेके निमित्त पातालमें जाकर वास करनेलगे ॥ ५७ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां अंधकविजय नामको दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारदजी बोले—कि, हे द्विजवर्य ! भगवान् भास्करने सुकेशीके पुरको आकाशसे पृथ्वीपर गेराथा

सो अब आप उस वृत्तान्तको कहिये॥ १ ॥ सुकेशी कौनथा और उसे किसने वर दिया, भास्करने किसकारणसे आकाशसे उसकी नगरीको पृथ्वीपर गिरायाथा ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे महामुने! मैंने प्रथम जब इस प्राचीन कथाके कीर्तनके समय जिसप्रकारसे सुनाथा सो कहताहूं सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ हेमुने! निशाचरोंका विद्युतकेशीनामका एक राजाथा, सुकेशीने उसके यहां गुणवान् ज्येष्ठ पुत्ररूपसे जन्मलियाथा ॥ ४ ॥ भगवान् महादेवजीने उसपर संतुष्ट होकर आकाशमें-विचरनेवाला नगर, इन्द्रादि शत्रुओंसे अजेयत्व और अवध्यत्व यह तीन वरदिये ॥ ५ ॥ सुकेशी शंकरके प्रसादसे आकाशगामी पुरको प्राप्त कर सर्वदा अपने धर्ममार्गमें स्थित रहकर निशाचरोंके साथ विहार करने लगा ॥ ६ ॥ उसने मगधदेशमें जाकर वहां आत्मज्ञानी ऋषियोंके आश्रमोंका दर्शन किया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त सुकेशी महर्षियोंका दर्शन और प्रणामादि कर आसनपर बैठनेके पीछे ऋषियोंसे कहने लगा ॥ ८ ॥ सुकेशी बोला कि, हे द्विजश्रेष्ठो! मेरे मनमें एक संदेह है सो मैं पूछनेकी इच्छा करताहूं, सो आप यथार्थरीतिसे कहिये मैं यह नहीं जानता कि, इसलोक और परलोकमें कौनसा कर्म श्रेय (अत्युत्तम-कल्याणके देनेवाला) है, और किसके करनेसे सत्पुरुषोंके बीच पूज्य (पूजने योग्य) हो सकताहै और किसके करनेसे सुखसे बढ़ता है अर्थात् सुखी होताहै ॥ ९ ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, सुकेशीके ऐसे वचनोंको सुनकर महर्षियोंने इसलोक और परलोकमें श्रेष्ठ कौन है, इस अर्थको विचारकर उत्तर दिया ॥ ११ ॥ हे वीर! हे राक्षसश्रेष्ठ! इसलोक और परलोकमें जो अव्यय (अविनाशी) श्रेय है सो तुमसे कहता हूं सुनो ॥ १२ ॥ हे निशाचर! परलोक और इसलोकमें इन दोनों लोकोंमें एक धर्मही श्रेयहै, जो इस

सुकेशीतिचकश्चासौकेनदत्तवरश्चसः ॥ किमर्थंपातितोभूम्यामाकाशाद्भास्करेणहि ॥ २ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वाकथामेतांपुरातनीम् ॥
यथाश्रुतांमयापूर्वंकथ्यमानांमहामुने ॥ ३ ॥ आसीन्निशाचरपतिर्विद्युत्केशीतिविश्रुतः ॥ तस्यपुत्रोगुणज्येष्ठःसुकेशिरभवन्मुने ॥ ४ ॥ तस्यतुष्टस्तथे
शानःपुरमाकाशचारियत् ॥ प्रादादजेयत्वमपिशत्रुभिश्चाप्यवध्यताम् ॥ ५ ॥ सचापिशंकरात्प्राप्यवरंगगनगंपुरम् ॥ रेमेनिशाचरैःसार्द्धंसदाधर्मपथे
स्थितः ॥ ६ ॥ सकदाचिद्गतोरण्यंमागधंदानवेश्वरः ॥ तत्राश्रमांस्तुददृशेऋषीणांभावितात्मनाम् ॥ ७ ॥ महर्षीन्सतदादृष्ट्वाप्रणिपत्याभिवाद्यच ॥
प्रत्युवाचऋषीन्सर्वान्कृतासनपरिग्रहः ॥ ८ ॥ सुकेशिरुवाच ॥ प्रष्टुमिच्छामिभवतःसंशयोयंहृदिस्थितः ॥ कथयंतुभवंतोमेनचैवंज्ञापयाम्यहम् ॥ ९ ॥
किंस्विच्छ्रेयःपरेलोकेकिमुचेहद्विजोत्तमाः ॥ केनपूज्यस्तथासत्सुकेनासौसुखमेधते ॥ १० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्थंसुकेशिवचनंनिशम्यपरमर्षयः ॥
प्रोचुर्विमृश्यश्रेयोऽर्थमिहलोकेपरत्रच ॥ ११ ॥ ऋषयऊचुः ॥ श्रूयतांकथयिष्यामस्तवराक्षसपुंगव ॥ यद्धिश्रेयोभवेद्वीरइहचामुत्रचाव्ययम् ॥ १२ ॥
श्रेयोधर्मःपरेलोकेइहचक्षणदाचर ॥ तस्मिन्समाश्रितेसत्सुपूज्यस्तेनसुखीभवेत् ॥ १३ ॥

(धर्म) का आश्रय करताहै वह साधुओंकी समाजमें पूजित होकर सुखी होताहै ॥ १३ ॥ सुकेशी बोला कि, धर्मका क्या लक्षण (स्वरूप) है, किन आचरणों वाली सत्क्रियाको धर्म कहतेहैं जिसका आश्रय करनेसे देवादि दुःखी नहीं होते उसका कहना योग्यहै ॥ १४ ॥ ऋषि बोले कि, सर्वदा यज्ञादि क्रिया करना, वेदका तत्त्वजानना और विष्णुकी पूजा करना यही तीन देवताओंका परमधर्महै ॥ १५ ॥ अपने प्रचंड बाहुबलसे रहना, मात्सर्य, (औरके शुभमें द्वेष) रखना और युद्धमें श्रेष्ठकार्यको करना, नीतिशास्त्रको अवलम्ब करना, महादेवकी भक्ति करना यह तीन दैत्योंके परमधर्महैं ॥ १६ ॥ योगाभ्यासद्वारा योगसिद्धिको प्राप्त करना, वेद पढ़ना, ब्रह्मको जानना, भगवान् विष्णु और महादेवजीमें भक्ति करना यह सिद्धोंका धर्महै ॥ १७ ॥ अपनेसे बड़ेकी उपासना करना नृत्य करने और

सुकेशिरुवाच ॥ किंलक्षणोभवेद्धर्म्मःकिमाचरणसत्क्रियः ॥ यमाश्रित्यनसीदंतिदेवाद्यास्तुतदुच्यताम् ॥ १४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ देवानांपरमोधर्मः सदायज्ञादिकाःक्रियाः ॥ स्वाध्यायतत्त्ववेदित्वंविष्णुपूजाइतिश्रुतिः ॥ १५ ॥ दैत्यानांबाहुशालित्वंमात्सर्यंयुद्धसत्क्रियाः ॥ वेदनंनीतिशास्त्राणांहरभक्तिरुदाहृता ॥ १६ ॥ सिद्धानामुदितोधर्मोयोगसिद्धिरनुत्तमा ॥ स्वाध्यायोब्रह्मविज्ञानंभक्तिर्विष्णौहरेतथा ॥ १७ ॥ उत्कृष्टोपासनंज्ञेयंनृत्यवाद्येषुवेदिता ॥ सरस्वत्यांस्थिराभक्तिर्गांधर्वोधर्मउच्यते ॥ १८ ॥ विद्याधारित्वमतुलंविज्ञानंपौरुषेमतिः ॥ विद्याधराणांधर्मोयंभवान्यांभक्तिरेवच ॥ १९ ॥ गांधर्वविद्यावेदित्वंभक्तिर्भानौतथास्थिरा ॥ कौशल्यंसर्वशिल्पानांधर्मःकिंपुरुषःस्मृतः ॥२०॥ ब्रह्मचर्यममानित्वंयोगाभ्यासरतिर्दृढा ॥ सर्वत्रकामचारित्वंधर्मोयंपैत्रिकःस्मृतः ॥ २१ ॥ ब्रह्मचर्यंसदासत्यंजप्यंज्ञानंचराक्षस ॥ नियमोधर्मवेदित्वमार्षोधर्मःप्रचक्षते ॥२२॥ स्वाध्यायोब्रह्मचर्यंचदानंयजनमेवच ॥ अकार्पण्यमनायासोदयाहिंसाक्षमादयः ॥ २३ ॥ जितेंद्रियत्वंशौचंचमांगल्यंभक्तिरच्युते ॥ शंकरेभास्करेदेव्यांधर्मोयंमानवःस्मृतः ॥ २४ ॥

बाजोंके बजानेमें कुशलहोना, सरस्वतीजीमें अचलभक्ति रखना, यही तीन गंधर्वोंके धर्म कहे गयेहैं ॥ १८ ॥ विद्याको धारण करना, अतुलज्ञान, पुरुषार्थमें बुद्धि, और भवानीके प्रति भक्ति करना यह विद्याधरोंका धर्महै ॥ १९ ॥ गांधर्वविद्याको जानना सूर्यनारायणमें स्थिर भक्ति और सबप्रकारके शिल्पमें कुशलता यह किन्नरोंका परमधर्म है ॥ २० ॥ ब्रह्मचर्य, अनभिमान, योगाभ्यासमें अत्यन्त प्रीति, सबस्थानोंमें यथेच्छ भ्रमण करना यह पितरोंका धर्म कहागयाहै ॥ २१ ॥ हे राक्षस ! सर्वदा ब्रह्मचर्यसे रहना, सत्यबोलना, जपकरना, ज्ञानयुक्त होना, नियम और धर्मको जानना यह ऋषियोंका धर्म है ॥ २२ ॥ वेदका पढ़ना, ब्रह्मचर्यसे रहना, दानको लेना और देना, यज्ञ कराना और करना, कृपणता और श्रमको त्यागना, दयावान् होना, हिंसा न करना क्षमा आदिसे युक्त होना ॥ २३ ॥ इन्द्रियोंको जीतना, पवित्र रहना, मांगलिक कर्मको

करना, विष्णु, महादेव, सूर्य और देवीमें भक्ति करना यह मनुष्योंका धर्म कहागया है ॥ २४ ॥ धनका स्वामी होना, भोगी होना, वेदका पढ़ना, शंकरकी उपासना करना, अहंकार और धूर्त्तका होना यह गुह्यकोंका धर्म है ॥ २५ ॥ पराई स्त्रियोंके साथ सम्भोग करना, पराये धनकी इच्छा करना, वेदका पढ़ना और महादेवकी भक्ति करना यह राक्षसोंका धर्म है ॥ २६ ॥ अविवेक, अज्ञान, शौचकी हानि, सत्यका त्याग और सर्वदा मांसका लोभ यह पिशाचोंका धर्म है ॥ २७ ॥ हे राक्षस ! यह बारहही योनियें हैं उनमें पूर्वोक्त धर्मोंको पितामह ब्रह्माजीने कहा है यह बारहधर्म अपना २ पुण्य (पवित्र) और गतिके देनेवाले हैं ॥ २८ ॥ सुकेशीने कहा कि, आपने जो द्वादशप्रकारके शाश्वत और अविनाशी धर्मको कहा इनमेंसे मनुष्योंके धर्मको फिर वर्णन कीजिये ॥ २९ ॥ ऋषि बोले हेनिशाचर ! जो सातद्वीपोंमें

धनाधिपत्यंभोगाश्चस्वाध्यायःशंकरार्चनम् ॥ अहंकारमशौंडीर्यंधर्मोयंगुह्यकेष्विति ॥२५॥ परदारावमर्शित्वंपारक्यार्थेचलोलुपाः ॥ स्वाध्यायस्त्र्यंबके
भक्तिर्धर्मोयंराक्षसःस्मृतः ॥ २६ ॥ अविवेकस्तथाऽज्ञानंशौचहानिरसत्यता ॥ पिशाचानामयंधर्मःसदाचामिषगृध्नुता ॥ २७ ॥ योनयोद्वादशैवै
तास्तासुधर्माश्चराक्षस ॥ ब्रह्मणाकथिताःपुण्याद्वादशैवगतिप्रदाः ॥२८॥ सुकेशिरुवाच ॥ भवद्भिरुक्तायेधर्माःशाश्वताद्वादशाव्ययाः ॥ तत्रयेमानवाधर्मा
स्तान्भूयोवक्तुमर्हथ ॥ २९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ शृणुष्वमनुजादीनांधर्मास्तुक्षणदाचर ॥ येवसंतिमहीपृष्ठेनराद्वीपेषुसप्तसु ॥ ३० ॥ योजनानांप्रमाणेनपं
चाशत्कोटिरायता ॥ जलोपरिमहीयंहिनौरिवास्तेसरिज्जले ॥ तस्योपरिचदेवेशोब्रह्माशैलेन्द्रमुत्तमम् ॥३१॥ कर्णिकाकारमत्युच्चंस्थापयामाससत्तमः ॥
सचेमांनिर्ममेपुण्यांप्रजांदेवश्चतुर्दिशम् ॥ ३२ ॥ स्थानानिद्वीपसंज्ञानिकृतवांश्चप्रजापतिः ॥ तत्रमध्येचकृतवाञ्जंबूद्वीपमितिश्रुतम् ॥ ३३ ॥ तल्लक्षं
योजनानांचप्रमाणेननिगद्यते ॥ ततोजलनिधिःक्षारोबाह्यतोद्विगुणःस्थितः ॥ ३४ ॥ तस्यापिद्विगुणःप्लक्षोबाह्यतःसंप्रतिष्ठितः ॥ ततस्त्विक्षुरसोदश्च
बाह्यतोवलयाकृतिः ॥ ३५ ॥

पृथ्वीपर रहते हैं उन्हीं ब्राह्मणादि मनुष्योंके धर्मको सुनो ॥ ३० ॥ नदीके जलमें नौका जिसप्रकार रहती है यह पृथ्वीभी उसीप्रकारसे जलके ऊपर रहती है, इसका विस्तार पचास करोड़ योजनका है इस पृथ्वीके ऊपर देवेश ब्रह्माजीने उत्तम पर्वतराजसुमेरुको ॥ ३१ ॥ कर्णिका (कमलके बीच) की समान अत्यन्त ऊँचा स्थापित किया और उसी देवने चारोंओर पवित्र प्रजाको रचा ॥ ३२ ॥ उन्हीं प्रजापतिने स्थानोंकी द्वीपसंज्ञा करी और इन द्वीपोंके बीचमें विख्यात जम्बूद्वीपको बनाया ॥ ३३ ॥ इसका विस्तार लाख योजनका कहागया है, और इसके बाहिरी भागमें दो लाख योजनके विस्तारवाला खारी जलका समुद्र है ॥ ३४ ॥ उसके बाहर चार लाख

योजनका विस्तारवाला प्लक्षद्वीप है, उसके बाहर आठ लाख योजनका प्रमाणवाला कंगनके आकारका इक्षुरस (गन्नेके रसोंका) सागर है ॥ ३५ ॥ तिसके बाहर सोलह लाख योजनके विस्तारवाला शाल्मलीद्वीप है, उसके बाहर छत्तीस लाख योजनका विस्तारवाला सुराका समुद्र है और उसके बाहर चौंसठ लाख योजनका विस्तारवाला कुशद्वीप है ॥ ३६ ॥ उसके बाहर एक करोड अठ्ठाईस लाख योजन के विस्तारवाला घृतका समुद्र है, उसके बाहर दो करोड छप्पन लाख योजन के विस्तारवाला क्रौंचद्वीप है और उसके बाहर पांच करोड बारह लाख योजन के विस्तारवाला दधिका समुद्र है ॥ ३७ ॥ उसके बाहर दश करोड चौबीस लाख योजनके विस्तारवाला शाकद्वीप है. शाकद्वीपसे दूना अर्थात् बीस करोड अडतालीस लाख योजनके विस्तारवाला उसके बाहर दूधका समुद्र है, और इसी स्थानमें शेषजीकी शय्यापर विष्णु भगवान् शयन करते हैं ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त पुष्करद्वीप कहाहै पुष्करद्वीपके आग स्वादूद् (मीठे जलका) सागरहै, यह सब परस्पर द्विगुणभावसे स्थित होरहे हैं ॥ ३९ ॥

द्विगुणःशाल्मलिद्वीपोद्विगुणोस्यमहोदधिः ॥ सुरोदोद्विगुणस्तस्यतस्माच्चद्विगुणःकुशः ॥ ३६ ॥ घृतोदोद्विगुणश्चैवकुशद्वीपात्प्रकीर्तितः ॥ घृतोदाद्विगुणःक्रौंचोदध्योदोद्विगुणस्ततः ॥ ३७ ॥ समुद्राद्द्विगुणःशाकःशाकाद्दुग्धाब्धिरुत्तमः ॥ द्विगुणःसंस्थितोयत्रशेषपर्यंकगोहरिः ॥ ३८ ॥ तस्माच्चपुष्करद्वीपः स्वादूदस्तदनंतरम् ॥ एतेचद्विगुणाःसर्वेपरस्परमवस्थिताः ॥ ३९ ॥ चत्वारिंशदिमाःकोट्योलक्षाश्चनवतिःस्मृताः ॥ योजनानांराक्षसेंद्रपंचचातिसुविस्तृताः ॥ ४० ॥ जंबूद्वीपात्समारभ्ययावत्क्षीराब्धिरंततः ॥ कोट्यश्चतस्रोलक्षाणांद्वौपंचाशच्चराक्षस ॥ ४१ ॥ पुष्करद्वीपमानोऽयंतावानंतेमहोदधिः ॥ लक्षमंडकटाहेनसमंतादभिपूरितम् ॥ ४२ ॥ एवंद्वीपास्त्विमेसप्तपृथग्धर्माःपृथक्क्रियाः ॥ गदिष्यामस्तववयंशृणुष्वत्वंनिशाचर ॥ ४३ ॥ प्लक्षादिषुनरावीरयेवसंतिसनातनाः ॥ शाकांतेषुनतेष्वस्तियुगावस्थाकथंचन ॥ ४४ ॥ मोदंतेदेववत्तेषांधर्मोदिव्यउदाहृतः ॥ कल्पांतेप्रलयस्तेषांनिगद्येतमहाभुज ॥ ४५ ॥

हे निशाचरराज ! इन सब द्वीपोंके विस्तारकी संख्या चालीस करोड पिचानवें लाख योजन हुई ॥ ४० ॥ हे राक्षस ! जम्बूद्वीपसे लेकर क्षीरसागरके अंत तक चार करोड बावन लाख योजन ॥ ४१ ॥ विस्तारवाला पुष्करद्वीप है, इतनाही इसके अन्तमें समुद्र है, चारोंओर लक्षअंडकटाहों (ब्रह्मांडों) से पूर्ण है ॥ ४२ ॥ इसप्रकारसे सन्निविष्ट सात द्वीपोंका धर्म जिसप्रकार पृथक् २ है वैसे ही क्रियाभी पृथक् २ हैं, और उनकी पृथक् २ क्रिया हम तुमसे कहते हैं, हे निशाचर ! उस वृत्तान्तको तुम श्रवण करो ॥ ४३ ॥ हे वीर ! प्लक्षद्वीपसे शाकद्वीप तक जो मनुष्य सनातन वास करते हैं उनमें युगोंकी व्यवस्थाभी किसीप्रकारसे नहीं है ॥ ४४ ॥ वह देवताओंकी समान आनंद भोगते हैं, और देवताओंका जो दिव्य धर्म है उनकाभी वही धर्म कहागया है. हे महाबाहो ! कल्पान्तरमें

उनकी प्रलय होती है अर्थात् बीचमें वे नहीं मरते ॥ ४५ ॥ भयानक रूपवाले जो मनुष्य पुष्करद्वीपमें वास करते हैं वह पिशाचधर्मका आश्रय कर विनाशको प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ सुकेशी बोला कि, आपने किसकारणसे पुष्करद्वीपको दुर्दश (देखने योग्य नहीं) शौचरहित, घोरकर्मा और अर्थनाश करनेवाला कहा है ? ॥ ४७ ॥ ऋषि बोले, हे निशाचर ! इस पुष्करद्वीपमें रौरवादि सम्पूर्ण दारुण नरक हैं इसकारणसे उसको घोरदर्शन और रौद्र कहकर वर्णन किया ॥ ४८ ॥ सुकेशी बोला कि, हे तपोधन ! यह सम्पूर्ण दारुण नरक कितने हैं, और कौन इनके जानेका मार्ग है, इन दारुण नरकोंका कितना प्रमाण और कैसा स्वरूप है ?॥ ४९ ॥ ऋषि बोले, हे राक्षसराज ! यह रौरवादि सम्पूर्ण दारुण नरक इक्कीस हैं इनके लक्षण और प्रमाणको सुनो ॥ ५० ॥ इक्कीस नरकों

येजनाःपुष्करद्वीपेवसंतेरौद्रदर्शने ॥ पैशाचमाश्रिताधर्मंकर्मांतेतेविनाशिनः ॥ ४६ ॥ सुकेशिरुवाच ॥ किमर्थंपुष्करद्वीपोभवद्भिःसमुदाहृतः ॥
दुर्दर्शःशौचरहितोघोरःकर्मार्थनाशकृत् ॥४७॥ ऋषयऊचुः॥ तस्मिन्निशाचरद्वीपेनरकाःसंतिदारुणाः ॥ रौरवाद्यास्ततोरौद्रःपुष्करोघोरदर्शनः ॥४८॥
सुकेशिरुवाच ॥ कियंत्येतानिरौद्राणिनरकाणितपोधनाः ॥ कियन्मात्राणिमार्गेणकाचतेषुस्वरूपता ॥ ४९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ शृणुष्वराक्षसश्रेष्ठप्रमाणं
लक्षणंतथा ॥ सर्वेषांरौरवादीनांसंख्यायात्वेकविंशतिः ॥ ५० ॥ द्वेसहस्रेयोजनानांज्वलितांगारविस्तृतः ॥ रौरवोनामनरकःप्रथमःपरिकीर्त्तितः ॥ ५१॥
तप्तताम्रमयीभूमिरधस्ताद्वह्नितापिता ॥ द्वितीयोद्विगुणस्तस्मान्महारौरवउच्यते ॥ ५२ ॥ ततोपिविस्तृतश्चान्यस्तामिस्रोनरकःस्मृतः ॥ अंधतामिस्रको
नामचतुर्थोद्विगुणःपरः ॥ ५३ ॥ ततस्तुकालसूत्रेतिपंचमःपरिगीयते ॥ अप्रतिष्ठंतथाषष्ठंघटीयंत्रंचसप्तमम् ॥ ५४ ॥ असिपत्रवनंचान्यत्सहस्राणिद्वि
सप्ततिः ॥ योजनानांपरिख्यातमष्टमंनरकोत्तमम् ॥ ५५ ॥ नवमंतप्तकुंभंचदशमंकूटशाल्मलिः ॥ करपत्रस्तथैवोक्तस्तथान्यःश्वानभोजनः ॥ ५६ ॥
संदंशोलोहपिंडश्चकरंभसिकतातथा ॥ घोराक्षारनदीचान्यातथाऽन्याकृमिभोजना ॥ तथाष्टादशमीप्रोक्ताघोरावैतरणीनदी ॥ ५७ ॥

मेंसे दो हजार योजनके विस्तारमें ज्वलित अंगारे जिसमें विस्तृत फैलायेहुए हैं वह पहला रौरवनामका नरक है ॥ ५१ ॥ चारहजार योजनके विस्तारमें दूसरा महारौरव नामका नरक है, उस नरकमें ताँबेकी पृथ्वी अग्निसे तपती रहती है ॥ ॥ ५२ ॥ तामिस्र नामसे विख्यात तीसरा नरक दूसरे महारौरव नरकसेभी बडा है; और चौथा अंधतामिस्र नामका नरक है, इसका विस्तार तीसरे तामिस्र नरकसे दूना है ॥ ५३ ॥ कालसूत्र नामका पांचवाँ नरक है अप्रतिष्ठ नामका छठा और घटीयंत्र नामका सातवाँ नरक है ॥ ५४ ॥ बहत्तर योजनके विस्तारमें असिपत्रवन नामसे विख्यात नरकोंमें श्रेष्ठ आठवाँ नरक है ॥ ५५ ॥ तप्तकुंभ नामका नौवाँ नरक, कूटशाल्मली नामका दशवाँ नरक, करपत्र नामका ग्यारहवाँ नरक और श्वानभोजन नामका बारहवां नरक है ॥ ५६ ॥ संदंश नामका तेरहवां नरक,

लोहपिंड नामका चौदहवां नरक, करंभसिकता नामका पंद्रहवां नरक, घोररूपीक्षारनदी नामका सोलहवां नरक और कृमिभोजन नामका सत्रहवां नरक और घोररूपी वैतरणी नदी नामसे विख्यात अठारहवां नरक है ॥५७॥ शोणितपूयभोजन नामका उन्नीसवां नरक है (इसमें मनुष्योंको रुधिर और राद खिलाई जाती है) चक्रक नामके बीसवें नरकमें क्षुरेके अग्रभागकी समान तीव्र धारवाले चक्र हैं, और शोषण नामका इक्कीसवां नरक है. हे सुकेशिन् ! तुम्हारे निकट इन इक्कीसों नरकोंका वर्णन किया ॥ ५८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां पुष्करद्वीपवर्णननामक एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सुकेशी बोला हे विप्रेन्द्रवर्ग ! किसकर्मके करनेसे किसप्रकारसे इन नरकोंमें जाना होता है सो आप कहिये, इसके सुननेके लिये मुझे परमकौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥१॥ हे शालकटङ्कट[१] ! (सुकेशी !) जिस २ कर्मके करनेसे अपने कर्मके फलको भोगनेके निमित्त इन नरकोंकी प्राप्ति होती है उनको कहताहूं श्रवणकरो ॥ २ ॥ जो पापी देवताओंकी, वेदोंकी और ब्राह्मणोंकी निरन्तर निन्दा करते हैं, पुराण और इतिहासोंमें जिनकी अश्रद्धा है ॥ ३ ॥ जो गुरुदेवकी निन्दा करते हैं, यज्ञोंमें विघ्न करते हैं और दाताको दानके करनेसे रोकते हैं वह इन नरकोंमें जाते हैं ॥ ४ ॥ जिन अधमोंने मित्रोंमें, पतिपत्नीमें, सहोदरोंमें, स्वामिभृत्यमें पितापुत्रमें याज्य (शिष्य) अध्यापक (गुरु) में परस्परमें (एक दूसरेसे) भेद अर्थात् वैमनस्य करादेते हैं ॥ ५ ॥ और जो एकको कन्यादान करके फिर उसी कन्याको दूसरेको दान करते हैं वे यमराजके सेवकोंके द्वारा कर पत्र

तथापरःशोणितपूयभोजनःक्षुराग्रधारोनिशितश्चचक्रकः ॥ संशोषणोनामतथापिचांतेप्रोक्तास्तवैतेनरकाःसुकेशिन् ॥५८॥ इतिश्रीवामनपुराणेपुष्करद्वीपवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सुकेशिरुवाच ॥ कर्मणानरकानेतान्केनगच्छंतिवैकथम् ॥ एतद्वदतविप्रेंद्राःपरंकौतूहलंमम ॥ १ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कर्मणायेनयेनेहयांतिशालकटंकट ॥ स्वकर्मफलभोगार्थंनरकान्मेशृणुष्वतान् ॥ २ ॥ देववेदद्विजातीनांयैर्निंदासततंकृता ॥ येपुराणेतिहासार्थान्नाभिनंदंतिपापिनः ॥३॥ गुरुनिंदाकरायेचमखविघ्नकराश्चये ॥ दातुर्निवारकायेचतेषुतेनिपतंतिहि ॥ ४ ॥ सुहृद्दंपतिसोदर्यस्वामिभृत्यपितासुतैः ॥ याज्याध्यापकयोश्चैवकृतोभेदोधमैर्मिथः ॥ ५ ॥ कन्यामेकस्यदत्त्वाचददत्यन्यस्ययेऽधमाः ॥ करपत्रेणपाट्यंतेतेद्विधायमकिंकरैः ॥ ६ ॥

---

[१] “ वेणवी पणवी ताली खली शालकटङ्कट ” इस महाभारतके अनुशासनपर्वके शिवसहस्रनामके वचनसे शिवजीका नाम “शालकटङ्कट” आता है, उनके भक्तहोनेसे सुकेशीभी “शालकटङ्कट” कहलाये [शालकटङ्कटो भक्तिरस्येति विग्रहे शैषिकोऽण् न तु छः आर्षत्वात्]

(आरा) से दो प्रकारसे चीरे जाते हैं ॥ ६ ॥ दूसरोंको सन्ताप देनेवाले चंदन और उशीर (खस) को हरण करनेवाले, वालव्यजन (चँवर) के हरनेवाले करम्भ सिकता नरकमें जाते हैं ॥ ७ ॥ जो देवकृत्य अथवा पैतृक श्राद्धमें निमंत्रित हो अन्यत्र भोजन करते हैं उनको तीक्ष्ण चोंचवाले पक्षी (गृध्रआदिक) दो खंड करके फेंकते हैं ॥ ८ ॥ जो साधुओंको मर्मभेदी वचन कहकर उनके हृदयमें पीड़ा उत्पन्न कराते हैं, अनेक पक्षी अपनी चोंच नोंचते हुए उनके ऊपर बैठते हैं ॥ ९ ॥ जो मनुष्य खोटी मति होकर साधुओंकी चुगली करता है, वज्रके समान चोंचवाले काकगण उसकी जिह्वाको खैंचते हैं ॥ १० ॥ जो उजड्ड होकर पिता माता और गुरुजनोंकी अवज्ञा (अनादर) करते हैं, वह राद (विष्ठा) और मूत्रसे पूरित त्वक् (चरबी) जिसमें प्रतिष्ठित (भरी) है, ऐसे नरकमें नीचेको मुख

परोपतापजनकाश्चंदनोशीरहारिणः ॥ बालव्यजनहर्त्तारः करंभसिकताश्रिताः ॥ ७ ॥ निमंत्रितोऽन्यतोभुंक्ते श्राद्धे दैवेथपैतृके ॥ सद्विधाकृष्यतेमर्त्यैस्ती
क्ष्णतुंडैः खगोत्तमैः ॥ ८ ॥ मर्माणियस्तुसाधूनांतुदन्वाग्भिर्निकृंतति ॥ तस्योपरितुदंतस्तुतुंडैस्तिष्ठंतिपत्रिणः ॥ ९ ॥ यःकरोति चपैशुन्यंसाधूनामन्य
थामतिः ॥ वज्रतुंडनिभाजिह्वामाकर्षेतेऽस्यवायसाः ॥ १० ॥ पितृमातृगुरूणांचयेऽवज्ञांचक्रुरुद्धताः ॥ मज्जंतिपूयविण्मूत्रेत्वक्प्रतिष्ठेह्यधोमुखाः ॥ ११ ॥
देवतातिथिभृत्येषुभूतेष्वभ्यागतेषुच ॥ अभुक्तवत्सुयेऽश्नंतिबालपित्रग्निमातृषु ॥ १२ ॥ दुष्टासृक्पूयनिर्यासंभुंजन्तेत्वधमाइमे ॥ सूचीमुखाश्चजायंते
क्षुधार्त्तागिरिविग्रहाः ॥ १३ ॥ एकपंक्त्युपविष्टानांविषमंभोजयंतिये ॥ विड्भोजनंराक्षसेंद्रनरकंतेव्रजंतिच ॥ १४ ॥ एकसार्थप्रयाताश्चपश्यंतश्चार्थिनं
नराः ॥ असंविभज्यभुंजंतितेयांतिश्लेष्मभोजनम् ॥ १५ ॥ गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टायैरुच्छिष्टैश्चकामतः ॥ क्षिप्यंतेहिकरास्तेषांततप्तकुंभेसुदारुणे ॥ १६ ॥

करके डूबते हैं ॥ ११ ॥ देवता अतिथि (जिनका तिथि, काल, नियत नहीं है, ऐसे महात्मा) भृत्य, अभ्यागत, मनुष्य, बालक, पिता, अग्नि और माता, इनको विना भोजन कराये जो मनुष्य आप भोजन कर लेते हैं ॥ १२ ॥ उन्हैं दूषित रक्त और राद भक्षण करना पड़ता है, और वह सूचीमुखयुक्त पर्वतके समान शरीर वाले होकर जन्म ले तृषासे अत्यन्त क्लेश पाते हैं ॥ १३ ॥ हे राक्षसेन्द्र ! जो एक पंक्तिमें बैठेहुओंको दो प्रकारका भोजन कराते हैं वह विड्ड (विष्ठा) भोजन नामक नरकमें जाते हैं ॥ १४ ॥ जो एक साथ होकर प्रस्थान करते हैं उनके साथवालोंमेंसे मार्गमें किसीके पास भोजन नहीं रहा और वह इच्छा कर रहा है उसको देखते हुए जो आप खाते हैं वह श्लेष्मभोजन नरकमें जाते हैं ॥ १५ ॥ जो उच्छिष्ट अवस्थामें इच्छा करके गौ ब्राह्मण और अग्निको स्पर्श करते हैं, उनके हाथ दारुण

तप्तकुंडमें डाले जाते हैं ॥ १६ ॥ और जो इच्छाकरके उच्छिष्टअवस्थामें सूर्य, चंद्र और तारागणोंका दर्शन करते हैं यमराजके सेवक उनके नेत्रोंमें अग्नि डालकर
उसे प्रज्वलित करते हैं ॥ १७ ॥ जो मित्रकी स्त्री, अपनी माता, बड़ाभाई, पिता, बहन, कुलकी बहू, गुरु और वृद्धोंको चरणोंसे स्पर्श करते हैं ॥१८॥ उनके चरण
अग्निसे तपाईहुई लोहेकी बेडियोंसे बाँधकर घोर रौरवनरकमें डाले जाते हैं इससे उनकी जंघाएँ तक दग्ध होतीजाती हैं ॥ १९ ॥ जो खीर, मोहनभोग और मांसको
विना देवताके निवेदन किये वृथा आप भोजन करते हैं उनके मुखमें विचित्र प्रतप्त लोहेके गोले डाले जाते हैं ॥ २० ॥ जो गुरुकी, देवताओंकी और वेदोंकी निन्दा
सुनते हैं उन पापकर्म करनेवाले नराधमोंके ॥ २१ ॥ कानोंमें धर्मराजके सेवकगण अग्निके समान जलतीहुई लोहेकी कीलोंको वारम्वार ठोंकते हैं ॥ २२ ॥ जो प्रपाद

सूर्यैन्दुतारकादृष्टायैरुच्छिष्टैश्चकामतः॥तेषांनेत्रगतोवह्निर्धम्यतेयमकिंकरैः॥ १७ ॥ मित्रजायाथजननीज्येष्ठोभ्रातापितास्वसा ॥ जामयोगुरवोवृद्धायैः
संस्पृष्टाःपदान्नृभिः ॥ १८॥ बद्धांघ्रयस्तेनिगडैर्लोहैर्वह्निप्रतापितैः ॥ क्षिप्यंतेरौरवेघोरेह्याजानुपरिदाहिनः ॥ १९ ॥ पायसंकृशरामांसंवृथाभुक्ता
नियैर्नरैः॥तेषामयोगुडास्तप्ताःक्षिप्यंतेवदनेऽद्भुताः ॥ २० ॥ गुरुदेवद्विजातीनांवेदानांचनराधमैः ॥ निंदानिशंश्रुतायैस्तुपापानामभिकुर्वताम् ॥ २१ ॥
तेषांलोहमयाःकीलावह्निवर्णाःपुनःपुनः ॥ श्रवणेषुनिखन्यंतेधर्मराजस्यकिंकरैः ॥ २२ ॥ प्रपादेवकुलारामविप्रवेश्मसभामठान् ॥ वापीकूपतडागांश्चभं
क्त्वाविध्वंसयंतिये ॥ २३ ॥ तेषांविलपतांचर्मदेहतःक्रियतेपृथक् ॥ कर्त्तरीभिःसुतीक्ष्णाभिःसुरौद्रैर्यमकिंकरैः ॥ २४ ॥ गोब्राह्मणार्कमग्निंचयेहिमेहं
तिमानवाः॥तेषांगुदेभ्यश्चांत्राणिविनिष्कृंततिवायसाः॥२५ ॥ स्वपोषणपरोयस्तुपरित्यजतिमानवः ॥ पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम् ॥ दुर्भिक्षे
संभ्रमेचापिसश्वयोनौनिपात्यते ॥ २६ ॥ शरणागतंयेत्यजंतियेचबंधनपालकाः ॥ पतंतियंत्रपीठेतेताड्यमानास्तुकिंकरैः ॥ २७ ॥ क्लेशयंतिहिविप्रादी
न्याज्यकर्मसुपापिनः ॥ तेपेष्यंतेशिलायांवैशोष्यंतेपिचशोषकैः ॥ २८ ॥

(पाओंके स्थान) देवस्थान, बाग, विप्रोंका स्थान, सभास्थान, वापी (बावडी) तड़ाग (तालाब) को तोडकर नाश करते हैं॥ २३ ॥अत्यन्त विकराल यमराजके किंकर अति
तीक्ष्ण कतरनींसे उनके शरीरके मांससे खालको काटकर अलग करते हैं, इससे वह दुःखित होकर विलाप करते हैं॥ २४ ॥जो गौ, ब्राह्मण, सूर्य और अग्निकी ओरको मुख
करके मल मूत्र त्याग करते हैं उनकी आँतोंको गुदाके मार्गसे काकगण खैंचते हैं ॥ २५ ॥ जो मनुष्य अपने पालन पोषणमें रत होकर पुत्र, भृत्य, कलत्र और
बंधुओंको दुर्भिक्ष और संभ्रम (घबराहट) के समय छोड़ देते हैं उन्हें कुत्तेकी योनिमें पड़ना होता है ॥ २६ ॥ जो शरणागतको त्यागकर बन्धनका पालन
अर्थात् किसीने किसीको बेकसूर बाँध रक्खाहो उसका जो पहरा करते हैं वह यमराजके सेवकोंसे ताड़ित होकर यंत्रपीठमें पड़ते हैं ॥२७॥ जो पापी ब्राह्मणादिकोंको

याज्यकर्मोंमें क्लेश देते हैं वे शिला (चक्की) में पीसे जाते हैं, और शोषक (सुखानेवाले) वस्तुसे शोषित किये जाते हैं ॥ २८ ॥ धरोहरके हरण करनेवाले बेडियोंसे बाँध क्षुधासे कृश शरीर तालु और कंठको सुखाकर वृश्चिकाशन नरक (बिच्छुओंके काटनेके स्थान) में गिराये जाते हैं ॥ २९ ॥ जो पर्वसमयमें स्त्रीका संग करते हैं, और जो पराई स्त्रीसे भोग करते हैं उन्हें अग्निसे तप्तकिये कूटाग्र (पर्वतके शिखरकी समान ऊँचा) शाल्मलिवृक्षसे आलिंगन करना होता है ॥ ३० ॥ जो अधम ब्राह्मण, अपने उपाध्याय, (पढ़ानेवाले) को नीचे करके अर्थात् आप ऊँचेपर बैठकर पढ़ता है सो और ऐसेको पढ़ानेवाले उन दोनोंको शिरसे पत्थर ढोना पड़ता है ॥ ३१ ॥ जो जलमें मूत्र, कफ, विष्ठा डालता है वह विष्ठामूत्र दुर्गन्ध और रादसे पूरित विण्मूत्र नामके नरकमें गेरा जाता है ॥ ३२ ॥ जो इस मर्त्य

न्यासापहारिणःपापावध्यंतेनिगडैरपि ॥ क्षुत्क्षामाःशुष्कताल्वोष्ठाःपात्यंतेवृश्चिकाशने ॥ २९ ॥ पर्वमैथुनिनःपापाःपरदाररताश्चये ॥ तेवह्नितप्तांकूटा
ग्रामालिंगंतेचशाल्मलीम् ॥ ३० ॥ उपाध्यायमधःकृत्ययैरधीतंद्विजाधमैः ॥ तेषामध्यापकोयश्चसाशिलां शिरसावहेत् ॥ ३१ ॥ मूत्रश्लेष्मपुरीषा
णियैरुत्सृष्टानिवारिणि ॥ तेपात्यंतेचविण्मूत्रेदुर्गंधेपूयपूरिते ॥ ३२ ॥ श्राद्धेतिथ्यमन्योन्यंयैर्भुक्तंभुविमानवैः ॥ परस्परंभक्षयंतितेस्वमांसानिबालिशाः॥
॥ ३३ ॥ वेदवह्निगुरुत्यागीमातापित्रोस्तथैवच ॥ गिरिशृंगादधःपातंपात्यंतेयमकिंकरैः ॥ ३४ ॥ पुनर्भूपतयोयेचकन्याविध्वंसकाश्चये ॥ तद्गर्भस्रावकृद्य
श्चकृमीन्भक्षेत्पिपीलिकाः ॥ ३५ ॥ चंडालादंत्यजाद्वापिप्रतिगृह्णातिदक्षिणाम् ॥ याजकोयजमानश्चसस्यादश्मनिकीटकः ॥ ३६ ॥ पृष्ठमांसाशिनोमूढा
स्तथैवोक्तोपजीविनः ॥ क्षिप्यंतेवृकभक्षेतेनरकेरजनीचर॥ ३७॥ स्वर्णस्तेयीचब्रह्मघ्नःसुरापोगुरुतल्पगः॥ तथागोभूमिहर्त्तारोगोस्त्रीबालहताश्चये ॥ ३८ ॥

लोकसे श्राद्धमें परस्पर आतिथ्यविधानसे भोजन करते हैं वही मूढ परलोकमें परस्पर अपने मांसको भक्षण करते हैं ॥ ३३ ॥ जो वेद, अग्नि और गुरुदेवको त्यागकर फिर माता पिताकाभी त्यागन करता है यमराजके सेवक उस पापीको पर्वतके शिखरपरसे नीचेको गेरते हैं ॥ ३४ ॥ जो दूसरेकी विवाहीहुई स्त्रीके पति हैं और कन्याका किसी न किसी प्रकारसे विध्वंस कराते हैं और उस दोनों (परस्त्री-कन्या) के गर्भपात कराते हैं, वह कीड़े और चेंटियोंको भक्षण करते हैं ॥ ३५ ॥ चांडाल और अन्त्यज (धोबी तेली इत्यादिक नीचजाति) को यज्ञादि कराकर उनसे दक्षिणा ग्रहण करनेवाले याजक और वह यजमान दोनोंही पत्थरमेंके कीड़े होते हैं ॥ ३६ ॥ जो जीवके पीठके मांसको भक्षण करते हैं और जो पीठके मांसको बेंचकर अपनी जीविका चलाते हैं हेरजनीचर ! उनको भेड़िये भोजन करैं जिसमें ऐसे वृकभक्ष नामके नरकमें डाला जाताहै ॥ ३७॥ जो मनुष्य सुवर्णकी चोरी करते हैं, ब्रह्महत्या करते हैं, सुरापान करते हैं, गुरुकी शय्यापर शयन करते हैं अर्थात् गुरुदारा गमन करते

हैं, गौ और पृथ्वीको बलसे हरण करते हैं गौ स्त्री और बालकका वध करतेहैं ॥ ३८ ॥ यह मनुष्य और जो ब्राह्मणों गौओंको बेंचते हैं, सोमलता और वेदोंको बेचते हैं ॥ ३९ ॥ जो कपटसे सत्य (शपथ) का व्यवहार करते हैं, शौचको छोड़ते हैं, नित्य (सन्ध्यादिक) नैमित्तिक (ग्रहणस्नानादिक) कर्मका नाश करते हैं और असत्य गवाही देते हैं, वे रौरवनरकमें स्थितहो ॥ ४० ॥ दश हजार वर्षतक रहते हैं, फिर दशहजार वर्षतक तामिस्र नामके नरकमें, दशहजार वर्षतक अंधतामिस्र नरकमें और दशहजार वर्षतक, असिपत्रवन नामके नरकमें ॥ ४१ ॥ फिर दशहजार वर्षतक घटीयंत्रमें, और दशही हजार वर्षतक तप्तकुंभ नामक नरकमें रहते हैं जिन्होंने यह पाप किये हैं ॥ ४२ ॥ तुम्हारे निकट मैंने जिन विकराल रौरवादि नरकोंका वर्णन किया है लोकनिन्दित कृतघ्नी मनुष्य

एतेनराद्विजायेचगोषुविक्रयिणस्तथा ॥ सोमविक्रयिणोयेचवेदविक्रयिणस्तथा ॥ ३९ ॥ कूटसत्यास्त्वशौचाश्चनित्यनैमित्तनाशकाः ॥ कूटसाक्षिप्रदायेचतेमहारौरवेस्थिताः ॥४०॥ दशवर्षसहस्राणितावत्तामिस्रकेस्थिताः ॥ तावच्चैवांधतामिस्रेअसिपत्रवनेततः ॥ ४१॥ तावच्चैवघटीयंत्रेतप्तकुंभेततःपरम् ॥ प्रपातोहिभवेत्तेषांयैरिदंदुष्कृतंकृतम् ॥ ४२॥ यत्वेतेनरकारौद्रारौरवाद्यास्तवोदिताः ॥ तेसर्वेक्रमशःप्रोक्ताःकृतघ्नेलोकनिंदिते ॥४३॥ यथासुराणांप्रवरोजनार्दनोयथागिरीणामपिशैशिराद्रिः ॥ यथायुधानांप्रवरंसुदर्शनंयथाखगानांविनतातनूजः ॥ महोरगाणांप्रवरोप्यनंतोयथाचभूतेषुमहीप्रधाना ॥ ४४ ॥ नदीषुगंगाजलजेषुपद्मंसुरारिमुख्येषुहरांघ्रिभक्तः ॥ क्षेत्रेषुयद्वत्कुरुजांगलंवरंतीर्थेषुयद्वत्प्रवरंपृथूदकम् ॥ ४५ ॥ सरस्सुचैवोत्तरमानसंयथावनेषुपुण्येषुहिनंदनंयथा ॥ लोकेषुयद्वत्सदनंविरंचेःसत्यंयथाधर्मविधिक्रियासु ॥ ४६ ॥ यथाश्वमेधःप्रवरःक्रतूनांपुत्रोयथास्पर्शवतांवरिष्ठः ॥ तपोधनानामपिकुंभयोनिः श्रुतिर्वरायद्वदिहागमेषु ॥ ४७ ॥ मुख्यंपुराणेषुयथैवमात्स्यंस्वायंभुवोक्तिस्त्वपिसंहितासु ॥ मनुःस्मृतीनांप्रवरोयथैवतिथीषुदर्शोविबुधेषुवासवः ॥४८ ॥

क्रमानुसार इन सब नरकोंको भोग करते हैं ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार भगवान् विष्णुजी देवताओंके बीचमें श्रेष्ठ हैं, जिसप्रकारसे पर्वतोंके बीचमें हिमालय श्रेष्ठ है, जिसप्रकार गरुड़जी पक्षियोंमें श्रेष्ठ हैं, जिसप्रकार सर्पोंके बीचमें शेषजी श्रेष्ठ हैं, जिसप्रकार सुदर्शन आयुधोंमें श्रेष्ठ है, जैसे पंचभूतोंके बीचमें पृथ्वी प्रधान है ॥ ४४ ॥ और जिसप्रकार सम्पूर्ण नदियोंके बीचमें गंगाजी श्रेष्ठ है, जैसे जलमें उत्पन्न होनेवालोंमें कमल श्रेष्ठ हैं, जिसप्रकार दैत्योंके बीचमें महादेवजीके भक्त श्रेष्ठ हैं, क्षेत्रोंके बीचमें (कुरुक्षेत्र) कुरुजाङ्गल, तीर्थोंमें पृथूदक तीर्थ श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ सरोवरोंमें उत्तरमानस, पुण्यवनोंमें नंदनवन, लोकोंमें ब्रह्मलोक और धर्मकी विधिक्रियामें सत्य जिसप्रकार प्रधान है ॥ ४६ ॥ जैसे यज्ञमें अश्वमेध, स्पर्शवान् पदार्थोंमें पुत्र, तपस्वियोंमें अगस्त्य और आगमोंमें श्रुति (वेद) जिसप्रकार श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ पुराणोंमें मत्स्यपुराण, संहिताओंमें स्वायम्भुव मनुकी उक्ति, स्मृतियोंमें मनुस्मृति, तिथियोंमें अमावास्या, और देवताओंमें इन्द्र जिसप्रकारसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४८ ॥

जिसप्रकार तेजस्वियोंमें सूर्य प्रधान हैं, जैसे नक्षत्रोंमें चंद्रमा अग्रणीय है, जैसे ह्रदोंमें समुद्र प्रधान है, तुम जिसप्रकार राक्षसपुङ्गवोंमें श्रेष्ठहो, जिसप्रकार सब पाशोंमें नागपाश प्रधान है और जिसप्रकार निश्चलताके साधनेमें बंधन श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ अन्नोंमें शालि (चावल) द्विपदोंमें ब्राह्मण, चतुष्पदोंमें[1] गौ और सिंह, पुष्पोंमें चमेलीका फूल, नगरोंमें कांची, स्त्रियोंमें रम्भा, आश्रमोंके बीचमें गृहस्थाश्रम जिसप्रकार श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥ और पुरियोंमें कुशस्थली, देशोंमें मध्यदेश (आर्यावर्त्त) फलोंमें आम, मुकुलोंमें अशोक, और औषधियोंमें हरीतकी (हड़) जिसप्रकार श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥ और मूलोंमें कन्द, व्याधियोंमें अजीर्ण, श्वेतोंमें दुग्ध और ओढ़नेमें रुईके भरे वस्त्र (रजाई) जिसप्रकारसे प्रधान हैं ॥ ५२ ॥ तथा कलाओंमें गणित विद्याका जानना जिसप्रकार श्रेष्ठ है, इन्द्रजाल जैसे विज्ञानोंमें मुख्य है, शाकोंमें मकोहशाक जैसे प्रधान है, रसोंमें लवण जैसे श्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ और फलोंमें ताडका फल, नलनियोंमें पंपा, वनवासियोंमें ऋक्षराज, (जाम्बवान्) वृक्षोंमें वटका वृक्ष और ज्ञानवानोंमें शिव जिसप्रकार श्रेष्ठ हैं ॥ ५४ ॥ और जिसप्रकारसे हिमालयनंदिनी सतियोंमें प्रधान हैं, कपिल जैसे मुनियोंमें अग्रणीय हैं और बैलोंमें जैसे नीला बैल प्रधान है उसीप्रकार सम्पूर्ण दुःसह ॥ ५५ ॥ दुर्गम और विकरालस्थानोंमें हे निशाचरराज ! वैतरणी नदी प्रधान है, और हे निशाचरेन्द्र ! सम्पूर्ण पाप और पापियोंके बीचमें कृतघ्नता श्रेष्ठ है ॥५६॥ ब्रह्महत्या और गोहत्या आदिसेभी छुटकारा होजाता है परन्तु उस दुष्टचारी कृतघ्नकी करोडों वर्षतकभी निष्कृति नहीं है, जो सुहृदोंके कर्त्तव्योंको नाश करदेता है ॥५७॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां कर्मविपाको नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेजस्विनांचप्रवरोऽर्कउक्तऋक्षेषुचंद्रोजलधिर्ह्रदेषु ॥ भवान्यथाराक्षससत्तमेषुपाशेषुनागस्तिमितेषुबंधः ॥ ४९ ॥ धान्येषुशालिर्द्विपदेषुविप्रश्चतुष्पदेगौ
श्चयथामृगेंद्रः ॥ पुष्पेषुजातीनगरेषुकांचीनारीषुरंभाश्रमिणांगृहस्थः ॥ ५० ॥ कुशस्थलीश्रेष्ठतमापुरेषुदेशेषुसर्वेषुचमध्यदेशः ॥ फलेषुचूतोमुकुले
ष्वशोकः सर्वौषधीनांप्रवराचपथ्या ॥५१॥ मूलेषुकंदःप्रवरोयथोक्तोव्याधिष्वजीर्णंक्षणदाचरेंद्र ॥ श्वेतेषुदुग्धंप्रवरंयथैवकार्पासिकंप्रावरणेहियद्वत् ॥५२॥
कलासुमुख्यागणितज्ञताचविज्ञानमुख्यंतुयथेंद्रजालम् ॥ शाकेषुमुख्यात्वपिकाचमाचीरसेषुमुख्यंलवणंयथैव ॥५३॥ फलेषुतालोनलिनीषुपंपावनौकसे
ष्वेवचऋक्षराजः ॥ महीरुहेष्वेवयथावटश्चयथाहरोज्ञानवतांवरिष्ठः ॥ ५४ ॥ यथासतीनांहिमवत्सुताहियथार्जुनीनांकपिलावरिष्ठा ॥ यथावृषाणामपिनी
लवर्णस्तथैवसर्वेष्वपिदुःसहेषु ॥ ५५ ॥ दुर्गेषुरौद्रेषुनिशाचरेशयथानदीवैतरणीप्रधाना ॥ पापीयसांयद्वदिहकृतघ्नःसर्वेषुपापेषुनिशाचरेंद्र ॥ ५६ ॥
ब्रह्मघ्नगोघ्नादिषुनिष्कृतिर्हिविद्येतनैवास्यतुदुष्टचारिणः ॥ ननिष्कृतिश्चापिकृतघ्नवृत्तेःसुहृत्कृतंनाशयतोऽब्दकोटिभिः ॥५७॥ इति श्रीवामनपुराणेकर्म
विपाकोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

[1] टि० इसे ग्राम्य और वन्यभेदसे दो कहा है.

सुकेशी बोले कि, हे महर्षिगण ! आपने अत्यन्त भयंकर पुष्करद्वीपके स्वरूपका वर्णन किया. अब आप जम्बूद्वीपके स्वरूपका कीर्तन कीजिये ॥ १ ॥ महर्षिबोले हे निशाचर ! जम्बूद्वीपका संस्थान (सकल) वर्णन करताहूं तुम श्रवण करो. यह द्वीप नौ भागोंमें विभक्त है, अत्यन्त विस्तीर्ण है, स्वर्ग और अपवर्गोंके फलका देने वाला है ॥ २ ॥ उसके मध्यभागमें इलावृत वर्ष, पूर्वमें अत्यन्त विचित्र भद्राश्ववर्ष है. हे राक्षसेश्वर ! पूर्व और दक्षिणमें हिरण्मानवर्ष है ॥ ३ ॥ दक्षिणमें भारत वर्ष दक्षिण और पश्चिममें हरिवर्ष, पश्चिममें केतुमाल वर्ष, पश्चिमोत्तरमें चम्पकवर्ष है ॥ ४ ॥ उत्तरमें कल्पवृक्षसे वेष्टित कुरुवर्ष है तथा पूर्व और उत्तरमें रमणीक किंपुरुषवर्ष है ॥ ५ ॥ हे शालकटंकट (सुकेशिन् !) यह नौहो वर्ष परम पवित्र और रमणीय हैं, इसमें भारतवर्षके अतिरिक्त इलावृतादिक जो आठ वर्ष हैं ॥ ६ ॥

सुकेशिरुवाच ॥ भवद्भिरुदिताघोरापुष्करद्वीपसंस्थितिः ॥ जंबूद्वीपस्यसंस्थानंकथयंतुमहर्षयः ॥१॥ ऋषयऊचुः ॥जंबूद्वीपस्यसंस्थानंकथ्यमानंनिशामय ॥ नवभेदंसुविस्तीर्णंस्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥२॥ मध्येत्विलावृतोवर्षोभद्रास्यःपूर्वतोऽद्भुतः ॥ पूर्वदक्षिणतोवर्षोहिरण्मात्राक्षसेश्वर ॥ ३ ॥ भारतोदक्षिणेप्रोक्तोहरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥ पश्चिमेकेतुमालश्चचंपकःपश्चिमोत्तरे ॥ ४ ॥ उत्तरेणकुरोर्वर्षःकल्पवृक्षसमावृतः ॥ पूर्वमुत्तरतोरम्योवर्षःकिंपुरुषःस्मृतः ॥५॥ पुण्यारम्यानवैवैतेवर्षाःसालकटंकट ॥ इलावृताद्याश्चैवाष्टौवर्षमुक्त्वैवभारतम् ॥ ६ ॥ नतेष्वस्तियुगावस्थाजरामृत्युभयंनच ॥ तेषांस्वाभाविकीसिद्धिःसुखप्रायाह्ययत्नतः ॥७॥ विपर्ययोनतेष्वस्तिनोत्तमाधममध्यमाः ॥ यदेतद्भारतंवर्षंनवद्वीपंनिशाचर ॥ ८ ॥ सागरांतरिताःसर्वेअगम्याश्चपरस्परम् ॥ इंद्रद्वीपःकशेरूणास्ताम्रपर्णोगभस्तिमान् ॥ ९ ॥ नागद्वीपःकटाहश्चसिंहलोवारुणस्तथा ॥ अयंतुनवमस्तेषांद्वीपःसागरसंवृतः ॥ १० ॥ कुमाराख्यःपरिख्यातोद्वीपोयंदक्षिणोत्तरः ॥ पूर्वेकिरातायस्यांतेपश्चिमेयवनाःस्मृताः ॥ ११ ॥ आन्ध्रादक्षिणतोवीरतुरुष्कास्त्वपिचोत्तरे ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रास्त्वंतरवासिनः ॥ १२ ॥

न तो उनमें युगकी अवस्था (मर्यादा) है न जरा और मृत्युका भयही है, स्वभावसेही विना यत्न किये सुखसमृद्धि प्राप्त होजाती है ॥ ७ ॥ और वहां विपर्य (ऋतुओंका बदलना आदिक विपरीत भाव) नहीं है, और न उत्तम, मध्यम इनमेंभी कुछ भेद नहीं है, वहां सभी समान हैं, हेनिशाचर ! यह भारतवर्ष नौ द्वीपोंमें विभक्त है ॥ ८ ॥ यह सर्व द्वीप परस्पर सागरसे अन्तरित हैं अर्थात् इनके बीचमें समुद्र है और अगम्य (सामान्य यत्नसे मनुष्यादिकके जाने योग्य नहीं हैं, इनके नाम जैसे इन्द्रद्वीप, कशेरुद्वीप, ताम्रपर्णद्वीप गभस्तिमानद्वीप ॥ ९ ॥ नागद्वीप, कटाहद्वीप, सिंहलद्वीप और वारुणद्वीप तिनमें यह नवमाँ द्वीप सागरसे विष्टित ॥ १० ॥ कुमार नामसे विख्यात है यह द्वीप दक्षिणोत्तर भावसे दंडाकारसे प्रतिष्ठित है, इसके अन्तभाग लगाकर पूर्वमें तो किरात(भील)पश्चिममें यवन ॥ ११ ॥ दक्षिणमें आंध्र और उत्तरमें

तुरुष्क (तुरकी) रहते हैं; और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र यह सब इनके मध्यमें वास करते हैं ॥ १२ ॥ यह चारों क्रमसे यज्ञ, युद्ध, वाणिज्य, सेवादिक कर्मोंसे अपनी शुद्धि रखते हैं और इनके परम्परासेही इन पवित्रकर्मोंसे बर्ताव है ॥ १३ ॥ स्वर्ग, (मोक्ष) और पाप पुण्यभी क्रमानुसार प्राप्त होते हैं. महेंद्र[1], मलेय[2], सह्य[3], शक्तिमान[4], ऋक्ष[5] ॥ १४ ॥ विंध्या[6] और पारियाँत्र[7] यह सात यहांके कुलपर्वत हैं इनके अतिरिक्त औरभी सहस्रों पर्वत इनके मध्यभागमें हैं ॥ १५ ॥ यह सभी विस्तारवाले ऊंचे रमणीक विपुल और सुन्दर सानु (शिखर) युक्त हैं । जैसे कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर और दुर्द्धरपर्वत ॥ १६ ॥ वातधूम, वैद्युत, मैनाक, सरस तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि और गोवर्द्धनपर्वत ॥ १७ ॥ उज्जयन्त, पुष्पगिरि, अर्बुद, रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्त, चित्रकूट, कृतस्मर ॥ १८ ॥ श्रीपर्वत, कोकणक, और

इज्यायुद्धवणिज्याद्यैःकर्मभिःकृतपावनाः ॥ तेषांसंव्यवहारश्चएभिःकर्मभिरिष्यते ॥ १३ ॥ स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्चपुण्यंपापंतथैवच ॥ महेंद्रोमलयःसह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ १४ ॥ विंध्यश्चपारियात्रश्चसप्तात्रकुलपर्वताः ॥ तथान्येशतसाहस्राभूधरामध्यवासिनः ॥ १५ ॥ विस्तारोच्छ्रायिणोरम्याविपुलाः शुभसानवः ॥ कोलाहलश्चवैभ्राजोमंदरोदुर्द्धराचलः ॥ १६ ॥ वातधूमोवैद्युतश्चमैनाकःसरसस्तथा ॥ तुंगप्रस्थोनागगिरिस्तथागोवर्द्धनाचलः ॥१७॥ उज्जयंतःपुष्पगिरिरर्बुदोरैवतस्तथा ॥ ऋष्यमूकःसगोमंतश्चित्रकूटःकृतस्मरः ॥१८॥ श्रीपर्वतःकोकणकःशतशोऽन्येपिपर्वताः ॥ तैर्विमिश्राजनपदाम्लेच्छाश्चार्याश्चभागशः ॥ १९ ॥ तैःपीयंतेसरिच्छ्रेष्ठायासम्यक्तानिशामय ॥ सरस्वतीपंचरूपाकालिंदीचहिरण्वती ॥२०॥ शतद्रुश्चंद्रिकानीलावितस्तेरावतीकुहूः ॥ मधुराहाररावीचउशीराधातकीरसा ॥ २१ ॥ गोमतीधूतपापाचबाहुदासादृषद्वती ॥ निःस्वरागंडकीचित्राकौशिकीचवधूसरा ॥ २२ ॥ सरयूश्चसलौहित्याहिमवत्पादनिःसृताः ॥ वेदस्मृतिर्वेदसिनीवृत्रघ्नीसिंधुरेवच ॥ २३ ॥ पर्णासानंदिनीचैवपावनीचमहीतथा ॥ शराचर्मण्वतीलूपीविदिशावेणुमत्यपि ॥ २४ ॥

अन्यान्य सैकडों पर्वत उनसे मिलेहुए देश म्लेच्छ और आर्य हैं ॥१९॥ वह जिन नदियोंका जलपान किया करते हैं हे निशाचर ! उनके नाम श्रवण करो । सरस्वती, पंचरूपा, कालिन्दी, हिरण्वती ॥ २० ॥ शतद्रु (शतलज) चंद्रिका, नीला, वितस्ता, इरावती, कुहू, मधुरा, हारराबी, उशीरा, धातुकी, रसा ॥ २१ ॥ गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, निःस्वरा, गंडकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा ॥ २२ ॥ लोहित्याके सहित सरयू यह सम्पूर्ण नदियें हिमालयके पाद (प्रांतके पर्वत) से निकली हैं । वेद, स्मृति, वेदसिनी, वृत्रघ्नी, सिन्धु ॥ २३ ॥ पर्णासा, नंदिनी, पावनी, मही, शरा, चर्मण्वती, लूपी, विदिशा, वेणुमती॥ २४ ॥

यह नदियें पारियात्र पर्वतपरसे निकली हैं । शोण (शोणभद्र) और महानदी चित्रा, ओघवती, रम्या, नर्मदा, सुरसा, क्रिया ॥ २५ ॥ मंदाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, आहिदेविका, चित्रोत्पला, तमसा, करतोया, पिशाचिका ॥ २६ ॥ पिप्पलश्रेणी, विपाशा, वंजुलावती, सत्संत्यजा, शुक्तिमती, चक्रिणी, त्रिदिवा, वसु ॥ २७ ॥ यह सब नदियें ऋक्षपर्वतके पाद (प्रान्तके पर्वत) से निकली हैं, वल्गुवाहिनी, शिवापयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती ॥ २८ ॥ वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमुद्वती, तोया, रेवा, महागौरी, दुर्गन्धा, वा शिला ॥ २९ ॥ यह सम्पूर्ण नदियें विन्ध्याचल पर्वतके पाददेशसे उत्पन्न हुई हैं, इनका जल अत्यन्त पवित्र और निर्मल है । गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, सरिद्वती ॥ ३० ॥ विषमद्री, सुप्रयोगा, वाह्या, कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, वारिसेना, कलस्वना ॥ ३१ ॥ यह महानदियें

चित्राह्योघवतीरम्यापारियात्रोद्भवाःस्मृताः ॥ शोणोमहानदीचैवनर्मदासुरसाक्रिया ॥ २५ ॥ मंदाकिनीदशार्णाचचित्रकूटाहिदेविका ॥ चित्रोत्पलावै तमसाकरतोयापिशाचिका ॥ २६ ॥ तथान्यापिप्पलश्रेणीविपाशावञ्जुलावती ॥ सत्संतजाशुक्तिमतीचक्रिणी त्रिदिवावसुः ॥ २७ ॥ ऋक्षपादप्रसूता चतथान्यावल्गुवाहिनी ॥ शिवापयोष्णीनिर्विंध्यातापीसनिषधावती ॥२८॥ वेणावैतरणीचैवसिनीबाहुःकुमुद्वती ॥ तोयारेवामहागौरीदुर्गंधावाशिलातथा ॥ ॥ २९ ॥ विंध्यपादप्रसूताश्चनद्यःपुण्यजलाःशुभाः ॥ गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यासरिद्वती ॥ ३० ॥ विशमद्रीसुप्रयोगावाह्याकावेरिरेवच ॥ दुग्धोदानलिनीचैववारिसेनाकलस्वना ॥ ३१ ॥ एताश्चापिमहानद्यःसह्यपादविनिर्गताः ॥ कृतमालाताम्रपर्णीवंजुलाचोत्पलावती ॥ ३२ ॥ शुनीचैवसुदामा चशक्तिमत्प्रभवास्त्विमाः ॥ सर्वाःपुण्याःसरस्वत्यःपापप्रशमनास्तथा ॥ ३३ ॥ जगतोमातरःसर्वाःसर्वाःसागरयोषितः ॥ अन्याःसहस्रशश्चात्रक्षुद्रनद्यो हिराक्षस ॥ ३४ ॥ सदाकालवहाश्चान्याप्रावृट्कालवहास्तथा ॥ मध्यदेशोद्भवाएताःपिबंतिस्वेच्छयाशुभाः ॥ ३५ ॥ यत्स्थाःकुशूद्राःकिलकुंडलाश्वपंचालकावैसहकौशिकैश्च ॥ वृकाःशकाबर्बरकौरवाश्चकलिंगवंगांगजनास्तथैते ॥ ३६ ॥

सह्यपर्वतके पाददेशसे निकली हैं. कृतमाला, ताम्रपर्णी, वंजुला, उत्पलावती ॥ ३२ ॥ शुनी, सुदामा, यह नदियें शक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं, यह सभी परमपवित्र प्रवाहशालिनी और सम्पूर्ण पापोंको नाश करती हैं ॥ ३३ ॥ सभी जगत्की जननी और सभीसागरकी वनिता (समुद्रगामिनी) हैं, हेराक्षस ! इसके अतीरिक्त औरभी सहस्रों छोटीं २ नदियें यहां हैं ॥ ३४ ॥ इनमेंसे कोईतो सर्वदा बहती रहती हैं और कोईवर्षाकालमें बहती हैं, मध्यदेशवासी मनुष्य इच्छानुसार इन पवित्र नदियोंका जलपान करते हैं ॥ ३५ ॥ जिन देशोंमें उत्तरोत्तर कहीहुईं सबजातियें स्थित (वासकरती) हैं, उनका नाम यथाक्रमसे उल्लेखित करेंगे. प्रथम वेजा, कौशिक, वृक, शक, बर्बर

कौरव, कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग कुशुद्र, कुंडल, पंचालक ॥ ३६ ॥ मर्मक, आभीर,(अहीर) शाव्यधानक, बाह्लीक, वाटधान, अभिर, (अहिर) और तोयद इतने मध्यदेशीय हैं ॥ ३७ ॥ तैसेही अपरान्त (पाश्चात्य-पछांह) के शूद्र, पल्लव,खेटक, गांधार, यवन, सिंधु, सौवीर, भद्रक ॥ ३८ ॥ शातद्रव, ललित्थ, पारावत, मूषक, माठर, उदकधार, कैकेय और दंशन ॥ ३९ ॥ क्षत्रिय, वैश्य, विविधशूद्रकुल, काम्बोज, दरद, बर्रर, अंगलौकिक ॥ ४० ॥ वेणा, तुषार, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थलदेशके बहुतसे बाह्य देशमें वास करते हैं ॥ ४१ ॥ लम्पक (लाम्बे) तावकाराम, चूडिका, तङ्गण, अलस, आलिभद्र, यह किरातोंकी जाति हैं । कहीं मुण्ड, अन्तस, चलीभद्र, यह किरातोंकी जाति हैं ॥ ४२ ॥ यह सब बहुधा तामस अर्थात् तमोगुण प्रधान स्वभाववाले, कर्म, मार्ग, सुपार्श्व, उत्तम

मर्मकामध्यदेशीयाआभीराःशाव्यधानकाः ॥ बाह्लीकावाटधानाश्चअभिराःकालतोयदाः ॥ ३७ ॥ अपरांतास्तथाशूद्राःपल्लवाश्चसखेटकाः ॥ गांधारा
यवनाश्चैवसिंधुसौवीरभद्रकाः ॥ ३८ ॥ शातद्रवाललित्थाश्चपारावतसमूषकाः ॥ माठरोदकधाराश्चकैकेयादंशनास्तथा ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाःप्रतिवैश्याश्च
तथाशूद्रकुलानिच ॥ कांबोजादरदाश्चैवबर्वराश्चांगलोकिकाः॥ ४० ॥ वेणाश्चैवतुषाराश्चबहुधाबाह्यतोदराः ॥ आत्रेयाःसभरद्वाजाःप्रस्थलाश्चदशेरकाः॥
॥ ४१ ॥ लंपकास्तावकारामाश्चूडिकास्तंगणैःसह ॥ अलसाश्चालिभद्राश्चकिरातानांचजातयः ॥ ४२ ॥ तामसाःकर्ममार्गाश्चसुपाश्वर्वागणकास्तथा ॥
कुलूताःकुहिकाश्चूर्णास्तूर्णपादाःसकुक्कुटाः ॥ ४३ ॥ मांडव्याःपाणवीयाश्चउत्तरापथवासिनः ॥ अंगावंगामद्गुरवाःस्वंतर्गिरिबहिर्गिराः ॥ ४४ ॥ तथाप्रवं
गावांगेयामांसादाबलदंतिकाः ॥ ब्रह्मोत्तराःप्राविजयाभार्गवांगेयमर्षकाः ॥ ४५ ॥ प्राग्ज्योतिषाःपृषध्राश्चविदेहास्ताम्रलिप्तकाः ॥ मालामगधमानंदाः
प्राच्याजनपदास्त्विमे ॥ ४६ ॥ पुंड्राश्चकेरलाश्चैवचौडाःकुल्याश्चराक्षस ॥ जानुकामूषिकादाश्चकुमारादामहाशकाः ॥ ४७ ॥ महाराष्ट्रामाहिषिकाः
कलिंगाश्चैवसर्वशः ॥ आभीराःसहवैसक्याआरण्याःशबराश्चये ॥ ४८ ॥

पार्श्ववाले और गणक, रमल आदिक विद्याके जाननेवाले होते हैं. लूत, कुहिक, चूर्ण, तूर्णपाद, कुक्कुट ॥ ४३ ॥ मांडव्य, और, पाणवीय, यह उत्तर खंडके निवासी हैं. अंग, वंग, मद्गुरव यह पर्वतोंके भीतर और बाहरमें रहनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ प्रवङ्ग, वाङ्गेय, मांसादि (मांसभक्षी) बल दन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजया, भार्गव, आङ्गेय, मर्षक ॥ ४५ ॥ प्राग्ज्योतिष, पृषध्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मालामगध, मानंद यह पूर्वके जनपद देशोंमें हैं ॥ ४६ ॥ हे राक्षस ! पुंड्र, केरल, चौल, कुल्या, जानुका, मूषिकाद (चूहेको खानेवाले) कुमाराद. (बच्चोंको खानेवाले) महाशक ॥ ४७ ॥ महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्गके सहित आभीर, वैसक्य,

आरण्यके, शबर, (भील) ॥ ४८ ॥ पर्वतके उत्पन्नहुए पुलिन्द, विन्ध्य, वैदर्भ, दंडकारण्य, पौरिक, सारिक, अश्मक, भोगवर्द्धन ॥ ४९ ॥ नैमिक, कुन्दल, आन्ध्र, उच्छिदा, नलकारक, हे सुकेशिंन् ! यह सब दाक्षिणात्यके जनपद (देश) हैं ॥ ५० ॥ शूर्पारक, वारिधान, दुर्गाश्व, आलीकट, पुलीय, आसिनील, तापस, तामस, ॥ ५१ ॥ कारस्कर, भमिन, नासिकान्त, सुनर्मद, दारुकच्छ, सुमाहेय, सारस्वत ॥ ५२ ॥ वात्सीय, सुराष्ट्र, आवन्त्य, आर्बुद यह पश्चिम दिशाकी ओरके निवासी मनुष्य हैं ॥ ५३ ॥ कारुष, ऐकलव्य, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, गोप्त, किंकरव ॥ ५४ ॥ तोशल, कोश, कल, त्रैपुर, खेह्लिश, तुरग, तुम्बर,

पुलिंदाविंध्यशैलेयावैदर्भादंडकैःसह ॥ पौरिकाःसारिकाश्चैवअश्मकाभोगवर्द्धनाः ॥ ४९ ॥ नैमिकाःकुंदलाआंध्राःउच्छिदानलकारकाः ॥ दाक्षिणात्याजनपदास्त्विमेशालकटंकट ॥ ५० ॥ शूर्पारकावारिधानादुर्गाश्वालीकटैःसह ॥ पुलीयाश्चासिनीलाश्चतापसास्तामसास्तथा ॥ ५१ ॥ कारस्करास्तुभमिनोनासिकांताःसुनर्मदाः ॥ दारुकच्छाःसुमाहेयाःसहसारस्वतैरपि ॥ ५२ ॥ वात्सीयाश्चसुराष्ट्राश्चआवंत्याश्चार्बुदैःसह ॥ इत्येतेपश्चिमामाशांस्थिताजानपदाजनाः ॥ ५३ ॥ कारूषाश्चैकलव्याश्चमेकलाश्चोत्कलैःसह ॥ उत्तमर्णादशार्णाश्चगोप्ताःकिंकरवैःसह ॥ ५४ ॥ तोशलाःकोशलाश्चैवत्रैपुराःखेह्लिशास्तथा ॥ तुरगास्तुंबराश्चैववहेलानैषधैःसह ॥५५॥ अनूपास्तुंडिकेराश्चवीतिहोत्रास्त्ववंतयः ॥ सुकेशेविंध्यमूलस्थास्त्विमेजनपदाःस्मृताः ॥ ५६ ॥ आद्यान्देशान्प्रवक्ष्यामःपर्वताश्रयिणस्तुये ॥ निराहाराहंसमार्गाकुपथास्तंगणाःखशाः ॥ ५७ ॥ कुथप्रावरणाश्चैवऊर्णाप्लुष्टाःसुहूहुकाः ॥ त्रिगर्त्ताश्चकिराताश्चतोमराः शशिखाद्रिकाः ॥ ५८ ॥ इमेतवोक्ताविषयाःसुविस्तराद्द्वीपेकुमारेरजनीचरेश ॥ एतेषुदेशेषुचदेशधर्मान्संकीर्त्यमानाञ्छृणुतत्त्वतोहि ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भुवनकोशवर्णनेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अहिंसासत्यमस्तेयंदानंक्षांतिर्दमःशमः ॥ अकार्पण्यंचशौचंचतपश्चरजनीचर ॥ १ ॥

वहेला, नैषध ॥५५ ॥ अनूप, तुंडिकेर, वीतिहोत्र, अवंति, हे सुकेशिन् ! यह विन्ध्या पर्वतके मूलमें स्थित जनपद देश हैं ॥५६॥ अब पर्वतके आश्रय रहनेवाले देशोंको कहते हैं निराहार, हंसमार्ग, कुपथ, तङ्गण, खश ॥ ५७ ॥ कुथ, प्रावरण, उर्णाप्लुष्ट सुहूहुक, त्रिगर्त, किरात, तोमर, शशिखाद्रिक ॥ ५८ ॥ हे रजनीचरेश ! कुमारद्वीपमें स्थित सब देशोंको तुम्हारे निकट वर्णन किया इन सब देशोंमें जो देश धर्म प्रचलित हैं वहभी यथा रीतिसे कहताहूं श्रवण करो ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशवर्णननाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषि बोले—हे रजनीचर सुकेशि ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, दान, क्षमा, दम, शम,

अकार्पण्य, शौच, तपस्या ॥ १ ॥ यह दशाङ्गधर्म सब वर्णोंमें अनुष्ठानके योग्य हैं, ब्राह्मणोंको चार आश्रमोंका धारण करना कहा है ॥२॥ सुकेशी बोले हे तपोधन !
ब्राह्मणोंके चारों आश्रमोंका विस्तारसहित वर्णन कीजिये, इसके न सुननेसे मुझे किसी प्रकारभी तृप्ति नहीं होती ॥ ३ ॥ ऋषि बोले कि, ब्राह्मण उपनयन संस्कार करानेके पीछे
ब्रह्मचर्य्यका अवलम्बन कर गुरुकुलमें वासकरै, वहां उसे जिसप्रकारसे धर्मका अनुष्ठान करना होता है सो कहताहूं सुनो ॥४॥ स्वाध्याय, (वेदकापढना) अग्निकी शुश्रूषा
(सेवा)अर्थात् (उनके निमित्त समिधा आदिक लाना, समय २ पर हवन करना इत्यादि) भिक्षाके अर्थ जाना और गुरुको निवेदन कर सबप्रकारसे उनकी आज्ञा पाकर भोजन
करना ॥ ५ ॥ गुरुके कार्यमें उद्योगसे रहना, और भलीभाँतिसे उनको प्रसन्न करैं, फिर जभी वह तत्पर होकर पाठके अर्थ बुलावैं तभी अनन्यमनसे पढ़ै॥ ६ ॥
एक दो अर्थात् सम्पूर्ण चारों वेद गुरुके मुखसे प्राप्तकर उनसे आज्ञाले उनको श्रेष्ठ दक्षिणा देकर ॥ ७ ॥ गृहस्थाश्रमकी इच्छासे गार्हस्थ्य आश्रममें वास करै, अथवा

दशांगोराक्षसश्रेष्ठ धर्मोंसौसार्ववर्णिकः ॥ ब्राह्मणस्यापिविहिताचातुराश्रम्यकल्पना ॥ २ ॥ सुकेशिरुवाच ॥ विप्राणांचातुराश्रम्यंविस्तरान्मेतपोधनाः ॥
आचक्षध्वंनमेतृप्तिःशृण्वतःप्रतिपद्यते ॥ ३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कृतोपनयनःसम्यग्ब्रह्मचारीगुरौवसेत् ॥ तत्रधर्मोस्ययस्तंत्वंकथ्यमानंनिशामय ॥ ४ ॥
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषास्नानंभिक्षाटनंतथा ॥ गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेनसर्वथा ॥ ५ ॥ गुरोःकर्मणिसोद्योगःसम्यक्प्रीत्युपपादनम् ॥ तेनाहूतःपठेच्चै
वतत्परोनान्यमानसः ॥ ६ ॥ एकंद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्यगुरोर्मुखात्॥ अनुज्ञातोवरंदत्त्वागुरवेदक्षिणांततः ॥ ७ ॥ गृहस्थाश्रमकामस्तुगार्हस्थ्याश्रम
मावसेत् ॥ वानप्रस्थाश्रमंवापिचतुर्थंस्वेच्छयात्मनः ॥ ८ ॥ तत्रैववागुरोर्गेहेद्विजोनिष्ठामवाप्नुयात् ॥ गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतांविना ॥ ९ ॥
शूश्रूषन्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमंवसेत् ॥ एवंजयतिमृत्युंसद्विजःसालकटंकट ॥ १० ॥ उपावृत्तैस्तुतैस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ॥ असमानार्षकुलजा
कन्योद्वाह्यानिशाचर ॥ ११ ॥ स्वकर्मणाधनंलब्ध्वा पितृदेवाऽतिथीनपि ॥ सम्यक्संप्रीणयेद्भक्त्यासदाचाररतोद्विजः ॥ १२ ॥

अपनी इच्छानुसार वानप्रस्थ, वा चतुर्थ आश्रम (संन्यास) का अवलम्बन करै॥८॥अथवा उन्हीं गुरुदेवके घरमें ब्राह्मण ब्रह्मचारी निष्ठा (निरन्तरास्थिति) को प्राप्त होवै
अर्थात् गुरुकी सेवा करतारहै, गुरुके अभावमें उनके पुत्रकी, पुत्रके अभावमें उनके शिष्यकी शुश्रूषा करै, गुरुकी पुत्रीके निकट वास न करै ॥ ९ ॥ शुश्रूषामें रत होकर
अभिमानको त्यागकर ब्रह्मचर्य आश्रममें वास करै, तौ हेसुकेशी ! इस प्रकारसे अनुष्ठान करनेपर मृत्युको जीत लेता है॥ १० ॥हे निशाचर ! जो गृहस्थाश्रमकी इच्छा
करके अध्ययन, और ब्रह्मचर्यसे उपवृत्त निवृत्त होवै उसे कुलसे लौटकर अपने समान (बराबर) गोत्रसे अन्यगोत्रमें उत्पन्न हुई कन्याका पाणिग्रहण करना चाहिये
॥ ११ ॥ ब्राह्मण वेदोक्त अपने कर्मकी सहायतासे धन संग्रहकर भक्ति और सदाचारमें निरतहो भलीभाँतिसे पितर, देवता और अतिथियोंको प्रसन्न रक्खै ॥ १२ ॥

सुकेशी बोले कि, हे तपोधनवर्ग ! आपने मेरे निकट जिन सदाचारोंके नाम वर्णन किये अब उनके लक्षण सुननेके लिये मैं अत्यन्तही उत्कंठित होरहाहूं, इसकारण इस समय उनकाही वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ ऋषि बोले कि, हमने आदरसहित जिन सदाचारोंका नाम तुम्हारे निकट वर्णन किया, हे निशाचर ! अब उनके लक्षण कहते हैं श्रवण करो ॥ १४ ॥ गृहस्थ सर्वदा आचारोंका पालन करै. कारण कि, आचारके भ्रष्ट होनेपर इसलोक और परलोक इन दोनोंमें कहीं भी कल्याण नहीं है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य सदाचारका उल्लंघन करके संसारकी यात्राके निर्वाहमें प्रवृत्त होता है यज्ञ, दान और तपस्या उस पुरुषके मंगल साधनको समर्थ नहीं होते ॥ १६ ॥ दुराचारी पुरुष इस लोक और परलोकमें कहींभी सुखी नहीं होता, इसकारण सदाचारमें यत्न करै. कारण कि, आचार कुलक्षणोंका नाश करता है ॥ १७॥

सुकेशिरुवाच ॥ सदाचारेतिगदितंयुष्माभिर्ममसुव्रताः ॥ लक्षणंश्रोतुमिच्छामिकथयध्वंतदद्यमे ॥ १३॥ ऋषयऊचुः ॥ सदाचारोनिगदितस्तवयोऽस्माभिरादरात् ॥लक्षणंतस्यवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वनिशाचर ॥ १४ ॥ गृहस्थेनसदाकार्यमाचारपरिपालनम् ॥ नह्याचारविहीनस्यभद्रमत्रपरत्रच ॥ १५ ॥ यज्ञदानतपांसीहपुरुषस्यनभूतये ॥भवंतियःसमुल्लंघ्यसदाचारंप्रवर्त्तते ॥ १६ ॥ दुराचारोहिपुरुषोनेहनामुत्रनंदते ॥ कार्योयत्नःसदाचारआचारोहंत्यलक्षणम् ॥१७ ॥ तस्यस्वरूपंवक्ष्यामःसदाचारस्यराक्षस ॥ शृणुष्वैकमनास्त्वंचयदिश्रेयोभिवांछसि ॥ १८ ॥ धर्मोस्यमूलंधनमस्यशाखाःपुष्पंचकामःफलमस्यमोक्षः ॥ असौसदाचारतरुः सुकेशिन्संसेवितोयेनसपुण्यभोक्ता ॥ १९ ॥ ब्राह्मेमुहूर्तेप्रथमंविबुध्येदनुस्मरेद्देववरान्महर्षीन् ॥ प्राभातिकंमंगलमेववाच्यंयदुक्तवान्देवपतिस्त्रिनेत्रः ॥ २० ॥ सुकेशिरुवाच ॥ किंतदुक्तंसुप्रभातंशंकरेणमहात्मना ॥ प्रभातेयत्पठन्मर्त्योमुच्यतेपापबंधनात् ॥ २१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ श्रूयतांराक्षसश्रेष्ठसुप्रभातंहरोदितम् ॥ श्रुत्वास्मृत्वापठित्वाचसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरांतकारीभानुःशशीभूमिसुतोबुधश्च ॥ गुरुश्चशुक्रःसहभानुजेनकुर्वंतुसर्वेममसुप्रभातम् ॥ २३ ॥

हे निशाचर ! उस सदाचारके लक्षण कहते हैं यदि कल्याणकी अभिलाषा है तो एकाग्र मनसे श्रवण करो ॥ १८ ॥ धर्म इस सदाचार वृक्षका मूल है, धन इसकी शाखा है, कामना इसका पुष्प है, मोक्ष इसका फल है. हे सुकेशिन् ! इस सदाचाररूप वृक्षकी जो मनुष्य सेवा करता है वही पुण्यको भोगता है ॥ १९ ॥ ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर प्रथम प्रधान २ देवता और ऋषियोंका ध्यान करै, पीछे देवाधिदेव महादेवजीके कहे हुए प्रभातिक (प्रातःकालके) मंगल पाठको करै ॥ २० ॥ सुकेशी बोले कि, महात्मा शंकरने जिस सुप्रभातका वर्णन किया है, जिसके प्रभातही पाठ करनेपर मनुष्योंके पाप नष्ट होजाते हैं वह कैसा है ॥ २१ ॥ ऋषि बोले हे राक्षसश्रेष्ठ ! महादेवके कहेहुए सुप्रभातको श्रवण करो, इसके सुननेसे, स्मरण करनेसे, वा पाठ करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चंद्रमा,

मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिके सहित यह हमारे प्रभातमें मंगल विधान करैं ॥ २३ ॥ भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन, ऋभु यह सब हमारे सुप्रभात (कल्याण) में विधान करैं ॥ २४ ॥ सनत्कुमार सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिंगल, (निषादादिक) सप्तस्वर (अथवा पृथिव्यादि सप्तलोक) अतलादि सप्त रसातल यह सभी हमारा सुप्रभात (मंगल) विधान करैं ॥ २५ ॥ गंध सहित पृथ्वी, रस सहित जल, स्पर्श सहित वायु, तेज सहित अग्नि, शब्द सहित आकाश और महत्तत्त्व (अन्तःकरण) यह सभी मेरे प्रभातकालमें मंगल करैं ॥ २६ ॥ सप्त सागर, सप्त कुलपर्वत, सप्त ऋषि, सप्तद्वीपश्रेष्ठ, पृथ्वी आदिक सप्त लोक, यह सभी मेरे प्रभातकालमें मंगल करैं॥ २७ ॥ इस प्रकारसे प्रभातकोही इस परमपवित्र सुप्रभात स्तोत्रका पाठ करै, अथवा स्मरण (अनुसन्धान) करै, भक्तिके साथ सुने, ऐसा होनेसे हे अनघ ! भगवान्के प्रसादसे सत्यही दुःस्वप्नोंका नाश और सुप्रभात (अच्छा सबेरा) होजा

भृगुर्वसिष्ठःक्रतुरंगिराश्चमुनिःपुलस्त्यःपुलहःसगौतमः ॥ रैभ्योमरीचिश्च्यवनोरिभुश्चकुर्वंतुसर्वेममसुप्रभातम् ॥२४॥ सनत्कुमारःसनकःसनंदनःसनातनो
थासुरिपिंगलौच ॥ सप्तस्वराःसप्तरसातलाश्चकुर्वंतुसर्वेममसुप्रभातम् ॥२५॥ पृथ्वीसगंधासरसास्तथापःसस्पर्शवायुर्ज्वलनःसुतेजाः ॥ नभःसशब्दंमहता
सहैवयच्छंतुसर्वेममसुप्रभातम् ॥ २६ ॥ सप्तार्णवाःसप्तकुलाचलाश्चसप्तर्षयोद्वीपवराश्चसप्त ॥ भूरादयःसप्ततथैवलोकायच्छंतुसर्वेममसुप्रभातम् ॥ २७ ॥
इत्थंप्रभातेपरमंपवित्रंपठेत्स्मरेद्वाशृणुयाच्चभक्त्या ॥ दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातंभवेच्चसत्यंभगवत्प्रसादात् ॥ २८॥ ततःसमुत्थायविचिंतयेतधर्मंतथार्थं
चविहायशय्याम् ॥ उत्थायपश्चाद्धरिरित्युदीर्यगच्छेत्तदोत्सर्गविधिंहिकर्त्तुम् ॥२९॥ नदेवगोब्राह्मणवह्निमार्गेनराजमार्गेनचतुष्पथेच ॥ कुर्यादथोत्सर्गमपी
हगोष्ठेपूर्वापरांनैवसमाश्रितोगाम् ॥ ३० ॥ ततस्तुशौचार्थमुपाहरेन्मृदंगुदेत्रयंपाणितलेदशैव ॥ तथोभयोःसप्ततथैवपादयोर्लिंगेतथैकांमृदमाहरेत ॥३१॥
नांतर्जलाद्राक्षसमूषकस्यबिलाच्चशौचाचरणागतान्यैः ॥ वल्मीकमृच्चैवहिशुद्धयेसदाग्राह्यासदाचारविदानरेण ॥ ३२ ॥

यगा, अर्थात् दिनभर मंगलसे बीतेगा, इसके उपरान्त उठकर शय्याको त्याग यथाक्रमसे धर्म और अर्थकी चिन्ता करै, पीछे उठकर "हरि" ऐसा कहकर उत्सर्ग विधिके अर्थ (शौच इत्यादिक जाय) ॥२८॥२९॥ देव, गौ, ब्राह्मण और अग्निके मार्गमें, क्या चौराहेमें, अथवा गाय बैलके ठहरनेके स्थानमें पूर्व या पश्चिमकी ओर का आश्रय करके अर्थात् कुछ रात्रि शेषहो तो दक्षिण मुख होकर, नहीं तो उत्तरको मुख होकर (जहांसे बैठनेका आराम न हो, या किसी प्रकारसे प्राण बाधा भय) होताहो जिस मुखसे आराम मिलै उसी मुख होकर मलोत्सर्ग करै ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त शौचके अर्थ मृत्तिकाको ले उससे गुदाको तीनबार, वाम पाणिको दश बार दोनों हाथ और दोनों चरणोंको सात बार लिंगको एकबार मृत्तिका लगावै ॥ ३१ ॥ हे राक्षस ! जलके बीचकी, मूसेके बिलकी, दूसरेके शौचमें आई हुई और बाँबीकी

मट्टीको सदाचारका जाननेवाला मनुष्य शौचकर्ममें कभी न लगावै ॥ ३२ ॥ उत्तरमुख अथवा प्राङ्मुख होकर विद्वान् मनुष्य चरणोंको धोकर फिर पृथ्वीपर बैठे, फेन रहित जलसे तीनबार भलीभाँतिसे आचमन करै फिर दो बार वैसे सम्पूर्ण मुखको जलसे धोले ॥ ३३ ॥ फिर केशोंका शोधन और दंतधावन करके दर्पण देखै, शिरसे स्नानकर अथवा शिरके पिता आंगिक स्नानकर नासिकादिक इन्द्रियोंको और शिरको यथाविधिसे [अंगुष्ठ- और तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका, दो दोसे दक्षिण वाम क्रमसे नासापुट, चक्षु, श्रोत्र नामिका स्पर्श कर पाँचों उंगलियोंको बराबर करके हृदय, बाहु, शिरका] स्पर्श करके संध्योपासन करै ॥ ३४ ॥ इसप्रकारसे स्नानकर जल आदिकेद्वारा देवता और पितरोंको विशेषरूपसे पूजा तर्पण होम और शुभ वस्तुओंका स्पर्शकर बाहरको जाय ॥ ३५ ॥ उस समय दूर्वा, दधि, घी, उदककुंभ, बच्चेवाली गाय, वृषभ, सुवर्ण, मृत्तिका, गोमय, स्वस्ति वाचनके अक्षत खीलैं, मधु, ब्राह्मणकन्यायें ॥ ३६ ॥ श्वेतवर्णके सुन्दर फूल, अग्नि, चंदन सूर्यको अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष इन सबको स्पर्श तथा देखकरके अपने जातिधर्मका अनुष्ठान करै ॥ ३७ ॥ धर्मशास्त्रके अविरुद्ध (योग्य) अपने देशाचार ब्राह्मणादि कुलाचार और पितरादिक धर्मको न छोड़े और उसीके करनेसे अपने अर्थ (धन) की सिद्धिको करतारहै दुर्भाषण और असत्यका व्यवहार न करै॥ ३८॥ सज्जनोंके साथ निष्ठुर (कठोर) और आगम शास्त्रके विरुद्ध वचनका उच्चारण न करै जिससे लोकमें निन्दित न हो, अर्थात् लोक उसकी निन्दा न करैं, और किसीका धर्म न बिगाड़ै, और खोटे मनुष्योंका संग न करै ॥ ३९ ॥ हे वीर ! संध्याके समय, दिनमें और सब प्रकारकी योनि (पशुआदिक) में पराई स्त्रियोंके साथ, रजस्वला हुई अपनी स्त्रीके साथ, और जलके बीचमें मैथुन न करै ॥ ४० ॥ वृथा न घूमे, वृथा दान न करै, वृथा (देवपितृयज्ञकेविना) पशुहत्याभी न करै और वृथा

उदङ्मुखःप्राग्वदनोपिविद्वान्प्रक्षाल्यपादौभुविसंनिविष्टः ॥ समाचमेदद्भिरफेनिलाभिर्मुखंत्रिरादौपरिमृज्यचाद्भिः ॥ ३३॥ ततःस्पृशेत्खानिशिरःकरेणसं
ध्यामुपासीतततःक्रमेण ॥ केशांश्चसंशोध्यचदंतधावनंकृत्वातथादर्पणदर्शनंच ॥ ३४ ॥ कृत्वाशिरःस्नानमथांगिकंवासंपूज्यतोयेनपितॄन्सदेवान् ॥ होमंच
कृत्वालभनंशुभानांकृत्वाबहिर्निर्गमनंप्रशस्तम् ॥ ३५ ॥ दूर्वांदधिसर्पिरथोदकुंभंधेनुंसवत्सांवृषभंसुवर्णम् ॥ मृद्गोमयंस्वस्तिकमक्षतानिलाजामधु
ब्राह्मणकन्यकाश्च ॥ ३६ ॥ श्वेतानिपुष्पाणिचशोभनांनिहुताशनंचंदनमर्कबिंबम् ॥ अश्वत्थवृक्षंचसमालभेतततस्तुकार्योनिजजातिधर्मः ॥ ३७ ॥ देशानु
शिष्टंकुलधर्ममग्र्यंस्वगोत्रधर्मंनहिसंत्यजेत ॥ तेनार्थसिद्धिंसमुपाचरेतनासत्प्रलापंनचसत्यहीनम् ॥ ३८ ॥ ननिष्ठुरंनागमशास्त्रहीनंवाक्यंवदेत्साधुजने
नयेन ॥ निन्द्योभवेन्नैवचधर्मभेदीसंगंनचासत्सुनरेषुकुर्यात् ॥ ३९ ॥ संध्यासुवर्ज्यंसुरतंदिवाचसर्वासुयोनीषुपराबलासु ॥ सर्वान्ययोनिष्वपराबलासुरज
स्वलास्वेवजलेषुवीर ॥ ४० ॥ वृथाटनंवृथादानंवृथाचपशुमारणम् ॥ नकर्त्तव्यंगृहस्थेनवृथादारपरिग्रहः ॥ ४१ ॥

(बुढ़ोती आदिकसे भोग करनेकी सामर्थ्य न रहनेपरभी) स्त्रीका पाणिग्रहण न करै ॥ ४१ ॥ वृथा घूमनेसे नित्य कर्मकी हानि होती है, वृथा दान करनेसे धनका क्षय होता है, वृथा पशुओंकी हत्या करनेसे नरकके अर्थ पापोंका संग्रह करना है॥४२॥ वृथा स्त्रीका ग्रहण करनेसे संतानकी हानि होती है अगर होतीभी है तौ अंग बलादिक करके हीन होनेके कारणसे श्लाघा (अभिनंदन) करने योग्य नहीं और वर्णसंकर होनेका भयभी है, तथा लोकोंके निकट डरना होता है ॥ ४३ ॥ साधु मनुष्य पराये धन और पराई स्त्रीमें अपनी बुद्धिको न लगावै. कारण कि, पराये धनके ग्रहण करनेसे और पराई स्त्रीसे मैथुन करनेपर मृत्यु होती है ॥ ४४ ॥ नग्नावस्थामें पराई स्त्रीका दर्शन न करै, तस्करके साथ वार्तालाप न करै, रजस्वलाका दर्शन और उसे स्पर्श तथा उसके साथ संभाषण न करै ॥ ४५ ॥ भगिनी तथा पराई स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठे सौतेली माता और बेटीके साथभी एक आसनपर न बैठे ॥ ४६ ॥ नंगा होकरकेभी स्नान न करै, और नं

वृथाटनान्नित्यहानिर्वृथादानाद्धनक्षयः ॥ वृथापशुघ्नःप्राप्नोतिपातकंनरकार्थिंयत् ॥ ४२ ॥ संतत्याहानिरश्लाघ्यावर्णसंकरतोभयम् ॥ भेतव्यंचभवेल्लो
केवृथादारपरिग्रहात् ॥ ४३ ॥ परस्वेपरदारेषुनकार्याबुद्धिरुत्तमैः ॥ परस्वंनरकायैवपरदाराश्चमृत्यवे ॥ ४४ ॥ नेक्षेत्परस्त्रियंनग्नांनसंभाषेततस्करान् ॥
उदक्यादर्शनंस्पर्शंसंभाषांचविवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ नैकासनेतथास्थेयंसोदर्यापरजायया ॥ तथासापत्नमातुश्चतथास्वदुहितृष्वपि ॥ ४६ ॥ नचस्नायीतवै
नग्नोनशयीतकदाचन ॥ दिग्वाससोऽपिनतथापरिभ्रमणमिष्यते ॥ ४७ ॥ भिन्नांश्चशय्यासनभाजनादीञ्छुद्धचैरतःसंपरिवर्जयेत्तान् ॥ नंदासुनाभ्यं
गमुपाचरेतक्षौरंचरिक्तासुजयासुमांसम् ॥४८॥ पूर्णासुयोषित्परिवर्जनीयाभद्रासुसर्वाणिसमाचरेच्च ॥ नाभ्यंगमर्कैनचभूमिपुत्रेक्षौरंचशुक्रेरविजेचमांसम् ॥
॥ ४९ ॥ बुधेषुयोषिन्नसमाचरेतशेषेषुसर्वाणिसदैवकुर्यात् ॥ चित्रासुहस्तेश्रवणेनतैलंक्षौरंविशाखास्वभिजित्सुवर्ज्यम् ॥ ५० ॥ मूलेमृगेभाद्रपदासुमां
संयोषिन्मघाकृत्तिकभोत्तरासु ॥ सदैववर्ज्यंशयनेउदक्छिरस्तथाप्रतीच्यांरजनीचरेश ॥ ५१ ॥

कभी शयन करै, नग्नावस्थामें कभी न घूमै ॥ ४७ ॥ भग्नआसन, टूटीशय्या और भग्न पात्रादिका किसी प्रकारसेभी व्यवहार न करै. नन्दातिथि १ । ६ । ११ में तेल मर्दन न करै, रिक्ता ४ । १४ । ९ । तिथिमें क्षौर कार्य न करै । जया ३ । ८ । १३ में मांस भक्षणका निषेध है ॥ ४८ ॥ पूर्णा ५ । १० । १५ तिथिको स्त्रीसंग न करै, भद्रा २ । ७ । १२ तिथिमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण कार्योंको करै, रविवारको अभ्यङ्गका निषेध है, मंगलवारको हजामत न करावै, शुक्रवार और शनिवारको मांस भक्षण न करै ॥ ४९ ॥ स्त्री बुधवारको उक्तकार्यको न करै और शेष सम्पूर्ण वारोंमें समस्त कार्योंको करै. चित्रा, हस्त और श्रवणमें तेल न लगावै, विशाखा और अभिजित्में हजामत न करावै ॥ ५० ॥ मूल, मृगशिर और भाद्रपदामें मांस भक्षण न करै, मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तराओंमें

स्त्रीसंग त्यागदे, हे निशाचरराज ! और पश्चिम उत्तरकी ओरको शिर करके कभी शयन न करै ॥ ५१ ॥ और दक्षिण तथा पश्चिमकी ओरको मुख करकै कभी भोजन न करै, देवालय, चैत्यतरु (चौराहेके वृक्ष), चौराहा, अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान और गुरुकी विना प्रदक्षिणा किये न जाय अर्थात् इनके दांये होकर जाय बांये नहीं ॥ ५२ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य कभी दूसरोंकी भोगी हुई माला, अन्न, पान और वस्त्र इत्यादिका व्यवहार न करै, प्रतिदिन शिरसे स्नान करै, और महानिशामें विना विशेष कारणके स्नान न करै ॥ ५३ ॥ चंद्र सूर्यके ग्रहणमें अपने पुरुषकी मृत्यु होनेपर और जन्मके नक्षत्रपर चंद्रमा, हो तब रात्रिमेंभी स्नान करै इन सबकें अतिरिक्त तैलादिके मालिस किये शरीरको स्पर्श न करै, और स्नान करते समय बालोंकी छींटें न दे ॥ ५४ ॥ जिस वस्त्रको पहनकर स्नान करै उस वस्त्रसे और केवल हाथोंसे शरीरको मार्जन न करै, हे निशाचरराज ! सुसंहित (परस्पर मिलकर रहनेवाले) लोकोंसे सेवित (सुराजक) उत्तम जनपदमें सर्वदा निवास करै॥ ५५॥

भुंजीतनैवेहचदक्षिणामुखोनचप्रतीचीमभिभोजनीयम् ॥ देवालयंचैत्यतरुंचतुष्पथंविद्याधिकंचापिगुरुंप्रदक्षिणम् ॥ ५२ ॥ माल्यान्नपानंवसनानियत्नतो
धृतानिचान्यैर्नहिधारयेद्बुधः ॥ स्नायाच्छिरःस्नानतयाचनित्यंनिष्कारणंनैवमहानिशासु ॥ ५३ ॥ ग्रहोपरागेस्वजनापघातेमुक्त्वाचजन्मर्क्षगतेशशांके ॥
नाभ्यंगितंकायमुपस्पृशेच्चस्नातोनकेशान्विधुनीतचापि ॥ ५४ ॥ गात्राणिनैवांबरपाणिनाचस्नातोविमृज्याद्रजनीचरेश ॥ वसेत्सुदेशेषुसुराजकेषुसुसंहिते
ष्वेवजनेषुनित्यम् ॥ ५५ ॥ अक्रोधनान्यायपराविमत्सराःकृषीवलाह्योषधिजातयश्च ॥ स्वापस्तुवैद्योधनिकश्चयत्रसच्छ्रोत्रियस्तत्रवसेतनित्यम् ॥५६ ॥
नतेषुदेशेषुवसेतबुद्धिमान्सदानृपोदंडरुचिस्त्वशक्तः ॥ जनोपिनित्योत्सवबद्धवैरःसदाजिगीषुश्चनिशाचरेंद्र ॥५७॥ यच्चवर्ज्यंमहाबाहोसदाधर्मस्थितैर्नरैः ॥
यद्भोज्यंचसमुद्दिष्टंकथयिष्यामहेवयम् ॥ ५८ ॥ भोज्यमन्नंपर्युषितंस्नेहाक्तंचिरसंभृतम् ॥ अस्नेहाव्रीहयःश्लक्ष्णाविकाराःपयसस्तथा ॥ ५९ ॥

जहांके निवासी क्रोधहीन, न्यायपरायण, मत्सर (कुढ़पन) रहित और कृषीवल (किशान) लोग तथा नानाप्रकारके अन्नादिक होते होंय और अच्छा नदी आदिकका जल, अच्छे वैद्य, धनी, अच्छे श्रोत्रिय, वेदार्थको जानकर उसके अनुसार कर्मपरायण मनुष्य होंय, ऐसे देशमें नित्य बुद्धिमान् मनुष्य वास करै, हे निशाचरेन्द्र! जहांका राजा शक्तिहीन और सर्वदा दंडमें रुचिवाला हो और जहांके निवासी नित्य ऊधम और वैरके बांधनेवाले और सदा दूसरोंके जीतनेकी इच्छा रखते हो ऐसे देशमें वास करना योग्य नहीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे महाबाहो ! धर्ममें स्थित मनुष्यको सर्वदा जिसका निषेध और जिसका भोजन करना वेदमें बताया है अब हम उसीको कहते हैं ॥ ५८ ॥ घृतसे बनाया हुआ अन्न चिरकालके रखनेसे पर्य्युषित (बासी) होनेपरभी भोजनके योग्य है ऐसेही विना घृतादिक स्नेहके लगेभी (घृतहीन व्रीहि धान इत्यादि) साफकरके भोजन करनेके योग्य है, और दूधके विकार (दही रबडी इत्यादि) यह बासी होनेपरभी भोजन करनेके योग्यहैं ॥ ५९ ॥

खरगोश, सेही, गोह, गैंडा और कच्छप यह पंचनख पशु और मछली तीतर इत्यादिके मांसको, वैसेही दाल इत्यादिकोभी मनुजीने भक्षण करनेके योग्य बताया है ॥ ६० ॥ मणि, वस्त्र, मूंगा, मोती, पत्थर, और काष्ठकी बनी वस्तु, तृणमूल और औषधियें ॥ ६१ ॥ सूप, अन्न, तृण, संहत, धोयेहुए वस्त्र और वल्कल यह सब द्रव्य शुद्ध जलके छींटोंसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ६२ ॥ स्नेहयुक्त पदार्थोंकी गरम जलसे शुद्धि होती है, तिलके खलसहित जलसे ऊनी वस्त्र शुद्ध होताहै, और कपासके वस्त्र कुए तलाओंके जलके धोनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ६३ ॥ हाथीका दांत, अस्थि, सींग, इनकी तत्काल शुद्धि होजाती है, और मट्टीके बरतन फिर अग्निमें पकानेसे शुद्ध होते हैं॥ ६४ ॥ भिक्षाका अन्न, शिल्पी (कारीगर) का हाथ, विना जानी गलीमें पड़ी वस्तु, तथा विना जाने दासने जो पदार्थ किया है ॥ ६५ ॥ वचनोंसे

शशकःशल्यकोगोधासमेधामत्स्यकच्छपौ ॥ तद्वद्विदलकादीनिभोज्यानिमनुरब्रवीत् ॥ ६० ॥ मणिवस्त्रप्रवालानांतद्वन्मुक्ताफलस्यच ॥ शैलदारुमया
नाश्वतृणमूलौषधान्यपि ॥ ६१ ॥ शूर्पधान्यतृणानांचसंहतानांचवाससाम् ॥ वल्कलानामशेषाणामंबुनाशुद्धिरिष्यते ॥ ६२ ॥ सस्नेहानामथोष्णेनति
लकल्केनचाविकम् ॥ कार्पासिकानांवस्त्राणांशुद्धिःस्याद्वहिरंबुना ॥ ६३ ॥ नागदंतास्थिशृंगाणांतत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ पुनःपाकेनभांडानांमृन्मयानां
चमेध्यता ॥ ६४ ॥ शुचिभैक्षंकारुहस्तःपण्ययोषिन्मुखंतथा ॥ रथ्यागतमविज्ञातंदासवर्गेणयत्कृतम् ॥ ६५ ॥ वाक्यपूतंचिरानीतमनेकांतरितंलघु ॥
चेष्टितंबालवृद्धानांबालस्यतुमुखंशुचि ॥ ६६ ॥ कर्मांताङ्गारशालास्तुस्तनंधयसुताःस्त्रियः ॥ वाग्विप्रुषोद्विजेंद्राणांसंतप्ताश्चांबुबिंदवः ॥ ६७ ॥ भूमि
विंशुद्ध्यतेखातदाहमार्जनगोक्रमैः ॥ लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् ॥ ६८॥ केशकीटावपन्नेऽन्नेगोघ्रातेमक्षिकान्विते ॥ मृदंबुभस्मक्षाराणिप्रक्षे
प्तव्यानिशुद्धये ॥ ६९ ॥ औदुंबराणांचाम्लेनक्षारेणत्रपुसीसयोः ॥ भस्माद्भिश्चैवकांस्यानांशुद्धिःप्लावोद्रवस्यच ॥ ७० ॥

पवित्र अर्थात् चिरकालसे आया हुआ पदार्थ, लघु, हलका चीज़ अनेक हाथसे (हाथोंहाथ) आया हुआ, बालक और वृद्धोंकी चेष्टा तथा बालकका मुख यह सब कालमें पवित्र रहते हैं ॥ ६६ ॥ कर्मान्त (अन्तेष्टिश्राद्धशाला) और पाकशाला, दूध पीनेवाला, बालक, कन्या, स्त्री, ब्राह्मणोंकी बोलतेसमयके मुखसे निकली हुई छोटी २ बिन्दिऐं और गरम जलकी बूंदें यह सब स्वभावसेही शुद्ध हैं ॥ ६७ ॥ खोदने, दाहकरने, मार्जन, गोपरिक्रमण, लेपन, उल्लेखन और जलसिंचनसे बाहरकी भूमि शुद्ध होती है, और घरकी बुहारीसे मार्जन और अर्चन करनेसे शुद्धि होती है ॥ ६८ ॥ केश, (बाल) कीट (कीड़े) मक्खीसे दूषित (युक्त) और गौका सूँघाहुआ अन्न मट्टी और खारके डालनेसे शुद्ध होता है ॥ ६९ ॥ तांबेकी खट्टे पदार्थोंसे, रांग और सीसेकी खारसे और कांसीके पात्रोंकी भस्म

(राख) और पानीसे शुद्धि होती है और घृत आदिक द्रववस्तुकी अग्निमें पिलगानेहीसे शुद्धि है ॥ ७० ॥ अपवित्र पदार्थसे मिलेहुए पात्रकी मट्टी और जलसे और गंध हो तो भी अग्नि इत्यादिकसे तपाकर गंधके दूर होनेसे शुद्धि होती है, और अन्य द्रव्योंकी गंधके दूर होनेसे शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ माताके थन चूसनेके समय बछड़ा, फल गिरानेके समय पक्षी शुद्ध है, बोझा उठानेके समय गधा शुद्ध है और ❀मृगके शिकारमें कुत्ता शुद्ध है ॥७२॥ गलीकी कीच, जल, गौएँ मार्गके तृण, और पक्की ईंटोंके बनेहुए भट्टे इत्यादिक स्थान वायुहीसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ७३ ॥ एक द्रोण अर्थात् १०२४ तोलेसे अधिक अन्न अपवित्र पदार्थसे मिलजाय तो उसके आगेके भागको अर्थात् ऊपरके भागको निकाल डाले, और शेष अन्नपर शुद्ध जलका छींटा दे तो वह शुद्ध होजाता है॥७४॥ विना जाने दूषित

अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैर्गंधापहरणेनच ॥ अन्येषामपितद्द्रव्यैः शुद्धिर्गंधापहारतः ॥ ७१ ॥ मातुःप्रस्रवणेवत्सःशकुनिःफलपातने ॥ गर्द्दभोभारवाहित्वे
श्वामृगग्रहणेशुचिः ॥ ७२ ॥ रथ्याकर्दमतोयानिगावःपथितृणानिच ॥ मारुतेनैवशुद्धयंतिपक्केष्टकचितानिच ॥ ७३ ॥ पक्कंद्रोणाधिकश्चान्नममेध्या
भिप्लुतंभवेत् ॥ अग्रमुद्धृत्यसंत्याज्यंशेषस्यप्रोक्षणंस्मृतम् ॥ ७४ ॥ उपवासस्त्रिरात्रंवादूषितान्नस्यभोजने ॥ अज्ञातेज्ञातपूर्वेवानैवशुद्धिर्विधीयते ॥७५॥
उदक्यास्नातनग्नाश्वसूतिकांत्यावसायिनः ॥ स्पृष्ट्वास्नायीतशौचार्थंतथैवमृतहारिणः ॥ ७६ ॥ सस्नेहमास्थिसंस्पृश्यसवासाजलमाविशेत् ॥ आचम्यै
वतुनिःस्नेहंगामालभ्यार्कमीक्ष्यच ॥७७॥ नलंघयेन्नरंनासृक्छरीरोद्वर्तनानिच॥गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादांभांसिक्षिपेद्बहिः ॥७८॥ पंचपिंडाननुद्धृत्यनस्ना
यात्परवारिणि ॥ स्नायीतदेवखातेषुसरःसुचसरित्सुच ॥७९॥ नोद्यानादौविकालेषुप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ नालपेज्जनविद्विष्टंवीरहीनांतथास्त्रियम् ॥८०॥

अन्नके भोजन करनेसे तीन रात्रितक उपवास करै तो शुद्धि होती है और जानकर दूषित अन्नके भोजन करनेसे शुद्धि नहीं होती ॥ ७५ ॥ रजस्वला, अस्नात, नंगी और सूतिका स्त्रीको स्पर्श करनेसे और चांडाल तथा मृतक पुरुषके उठानेवाले पुरुषोंको स्पर्श करनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है ॥ ७६ ॥ गीली हड्डीके स्पर्श करनेपर वस्त्रसहित जलमें स्नान करना योग्य है और सूखी हड्डीके स्पर्श करने पर आचमनसे, अथवा गौको आलंभन (स्पर्श) करनेसे, या सूर्यका दर्शन करनेसे शुद्धि होती है ॥ ७७ ॥ मनुष्य रुधिर और शरीर उबटनको न लांघै,जूंठा, विष्ठा, मूत्र, पैरोंको धोकर जलको घरके बाहर डालदे ॥ ७८ ॥ विना, पांच मृत्तिकाके पिंडोंका उद्धार किये दूसरेके जलाशय (तालाव इत्यादि) में स्नान नकरै, देवखात, सरोवर और नदियोंमें स्नान करै ॥ ७९ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य असमय

❀ यहां मृग यह और सब सिकारोंके उपलक्षक है कारण कि "रतिकाले मुखं स्त्रीणां शुनामाखेटके तथा" ऐसा धर्मशास्त्रका वचन है ।

(मध्याह्न, निशीथ इत्यादिक) बाग आदिमें न ठहरै, और अवीरा (पतिपुत्रसे रहित) स्त्रीके साथ संभाषण न करै ॥ ८० ॥ जो देवता, पितर, सत् (धर्म प्रतिपादक) यज्ञ और सत्रआदि दानकी निन्दा करते हैं उनके साथ वार्तालाप और उनका स्पर्श करनेपर सूर्यका दर्शन करनेसे शुद्धि होती है ॥ ८१ ॥ सूतिका, षंढ, मार्जार, आखु, कुक्कुट, पतित, अपविद्ध, नग्न, चांडाल, अधम इत्यादिका अन्न नहीं खाना योग्य है ॥ ८२ ॥ सुकेशीने कहा कि, आपने जो सूतिका इत्यादिको अभोज्यान्न कहा, इनका लक्षण क्या है? उसके तत्त्व सुननेकी मैं इच्छा करताहूं॥८३॥ऋषि बोले कि, जो ब्राह्मणी अन्यब्राह्मणको पतित करले उन दोनोंको सूतिका कहतेहैं, इनका अन्न अत्यन्त निन्दित है ॥८४॥ जो मनुष्य उचित समयमें हवन और देवताओंकी पूजा नहीं करता उसको षंड कहतेहैं ॥ ८५॥ जो मनुष्य पाखंडकरके

देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञसत्रादिनिंदकैः ॥ कृत्वातुस्पर्शमालापंशुद्ध्यतेर्कविलोकनात् ॥ ८१ ॥ अभोज्याःसूतिकाःषंडोमार्जाराखूचकुक्कुटाः ॥ पतिताप
विद्धनग्नाश्चचंडालाद्याधमाश्चये ॥८२॥ सुकेशिरुवाच ॥ भवद्भिःकीर्त्तिताभोज्यायएतेसूतिकादयः ॥ अमीषांश्रोतुमिच्छामितत्त्वतोलक्षणानिहि ॥८३॥
ऋषयऊचुः ॥ ब्राह्मणीब्राह्मणश्चैवयावच्छेषत्वमागतौ ॥ तावुभौसूतिकेत्युक्तौतयोरन्नंविगर्हितम् ॥ ८४ ॥ नजुहोत्युचितेकालेनस्नातिनददातिच ॥ पितृदे
वार्चनाद्धीनःसषंडःपरिगीयते ॥ ८५ ॥ दंभार्थंजपतेयश्चतप्यतेपठतेतथा ॥ नपरत्रार्थमुद्युक्तोमार्जारःपरिकीर्तितः ॥ ८६ ॥ विभवेसतिनैवात्तिनददाति
जुहोतिन ॥ तमाहुराखुंतस्यान्नंभुक्त्वाकृच्छ्रेणशुध्यति ॥ ८७ ॥ सभागतानांयःसभ्यःपक्षपातंसमाश्रयेत् ॥ तमाहुःकुक्कुटंदेवास्तस्याप्यन्नंविगर्हितम् ॥
॥ ८८ ॥ स्वधर्मंयः समुत्सृज्यपरधर्मंसमाचरेत् ॥ अनापदिसविद्वद्भिःपतितःपरिकीर्त्यते ॥ ८९ ॥ देवत्यागीपितृत्यागीगुरुंवद्भुग्नकस्तथा ॥
गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धःप्रकीर्त्यते ॥ ९० ॥ येषांकुलेनवेदोस्तिनशास्त्रंनैवचव्रतम् ॥ तेनग्नाःकीर्तिताःसद्भिस्तेषामन्नंविगर्हितम् ॥ ९१ ॥

जप करै उपासना करै और पाठकरै और परलोकके अर्थ कुछ उद्योग नहीं करै उसको मार्जार कहते हैं ॥८६॥ जो मनुष्य विभव होनेपरभी आप अच्छीतरह भोजन नहीं करता, दान नहीं करता, उसीको आखु (मूसा) कहते हैं, जो उसका भोजन करै तो कृच्छ्रव्रतके करनेसे शुद्धि होती है ॥ ८७ ॥ जो सभ्य, सभाके बीचमें मनुष्योंके प्रति पक्षपात करताहै, देवताओंने उसे कुक्कुट कहा है, उसकाभी अन्न अत्यन्त गर्हित है ॥ ८८॥ जो मनुष्य आपत्तिके अतिरिक्त अन्यसमयमेंभी अपने धर्मको छोड़कर पराये धर्मका आश्रय लेताहै, विद्वानोंने उसको पतित कहाहै ॥ ८९ ॥ जो मनुष्य देवता, पितर और गुरुको त्यागदेताहै और गौ, ब्राह्मण तथा स्त्रीकी हत्या करताहै, उसको अपविद्ध कहतेहैं ॥ ९० ॥ जिसके वंशमें वेद, शास्त्र और व्रत नहीं है उसकोही साधुओंने नग्न कहाहै, उसका अन्न अत्यन्त निन्दित है ॥९१॥

और जो मनुष्य आशा दिलाकर दान नहीं करता, तथा दाताको दान करनेसे रोकता है, और अपनी शरणमें आये हुएका त्याग करता है उसको चांडाल और नीच कहते हैं ॥ ९२ ॥ जो मनुष्य बांधवोंसे, साधुओंसे और ब्राह्मणोंसे छुटाहुआ है उसे कुंडाशी कहते हैं, उसका अन्न भोजन करनेसे चांद्रायण व्रत करना चाहिये॥ ॥९३॥जो मनुष्य नित्य और नैमित्तिक कार्यमें हानि करता है उसका अन्न जो भोजन करले तो तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्धि प्राप्त होती है ॥९४॥ केवल मृत्यु और जन्मके समय आशौचहीमें नित्यकर्मकी हानि करनी चाहिये और नैमित्तिक कर्मकी हानि करनी चाहिये, और नैमित्तिक कर्मको किसी समयभी नहीं छोड़ना योग्य है ॥९५ ॥ पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये,मृत्युके होनेपर सम्पूर्ण बांधवोंको इसीप्रकार वस्त्रोंसहित स्नान करना योग्य है, यह भगवान् भृगुजीने कहा है ॥ ९६ ॥ मृतपुरुषको ग्रामके बाहर दग्ध करके गोत्री मनुष्योंको प्रेतके लिये तिलसहित जलदान करना चाहिये, और पहले चौथे वा सातवें दिन

आशार्तानामदाताचदातुश्चप्रतिषेधकः ॥ शरणागतंयस्त्यजतिसचंडालोऽधमोजनः ॥ ९२ ॥ योबांधवैःपरित्यक्तःसाधुभिर्ब्राह्मणैरपि ॥ कुण्डाशीयश्चत
स्यान्नंभुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ॥ ९३ ॥ योनित्यकर्मणोहानिंकुर्यान्नैमित्तिकस्यच ॥ भुक्त्वान्नंतस्यशुध्येतत्रिरात्रोपोषितोनरः ॥ ९४ ॥ नित्यस्यकर्म
णोहानिःकेवलंमृतजन्मसु ॥ नतुनैमित्तिकोच्छेदःकर्त्तव्योहिकथंचन ॥९५॥ जातेपुत्रेपितुःस्नानंसचैलंतुविधीयते ॥ मृतेचसर्वबंधूनामित्याहभगवान्भृगुः ॥
॥ ९६ ॥ प्रेतायसलिलंदेयंबहिर्दग्ध्वातुगोत्रजैः ॥ प्रथमेह्निचतुर्थेवासप्तमेवास्थिसंचयम् ॥ ९७ ॥ ऊर्द्ध्वंसंचयनात्तेषामंगस्पर्शोविधीयते ॥ सोदकैस्तु
क्रियाकार्याअशुद्धैस्तुसपिंडकैः ॥ ९८ ॥ विषोद्बंधनशस्त्रांबुवह्निपातमृतेषुच ॥ बालेप्रव्राजिसंन्यासेदेशांतरमृतेतथा ॥९९॥ सद्यःशौचंभवेद्वीरतच्चाप्यु
क्तंचतुर्विधम् ॥ गर्भस्रावेतदैवोक्तंपूर्वकाले न वै चरेत् ॥१००॥ ब्राह्मणानामहोरात्रंक्षत्रियाणांदिनत्रयम् ॥ षड्रात्रंचैववैश्यानांशूद्राणांद्वादशाह्निकम् ॥१०१॥

अस्थिसंचय (हड्डियोंको इकट्ठा) करै॥९७॥अस्थियोंको इकट्ठा करनेके पीछे उनको स्पर्श कियाजासकताहै, अशुद्ध सपिंडक और समानोदक मनुष्योंकी क्रिया (श्राद्ध) करना योग्य है ॥ ९८ ॥ विष, फाँसी, शस्त्र, जल, अग्नि और ऊँचेसे गिरना, इनकेद्वारा मरनेमें, बालक, प्रव्राजित संन्यासी और देशान्तर (गिरिमहानदी—समुद्रसे व्यवहित जिससे दशाहमध्यमें वार्ता नहीं आसकै ऐसे दूरदेश) को गयेहुए मनुष्यके मरनेमें ॥ ९९ ॥ तत्काल (श्रवणकाल) ही शौच कहाहै. हे वीर ! वह शौच चार प्रकारका है, और गर्भपात होनेपरभी इसीप्रकारसे शौच कहाहै, और यह शुद्धि आगे कहेहुए अपने २ नियतकालसे पहले न (मानै) करै ॥ १०० ॥ ब्राह्मणोंको एक दिन और एकरात्रि, क्षत्रियोंको तीन दिन, वैश्योंको छैः रात्रि और शूद्रोंको बारह दिनमें शुद्धि प्राप्तहोती है (यह गर्भस्रावका सूतक कहा है) ॥१०१॥

पूर्णसूतक ब्राह्मणोंको दशदिन, क्षत्रियोंको बारहदिन, वैश्योंको पंद्रह दिन और शूद्रोंको एक महीनेतक रहता है, इसप्रकार पूर्णसूतक बीतजानेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने कार्यको साधन करै ॥ १०२ ॥ प्रेतके निमित्त विधिविधानसे एकोद्दिष्ट (वार्षिक) श्राद्ध करै और वर्षमें प्रेतकी सपिंडी करै ॥ १०३ ॥ इसके पीछे वह प्रेत (पितर) भावको प्राप्त होजाताहै, तब अमावास्या और पूर्णिमा आदि तिथियोंमें वेदकी विधिके अनुसार उसको श्राद्ध आदिकसे प्रसन्न करतारहै ॥ ॥ १०४ ॥ पिताकी प्रीतिके अर्थ भूमिदानादि करै, जिससे हे राक्षस ! पितर प्रसन्न होकर (उत्तमलोकको) जाँय ॥ १०५ ॥ जीवितअवस्थामें जो जो द्रव्य उस मनुष्यको उत्तम लगते हों, व उसको उनसे अधिक प्रीति हो, उसको अक्षयकी इच्छा कर गुणवान् मनुष्यको वही द्रव्य दान करै ॥ १०६ ॥ विद्वान मनुष्यको सर्वदा तीन वेदोंको पढ़ना चाहिये. धर्ममार्गमें स्थित होकर धनको प्राप्त करै और अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञ करै ॥ १०७ ॥ हे राक्षस ! जिसके करनेसे आत्मा निन्दाको प्राप्त नहीं होता और जिससे महाजनोंके निकट छिपना नहीं होता इसप्रकारका कार्य अशंकित चित्तसे करै ॥ १०८ ॥ इस प्रकारके आचरण करनेवाले पुरुषको इसलोक और परलोकमें सम्यक् प्रकारसे धर्म,अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है ॥ १०९ ॥ हे निशाचर ! यह तो इस उत्तम गृहस्थाश्रमका क्रमसे वर्णन किया अब वानप्रस्थ आश्रमका वर्णन करते हैं, एकाग्र मनसे श्रवण करो ॥ ११० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य पुत्रकी संतानको और शरीरकी अवनति (ह्रास, घटती) देखकर आत्माकी शुद्धिके निमित्त वानप्रस्थ आश्रमको प्राप्तहो ॥ १११ ॥ वहां वनकी वस्तुओंका उपभोग और तप करके आत्माका दर्शन (ज्ञान) करै पृथ्वीमें शयन करै और ब्रह्मचर्यसे रहै पितर, देवता और अतिथियोंकी क्रिया (श्राद्ध, यज्ञ, यथाशक्ति दान) करै ॥ ११२ ॥

दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः ॥ स्वाःस्वाःकालेक्रियाःकुर्युःसर्ववर्णायथाक्रमम् ॥१०२॥ प्रेतमुद्दिश्यकर्त्तव्यमेकोद्दिष्टंविधानतः ॥ सपिंडीकरणं कार्यंप्रेतआवत्सरान्नरैः ॥१०३॥ ततःपितृत्वमापन्नेदर्शपूर्णादिभिर्दिनैः ॥ प्रीणनंतस्यकर्त्तव्यंयथाश्रुतिनिदर्शनात् ॥१०४॥ पितुरर्थंसमुद्दिश्यभूमिदानादि कंस्वयम् ॥ कुर्याद्येनास्यसुप्रीताःपितरोयांतिराक्षस ॥१०५॥ यद्यदिष्टतमंकिंचिद्यच्चास्यदयितंगृहे ॥ तत्तद्गुणवतेदेयंतदेवाक्षयमिच्छता ॥१०६॥ अध्ये तव्यास्त्रयोनित्यंवेदाश्चविदुषासदा ॥ धर्मतोधनमाहार्ययष्टव्यंचापिशक्तितः ॥१०७॥ यच्चापिकुर्वतोनात्माजुगुप्सामेतिराक्षस ॥ तत्कर्त्तव्यमशंकेनयन्नगो प्यंमहाजने ॥१०८॥ एवमाचरतोलोकेपुरुषस्यगृहेसतः ॥ धर्मार्थकामसंप्राप्तिःपरत्रेहचशोभना ॥१०९॥ एषतूद्देशतःप्रोक्तोगृहस्थाश्रमउत्तमः ॥ वानप्र स्थाश्रमंधर्मंप्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम् ॥ ११० ॥ अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ॥ वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मनःशुद्धिकारणम् ॥१११॥ तत्रारण्यो पभोगैश्चतपोभिश्चात्मदर्शनम् ॥ भूमौशय्याब्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रियाः ॥ ११२ ॥

हवन करै, तीनों कालोंमें स्नान और संध्या करै, जटावल्कलोंको धारण करै, और इंगुदी फलजनित तैलका सेवन करै॥ यह वानप्रस्थकी विधि है॥ ११३॥ सबका साथ छोड़ना, ब्रह्मचर्यसे रहना, अभिमानको न करना, इंद्रियोंको जीतना और एक आवासमें चिरकालतक वास करना ॥ ११४॥ आरंभों (रोजगारों) को त्यागना, भोजनके निमित्त भिक्षा लाना, अधिक क्रोध न करना, आत्मज्ञानकी इच्छा करना, तथा आत्माकी शुद्धि करना ॥ ११५ ॥ यह सब चतुर्थ आश्रके धर्म तुम्हारे निकट कहे. हे निशाचर ! अब और वर्णधर्मोंको सुनो ॥ ११६ ॥ गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ, यह तीन आश्रम क्षत्रियोंकेभी कहेगये हैं जो कि, ब्राह्मणोंके आचार हैं ॥ ११७ ॥ वानप्रस्थ और गृहस्थाश्रम यह दोनों आश्रम वैश्योंको कहे हैं, और हे निशाचर ! शूद्रोंको एक गृहस्थाश्रमही कहाहै ॥ ११८ ॥ अपने २ वर्णाश्रमके धर्मको किसी प्रकारसेभी मनुष्य न त्यागै, जो ब्राह्मणादि तीन वर्ण अपने धर्मको छोड़कर अन्यधर्मके विधानसे अपने ऋगादि तीनों ॥ ११९ ॥ वेदोंको संतापित करता है सूर्य भगवान् उसके ऊपर अत्यन्त क्रोधित होते हैं, और हे क्षणदाचर ! उसके रोगोंकी वृद्धि करते हुए उसके कुलका नाश करनेके निमित्त यत्न करते हैं॥ ॥ १२० ॥ इसकारण अपने धर्मको कभी न छोड़ै और अपने वंशकाभी क्षय न करावै, जो मनुष्य अपने धर्मको त्याग देता है, सूर्य भगवान् उसपर अत्यन्त क्रोधित होते हैं ॥ १२१ ॥ मुनियोंके ऐसेवचनोंको सुन सुकेशी उनब्रह्मनिधि सबमहर्षियोंको प्रणामकर अपनेधर्मको वारंवार विचारताहुआ उछलकर आकाशमें स्थित हो अपने आश्रमको

होमास्त्रिषवणस्नानंजटावल्कलधारणम् ॥ वन्यस्नेहनिषेवित्वंवानप्रस्थविधिस्त्वयम् ॥११३॥ सर्वसंगपरित्यागोब्रह्मचर्यममानिता ॥ जितेंद्रियत्वमावासेनैकस्मिन्वसतेचिरम् ॥ ११४ ॥ अनारंभस्तथाहारोभिक्षान्नंनातिकोपिता ॥ आत्मज्ञानावबोधेच्छातथाचात्मावबोधनम् ॥ ११५ ॥ चतुर्थेचाश्रमेधर्मास्तेस्माभिःपरिकीर्तिताः ॥ वर्णधर्मांस्तथाचान्यान्निशामयनिशाचर ॥ ११६ ॥ गार्हस्थ्यंब्रह्मचर्यंचवानप्रस्थंत्रयोश्रमाः ॥ क्षत्रियस्यापिगदितोयआचारोद्विजस्यहि ॥११७॥ वैखानसत्वंगार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयंविशः ॥ गार्हस्थ्यमाश्रमंत्वेकंशूद्रस्यक्षणदाचर ॥ ११८॥ स्वान्स्वान्वर्णाश्रमप्रोक्तान्स्वधर्मान्नैवहापयेत् ॥ स्वधर्म्मक्षपणादन्यविधानाद्योद्विजस्त्रयीम् ॥ संतापयतितस्यासौपरिकुप्यतिभास्करः ॥११९॥ कुपितःकुलनाशायदेहरोगविवृद्धये ॥ भानुर्वैयततेतस्यनरस्यक्षणदाचर ॥१२०॥ तस्मात्स्वधर्मंनहिसंत्यजेच्चनहापयेच्चापिहिचात्मवंशम् ॥ यःसंत्यजेच्चापिनिजंहिधर्मंतस्मैप्रकुप्येतदिवाकरस्तु ॥१२१॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्येवमुक्तोमुनिनासुकेशीप्रणम्यतान्ब्रह्मनिधीन्महर्षीन् ॥ जगामचोत्पत्यपुरंस्वकीयंमुहुर्मुहुर्धर्ममवेक्षमाणः ॥ १२२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सुकेश्यनुशासनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जाता हुआ॥ १२२॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां सुकेश्यनुशासनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥ पुलस्त्यजी बोले—हे नारद ! इसके उपरान्त सुकेशी अपने पुरमें जाकर सम्पूर्ण राक्षसोंको बुलाय धर्मसंगत वचन कहनेलगा ॥ १ ॥ हिंसा न करना, सत्य बोलना, पवित्र रहना, इन्द्रियोंको जीतना, दान करना, दयायुक्त होना, क्षमा करना, ब्रह्मचर्यसे रहना और अभिमानको त्यागना ॥ २ ॥ प्रिय, सत्य और मधुरवचन बोलना, नित्य सत्कार्योंमें प्रीति रखना और सत् (श्रेष्ठ) आचारका सेवन करनेसे परलोकमें सुख प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ मुनियोंने मुझको इसप्रकारसे आद्य और पुरातन धर्मका उपदेश दियाहै, इसकारण मैं तुम सबको आज्ञा देताहूं कि, तुम किसी प्रकारकाभी विकल्प न करके उक्त धर्मका अनुष्ठान करो ॥ ४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इसके उपरान्त सुकेशीकी आज्ञानुसार सम्पूर्ण राक्षस प्रफुल्लित मनसे उसकी

पुलस्त्यउवाच ॥ ततःसुकेशीदेवर्षेगत्वापुरमनुत्तमम् ॥ समाहूयाब्रवीत्सर्वान्राक्षसान्धार्मिकंवचः ॥ १ ॥ अहिंसासत्यमस्तेयंशौचमिंद्रियसंयमः ॥ दानं
दयाचक्षांतिश्चब्रह्मचर्यममानिता ॥ २ ॥ शुभासत्याचमधुरावाङ्नित्यंसत्क्रियारतिः ॥ सदाचारानिषेवित्वंपरलोकप्रदायकाः ॥ ३ ॥ इत्यूचुर्मुनयोमह्यं
धर्ममाद्यंपुरातनम् ॥ सोऽहमाज्ञापयेसर्वान्क्रियतामविकल्पतः ॥ ४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःसुकेशिवचनात्सर्वएवनिशाचराः ॥ त्रयोदशांशतोधर्मं
चक्रुर्मुदितमानसाः ॥ ५ ॥ ततःप्रवृद्धिंसुतरामगच्छंस्तेनिशाचराः ॥ पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताःसदाचारसमन्विताः ॥ ६ ॥ ततस्तुतेजसातेषांराक्षसानां
महात्मनाम् ॥ गंतुंनाशक्नुवन्सूर्योनक्षत्राणिनचंद्रमाः ॥ ७ ॥ ततस्त्रिभुवनेब्रह्मन्निशाचरपुरंविभो ॥ दिवासूर्यस्यसदृशंक्षणदायांचचंद्रवत् ॥ ८ ॥
नज्ञायतेगतिर्व्योम्निभास्करस्यततोंबरे ॥ शशांकमिवतेजस्त्वादमन्यंतपुरोत्तमम् ॥ ९ ॥ स्वंविकासंविमुंचंतिनिशामितिव्यचिंतयन् ॥ कमलाकरे
चकमलामित्रमित्यभिगम्यहि ॥ रात्रौविकसिताब्रह्मन्विभूतिंदातुमीप्सिताम् ॥ १० ॥ कौशिकारात्रिसमयंबुद्ध्वानिरगमन्किल ॥ तान्वायसास्तदाज्ञात्वा
दिवानिघ्नंतिकौशिकान् ॥ ११ ॥

अपेक्षा तेरहगुण अधिक धर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्तहुए ॥ ५ ॥ तिसके उपरान्त पुत्र, पौत्र और धनसेयुक्त सदाचारसे समन्वित वह राक्षसगण अत्यन्त वृद्धिको प्राप्तहुए ॥ ६ ॥ सूर्य, नक्षत्र और चंद्रमा उन महात्मा राक्षसोंके तेजके प्रभावसे चलनेमें समर्थ न हुए ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्रिलोकीके बीचमें राक्षसोंका वह पुर दिनमें सूर्यकी समान और रात्रिमें चंद्रमाकी समान प्रकाशित होने लगा ॥ ८ ॥ तिसकारणसे आकाशमें सूर्यकी गति (ज्योति) नहीं जानीजातीथी, चंद्रमाके समान तेज होनेसे उसी पुरकोही लोग चंद्रमा जानने लगे ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! सरोवरोंमें कमल सब हततेज सूर्य भगवान्को नहीं देखकर "रात्रि है" ऐसा जानकर अपने विकासको नहीं करते (विकसित नहीं होते) और रात्रिमें उस पुरको सूर्य जानकर अभीप्सितविभूतिको प्रदान करनेके निमित्त खिलने लगे ॥ १० ॥ उलूक दिनमेंही रात्रि

जानकर अपने स्थानसे विचरनेको निकलने लगे, और कौवे दिन जानकर उन उलूकोंको मारने लगे ॥ ११ ॥ स्नातक (व्रतस्नातक) ब्राह्मणलोग तो दिनकोही रात्रि विचारकर नदीके बीच कंठतक जलमें मग्न हो जप करने लगे ॥ १२ ॥ तब चकवा चकवी उस पुरको देखकर परस्पर नहीं विछुड़े, और दिन विचारकर ऊँचे स्वरसे कहने लगे ॥ १३ ॥ किसी चकवेने अपनी प्यारीके वियोगमें अत्यन्त कष्टसे वारम्वार दुःखित हो पुकारकर अपने प्राणोंको नदीके तटपर त्यागदिया ॥ ॥ १४ ॥ तब यह देखकर सूर्यभगवान् कृपायुक्त हो अपनी तीव्र किरणोंका विस्तारकर वारम्वार जगत्को संतप्त करते अस्त नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ और चकवे कहनेलगे कि, निश्चयही कोई चकवा मरगयाहै, उसकी स्त्रीने स्वामीके विरहसे व्याकुल होकर तपस्या की है ॥ १६ ॥ उसकी तपस्यासे सूर्यभगवान् अवश्य आराधित (प्रसन्न) हुएहैं तब वह चंद्रमाको जीतकर अस्त नहीं होते, यही वार्ता ठीक है ॥ १७ ॥ हे महामुने ! यज्ञकरनेवाले मनुष्य यज्ञशालाओंमें ऋषियोंको साथमें लिये रात्रिमेंही यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १८ ॥ महाभागवत पुरुष दिन और रात सब समयमेंही भगवान् विष्णुकी पूजा करने लगे. और अन्य पुरुष ब्रह्मा और महादेवजीकी आराधनामें प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥ कामी पुरुष विचारने लगे कि, चंद्रमाने साधु अनुष्ठान (बहुत ठीक) किया है, जिस कारण यह नित्य ज्योत्स्नामयी रमणीक रात्रिही कररक्खी है ॥ २० ॥ अन्य कामीगण कहनेलगे कि, हमने अकपटभावसे पवित्र और उत्तम गंधवान् फूलोंके द्वारा श्रावणादि चारमहीने लक्ष्मीके साथ महायोगी जगद्गुरु वशी (जितेन्द्रिय) चक्रपाणिकी आराधना कीथी. वह अशून्यशयना द्वितीया सब प्रकारकी अभिलाषाको पूर्ण करने

स्नातकास्त्वापगास्वेवस्नानजप्यपरायणाः ॥ आकंठमग्नास्तिष्ठंतिरात्रिंज्ञात्वाऽथवासरम् ॥ १२ ॥ नव्ययुज्यंतचक्राह्वास्तदावैपुरदर्शने ॥ मन्यमानास्तुदिवसमिदमुच्चैर्ब्रुवंतिच ॥ १३ ॥ नूनंकांताविहीनेनकेनचिच्चक्रपत्रिणा ॥ उत्सृष्टंजीवितंशून्येफूत्कृत्यसरितस्तटे ॥ १४ ॥ ततोनुकंपयाविष्टोविवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः ॥ संतापयज्जगत्सर्वंनास्तमेतिकथंचन ॥ १५ ॥ अन्येवदंतिचक्राह्वानूनंकश्चिन्मृतोऽभवत् ॥ तत्कांतयातपस्तप्तंभर्तृशोकार्त्तयाततः ॥ .१६ ॥ आराधितस्तुभगवांस्तपसासौदिवाकरः ॥ तेनासौशशिनंजित्वानास्तमेतिरविर्ध्रुवम् ॥ १७ ॥ यज्वानोहोमशालासुसहर्त्विग्भिरथाध्वरे ॥ प्रावर्त्तयंतकर्माणिरात्रावपिमहामुने ॥ १८ ॥ महाभागवताःपूजांविष्णोःकुर्वंतिभक्तितः ॥ रवौशशिनिचैवान्येब्रह्मणोन्येहरस्यच ॥ १९ ॥ कामिनश्चाप्यमन्यंतसाधुचंद्रमसाकृतम् ॥ यदियंरजनीरम्याकृतासततकौमुदी ॥ २० ॥ अन्येऽब्रुवँल्लोकगुरुरस्माभिश्चक्रभृद्वशी ॥ निर्व्याजेनमहागंधैरर्चितःकुसुमैःशुभैः ॥ २१॥ सहलक्ष्म्यामहायोगीनभस्यादिचतुर्ष्वपि ॥ अशून्यशयनानामद्वितीयासर्वकामदा ॥ २२ ॥

वाली है ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसीकारण भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उत्तम भोगोंसे अशून्य (नित्य युक्त) और चंद्रास्तरहित नित्य पूर्णचंद्रयुक्त समय करके उत्तम शयनसुख दियाहै ॥ २३ ॥ और कहनेलगे कि, स्वयं देवी रोहिणीने चंद्रमाकी तीक्ष्ण दशाको देखकर परमपवित्र अक्षया अष्टमी तिथिमें वेदोक्त विधिके साथ अवश्यही रुद्रकी आराधना (प्रसन्नता) की इच्छासे दुश्चर तप किया है इसीसे भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उनकी इच्छानुसार यह वरदिया है (कि, चंद्रमा क्षीण नहीं होंगे) ॥ २४ ॥ २५ ॥ और मनुष्य यह कहने लगे कि, चंद्रमाने अवश्यही अखंडित व्रत करके विष्णु भगवान्‌की आराधना की है, इसीकारण आकाशमें अखंडितरूपसे उदित हुए हैं ॥ २६ ॥ दूसरे मनुष्य यह कहने लगे कि, चंद्रमाने अमिततेजस्वी विष्णुभगवान्‌के दोनों चरणोंकी पूजाकर निश्चयही इस

तेनासौभगवान्प्रीतःप्रादाच्छयनमुत्तमम् ॥ अशून्यंचमहाभोगैरनस्तमितशेखरम् ॥ २३ ॥ अन्येऽब्रुवन्ध्रुवंदेव्यारोहिण्याशशिनःक्षयम् ॥ दृष्ट्वातप्तंतपोघोरं रुद्राराधनकाम्यया ॥ २४ ॥ पुण्यायामक्षयाष्टम्यांवेदोक्तविधिनास्वयम् ॥ तुष्टेनशंभुनादत्तोवरश्चास्मैयदृच्छया ॥ २५ ॥ अन्येऽब्रुवंश्चंद्रमसाध्रुवमाराधितोहरिः ॥ व्रतेनेहत्वखंडेनतेनाखंडःशशीदिवि ॥ २६ ॥ अन्येऽब्रुवञ्छशांकेनध्रुवरक्षाकृतात्मनः ॥ पदद्वयंसमभ्यर्च्यविष्णोरमिततेजसः ॥ २७ ॥ तेनासौदीप्तिमांश्चंद्रःपरिभूयदिवाकरम् ॥ अस्माकमानंदकरोदिवातपतिसूर्यवत् ॥ २८ ॥ लक्ष्यतेकारणैरम्यैर्बहुभिःसत्यमेवहि ॥ शशांकनिर्जितःसूर्योनविभातियथापुरा ॥ २९ ॥ यथापद्माकराःश्लक्ष्णारणद्भृंगगणाकुलाः ॥ विकचाःप्रतिभासंतेजातःसूर्योदयोध्रुवम् ॥३०॥ यथाचान्येविभाव्यंतेविकचाः कुमुदाकराः ॥ अतोविज्ञायतेचंद्रउदितश्चप्रतापवान् ॥ ३१ ॥ एवंसंभाषतांतत्रसूर्योवाक्यानिनारद ॥ अमन्यतकिमेतद्धिलोकोवक्तिशुभाशुभम् ॥ ३२ ॥ एवंसंचिंत्यभगवान्दध्यौध्यानंदिवाकरः ॥ आसमंताज्जगद्ग्रस्तंत्रैलोक्यंरजनीचरैः ॥ ३३ ॥ ततस्तुभगवाञ्ज्ञात्वातेजसोऽप्यसहिष्णुताम् ॥ निशाचरस्य वृद्धितामचिंतयतयोगवित् ॥ ३४ ॥

प्रकार आत्मरक्षा की है ॥ २७ ॥ इसीसे हमारे आनंदको करनेवाला यह चंद्रमा सूर्यका निरादर करके दिनमें सूर्यके समान तपरहाहै ॥ २८ ॥ और अनेक कारणोंसे यहभी सत्य प्रतीत होताहै कि, चंद्रमासे परास्त होकर सूर्य अब पहलेकी समान प्रकाशमान नहीं होता ॥ २९ ॥ निश्चयही सूर्योदय हुआहै इसीकारण गूँजतेहुए भौरोंके गणसे व्याप्त सम्पूर्ण कमल खिलगये हैं ॥ ३० ॥ इस ओर कुमुदोंके समूहके समूह और खिलकर प्रकाशित होतेहैं इससे यही जानाजाताहै कि, प्रतापवान् चंद्रमा उदित हुए हैं ॥ ३१ ॥ हे नारद ! इसप्रकार मनुष्योंके वचनोंको सुन सूर्यभगवान् विचार करनेलगे कि, यह संसारी मनुष्य किसकारणसे इस शुभाशुभका वर्णन करते हैं ॥ ३२ ॥ यह विचारकर सूर्यभगवान्‌ने ध्यानमें मग्न होकर जाना कि, सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे निशाचरोंसे ग्रस्त होरहाहै ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त योगविद्

सूर्यभगवान् निशाचरोंके तेजकी असहिष्णुता और वृद्धिको जानकर चिन्ता करने लगे ॥ ३४ ॥ और चिन्ता करके जानां कि, सम्पूर्ण राक्षस सदाचारमें रत और
शौचयुक्त हैं तथा देव और ब्राह्मणोंकी पूजामें युक्त और धार्मिक होगये हैं ॥ ३५ ॥ तब तिमिररूप हाथीके नाश करनेमें सिंह महा।किरणरूप नखोंसे युक्त सूर्य भग
वान् राक्षसोंका नाश करनेमें उद्यत होकर उनके नाशकी चिन्ता करने लगे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त दिनकर भगवान्‌ने सम्पूर्ण धर्मोंके नाश करनेवाला स्वधर्मसे च्युत हो
नाही राक्षसोंका छिद्र जाना ॥ ३७ ॥ तब वह शत्रुनाशी सूर्यभगवान् अत्यन्त क्रोधी हुए तो उनके क्रोधसे राक्षस उस पुरमें भीत और यथेच्छासे विनष्ट हुए ॥ ३८ ॥
इसके उपरान्त सूर्यके क्रोधयुक्त नेत्रोंसे देखतेही सुकेशीभी क्षीणपुण्य ग्रहोंकी समान आकाशसे भ्रष्ट हो और पतित हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय वह सुकेशी पुरकी ऐसी

ततोज्ञात्वाचतान्सर्वान्सदाचाररतांश्छुचीन् ॥ देवब्राह्मणपूजासुसंसक्तान्धर्मसंयुतान् ॥ ३५ ॥ ततस्तुरक्षःक्षयकृत्तिमिरद्विपकेसरी ॥ महांशुनखरःसूर्य
स्तद्विघातमचिंतयत् ॥ ३६ ॥ ज्ञातवांश्चततश्छिद्रंराक्षसानांदिवस्पतिः ॥ स्वधर्मविच्युतिर्नामसर्वधर्मविघातकृत् ॥ ३७ ॥ ततःक्रोधाभिभूतेनभानुना
रिपुभेदिना ॥ तद्भीतंराक्षसपुरंतन्नष्टंचयथेच्छया ॥ ३८ ॥ सभानुनातदादृष्टःक्रोधाध्मातेनचक्षुषा ॥ निपपातांबराद्भ्रष्टःक्षीणपुण्यइवग्रहः ॥ ३९ ॥ एवमे
तत्समालोक्यपुरंशालकटंकटः ॥ नमोहरायशर्वायइदमुच्चैरुदीरयत् ॥ ४० ॥ तदाक्रंदितमाकर्ण्यचारणागगनेचराः ॥ हाहेतिचुक्रुशुःसर्वेंहरभक्तः
पतत्यसौ ॥ ४१ ॥ तच्चारणवचःशर्वःश्रुतवान्सर्वगोव्ययः ॥ श्रुत्वासंचितयामासकेनासौपात्यतेभुवि ॥ ४२ ॥ ज्ञातवान्देवपतिनासहस्रकिरणेनतत् ॥
पातितंराक्षसपुरंततःक्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥ ४३ ॥ क्रुद्धस्तुभगवाञ्छंभुर्भानुमंतमपश्यत ॥ दृष्टमात्रस्त्रिणेत्रेणनिपपातततोंबरात् ॥ ४४ ॥ गगनात्सपरिभ्रष्टः
पथिवायुनिषेविते ॥ यदृच्छयानिपतितोयंत्रमुक्तोयथोपलः ॥ ४५ ॥ ततोवायुपथान्मुक्तःकिंशुकोज्ज्वलविग्रहः ॥ निपपातांतरिक्षात्सवृतःकिन्नरचारणैः ॥ ४६ ॥

अवस्था देखकर ऊँचे स्वरसे कहनेलगा कि, हर और शर्व्वको नमस्कार है ॥ ४० ॥ आकाशचारी चारणगण उस आर्तवाणीको सुन हाहाकार कर कहने लगे कि,
यह महादेवका भक्त पतित होता है ॥ ४१ ॥ सर्वगामी अविनाशी महादेवजी चारणगणोंके वचनको सुनकर विचारने लगे कि, कौन सुकेशीको पृथ्वीपर गिराता है
॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त जब जाना कि, देवपति सूर्यने अपनी सहस्र किरणोंसे राक्षसके पुरको गिराया है तब महादेवजी अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४३ ॥ और
क्रोधित होकर भगवान् महादेवजीने सूर्यकी ओर देखा महादेवजीके देखतेही सूर्यभगवान् आकाशसे पतित हुए ॥ ४४ ॥ और वह आकाशसे भ्रष्ट होकर वायुसे
वित मार्गमें यंत्रसे मुक्त पत्थरके समान यदृच्छासे (एकाएक) पतित हुए ॥ ४५ ॥ और उस वायुमार्गसे मुक्तहोकर ढाँकके फूलकी समान उज्ज्वल शरीरसे आकाशसे

पृथ्वीपर गिरे, किन्नर और चारणगणोंने उनको चारोंओरसे घेरलियां[1] ॥ ४६ ॥ ऐसी अवस्थामें आकाशसे गिरनेके समय किरणोंसे घिरेहुए सूर्य इसप्रकारसे अत्यन्त शोभाको प्राप्तहुए कि, जैसे आधा पकाहुआ तालका फल वानरोंसे घिरकर तालवृक्षसे गिराहो ॥ ४७ ॥ उस समय तपस्वियोंने कहा कि, यदि कल्याणकी इच्छा है तो हरिके क्षेत्रमें पतित हो, तब सूर्यने पतन समय उन ऋषियोंसे कहा ॥४८॥ वह परमपवित्र हरिका क्षेत्र कौनसा है उसको शीघ्रही मुझसे कहिये । तब ऋषि गण सूर्यसे बोले कि, उस महाफलके देनेवाले हरिके क्षेत्रका वृत्तान्त सुनो ॥ ४९ ॥ यह हरिका क्षेत्र महादेव और वासुदेवसे निर्मित कियागयाहै, इसका प्रमाण योग शायीसे आरंभ करके केशवके दर्शनपर्यन्त हरिक्षेत्र कहाता है, हरिके उस परमपवित्र क्षेत्रका नाम वाराणसी पुरी (काशी) है ॥ ५० ॥ शिवके नेत्रसे तापित

अंशुभिर्वेष्टितोभानुःप्रविभात्यंबरात्पतन् ॥ अर्द्धपक्कंयथातालात्फलंकपिभिरावृतम् ॥ ४७ ॥ निपतस्वहरिक्षेत्रेयदिश्रेयोभिवांछसि ॥ ततोऽब्रवीत्पतन्नेव विवस्वांस्तांस्तपोधनान् ॥ ४८ ॥ किंतत्क्षेत्रंहरेःपुण्यंवदध्वंशीघ्रमेवमे ॥ तमूचुर्मुनयःसूर्यंशृणुक्षेत्रंमहाफलम् ॥ ४९ ॥ सांप्रतंवासुदेवस्यभावितंशंकरस्य च ॥ योगशायिनमारभ्ययावत्केशवदर्शनम् ॥ एतत्क्षेत्रंहरेःपुण्यंनाम्नावाराणसीपुरी ॥५० ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्भानुर्भवनेत्राभितापितः ॥ वरणायास्तथैवास्यास्त्वंतरेनिपपातह ॥ ५१ ॥ भानौततःप्रदह्यतिनिमज्यास्यांलुलद्रविः ॥ वरणायांसमभ्येत्यनिमज्जतियथेच्छया ॥ ५२ ॥ भूयोसींवरणांभूयोभूयोपिवरणामसीम् ॥ लुलंस्त्रिनेत्रवह्न्यार्त्तोभ्रमतेऽलातचक्रवत् ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्नंतरेब्रह्मन्नृषयोयक्षराक्षसाः ॥ नागाविद्याधराश्चापिपक्षिणोऽप्सरसस्तथा ॥ ॥ ५४ ॥ यावंतोभास्कररथेभूतप्रेतादयःस्थिताः ॥ तावंतोब्रह्मसदनंगतावेदयितुंमुने ॥ ५५ ॥ ततोब्रह्मासुरपतिःसुरैःसार्द्धंसमभ्ययात् ॥ रम्यंमहेश्वरावासंमंदरंरविकारणात् ॥ ५६ ॥

सूर्यभगवान् यह वचन सुनकर वरणा और असी इन दोंनों नदियोंके बीचमें गिरे ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त किरणोंके अत्यन्त दग्ध होनेके कारण सूर्य उस वरणानदीमें निमग्न होकर अपनी इच्छासे निमग्न हुए ॥ ५२ ॥ फिर वह कभी असी और कभी वरणानदीमें प्राप्तहो लोटते और गोते लगाते हुए महादेवजीके नेत्रोंकी अग्निसे दग्धहोनेके कारण अलातचक्र (बरैंठी) की समान भ्रमण करने लगे ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसी अवसरमें ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर पक्षी, अप्सरा ॥ ५४ ॥ और सूर्यरथमें जिनमें भूत प्रेतादि स्थित थे वह सभी हे मुने ! इस वृत्तान्तको कहनेकी इच्छासे ब्रह्मलोकमें गये ॥ ५५ ॥ तब सुरपति ब्रह्माजी

---

[1] यह सूर्यलोक अधिष्ठाता देवका पात हुआ है ।

देवताओंके साथ सूर्यके निमित्त महादेवजीके रमणीक स्थान मंदराचल पर्वतपर गये॥ ॥ ५६ ॥ वहां जाय देवाधिदेव शूलपाणि महादेवजीका दर्शन कर उन्हें प्रसन्न
किया, और सूर्यके निमित्त महादेवजीको काशीजीमें लाये ॥ ५७ ॥ तब महादेवजीने सूर्यको अपने हाथसे ग्रहणकर लोलनाम धरकर रथमें बैठाया ॥ ५८ ॥
सूर्य भगवान्के रथमें बैठजानेपर ब्रह्माजीने सुकेशीके निकट जाकर उसको बांधव और नगरीके सहित पुनर्वार आकाशमें स्थापित किया ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसे
सुकेशीको आकाशमें स्थापितकर महादेवजीसे मिल केशवको प्रणामकर ब्रह्माजी अपने स्थान ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ६० ॥ हे नारद ! पहले सूर्यने इसप्रकारसे
सुकेशीके नगरको पृथ्वीपर गिरायाथा, महादेवजीने यह देखकर अपने नेत्रोंकी अग्निसे सूर्यको दग्धकर पृथ्वीपर डालदिया ॥ ६१ ॥ फिर महादेवजीने प्रकाशकर

गत्वादृष्ट्वाचदेवेशंशंकरंशूलपाणिनम् ॥ प्रसाद्यभास्करार्थायवाराणस्यामुपानयन् ॥ ५७ ॥ ततोदिवाकरंभूयःपाणिनादायशंकरः ॥ कृत्वानामास्यलोले
तिरथमारोपयत्पुनः ॥ ५८ ॥ आरोपितेदिनकरेब्रह्माभ्येत्यसुकेशिनम् ॥ सबांधवंसनगरंपुनरारोपयद्दिवि ॥ ५९ ॥ समारोप्यसुकेशिंचपरिष्वज्यचशं
करः ॥ प्रणम्यकेशवंदेवंवैराजंस्वगृहंगतः ॥ ६० ॥ एवंपुरानारदभास्करेणपुरंसुकेशेर्भुविसन्निपातितम् ॥ दिवाकरोभूमितलेभवेनक्षिप्तस्तुदृष्ट्वानलसं
प्रदग्धः ॥ ६१ ॥ आरोपितोभूमितलाद्भवेनभूयोपिभानुःप्रतिभासनाय ॥ स्वयंभुवाचापिनिशाचरेंद्रस्त्वारोपितःखेसपुरःसबंधुः ॥ ६२ ॥ इति
श्रीवामनपुराणेसुकेशिचरितेलोलार्कजननंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारदउवाच ॥ यानेतान्भगवानाहकामिभिःशशिनंप्रति ॥ आराधनायदेवा
भ्यांहरीशाभ्यांवदस्वतान् ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुष्वकामिभिःप्रोक्तान्व्रतान्पुण्यान्कलिप्रिय ॥ आराधनायशर्वस्यकेशवस्यचधीमतः ॥ २ ॥
यदाषाढींरविःप्राप्यव्रजतेचोत्तरायणात् ॥ तदास्वपितिदेवेशोभोगिभोगेश्रियःपतिः ॥ ३ ॥

नेके निमित्त सूर्यको भूतलसे उठाकर आकाशमें स्थापित किया, ब्रह्माजीने निशाचर राज सुकेशीको पुर और बांधवोंके साथ आकाशमें स्थापित किया ॥ ६२ ॥
इति श्रीवामनपु० भाषाटीकायां सुकेशीचरिते लोलार्कजननंनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारदजी बोले कि, आपने जो (पूर्वाध्यायमें) कामीजनोंसे चंद्रमाके प्रति अशं
कित जिन इन हरिहर भगवान्की आराधनाके अर्थ व्रतोंको कहा था उनका विधिपूर्वक कीर्तन कीजिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे कलि (कलह) प्रिय ! कामियोंने महादेव
और वासुदेवकी उपासनाके अर्थ जिन परमपवित्र व्रतोंको उपेक्षाकर कहा उनको कहताहूं श्रवणकरो ॥ २ ॥ जब रवि (सूर्य) भगवान् आषाढी (आषाढ़शुक्ल एकादशी)
को पाकर उत्तरायणसे दक्षिणायनको गमन करनेपर होते हैं, अर्थात् मिथुन राशिके अन्त कर्कराशिके आरंभमें होते हैं तब देवेश लक्ष्मीपति भी श्रीविष्णुभगवान् शेषजी भोग

(फणा) रूपी शय्यापर शयन करते हैं ॥ ३ ॥ विष्णुभगवान्‌के शयन करनेपर देव, गंधर्व, गुह्यक और देवताओंके मातृगण क्रमानुसार शयन करते हैं ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि, विष्णुभगवान्‌से आदिलेकर सम्पूर्ण देवताओंकी शयनविधिको क्रमानुसार वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे तपोधन ! मिथुनराशिके अन्त्यांश पर सूर्यके होनेमें (आषाढ़के महीनेमें) शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन जगत्‌के स्वामी (विष्णुभगवान्) शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥ ६ ॥ उस समय [1]कामदेवने शेष नागका भोग (फणा) रूपी पवित्र पलंगको बनाय उसपर श्रीकेशवभगवान्‌को विराजमान करके अनेक भाँतिसे पूजनकर उनके संतोषके निमित्त ब्राह्मणोंकाभी सम्यक् प्रकारसे पूजनकर ॥ ७ ॥ द्वादशीको जितेन्द्रिय और पवित्र होकर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पीताम्बरको धारणकर स्वस्थचित्तसे निद्राका भलीभाँतिसे आवाहन

प्रतिसुप्तेविभौतस्मिन्देवागंधर्वगुह्यकाः ॥ देवानांमातरश्चापिप्रसुप्ताश्चाप्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥ नारदउवाच ॥ कथयस्वसुरादीनांशयनेविधिमुत्तमम् ॥ सर्वाननुक्रमेणैवपुरस्कृत्यजनार्द्दनम् ॥ ५ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ मिथुनाभिमुखेसूर्येशुक्लपक्षेतपोधन ॥ एकादश्यांजगत्स्वामीशयनंपरिकल्पते ॥ ६ ॥ शेषाहिभोगपर्यंकंकृत्वासंपूज्यकेशवम् ॥ कृत्वापवित्रकंचैवसम्यक्संपूज्यवैद्विजान् ॥ ७ ॥ अनुज्ञांब्राह्मणेभ्यश्चद्वादश्यांप्रयतःशुचिः ॥ लब्ध्वापीतांबरधरःस्वस्थोनिद्रांसमानयन् ॥ ८ ॥ त्रयोदश्यांततःकामःस्वपतेशयनेशुभे ॥ कदंबानांसुगंधानांकुसुमैःपरिकल्पिते ॥ ९ ॥ चतुर्दश्यांततोयक्षाःस्वपंतिसुखशीतले ॥ सौवर्णपंकजकृतेसुखास्तीर्णोपधानके ॥ १० ॥ पूर्णमास्यामुमानाथःस्वपतेचर्मसंस्तरे ॥ वैयाघ्रेचजटाभारंसामुद्रंथ्यान्यचर्मणा ॥ ११ ॥ ततोदिवाकरोराशिंसंप्रयातिचकर्कटम् ॥ ततोऽमराणांरजनीभवतेदक्षिणायनम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मातथाप्रतिपदिनीलोत्पलमयेनघ ॥ तल्पेस्वपितिलोकानांदर्शयन्मार्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥

करते हुए ॥ ८ ॥ त्रयोदशीतिथिमें सुगंधित कदम्बके फूलोंसे बनीहुई सुन्दर शय्यापर शयन करते हैं ॥ ९ ॥ तब चतुर्दशीमें यक्षगण सुवर्णके कमलोंसे रचीहुई सुखास्तीर्ण (सुखजनक विन्याससे बिछीहुई) उपाधान (तकिया) युक्त सुख शीतल शय्यापर शयन करते हैं ॥ १० ॥ पूर्णमासीको उमापति (महादेवजी) अन्यचर्म द्वारा जटाभारको बाँध व्याघ्रके चर्मकी शय्या बनाय उसपर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त जब सूर्य कर्कराशिमें पूर्णरूपसे गमन करते हैं तब दक्षिणायन और देवताओंकी रात्रि प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ हे अनघ ! ब्रह्माजी प्रतिपदातिथिमें सम्पूर्ण लोकोंको श्रेष्ठमार्ग दिखाकर नीले कमलोंकी शय्यापर शयन करते हैं ॥ १३ ॥

---

[1] यहांसे तीसरे नववें श्लोकके "ततःकम्" इस पदका सम्बंध जानना ।

द्वितीयाको विश्वकर्मा, तृतीयाको पार्वतीजी, चौथको गणेशजी और पंचमीको धर्म राज शयन करते ह ॥ १४ ॥ छठको स्वामिकार्तिक, सप्तमीको सूर्यभगवान् अष्टमीको कात्यायनी और नौमीको लक्ष्मीजी शयन करती हैं ॥ १५ ॥ वायुको भोजन करने वाले सर्पराजगण दशमीको शयन करते हैं हे ब्रह्मन् ! कृष्णपक्षकी एकादशीको साध्यगण शयन करते हैं ॥ १६ ॥ हे मुने! श्रावण आदिकमें जिसप्रकारसे देवगण शयन करते हैं सो क्रमसे मैंने कहा, उनके शयन करनेपर वर्षा ऋतु आती है ॥ १७ ॥ बगले अपनी स्त्रियोंके साथ श्रेष्ठ पर्वतोंपर चढ़जातेहैं, और हे ऋषिपुंगव ! काक (कौवे) भी अपने घोंसलोंको बनाते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे वायसी (कौओंकी स्त्रियें) भी इस ऋतुमें गर्भके भारसे आलस्ययुक्त होकर शयन करतीहैं, जिस तिथिमें प्रजापति विश्वकर्मा शयन करतेहैं ॥ १९ ॥ द्वितीया तिथि

विश्वकर्माद्वितीयायांतृतीयायांगिरेःसुता ॥ विनायकश्चतुर्थ्यांतुपंचम्यामपिधर्मराट् ॥ १४ ॥ षष्ठ्यांस्कंदःप्रस्वपितिसप्तम्यांभगवान्रविः ॥ कात्यायनी
तथाष्टम्यांनवम्यांकमलालया ॥ १५ ॥ दशम्यांभुजगेंद्राश्चस्वपंतेवायुभोजनाः ॥ एकादश्यांतुकृष्णायांसाध्याब्रह्मन्स्वपंतिच ॥ १६ ॥ एषक्रमस्ते
गदितोनभादौस्वपतांमुने ॥ स्वपत्सुतत्रदेवेषुप्रावृट्कालःसमाययौ ॥ १७ ॥ बकाःसमंबलाकाभिरारोहंतिनगोत्तमान् ॥ वायसाश्चापिकुर्वंतिनीडानिऋषि
पुंगव ॥ १८ ॥ वायस्यश्चस्वपंत्येवमृतौगर्भभरालसाः ॥ यस्यांतिथौप्रस्वपितिविश्वकर्माप्रजापतिः ॥ १९ ॥ द्वितीयासाशुभापुण्यासुपुण्याशयनोदिता ॥
तस्यांतिथावर्चयित्वा श्रीवत्सांकंचतुर्भुजम् ॥ २० ॥ पर्यंकस्थंसमंलक्ष्म्यागंधपुष्पादिभिर्मुने ॥ ततोदेवायशय्यायांफलानिप्रक्षिपेत्सुधीः ॥ सुरभीणिनि
वेद्येत्थंविज्ञाप्योमधुसूदनः ॥ २१ ॥ यथाहिलक्ष्म्यानवियुज्यसेत्वंत्रिविक्रमानंतजगन्निवास ॥ तथात्वशून्यंशयनंसदैवत्वस्माकमेवेहतवप्रसादात् ॥ २२ ॥
यथात्वशून्यंतवदेवलब्धंसमंहिलक्ष्म्याशयनंसुरेश ॥ सत्येनतेनामितवीर्य्यविष्णोगार्हस्थ्यनाशोनममास्तुदेव ॥ २३ ॥ इत्युच्चार्यचदेवेशंप्रसाद्यचपुनः
पुनः ॥ नक्तंभुंजीतदेवर्षे तैलक्षारविवर्जितम् ॥ २४ ॥

अत्यन्तही पवित्र, पुण्यकी देनेवाली और मंगलकी करनेहारी है, हे मुने ! इस द्वितीया तिथिमें बुद्धिमान् पुरुष लक्ष्मीके सहित पर्यङ्कमें प्रतिष्ठित श्रीवत्साङ्क (भृगुपदलाञ्छित) चतुर्भुज नारायणको गंधपुष्पादिसे पूजन करके उन देवके उद्देशकरके नानाप्रकारके सुगंधित फलोंको शय्यापर चढ़ाकर मधुसूदनके निकट इसप्रकारसे कहै ॥ २० ॥ २१ ॥ हे त्रिविक्रम ! हे अनंत ! हे जगन्निवास ! जिसप्रकारसे तुम लक्ष्मीसे कभी अलग नहीं होते, उसीप्रकार तुम्हारे प्रसादसे हमाराभी यह शयन किसी समयभी शून्य न हो ॥ २२ ॥ हे देव ! हे सुरेश ! लक्ष्मीके साथ तुम्हारा शयन जैसे शून्य नहीं होता, हे अमितवीर्य ! हे विष्णो ! उसी सत्यके बलसे हमारा गार्हस्थ्यभी नष्ट न हो ॥ २३ ॥ वारम्वार इसप्रकारकी प्रार्थना कर उन्हें प्रसन्न करके हे देवर्षि ! रात्रिमें तेल और क्षार (नमक) रहित भोजन करै ॥ २४ ॥

दूसरे दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको फलदान करै उस समय "श्रीधर प्रसन्न हों" (लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे) इस मंत्रको पढ़कर फल निवेदन करै ॥ २५ ॥ जबतक वृश्चिक राशिमें सूर्य न प्राप्तहों तबतक उक्त विधानसे चार महीनेका व्रत करै ॥ २६ ॥ हे मुने ! इसके उपरान्त पूर्वोक्त देवगण जागते हैं, इनके बीचमें पहले तुलाराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर (कार्तिकशुदी एकादशीके दिन) विष्णुभगवान् जागतेहैं और पीछे कामदेव जागते हैं ॥ २७ ॥ इसी समय द्वितीयाको अपनी शक्तिके अनुसार आस्तरण (बिछौने) सहित शय्या और लक्ष्मीधर (विष्णु) की मूर्तिका दान करै॥२८॥हे महामुने ! यह प्रथम व्रत तुम्हारे निकट कीर्तन किया, जिसका अनुष्ठान करनेसे इसलोकमें किसीप्रकारके भी विषयवियोगकी यंत्रणा नहीं भोगनी पड़ती ॥ २९ ॥ भादोंके महीनेमें कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन मृगशिरनक्षत्र हो तो उसको कालाष्टमी कहते हैं ॥ ३० ॥ इस तिथिमें भगवान् शिवका सम्पूर्ण लिंगोंमेंही शयन होताहै और सबमें अधिष्ठान होताहै, इस समय पूजा करनेसे अक्षय होती है ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य इस तिथिमें गोमूत्र और जलसे स्नान करै, स्नानकरके धतूरेके फूलोंसे शिवजीकी पूजाकरै ॥ ३२ ॥ और केशरकी धूप, नैवेद्य, शहत, घृत इन सब द्रव्योंको दक्षिणासहित " विरूपाक्ष (शिव) मेरे ऊपर प्रसन्न हों" इस उद्देशसे "प्रीयतां मे विरूपाक्षः" इसमंत्रको उच्चारण कर ॥ ३३ ॥ सुवर्ण दक्षिणासहित उक्त नैवेद्यको ब्राह्मणोंको दान करै; हे द्विजोत्तम ! इसीप्रकार आश्विनमासमें उपवासी और जितेन्द्रिय होकर ॥ ३४ ॥ नौमीको गायके गोबरसे संयुक्त जलसे स्नान करै, कमलके फूलोंसे पूजा करै, और सब प्रकारकी रालआदिसे धूपदे शहत और मधु (शहद) मिश्रित मोदकका नैवेद्य दे ॥ ३५ ॥

द्वितीयेह्निद्विजाग्र्यायफलंदद्याद्विचक्षणः ॥ लक्ष्मीधरः प्रीयतांमेइत्युच्चार्यनिवेदयेत् ॥२५॥ अनेनतुविधानेनचातुर्मास्यव्रतंचरेत् ॥ यावद्वृश्चिकराशिस्थः प्रतिभातिदिवाकरः ॥२६॥ ततोविबुध्यंतिसुराःक्रमशःक्रमशोमुने ॥ तुलास्थेतुहरिःपूर्वंकामःपश्चाद्विबुध्यते ॥ २७ ॥ तत्रदानंद्वितीयायांमूर्तिर्लक्ष्मीधरस्यच ॥ शय्याचास्तरणोपेतायथाविभवमात्मनः ॥ २८ ॥ एषव्रतस्तुप्रथमःप्रोक्तस्तवमहामुने ॥ यस्मिंश्चीर्णेवियोगस्तुनभवेदिहकस्यचित् ॥ २९ ॥ नभस्येमासिचतथायासाकृष्णाष्टमीशुभा ॥ युक्तामृगशिरेणैवसातुकालाष्टमीस्मृता ॥ ३० ॥ तस्यांसर्वेषुलिंगेषुतिथौस्वपितिशंकरः ॥ वसतेसन्निधानेतुतत्रपूजाऽक्षयास्मृता ॥ ३१ ॥ तत्रस्नायीतवैविद्वान्गोमूत्रेणजलेनच ॥ स्नातःसंपूजयेत्पुष्पैर्धत्तूरस्यत्रिलोचनम् ॥ ३२ ॥ धूपंकेसरनिर्यासंनैवेद्यंमधुसर्पिषी ॥ प्रीयतांमेविरूपाक्षस्त्वित्युच्चार्यचदक्षिणाम् ॥ ३३ ॥ विप्रायदद्यान्नैवेद्यंसहिरण्यंद्विजोत्तम ॥ तद्वदाश्वयुजेमासिउपवासीजितेंद्रियः ॥ ३४ ॥ नवम्यांगोमयस्नानंकुर्यात्पूजांतुपङ्कजैः ॥ धूपयेत्सर्जनिर्यासैर्नैवेद्यंमधुमोदकैः ॥ ३५ ॥

अष्टमीको उपवास करके नौमीको स्नान करै, उस समय हे हिरण्याक्ष ! हमारे ऊपर प्रसन्न हो (प्रीयतां मे हिरण्याक्षः) इस मंत्रको पढ़कर तिलोंके साथ दक्षिणा दे ॥
॥ ३६ ॥ कार्तिकके महीनेमें दूधसे स्नानकर कनेरकी फूलोंसे पूजन करै तथा गूगलका धूप दे और शहतयुक्त खीरका नैवेद्य दे ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त भगवान्
स्थाणु हमारे ऊपर प्रसन्न हों (प्रीयतां भगवान् स्थाणुः) मधुर वचनोंसे इस मंत्रको पढ़कर चांदी रूपा दक्षिणासहित नैवेद्य ब्राह्मणोंको दान करै ॥ ३८ ॥ अष्टमीको
उपवासकर नौमीको स्नान करै. अगहनके महीनेमें दहीसे स्नान करनेसे महादेवके पूजनका अधिक फल मिलताहै ॥ ३९ ॥ बेलके वृक्षकी गोंदकी धूप, नैवेद्य, मधु
मिश्रित ओदन दक्षिणास्वरूप लाल चावल निवेदन करै ॥ ४०॥ उससमय (नमोस्तु प्रीयतां शर्वः) से भगवान् स्थाणु प्रसन्न हों इस मंत्रका स्वयं उच्चारण करै, और

कृत्वोपवासमष्टम्यांनवम्यांस्नानमाचरेत् ॥ प्रीयतांमेहिरण्याक्षोदक्षिणासतिलास्मृता ॥ ३६ ॥ कार्तिकेपयसास्नानंकरवीरेणचार्चनम् ॥ धूपंश्रीवास
निर्यासंनैवेद्यंमधुपायसम् ॥ ३७ ॥ सनैवेद्यंचरजतंदातव्यंदानमग्रजे ॥ प्रीयतांभगवान्स्थाणुरितिवाच्यमनिष्ठुरम् ॥ ३८ ॥ कृत्वोपवासमष्टम्यांनवम्यां
स्नानमाचरेत् ॥ मासिमार्गशिरेस्नानंरुद्रार्चादधिजास्मृता ॥३९॥ धूपंश्रीवृक्षनिर्यासंनैवेद्यंमधुनौदनम् ॥ सन्निवेद्यारक्तशालिर्दक्षिणापरिकीर्तिता ॥४०॥
नमोस्तुप्रीयतांशर्वइतिवाच्यंचपंडितैः ॥ पौषेस्नानंचहविषापूजास्यात्तगरैःशुभैः ॥ ४१ ॥ धूपोमधुकनिर्यासोनैवेद्यंमधुसक्तुकैः ॥ ससुद्राद्दक्षिणाप्रो
क्ताप्रीणनायजगद्गुरोः ॥ ४२ ॥ वाच्यंनमस्तेदेवेशत्र्यंबकेतिप्रकीर्त्तयेत् ॥ माघेकुशोदकस्नानंकुसुदेनाशिवार्चनम् ॥४३॥ धूपःकदंबनिर्यासोनैवेद्यंसतिलौ
दनम् ॥ पयोभक्तंतुनैवेद्यंसरुक्मंप्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥ प्रीयतांमेमहादेवउमापतिरितीरयेत् ॥ एवमेवसमुद्दिष्टंषड्भिर्मासैस्तुपारणम् ॥ पारणांतेत्रि
नेत्रस्यस्नपनंकारयेत्क्रमात् ॥४५॥ गोरोचनायुक्तगुडेनचैवदेवंसमालभ्यचपूजयेत्तु ॥ प्रीयस्वदीनोस्मिभवान्स्त्वमीमच्छोकस्यनाशंप्रकुरुष्वयोग्यम् ॥४६॥

पंडितोंसेभी कहवाले. पौषके महीनेमें घृतसे हविसे स्नान करके उत्तम तगड़पुष्पसे पूजा करै ॥ ४१ ॥ महुएके गोंदकी धूप मधुमिश्रित सक्त (सत्तू) का नैवेद्य जगद्गुरुको
प्रसन्नकरनेके अर्थ मुद्रासहित दक्षिणा दे ॥ ४२ ॥ और "नमस्ते देवेश त्र्यम्बक" इसप्रकारसे प्रार्थना करै. माघके महीनेमें कुशोदकसे स्नान और बबूलेके फूलोंसे
शिवजीका पूजन करै. और "नमस्ते देवदेवेश" इसमंत्रका जप करै ॥ ४३ ॥ और कदम्बकी धूप, तिलोदन, (तिलचावल) के नैवेद्य, रुक्म (सुवर्ण) दक्षिणास
हित दूध चावलका नैवेद्य ब्राह्मणको दे ॥ ४४ ॥ "प्रीयतां मे महादेवः" उमापति महादेवजी प्रसन्न हों इसप्रकारसे कहै, इस प्रकार छैः महीनेतक पारण कहाहै, पार
णके अन्तमें क्रमानुसार महादेवजीको स्नान करावै ॥ ४५ ॥ गोरोचनयुक्त गुड़से महादेवजीका स्पर्श कराकर पूजा करै, उस समय इसप्रकारसे कहै कि, " हे शिव ! मैं

९

दीन हूं, मेरे ऊपर प्रसन्न हो, और मेरे अनुचित शोकका नाश करो" ॥ ४६ ॥ द्विजसत्तम ! इसके उपरान्त फाल्गुनके महीनेमें कृष्णपक्षकी अष्टमीको यतव्रतो (महर्षियोंने) विधिविधानसे उपवास करना कहाहै ॥ ४७ ॥ दूसरे दिन पंचगव्यसे स्नान कराकर कुन्दकी फूलोंसे पूजन करै. और चन्दनकी धूप दे ॥ ४८ ॥ घृतके साथ गुड़ और चावलका नैवेद्य, तांबेके पात्रमें देवै और हे मुने ! ब्राह्मणोंको नैवेद्य सहित दक्षिणा दे ॥ ४९ ॥ फिर रुद्रका नाम उच्चारण कर उनकी प्रसन्नताके अर्थ दो वस्त्र दान करै, और चैत्रके महीनेमें गूलरयुक्त जलसे स्नान और मंदारके फूलोंसे पूजन करै ॥ ५० ॥ भैंसागूगलको घीमें मिलाकर धूप दे, और प्रसन्नताके अर्थ मोदक (मोहन भोग) तथा घीरूप नैवेद्य निवेदन करै ॥ ५१ ॥ नैवेद्यके साथ मृगचर्मकी दक्षिणा कहीहै—हे नागेश्वर ! तुमको नमस्कार है—(नागेश्वर नमस्तेस्तु) इस मंत्रका उच्चारण करै ॥ ५२ ॥ श्रद्धाकेसाथ देवनाथ (शिव) को प्रसन्न करै, वैशाखके महीनेमें सुगंधित फूलोंके जलसे स्नान करावै ॥ ५३ ॥ और आमकी मंजिरियोंसे विभु महादेवजीकी पूजा करै. रालकी धूप, घृत और फलके सहित नैवेद्यको चढावै ॥ ५४ ॥ (कालघ्न) इस नामका जप करै, ब्राह्मणोंको नैवेद्यके साथ जलके भरेहुए कलशदान करै ॥ ५५ ॥ उनमें चित्तको लगाय रतहो वस्त्र और अन्नादिका दान करै, और ज्येष्ठके महीनेमें आमलोंसे स्नान कराकर आमलोंकी फूलोंसे पूजा करै ॥ ५६ ॥ वो पूजा व्युष्टि (सम्पत्ति) कारक उग्रनेत्र, वृषभध्वजकी करै, अर्थात् इन नामोंसे करै और घृत, दधिमिश्रित सत्तुको नैवेद्यरूपसे निवेदन करै ॥ ५७ ॥ और भक्तिपूर्वक एक जूड़ा (जूता) तथा छत्रीका दान करै, (नमस्ते भगनेत्रघ्न पूष्णोदन्तविनाशन) हे भगनेत्रघ्न सूर्यदन्तविना

ततस्तुफाल्गुनेमासिकृष्णाष्टम्यांयतव्रतैः ॥ उपवासंसमुदितंकर्त्तव्यंद्विजसत्तम ॥४७॥ द्वितीयेह्नितततःस्नानंपंचगव्येनकारयेत् ॥ पूजयेत्कुंदकुसुमैर्धूपये
च्चंदनेनच ॥ ४८ ॥ नैवेद्यंसघृतंदद्यात्ताम्रपात्रेगुडौदनम् ॥ दक्षिणांचद्विजातिभ्योनैवेद्यैःसहितांमुने ॥ ४९ ॥ वासोयुगंप्रीणयेच्चरुद्रमुच्चार्यनामतः ॥ चैत्रे
चोदुंबरजलैःस्नानंमंदारकार्चनम् ॥५०॥ गुग्गुलुंमहिषाख्यंचघृताक्तंधूपयेद्बुधः ॥ समोदकंतथासर्पिःप्रीणनंविनिवेदयेत् ॥ ५१ ॥ दक्षिणाचसनैवेद्यामृगा
जिनमुदाहृतम् ॥ नागेश्वरनमस्तेस्तुइदमुच्चार्यनारद ॥ ५२ ॥ प्रीणनंदेवनाथायकुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ वैशाखेस्नानमुदितंसुगंधकुसुमांभसा ॥ ५३ ॥
पूजनंशंकरस्योक्तंचूतमंजिरिभिर्विभोः ॥ धूपःसर्ज्जस्यनिर्यासोनैवेद्यंसफलंघृतम् ॥ ५४ ॥ नामजप्यमपीशस्यशालघ्नेतिविपश्चिता ॥ जलकुंभान्सनैवे
द्यान्ब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ ५५ ॥ सवस्त्रांश्चैवसान्नाद्यांस्तच्चित्तैस्तत्परायणैः ॥ ज्येष्ठेस्नानंचामलकैःपूजार्ककुसुमैस्तथा ॥ ५६ ॥ पूजयेद्रुद्रनेत्रंचवृषांकंव्यु
ष्टिकारकम् ॥ सक्तूंश्चसघृतान्देवेदध्नाक्तान्विनिवेदयेत् ॥ ५७ ॥ उपानद्युगलंछत्रंदानंदद्याच्च भक्तिमान् ॥ नमस्तेभगनेत्रघ्नपूष्णोदशननाशन ॥ ५८ ॥

शन ! तुमको नमस्कार है ॥ ५८ ॥ जगत्पतिको प्रसन्न करनेके निमित्त भक्तिसहित उपरोक्त मंत्रका उच्चारण करै, आषाढ़के महीनेमें श्रीफल (बेल मिश्रित) जलसे स्नान और उसीसे पूजन किया करै ॥५९॥ धतूरेके सफेद फूलोंसे पूजनकर लोभानकी धूप दे, घीयुक्त पूयेका नैवेद्य चढाय घी और जौकी दक्षिणा दे ॥ ६० ॥ उस समय ऊँचे स्वरसे इसप्रकारसे कहै कि, (नमस्ते दक्षयज्ञघ्न) हे दक्षयज्ञनाशक ! तुमको नमस्कार है. श्रावणमें भृङ्गराजसे स्नानकर शिवकी पूजा करै ॥ ६१ ॥ बेलपत्र और बेलके फूलको चढ़ावै, अगरकी धूप दे, घी और दहीसे युक्त मोदकोंका नैवेद्य ॥ ६२ ॥ और दही, चावल, कसार उड़द खीलैं और पूरियोंका नैवेद्य चढ़ावै और दक्षिणामें सफेद बैल तथा पवित्र कपिला गऊ दे ॥ ६३ ॥ सुवर्ण और लाल वस्त्र ब्राह्मणको दे, और विवेकी पुरुषोंसे महादेवजीके (गंगाधर) इस नामका

इदमुच्चारयेद्भक्त्याप्रीणनायजगत्पतेः ॥ आषाढेस्नानमुदितंश्रीफलैरर्चनंतथा ॥ ५९ ॥ धत्तूरकुसुमैःशुक्लैर्धूपयेत्सल्लिकेतथा ॥ नैवेद्यंसघृतापूपाः
दक्षिणासघृतायवाः ॥ ६० ॥ नमस्तेदक्षयज्ञघ्नइदमुच्चैरुदीरयेत् ॥ श्रावणेभृंगराजेनस्नानंकृत्वार्चयेद्धरम् ॥६१॥ श्रीवृक्षपत्रैःसफलैर्धूपंदद्यात्तथागुरुम् ॥
नैवेद्यंसघृतंदद्याद्दधिपूर्वांश्चमोदकान् ॥ ६२ ॥ दध्योदनंसक्तुसरंमाषधानाःसशष्कुलीः ॥ दक्षिणांश्वेतवृषभंधेनुंचकपिलांशुभाम् ॥ ६३ ॥ कनकंरक्तवसनं
प्रदद्याद्ब्राह्मणायहि ॥ गंगाधरेतिजतव्यंनामशंभोश्चपंडितैः ॥ ६४॥ अमीभिःषड्भिरपरैर्मासैःपारणमुत्तमम् ॥ एवंसंवत्सरंपूर्णंसंपूज्यवृषभध्वजम् ॥६५॥
अक्षयाँल्लभतेलोकान्महेश्वरवचोयथा ॥ इदमुक्तंव्रतंपुण्यंसर्वपापहरंशुभम् ॥ स्वयंरुद्रेणदेवर्षेतत्तथानतदन्यथा ॥ ६६ ॥ इति श्रीवामनपुराणेअशून्यशय
नद्वितीयाकालाष्टमीव्रतवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ मासिचाश्वयुजिब्रह्मन्यदापद्मंप्रजापतेः ॥ नाभ्यानिर्यातिहितदादेवोद्याना
न्यथाभवन् ॥ १ ॥ कंदर्पस्यकराग्रेतुकदंबश्चारुदर्शनः ॥ तेनतस्यपराप्रीतिःकदंबेनविवर्द्धते ॥ २ ॥

जप करना चाहिये ॥६४॥ और इन छैः महीनेतक अनेकप्रकारसे व्रतपूर्णकरके पारण करै, और इसीप्रकार एकवर्षतक महादेवजीका पूजन करै ॥६५॥ तो उसको स्वयं महेश्वरके वचनके अनुसार अक्षयलोककी प्राप्ति होतीहै. हे देवर्षे ! स्वयं महादेवजीने इसप्रकारसे सब पापोंको हरनेहारा इस शुभव्रतको कहा है इसकारण इसका अनुष्ठान करनेसे अनुरूप फल प्राप्त होनेमें किसीप्रकारभी संदेह दृष्टि नहीं आता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां कालाष्टमीवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
पुलस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आश्विनके महीनेमें जिस समय ब्रह्माजीकी नाभिसे कमल निकलाथा, उसी समय दूसरे देवताओंकेभी उद्यान (नानावृक्ष) प्रगट होने लगे ॥ १ ॥ कामदेवके हाथके अग्रभागमें सुन्दर कदम्ब उत्पन्न हुआ, इसी कारण कदम्बसे कामदेवकी अत्यन्त प्रीति बढती है ॥ २ ॥

हेनारद ! यक्षोंके स्वामी मणिभद्रकेभी वटवृक्ष उत्पन्न हुआ इसीसे उनकी प्रीति सदा वटवृक्षमें रहती है॥ ३॥ महादेवजीके हृदयमें मनोज्ञ धतूरेका वृक्ष प्रगट हुआ इसी कारण उसमें उनका अनुराग अधिक देखा जाता है ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा प्रजापतिकी देहके मध्यभागसे मरकत मणिकी समान कान्तिवाला कण्टक युक्त खदिर (कत्थे) का वृक्ष उनका अत्यन्त प्रिय प्रगट हुआ ॥ ५ ॥ गिरिनन्दिनी पार्वतीजीके हाथकी हथेलीसे कुन्द उत्पन्न हुआ. गणेशजीके मस्तकसे सिन्धुवारक वृक्ष उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ यमकी दहनी बगलमें पलाशका वृक्ष उत्पन्न हुआ और बांई बगलमें सबको क्षोभ देनेवाला भयङ्कर अविनाशी काले गूलरका वृक्ष प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ स्वामि कार्त्तिकके हाथमें बन्धुजीव (दुपहरिया), सूर्यके हाथमें पीपल, कात्यायनीके हाथमें शमी (जग्ट) और लक्ष्मीके हाथमें बेलके वृक्षने जन्म लिया ॥ ८ ॥ हेब्रह्मन् !

यक्षाणामधिपस्यापिमणिभद्रस्यनारद ॥ वटवृक्षःसमभवत्तस्मिंस्तस्यरतिःसदा ॥ ३ ॥ महेश्वरस्यहृदयेधत्तूरविटपःशुभः ॥ संजातःसचशर्वस्यरति
कृत्तस्यनित्यशः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणोमध्यतोदेहाज्जातोमरकतप्रभः ॥ खदिरःकंटकीश्रेयानभवद्विश्वकर्मणः ॥ ५ ॥ गिरिजायाः करतलेकुंदगुल्मस्त्व
जायत ॥ गणाधिपस्यकुंभस्थोराजतेसिंधुवारकः ॥ ६ ॥ यमस्यदक्षिणेपार्श्वेपालाशोदक्षिणोत्तरे ॥ कृष्णोदुंबरकोरौद्रोजातःक्षोभकरोव्ययः॥ ७ ॥
स्कंदस्यबंधुजीवश्चरवेरश्वत्थएवच ॥ कात्यायन्याःशमीजाताबिल्वोलक्ष्म्याः करेऽभवत् ॥ ८ ॥ नागानांमुखतोब्रह्मञ्छरस्तंबोव्यजायत ॥
वासुकेर्विस्तृतेपुच्छेपृष्ठेदूर्वासितासिता ॥ ९ ॥ साध्यानांहृदयेजातोवृक्षोहरितचंदनः ॥ एवंजातेषुसर्वेषुतेनतत्ररतिर्भवेत् ॥ १० ॥ तत्ररम्येशुभेकाले
याशुक्लैकादशीभवेत् ॥ तस्यांसंपूजयेद्विष्णुंतेनाखंडोऽयमूर्ज्जते ॥ ११ ॥ पत्रैःपुष्पैःफलैर्वापिगंधवर्णरसान्वितैः ॥ औषधीभिश्चमुख्याभिर्यावत्स्याच्छर
दागमः ॥ १२ ॥ घृतंतिलाव्रीहियवाहिरण्यंकनकादियत् ॥ मणिमुक्ताप्रवालानिवस्त्राणिविविधानिच ॥ १३ ॥ रसानिस्वादुकट्वम्लकषायलवणानिच॥
तिक्तानिचनिवेद्यानितान्यखंडानियानिच ॥ १४ ॥

नागोंके स्वामी शेषजीसे शरस्तम्ब (नदुकुल) प्रगट हुआ; वासुकीकी फैली हुई पीठ और पूंछमें काली और सफेद दूर्वाका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ साध्योंके हृदयमें हरित चंदनका वृक्ष उत्पन्न हुआ. इसीप्रकार जिन देवताओंसे जो द्रव्य उत्पन्न हुए उन देवताओंकी उन द्रव्योंमें प्रीति हुई ॥ १० ॥ आश्विन शुक्ल एकादशीके मनोहर शुभ कालमें विष्णु भगवान्‌की कहेहुए विधानसे पूजा करै ऐसा होनेसे वह अखंड और ऊर्ज्जित (बलवान्) होजाते हैं ॥ ११ ॥ जबतक शरदृतुका आगम हो तबतक गंध, वर्ण, रसयुक्त, पत्र, पुष्प, फल और प्रधान २ औषधियोंसे उनकी पूजा करै ॥ १२ ॥ घृत, तिल, व्रीहि (अन्न) जो, हिरण्य (सोना) और कनकादि मणि, मोती, मूँगे अनेक प्रकारके वस्त्र ॥ १३ ॥ स्वादु, कटु, अम्ल, कषैला, लवण और तिक्त ये छैः रस—आदि निवेदनके योग्य जितने पदार्थ हैं उन्हें

अखण्डित करके निवेदन करना चाहिये ॥ १४ ॥ उनके पूजाके अर्थं महात्मा विष्णुके निमित्त औरोंकोभी उक्त वस्तु प्रदान करै जबतक सम्पूर्ण सम्वत्सर अखंडभावसे पूर्ण होजाँय ॥ १५ ॥ हे देवर्षे ! व्रतके आरम्भसे उपवास करके दूसरे दिन जिस स्नानीयवस्तुसे स्नान करै उसीसे वर्षपूर्तिपर्य्यन्त अखण्डभावसे किया करै ॥ १६ ॥ श्वेतसरसों अथवा तिलमिश्रितजलसे स्नान और उन्हींसे उबटन करै, घृतके द्वारा विष्णुभगवान्का इसप्रकारसे स्नान करावै ॥ १७ ॥ हे द्विज ! घृतसेही हवन करै अपनी शक्तिके अनुसारही दान लिखा है; पादसे आरम्भ करके शिरतक विष्णुका पुष्पसे पूजन करै ॥ १८ ॥ जिस विविधभाँतिकी धूपसे धूपित करै उसीसे वर्ष पूर्त्तितक किया करै. हिरण्य, रत्न और वस्त्रोंसे जगद्गुरु पद्मनाभकी पूजाकरै ॥ १९ ॥ राग (रसमयवस्तु), खाँड़, चोष्य (चूसने योग्य आम्रादिक फल) और हविष्यको निवेदन करै, इसके उपरान्त जगद्गुरु देवेश पद्मनाभकी सम्यक्प्रकारसे पूजा करै ॥ २० ॥ हे सुव्रत ! हे मुनिश्रेष्ठ ! अनुपद कहे हुए मंत्रको उच्चारण करके प्रार्थना करै. हे पद्मनाभ ! हे पद्माधव ! (लक्ष्मीपते !) हे महाद्युते ! तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे केशव ! हे विकसित पद्मपत्रके समान नेत्रवाले ! जैसे तुम सर्वतोभावसे अखण्डस्वरूपहो ॥ २२ ॥ तिस सत्यबलसे हे केशव ! हमारा धर्मादिभी अखंडहो, इसप्रकार सम्वत्सरके पूर्ण होनेतक उपवासी और जितेन्द्रिय होकर ॥ २३ ॥ सम्पूर्णवस्तुओंमें तिस व्रतको अखंडरूपसे पारित[1] करै इसका अनुष्ठान करनेसे सब देवता अकपटभावसे अवश्य संतुष्ट होजाते हैं ॥ २४ ॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षादिभी अक्षय होतेहैं; कामियोंके (काम्य फलको चाहनेवाले प्राचीनऋषियोंके) कहेहुए यह सब व्रत तुम्हारे निकट कहे ॥ ५ ॥

तत्पूजार्थंप्रदातव्यंकेशवायमहात्मने ॥ यावत्संवत्सरंपूर्णमखंडंभवतिगृहे ॥ १५ ॥ कृतोपवासोदेवर्षेद्वितीयेहनिसंयतः ॥ स्नानेनयेनस्नायीततेनाखं
डंहिवत्सरम् ॥ १६ ॥ सिद्धार्थकैस्तिलैर्वापितेनैवोद्वर्त्तनंस्मृतम् ॥ हविषापद्मनाभस्य स्नानमेवंसमाचरेत् ॥ १७ ॥ होमस्तेनैवगदितोदानेशक्तिर्निजा
द्विज ॥ पूजयेद्वाथकुसुमैः पादादारभ्यकेशवम् ॥ १८ ॥ धूपयेद्विविधंधूपंयेनस्याद्वत्सरंपरम् ॥ हिरण्यरत्नवासोभिःपूजयेच्चजगद्गुरुम् ॥ १९ ॥ रागखां
डवचोष्याणिहविष्याणिनिवेदयेत् ॥ ततःसंपूज्य देवेशंपद्मनाभंजगद्गुरुम् ॥ २० ॥ विज्ञापयेन्मुनिश्रेष्ठमंत्रेणानेनसुव्रत ॥ नमोस्तुतेपद्मनाभपद्माधवमहा
द्युते ॥ २१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षामे ह्यखंडाःसंतुकेशव ॥ विकासिपद्मपत्राक्षयथाखंडोऽसिसर्वतः ॥ २२ ॥ तेनसत्येनधर्माद्यास्त्वखंडाःसंतुकेशव ॥ एवं
संवत्सरंपूर्णंसोपवासोजितेंद्रियः ॥ २३ ॥ अखंडंपारयेद्ब्रह्मन्तंव्रतंसर्ववस्तुषु ॥ अस्मिश्चीर्णेहिव्यक्तंतुपरितुष्यंतिदेवताः ॥ २४ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाद्या
स्त्वक्षयाः संभवंतिहि ॥ एतानितेमयोक्तानिव्रतान्युक्तानिकामिभिः ॥ २५ ॥

---

[1] पारित- अर्थात् दिनभर उपवास करके रात्रिमें नियमसे एक वस्तु भोजन करै, इसप्रकारसे यह व्रत वर्षपर्यन्त आविच्छिन्न चलता रहै ।

अब परमपवित्र वैष्णवपञ्जरको[1] कहूंगा. हे देवेश ! तुमको नमस्कार है, सुदर्शनचक्रको ग्रहण करके ॥ २६ ॥ हमारी पूर्वओरसे रक्षा करो. हे विष्णो ! मैं
तुम्हारी शरणागतहूं; हे पद्मनाभ ! हे अमितद्युते ! कौमोदकी गदा ग्रहण करके ॥ २७ ॥ दक्षिणओरसे हमारी रक्षा करो, हे विष्णो ! मैं तुम्हारी शरणहूं । हे
पुरुषोत्तम ! तुमको नमस्कार है, गदाके साथ पद्मको ग्रहण करके ॥ २८ ॥ पश्चिमओरसे मेरी रक्षा करो, हे विष्णो ! मैंने तुम्हारी शरण ली. हे पुण्डरीकाक्ष !
शत्रुनाशक मूसलको ग्रहण करके ॥ २९ ॥ उत्तरओरसे हमारी रक्षा करो, हे जगन्नाथ ! मैं तुम्हारा शरणागत हूं, हे हरे ! शार्ङ्गधनुस्वरूप नारायणास्त्रको लेकर
॥ ३० ॥ ईशानओरसे हमारी रक्षा करो. हे रक्षोघ्न ! तुमको नमस्कार है मैं तुम्हारी शरणागत हूं; पांचजन्य नामक महाशङ्खको बजाकर और पद्मको ॥ ३१ ॥

प्रवक्ष्याम्यधुनात्वेतद्वैष्णवंपंजरंशुभम् ॥ नमोनमस्तेदेवेशचक्रंगृह्यसुदर्शनम् ॥ २६ ॥ प्राच्यांरक्षस्वमांविष्णोत्वामहंशरणंगतः ॥ गदांकौमोदकींगृह्यप
द्मनाभामितद्युते ॥२७॥ याम्यांरक्षस्वमांविष्णोत्वामहंशरणंगतः ॥ पद्ममादायसगदंनमस्तेपुरुषोत्तम ॥२८॥ प्रतीच्यांरक्षमांविष्णोत्वामहंशरणंगतः ॥
मुसलंशातनंगृह्यपुंडरीकाक्षरक्षमाम् ॥ २९ ॥ उत्तरस्यांजगन्नाथभवंतंशरणंगतः ॥ शार्ङ्गमादायचधनुरस्त्रंनारायणंहरे ॥ ३० ॥ नमस्तेरक्षरक्षोघ्नई
शान्यांशरणंगतः ॥ पांचजन्यंमहाशंखमनुबोध्यचपंकजम् ॥ ३१ ॥ प्रगृह्यरक्षमांविष्णोआग्नेय्यांयज्ञसूकर ॥ वर्मसूर्यशतंगृह्यखड्गंचर्मसमंतथा ॥३२॥
नैर्ऋत्यांमांचरक्षस्वदिव्यमूर्तेनृकेसरिन् ॥ वैजयंतींप्रगृह्यत्वंश्रीवत्संकंठभूषणम् ॥३३॥ वायव्यांरक्षमांदेवअश्वशीर्षनमोस्तुते ॥ वैनतेयंसमारुह्यअंतरिक्षे
जनार्दन ॥ ३४ ॥ मांत्वंरक्षाजितसदानमस्तेत्वपराजित ॥ विशालाक्षंसमारुह्यरक्षमांत्वंरसातले ॥ ३५ ॥ अकूपारनमस्तुभ्यंमहामीननमोस्तुते ॥
करशीर्षांघ्रिसर्वेषुतथाष्टबाहुपंजरम् ॥ ३६ ॥

ग्रहण कर हे विष्णो ! हे यज्ञसूकर ! आग्नेयओरसे हमारी रक्षा करो. सौ सूर्यके समान कान्तिवाले वर्म (कवच) और चर्म (ढाल) समेत खड्गको ग्रहण कर ॥ ३२ ॥
हे दिव्यमूर्त्ते ! हे नृसिंह ! हमारी नैर्ऋतओरसे रक्षा करो, वैजयन्ती मालारूप कण्ठभूषण और श्रीवत्स (भृगुपदलाञ्छन) को धारणकर ॥ ३३ ॥ वायव्य
ओरसे हमारी रक्षाकरो हे हयग्रीव ! हे देव ! तुमको नमस्कार है. हे जनार्दन ! गरुड़के ऊपर चढ़कर अन्तरिक्षमें ॥ ३४ ॥ हमारी सर्वदा रक्षा करो, हे अजित !
हे अपराजित ! तुमको नमस्कार है नागराजपर चढकर हमारी रसातलमें रक्षा करो ॥ ३५ ॥ हे समुद्रमूर्त्ते ! तुमको नमस्कार है, हे महामीन तुमको नमस्कार है.

---

[1] विष्णुदेवताका पञ्जर (विष्णुपञ्जरस्तोत्र) रक्षार्थ कवच ।

अष्टबाहु पञ्जर विधान करके हाथ, शिर और पद ॥ ३६ ॥ इन सबोंमें हमारी रक्षा करो. हे देव ! हे पुरुषोत्तम ! तुमको नमस्कार है, हे द्विजोत्तम ! यह वैष्णव (विष्णु देवताका) महापञ्जर (स्तोत्र) पूर्वकालमें भगवान् महादेवने कात्यायनीसे रक्षाके निमित्त कहाथा, इसीके प्रभावसे कात्यायनीने महिषासुर, चामर, रक्तबीजादि दानवोंका तथा सुरकंटकोंका संहार कियाथा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले वह महिषासुर कौनहै, नमर और रक्तबीजादिक वह असुर कौनहैं; जिन्होंने महिषासुरका वध किया वह कात्यायनी कौन है ॥ ३९ ॥ और नमर तथा रक्तबीजादि अन्यान्य देवकण्टकोंको संहार कियाथा वह महिषासुर कौन था और किससे उसने जन्म लिया था ॥ ४० ॥ फिर वह रक्तबीजभी कौन था और किसका बेटाथा,तथा नमर किसका पुत्र था हे तात ! महामुने ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करिये

कृत्वारक्षस्वमांदेवनमस्तेपुरुषोत्तम ॥ एतदुक्तंभगवतावैष्णवंपंजरंमहत् ॥ ३७ ॥ पुरारक्षार्थमीशेनकात्यायन्यैद्विजोत्तम ॥ नाशयामाससायत्रदानवं
महिषासुरम् ॥ नंमरंरक्तबीजंचतथान्यान्सुरकंटकान् ॥ ३८ ॥ नारदउवाच ॥ कश्चासौमहिषोनामरक्तबीजादयश्चके ॥ कासौकात्यायनीनामयाजघ्नेम
हिषासुरम् ॥ ३९ ॥ नमरंरक्तबीजंचतथान्यान्सुरकंटकान् ॥ कश्चासौमहिषोनामक्कास्तेजातश्चकस्यसः ॥ ४० ॥ कश्चासौरक्तबीजाख्योनमरः
कस्यचात्मजः ॥ एतद्विस्तरतस्तातयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ४१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ श्रूयतांसंप्रवक्ष्यामिकथांपापप्रणाशनीम् ॥ सर्वदावरदादुर्गायेयं
कात्यायनीमुने ॥ ४२ ॥ पुरासुरवरौरौद्रौजगत्क्षोभकरावुभौ ॥ रंभश्चैवकरंभश्चद्वावास्तांसुमहाबली ॥ ४३ ॥ तावपुत्रौचदेवर्षेपुत्रार्थंतेपतुस्तपः ॥
बहून्वर्षगणान्दैत्यौस्थितौपंचनदेजले ॥ ४४ ॥ तत्रैकोजलमध्यस्थोद्वितीयोप्यग्निपंचमः ॥ करंभश्चैवरंभश्चयक्षंमालवटंप्रति ॥४५॥ एकंनिमग्नंसलिलेग्रा
हरूपेणवासवः ॥ चरणाभ्यांसमादायनिजघानयथेच्छया ॥ ४६ ॥ ततोभ्रातरिनष्टेचरंभःकोपपरिप्लुतः ॥ वह्नौस्वशीर्षंसंछिद्यहोतुमैच्छन्महाबलः ॥४७॥

॥ ४१ ॥ पुलस्त्यजी बोले, हे मुने ! सुनिये मैं इस पापनाशिनी कथाको भलीभाँतिसे कहताहूं जो यह कात्यायनी है वही सबकालमें वरको देनेवाली दुर्गानामसे विख्यातहै ॥ ४२ ॥ पूर्वकालमें क्रूरस्वभावके जगत्को क्षोभित करनेवाले महाबलवान् रम्भ और करम्भ नामक दो दैत्य थे ॥ ४३ ॥ हे देवर्षे ! उन दोनोंके पुत्र नहींथा, इसकारण दोनोंनेही पंचनदजलमें स्नानकर पुत्रके निमित्त बहुत वर्षोंतक तप किया ॥ ४४ ॥ उनमेंसे एक तो जलमें रहकर और एक पंचाग्निके[१] मध्यमें स्थित होकर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ दोनोंने मालवटनामक यक्षके प्रति चित्तको समाधान किया ॥ ४५ ॥ तब देवराज इन्द्रने ग्राहकी मूर्तिको धारणकर जलमें निमग्न हो एक जनेके दोनों चरणोंको पकड़कर उसे इच्छानुसार वध किया ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त भ्राताके नष्ट होनेपर महाबलवान् रम्भ क्रोधमें भरकर अपने शिरको काट अग्निमें आहुति देनेके

---

[१] चारों दिशाओंमें अग्नि बालकर ऊपर पांचवे सूर्यनारायण ऐसा करके बीचमें बैठनेका नाम “पंचाग्निव्रत” है ।

निमित्त सन्नद्ध हुआ ॥ ४७ ॥ और जब बाँयें हाथसे अपने केशोंको पकड़कर सूर्यके समान प्रभावाले खड्गको ग्रहणकर अपने मस्तकको छेदन करनेका अभिलाषी हुआ. तब आग्निदेव प्रतिषेध करके ॥४८॥ कहनेलगे कि, हे दैत्यश्रेष्ठ ! आप अपनेको वध न करना, दूसरेकी हत्या करना जैसा दुस्तर है आत्महत्या उसकी भी अपेक्षा अधिक दुस्तर होजाती है ॥ ४९ ॥ हे वीर ! तुमं जो प्रार्थना करोगे मैं तुम्हारी वह प्रार्थना उसीप्रकार पूर्ण करूंगा, इस कारण मरना नहीं, मरनेसे उसकी कथातक नष्ट होजातीहै ॥ ५० ॥ तब रम्भ बोला कि, यदि मुझे वर देतेहो तो मेरे आपकीभी अपेक्षा अत्यन्त तेजस्वी त्रिलोकीको जीतनेवाला पुत्र जन्म ले ॥ ५१ ॥ हे पावक ! संग्राममें सम्पूर्ण देवता और समस्त दैत्य यहभी जिसको न जीतसके ऐसा वायुकी समान महाबल कामरूपी (इच्छानुसार रूप धारणकरनेवाला) और

ततःप्रगृह्यकेशेषुखड्गंचरविसप्रभम् ॥ छेत्तुकामोनिजंशीर्षंवह्निनाप्रतिषेधितः ॥ ४८ ॥ उक्तश्चमादैत्यवरनाशयात्मानमात्मना ॥ दुस्तरापरवध्यापि
स्ववध्याप्यतिदुस्तरा ॥४९॥ यच्चप्रार्थयसेवीरतद्ददामियथेप्सितम् ॥ माम्रियस्वमृतस्येहनष्टाभवतिवैकथा ॥ ५०॥ ततोब्रवीद्वचोरंभोवरंचेन्मेददासिहि ॥
त्रैलोक्यविजयीपुत्रःस्यान्मेत्वत्तेजसाऽधिकः ॥ ५१ ॥ अजेयोदैवतैःसर्वैर्युधिदैत्यश्चपावक ॥ महाबलोवायुरिवकामरूपीकृतास्त्रवित् ॥५२॥ तंप्रोवाचक
विर्ब्रह्मन्बाढमेवंभविष्यति ॥ यस्यांचित्तंसमालंब्यमरिष्यतिततोऽसुरः ॥ ५३ ॥ इत्येवमुक्तोदेवेनवह्निनादानवोययौ ॥ द्रष्टुंमालवटंयक्षंयक्षैश्चपरिवा
रितम् ॥ ५४ ॥ तेषांपद्मनिधिस्तत्रवसतेनान्यचेतनः ॥ गजाश्वमाहिषाश्चाश्वागावोजाविपरिप्लुताः ॥ ५५ ॥ तान्दृष्ट्वैवतदाचक्रेभावंदानवपार्थिवः ॥ महि
ष्यांभावयुक्तायांत्रिहायण्यांतपोधन ॥ ५६ ॥ सासमागाच्चदैत्येन्द्रंकामयंतीतरस्विनी ॥ सचापिगमनंचक्रेभवितव्यप्रचोदितः ॥ ५७ ॥तस्यांसमभवद्गर्भ
स्तांप्रगृह्याथदानवः ॥ पातालंप्रविवेशाथततःस्वभवनंगतः ॥ ५८ ॥

कृतास्त्रवित् (अस्त्रविद्यामें कुशल) हो ॥ ५२ ॥ हे ब्रह्मन् ! अग्निदेवने कहा, अच्छा यही होगा, जिस स्त्रीमें तुम चित्त लगाओगे वही तुम्हारी अभिलाषाको पूर्ण करैगी ॥ ५३ ॥ देवराज अग्निके इसप्रकार कहनेपर रम्भ यक्षगणोंसे वेष्टित मालवट यक्षका दर्शन करनेके निमित्त गया ॥ ५४ ॥ वहां उसके पद्मनिधि अनन्य चित्तसे विराजमान थे. इसके अतिरिक्त गज, महिष, अश्व, गौ, अज और मेष यह सभी वहां थे ॥ ५५ ॥ हे तपोधन ! तब दानवराज रम्भ उनका दर्शन कर उसी समय उनके बीचमें भावयुक्ता त्रिहायणी[1] महिषी[2]में चित्त लगाते हुआ, यह इच्छानुसार शरीर धारण करलेतीथी ॥ ५६ ॥ तब वह महिषी तरस्विनी[3] कामपरायण होकर दैत्येन्द्रके समीप गई, दैत्यपतिभी भवितव्यसे प्रेरित हो उसमें संगत हुए ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त महिषीको गर्भ रहा, रम्भ उसे लेकर पातालमें प्रवेश कर अपने

---

[1] तीनवर्षकी उमरवाली । [2] भैंस । [3] वेगवती ।

भवनको चलागया ॥ ५८ ॥ तब बांधव और दानवोंने पूँछा कि, यह कौन है, जब उसने सब वृत्तान्त कहा तब उसे कुमार्गगामी बताकर त्याग कर दिया, फिर वह पुनर्वार मालवटयक्षके निकट गया ॥ ५९ ॥ उस चारुदर्शना[1] महिषीनेभी पतिकेसाथ परमपवित्र उत्कर्षशाली उल्लिखित[2] यक्षमंडलमें गमन किया ॥ ६० ॥ हे मुने ! इसके उपरान्त उस दैत्यके वहां निवास करनेपर महिषीने वहां कामरूपी शुभ्रवर्ण महिषपुत्र उत्पन्न किया ॥ ६१ ॥ फिर जब वह महिषी ऋतुमती हुई तब एक महिषने उसकी आकांक्षा की, तब वह अपनी शीलरक्षाके निमित्त स्वामीके पास गई ॥ ६२ ॥ रम्भ उस उन्निमित नासायुक्त महिषका दर्शन कर खड्गको खैंचकर शीघ्रतासे उसके निकट गया ॥ ६३ ॥ तब महिषने अपने तीक्ष्ण सींगोंसे उसके हृदयमें आघात किया, इससे उसका हृदय विदीर्ण होगया, और पृथ्वीपर

पृष्टश्चदानवैःसर्वैःपरित्यक्तश्चबंधुभिः ॥ अकार्यकारीचेत्येवंभूयोमालवटंगतः ॥ ५९ ॥ सापितेनैवपतिनामहिषीचारुदर्शना ॥ समंजगामतत्पुण्यंयक्षमं
डलमुत्तमम् ॥६०॥ ततस्तुवसतस्तस्यश्यामासाधुवनेमुने ॥ अजीजनत्सुतंशुभ्रंमहिषंकामरूपिणम् ॥६१॥ एतामृतुमतींजातांमहिषोऽन्योददर्शताम् ॥
साचाभ्यगादितिवरंरक्षंतीशीलमात्मनः ॥ ६२ ॥ तमुन्नामितनासंचमहिषंवीक्ष्यदानवः ॥ खड्गंनिष्कृष्यतरसामहिषंतमुपाद्रवत् ॥ ६३ ॥ तेनापिदै
त्यस्तीक्ष्णाभ्यांशृंगाभ्यांहृदिताडितः ॥ निर्भिन्नहृदयोभूमौपपातचममारच ॥ ६४ ॥ मृतेभर्त्तरिसाश्यामायक्षाणांशरणंगता ॥ रक्षितागुह्यकैःसार्धंनिवार्य
महिषंततः ॥६५॥ ततोनिवारितोयक्षैर्हयारिर्मदनातुरः ॥ निपपातसरोदिव्यंततोदैत्योभवन्मृतः ॥६६॥ नमरोनामविख्यातोमहाबलपराक्रमः ॥ यक्षाना
श्रित्यतस्थौसाकालंगमयतीवने ॥६७॥ सचदैत्येश्वरोयक्षैर्मालवटपुरस्सरैः ॥ चितामारोपितःसाचश्यामातंचारुहत्पतिम् ॥ ६८ ॥ ततोग्निमध्यादुत्तस्थौ
पुरुषोरौद्रदर्शनः ॥ व्यद्रावयत्सतान्यक्षान्खड्गपाणिर्भयंकरः ॥६९॥ ततोहतास्तुमहिषाःसर्वएवमहात्मना ॥ विनासंरक्षितारंहिमहिषंरंभनंदनम् ॥७०॥

गिरकर मृतक होगया ॥ ६४ ॥ स्वामीकी मृत्यु होनेपर वह महिषी यक्षगणोंकी शरणागत हुई गुह्यकगणोंने इस महिषीको निवारण करके उसकी रक्षा की ॥ ६५ ॥ यक्षोंके निवारण करनेपर वह महिष कामातुर होकर दिव्य सरोवरमें पंतित हुआ और प्राणोंको त्याग दिया ॥ ६६ ॥ इससे नमर नामवाला विख्यात दैत्य हुआ, इस ओर वह महिषी यक्षगणोंका आश्रय करके समय व्यतीत करने लगी ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त मालवटप्रमुख यक्षोंने रम्भको चितापर चढ़ाया, वह महिषीभी स्वामीके साथ सती हुई ॥ ६८ ॥ तब अग्निमें से भयंकर चक्रपाणि रौद्रदर्शन पुरुष उठकर यक्षोंको विद्रावित करनेलगा ॥६९॥ उस महात्माने सम्पूर्ण

---

[1] सुन्दरी। [2] पूर्वोक्त ।

महिषोंकोही विनाश किया, केवल रंभनंदन महिषकाही संहार नहीं किया ॥ ७० ॥ हे महामुने ! उसका नाम रक्तबीज कहकर विख्यात है, उस रक्तबीजने सम्पूर्ण देवगण और इन्द्र, रुद्र, सूर्य और मरुद्गण सभीको जय किया ॥ ७१ ॥ ऐसा वह प्रभावशालीदानवश्रेष्ठ अत्यन्त तेजवान् होकर विराजने लगा, फिर शम्बर तारकादि महासुरेन्द्रादिको पराजय करने पर उन्होंने उसको राज्यपर अभिषिक्त किया ॥ ७२ ॥ लोकपालसहित देवगण और भास्कर भगवान् हुताशनके साथ मिलकर उस महिषासुरको परास्त न करसके, इसकारण चंद्रमा, इन्द्र और सूर्यनारायणने अपने स्थानको परित्याग किया, इससे दूरतक अंधकार छागया ॥ ७३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां महिषासुरोत्पत्तिनामक सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, इसके उपरान्त अमरगण महिषासुरसे परास्त होकर अपने २ स्थानोंको त्याग वाहन और आयुधोंके साथ पितामह ब्रह्माजीको आगे कर गदा और चक्रधारी श्रीपति (विष्णु) के दर्शनके निमित्त गये ॥ १ ॥ जाकर

सनामतःस्मृतोदैत्योरक्तबीजोमहामुने ॥ योऽजयत्सर्वतोदेवान्सेन्द्ररुद्रार्कमारुतान् ॥ ७१ ॥ एवंप्रभावोदनुपुंगवोऽसौतेजोधिकस्तत्रबभौहयारिः ॥ राज्येऽभिषिक्तश्चमहासुरेंद्रैर्विनिर्जितैःशंबरतारकाद्यैः ॥ ७२ ॥ अशक्नुवद्भिःसहितैश्चदेवैःसलोकपालैःसहुताशभास्करैः ॥ स्थानानिमुक्तानिशशींद्रभास्करैस्तमश्चदूरेप्रतियोजितंच ॥ ७३ ॥ इति श्रीवामनपुराणेमहिषासुरोत्पत्तिर्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्तुदेवामहिषेणनिर्जिताः स्थानानिसंत्यज्यसवाहनायुधाः ॥ जग्मुःपुरस्कृत्यपितामहंतेद्रष्टुंगदाचक्रधरंश्रियःपतिम् ॥ १ ॥ गत्वात्वपश्यंश्चमिथःसुरोत्तमौस्थितौखगेंद्रासनशंकरौहि ॥ दृष्ट्वाप्रणम्यैवचसिद्धिसाधकौन्यवेदयंस्तन्महिषारिचेष्टितम् ॥ २ ॥ प्रभोऽश्विसूर्यैंद्वनिलाग्निवेधसांजलेशशक्रादिसुराधिकारान् ॥ आक्रम्यनाकात्तुनिराकृतावयंकृतावनिस्थामहिषासुरेण ॥ ३ ॥ एतद्भवंतौशरणागतानांश्रुत्वावचोब्रूतहितंसुराणाम् ॥ नचेद्व्रजामोद्यरसातलंहिसंकाल्यमानायुधिदानवेन ॥ ॥ ४ ॥ इत्थंमुरारिःसहशंकरेणश्रुत्वावचोविप्लुतचेतसांहि ॥ दृष्ट्वात्रचक्रेसहसैवकोपंकालाग्निकल्पोहरिरव्ययात्मा ॥ ५ ॥

देखा कि, विष्णु और शंकर दोनोंही परस्पर (सामने सामने) बैठे हैं, उन सिद्ध साधक सुरोत्तमोंका दर्शन और प्रणामकर उनसे महिषासुरकी क्रिया कही ॥ २ ॥ और बोले कि, हे प्रभो ! महिषासुरने अश्विनीकुमार, सूर्य, चंद्र, अनिल, अनल, वेधा; वरुण और इन्द्रादिके अधिकारको आक्रमणकर हमसभीको आकाशसे निराकृत कर पृथ्वीपर व्यवस्थित किया है ॥ ३ ॥ इसीकारणसे हम लोग आपकी शरणागत हुए हैं. हमारी इस विनतीको सुनकर जिसमें हमारा हितहो सो कहिये. नहीं तो आज हमें युद्धमें महिषासुरसे परास्त होकर पृथ्वीसेभी नीचे रसातलमें पतित होना होगा ॥ ४ ॥ अव्ययात्मा मधुसूदन भगवान् (हरि) शंकरके सहित व्याकुलचित्त देवताओंके ऐसे वचन सुन और उनकी इस अवस्थाको देखकर उसी समय क्रोधके वशीभूत होकर कालाग्निके समान होगये ॥ ५ ॥

इसके उपरान्त क्रोधसे मधुसूदन, शंकर, पितामह और इन्द्रादि अमरगण सभीके शरीरसे तेज निकलने लगा ॥ ६ ॥ वह तेज एकत्रित होकर पर्वतकी समानहो महर्षि कात्यायनके श्रेष्ठ आश्रममें गया, तब महर्षिने अपने प्रतिम (जिसके सदृश न होसकै ऐसे) तेजको प्रगटकर तिसके द्वारा उस तेजको एकत्रित किया ॥ ७ ॥ इसप्रकारसे ऋषिके आविष्कृत तेजसे आवृत होकर यह तेज परमप्रदीप्त प्रभायुक्त सहस्र सूर्यके समान होगया, तब उससे विशुद्ध देह चंचल दीर्घलोचना कात्यायनीने जन्म लिया ॥ ८ ॥ महेश्वरके तेजसे उसका मुख कल्पित हुआ, पावकके तेजसे उसके नेत्र प्रगट हुए, यमके तेजसे उसके केश निकले, हरिके तेजसे उसकी अष्टादश भुजायें उत्पन्न हुईं ॥ ९ ॥ चंद्रमाके तेजसे उसके सुसंगत (मिलेहुए) दोनों स्तन आविर्भूत हुए, इन्द्रके तेजसे उसका मध्यदेश प्रगट हुआ, वरुणके तेजसे

ततोऽनुकोपान्मधुसूदनस्यसशंकरस्यापिपितामहस्य ॥ तथैवशक्रादिषुदैवतेषुमहर्द्धिंतेजोवदनाद्धिनिःसृतम् ॥ ६ ॥ तच्चैकतांपर्वतकूटसन्निभंजगामतेजः प्रवराश्रमेमुने ॥ कात्यायनस्याप्रतिमेनतेजसामहर्षिणातेजउपाकृतंच ॥ ७ ॥ तेनर्षिसृष्टेनचतेजसावृतंज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम् ॥ तस्माच्चजातातरलायताक्षीकात्यायनीयोगविशुद्धदेहा ॥ ८ ॥ माहेश्वराद्वक्रमथोबभूवनेत्रत्रयंपावकतेजसाच ॥ याम्येनकेशाहरितेजसाचभुजास्तथाष्टादशसंप्रजज्ञिरे ॥ ९ ॥ सौम्येनयुग्मंस्तनयोःसुसंहितंमध्यंतथैंद्रेणचतेजसाभवत् ॥ उरूरुजंघेचनितंबसंयुतौजातौजलेशस्यतुतेजसाहि ॥ १० ॥ पादौचलोकप्रपितामहस्यपद्माभिकोशप्रातिमौबभूवतुः ॥ दिवाकराणामपितेजसांगुलीःकरांगुलीर्वासवतेजसाच ॥ ११ ॥ प्रजापतीनांदशनाश्चतेजसायाक्षेणनासाश्रवणौचमारुतात् ॥ साध्येनचभ्रूयुगुलंसुकांतिमत्कंदर्पबाणासनसन्निभंबभौ ॥ १२ ॥ तच्चापितेजोत्तममुत्तमंमहन्नाम्नापृथिव्यामभवत्प्रसिद्धा ॥ कात्यायनीत्येवतदाबभौसानाम्नाचतेनैवजगत्प्रसिद्धा ॥ १३ ॥ ददौत्रिशूलंवरदस्त्रिशूलीचक्रंमुरारिर्वरुणश्चशंखम् ॥ शक्तिंहुताशःश्वसनश्चचापंतूणंतथाऽक्षय्यशरौविवस्वान् ॥ १४ ॥

उसके पुष्ट ऊरु, जंघा और नितम्ब बने ॥ १० ॥ लोकपितामह ब्रह्माजीके तेजसे उसके पद्मकोशकी समान पदयुगल प्रगट हुए, दिवाकरके तेजसे पादकी अंगुली और वासवके तेजसे इसके हाथोंकी अंगुली उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ प्रजापतियोंके तेजसे इसके दांतोंकी पंक्ति, यज्ञके तेजसे इसकी नासिका, मारुतके तेजसे दोनों कान, साध्यगणोंके तेजसे इसकी सुकांतियुक्त कन्दर्पके शरासन (बाण) की समान दोनों भौंहें बनी ॥ १२ ॥ उस श्रेष्ठ और विपुल तेजोराशिने पृथ्वीमें कात्यायनी नामसे प्रसिद्धता प्राप्त की, इसप्रकार कात्यायनीनामसे प्रसिद्ध होकर अत्यन्तही विराजमान होनेलगी ॥ १३ ॥ वरके देनेहारे त्रिशूलीने उसको त्रिशूल,

विष्णुभगवान्‌ने चक्र, वरुणने शंख, हुताशनने शक्ति, वायुने धनु और तरकश और सूर्यने अक्षय शरयुगल दिये ॥ १४ ॥ इन्द्रने घंटेके सहित वज्र, यमने दंड, कुबेरने गदा, ब्रह्माने अक्षमाला और कमंडलु, कालने भयंकर तलवार और चर्म ॥ १५॥ चंद्रने हार और चामर, समुद्रने माला, हिमालयने सिंह, विश्वकर्माने चूड़ामणि, कुंडल, अर्द्धचंद्र और कुल्हाडी दी ॥ १६ ॥ और गंधर्वराजने चांदीकी कलेदार मद्यपूर्ण सुयोग्य पानपात्र, भुजंगपति वासुकि नागने नागहार और ऋतुओंने उसको अम्लानकुसुम (जिसका फूल कभी न मुरझाय ऐसी) माला प्रदान की ॥ १७ ॥ तब उस सत्तमा त्रिनेत्रा कात्यायनीने संतुष्ट होकर अट्टहास (बडी जोरसे हँसी) किया. विष्णु, रुद्र, चंद्र, अनिल, अनल और सूर्यभगवान्‌के साथ प्रधान २ अमरगण उसकी स्तुति करनेलगे ॥ १८ ॥ सुरगणोंसे आराधिता देवीको नम

वज्रंतथेंद्रः सहघंटयाचयमोथदंडंधनदोगदांच ॥ ब्रह्माक्षमालांसकमंडलुंचकालोसिमुग्रंसहचर्मणाच ॥ १९ ॥ हारंचसोमः सहचामरेणमालांसमुद्रोहि
मवान्मृगेंद्रम् ॥ चूडामणिंकुंडलमर्द्धचंद्रंप्रादात्कुठारंसुरशिल्पकर्त्ता ॥ १६ ॥ गंधर्वराजोरजतानुलिप्तंपानस्यपूर्णंसदृशंचभाजनम् ॥ भुजंगहारंभुजगे
श्वरोपिअम्लानपुष्पामृतवः स्रजंच ॥१७॥ तदातितुष्टासुरसत्तमासाअट्टाट्टहासंमुमुचेत्रिनेत्रा ॥ तांतुष्टुवुर्देववराः सहेंद्राः सविष्णुरुद्रेंद्वनिलाग्निभास्कराः ॥
॥ १८ ॥ नमोस्तुदेव्यैसुरपूजितायैयासंस्थितायोगविशुद्धदेहा ॥ निद्रास्वरूपेणमहींवितत्यतृष्णात्रपाक्षुद्भयदाचकांतिः ॥ १९ ॥ श्रद्धास्मृतिःपुष्टिरथो
क्षमाचछायाचशक्तिःकमलालयाच ॥ मेधास्मृतिःक्षांतिरथेहमायानमोस्तुदेव्यैभवितव्यतायै ॥२०॥ ततःस्तुतादेववरैर्मृगेंद्रमारुह्यदेवीप्रगतावनाढ्यम् ॥
विंध्यंमहापर्वतमुच्चशृंगंचकारयंनिम्नतरंत्वगस्त्यः ॥२१॥ नारदउवाच ॥ किमर्थमद्रिंभगवानगस्त्यस्तंनिम्नशृंगंकृतवान्महर्षिः ॥ कस्मैकृतेकेनचकारणे
नएतद्वदस्वामलसत्त्ववृत्ते॥२२॥पुलस्त्यउवाच॥पुराहिविंध्येनादिवाकरस्यगतिर्निरुद्धागगनेचरस्य॥रविस्ततःकुंभभवंसमेत्यहोमावसानेवचनंबभाषे॥२३॥

स्कार है, योगबलसे विशुद्ध शरीरधारिणी जो देवी निद्रारूपसे, तृष्णारूपसे, जो कांतिस्वरूप ॥ १९ ॥ श्रद्धास्वरूप और स्मृतिस्वरूप जो पुष्टिस्वरूप, क्षमास्वरूप, छायास्वरूप, जो शक्तिस्वरूप और स्वयं लक्ष्मीस्वरूप हैं जो मेधास्वरूप, मायास्वरूप और भवितव्यतां स्वरूप है उस देवीको नमस्कार है ॥ २० ॥ तब प्रधान २ देवताओंके इसप्रकार स्तुति करनेपर देवी कात्यायनी सिंहपर चढ़कर वनोंसे पूर्ण अत्यन्त ऊँचे शृङ्गयुक्त विन्ध्यनामक महापर्वतको गई, अगस्त्यजीने इसी पर्वतको नीचा किया था ॥ २१ ॥ नारदजी बोले कि, महर्षि अगस्त्यजीने किसकारणसे विन्ध्याचलको नीचा किया था, किसकारणसे किसके निमित्त उन भगवान्‌ने यह कार्य किया, हे अमलसत्त्ववृत्ते ! सो आप हमारे निकट कहिये॥ २२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, पूर्वकालमें विंध्याचलने गगनविहारी सूर्यभगवान्‌की

गति रोकी थी, इसीकारणसे प्रभाकर होमावसानमें महर्षि अगस्त्यजीके पास जाकर यह वचन कहनेलगे ॥ २३ ॥ हे द्विज ! मैं अत्यन्त दूरसे आपके पास आया हूं, हे मुनीन्द्र ! आपको विश्वका उद्धार करना चाहिये मैंने जो इच्छा की है सो प्रदान कीजिये, ऐसा होनेसे मैं संतुष्ट होकर त्रिलोकीमें विचरण करसकूंगा ॥ ॥ २४ ॥ महर्षि अगस्त्यजी दिवाकरके गुणयुक्त वचनोंको सुनकर बोले कि, तुम्हारी आन्तरिक अभिलाषाको पूर्ण करूंगा, कोईभी मेरे पाससे विमुख होकर नहीं जाता ॥ २५ ॥ प्रभु दिवाकर कलशयोनिके इसप्रकारके अमृतमय वचनोंको सुनकर हाथोंपर मस्तकको धर अर्थात् प्रणाम कर कहनेलगे कि, विन्ध्याचल पर्वत सबप्रकारसे मेरा मार्ग रोकता है, इसकारण हे भगवन् ! उसे नीचा करनेमें यत्नवान् हो ॥ २६ ॥ कुंभजन्मा अगस्त्यजीने सूर्यभगवान्के इन वचनोंका उत्तर

समागतोऽहं द्विजदूरतस्त्वां कुरुष्वविश्वोद्धरणंमुनींद्र ॥ ददस्वदानंममयन्मनीषितंचरामियेनत्रिदिवेषुनिर्वृतः ॥ २४ ॥ इत्थंदिवाकरवचोगुणसंप्रयोगि श्रुत्वातदाकलशजोवचनंबभाषे ॥ दानंददामितवयन्मनसस्त्वभीष्टंनार्थीप्रयातिविमुखोममकश्चिदेव ॥ २५ ॥ श्रुत्वावचोऽमृतमयंकलशोद्भवस्यप्राहप्रभुः करतलंविनिधायमूर्ध्नि ॥ एषोद्यमेगिरिवरःप्ररुणद्धिमार्गंविंध्यश्चनिम्नकरणेभगवन्यतस्व ॥ २६ ॥ इतिरविवचनादथाहकुंभजन्माकृतमितिविद्धिमयाहिनीचशृंगम् ॥ तवकिरणजितोभविष्यतिमहीध्रोममचरणसमाश्रितस्यकाव्यथाते ॥ २७ ॥ इत्येवमुक्त्वाकलशोद्भवस्तुसूर्यंहिसंस्तूयविनम्रभक्त्या ॥ जगामसंत्यज्यहिदंडकांतुर्विंध्याचलंवृद्धवपुर्महर्षिः ॥ २८ ॥ गत्वावचःप्राहमुनिर्महीध्रंयाम्येमहातीर्थवरंसुपुण्यम् ॥ वृद्धोऽस्म्यशक्तश्चतवाधिरोढुंतस्माद्भवान्नीचतरोस्तुसद्यः ॥ २९ ॥ इत्येवमुक्तोमुनिसत्तमेनसनीचशृंगस्त्वभन्महीध्रः ॥ समाक्रमंश्चापिमहर्षिमुख्यःप्रोल्लंघ्यविंध्यंत्विदमाहशैलम् ॥ ३० ॥ यावन्नभूयोनिजमाव्रजामिमहाश्रमंधौतवपुःसुतीर्थात् ॥ त्वयानतावत्त्विहवर्धितव्यंनचेद्द्विशप्स्येहमवज्ञयाते ॥ ३१ ॥

दिया कि, मेरे द्वारा विन्ध्याचलके शृङ्ग नीचे किये हुए तुम जानों; विन्ध्याचल तुम्हारी किरणोंसे पराजित होगा. जब कि, तुमने हमारे चरणोंका आश्रय लिया है तब तुमको फिर क्या पीड़ा है ? ॥ २७ ॥ महर्षि कुंभयोनि इसप्रकार कहकर नम्रतायुक्त भक्तिके साथ सूर्यकी भलीभाँतिसे स्तुति कर दंडकारण्य वनको छोड़कर वृद्ध देहको धारण किये विंध्याचलको गये ॥ २८ ॥ जाकर बोले कि, दक्षिणदिशामें परमपवित्र एक महातीर्थ है, मैं वृद्ध हूं, वहां जानेके निमित्त तुम्हारे ऊपर चढ़नेमें अशक्त हुआ हूं, इसकारण तुम इसी मुहूर्त्तमें नीचे होजाओ ॥ २९॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके इसप्रकार कहनेपर विन्ध्याचलने अपने शृङ्ग नीचे किये, तब महर्षि मुख्य अगस्त्यजी उसपर चढ़ उसे लांघकर बोले कि ॥ ३० ॥ मैं जबतक उस पवित्रतीर्थसे स्नानकर अपने आश्रमको न लौटूं तबतक तुम ऊँचे न होना, यदि मेरी

आज्ञाको न मानोगे तो मैं तुम्हारा नाश करदूंगा ॥ ३१ ॥ भगवान् अगस्त्यजी यह कहकर उसीसमय दक्षिणकी ओरके एक अन्तरिक्षमें चलेगये, समय (नियम)
साथ महर्षिके आगमनकी आशासे विंध्याचल उस दक्षिण ओरको आक्रमण कर रहनेलगा ॥ ३२ ॥ इस ओर महर्षि आकाशमें विशुद्ध सुवर्णमय तोरण (बन्दन
वार) से रमणीय आश्रमको बनाकर उसमें विदर्भराजकी पुत्रीको रख अपने मनोहर प्राचीन आश्रमको लौटे ॥ ३३ ॥ ऋतुपर्यायके पर्वकार्य समयमें नित्य उस
अम्बर (आकाश) में स्थित आश्रममें जाकर वास करतेथे; और शेष समयमें दंडकारण्यमें रहकर तप किया करतेथे ॥ ३४ ॥ इस ओर विन्ध्याचल उस आकाशमें
स्थित आश्रमको देखकर उनके भयसे फिर न बढ़सका । और अब महर्षि नहीं आवेंगे ऐसा विचारकर अपने आगेके शृङ्गोंको अत्यन्तही झुकाकर रहने

इत्येवमुक्त्वाभगवाञ्जगामदिशंसयाम्यांसहसांतरिक्षम् ॥ आक्रम्यतस्थौसहितांतदाशांकालेव्रजाम्यत्रयदामुनींद्रः ॥ ३२ ॥ तत्राश्रमंरम्यतरंहिकृत्वासं
शुद्धजांबूनदतोरणांतम् ॥ तत्राथनिक्षिप्यविदर्भपुत्रींस्वमाश्रमंसौम्यमुपाजगाम ॥३३ ॥ ऋतावृतौपर्वदिनेषुनित्यंतमंबरेह्याश्रममावसत्सः ॥ शेषंहिकालं
सहिदंडकास्थस्तपश्चचारामितकांतिमान्मुनिः ॥ ३४ ॥ विंध्योपिदृष्ट्वागमनेमहाश्रमंवृद्धिंनयात्येवभयान्महर्षेः ॥ नासौनिवृत्तेतिमतिंविधायससंस्थितोनी
चतराग्रशृंगः ॥ ३५ ॥ एवंत्वगस्त्येनमहाचलेंद्रःसनीचशृंगोहिकृतोमहर्षे ॥ तस्योर्ध्वशृंगेमुनिसंस्तुतासादुर्गास्थितादानवनाशनार्थम् ॥ ३६ ॥ देवाश्चसि
द्धाश्चमहोरगाश्चविद्याधराभूतगणाश्चसर्वे ॥ सर्वाप्सरोभिःप्रतिरामयंतःकात्यायनींतस्थुरपेतशोकाः ॥ ३७॥ इति श्रीवामनपुराणे देवीमाहात्म्येऽष्टादशो
ऽध्यायः ॥१८॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्तुतांतत्रतदावसंतींकात्यायनींशैलवरस्यशृंगे ॥ अपश्यतांदानवसत्तमौद्वौचंडश्चमुंडश्चतपस्विनीं भृशम् ॥ १ ॥
दृष्ट्वैवशैलादवतीर्यशीघ्रमाजग्मतुःस्वंभवनंसुरारी ॥ दृष्ट्वाचतुस्तौमहिषासुरस्यदूताविदंचंडमुंडावूचतुरीशम् ॥ २ ॥

लगा ॥ ३५ ॥ हे महर्षे ! इसप्रकारसे अगस्त्यजीने महाबलेन्द्र विन्ध्याचलके शृङ्गोंको नीचा कियाथा, वह कात्यायनी दुर्गा दानवगणोंको दलन करनेके
निमित्त उसके शृङ्गपर स्थित हुईं, मुनिगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ देवगण, सिद्धगण, महोरगगण, विद्याधरगण और भूतगण सभी अप्सराओंकेसाथ मिलकर
तथा महर्षिजनभी कात्यायनीके समीप शोकको त्यागकर निवास करनेलगे ॥ ३७ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
इसके उपरान्त देवी कात्यायनी दुश्चर तपस्याके आचरणमें प्रवृत्तहो वह विन्ध्यगिरिके शृङ्गका आश्रय कर रहनेलगी, तब चंड और मुंड नामके दो दैत्योंने
इन्हें देखा ॥ १ ॥ देखतेही वह दोनों देवशत्रु शीघ्र वहांसे उतरकर अपने भवनकोगये, वह दोनोंजने महिषासुरके दूत थे उसके पास जाकर कहने लगे ॥ २ ॥

कि, हे असुरेन्द्र ! अब आप क्यों स्वस्थ बैठे हैं, चलिये शीघ्र विन्ध्याचलका दर्शनकीजिये, वहां सुरसुन्दरियोंकी स्वरूपा कन्या सुमहानुभावा देवी वास करती हैं ॥ ॥ ३ ॥ इन तन्वीने केशपाशसे मेघसमूह, वदनसे चंद्र, तीनों नेत्रोंसे तीनों हुताशन (दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय नामक) और कंठसे शंखको पराभूत कियाहै ॥ ४ ॥ उसके दोनों स्तन गोल, और नतचूचूकों (स्तनाग्र) से समलंकृत हैं, और हस्तीकेकुंभको जीतकर विराजमान हैं, तुमको सर्वविजयी विचारकर कामदेवने उनके दोनों कुचोंको दृढ़ और दुर्ग (किला) स्वरूप कियाहै ॥ ५ ॥ उसकी अठारह भुजा परिघके समान शस्त्रयुक्त और अत्यन्त प्रकाशमान हैं, आपके पराक्रमको जानकर कामदेवने मानों उनको यंत्रस्वरूप बनाया है ॥ ६ ॥ उसके मध्यदेशमें त्रिवलीकी तरँगें शोभायमान हैं. और सुन्दर रोमराजि विराजमान है, इसकारण हे दैत्येन्द्र ! उसकी अत्य

स्वस्थोभवान्किंत्वसुरेंद्रसांप्रतमागच्छपश्यामचतत्रविंध्यम् ॥ तत्रास्तिदेवीसुमहानुभावाकन्यासुरूपासुरसुंदरीणाम् ॥ ३ ॥ जितस्तयातोयधरोऽलकैर्हि जितःशशांकोवदनेनतन्व्या ॥ नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणिहुताशनानिजितानिकंठेनजितस्तुशंखः ॥४॥ स्तनौसुवृत्तावथनिम्नचूचुकौस्थितौविजित्यैवगजस्यकुंभौ ॥ त्वांसर्वजेतारमितिप्रतर्क्यकुचौस्मरेणैवकृतौसुदुर्गौ ॥ ५ ॥ पीनाःसशस्त्राःपरिघोपमाश्चभुजास्तथाऽष्टादशभांतितस्याः ॥ पराक्रमंवैभवतोविदित्वाकामेनयंत्राइवतेकृतास्तु ॥६॥ मध्यंचतस्यास्त्रिवलीतरंगंविभातिदैत्येंद्रसुरोमराजि ॥ भयात्तवारोहणकातरस्यकामेनसोपानमिवप्रयुक्तम् ॥७॥ सारोमराजी नितरांहितस्याविराजतेपीनकुचावलग्ना ॥ आरोहणेत्वद्भयकातरस्यस्वेदप्रवाहोऽसुरमन्मथस्य ॥ ८ ॥ नाभिर्गभीरानितरांविभातिप्रदक्षिणास्याःपरिवर्त्तमाना ॥ तस्यैवलावण्यगृहस्यमुद्राकंदर्पराज्ञास्वयमेवदत्ता ॥ ९ ॥ विभातिरम्यंजघनंमृगाक्ष्याःसमंततोमेखलयावघृष्टम् ॥ भन्येह्यहंकामनराधिपस्य प्राकारगुह्यंनगरंसुदुर्गम् ॥ १० ॥ वृत्तावरोमौचमृदूकुमार्याःशोभेतऊरूसमनुत्तमौहि ॥ आवासनार्थमकरध्वजेनजनस्यदेशाविवसान्निविष्टौ ॥ ११ ॥

न्तही शोभा बढ़ी हुई है. आप पीछे चढ़नेके समय कातर होंगे इसभयसे कामने उसे सोपान (सीढ़ी) स्वरूप किया है ॥ ७ ॥ उसकी वह रोमराजि पीन कुचयुग्ममें लग्न होकर अत्यन्त विराजमान होती है. हे असुर ! देखनेसे ऐसा बोधहोता है कि, आरोहणके समयमें आपके भयसे कातर होकर कामका मानों स्वेद प्रवाह हुआ है ॥ ८ ॥ उसकी नाभि अत्यन्त गंभीर (गहिरी) और प्रदक्षिणक्रमसे परिवर्तन मान (लौटी हुई) है इसकारण अत्यन्त शोभायमान है, देखनेसे ऐसा बोध होता है कि, मानों स्वयं राजा कन्दर्पने वह लावण्यगृहकी मुद्रा (मोहर छाप) प्रदान की है ॥ ९ ॥ उसका जघन अत्यन्त रमणीक और सब ओर कौंधनीसे घिरा है, इसीकारण अत्यन्त शोभायमान है, देखनेसे यह विचार होता है कि,मानों यह मदनराजका प्राकार अतिगुप्त नगर है ॥ १० ॥ उस कुमारीके दोनों ऊरु

अत्यन्त सुकुमार वर्तुलाकार और रोमशून्य हैं, उनके देखनेसे यह जाना जाता है कि, मानों मकरध्वजने लोकोंके आवासनार्थ दो देशोंको वसाया है ॥ ११ ॥ हे महिषासुरेन्द्र ! वैसाही मनोहर उसका जानुयुगल अत्यन्त उन्नत शोभायमान होरहाहै; यह तुम निश्चय जानों कि, ब्रह्माजीने उसे रचकर ठीक हुआ या नहीं ऐसा निरूपण करनेके अर्थ जब खड़े हुए तब परिभ्रान्त होकर हाथोंका सहारा लिया है, जिससे बीचमें कोमल होनेके कारण दबगया है ऐसा ॥ १२ ॥ और उसकी दोनों जंघाएँ रोमवर्जित और अत्यन्त सुन्दर हैं, हे दैत्येश्वर! वे उसकी जंघे हैं जो कि,सब लोकोंको आक्रमण करके नदीकुलको विजय करके ब्रह्माजीके निर्माणके विषय सबसे श्रेष्ठ बनाईं गईं हैं ॥ १३ ॥ और उसके पदयुगलकमलमध्यसन्निभ विधाताने अत्यन्तही यत्नसे उनको निर्माण किया है, उसके नखरत्नोंकी माला गगनसंचारिणी नक्षत्रोंकी मालाके समान जानी जाती है ॥ १४ ॥ हे दनुनाथ ! ऐसी स्वरूपवाली उस कन्याने महाभयानक सम्पूर्ण शस्त्रोंको धारण किया है; हमने यथेष्ट उसका दर्शन किया, परन्तु वह कौन है और किसकी पुत्री है यह नहीं जानसके॥ १५ ॥ हे महासुरेन्द्र ! वह अतिउत्तम रत्न स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर स्थित है, आप स्वयं विन्ध्याचलपर जाकर देखिये फिर जो उचित विचार करोगे सो कियाजायगा ॥ १६ ॥ महिषासुर देवीकी इस कमनीय सुन्दरता इत्यादिको सुनकर इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है यह कहकर उस कात्यायनीके प्रति कृतमति हुआ. हे महर्षे ! विधाता प्रथमही मनुष्योंको शुभाशुभ जतादेता है, जिसमें वह स्वयं जाता है, अथवा दूसरेके द्वारा नीयमान होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसकारणसे वह महासुरेन्द्र, नमुंड, नमर, चंड, बिडालाक्ष, कपिल, बाष्कल, उग्रायुध,

तज्जानुयुग्मंमहिषासुरेंद्रह्यत्युन्नतंभातितथैवतस्याः ॥ सृष्ट्वाविधाताहिनिरूपणायश्रांतस्तथाहस्ततलौददौहि ॥ १२ ॥ जंघेसुवृत्तेपिचरोमहीनेशुभेचदैत्येश्वरतेतदीये ॥ आनम्यलोकानिवनिर्मितेयेऽसूपंविजित्यैवकृतेवरेहि ॥ १३ ॥ पादौचतस्याःकमलोदराभौप्रयत्नतस्तौहिकृतौविधात्रा ॥ आज्ञायितस्यानखरत्नमालानक्षत्रमालागगनेयथैव ॥ १४ ॥ एवंस्वरूपादनुनाथकन्यामहोग्रशस्त्राणिचधारयंती ॥ दृष्ट्वायथेष्टंनचवेद्मिकासासुतातथाकस्यचिदेवबाला ॥ १५ ॥ तद्भूतलेरत्नमनुत्तमंस्थितंस्वर्गंपरित्यज्यमहासुरेंद्र ॥ गत्वाऽथविंध्यंस्वयमेवपश्यकुरुष्वयत्तोभिमतंक्षमंच ॥ १६॥ श्रुत्वैवताभ्यांमहिषासुरस्तुदेव्याःप्रवृत्तिंकमनीयरूपाम् ॥ चक्रेमतिंनात्रविचार्यमस्तिइत्येवमुक्त्वामहिषोमहर्षे ॥ १७ ॥ प्रागेवपुंसस्तुशुभाशुभानिस्थानेविधात्राप्रतिपादितानि ॥ यस्मिन्यथायातिचसोथविप्रसनीयतेवात्रजतिस्वयंवा ॥ १८॥ ततोनमुंडंनमरंसचंडंबिडालनेत्रंकपिलंसबाष्कलम् ॥ उग्रायुधंविक्षुररक्तबीजौसमादिदेशाथमहासुरेंद्रः ॥ १९ ॥

विक्षुर, रक्तबीज इन सभी असुरोंको उसी समय आज्ञा दी ॥ १९ ॥ तब वह रणकर्कश दनुनंदनगण भेरी (नगारा) को ताड़ितकर स्वर्गको त्याग विन्ध्यपर्वतपर उतरकर उसके मूलप्रान्तभूमिमें सन्निवेशके साथ सुसज्जित होगये ॥ २० ॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त महिषासुरसे प्रेषित दानवोंके यूथपति शत्रुसैन्यविमर्दनकारी मयनंदन दुन्दुभिके शब्दके समान शब्दवाला दुन्दुभी देवीके निकट जाकर अन्तरिक्षमें स्थितहो कहने लगा, हे कुमारी ! मैं महाअसुर महिषासुरका दूत हूं वह रम्भनंदन महिष युद्धमें अद्वितीय है ॥ २१ ॥ २२ ॥ देवी कात्यायनी उसके इन वचनोंको सुनकर बोली कि, हे दैत्येन्द्र ! भयको छोड़कर मेरे निकट आओ, और रंभनंदन महिषने जो कहा है मोहको त्यागकर उसे सत्य करके कहो ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त दैत्यवर दुन्दुभि शिवा (कात्यायनी) के कहनेसे आकाशको छोड़कर

आहत्यभेरींरणकर्कशास्तेस्वर्गंपरित्यज्यमहीधरंतु ॥ आगम्यमूलेशिबिरंनिवेश्यतस्थुश्चसज्जादनुनंदनास्ते ॥ २० ॥ ततस्तुदैत्योमहिषासुरेणसंप्रेषितोदानवयूथपालः ॥ मयस्यपुत्रोरिपुसैन्यमर्दीसदुंदुभिर्दुंदुभिनिःस्वनस्तु ॥ २१ ॥ अभ्येत्यदेवींगगनस्थितोपिसदुंदुभिर्वाक्यमुवाचविप्र ॥ कुमारिदूतोस्मिमहासुरस्यरंभात्मजस्याप्रतिमस्ययुद्धे ॥ २२ ॥ कात्यायनीदुंदुभिमित्युवाचएह्येहिदैत्येंद्रभयंविमुच्य ॥ वाक्यंचयद्रंभसुतोबभाषेवदस्वतत्सत्यमपेतमोहः ॥ २३ ॥ ततस्तुवाक्याद्दितिजःशिवायास्त्यक्त्वाम्बरंभूमितलेनिषण्णः ॥ सुखोपविष्टःपरमासनेचरंभात्मजेनोक्तमुवाचवाक्यम् ॥ २४ ॥ दुंदुभिरुवाच ॥ एवंसमाज्ञापयतेसुरारिस्त्वांदेविदैत्योमहिषासुरस्तु ॥ यथाऽमराहीनबलाःपृथिव्यांभ्रमंतियुद्धेविजितामयाते ॥ २५ ॥ स्वर्गोमहीवायुपथाश्चवश्याःपातालमन्येचमहीश्वराद्याः ॥ इंद्रोस्मिरुद्रोस्मिदिवाकरोस्मिसर्वेषुलोकेष्वधिपोऽस्मिबाले ॥ २६ ॥ नसोस्तिनाकेनमहीतलेवास्वर्गेपिपातालतलेपियुद्धे ॥ सर्वाणिमामद्यसमागतानिवीर्यार्जितानीहविशालनेत्रे ॥ २७ ॥ स्त्रीरत्नमग्र्यंभवतीचकन्याप्राप्तोस्मिशैलंतवकारणेन ॥ तस्माद्भजस्वैवजगत्पतिंमांपतिस्तवाहोंस्मिविभुःप्रभुश्च ॥ २८ ॥

पृथ्वीपर बैठा, और दिव्य आसनपर सुखसे बैठ महिषासुरके कहेहुये वचनको कहने लगा ॥ २४ ॥ दुन्दुभि बोला हे देवि ! सुरारि महिषासुरने तुम्हें इसप्रकार की आज्ञा दी है, देवता लोग मुझसे युद्धमें परास्तहो और हीनबल होकर पृथ्वीमें घूमते हैं ॥ २५ ॥ स्वर्ग, पृथ्वी सम्पूर्ण वायुके मार्ग, पाताल और पृथ्वीपति आदि सभी मेरे वशीभूत हुए हैं । हे बाले ! मैंही इस समय रुद्र हूं, इन्द्र हुआहूं, सूर्य हूं और सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हुआहूं ॥ २६ ॥ स्वर्गमें, पातालमें, पृथ्वीमें अथवा युद्धमें और कोईभी नहीं है, हे विशाललोचने ! सभी मेरी शरणागत और वशीभूतहैं, और सभीको मैं ने अपने वीर्यबलसे अपना किया है ॥ २७ ॥ एक मात्र स्त्री रत्नोंमें श्रेष्ठ केवल तुम्हीं बची हो, तुम्हारेही कारणसे अब इस पर्वतपर आयाहूं, इसकारण मेरी सेवा करो, मैंही इस समय सम्पूर्ण जगत्का प्रभु और पतिहूं अतएव

मैं अवश्यही तुम्हारे योग्य पतिहूं ॥ २८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, दुन्दुभिके ऐसा कहनेपर कात्यायनी दुर्गा उससे बोलीं कि, यह तो सत्य है ? कि, दानवराज महिष इस समय सम्पूर्ण संसारके अधीश्वर हैं, और यह भी सत्य है कि, युद्धमें समस्त देवगण उनसे परास्त होगये हैं ॥ २९ ॥ हे दैत्येश ! हमारे वंशमें शुल्क नामक धर्म प्रसिद्ध है, यदि महिष आज उस शुल्कको दान करसकै तो यह मैं सत्य कहती हूं कि, उसकी पतिरूपसे सेवा करूंगी ॥ ३० ॥ मयनंदन दुन्दुभि यह वचन सुनकर बोला कि, हे कमलनयने ! वह शुल्क क्या है सो कहिये,और क्या कहैं साधारण शुल्ककी बात तो दूर जानेदो महिष तुम्हारे निमित्त अपना मस्तक और जो अलभ्य है उसेभी दे सकता है ॥ ३१ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, दनुनायकके इसप्रकार कहनेपर कात्यायनी देवी उच्चनादकर विकट हास्यके साथ

पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तादितिजेनदुर्गाकात्यायनीप्राहमयस्यपुत्रम् ॥ सत्यंप्रभुर्दानवराट्पृथिव्यांसत्यंचयुद्धेविजितामराश्च ॥ २९ ॥ किंत्वस्तिदैत्येशकुलेस्मदीयेधर्मोहिशुल्काख्यइतिप्रसिद्धः ॥ तंचेत्प्रदद्यान्महिषोममाद्यभजामिसत्येनपतिंहयारिम् ॥३० ॥ श्रुत्वाथवाक्यंमयजोब्रवीच्चशुल्कंवदस्वायतपत्रनेत्रे ॥ दद्यात्स्वमूर्धानमपित्वदर्थेकिन्नामशुल्कंचयदस्त्यलभ्यम् ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तादनुनायकेनकात्यायनीसस्वनमुन्नदित्वा ॥ विहस्यचैतद्वचनंवभाषेहितायसर्वस्यचराचरस्य ॥ ३२ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कुलेऽस्मदीयेशृणुदैत्यशुल्कंकृतंहियत्पूर्वतरैःप्रसह्य ॥ योजेष्यतेऽस्मत्कुलजांरणाग्रेतस्याःपतिःसोपिभविष्यतीति ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदेव्यादुंदुभिर्दानवेश्वरः ॥गत्वानिवेदयामासमहिषाययथायथम् ॥ ॥ ३४ ॥ सचाभ्यगान्महातेजाःसर्वदैत्यपुरस्सरः ॥ आवृत्यविंध्यशिखरंयोद्धुकामःसरस्वतीम् ॥ ३५ ॥ ततःसेनापतिर्दैत्योविक्षुरोनामनारद ॥ सेनाग्रगामिनंचक्रेनमरंनामदानवम् ॥ ३६ ॥ सचापितेनाधिकृतश्चतुरंगंसमूर्जितम् ॥ बलैकदेशमादायदुर्गांदुद्राववेगतः ॥ ३७ ॥ तमापतंतंवीक्ष्याथदेवाब्रह्मपुरोगमाः ॥ ऊचुर्वाक्यंमहादेवींवर्मबंधनमाश्रय ॥ ३८ ॥

जगत्के उपकार करनेके निमित्त यह वचन कहने लगीं ॥ ३२ ॥ देवी बोलीं हेदैत्य ! पूर्वपुरुषोंने हमारे वंशमें इसप्रकार शुल्कका नियम किया है कि, जो रणभूमिमें बलपूर्वक हमारे वंशकी स्त्रियोंका पराजय करैगा वही उनका पति होगा ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, दानवेश्वर दुन्दुभिने देवीके यह वचन सुनकर महिषासुरके पास जाय उसे समस्त वृत्तान्त ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ ३४ ॥ महिषासुर सम्पूर्ण दैत्योंको आगेकर विन्ध्याचलको घेर देवीसे युद्ध करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ३५ ॥ हे नारद ! इसी समयमें विक्षुर नामक समग्रसेनापतिने नमर नामक दानवको थोड़ीसी सेनाके आगे किया ॥ ३६ ॥ वहभी उसके द्वारा नियोजित होकर अत्यन्त बलवान् चतुरंग सेनाके एक भागको लेकर शीघ्रतासे दुर्गाके प्रति दौड़ा ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त उसको आता हुआ देखकर पितामह इत्यादि देवगण महादेवी कात्यायनीसे बोले

कि, आपभी कवच पहरिये ॥ ३८ ॥ अब देवी उनसे बोली कि, हे देवगण ! मैं कवच नहीं पहनूंगी, कौन अधम दानव मेरें सन्मुख स्थित रह सकैगा ॥ ३९॥ जब कि, उन्होंने शस्त्र निवारणके निमित्त कवच धारण नहीं किया, तब शिवजीने उनकी रक्षाके निमित्त पूर्वोक्त विष्णुपंजर कहा॥ ४०॥ हे ब्रह्मन् ! दुर्गा देवीने उसके प्रभावसे रक्षित होकर सम्पूर्ण देवताओंसे अवध्य दानवसत्तम महिषको चरणसे हत किया ॥ ४१ ॥ इसप्रकार पहले देववर शंभुने आयतनेत्रा कात्यायनीको विष्णुपंजरका उपदेश दियाथा, इसीसे उन्होंने चरणोंके प्रहारसे महिषासुरको निहत कियाथा ॥ ४२ ॥ हे द्विज ! ऐसा प्रभावयुक्त विष्णुपंजर (स्तोत्र) जितनेक रक्षासाधन द्रव्य हैं, सभीके बीचमें प्रधानरूपसे विख्यात हुआ है, चक्रपाणि जिसके चित्तमें विराजमान हैं फिर कौन उसके दर्पकी हानि कर सकता है ॥ ४३ ॥

अथोवाचसुरान्दुर्गानबध्नामिचदेवताः ॥ कवचंकोऽत्रसंतिष्ठेन्ममाग्रेदानवाधमः ॥३९॥ यदानदेव्याकवचंकृतंशस्त्रनिवारणम् ॥ तदारक्षार्थमस्यास्तुविष्णुपंजरमुक्तवान् ॥४०॥ सातेनरक्षिताब्रह्मन्दुर्गादानवसत्तमम् ॥ अवध्यंदैवतैःसर्वैर्महिषंप्रत्यपेषयत् ॥४१॥ एवंपुरादेववरेणशंभुनातद्वैष्णवंपंजरमायताक्ष्याः॥ प्रोक्तंतयाचापिहिपादघातैर्निषूदितोऽसौमहिषासुरेंद्रः ॥ ४२॥ एवंप्रभावोद्विजविष्णुपंजरःसर्वासुरक्षास्वधिकोहिगीतः ॥ कस्तस्यकुर्याद्युधिविदर्पहानिंयस्य स्थितश्चेतसिचक्रपाणिः ॥४३॥ इतिश्रीवामनपुराणेदेवीमाहात्म्यपरिकीर्त्तनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ ॥ नारदउवाच ॥ कथंकात्यायनीदेवीसानुगंमहिषासुरम् ॥ सवाहनंहतवतीतथाविस्तरतोवद ॥१॥ अयंचसंशयोब्रह्मन्हृदिमेपरिवर्त्तते ॥ विद्यमानेषुशस्त्रेषुयत्पद्भ्यांतममर्दयत् ॥२॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वाकथामेतांपुरातनीम् ॥ वृत्तांदेवयुगस्यादौपुण्यांपापभयापहाम् ॥ ३ ॥ सएवमसुरःक्रुद्धःसमापततवेगवान् ॥ सगजाश्वरथोब्रह्मन्दृष्टोदेव्यायथेच्छया ॥ ४ ॥ ततोदेवगणैर्दैत्यान्समानम्याथकार्मुकम् ॥ ववर्षदेवीबाणौघैर्द्यौरिवांबुदवृष्टिभिः ॥ ५ ॥

इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्यकीर्तनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ नारदजी बोले कि, देवी कात्यायनीने किसप्रकारसे महिषासुरको वाहन और अनुगामियोंके साथ संहार किया सो आप विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे हृदयमें यह संदेह उत्पन्न हुआ है कि,उसके पास सम्पूर्ण शस्त्रोंके विद्यमान होतेभी उन्होंने क्यों चरणके आघातसे उसका संहार किया ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, सावधान होकर इस पुण्यदायिनी, पापनाशिनी, भयहारिणी प्राचीन कथाको श्रवण करो. सत्ययुगके आदिमें इसकी अवतारणा हुई है ॥ ३ ॥ वह महिषासुर क्रोधमें भर शीघ्रतासे अश्व, गज, पदाती (पैदल सिपाही) और रथोंके साथ अर्थात् चतुरंगिनी सेनाले आ पहुँचा, तब देवीनेभी उसको यथेच्छ दृष्टिसे देखा ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह देवताओंके साथ मिलकर

बाणोंको निकाल मेघकी वृष्टिके द्वारा आकाशकी समान दैत्योंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ५ ॥ जब वह धनुष दानव सैन्यके बीच देवीसे आनमित अर्थात् कुंडलीकृत हुआ, और सुवर्णके फलकवाले बाण उसमें सन्नद्ध किये गये तब जलभरे बादलोंमें बिजलीकी समान उसकी शोभा हुई ॥ ६ ॥ हे सुव्रत ! उन्होंने दैत्योंमेंसे किसीको तो बाणोंके द्वारा ताड़ित किया और किसीको गदा मूसलके प्रहारसे स्वस्थानसे निपातित किया ॥ ७ ॥ देवीका वाहन काल (यम) के समान सिंहने सटा (कन्धेके बालों) को कंपाता हुआ इकलेही होकर बहुत सारे दैत्य दानवोंका संहार कर डाला ॥ ८ ॥ दैत्यगण देवीके वज्रसे ताड़ित और शक्ति (भाला) से विदारित वक्षस्थल और कालसहित हलसे दारितग्रीव और परश्वध (फरसा) से द्विधाछिन्न ॥ ९ ॥ और दंडद्वारा निर्भिन्न मस्तक, और

तद्धनुर्दानवेसैन्येदुर्गयानमितंबलात् ॥ सुवर्णपुंखंविबभौविद्युदंबुधरेष्विव ॥ ६ ॥ बाणैःसुररिपूनन्यांस्ताडयामाससुव्रत ॥ गदयामुसलेनान्यान्स्व
स्थानेभ्योन्यपातयत् ॥ ७ ॥ एकोप्यसौबहून्दैत्यान्केसरीकालसन्निभः ॥ विधुन्वन्केसरसटानिषूदयतिदानवान् ॥ ८ ॥ कुलिशाभिहतादैत्याःशक्त्या
निर्भिन्नवक्षसः ॥ लांगलैर्दारितग्रीवाद्विधाकृत्ताःपरश्वधैः ॥ ९ ॥ दंडनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः ॥ चेलुःपेतुश्चमत्ताश्चतत्यजुश्चापरेरणम् ॥
॥ १० ॥ तेवध्यमानारुद्रास्यादुर्गयादैत्यदानवाः ॥ कालरात्रिंमन्यमानादुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥ ११ ॥ सेनान्यंभग्नमालोक्यदुर्गामग्रेतथास्थिताम् ॥
दृष्ट्वाजगामनमरोमत्तद्विरदसंस्थितः ॥ १२ ॥ समागम्यचवेगेनदेव्यांशक्तिंमुमोचह ॥ त्रिशूलमपिसिंहायप्राहिणोद्दानवोरणे ॥ १३ ॥ तावायांतौ
ततोदेव्याहुंकारेणाथभस्मसात् ॥ कृतौततोगजेंद्रेणगृहीतोमध्यतोहरिः ॥ १४ ॥ अथोत्पत्यचवेगेनतलेनाहत्यदानवम् ॥ गतासुंकुंजरस्कंधा
त्क्षिप्यदेव्यैनिवेदितः ॥ १५ ॥

चक्रद्वारा छिन्नबन्धनहो कोई विचलित और कोई पतित और कोई संज्ञाहीन होगये; और बहुतेरे संग्रामको त्यागकर भागने लगे ॥ १० ॥ वह रुद्रास्य (भयंकर मुखवाले) दैत्य दानवगण देवीकेद्वारा वध्यमान होकर उसे कालरात्रि विचार कर भयसे पीड़ितहृदय हो शीघ्रतासे इधर उधर भागने लगे ॥ ११ ॥ सेनापतिको संग्राममें पराङ्मुख और देवी कात्यायनी सन्मुख खड़ी हैं यह देखकर नमर दैत्य मतवाले हाथीपर चढ़कर देवीसे लड़नेको चला ॥ १२ ॥ और जातेही इसने शीघ्रतासे देवीके ऊपर शक्ति और सिंहके ऊपर शूलका प्रहार किया ॥ १३ ॥ देवीने उन दोनों अस्त्रोंके आतेही उन्हें टंकार शब्दसे संहारकर भस्मीभूत करदिया, तब ऊपर कहे मतवाले हाथीने सिंहके शरीरके मध्यदेशमें आक्रमण किया ॥ १४ ॥ तब केसरीने शीघ्रतासे कूदकर थप्पडके प्रहारसे दैत्यको प्राणहीन करके कुंजरके

कंधोंको खैंचकर देवीके समीप ला धरा ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! देवी कात्यायनी संग्राममें क्रोधमें भरकर दैत्यको वामहस्तते पकड़कर घुमाती हुई ढोलकी तरह बजाने लगीं ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त देवीने ऐसे बाजे बजनेके समयमें अट्टहास किया, उस अट्टहाससे यथाक्रमसे विविध भूत प्रकट हुए ॥ १७ ॥ उसमें कोई तो व्याघ्रमुख, और कोई वृकाकृति, कोई रौद्रस्वभाव, कोई अश्वमुख, कोई महिषमुख, कोई वराहमुख ॥ १८ ॥ कोई मूषक और कुक्कुटके समान मुखवाले, कोई गौ, छाग और मेषकी समान मुखवाले, किसीके नाना प्रकारके मुख, अक्षि और चरण थे और सभी अनेक प्रकारके अस्त्रों को धारण कियेथे ॥ १९ ॥ कोई गान, कोई हास्य और कोई क्रीड़ा करते हैं, कोई बाजे बजाते और कोई देवी कात्यायनीकी स्तुति कररहे हैं ॥ २० ॥ वह

गृहीत्वादानवंयुद्धेब्रह्मन्कात्यायनीरुषा ॥ सव्येनपाणिनाभ्राम्याऽवादयत्पटहंयथा ॥ १६ ॥ ततोऽट्टहासंमुमुचेतादृशेवाद्यतांगते ॥ हास्यात्समुद्भवं
स्तस्याभूतानानाविधाः क्रमात् ॥ १७ ॥ केचिद्व्याघ्रमुखारौद्रावृकाकारास्तथापरे ॥ हयास्यामहिषास्याश्ववराहवदनाःपरे ॥ १८ ॥ आखुकुक्कुट
वक्त्राश्चगोजाविकमुखास्तथा ॥ नानावक्त्राक्षिचरणानानायुधधरास्तथा ॥ १९ ॥ गायंत्यन्येहसंत्यन्येक्रीडन्त्यन्येतुसंहताः ॥ वादयंत्यपरेतत्रस्तुवंत्यन्ये
तथांबिकाम् ॥ २० ॥ सातैर्भूतगणैर्देवीसार्धंतद्दानवंबलम् ॥ ज्ञातयामासचंक्राम्ययथातृण्यांमहाशनिः ॥ २१ ॥ सेनान्येनिहतेतस्मिंस्तथासेनाग्रगा
मिभिः ॥ चिक्षुरःसैन्यपालस्तुयोधयामासदेवताः ॥ २२ ॥ कार्मुकंदृढमाकर्णमाकृष्यरथिनांवरः ॥ ववर्षशरजालानियथामेघोवसुंधराम् ॥ २३ ॥
तान्दुर्गास्वशरैश्छित्त्वाशरसंघान्सुपर्वभिः ॥ सौवर्णपुंखानपराञ्छराञ्जग्राहषोडश ॥ २४ ॥ ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरंगानपिभामिनी ॥ हत्वासारथिमे
केनध्वजमेकेनचिच्छिदे ॥ २५ ॥ ततस्तुसशरंचापंचिच्छेदैकेषुणांबिका ॥ छिन्नेधनुषिखड्गंचचर्मचादत्तवान्बली ॥ २६ ॥

देवी उन भूतगणोंके साथ रणभूमिमें विचरती हुई वज्र जिसप्रकारसे तृणराशिको नष्ट करता है उसीप्रकारसे दानवोंकी सेनाका नाश करने लगीं ॥ २१ ॥ सेनापतिके मारे जानेपर सेनापति चिक्षुर अन्यान्य सेनाको साथले देवताओंके साथ युद्धमें प्रवृत्तहुआ ॥ २२ ॥ वह रथियोंमें श्रेष्ठ दैत्य दृढ़ शरासनको कानतक खैंचकर मेघ जिस प्रकारसे पृथ्वीपर वर्षा करते हैं उसी प्रकारसे देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २३ ॥ देवी दुर्गाने अपने सुन्दर पर्वयुक्त बाणोंसे उन सबको छेदनकर सुवर्णके फलके लगे दूसरे सोलह बाणोंको ग्रहण किया ॥ २४ ॥ उनमें चार शरोंसे चिक्षुरके चार अश्वोंको निहतकर एक बाणसे सारथीका संहार और दूसरे बाणसे ध्वजाका छेदन किया ॥ २५ ॥ और अन्य बाणोंसे उसके शरसहित धनुषको छेदन करके फेंकदिया, धनुषके छिन्न होनेपर बलवान् चिक्षुरने खड्ग और चर्म (ढाल) को ग्रहण किया ॥ २६ ॥

जैसेही वह बलसे चर्म सहित खड्गको कंपायमान करने लगा कि, वैसेही उसी समय देवी दुर्गाने चार बाणोंका प्रयोगकर उस खड्ग और चर्मको छेदन करदिया तब उसने शूलको ग्रहण किया ॥ २७ ॥ और उस महाशूलको उठाकर सृगाल जिसप्रकार मुदित होकर वनमें मृगराज वधूके प्रति दौड़ताहै, उसीप्रकार शीघ्रतासे देवीके ऊपर दौड़ा ॥ २८ ॥ उस अवस्थामें देवीने क्रोधित होकर पांच बाणोंसे निजसन्मुख धावमान उसके दोनों चरण और दोनों हाथ तथा मस्तकको छेदन करके फेंकदिया, तब वह हत होकर पतित हुआ ॥ २९ ॥ उस सेनापतिके मारेजानेपर महाअसुर उग्रास्य और अन्यान्य भयंकर मुखवाले दानवगण शीघ्रतासे आये ॥ ३० ॥ बाष्कल, उद्धत, उग्रास्य, उग्रधनु, दुर्द्धर, दुर्मुख और बिड़ालाक्ष ॥ ३१ ॥ इन अन्यान्य बलिश्रेष्ठ दानवदलने कात्यायनीके ऊपर विविध प्रकारके

तंखड्गंचर्मणासार्द्धंदैत्यस्याधुन्वतोबलात्॥शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेदततःशूलंसमाददे॥२७॥समुद्यम्यमहाशूलंप्राद्रवत्सतथांबिकाम्॥क्रोष्टुकोमुदितोरण्येमृगराजवधूंयथा ॥ २८ ॥ तस्याभिपततःपादौकरौशीर्षंचपंचभिः ॥ शरैश्चिच्छेदसंक्रुद्धान्यपतत्सहतोऽसुरः॥२९॥ तस्मिन्सेनापतौक्षुण्णेतदोग्रास्योमहासुरः ॥ समाद्रवतवेगेनकरालास्यास्तुदानवाः ॥ ३० ॥ बाष्कलश्चोद्धतश्चैवउग्रास्योऽथोग्रकार्मुकः ॥ दुर्द्धरोदुर्मुखश्चैवबिडालनयनोऽपरः ॥ ३१ ॥ एतेऽन्येचमहात्मानोदानवाबलिनांवराः ॥ कात्यायनीमाद्रवंतनानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ३२ ॥ तान्दृष्ट्वालीलयादुर्गावीणांजग्राहपाणिना ॥ वादयामासहसतीतथाडमरुकंवरम् ॥ ३३ ॥ यथायथावादयतेदेवीवाद्यानितानिच ॥ तथातथाभूतगणानृत्यंतिचहसंतिच ॥ ३४ ॥ ततोऽसुराःशस्त्रधराःसमभ्येत्यसरस्वतीम् ॥ अभ्यघ्नंस्तांश्चसादेवीजग्राहपरमेश्वरी ॥ ३५ ॥ प्रगृह्यकेशेषुमहासुरांस्तानुत्पत्यसिंहात्तुनगस्यसानुम् ॥ ननर्त्तवीणांपरिवादयंतीपपौचपानंजगतांजनित्री ॥ ३६ ॥ ततस्तुदेव्याबलिनोमहासुरादोर्दंडनिर्धूतविशीर्णदर्पाः ॥ विशस्त्रवस्त्राव्यसवश्चजातास्ततस्तुतान्वीक्ष्यमहासुरेंद्रान् ॥ ३७ ॥ देव्यामहौजामहिषासुरस्तुव्यद्रावयद्भूतगणान्खुराग्रैः ॥ तुंडेनपुच्छेनतथौजसान्यान्निःश्वासवातेनचभूतसंघान् ॥ ३८ ॥

शस्त्र और अस्त्रोंको लेकर आक्रमण किया ॥ ३२ ॥ दुर्गादेवी उनको देखकर लीलासे वीणा और श्रेष्ठ डमरूको लेकर हास्यकरती हुई बजाने लगीं ॥ ३३ ॥ देवीजी जिस २ प्रकारसे इन सब बाजोंको बजाने लगीं भूतगणोंनेभी उसी २ प्रकारसे हास्य और नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त असुरगण सन्मुख होकर उनके ऊपर आघात करने लगे, तब उन परमेश्वरीनेभी उनके ऊपर आक्रमण किया ॥ ३५ ॥ जगज्जननी दुर्गाजीने इसप्रकार सब महाअसुरोंके केश ग्रहण करके सिंह परसे पर्वतपर उतर नृत्य गान और वीणा बजाती पान करने लगीं ॥ ३६ ॥ वह महाबलवान् असुर उनके बाहुदंडसे कंपित और विगलितदर्प होकर शस्त्रहीन, वस्त्रहीन और प्राणहीन होगया महा असुरेन्द्रकी यह अवस्था देखकर ॥ ३७ ॥ महिषासुर देवीके भूतगणोंको, किसीको तो खुराग्रके प्रहारसे, और शेष भूतोंको तुंडद्वारा, पूँछसे, बलद्वारा और

अपने श्वासकी वायुसे विद्रावित करने लगा ॥ ३८ ॥ और किसीको शृङ्गाग्रभागके द्वारा मथित करकै सिंहके संहारकरनेकी इच्छासे शीघ्रतासे धावमान हुआ, यह देख कर अम्बिकाने क्रोधके वशीभूत हो उसी समय लीला करती हुईं उसे उठाकर फेंक दिया ॥ ३९ ॥ तब दैत्य अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने तीक्ष्ण शृङ्गोंसे पर्वत और पृथ्वीको विदीर्ण कर सम्पूर्ण सागरोंको क्षोभित और सब मेघोंको छिन्न करके देवी के प्रति धावमान हुआ ॥ ४० ॥ तब देवीने उस दुष्टको पाशसे बांधा तो उसने मदस्रावी हस्तीकी मूर्ति धारण की फिर देवीने उसका शूंड छेदन कर दिया, तब उसने पुनर्वार स्वमूर्ति (महिषरूप) ग्रहण की ॥ ४१ ॥ तब भवानीने उसके ऊपर शूलका प्रहार किया, वह जड़ कटेहुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिरा, हे महर्षे ! देवीने यह देखकर अग्निज्वालामुखी शक्ति छोडी, उसनेभी कुंठिताग्र होकर पृथ्वीका

विषाणकोट्याचपरान्प्रमथ्यदुद्रावसिंहंप्रतिहंतुकामः ॥ ततोंबिकाक्रोधवशंजगामचिक्षेपदैत्यंसहसैवलीलया ॥ ३९ ॥ ततःसकोपादथतीक्ष्णशृंगःक्षिप्रं
गिरीन्भूमिमशीर्णयच्च ॥ संक्षोभयंस्तोयनिधीन्घनांश्चविध्वंसयन्प्राद्रवताथदुर्गाम् ॥ ४० ॥ साचाथपाशेनबबंधदुष्टंसचाप्यभूद्भिन्नकटःकरींद्रः ॥ करंप्र
चिच्छेदचहस्तिनोग्रंसचापिभूयोमहिषोऽभिजातः ॥ ४१ ॥ ततोऽस्यशूलंव्यसृजद्भवानीसशीर्णमूलोन्यपतत्पृथिव्याम् ॥ शक्तिंप्रचिक्षेपहुताशवक्त्रांसाकुं
ठिताग्रान्यपतन्महर्षे ॥ ४२ ॥ चक्रंहरेर्दानवचक्रहंतुःक्षिप्रंचवक्रत्वमुपागतंहि ॥ गदांसमाविध्यधनेश्वरस्याक्षिप्ताशुभग्नान्यपतत्पृथिव्याम् ॥ ४३ ॥
जलेशपाशोऽपिमहासुरेणविषाणतुंडाग्रखुरप्रणुन्नः ॥ निरस्यताकोपितयाचमुक्तोदंडस्तुयाम्योबहुखंडतांगतः ॥ ४४ ॥ वज्रंसुरेंद्रस्यचविग्रहेस्यमुक्तं
सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम ॥ संत्यज्यसिंहंमहिषासुरस्यदुर्गाधिरूढासहसैवपृष्ठम् ॥ ४५ ॥ पृष्ठस्थितायांमहिषासुरोऽपिपोप्लूयतेवीर्यमदान्मृडान्याम् ॥ साचा
पिपद्भ्यांमृदुकोमलाभ्यांममर्दतंक्लिन्नमिवाजिनंहि ॥ ४६ ॥

आश्रय लिया ॥ ४२॥ इसके उपरान्त देवीने दानवचक्रहन्ता हरिके चक्रका शीघ्र ही प्रयोग किया वहभी टेढ़ा होगया, तब देवीने धनेश्वरकी गदा घुमाकर उसके ऊपर फैंकी वह भी टूटकर पृथ्वीपर गिरपडी ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त महिषने विषाणतुंडाग्र और खुरके प्रहारके साथ देवीकी भेजी हुई वारुणपाशको शीघ्रही दोनों खुरोंसे छिन्न भिन्न कर दूर फेंक दिया, तब देवीने क्रोधित होकर यमदंड चलाया, सो वहभी महिषासुरके प्रहारसे खंड २ होगया ॥ ४४ ॥ सुरेन्द्रका वज्र उसके शरीरमें लगतेही अत्यन्त सूक्ष्म भावयुक्त हुआ, तब दुर्गा देवी सिंहको छोडकर उसी समय महिषासुरकी पीठपर चढी ॥ ४५ ॥ उनके पीठपर चढतेही महिषासुर वीर्यके मदसे वारम्वार उछलने लगा तब उन्होंने अत्यन्त कोमल चरणोंके आघातसे छिन्न अजिन (चर्म) की समान उसको मर्दित करना प्रारंभ किंया ॥ ४६ ॥

तब वह पर्वतकी समान देहवाला महिष देवीके द्वारा मृद्यमान होनेसे बलहीन होगया, तब देवीने शूलसे उसे विदारित किया, तो उसमेंसे खड्गधारी पुरुष निकला ॥४७॥ उसके निकलतेही देवीने उसके हृदयमें आघातकर क्रोधमें भरकर उसके बालोंको पकडकर खड्गसे उसके मस्तकको काटकर फेंकदिया, यह देखकर सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना हाहाकार करने लगी ॥ ४८ ॥ तब चंड, मुंड, मय, तार, और असिलोमा सहित दानवगणोंने भवानीके प्रमथगणोंसे ताडित हो भयसे कातरहो पातालमें प्रवेश किया ॥ ४९ ॥ हे महर्षे ! देवतालोग देवीकी जय देखकर उन नारायणी, विश्व संसारकी स्थितिविधायिनी, विकटवदनशालिनी परम सौन्दर्यशोभिनी कात्यायनी देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥ सुर और सिद्ध गणोंके द्वारा स्तुति की जाकर वह देवताओंसे बोली कि, मैं अमरगणोंके कार्यसाधनार्थ

समृद्यमानोधरणीधराभोदेव्याबलीहीनबलोबभूव ॥ ततोऽस्यशूलेनबिभेदकंठंतस्मात्पुमान्खड्गधरोविनिर्गतः ॥ ४७ ॥ निष्क्रांतमात्रंहृदयेयदातमाहत्यसंगृह्यकचेषुकोपात् ॥ शिरःप्रचिच्छेदवरासिनास्यहाहाकृतंदैत्यबलंतदाभूत् ॥ ४८ ॥ सचंडमुंडाःसमयाःसताराःसहासिलोम्नाभयकातराक्षाः ॥ संताड्यमानाःप्रमथैर्भवान्याःपातालमेवाविविशुर्भयार्ताः ॥ ४९ ॥ देव्याजयंदेवगणाविलोक्यस्तुवंतिदेवींस्तुतिभिर्महर्षे ॥ नारायणींसर्वजगत्प्रतिष्ठां कात्यायनींघोरमुखींसुरूपाम् ॥ ५० ॥ संस्तूयमानासुरसिद्धसंघैःकात्यायनीसाहरपादमूले ॥ भूयोभविष्याम्यमरार्थमेवमुक्त्वासुरांस्तान्प्रविवेशदुर्गा ॥ ५१ ॥ इति श्रीवामनपुराणेदेवीमाहात्म्येमहिषासुरवधोनामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ नारद उवाच ॥ पुलस्त्यकथ्यतांतावद्भूयोदेव्याः समुद्भवः ॥ महत्कौतूहलंमेऽद्यविस्तराद्ब्रह्मवित्तम ॥ १ ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ॥ श्रूयतांकथयिष्यामिभूयोस्याःसंभवंमुने ॥ शुंभासुरवधार्थाय लोकानांहितकाम्यया ॥ २ ॥ यासाहिमवतःपुत्रीभवेनोढातपोधन ॥ उमानाम्नाचतस्याःसाकोशाज्जातातुकौशिकी ॥ ३ ॥ संभूयविंध्यंगत्वाचभूयो भूतगणैर्वृता ॥ शुंभंचैव निशुंभंचवधिष्यतिवरायुधैः ॥ ४ ॥

पुनर्वार अवतार लूंगी, यह कहकर महेश्वरके चरणोंमें प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां महिषासुरवधो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारदजी बोले कि, हे ब्रह्मवित्तम ! आप देवीके पुनर्वारके अवतारको विस्तारसहित वर्णन कीजिये, इसके सुननेके लिये मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे मुने ! मैं देवीके पुनः अवतारको वर्णन करताहूं श्रवण करो. वह शुम्भासुरके संहार करने और लोकोंके मंगल करनेकी इच्छासे पुनर्वार उत्पन्न हुईथीं ॥ २ ॥ हे तपोधन ! महेश्वरने जिन्हें स्त्रीरूपसे वरण किया सो उन्ही हिमालयनंदिनी उमाके शरीररूपी कोश (पिधान) से उन्होंने जन्म ग्रहण किया, इसीकारणसे उनका नाम कौशिकी हुआहै ॥ ३ ॥ उन्होंने प्रगट होकर पुनर्वार भूतगणोंसे वेष्टित हो विन्ध्याचलपर जाय श्रेष्ठ अस्त्रोंके प्रहारसे शुंभ और

निशुंभका संहार किया ॥ ४ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! आपने कहा था कि, उस दक्षदुहिता सतीने अपने प्राणोंको त्यागकर हिमालयकी पुत्री होकर जन्म लिया,
सो मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ जिसप्रकारसे कौशिकीने उस पार्वतीके देहरूपी कोशसे प्रगट होकर शुंभ और निशुंभ दोनोंका संहार कियाथा सोभी आप कहिये ॥ ६ ॥
यह दोनों वीर किसके पुत्र कहकर विख्यात थे, सो मेरे निकट यह सम्पूर्ण वृत्तान्त यथावत् वर्णन कीजिये ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! आपके प्रसादसे परमपवित्र श्रेष्ठ
चारित्र श्रीदुर्गाजीका विस्तार सहित सुना, अब पार्वतीके जन्मका वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥८॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे मुने ! यह अत्यन्त भाग्यका विषयहै जो
पार्वतीके जन्मका वृत्तान्त वर्णन करूंगा, तुम सावधान होकर शाश्वती (प्रत्येककल्पमें होनेवाली पुरातनी) स्कन्दोत्पत्तिको श्रवण करो ॥९॥ सतीके देह त्यागन करनेपर

नारदउवाच ॥ब्रह्मंस्त्वयाममाख्यातामृतादक्षात्मजासती ॥ संजाताहिमवत्पुत्रीत्येवंमेवक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ यथाहिपार्वतीकोशात्समुद्भूताहिकौशिकी ॥
यथाहतवतीशुंभंनिशुंभंचमहासुरम् ॥ ६ ॥ कस्यचेमौसुतौवीरौख्यातौशुंभनिशुंभकौ ॥ एतन्मेतत्त्वतःसर्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ७ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादे
नदेव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ श्रुतंविस्तरतोब्रूहिपार्वत्याःसंभवंमुने ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ दिष्ट्यासंकथयिष्यामिपार्वत्याःसंभवंमुने ॥ शृणुष्वावहितो
भूत्वास्कंदोत्पत्तिंचशाश्वतीम् ॥ ९ ॥ रुद्रःसत्यांप्रनष्टायांब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ॥ निराश्रमत्वमापन्नस्तपस्तप्तुंव्यवास्थितः ॥ १० ॥ सचासीद्देवसेनानीर्दै
त्यदर्प्पविनाशनः ॥ शिवरूपत्वमास्थायसैनापत्यंसमुत्सृजत् ॥ ११ ॥ ततोविनाकृतादेवाःसेनानाथेनशंभुना ॥ दानवेन्द्रेणविक्रम्यनिशुंभेनपराजिताः ॥
॥ १२ ॥ ततोजग्मुःसुरेशानंद्रष्टुंचक्रगदाधरम् ॥ श्वेतद्वीपेमहाहंसंप्रपन्नाःशरणंहरिम् ॥ १३ ॥ तानागतान्सुरान्दृष्ट्वाततःशक्रपुरोगमान् ॥ विहस्यमे
घगंभीरंप्रोवाचपुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥ किंजिताःस्थसुरेंद्रेणनिशुंभेनदुरात्मना ॥ येनसर्वेसमेत्यैवममपार्श्वमुपागताः ॥ १५ ॥ तद्युष्माकंहितार्थाययद्वदामि
सुरोत्तमाः ॥ तत्कुरुध्वंजयोयद्धिसमाश्रित्यभवेत्ततः ॥१६॥ यएतेपितरोदेवास्त्वग्निष्वात्तेतिविश्रुताः॥ अमीषांमानसीकन्यामेनानाम्नास्तिदेवता ॥१७॥

रुद्रने ब्रह्मचारिव्रतका आश्रय और निराश्रयत्वका अवलम्बन कर तप करनेका संकल्पकिया॥ १०॥ तब जो स्कन्दजी देवताओंमें दैत्यदर्पविनाशी सेनापति थे, इस समय उन
स्कंदने शिवस्वरूपत्वका आश्रयकर सेनापतित्वको त्याग किया ॥ ११॥ देवताओंके सेनापति स्कन्दसे परित्यक्त होनेसे दानवेन्द्र शुंभने विक्रम प्रकाशकर वारम्वार उनको पराजय
किया॥ १२॥ तब देवताओंने चक्र गदाधर सुरेश्वर हरिके दर्शनकी इच्छासे श्वेतद्वीपमें जाकर उनकी शरणली ॥ १३ ॥ पुरुषोत्तम हरि शक्रप्रमुख देवताओंको
आते हुए देखकर मुस्कुराते हुए मेघगंभीर वाणीसे कहने लगे ॥ १४॥ क्या दुरात्मा दैत्येन्द्र निशुंभने तुम्हें पराजित कियाहै इसी कारणसे सब एकत्रित होकर मेरे पास
आयेहो ॥ १५ ॥ इसकारण हे सब सुरोत्तमो ! आपके निमित्त जो कहताहूं सो करो ऐसा होनेसे तुम्हें जय प्राप्त होगी ॥ १६ ॥ हेदेवताओ ! अग्निष्वात्तादि नामसे जो

पितृगण विख्यात हैं उनकी मैना नामकी एक मानसी (मनेक संकल्प मात्रसे उत्पन्ना) कन्या है॥ १७॥वह महातिथिमें बड़ीश्रद्धासे भगवतीकी आराधनाकर हिमालयकी पुत्रिकोत्पत्तिरूप मह (उत्सव) के अर्थ उस सती पतिव्रताकी प्रार्थना करैं ॥ १८ ॥ फिर जब ऐसा होगा तो जिसने दक्षके प्रति क्रोधके वशीभूतहो अपने प्यारे जीवनको मलकी समान त्याग कियाहै, वह रूपशालिनी तपस्विनी सती इसके गर्भमें उत्पन्न होगी ॥ १९ ॥ और शंकरके तेजसे जिस पुत्रको उत्पन्न करैगी वही सपरिवार दैत्येन्द्र शुंभका संहार करेगा ॥ २० ॥ इसकारण आप महाफलके देनेवाले परमपवित्र कुरुक्षेत्रमें जाकर वहां पृथूदक नामक तीर्थ अविनाशी स्वरूप पितृगणोंकी उपासना करिये ॥ २१ ॥ यदि भवात्मजकी सहायतासे शत्रुके नाश करनेकी इच्छाहै तो उस महापुण्यतीर्थमें इसप्रकारका अनुष्ठान कीजिये ॥ २२ ॥

तामाराध्यमहातिथ्यांश्रद्धयापरयामराः ॥ प्रार्थयध्वंसतीमेनांप्रालेयाद्रिमहार्थतः ॥ १८ ॥ तस्यांसारूपसंयुक्ताभविष्यतितपस्विनी ॥ दक्षकोपाद्ययामुक्तंमलवज्जीवितंप्रियम् ॥ १९ ॥ साशंकरात्सतेजोंशंजनयिष्यतियंसुतम् ॥ सहनिष्यतिदैत्येंद्रंशुंभंचसपदानुगम् ॥ २० ॥ तस्माद्गच्छतपुण्यंतत्कुरुक्षेत्रंमहाफलम् ॥ तत्रपृथूदकेतीर्थेपूज्यन्तांपितरोव्ययाः ॥ २१ ॥ महातिथ्यांमहापुण्येयदिशत्रुपराभवम् ॥ भवनाथात्मनासर्वेइच्छथक्रियतामिति ॥ २२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्युक्त्वावासुदेवेनदेवाःशक्रपुरोगमाः॥ कृतांजलिपुटाभूत्वापप्रच्छुःपरमेश्वरम् ॥ २३ ॥ देवाऊचुः ॥ किंतत्कुरुक्षेत्रमितियत्रपुण्यंपृथूदकम् ॥ उद्भवंतस्यतीर्थस्यभगवान्प्रब्रवीतुनः ॥ २४ ॥ केयंप्रोक्तामहापुण्यातिथीनामुत्तमातिथिः ॥ यस्यांहिपितरोदिव्याअद्भिःपूज्याःप्रयत्नतः ॥ २५ ॥ ततःसुराणांवचनान्मुरारिःकैटभार्दनः ॥ कुरुक्षेत्रोद्भवंपुण्यंप्रोक्तवांस्तांतिथीमपि ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सोमवंशोद्भवोराजाऋक्षोनाममहाबलः ॥ कृतस्यादौसमभवदृक्षात्संवरणोभवत् ॥ २७ ॥ सचपित्रानिजेराज्येबालएवाभिषेचितः ॥ बाल्येपिधर्मनिरतोमद्भक्तश्चसदाभवत् ॥२८॥

पुलस्त्यजी बोले कि, इसप्रकार इन्द्रादि देवता वासुदेवसे कहे जाकर हाथजोड़ उन परमेश्वरसे पूँछने लगे ॥ २३ ॥ कि, वह कुरुक्षेत्र किसप्रकारकाहै कि, जिसमें पुण्यतीर्थ पृथूदक प्रतिष्ठित है. हेभगवन् ! उस तीर्थका आविर्भाव वृत्तान्त विशेषतासे वर्णन कीजिये ॥ २४ ॥ तिथियोंके बीचमें उत्तम वह महापुण्यवाली तिथि कौनसीहै जिसमें दिव्यस्वरूप पितृगणोंको यत्नके साथ जलदान करकै पूजा करनी होती है ॥ २५ ॥ कैटभसूदन मुरारि उनके वचनोंसे प्रेरितहो कुरुक्षेत्रको उद्भव वृत्तान्तके साथ उस पवित्र महातिथिका विषय वर्णन करने लगे ॥ २६ ॥ सत्ययुगकी आदिमें चंद्रवंशमें ऋक्षनामवाले महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए, फिर ऋक्षसे सम्वरणनामक पुत्रका जन्म हुआ ॥ २७ ॥ पिताने बाल्यावस्थामेंही इन्हें राज्यपर अभिषिक्त किया । वह उस बाल्यावस्थामेंही धर्ममें रत और हमारे

सदैव भक्त होगये ॥२८॥ वरुणपुत्र वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए, वह उदारबुद्धि वसिष्ठजी उनको सम्पूर्ण साङ्गवेद पढ़ाने लगे ॥२९॥ इसके उपरान्त अनध्यायके दिन
वह राजनंदन तपोनिधि वसिष्ठजीके हाथमें सम्पूर्ण कार्यभार छोड़कर वनको चलेगये ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त वह मृगके वधकरनेकी इच्छासे इकलेही घोड़ेपर
चढ़ मनकी उन्मादताके वशहो वैभ्राजनामक वनमें पहुँचे ॥ ३१ ॥ इस वनमें सब ऋतुओंके फूल खिलेहुयेथे, वहभी इसकी सुगंधिसे किसी प्रकारभी तृप्तिको
न पाकर कौतुक युक्त चित्तसे इधर उधर विचरण करने लगे ॥ ३२ ॥ उन्होंने देखा कि, यह वनान्त फूलेहुए रक्तकमलोंसे पूर्ण है, और कह्लार, पद्म, कुमुद, कमल
और नीलकमलोंसे युक्तहै ॥ ३३ ॥ यहां अमरकन्याएँ तथा अप्सरागण सर्वदा क्रीड़ा करतीहैं, उनके बीचमें उन सबकी अपेक्षा सौन्दर्यादिगुणशालिनी कन्याको
देखा ॥ ३४ ॥ उसे देखतेही यह कामबाणसे पीड़ित होगये, और वह कन्याभी उनको देखकर मदनके बाणोंसे व्याकुल हुई ॥ ३५ ॥ इसप्रकार दोनोंही काम
बाणसे पीड़ितहो मोहके वश होगये, इनमेंसे राजाने आसनसे भ्रष्टहो घोड़ेपरसे उतरकर पृथ्वीका आश्रय लिया ॥ ३६ ॥ यह देखकर कामरूपी (यथेच्छ रूप धारण
करनेवाले) महात्मा गंधर्वोंने वहां आकर उनके ऊपर जल छिड़का, तब क्षणकालमें ही उनको चैतन्यता प्राप्त होगई ॥ ३७ ॥ तब अप्सरायें उस बालाको बलपूर्वक
उठाकर वहांसे अपने पितृकुलको ले गई, और मधुर वचनोंसे उसे प्रसन्न करने लगीं ॥ ३८ ॥ इस ओर नरपति संवरण कामचारी अमर जिसप्रकारसे मेरुके शिखरपर
चढ़ते हैं, उसीप्रकार यह घोड़ेपर चढ़कर प्रतिष्ठापुरमें आये ॥ ३९ ॥ जिस समयसे उसने उस पर्वतपर तपती नामक उस कन्याको देखा था उस समयसे न दिनमें भोजन

पुरोहितस्तुतस्यासीद्वासिष्ठोवरुणात्मजः ॥ सतमध्यापयामाससांगान्वेदानुदारधीः ॥ २९ ॥ ततोजगामचारण्येत्वनध्यायेनृपात्मजः ॥ सर्वकर्मसुनिः
क्षिप्यवसिष्ठंतपसांनिधिम् ॥ ३० ॥ ततोमृगस्यव्याक्षेपादेकाकीवाजिनावनम् ॥ वैभ्राजंसजगामाथमनोन्मादेनतन्मुने ॥ ३१ ॥ ततस्तुकौतुकाविष्टःसर्वर्तु
कुसुमेवने ॥ अवितृप्तःसुगंधस्यसमंताद्व्यचरद्वनम् ॥ ३२ ॥ सवनांतंददर्शाथफुल्लकोकनदावृतम् ॥ कह्लारपद्मकुमुदैःकमलेंदीवरैरपि ॥ ३३ ॥
तत्रक्रीडंतिसततमप्सरोमरकन्यकाः ॥ तासांमध्येददर्शाथकन्यांसंवरणोधिकाम् ॥ ३४ ॥ दर्शनादेवसनृपःकाममार्गणपीडितः ॥ तथासातंसमीक्ष्यै
वकामबाणातुराभवत् ॥ ३५ ॥ उभौतौपीडितौमोहंजग्मतुःकाममार्गणैः ॥ राजाचलासनोभूम्यांनिपपाततुरंगमात् ॥ ३६ ॥ तमभ्येत्यमहात्मानोगंधर्वाः
कामरूपिणः ॥ सिषिचुर्वारिणातेनलब्धसंज्ञोऽभवत्क्षणात् ॥ ३७ ॥ साचाप्सरोभिरुत्पाट्यनीतापितृकुलंनिजम् ॥ ताभिराश्वासिताचापिमधुरैर्वचनांबु
भिः ॥ ३८ ॥ सचाप्यारुह्यतुरगंप्रातिष्ठानंपुरोत्तमम् ॥ गतस्तुमेरुशिखरंकामचारीयथाऽमरः ॥ ३९ ॥ यदाप्रभृतिसादृष्टाचक्षुषातपतीगिरौ ॥ तदाप्रभृति
नाश्नातिदिवास्वपितिवानिशि ॥ ४० ॥

करता और न रात्रिमें सोता था ॥ ४० ॥ सर्वविज्ञ तपोनिधि वसिष्ठजी स्वस्थचित्त होकर उस वीरको तपतीसे तापित जानकर ॥ ४१ ॥ तब वह महायोगी गगन
मंडलमें कूदकर रविमंडलमें महायोग बलसे प्रवेशकर रथमें स्थित भगवान् भास्करका दर्शन करते हुए ॥ ४२ ॥ द्विजसत्तमने दिवाकरको देखकर प्रणाम किया उन
भास्करनेभी उनके प्रति प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ तेजविशेषमें प्रकाशमान जटासमूहवाले श्रीमान् वरुणपुत्र वसिष्ठजी दिवाकरके निकट पहुँच दूसरे दिवाकर (सूर्य)
के समान शोभित होने लगे ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त सूर्य भगवान्ने अर्घ इत्यादिसे विशेष पूजाकर आनेका कारण पूँछा; तब तपोनिधि वारुणिने उत्तर दिया ॥ ४५॥
कि, हे देवेश ! हे महाद्युते ! संवरणके निमित्त आपकी पुत्री तपतीकी अभिलाषासे आपके निकट आया हूं, सो आपको देनी होगी ॥ ४६ ॥ तब सूर्य भगवान्ने

ततःसर्वविदव्यग्रोविदित्वावरुणात्मजः ॥ तपतीतापितंवीरंपार्थिवंतपसांनिधिः ॥ ४१ ॥ समुत्पत्यमहायोगीगगनंरविमंडलम् ॥ विवेशदेवंतिग्मांशुंददर्श
स्यंदनेस्थितम् ॥ ४२ ॥ तंदृष्ट्वाभास्करंदेवंननामद्विजसत्तमः ॥ प्रतिप्रणमितश्चासौभास्करेणाप्यसावृषिः ॥ ४३ ॥ ज्वलज्जटाकलापोसौदिवाकरसमी
पगः ॥ शोभतेवारुणिःश्रीमान्द्वितीयइवभास्करः ॥ ४४ ॥ ततःसंपूजितोऽर्घाद्यैर्भास्करेणतपोधनः ॥ पृष्टश्चागमनेहेतुंप्रत्युवाचदिवाकरम् ॥ ४५ ॥ समा
यातोऽस्मिदेवेशयाचितुंत्वांमहाद्युते ॥ सुतांसंवरणस्यार्थे त्वंचतांदातुमर्हसि ॥४६॥ ततोवसिष्ठायदिवाकरेणनिवेदितासातपतीतनूजा ॥गृहागतायद्विजपुं
गवायराज्ञोऽर्थतःसंवरणस्यचैव ॥ ४७ ॥ सावित्रमासाद्यवचोवसिष्ठःस्वमाश्रमंपुण्यमुपाजगाम ॥साचापिसंस्मृत्यनृपात्मजंतंकृतांजलिर्वारुणिमाहदेवी ॥
॥४८॥ तपत्युवाच ॥ ब्रह्मन्मयाखेदमुपेत्ययोहिसहाप्सरोभिःपरिचारिकाभिः ॥ दृष्टोह्यरण्येऽमरगर्भतुल्योनृपात्मजोलक्षणतोपिजाने ॥ ४९ ॥ पादौ
शुभौचक्रगदासिचिह्नौजंघेतथोरूकरिहस्ततुल्यौ ॥ कटिर्यथाकेसरिणस्तथैवक्षामंचमध्यंत्रिवलीनिबद्धम् ॥ ५० ॥ ग्रीवास्यशंखाकृतिमादधातिभुजौ
चपीनौकठिनौसुदीर्घौ ॥ हस्तौतथापद्मदलोद्भवांकौछत्राकृतिस्तस्यशिरोविभाति ॥ ५१ ॥

संवरणके राजाके निमित्त घरपर आये हुए द्विजसत्तम वसिष्ठजीको अपनी पुत्री तपतीको देदिया ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त वसिष्ठजी सूर्यके कहेहुए वचनोंको ग्रहण
कर अपने आश्रममें आये कि, इसी समयमें देवी तपतीभी नृपनंदन सम्वरणको स्मरण कर वसिष्ठजीसे बोली ॥ ४८ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! परिचारिका अप्सराओंके साथ
वनमें जिस देवपुत्रतुल्य राजाके पुत्रको देखकर खिन्नहृदय होगई थीं उसके सम्पूर्ण लक्षण मुझे विदित हैं ॥ ४९ ॥ उसके दोनों चरण अत्यन्त सुन्दर और खड्ग
चक्र, गदा, शंख, चिह्नसे लाञ्छित हैं, उसकी जंघा और दोनों ऊरू हाथीकी सूंडके समान हैं, उसकी कमर सिंहकी सदृश है, मध्यदेश कृश
और त्रिवलीकी तरंगसे शोभायमान हैं ॥ ५० ॥ उसकी ग्रीवा शंखके समान और दोनों भुजा लम्बी कठिन और पुष्ट हैं, उसके हस्त कमलदलसे अंकित और मस्तक

छत्रकी समान अत्यन्त शोभायमान है ॥५१॥ उसके केशकलाप कुटिल और नील वर्णयुक्त हैं, कान समांस, और नासिका सुसम (उन्नत बराबर) है उसके पैर और हाथोंकी अंगुलियें दीर्घ, सुन्दर और पर्व (सुन्दरग्रंथि) युक्त हैं, दांतोंकी पंक्ति शुभ्र (शुक्ल) है ॥ ५२ ॥ वह राजकुमार कच्छ (काँख) कुक्षि (कोख) वक्षः (छाती) नासिका, स्कन्ध, ललाट, इन छः स्थानोंमें उन्नत हैं और उदार वीर्य युक्त हैं. स्वर, गंति, नाभि इन तीनोंमें गंभीर हैं, भौंह अंडकोश, बाहु इन तीन स्थानोंमें प्रलम्ब हैं, नेत्रान्त, नख, पाणि, अंघ्रि, (पाद) तल इन सात स्थानों में रक्त हैं, केश, नेत्रकी पुतली भौंह इन चारमें श्यामवर्ण हैं, और पादतलमध्य पादरेखा, चूचुक, इनमें आनत (निमग्न) हैं ॥ ५३ ॥ मातृकुल पितृकुल दोसे शुक्ल (शुद्ध) हैं. क्षमा, दया, सत्य, धर्म इन चारमें सुगंधित हैं. मुख, नेत्र, आस्य

नीलाश्चकेशाःकुटिलाश्चतस्यकर्णौसमांसौसुसमाचनासा ॥ दीर्घाश्चतस्यांगुलयःसुपर्वाःपद्भ्यांकराभ्यांदशनाश्चशुभ्राः ॥ ५२ ॥ समुन्नतःषड्भिरुदारवी
र्यस्त्रिभिर्गंभीरस्त्रिषुचप्रलंबः ॥ रक्तस्तथासप्तसुराजपुत्रःकृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिरानतोपि ॥ ५३ ॥ द्वाभ्यांचशुक्लःसुरभिश्चतुर्भिःसंत्येवपद्मानिदशैवचास्य ॥
वृतःसभर्त्ताभगवन्हिपूर्वंतंराजपुत्रंपरमंविचिंत्य ॥ ५४ ॥ ददस्वमांनाथतपस्विमुख्यगुणोपपन्नायसमीहिताय ॥ स्नेहात्प्रकामंप्रवदंतिसंतोदातुंतथां
ऽन्यस्यविभोक्षमस्त्वम् ॥५५॥ देवदेवउवाच ॥ इत्येवमुक्तःसवितुश्चपुत्र्याऋषिस्तदाध्यानपरोबभूव ॥ जानेतमेवर्क्षसुतंसकामंमुदायुतोवाक्यमिदंजगाद ॥
॥ ५६ ॥ सएवपुत्रिक्षितिपात्मजस्त्वयादृष्टःपुराकामयसेयमद्य ॥ सएषचायातिममाश्रमंवैऋक्षात्मजःसंवरणोहिनाम्ना ॥ ५७ ॥ अथाजगामैवनृपस्यपु
त्रस्तदाश्रमंब्राह्मणपुंगवस्य ॥ दृष्ट्वावसिष्ठंप्रणिपत्यमूर्ध्नास्थितांत्वपश्यत्तपतींनरेंद्रः ॥ ५८ ॥

(ओष्ठमध्य) जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, कर, पाद यह दश जिनके पद्मकमलके समान हैं. हे भगवन् ! मैंने उस राजपुत्रको सबसे श्रेष्ठ विचारकर मनमें अग्निके सन्मुख भर्तारूपसे वरण किया है ॥ ५४ ॥ हे नाथ ! हे तपस्विमुख्य ! वह सर्व गुणसम्पन्न सुराजनंदनही मेरा अभिलषित वर है, इसकारण उसके हाथमें मुझे प्रदान कीजिये. हे विभो ! आप अन्य पात्रकोभी मुझे अर्पण करसकते हो, परन्तु तथापि साधुओंने कहा है कि, जिसके प्रति जिसका अनुराग है उससेही उसका काम पर्यवसित होता है, इसकारण उन्हींको प्रदान कीजिये ॥ ५५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, भास्करनंदिनी तपतीके ऐसा कहनेपर महर्षि वसिष्ठजी चिन्ता करनेलगे कि, वह राजा सम्वरण जो इसके प्रति कामनापरतंत्र हुआ है सो वह मैं जानता हूं, ऐसी चिन्ता करनेके उपरान्त यह वचन बोले ॥ ५६ ॥ कि, हे पुत्रि ! तुमने आज जिसकी अभिलाषा की है पहले तुमने उसीको देखाथा, सम्वरण नामसे प्रसिद्ध ऋक्षनंदन हमारे आश्रममें आता है ॥ ५७ ॥ यह कहतेहीथे कि, इतनेमेंही राजपुत्र सम्वरण

ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके आश्रममें आपहुँचे,आकर वसिष्ठजीको देख मस्तक झुकाय प्रणामकर वहां स्थित तपतीको देखनेलगे ॥ ५८ ॥ उस कमलके समान विशाल
नेत्रवाली कन्याको देखकर यह विचारा कि, मैंने इसे पहले देखाथा, इसप्रकारकी चिन्ता करनेके उपरान्त फिर महर्षिसे पूछा कि, हे द्विजेन्द्र ! यह ललना कौन है ?
वसिष्ठजी उन राजासे बोले ॥ ५९ ॥ कि, हे नरेन्द्र ! यह भानुमान्की पुत्री तपती नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध है. मैंने तुम्हारे निमित्त भगवान् सूर्यदेवसे प्रार्थना की थी,
उन्होंनेही उसको दिया है, इसीकारणसे यह आश्रममें लाईगई है ॥ ६० ॥ इस कारण हे नरेन्द्र ! सावधानहो विधानपूर्वक देवी तपतीका पाणिग्रहण करो. वसिष्ठजीके
ऐसे वचन सुनकर राजा सम्वरणने विधिविधानसे तपतीका पाणिग्रहण किया ॥ ६१ ॥ वह सूर्यकी पुत्री तपती उन इन्द्रके समान प्रभाववाले मनोभिराम पतिको पाकर

दृष्ट्वाचतांपद्मविशालनेत्रांसंदृष्टपूर्वेयमितिव्यचिंतयत् ॥ पप्रच्छकेयंललनाद्विजेंद्रसवारुणिःप्राहनराधिपेंद्रम् ॥ ५९ ॥ इयंविवस्वद्दुहितानरेंद्रनाम्नाप्रसि
द्धातपतीपृथिव्याम् ॥ मयातवार्थायदिवाकरोर्थितःप्रादान्मयात्वाश्रममापितेयम् ॥ ६० ॥ तस्मात्समुत्तिष्ठनरेंद्रदेव्याःपाणितपत्याविधिवद्गृहाण ॥ इत्ये
वमुक्तोनृपतिःप्रहृष्टोजग्राहपाणिंविधिवत्तपत्याः ॥६१॥ सातंपतिंप्राप्यमनोभिरामंसूर्यात्मजाशक्रसमप्रभावम् ॥ रेमेचतेनैवगृहोत्तमेषुयथामहेंद्रेणपुलो
मजादिवि ॥ ६२ ॥ इति श्रीवामनपुराणेतापत्येउमासंभवोनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ देवदेवउवाच ॥ तस्यांतपत्यांनरसत्तमेनजातःसुतःपा
र्थिवलक्षणस्तु ॥ सजातकर्मादिभिरेवसंस्कृतोह्यवर्धताज्येनहुतोयथाग्निः ॥ १ ॥ कृतंचचूडाकरणंतुदेवाविप्रेणमित्रावरुणात्मजेन ॥ नवाब्दिकस्यव्रतबं
धनंचवेदेचशास्त्रेविधिपारगोऽभूत् ॥२॥ ततश्चतुःषड्भिरपीहवर्षैःसर्वज्ञतामभ्यगमत्ततोसौ ॥ ख्यातःपृथिव्यांपुरुषोत्तमोऽसौनाम्नाकुरुःसंवरणस्यपुत्राः ॥
॥ ३ ॥ ततोनरपतिर्दृष्ट्वापुत्रंतंषोडशाब्दिकम् ॥ दारक्रियार्थमकरोद्यत्नंशुभकुलेततः ॥ ४ ॥ सौदाम्नींचसुदाम्नस्तुसुतांरूपाधिकांनृपः ॥ कुरोरर्था
यवृतवान्सप्रादात्कुरवेपिताम् ॥ ५ ॥

स्वर्गमें महेन्द्रके साथ इन्द्राणीकी समान उनके साथ उत्तम घरोंमें विहार करनेलगी॥ ६ २॥इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां तपतीपरिणयं नाम एकविंशोऽध्यायः॥ २ १॥
देवाधिदेव विष्णुभगवान् बोले कि, नरोंमें श्रेष्ठ सम्वरणने तपतीके गर्भमें पार्थिव लक्षणयुक्त एक पुत्र उत्पन्न किया, वह जातकर्म आदिक संस्कार होनेके पीछे
घृतकी आहुति पड़नेपर अग्निके समान बढ़ने लगा ॥ १ ॥ हे देवेश ! मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठजीके चूडाकरण और नववें वर्षमें यज्ञोपवीत करनेपर वह पुत्र
सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका जाननेवाला हुआ ॥२॥ इसके उपरान्त चार छः वर्षमें सर्वज्ञता प्राप्त करली,सम्वरणका वह पुत्र पृथ्वीमें पुरुषोत्तम कुरुनामसे विख्यात हुआ॥
॥ ३ ॥ इसके उपरान्त सम्वरण पुत्रको सोलहवर्षकाहुआ देखकर शुभ (श्रेष्ठ) वंशमें उसके विवाहका यत्न करनेलगा ॥ ४ ॥ इसी समयमें वह राजा सुदामाकी

पुत्री रूपगुणशालिनी सौदामिनीको पुत्रके निमित्त वरण करता हुआ, और उसनेभी कुरुके हाथमें अपनी पुत्रीको देदिया ॥ ५ ॥ कुरु उस राजकुमारीको प्राप्तकर अपने धर्मके अविरोधमें उसके साथ विहार करनेलगा, जैसे शचीके साथ इन्द्र विहार करता है ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त सम्वरणने पुत्रको राज्यपालक जानकर उसे यथाविधानसे यौवराज्यपर अभिषेकित किया ॥ ७ ॥ कुरु पिताके द्वारा अभिषेकित होकर पुत्रके समान प्रजागणोंका और पृथ्वीका पालन करनेलगा॥ ॥ ८ ॥ और वही क्षेत्रपाल हुआ, वही पशुपाल हुआ, वही राजपाल और अजापाल हुआ ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त उस राजाको ऐसी गरीयसी (अति उत्तमां) बुद्धि उत्पन्न हुई कि, इस लोकमें जबतक कीर्ति विराजमान रहै तबतक उसके साथ निवास रहै, ऐसा राजाओंमें श्रेष्ठ कुरु यथातथ्य (जैसा होना

सतांनृपसुतांलब्ध्वास्वधर्मानविरोधयन् ॥ रेमेतन्व्यासहतयापौलोम्यामघवानिव ॥ ६ ॥ ततोनरपतिःपुत्रंराज्यभारक्षमंबली ॥ विदित्वायौवराज्याय
विधानेनाभ्यषेचयत् ॥७॥ ततोराज्येभिषिक्तस्तुकुरुःपित्रानिजेपदे ॥ सपालयामासमहींपुत्रवच्चप्रजाःस्वयम् ॥८॥ सएवक्षेत्रपालोऽभूत्पशुपालःसएवहि ॥
सएवराजपालश्चअजापालोमहाबलः ॥९॥ ततोस्यबुद्धिरुत्पन्नाह्यस्मिँल्लोकेगरीयसी ॥ यावत्कीर्तिःसुसंस्थाहितावद्वासस्तयासह ॥१०॥ अस्त्वेवंनृपति
श्रेष्ठोयथातथ्यममन्यत ॥ विचचारमहींसर्वांकीर्त्यर्थंतुनराधिपः ॥११॥ ततोद्वैतवनंनामपुण्यंलोकचरोवशी ॥ तदासावतिसंतुष्टोविवेशाभ्यंतरंततः॥१२॥
तत्रदेवींददर्शाथपुण्यांपापविमोचिनीम् ॥ प्लक्षजांब्रह्मणःपुत्रींहरिजिह्वांसरस्वतीम् ॥१३॥ सुदर्शनस्यजननींह्रदंकृत्वासुविस्तृतम् ॥ तस्यास्तज्जलमासा
द्यस्नात्वाप्रीतोभवन्नृपः ॥१४॥ समाजगामचपुनर्ब्रह्मणोवेदिमुत्तराम् ॥ समंतपंचकंनामधर्मस्थानमनुत्तमम् ॥१५॥ आसमंताद्योजनानिपंचपंचचसर्वतः ॥
देवाऊचुः ॥ किमन्यावेदयोदेवब्रह्मणःपुरुषोत्तम॥१६॥येनोत्तरतयावेदीगदितासर्वपंचके ॥ हरिरुवाच ॥ वेदयोलोकनाथस्यपंचधर्मस्यसर्वतः ॥ १७ ॥

चाहिये वैसाही, ठीक २) विचारकर कीर्तिस्थापनके निमित्त सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १० ॥ ११ ॥ इसप्रकारसे जाते हुए उन जितेन्द्रिय कुरुने परमपवित्र द्वैतवनमें जाकर अत्यन्त संतुष्टहो उसके भीतर प्रवेश किया ॥ ॥ १२ ॥ वहाँ पापनाशिनी पुण्यस्वरूपिणी ब्रह्मनंदिनी हरिजिह्वा सरस्वती विराजमान थीं उन्हीं प्लक्षजाको जाकर देखा॥ १३ ॥ वह सुदर्शनकी माताहै, उस स्थानपर विस्तारित ह्रदयको निर्माणकर राजा कुरु उस सरस्वतीके जलमें स्नानकर प्रसन्न हुए॥ ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त पुनर्वार ब्रह्माजीकी उत्तरवेदीको गये, इसका नाम स्यमन्तपंचक है, यह अतिउत्तम धर्मका क्षेत्रहै ॥ १५ ॥ इसका विस्तार पांच २ योजन तक है. देवगण बोले कि, हे देव ! हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्माजीके क्या कोई और वेदीभीहै ॥ १६ ॥ कि, जिसकारणसे आपने स्यमंतपंचकको उत्तरवेदी कहा. हरि बोले कि,

लोकनाथ साक्षात् धर्मरूपी ब्रह्माजीके पांच वेदी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ॥ १७ ॥ लोकनाथ देवाधिदेव शंभुने इन सब वेदीमेंही यज्ञ कियाथा, इनमेंसे प्रयागमध्यवेदी, पूर्व वेदी गयाशिर ॥ १८ ॥ विरजा दक्षिणवेदी, यह अनन्त फलोंको देती हैं, पश्चिमवेदी पुष्कर तीन कुंडोंसे अलंकृता है ॥ १९ ॥ और स्यमन्तपंचकोंमें उत्तरवेदी प्रतिष्ठितहुई है महर्षि कुरुने यह मनहीमनमें स्थिर किया कि, इस उत्तरवेदीकोही मैं महाफलदायक क्षेत्र ॥ २० ॥ करूंगा और इच्छानुसार सम्पूर्ण मनोरथ कर्षण करूंगा; अपने मनहीमनमें इसप्रकारकी चिन्ताकर उत्तम रथको त्याग ॥ २१ ॥ उस पार्थिवश्रेष्ठने उसी कीर्तिके निमित्त उसे क्षेत्रस्वरूप किया. इसके उपरान्त सुवर्णके हलको निर्माण कर तथा रुद्रके वृषको ग्रहणकर ॥ २२ ॥ यमके महिषको घोडारूपसे अवलम्बनकर स्वयं कर्षण करनेके लिये सन्नद्धहुए. इन्द्र उस अवस्थामें

यासुचेष्टंसुरेशेनलोकनाथेनशंभुना ॥ प्रयागोमध्यमावेदिःपूर्वावेदिर्गयाशिरः ॥ १८॥ विरजादक्षिणावेदिरनंतफलदायिनी ॥ प्रतीचीपुष्करावेदिस्त्रिभिः
कुंडैरलंकृता ॥ १९ ॥ स्यमंतपंचकेचोक्तावेदिरेवोत्तरातथा ॥ तदमन्यतराजर्षिरिदंक्षेत्रंमहाफलम् ॥ २० ॥ करिष्यामिकृषिष्यामिसर्वान्कामान्यथे
प्सितम् ॥ इतिसंचिंत्यमनसात्यक्त्वास्यंदनमुत्तमम् ॥ २१ ॥ चक्रेकीर्त्यर्थमतुलंस्थानंतत्पार्थिवर्षभः ॥ कृत्वासीरंससौवर्णंगृह्यरुद्रवृषंप्रभुः ॥ २२॥
वोढारंयाम्यमहिषंस्वयंकर्षितुमुद्यतः ॥ तंकर्षंतंनरवरंसमभ्येत्यशतक्रतुः ॥ २३ ॥ प्रोवाचराजन्किमिदंभवान्कर्तुमिहोद्यतः ॥ राजाब्रवीत्सुरवरंतपः
सत्यंक्षमांदयाम् ॥ २४॥ कृषामिशौचदानेचयोगंचब्रह्मचारिताम् ॥ तंचोवाचहरिर्देवःकस्माद्बीजंनरेश्वर ॥२५॥ लब्धंत्वयेतिसहसाह्यवहस्यगतस्ततः ॥
गतेऽपिशक्रेनृपतिरहन्यहनिसीरधृक् ॥ २६ ॥ कृषतेऽन्यत्समंताच्चसप्तक्रोशान्महीपतिः ॥ ततोहमब्रुवंगत्वाकुरोकिमिदमित्यथ ॥२७॥ तदाष्टांगंमहाधर्मं
समाख्यातंनृपेणहि ॥ ततोमयास्यगदितंनृपबीजंक्वतिष्ठति ॥२८॥ सचाहममदेहस्थंबीजंतमहमब्रुवम् ॥ देह्यहंवापयिष्यामिसीरंकृषतु वैभवान् ॥ २९ ॥

राजाके पास आकर ॥२३॥ कहने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! आप यहां क्या करनेके लिये उद्यत हुए हैं ? राजा उन सुरश्रेष्ठसे बोले कि, मैं तप, सत्य, क्षमा, दया॥२४॥ शौच, दान, योग और ब्रह्मचारिता इन सबको कर्षण (खैंचूं) करूंगा ॥ इन्द्रदेव उनसे बोले कि, हे नरेश्वर ! बीजका संग्रह कहांसे किया है ॥ २५॥ यह कह कर वह हास्य करतेहुए उसी समय चले गये, इन्द्रके चलेजानेपर राजा कुरु प्रतिदिन हलको ग्रहणकर ॥ २६ ॥ अन्यान्य समस्त स्थानोंको कर्षण (जोतने) करने लगे, इससे सात कोशतक कर्षित हुआ, तब मैं ने वहां जाकर कहा कि,कुरु यह क्या करतेहो?॥२७॥तब मेरे यह कहनेपर उन्होंने कहा कि, मैं अष्टांग महाधर्मका कर्षण करताहूं, मैंने कहा है कि, हे राजन् ! इसका बीज कहां है ? ॥ २८ ॥ उन्होंने कहा कि, हमारी देहमेंही बीज है, फिर मैं ने कहा कि, यह बीज मुझे दान

करो, मैं बोऊंगा. और तुम हलको कर्षण (जोतते रहना) करना ॥ २९॥ तब राजाने अपना हाथ फैलाया तब मैं ने उस फैली हुई भुजाको देखकर महाचक्रके आघा
तसे शीघ्रही॥ ३०॥उसके सहस्रों खंड करडाले, इससे वह एकही भुजाके रहे, इसके उपरान्त राजाने दूसरी भुजा प्रदान की,मैं ने उसेभी काटडाला॥ ३१ ॥ तब उन्होंने दोनों
जंघा प्रदान कीं,मैंने उन्हेंभी छेदन किया,इसके उपरान्त उन्होंने अपना मस्तक झुकाया तब मैं उनके ऊपर प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥ और बोला कि, मैं तुमको वरदान
दूंगा यह सुनकर कुरुने यह प्रार्थना की कि, मैं ने जितनी दूरतक कर्षण (जोता) किया है उतनी दूरतक आपका धर्मक्षेत्र हो ॥ ३३ ॥ यहांपर स्नान करनेवालेको
और मरनेवालेको महापुण्यफल प्राप्त होताहै. हे माधव ! यहां उपवास, दान, स्नान, जप ॥ ३४ ॥ होम और यज्ञादि अन्यप्रकारके शुभ अथवा अशुभ जैसे

ततोनृपतिनाबाहुर्दक्षिणःप्रसृतःकृतः ॥ प्रसृतंतंभुजंदृष्ट्वामहाचक्रेणवेगतः ॥ ३० ॥ सहस्रधाप्रचिच्छेदयस्मादेकभुजोभवत् ॥ ततःसव्योभुजोराज्ञादत्त
श्छिन्नोप्यसौमया ॥ ३१ ॥ तथैवोरुयुगंप्रादान्मयाच्छिन्नौचतावुभौ ॥ ततःसमेशिरःप्रादात्तेनप्रीतोस्मितस्यच ॥ ३२ ॥ वरदोसीत्यथेत्युक्तेकुरुर्व
रमयाचत ॥ कुरुरुवाच ॥ यावदेतन्मयाकृष्टंधर्मक्षेत्रंतदस्तुवः ॥ ३३ ॥ स्नातानांचमृतानांचमहापुण्यफलंत्विह ॥ उपवासश्चदानंचस्नानंजप्यंचमाधव ॥
॥ ३४ ॥ होमयज्ञादिकंचान्यच्छुभंवाप्यशुभंविभो ॥ त्वत्प्रसादाद्धृषीकेशशंखचक्रगदाधर ॥३५॥ अक्षयंप्रवरेक्षेत्रेभवत्वत्रमहाफलम् ॥ तथाभवान्सुरैः
सार्द्धंसमंदेवेनशूलिना ॥ ३६ ॥ वसात्रपुंडरीकाक्षमन्नामव्यंजकेऽच्युत ॥ इत्येवमुक्तस्तेनाहंराज्ञाबाढमुवाचतम् ॥ ३७ ॥ तथाचत्वंदिव्यवपुर्भवभूयो
महीपते ॥ तथांतकालेमय्येवलयमेष्यसिसुव्रत ॥ ३८ ॥ शाश्वतीतवकीर्तिश्चभविष्यतिनसंशयः ॥ तत्रवैयाजकोयज्ञान्यजिष्यसिसहस्रशः ॥ ३९ ॥
पुलस्त्यउवाच ॥ तस्यक्षेत्रस्यरक्षार्थंददौसपुरुषोत्तमः ॥ यक्षंचचंद्रनामानंवासुकिंचापिपन्नगम् ॥ ४० ॥ विद्याधरंशंकुकर्णंसुकेशंराक्षसेश्वरम् ॥
अजावनंचनृपतिंमदादेवंचपावकम् ॥ ४१ ॥

भी अनुष्ठान करने होतेहैं हेहृषीकेश! हे शंखचक्रगदाधर ! आपके प्रसादसे वह सभी इस श्रेष्ठक्षेत्रमें अक्षय और महाफलके देनेवाले हों, हे पुंडरीकाक्ष ! हे अच्युत !
आपभी इस मेरे नामका व्यक्त करनेवाला क्षेत्र अर्थात् कुरुक्षेत्रमें सम्पूर्ण देवगण देवाधिदेव महादेवके साथ विराजमान रहैं. तब मैंने उनके वचनोंको सुनकर उत्तर
दिया कि, हे राजन् ! अच्छा ऐसाही होगा ॥३५॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे महीपते ! इसके अतिरिक्त तुम दिव्य शरीर होकर अंतकालमें हममें लय होजाओगे॥ ३८॥
हे सुव्रत ! तुम्हारी कीर्ति चिरस्थायिनी होगी, इसमें संदेह नहीं और तुम सहस्र २ यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे ॥ ३९ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, पुरुषोत्तम विष्णु
जीने उस क्षेत्रकी रक्षाके निमित्त चंद्रनामक यक्ष और पन्नगपति वासुकिको दिया॥ ४० ॥ इसके अतिरिक्त विद्याधर, शंकुकर्ण, राक्षसेश्वर सुकेश, नृपति अजावन

महादेव और पावक इनकोभी स्थापित किया ॥ ४१ ॥ यह सब मिलकर चारों ओरसे कुरुके जंगल अर्थात् (कुरुक्षेत्र) की रक्षा करते रहते हैं, इनके संब और अनुयायी भृत्य (सेवक) सब मिल ॥ ४२॥ अठारह सहस्र धनुर्धारी यहां रहकर अत्यन्त दुष्कृतिमान् मनुष्योंको निवारण करते रहते हैं, वह सभी महाभयंकर रूप धारण करके और किसी दुष्कृतिमान् मनुष्योंको यहां स्नान नहीं करनेदेते ॥ ४३ ॥ उसी कुरुक्षेत्रके बीचमें महापुण्यदायक पापनाशक अत्यन्त मंगलका देनेवाला पृथूदक तीर्थ प्रतिष्ठित है और उस (जलसमूहयुक्त पृथूदक तीर्थ) की पुत्री पूर्णजलवाली पुण्यदायिनी नदी पूर्वमुखहो बहती रहती है ॥ ४४ ॥ प्रपितामह ब्रह्माजीने तेजस, मरुत्, व्योम इन सब भूतगणोंके सहित सृष्टिकी आदिमें इस नदीकी सृष्टि कीथी, उन्होंने अनान्य अनेक महाजलाशय तीर्थ, नदी, प्रस्रवण (झरने) और सम्पूर्ण सरोवरोंको निर्माण किया था, उन सबोंके बीचमें पृथूदकही साक्षात् देवमार्ग (स्वर्गजानेका उपाय) है ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ हे सुरश्रेष्ठो ! सरस्वती और दृशद्वती इन दोनोंके बीच कुरुक्षेत्रमें बैठेहुए महर्षि लोमहर्षणजीसे सब ऋषि ब्रह्मसरकी उत्पत्तिको पूछते हुए ॥ ४७ ॥ कि, हे लोमहर्षणजी ! आप उस ब्रह्मसरका प्रमाण विशेषकरके तीर्थ और देवताओंका माहात्म्य और वामनजीकी उत्पत्तिको वर्णन कीजिये ॥ ४८ ॥ लोमहर्षण उनके यह वचन सुनकर व्यासजीको प्रणामकर कहने लगे ॥ ४९ ॥ लोमहर्षणजीबोले कि, हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! सबके नियन्ता कमलासनस्थ ब्रह्मा

एतानिसर्वतोभ्येत्यरक्षंतिकुरुजांगलम् ॥ अमीषांबलिनोन्येचभृत्याश्चैवानुयायिनः ॥ ४२ ॥ अष्टौसहस्राणिधनुर्द्धराणांनिवारयंतीहसुदुष्कृतान्वै ॥ स्नातुं नयच्छंतिमहोग्ररूपास्त्वन्यस्यतेवीरचराचराणाम् ॥ ४३ ॥ तस्यैवमध्येबहुपुण्ययुक्तंपृथूदकंपापहरंशिवंच ॥ पुण्यानदीप्राङ्मुखतांप्रयाताजलौघयुक्तस्यसुताजलाढ्या ॥ ४४ ॥ पूर्वंनदीयंप्रपितामहेनसृष्टासमंभूतगणैःसमस्तैः ॥ महीजलंवह्निसमीरमेवखंत्वेवमादौविबभौपृथूदकम् ॥ ४५ ॥ सर्वैतथातोयधयोमहान्तस्तीर्थानिनद्यःस्रवणाःसरांसि ॥ संनिर्मितानीहमहाभुजेनसदेवमार्गःसलिलंहितेषु ॥ ४६ ॥ सरस्वतीदृषद्वत्योरंतरेकुरुजांगले ॥ मुनिप्रवरमासीनंपुराणंलोमहर्षणम् ॥ अपृच्छंतद्विजवराःप्रभवंसुरसत्तमाः ॥ ४७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ प्रमाणंसरसोब्रूहितिर्थानांचविशेषतः ॥ देवतानां चमाहात्म्यमुत्पत्तिंवामनस्यच ॥ ४८ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तेषांतान्द्विजाँल्लोमहर्षणः ॥ प्रणिपत्यपुराणर्षिमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ ब्रह्माणमीशंकमलासनस्थंविष्णुंचलक्ष्मीसाहितंतथैव ॥ रुद्रंचदेवंप्रणिपत्यमूर्ध्नातीर्थंवरंब्रह्मसरःप्रवक्ष्ये ॥ ५० ॥

---

१ यह तृतीय वामन (५२) श्लोकस्थ यहां जानना।

लक्ष्मीके साथ विष्णु, देवाधिदेव महेश्वर इनको प्रणाम कर तीर्थोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मसरका वृत्तान्त वर्णन करूंगा ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने प्रथम कहाथा कि, रम्भकसे औजस और पावनसे चतुर्मुखतक इस सरोवरकी हदहै ॥५१॥ पीछे कलि और द्वापरयुगके बीचमें महात्मा व्यासजीने उसका जो प्रमाण कहाथा सो कहताहूं सुनो ॥ ५२ ॥ विश्वेश्वरसे हस्तिपुर, और जरद्गवीकन्यासे ओघवतीतक इस सरोवरकी हदहै ॥ ५३ ॥ मैंने जिसप्रकारसे प्रमाण सुनेहैं, हे द्विजश्रेष्ठगण ! वहभी श्रवण करो उनके सुननेसे अत्यन्त पुण्य बढ़ताहै ॥ ५४ ॥ देववर विश्वेश्वरसे सर्वलोकपावनी सरस्वतीतक यह सरोवर सन्निहितहै, इसका परिमाण चारों ओर आधे योजनतकका है ॥५५॥ इस सरोवरकी सेवा करतेहैं. और कितनेक सज्जन स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिके अर्थ इस सरोवरमें आयकर निवास करतेहैं. ॥ ५६ ॥ देवता

रंतुकादौजसंचापिपावनाच्चचतुर्मुखम् ॥ सरःसन्निहितंप्रोक्तंब्रह्मणापूर्वमेवतु ॥५१॥ कलिद्वापरयोर्मध्येव्यासेनचमहात्मना ॥ सरःप्रमाणंयत्प्रोक्तंतच्छृण्वन्तुद्विजोत्तमाः ॥ ५२ ॥ विश्वेश्वराद्धस्तिपुरंतथाकन्याजरद्गवी ॥ यावदोघवतीप्रोक्तातावत्संनिहितंसरः ॥५३॥ मयाश्रुतंप्रमाणंतुकथ्यमानंतुवामनम् ॥ तच्छृण्वंतुद्विजश्रेष्ठाःपुण्यंवृद्धिकरंमहत् ॥ ५४ ॥ विश्वेश्वराद्देववरात्पावनीचसरस्वती ॥ सरःसन्निहितंप्रोक्तंसमंतादर्द्धयोजनम् ॥ ५५ ॥ एतदाश्रित्यदेवाश्चऋषयश्चसमागताः ॥ सेवंतेमुक्तिकामार्थंस्वर्गार्थंचापरेस्थिताः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मणासेवितमिदंसृष्टिकामेनयोगिना ॥ विष्णुनास्थितिकामेनहरिरूपेणसेवितम् ॥ ५७ ॥ रुद्रेणचसरोमध्यंप्रविष्टेनमहात्मना ॥ सेव्यतीर्थंमहातेजाःस्थाणुत्वंप्राप्तवान्हरः ॥ ५८ ॥ आद्यैषाब्रह्मणोवेदिस्ततोरामह्रदःस्मृतः ॥ कुरुणाचयतःकृष्टंकुरुक्षेत्रंततःस्मृतम् ॥ ५९ ॥ तरंतुकारंतुकयोर्यदंतरंयदंतरंरामह्रदस्यपंचकात् ॥ एतत्कुरुक्षेत्रसमंतपंचकंपितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ ६० ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

और ऋषिजन मोक्षसिद्धिके अर्थ ब्रह्माजीने सृष्टिकी इच्छासे योगमार्गका आश्रय कर इसकी सेवा की थी, विष्णुभगवान् स्थितिकी इच्छासे हरिरूपसे इसके परिचरणमें प्रवृत्त हुए थे ॥ ५७ ॥ महात्मा तेजोमय विग्रहवान् रुद्रजीनेभी इसके बीचमें जाकर इस तीर्थकी सेवाकर स्थाणुत्वता प्राप्त की थी ॥ ५८ ॥ यही ब्रह्माजीकी आद्य (प्रथम) वेदीहै । उसके पीछे रामह्रद इस नामसे विख्यात हुआ, जब कुरुने इसका कर्षण किया तबसे इसका नाम कुरुक्षेत्र हुआहै ॥ ५९ ॥ तरन्तुका और रन्तुक इन दोनोंका जो अंतर (मध्य) है फिर पंचकसे रामह्रदका जो व्यवधान है, यह कुरुक्षेत्र स्यमन्तपंचक और पितामह ब्रह्माजीकी उत्तरवेदी कहकर विख्यात हुआहै ॥ ६० ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां सरोमाहात्म्यंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ऋषि बोले कि, हे लोमहर्षणजी ! वामनजीका माहात्म्य और उत्पत्ति फिर उन्होंने जिस प्रकारसे बलीको नियमित (बंधनमें स्थित) कर इन्द्रको राज्य दियाथा सो विशेष करके वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, हे ऋषिगण ! आप प्रसन्नचित्तसे वामनजीकी उत्पत्तिप्रभाव, और कुरुक्षेत्रमें निवास इत्यादि सम्पूर्ण घटनाओंको श्रवण करो ॥ २ ॥ हे द्विजसत्तमो ! वैसेही दैत्योंके वंशके वृत्तान्तको सुनो, जिस वंशमें पहले विरोचनके पुत्र राजा बलिने जन्म लियाथा ॥ ३ ॥ हिरण्यकशिपु दैत्योंमें आदिपुरुष थे, उनके परमतेजस्वी पुत्र प्रह्लादजी हुए ॥ ४ ॥ प्रह्लादसे विरोचनका जन्म हुआ, विरोचनसे बलि उत्पन्न हुए, हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर सब स्थानोंसे देवताओंको भगाकर ॥ ५ ॥ उस बलिने स्थावर जंगमसहित त्रिलोकीका राज्य और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, उसको देखकर सम्पूर्ण दैत्य यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, धीरे २ सम्पूर्ण संसार दैत्यमय होगया ॥ ६ ॥ बली, शम्बर और मय इन सबकोही जय किया, धर्मकार्यके बढनेसे सम्पूर्ण दिशाएँ पवित्र होगईं ॥ ७ ॥ अयनमें स्थित सूर्यभगवान् दैत्योंके मार्गमें प्रवृत्त हुए. प्रह्लादजी, शम्बर, और मय यह प्रीतिसहित सम्पूर्ण दिशाओंकी रक्षा करनेलगे. आकाशमंडल दैत्योंसे सुरक्षित हुआ, और चारों वेद स्वर्गमें दैत्योंके यज्ञकी शोभाको दर्शाने लगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ तब सम्पूर्णलोक प्रकृति (अपने २ स्वभाव) में स्थित और सन्मार्गमें प्रवृत्त हुए, सम्पूर्ण पाप एक साथही दूर होगये, धर्मभावहीकी सर्वदा स्थापना हुई ॥ १० ॥ धर्मके चारों चरण थे, और अधर्मने एक चरणसे स्थिति की राजाके प्रजापालनमें प्रवृत्त होनेसे राज्य समृद्धिमान् होगया सम्पूर्ण आश्रम वासी अपने २ धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त हुए, ॥ ११ ॥ उससमय सम्पूर्णदैत्योंकेद्वारा बली दैत्यके

ऋषयऊचुः ॥ ब्रूहिवामनमाहात्म्यमुत्पत्तिंचविशेषतः ॥ यथाबलिर्नियमितोदत्तंराज्यंशतक्रतोः ॥ १ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ शृण्वंतुमुनयःप्रीतावामनस्य
महात्मनः ॥ उत्पत्तिंचप्रभावंचनिवासंकुरुजांगले ॥ २ ॥ तथैववंशंदैत्यानांशृण्वंतुद्विजसत्तमाः ॥ यस्मिन्वंशेसमभवद्बलिर्वैरोचनिःपुरा ॥ ३ ॥ दैत्यानामा
दिपुरुषोहिरण्यकशिपुर्भवत् ॥ तस्यपुत्रोमहातेजाःप्रह्लादोनामदानवः ॥ ४ ॥ तस्माद्विरोचनोजज्ञेबलिर्जज्ञेविरोचनात् ॥ हतेहिरण्यकशिपौदेवानुत्साद्य
सर्वतः ॥ ५ ॥ राज्यंकृतंचतेनेष्टंत्रैलोक्येसचराचरे ॥ कृतयज्ञेषुदैत्येषुत्रैलोक्येदैत्यतांगते ॥ ६ ॥ जयेतथाबलवतोर्मयशंबरयोस्तथा ॥ शुद्धासुदिक्षुसर्वा
सुप्रवृत्तेधर्मकर्मणि ॥ ७ ॥ संप्रवृत्तेदैत्यपथेअयनस्थेदिवाकरे ॥ प्रह्लादशंबरमयैरनुरागेणचैवहि ॥ ८ ॥ दिक्षुसर्वासुगुप्तासुगगनेदैत्यपालिते ॥ वेदेषुमखशो
भांचस्वर्गस्थांदर्शयत्सुच ॥ ९ ॥ प्रकृतिस्थेततोलोकेवर्त्तमानेचसत्पथे ॥ अभावेसर्वपापानांधर्मभावेसदोत्थिते ॥ १० ॥ चतुःपादेस्थितेधर्मेह्यधर्मेपाद
विग्रहे ॥ प्रजापालनयुक्तेषुभ्राजमानेषुराजसु ॥ स्वधर्मयुक्तेषुतथासर्वेष्वाश्रमवासिषु ॥ ११ ॥ अभिषिक्तोऽसुरैःसर्वैर्दैत्यराज्येबलिस्तदा ॥ हृष्टेष्वसुरसंघे
षुनदत्सुमुदितेषुच ॥ १२ ॥

राज्यपर अभिषिक्त होनेसे सभी असुर हर्षित (हास्यरसयुक्त) और प्रसन्न होकर शब्द करनेलगे ॥ १२॥ इसके उपरान्त पद्मोदर, प्रभाशालिनी, सुप्रवेशिनी, वरदायिनी लक्ष्मीजी हाथमें कमलको लिये बलिके निकट आकर कहनेलगीं ॥ १३ ॥ कि, हे दैत्यपति ! महाद्युति ! बलिश्रेष्ठ बलि ! तुम्हारे देवराजके पराजय करनेसे मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हुईहूं ॥ १४॥ तुमने जो विक्रम प्रकाशकर इन्द्रको परास्त कियाहै इसकारण तुम्हारा परमसत्त्व देखनेको मैं स्वयं आई हूं ॥ १५ ॥ हे दानवव्याघ्र ! तुमने हिरण्यकशिपुके वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै और असुरगणोंमें इन्द्रत्वके पदपर प्रतिष्ठितहो, इसकारण तुम्हारे ऐसे कर्मानुष्ठानमें विस्मयका विषय नहीं है॥ १६॥ हे राजन् ! तुमने प्रपितामह दैत्यराज हिरण्यकशिपुको विशेषित कियाहै जिन्होंने त्रिलोकीको वशीभूत कियाथा ॥ १७ ॥ सब देवताओंके मनको हरण करनेवाली

अथाभ्युपगतालक्ष्मीर्बलिंपद्मान्तरप्रभा ॥ पद्मोद्यतकरादेवीवरदासुप्रवेशिनी ॥ १३ ॥ श्रीरुवाच ॥ बलेबलवतांश्रेष्ठदैत्यराजमहाद्युते ॥ प्रीतास्मितवभद्रंतेदेवराजपराजये ॥ १४ ॥ यत्त्वयायुधिविक्रम्यदेवराजःपराजितः ॥ दृष्ट्वातेपरमंसत्त्वंततोहंस्वयमागता ॥ १५ ॥ नाश्चर्यंदानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोःकुले ॥ प्रसूतस्यासुरेंद्रस्यतवकर्मेंदमीदृशम् ॥ १६ ॥ विशेषितस्त्वयाराजन्दैत्येंद्रःप्रपितामहः ॥ येनयुक्तंहिनिखिलंत्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१७॥ एवमुक्त्वातुसादेवीलक्ष्मीर्दैत्यनृपंबलिम् ॥ प्रविष्टावरदासेव्यासर्वदेवमनोरमा ॥ १८ ॥ तुष्टाश्चदेव्यःप्रवराह्रीःकीर्तिर्द्युतिरेवच ॥ प्रभाधृतिःक्षमाशक्तिर्ऋद्धिर्दिव्यामहामतिः ॥ १९ ॥ श्रुतिर्विद्यास्मृतिःकीर्तिःशांतिःपुष्टिस्तथाक्रिया ॥ सर्वाश्चाप्सरसोदिव्यानृत्तगीतविशारदाः ॥ २० ॥ प्रपद्यंतेतु दैत्येंद्रंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ प्राप्तमैश्वर्यमतुलंबलिनाब्रह्मवादिना ॥२१॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येत्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ ॥ ऋषयऊचुः ॥ देवानांब्रूहिमेकर्मयद्वृत्तास्तेपराजिताः ॥ कथंदेवाधिदेवोसौविष्णुर्वामनतांगतः ॥ १ ॥

और सबकी सेवनीया वरदायिनी देवी लक्ष्मीजीने दैत्यराज बलिसे इसप्रकारके वचन कहकर फिर उनके शरीरमें प्रवेश किया ॥ १८ ॥ तब औरभी ह्री, कीर्ति, द्युति प्रभा, वृत्ति, क्षमा, शक्ति, ऋद्धि, दिव्य महामति॥ १९॥ श्रुति, विद्या, स्मृति, कीर्ति शान्ति, पुष्टि और क्रिया इन सब श्रेष्ठ देवियों बलिके शरीरमें प्रविष्टा हुईं और नृत्य गीतमें निपुण दिव्य अप्सरायें ॥ २० ॥ और सब चर (जंगम) अचर (स्थावर) सहित तीनों लोक दैत्येन्द्र बलिके प्रति प्रसन्न हुए. और उसके समीप आने लगे, इसप्रकारसे ब्रह्मवंदी बलिने अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त किया ॥ २१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां बलिराज्यप्राप्तिनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ऋषिगण बोले कि, हे लोमहर्षणजी ! देवताओंने पराजित होकर जिसप्रकारसे कर्मानुष्ठान कियाथा और फिर देवाधिदेव विष्णुभगवान् किसप्रकारसे वामनत्वको

प्राप्त हुएथे सो आप कहिये ॥ १ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, देव पुरन्दर सम्पूर्ण त्रिलोकीको राजा बलिके अधीन देखकर मेरुमें स्थित अपनी माताके मनोहर स्थानको गये ॥ २ ॥ और जननीके निकट जाकर बोले कि हे मातः ! आपके संभी पुत्रोंको दानवराज बलिने युद्धमें परास्त कियाहै ॥ ३ ॥ अदिति बोली कि, हे पुत्र ! जो ऐसा हुआ है तो सम्पूर्ण देवता इकट्ठे होकरभी युद्ध करनेसे बलिको वध नहीं करसकते ॥ ४ ॥ एक मात्र विष्णुही सहस्रशिरा उसको वध करनेमें समर्थ हैं, हे सहस्राक्ष ! उनके अतिरिक्त और कोईभी इस विषयमें समर्थ नहीं॥५॥ इसकारण जिसप्रकार तुम मुझसे पूँछते हो उसीप्रकारसे आज अपने पिता ब्रह्मवादी कश्यपजीसे भी महात्मा उस बलिकी पराजयके अर्थ जाकर पूछो ॥ ६ ॥ तब सुरों (अदितिनंदनों) के सहित सब देवतालोग कश्यपजीके पास गये और वहां जाकर देखा कि,

लोमहर्षणउवाच ॥ बलिसंस्थंचत्रैलोक्यंदृष्ट्वादेवःपुरंदरः ॥ मेरुसंस्थंययौशक्रःस्वमातुर्निलयंशुभम् ॥ २ ॥ समीपंप्राप्यमातुश्चकथयामासतांगिरम् ॥
आदित्याश्चरणेसर्वेदानवेनपराजिताः ॥ ३ ॥ अदितिरुवाच ॥ यद्येवंपुत्रयुष्माभिर्नशक्योहंतुमाहवे ॥ बलिर्विरोचनसुतःसर्वैश्चैवमरुद्गणैः ॥ ४ ॥ सहस्र
शिरसाशक्यंकेवलंहंतुमेवहि ॥ तेनैकेनसहस्राक्षहंतुंनान्येनशक्यते ॥ ५ ॥ तद्वत्पृच्छाद्यपितरंकश्यपंब्रह्मवादिनम् ॥ पराजयार्थंदैत्यस्यबलेस्तस्यमहा
त्मनः ॥ ६ ॥ ततोदेवाःसहसुराःसंप्राप्ताःकश्यपांतिकम् ॥ तत्रापश्यंश्चमारीचंमुनिंदीप्ततपोनिधिम् ॥ ७ ॥ आद्यंदेवगुरुंदिव्यंप्रदीप्तंब्रह्मतेजसा ॥
तेजसाभास्कराकारंस्थितमग्निशिखोपमम् ॥ ८ ॥ न्यस्तदंडंतपोयुक्तंबद्धकृष्णाजिनांबरम् ॥ वल्कलाजिनसंवीतंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ ९ ॥ हुताशवदी
प्यमानमाज्यगंधपुरस्कृतम् ॥ स्वाध्यायवंतंपितरंवपुष्मंतमिवानलम् ॥ १० ॥ ब्रह्मवादिनमत्युग्रंचराचरगुरुंप्रभुम् ॥ ब्रह्मणाप्रतिमंलक्ष्म्याकश्यपंदीप्तते
जसम् ॥ ११ ॥ यःस्रष्टासर्वलोकानांप्रजानांपतिरुत्तमः ॥ आत्मभावविशेषेणतृतीयोयंप्रजापतिः ॥ १२ ॥

वह मरीचिनंदन देवगुरु, दीप्त, तपोनिधि, सबके आदि और दिव्यस्वभाव मुनि कश्यपजी ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित होरहेहैं, वह तेजसे सूर्यके और अग्निकी शिखाके समान विराजमान हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्होंने दंड त्याग कियेहैं, और तपसे युक्त हैं, कृष्णाजिनरूपी वस्त्रको धारण कियेहैं, वल्कल वृक्षकी त्वचाका कौपीन पहने हुए और अजिन (मृगछाला) को ओढ़े हुए वह इसप्रकार लगतेहैं कि, मानों उनका शरीर तेजसे प्रज्वलित होरहाहो ॥ ९ ॥ अग्निके समान दीप्त होरहे हैं, और अग्निहोत्र कररहेथे, वेदपाठ होरहा था, विग्रहवान् अग्निके समान दीखतेहैं,इससे उनके आगेसे घृतकी सुगंधि आरहीहै ॥ १० ॥ वह ब्रह्मवादी अत्यन्त उग्र, चराचरोंके गुरु (पिता) और प्रभु हैं, और उनकी शोभा ब्रह्माजीके समान है,और प्रदीप्त तेजवान् हैं ॥ ११ ॥ वह सम्पूर्णलोकोंकी सृष्टि करनेवाले और प्रजाओंके पति, तमोगुणके

बहिर्भूत हैं, और आत्मभावसे वैशिष्टताके वशसे तीसरे प्रजापतिहैं ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्मपरायण, शान्तचित्त, सुरश्रेष्ठ, देवतागण, आदित्योंको साथमें लिये हाथ जोड़ उन्हें प्रणामकर कहनेलगे ॥ १३ ॥ कि, दैत्यपति राजा बलि अत्यन्त बलवान् हैं, युद्धमें इन्द्रभी उनको नहीं जीतसकते इसकारण जिसमें देवताओंका कल्याण हो वह कार्य कीजिये ॥ १४ ॥ प्रभु कश्यपजी पुत्रोंके यह वचन सुनकर बोले कि, तुमलोग ब्रह्मलोक जानेकी बुद्धि करो, वह लोकस्रष्टा ब्रह्माजी जिसप्रकारसे तुम राजा बलिको जीतसकोगे वही उपाय बतादेंगे ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! आओ हम ब्रह्माजीके परम अद्भुत स्थानको चलतेहैं, इतना सुनकर सभी ब्रह्माजीसे इस पराजयका वृत्तान्त यथावत् (ठीक २) कहनेके लिये उद्यत हुए ॥ १६ ॥ तब आदित्यगणोंके साथ कश्यपजीके आश्रममें आयेहुए सम्पूर्ण देवता ब्रह्मर्षियोंसे सेवित ब्रह्माजीके स्थानको गये ॥

अथप्रणम्यतेदेवासहादित्याःसुरर्षभाः ॥ ऊचुःप्रांजलयःसर्वेब्रह्मण्याःशिवमानसाः ॥ १३ ॥ अजेयोयुधिशक्रेणबलिर्दैत्योबलाधिकः ॥ तस्माद्विधत्तनः
श्रेयोदेवानांपुष्टिवर्धनम् ॥ श्रुत्वातुवचनंतेषांपुत्राणांकश्यपःप्रभुः ॥१४॥ कश्यपउवाच ॥ कुरुध्वंगमनेबुद्धिंब्रह्मलोकायलोककृत् ॥ कथयिष्यत्युपायंवो
यथाजेष्यथदैत्यपम् ॥ १५ ॥ शक्रगच्छामसदनंब्रह्मणःपरमाद्भुतम् ॥ यथापराजयंसर्वेब्रह्मणःख्यातुमुद्यताः ॥ १६ ॥ सहादित्यास्ततोदेवायाताः
काश्यपमाश्रमम् ॥ प्रस्थिताब्रह्मसदनंब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ १७ ॥ तेमुहूर्तेनसंप्राप्ताब्रह्मलोकंसुवर्चसः ॥ दिव्यैःकामगमैर्यानैर्यथार्हैःसुमहाबलैः ॥ १८ ॥
ब्रह्माणंप्रष्टुमिच्छंतस्तपोराशिंतमव्ययम् ॥ अध्यगच्छंतविस्तीर्णांब्रह्मणःपरमांसभाम् ॥ १९ ॥ षट्पदोद्गीतमधुरांसामगैःसमुदीरिताम् ॥ श्रेयस्करीम
मित्रघ्नींदृष्ट्वासंजहृषुस्तदा ॥ २० ॥ ऋचोबह्वृचमुख्यैश्चप्रोक्ताःक्रमपदाक्षरैः ॥ शुश्रुवुस्त्वमरव्याघ्राविततेषुचकर्मसु ॥ २१ ॥ यज्ञाविद्यावेदविदःपदक्रम
विदस्तथा॥स्वरेणपरमर्षीणांसबभूवप्रणादिता ॥ २२ ॥यज्ञसंस्तवविद्भिश्चशिक्षाविद्भिस्तथाद्विजैः ॥ छंदसांचतथाविज्ञैःसर्वविद्याविशारदैः ॥ २३ ॥

॥ १७ ॥ वह परमतेजस्वी अमरगण यथायोग्य सुमहाबल (दृढ़) दिव्य कामगामी विमानोंपर चढ़कर एक मुहूर्त्तके बीचमें ब्रह्माजीके निकट जा पहुँचे ॥ १८ ॥ और उन तपोराशि अविनाशी ब्रह्माजीसे पूछनेके निमित्त उनकी विस्तारवान् श्रेष्ठसभामें गये ॥ १९ ॥ षट्पद (भ्रमर) जहाँ मधुर संगीतसे सर्वदा प्रवृत्त रहते हैं, सामके गानेवाले ब्राह्मणगण जहां सर्वदा सामध्वनि करतेहैं. वह उस कल्याण करनेवाली शत्रुनाशिनी सभाको देखकर अत्यन्तही हर्षित हुए ॥ २० ॥ वहाँ अनुष्ठित होतेहुए विस्तीर्ण यज्ञादिकर्मोंके बीच वह ऋग्वेदियोंमें मुख्य२ ब्राह्मणगण क्रमपदाक्षरके साथ ऋग्वेदका उच्चारण करतेथे, वह अमरश्रेष्ठ उन सबको सुननेलगे ॥ २१ ॥ जो यज्ञवित,विद्यावित्, वेदवित् और पदक्रमवित् थे उन्हीं परमर्षियोंके सुस्वरसे सभा गूँजरहीथी ॥ २२ ॥ यज्ञसंभव (मंत्र) और शिक्षा छन्द आदिक वैदिक विशेष

ज्ञानयुक्त और सर्वविद्याविशारद ब्राह्मणगण ॥ २३ ॥ और प्रधान २ लोकायतिक समस्त इनके उच्चारित स्वर इनको सुनाई आनेलगे, उन कश्यपकी सन्तान देवगणने यहां स्थान २ पर सबप्रकारसे नियमयुक्त, संशित (सम्यक् सम्पादित) व्रत, जप, होमनिष्ठ प्रधान २ द्विजेन्द्रोंका दर्शन किया । लोकपितामह चराचरगुरु श्रीमान् ब्रह्माजी वेदमायाविद्या (विद्याभिमानिनी देवता सरस्वतीके) सहित ऐसी सभामें विराजमान थे, वहीं स्थित दक्षआदिक प्रजापतिगण उन विभु (व्यापक) की उपासनामें प्रवृत्त थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद ॥ २७ ॥ सम्पूर्ण विद्या, अन्तरिक्ष, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ॥ २८ ॥ और इन सबकी प्रकृति (मूलकारण सत्वादित्रिगुणात्मिका माया) और उसका विकार (अहंकार आदिक) और जो

लोकायतिकमुख्यैश्चशुश्रुवुःस्वरमीरितम् ॥ तत्रतत्रचविप्रेंद्रान्नियतान्संशितव्रतान् ॥ २४ ॥ जपहोमपरान्मुख्यान्ददृशुःकश्यपात्मजाः ॥ तस्यां
सभायामास्तेसब्रह्मालोकपितामहः ॥ २५ ॥ चराचरगुरुःश्रीमान्विद्ययावेदमायया ॥ उपासतेयंतत्रैवप्रजानांपतयोविभुम् ॥२६॥ दक्षःप्रचेताःपुलहोमरी
चिश्चद्विजोत्तमाः ॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्चगौतमोनारदस्तथा ॥ २७ ॥ विद्यास्तथांतरिक्षंचवायुस्तेजोजलंमही ॥ शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगंधस्तथैवच ॥२८॥
प्रकृतिश्चविकाराश्चयच्चान्यत्कारणंमहत् ॥ सांगोपांगाश्चचत्वारोवेदालोकपतिस्तथा ॥ २९ ॥ तपांसिक्रतवश्चैवसंकल्पःप्राणएवच ॥ एतेचान्येचबहवः
स्वयंभुवमुपासते ॥ ३० ॥ धर्मोह्यर्थश्चकामश्चक्रोधोहर्षश्चनित्यशः ॥ शुक्रोबृहस्पतिश्चैवसंवर्तोथबुधस्तथा ॥ ३१ ॥ शनैश्चरश्चराहुश्चग्रहाःसर्वेव्यव
स्थिताः ॥ मरुतोविश्वकर्माचवसवश्चद्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥ दिवाकरश्चसोमश्चदिनंरात्रिस्तथैवच ॥ अर्द्धमासाश्चमासाश्चऋतवःषट्चसंस्थिताः ॥३३॥
तांप्रविश्यसभांदिव्यांब्रह्मणःसर्वकामदाम् ॥ कश्यपस्त्रिदशेशश्चपुत्रोधर्मभृतांवरः ॥ ३४ ॥ सर्वतेजोमयींदिव्यांब्रह्मर्षिगणसेविताम् ॥ ब्राह्म्याश्रियासे
व्यमानामचिंत्यांविगतक्लमाम् ॥ ३५ ॥

उसका कारण महत्तत्व (अन्तःकरण) और अपने २ सब अङ्ग और उपाङ्गोंसहित चारोंवेद लोकपालवर्ग ॥ २९ ॥ तपस्यामें सम्पूर्ण, यज्ञ, संकल्प और प्राण यह अन्यान्य सभी उन स्वयम्भू (ब्रह्माजी) की आराधना करतेथे ॥ ३० ॥ इसके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, सम्वर्त, बुध, शनैश्चर, राहु ऐसे सम्पूर्ण ग्रह और मरुद्वर्ग, विश्वकर्मा आदि आठ वसु, दिवाकर, सोम, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, छैः ऋतु यह सभी वहां सर्वदा निवास करती थीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कश्यप और उनके पुत्र धर्मभृद्वर, त्रिदशेश्वर इन्द्रने उस कामदायिनी दिव्यसभामें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ यह सभा सर्वतेजोमयी ब्रह्मर्षिमंडलीसे निषेविता ब्राह्मी (ब्रह्मसम्बधिनी

शोभासे) सेव्यमान, अचिन्त्य और श्रमरहित है ॥ ३५॥ उन सब देवताओंने महर्षियोंके साथ परमासनपर बैठेहुए पितामहको देखकर मस्तक झुकाय प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त उन परमात्मा (ब्रह्माजी) के चरण स्पर्श करतेही सभी सबप्रकारके पापोंसे छूटकर पवित्र और स्थिरचित्त होगये ॥ ३७ ॥ देवताओंका प्रभु और ईश्वर महातेजस्वी ब्रह्माजी कश्यपजीके साथ आयेहुए उन सब देवताओंको देखकर बोले ॥ ३८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां सरोमाहात्म्यं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीमान् ब्रह्माजी बोले कि, हेमहाबलवान् देवगण ! तुम जिसकारणसे आयेहो, मैं स्थिरचित्तहो उसीकी चिन्ता करताहूं ॥ १ ॥ हे देवताओ ! तुम्हारी अभिलाषाएँ सभी पूर्ण होंगी, जो दानवश्रेष्ठ इस बलिको जीतनेवाले होंगे ॥ २ ॥ वह संसारके रचनेवाले मेरे गति केवल असुरोंकेही नहीं परन्तु त्रिलोकीकेभी नेता

ब्रह्माणंप्रेक्ष्यतेसर्वेपरमासनमास्थितम् ॥ शिरोभिःप्रणतादेवंदेवाब्रह्मर्षिभिःसह ॥ ३६ ॥ ततःसंस्पृश्यचरणौनियताःपरमात्मनः ॥ विमुक्ताःसर्वपापेभ्यः सर्वेविगतकल्मषाः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वातुतान्सुरान्सर्वान्कश्यपेनसहागतान् ॥ आहब्रह्मामहातेजादेवानांप्रभुरीश्वरः ॥३८॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदर्थमिहसंप्राप्ताभवंतःसर्वएवहि ॥ चिंतयाम्यहमव्यग्रमेतदर्थंमहाबलाः ॥ १ ॥ भविष्यतिचवःसर्वंकांक्षितंयत्सुरोत्तमाः ॥ बलेर्दानवमुख्यस्ययोऽस्यजेताभविष्यति ॥ २ ॥ नकेवलंसुरारीणांगतिर्ममसविश्वकृत् ॥ त्रैलोक्यस्यापिनेताचदेवानामपिसप्रभुः ॥ ३ ॥ यः प्रभुःसर्वलोकानांविश्वंयश्चसनातनम् ॥ पूर्वजंयंममप्राहुरादिदेवंसनातनम् ॥ ४ ॥ तंदेवाश्चमहात्मानंनविदुःकोस्त्यसाविति ॥ देवानस्मांश्चविश्वंचसवेत्तिपुरुषोत्तमः ॥ ५ ॥ तस्यैवतुप्रसादेनप्रवक्ष्येपरमांगतिम् ॥ यदियोगंसमास्थायतपश्चरतिदुश्चरम् ॥ ६ ॥ क्षीरोदस्योत्तरेकूलउदीच्यांदिशिविश्वकृत् ॥ ततःश्रोष्यथसंघुष्टांमेघगंभीरनिःस्वनाम् ॥ ७ ॥ रक्तांपुष्टाक्षरांरम्यामभयांसर्वदाशिवाम् ॥ वाणींपरमसंस्कारांवदतांब्रह्मवादिनाम् ॥ ८ ॥ दिव्यां सत्याकरांसत्यांसर्वकल्मषनाशिनीम् ॥ सर्वदेवाधिदेवश्चततोसौभावितात्मना ॥ ९ ॥

(शिक्षक)देवताओंकेभी प्रभुहैं ॥ ३ ॥ जो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी विश्वरूप हैं, और जोसनातन (तीनों कालमें रहनेवाले) हैं, वह हमारे पिताहैं। उन्हींको ऋषियोंने सनातन आदिदेव कहाहै ॥ ४ ॥ उन परमात्माके स्वरूपको देवताभी नहीं जानते कि, यह कौनहैं, परन्तु वह पुरुषोत्तम देवताओंको, हमैं और इस विश्व (संसार) को जानतेहैं ॥ ५ ॥ मैं उन्हींकी कृपासे परमगतिको कहूँगा, हेकश्यपजी ! यदि आपलोग क्षीरसागरके उत्तरतटपर जाय वहां योगका अवलम्बनकर कठिन तपकरैं तो तपके पीछे प्रथम उत्तरदिशाकी चारों ओरसे स्तुति करतेहुए ब्रह्मवादियोंकें मुखसे निकली हुई सर्वलोकव्यापिनी मेघके समान गंभीर शब्दवाली सबकी अनुरागजननी पुष्ट, (व्यक्त) अक्षर (वर्ण) शालिनी, रमणीया, अभयकी देनेवाली, सर्वदात्री, कल्याणदात्री, परमसंस्कारवती, दिव्यरूपिणी, सत्यस्वरूपिणी, सर्व

पापनाशिनी और सत्यकी आकरस्वरूपिणी वाणीको सुनेंगे इसके उपरान्त वह सर्व देवाधिदेव स्वयं प्रगट होंगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ उल्लिखित व्रतकी समाप्ति और योगव्रतके उद्यापन होनेपर उन विश्वतेजा महात्माके अमोघ (सफल) दर्शन होंगे, अर्थात् वह वर देनेके अर्थ प्रगट हो सब देवताओंसे कहैंगे ॥ ॥ १० ॥ कि, हे देवगण ! तुम सब मुझ वरदेनेवालेकी शरणागत हुएहो, अतएव मैं कश्यपजीको वर दूंगा. हे श्रेष्ठदेवगण ! तुम सब हमारे निकट आयेहो, तुम्हारा स्वागत हो, अर्थात् मंगल हो ॥ ११ ॥ तब कश्यप और अदिति दोनों उस समय उन देवभगवान्‌के चरणोंमें मस्तक नवाय प्रणामकर वरकी प्रार्थना करे कि, हे भगवन् ! तुम हमारे पुत्रहो, अतएव हमारे ऊपर अनुग्रह करो ॥ १२ ॥ उनके ऐसे विनययुक्त वचन कहनेपर भगवान् कहैं गे कि "ऐसाही होगा" कश्यपअदिति और

तद्व्रतस्यसमाप्त्यांतुयोगव्रतविसर्जने ॥ अमोघंतस्यदेवस्यविश्वतेजोमहात्मनः ॥ १० ॥ कश्यपायवरंदेवाददामिवरदस्थिताः ॥ स्वागतंचसुरश्रेष्ठामत्समीपमुपागताः ॥ ततोऽदितिःकश्यपश्चगृह्णीयातांवरंतदा ॥ ११ ॥ प्रणम्यशिरसापादौतस्मैदेवायधीमते ॥ भगवानेवनःपुत्रोभवत्वितिप्रसीदनः ॥ १२ ॥ उक्तश्चपरयावाचातथास्त्वितिसवक्ष्यति ॥ देवाब्रुवंतुतेसर्वेंकश्यपोऽदितिरेवच ॥ १३ ॥ तथास्त्वितिसचश्रीमान्वक्ष्यतेसर्वलोककृत् ॥ तस्माद्देवाद्ब्रूहीत्वैवंवरंत्रिदशसत्तमाः ॥ १४ ॥ कृतकृत्यास्ततःसर्वेंगच्छध्वंस्वंस्वमालयम् ॥ तथास्त्वितिसुराःसर्वेंप्रणम्यशिरसाप्रभुम् ॥१५॥ श्वेतद्वीपंसमुद्दिश्यगताःसौम्यांदिशंप्रति ॥ तेऽचिरेणैवसंप्राप्ताःक्षीरोदंसरितांपतिम् ॥ १६ ॥ यथादिष्टंभगवताब्रह्मणासत्यवादिना ॥ तेक्रांत्वासागरान्सर्वान्पर्वतांश्चसकाननान् ॥ ॥ १७ ॥ नदीश्चविविधाःपुण्याःपृथिव्यांतिसुरोत्तमाः ॥ अपश्यंततमोघोरंसर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥ १८ ॥ अभास्करममर्यादंतमसासर्वतोवृतम् ॥ अमृतंस्थानमासाद्यकश्यपेनमहात्मना ॥ १९ ॥

सम्पूर्ण देवता इसीप्रकारसे प्रार्थना करैं ॥ १३ ॥ वह श्रीमान् सर्वलोकके रचनेवाले "यही होगा" ऐसा कहैंगे. देवगण उन देवके निकटसे इस वरको प्राप्तकर ॥ ॥ १४ ॥ कृतार्थ हो "सभी अपने २ स्थानोंको जाओ" तब देवगण "ऐसाही हो" यह कहकर शिर झुकाय ब्रह्माजीको प्रणाम करके ॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपको देखनेके अर्थ सौम्य उत्तरदिशाकी ओरको चलेगये और वह सब थोडेही कालके बीचमें क्षीरसागरको प्राप्तहुए ॥ १६ ॥ सत्यवादी ब्रह्माजीने जैसे आज्ञा दीथी उसीके अनुसार उन्होंने सम्पूर्ण सागर, पर्वत, वन ॥ १७ ॥ विविधभाँतिकी पवित्र नदियोंको लाँघकर पृथ्वीके अंतमें सर्व सत्व (प्राणि) शून्य घोर अंधकारको देखा ॥ १८ ॥ उसस्थानपर सूर्यका प्रकाश नहीं था, किसीप्रकारकी सीमा नहीं थी, चारों ओर अंधकारही अंधकार था, वह सब महात्मा कश्यपजीके साथ उस अमृतस्थानको

प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ तब कश्यपजी दीक्षित होकर उन योगस्वरूप भूतिस्वरूप, सहस्रलोचन सुरपति नारायण देव भगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त ब्रह्मचर्य, मौनस्थान, (एकासनस्थिति) और वीरासनके साथ सहस्रों वर्षोंतक दिव्य व्रतोंके करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २० ॥ २१ ॥ धीरे २ समस्त देवताओंनेभी तप और योगका अवलम्बन किया, इनमें भगवान् कश्यपजी परमात्मा नारायणकी प्रसन्नताके अर्थ वेदोक्त परमस्तुतिका पाठ करनेलगे ॥ २२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ कश्यपजी बोले कि, हे एक शृंगे ! हेवृषसिन्धो ! हेवृषाकपे ! हेसुरवृष ! हेअनादिसंभव ! हे रुद्र ! हेकपिल ! हेविष्वक्सेन ! हेसर्वभूतपते ! हे ध्रुव ! हे धर्म ! हे वैकुंठ ! हे वृषावर्त ! हे अनादिमध्यनिधन ! हे धनंजय ! हे शुचिश्रवः ! हे पृश्नितेजः ! हे निजजय ! हे अमृतशय ! हे सनातन ! हेत्रिधामन् ! हे तुषित !

दीक्षित्वाकश्यपोदिव्यंव्रतंवर्षसहस्रकम् ॥ प्रसादार्थंसुरेशायतस्मैयोगायधीमते ॥ २० ॥ नारायणायदेवायसहस्राक्षायभूतये ॥ ब्रह्मचर्येणमौनेनस्थानवीरासनेनच ॥२१॥ क्रमेणचसुराःसर्वेतपोयोगंसमास्थिताः ॥ कश्यपस्तत्रभगवान्प्रसादार्थंमहात्मनः ॥ उदीरयंश्ववेदोक्तंयमाहुःपरमंस्तवम् ॥ २२ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवाय ॥ कश्यपउवाच ॥ एकशृंग वृषसिंधो वृषाकपे सुरवृष अनादिसंभवरुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते ध्रुव धर्म वैकुंठ वृषावर्त्त अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रव पृश्नितेजः निज जय अमृतशय सनातन त्रिधामन् तुषित महातत्त्व लोकनाथ पद्मनाभ विरिंचे बहुरूप अक्षय अक्षर हव्यभुक् खंडपरशो शक्र मुंजकेश हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर विरजः लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाभ हव्यभुक् गभस्तिनाथ शतक्रतुनाथ चंद्ररथ सूर्यतेजः समुद्रवासः अज सहस्रशिरःसहस्रपाद अयोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्त्ते सहस्रास्य सहस्रसंभवविश्वं त्वामाहुः पुष्पहास चरम त्वमेववौषट् वषट्कारंत्वामाहुरग्र्यमखेषुप्राशितारं शतधारं सहस्रधारं बभूव भूवंद्य भूनाथ भृगुपुत्र वेदवेद्य ब्रह्मशय ब्राह्मणप्रिय त्वमेवद्यौरसि मातरिश्वासि धर्मोसि होता पोता हंता

हे महातत्व ! हे लोकनाथ ! हे पद्मनाभ ! हे विरञ्च ! हे बहुरूप ! हे अक्षर ! हे अक्षय ! हे हव्यभुक् ! हे खड्गपरशो ! हे मुंजकेश ! हे हंस ! हे महादक्षिण ! हे हृषीकेश ! हे सूक्ष्म ! हे महानियमधर ! हे विरज ! हे लोकप्रतिष्ठ ! हे अरूप ! हे अग्रज ! हे धर्म ! हे धर्मनाभ ! और हे हव्यभुक् ! हे गभस्तिनाथ और शतक्रतुनाथ ! हे चंद्ररथ ! सूर्यतेजः ! और समुद्रवासः ! हे अज ! हेसहस्रशिर ! और सहस्रपाद ! हे अयोमुख ! हे महापुरुष और पुरुषोत्तम ! हे सहस्रबाहो ! सहस्रमूर्ति ! हे सहस्रास्य और सहस्रसंभव ! तुमको विश्व कहते हैं, हेपुष्पहास ! और चरम ! तुम्हीं वौषट् ! तुमकोही वषट्कार और तुमकोही यज्ञमें प्रधान प्राशिता, शतधार और सहस्रधार कहते हैं ! हे भूवंद्य ! भूनाथ ! भृगुपुत्र ! और वेदवेद्य ! हे ब्रह्माशय और ब्राह्मणप्रिय तुम्हीं स्वर्ग, तुम्हीं मातरिश्व, तुम्हीं धर्म, तुम्हीं होता, पोता, हन्ता,

मन्ता और नेता और तुम्हीं होमके कारण हो, तुम्हीं तेजस्वियोंके अग्रगण्य ! हे सुभांड ! ऋकूसमूहद्वारा तुम्हारीही पूजा कीजातीहै, तुम सुमेध ! तुम्हीं समिध, तुम्हीं गति, मति और दाता, तुम मोक्ष, तुम योग, तुम्हीं सृष्टि करतेहो, तुम्हीं धाता, तुम्हीं परमयज्ञ, तुम्हीं सोम, तुम्हीं दीक्षित, तुम्हीं दक्षिणा, तुम्हीं विश्व, हे स्थीवर ! हिरण्यगर्भ ! हेनारायण ! हेत्रिनयन ! हेआदिवर्ण ! हेआदित्यतेजः ! हेमहापुरुष ! हेपुरुषोत्तम ! हेआदिदेव ! हेभूमिक्रम ! हेत्रिविक्रम ! हेप्रभाकर ! हेशम्भो ! और स्वयम्भू ! तुम्हीं भूतादि और महाभूत हो, हे विश्वभूत ! तुम्हीं यह विश्व हो, तुम्हीं विश्वके गोप्ता (रक्षक) हो, तुम्हीं. पवित्र, हे विश्वभव ! हे ऊर्द्ध्वकर्मन् ! हे अमृत ! हेदिवस्पते ! हेवाचस्पते ! हेघृतार्चिः । हेअनंतकर्मवंश ! हेप्राग्वंशधी ! तुम्हीं अश्वमेध और तुम्हीं वरार्थियोंके वरदाता हो ! चौरों-चारसे दोसे पांचसे और

मंता नेता होमहेतुस्त्वमेव अग्र्यश्वधाम्नात्वमेवऋग्भिः सुभांड इज्योऽसि सुमेधोसि समिधस्त्वमेव पतिर्गतिर्दातात्वमसि मोक्षोऽसि योगोऽसि सृजासि धाता परमयज्ञोऽसि सोमोसि दीक्षितोऽसि दक्षिणासि विश्वमसि स्थविर हिरण्यगर्भ नारायण त्रिनयन आदिवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष पुरुषोत्तम आदिदेव भूमिक्रम त्रिविक्रम प्रभाकर शंभो स्वयंभूः भूतादिमहाभूतोऽसि विश्वभूत विश्वंत्वमेव विश्वगोप्तासि पवित्रमसि विश्वभव ऊर्ध्वकर्मन् अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृतार्चिः अनंतकर्म्मवंश प्राग्वंशधीः त्वमश्वमेधः वरार्थिनांवरदोऽसित्वम् ॥ चतुर्भिश्चचतुर्भिश्चद्वाभ्यांपंचभिरेवच ॥ हूयतेचपुनर्द्वाभ्यांतुभ्यंहोत्रात्मनेनमः ॥ १ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ नारायणस्तुभगवाञ्छ्रुत्वैवंपरमंस्तवम् ॥ ब्रह्मजेनद्विजेंद्रेणकश्यपेनसमीरितम् ॥ १ ॥ उवाचवचनंसम्यक्तुष्टःपुष्टपदाक्षरम् ॥ श्रीमान्प्रीतमनादेवोयद्वदेत्प्रभुरीश्वरः ॥ २ ॥ वरंवृणुध्वंभद्रंवोवरदोस्मिसुरोत्तमाः ॥ कश्यपउवाच ॥ सुप्रीतोसिसुरश्रेष्ठसर्वेषामेवनिश्चयात् ॥ ३ ॥

पश्चात् दो होताओंसे तुमको आहुति दीजातीहै,तुम्हीं हो आत्मा हो तुमको नमस्कारहै ॥ १ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां सरोमाहात्म्ये नारायणस्तुनिर्नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, भगवान् नारायण विप्रश्रेष्ठ ब्रह्मात्मज कश्यपजीकी उच्चारण कीहुई इस परमस्तुतिको सुनकर ॥ १ ॥ सबप्रकारसे संतुष्टहो, पुष्ट पदाक्षरयुक्त यह वचन कहनेलगे, जैसे कि, प्रसन्न मनहो श्रीमान् सबके प्रभु और ईश्वर उन भगवान् जनार्दनको कथन करनेको योग्य होवै ॥ २ ॥ वह बोले कि, हे सम्पूर्णदेवताओ ! मैं वर देनेके लिये उद्यतहूं तुम वरकी प्रार्थना करो तुम्हारा मंगलहो ! कश्यपजी बोले कि, हे सुरश्रेष्ठ ! यदि आप निश्चयही हमारे सबके

---

१ यह श्लोक “ओं श्रौंवय–अस्तु श्रौषट् यजे, ये यजामहे वषट्,” इन सप्तदशाक्षरछन्दके मंत्रका अनुवाद करताहै अर्थात् इसकरकै आप आहुतिको ग्रहण करते हो ऐसे होमस्वरूप आपको नमस्कारहै।

ऊपर संतुष्ट हुए हैं ॥ ३ ॥ तो अदितिके गर्भसे इन्द्रके अनुज भ्रातारूपसे श्रीमान् भगवान् आप उत्पन्न होकर जातिगणोंके आनंदको बढ़ावैं ॥ ४ ॥ इसीसमयमें
देवमाता अदितिभी पुत्रके निमित्त वर माँगती हुई वर देनेवाले भगवान्से इसीप्रकार बोलीं ॥ ५ ॥ तब देवतालोग बोले कि, हे महेश्वर ! तुम सम्पूर्ण देवताओंके
कल्याणके निमित्त सर्वदा हमारे भ्राता, भर्ता, दाता, और रक्षाकर्ता हो ॥ ६ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, इसके उपरान्त विष्णुभगवान् स्वयं देवताओंसे बोले कि, जो
तुम्हारा सबहीका शत्रु होगा वह मेरे निकट एक मुहूर्त्तकोभी नहीं ठहरसकैगा ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठविबुधगण ! मैं विपक्षियोंका दलन करके पारमेष्ठ्य (दैवविहित)
कर्मद्वारा यज्ञभागाग्रभोजी देवताओंको हव्य और पितरोंको कव्यभोक्ता करूंगा. हे सुरोत्तमो ! तुम अपने २ मार्गसे निवृत्तहोजाओ ॥ ८ ॥ ९ ॥ सबके प्रभु विष्णु

वासवस्यानुजोभ्राताज्ञातीनांनंदवर्द्धनः ॥ अदित्याअपिचश्रीमान्भगवानस्तुवैसुतः ॥ ४ ॥ अदितिर्दैवमाताचएतमेवार्थमुत्तमम् ॥ पुत्रार्थंवरदंप्राहभगवंतं
वरार्थिनी ॥ ५ ॥ देवाऊचुः ॥ निःश्रेयसार्थंसर्वेषांदेवतानांमहेश्वरः ॥ त्राताभर्ताचदाताचशरणंभवनःसदा ॥ ६ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ ततस्तानब्रवीद्वि
ष्णुर्देवांस्तान्स्वयमेवच ॥ सर्वेषामेवयुष्माकंयेभविष्यंतिशत्रवः ॥ मुहूर्तमपितेसर्वेनस्थास्यंतिममाग्रतः ॥ ७ ॥ हत्वासुरगणान्सर्वान्यज्ञभागाग्रभोजिनः ॥
हव्यादांश्चसुरान्सर्वान्कव्यादांश्चपितॄनपि ॥ ८ ॥ करिष्येविबुधश्रेष्ठाःपारमेष्ठ्येनकर्मणा ॥ यथायातेनमार्गेणनिवर्तध्वंसुरोत्तमाः ॥ ९ ॥ एवमुक्तेतु
देवेनविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ततःप्रहृष्टमनसःपूजयंतिस्मतंप्रभुम् ॥ १० ॥ विश्वेदेवामहात्मानःकश्यपोऽदितिरेवच ॥ नमस्कृत्यसुरेशायतस्मैदेवायरं
हसा ॥ ११ ॥ प्रयाताःप्राग्दिशंसर्वेविपुलंकश्यपाश्रमम् ॥ तेकश्यपाश्रमंगत्वाकुरुक्षेत्रवनंमहत् ॥ १२ ॥ संप्रसाद्यादितिंतत्रतपसेतांन्ययोजयन् ॥
साचचारतपोघोरंवर्षाणामयुतंतदा ॥ १३ ॥ तस्यानाम्नावनंदिव्यंसर्वकामप्रदंशुभम् ॥ आराधनायकृष्णस्यवाग्यतावायुभोजना: ॥ १४ ॥ दैत्यै
र्निराकृतान्दृष्ट्वासभयानृषिसत्तमान् ॥ वृथापुत्राहमितिसानिर्वेदात्प्रणताहरिम् ॥ तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिःस्तुतिभिःसातपोधना ॥ १५ ॥

भगवान्के इसप्रकार कहनेपर वह सब प्रसन्न चित्त होकर उनकी पूजा करनेलगे ॥ १० ॥ इसके उपरान्त महात्मा विश्वेदेवगण, कश्यप और अदिति यह सभी उन
सुरपति भगवान्को नमस्कार करके शीघ्रतासे ॥ ११ ॥ सब पूर्वकी ओरको स्थित कश्यपजीके आश्रमको गये, वहां जाय विशाल कुरुक्षेत्र वनमें ॥ १२ ॥ पहुँचे,
उस स्थानमें अदितिको प्रार्थनापूर्वक प्रसन्न करकै तप करनेमें लगाया, तब उसनेभी दश हजार वर्षतक घोर तपस्या की ॥ १३ ॥ वह दिव्यवन उसके नामसे विख्यात
और सम्पूर्ण मनोरथोंका देनेवाला सर्वथा सौम्यभावसे परिणत हुआ, वह कृष्णकी आराधनाके अर्थ मौन हो और वायुको भोजनकर तपस्या करनेलगी ॥ १४ ॥
ऋषियोंको दैत्योंकेद्वारा परास्त और भयभीत देखकर " मैं वृथापुत्राहूं " इसप्रकारकी चिन्तामें मग्नहो वह भगवान् नारायणको प्रणाम कर ॥ १५ ॥

अपनी अभिलाषाके वचन कहती हुई शरण्य (शरण करनेयोग्य) और सबके शरण (रक्षक) स्वरूप भक्तवत्सल देव दैत्य (दोनोंके कारणभूत) और सबके आदि, मध्य, अन्त, स्वरूपी उन विष्णुभगवान्के प्रति शिर झुकाकर स्तुति करनेलगी ॥ १६ ॥ कृत्या (पर कृताभिचार) के आर्ति (दुःख) के नाशक भगवान्को नमस्कार है, पुष्कर (कमल) मालीको नमस्कार है, परमकल्याणकेभी कल्याण स्वरूप आदि विधाताको नमस्कार है ॥ १७ ॥ कमलनयनको नमस्कार है. कमलनाभिको नमस्कार है, कमलसे उत्पन्न (ब्रह्माजीके) संभव कारणरूपको नमस्कार है, आत्मयोनि (निजकारण) को नमस्कार है ॥ १८ ॥ श्रीपति, दान्त (मनके निग्रह करनेवाले) दान्त (योगी) दृश्य और सुदर्शनचक्रधारीको नमस्कार है. पद्म, शंख, गदाहस्तको नमस्कार है, कनकवासाको नमस्कार है॥ १९ ॥ आत्मज्ञान, यज्ञ, योगियोंके चिन्तनीय. योगी, गुणातीत, विशेषस्वरूप ब्रह्मरूपी हरिको नमस्कार है ॥ २० ॥ जगत् जिसमें प्रतिष्ठित है, परन्तु जगत्

शरण्यंशरणंविष्णुंप्रणताभक्तवत्सलम् ॥ देवदैत्यमयंचादिमध्यमांतस्वरूपिणम् ॥ १६ ॥ अदितिरुवाच ॥ नमःकृत्यार्तिनाशायनमःपुष्करमालिने ॥ नमःपरमकल्याणकल्याणायादिवेधसे ॥ १७ ॥ नमःपकंजनेत्रायनमःपंकजनाभये ॥ नमःपंकजसंभूतिसंभवायात्मयोनये ॥ १८ ॥ श्रियःकांतायदांतायदान्तदृश्यायचक्रिणे ॥ नमःपद्मादिहस्ताँयनमःकनकवाससे ॥ १९ ॥ तथात्मज्ञानयज्ञाययोगिचिंत्याययोगिने ॥ निर्गुणायविशेषायहरयेब्रह्मरूपिणे ॥ २० ॥ जगत्संतिष्ठतेयत्रजगतोयोनदृश्यते ॥ नमःस्थूलातिसूक्ष्मायतस्मैदेवायशार्ङ्गिणे ॥ २१ ॥ यंनपश्यंतिपश्यंतोजगदप्यखिलंनराः ॥ अपश्यद्भिर्जगद्यश्चदृश्यतेहृदिसंस्थितः ॥२२॥ बहिर्ज्योतिरलक्ष्योयोलक्ष्यतेज्योतिषःपरः ॥ यस्मिन्नेवयतश्चैवयस्यैतदखिलंजगत् ॥२३॥ तस्मैसमस्तजगतांसुनाथायनमोनमः ॥ आद्यःप्रजापतिर्यस्तुपितॄणांयःपरःपतिः ॥ पतिःसुराणांयस्तस्मैनमःकृष्णायवेधसे ॥ २४ ॥ यःप्रवृत्तैर्निवृत्तैश्चकर्मभिस्तु विरज्यते ॥ स्वर्गापवर्गफलदोनमस्तस्मैगदाभृते ॥ २५ ॥

जिसको नहीं देखता उसको नमस्कार है जो स्थूल, पंचभूतादि (कार्य) स्वरूप और अत्यन्त सूक्ष्म कारण (महदादि) स्वरूप उन शारंगी (शार्ङ्गधनुषधारी) देवको नमस्कार है ॥ २१ ॥ निखिलजगत्कोभी देखनेवाले मनुष्य जिनको नहीं देखसकते हैं, परन्तु जो संसारको नहीं देखते वह उन्हैं हृदयमें विराजमान देखते हैं ॥ २२ ॥ जो ज्योतिके बाहर कहे जाकर अदृश्य हुए हैं, फिर जो ज्योतिके परे कहे जाकरभी दृश्यमान हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका जिसमें प्रतिष्ठित हैं, और जिनसे प्रगट हुआ है ॥ २३ ॥ जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र रक्षा करनेवाले हैं उनको नमस्कार है । जो आद्य, प्रजापति और जो पितरोंके एक मात्र पति हैं, जो देवताओंके स्वामी हैं, उन्हीं सबके विधाता कृष्णको नमस्कार है ॥ २४ ॥ जो प्रवृत्ति निवृत्ति, किसीप्रकारकेभी कर्मसे लिप्त नहीं हैं, जो स्वर्ग अपवर्ग (मोक्ष) फलको

दान करते हैं, उन्हीं गदाधरको नमस्कार है ॥ २५ ॥ जिनके स्मरण करतेही तत्क्षण सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं उन्हीं विशुद्धस्वरूप और परमस्वरूप हरि मेधाको नमस्कार है ॥ २६ ॥ जिन अखिल (समस्त) भुवनके आधारभूत ईश्वर अजन्मा अविनाशीके दर्शन करके फिर जन्म और मृत्यु नहीं पाते, मैं उनको नमस्कार करती हूं ॥ २७ ॥ जो यज्ञपुरुष, यज्ञके आश्रयहो यज्ञद्वारा पूजित होतेहैं उन सबके प्रभु ईश्वर और विष्णुभगवान्‌को नमस्कार करती हूं ॥ २८ ॥ ज्ञानियोंकी गति और वेदके जाननेवालोंसे चारों वेदोंके बीचमें गाये जाते हैं, उन्हीं वेदवेद्य (वेदहीसे जानने योग्य) जयशील विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है ॥ २९ ॥ जिनसे संसारका जन्म है, और जिनमें प्रलय होताहै, और जिनसे समस्त विश्व प्रतिष्ठित हैउन्हीं महात्मा विष्णुको नमस्कार है ॥ ३० ॥ जो ब्रह्मादि स्तम्भपर्यन्त सम्पूर्ण संसारको

यश्चिंत्यमानोमनसासद्यःपापंव्यपोहति ॥ नमस्तस्मैविशुद्धायपरस्मैहरिमेधसे ॥ २६ ॥ यंपश्यंत्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम् ॥ नपुनर्जन्ममरणं
प्राप्नुवंतिनमामितम् ॥ २७॥ योयज्ञैर्यज्ञपुरुषइज्यतेयज्ञमास्थितः ॥ तंयज्ञपुरुषंविष्णुंनमामिप्रभुमीश्वरम् ॥ २८॥ गीयतेसर्ववेदेषुवेदविद्भिर्विदांगतिः ॥
यस्तस्मैवेदवेद्यायविष्णवेजिष्णवेनमः ॥ २९ ॥ यतोविश्वंसमुद्भूतंयस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥ विश्वोद्भवप्रतिष्ठायनमस्तस्मैमहात्मने ॥ ३० ॥ ब्रह्मादिस्तं
बपर्यंतंव्याप्तंयेनचराचरम् ॥ मायाजालंसमुन्नद्धंतमुपेंद्रंनमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ यस्तृतीयस्वरूपस्थोबिभर्त्यखिलमीश्वरः ॥ विश्वंविश्वपतिंविष्णुंतंनमा
मिप्रजापतिम् ॥ ३२ ॥ मूर्तंतमोऽसुरमयंतद्विनाविनिहंतियः ॥ रात्रिजंसूर्यरूपीचतमुपेंद्रंनमाम्यहम् ॥३३॥ यस्याक्षिणीचंद्रसूर्यौसर्वलोकेशुभाशुभम् ॥
पश्यतःकर्मसततंतमुपेन्द्रंनमाम्यहम् ॥ ३४ ॥ यस्मिन्सर्वेश्वरेनित्यंसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ नानृतंतमजंविष्णुंनमामिप्रभुमव्ययम् ॥ ३५ ॥ यदे
तत्सत्यमुक्तंमेभूयश्चातोजनार्दन ॥ सत्येनतेनसकलाःपूर्यंतांममनोरथाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

व्याप्त कर विराजमान होरहे हैं और जिन्होंने मायाजालको फैलाया है उन्हीं उपेन्द्रको नमस्कार करती हूं ॥ ३१ ॥ जो ईश्वर तीसरे स्वरूपमें स्थित होकर सम्पूर्ण संसारका पालन करते हैं उन्हीं विश्वरूपी विश्वपति प्रजापति विष्णुको मैं नमस्कार करती हूं ॥ ३२ ॥ जो असुररूपी मूर्तिमान् अंधकारको नानावतारसे और रात्रिजनित अंधकारको सूर्य रूपसे नाश करते हैं उन्हीं उपेंद्रको नमस्कार करती हूं चंद्रमा और सूर्य जिनके नेत्र हैं, इनके द्वारा जो सम्पूर्ण लोकोंके शुभाशुभको देखतेहैं उन्हीं उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जिन सर्वेश्वरसे यह हमारी स्तुति किसीप्रकारसेभी मिथ्या नहीं होती उन जन्म मृत्युरहित चरा चरके नियन्ता विष्णुको नमस्कार करतीहूं ॥ ३५ ॥ हेजनार्दन ! मैंने जो यह सत्य कहा है उसी सत्यके बलसे मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्णहो ॥ ३६ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां अदितिस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

लोमहर्षणजी बोले कि, अदितिके इसप्रकारसे स्तुति करनेपर सब प्राणियोंके अदृश्य विष्णुभगवान् वासुदेव उनके सम्मुख आकर बोले ॥ १ ॥ कि, हे धर्मज्ञे
अदिति ! तुम जिस अभिलाषी मनोरथोंकी इच्छासे उत्कण्ठित हुई हो सो मेरी प्रसन्नतासे उसको निःसन्देह प्राप्त करोगी॥ २॥ हे महाभागे ! सुनो, तुमको इच्छानुसार
वर प्राप्त होगा मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता ॥ ३ ॥ जो मनुष्य मेरे इस वनमें तीन रात्रितक वास करता है, उसकी सम्पूर्ण अभिलाषा और समस्त मनोरथ
सिद्ध होजाते हैं ॥ ४ ॥ तब जो मनुष्य यहाँ वसता है उसकी तो बातही क्या है ? दूर रहकरभी जो मनुष्य इस वनका स्मरण करता है वह परम
पदको प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासे इस वनमें पांच तीन दो वा एकब्राह्मणकोभी भोजन कराता है उसको परमगति प्राप्त होती है ॥ ६ ॥ अदिति बोली

लोमहर्षणउवाच ॥ एवंस्तुतोथभगवान्वासुदेवउवाचताम् ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांतस्याःसंदर्शनेस्थितः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मनोरथांस्त्वमदितेया
निच्छस्यभिवाञ्छितान् ॥ तांस्त्वंप्राप्स्यसिधर्मज्ञेमत्प्रसादान्नसंशयः ॥ २ ॥ शृणुत्वंचमहाभागेवरोयस्तेहृदिस्थितः ॥ मद्दर्शनंहिविफलंनकदाचिद्भ
विष्यति ॥ ३ ॥ यश्चेहमद्वनेस्थित्वात्रिरात्रंवैकरिष्यति ॥ सर्वेंकामाःसमृध्यंतेमनसायानिहेच्छति ॥ ४ ॥ दूरस्थोऽपिवनंयस्तुह्यदितेस्मरतेनरः ॥
सोऽपियातिपरंस्थानंकिंपुनर्निवसन्नरः ॥५॥ यश्चेहब्राह्मणान्पञ्चत्रीन्वाद्वावेकमेववा ॥ भोजयेच्छ्रद्धयायुक्तःसयातिपरमांगतिम् ॥ ६॥ अदितिरुवाच ॥
यदिदेवःप्रसन्नस्त्वंभक्त्यामेभक्तवत्सल ॥ त्रैलोक्याधिपतिःपुत्रस्तदस्तुममवासवः ॥ ७ ॥ हृतंराज्यंहृतश्चास्ययज्ञभागइहासुरैः ॥ त्वयिप्रसन्नेवरदत
त्प्राप्नोतुसुतोमम ॥ ८ ॥ हृतंराज्यंनदुःखायममपुत्रस्यकेशव ॥ प्रपन्नदायविभ्रंशःपीडांमेकुरुतेहृदि ॥ ९ ॥ भगवानुवाच ॥ कृतःप्रसादोहिमया
तवदेवियथेप्सितम् ॥ स्वांशेनचैवतेगर्भेसंभविष्यामिकश्यपात् ॥ १० ॥ तवगर्भसमुद्भूतस्ततस्तेयेसुरारयः ॥ तानहंनिहनिष्यामिनिर्वृताभवनंदिनि ॥
॥ ११ ॥ अदितिरुवाच ॥ प्रसीददेवदेवेशनमस्तेविश्वभावन ॥ नाहंत्वामुदरेवोढुमीशशक्ष्यामिकेशव ॥ यस्मिन्प्रतिष्ठितंसर्वंविश्वयोनिस्त्वमीश्वरः ॥ १२ ॥

कि, हे देव ! हे भक्तवत्सल ! यदि आप मेरी भक्तिको देखकर प्रसन्न हुए हैं, तो मेरा पुत्र इन्द्र तीनों लोकोंका स्वामी हो ॥ ७ ॥ असुरोंने उसके राज्यको छीनलिया
है और यज्ञभागभी नहीं देते हैं यदि आप प्रसन्न होकर वर देते हो तो मेरा पुत्र इन्द्र इनको फिर प्राप्त करै ॥ ८ ॥ हे केशव ! मेरे पुत्रका राज्य गया है इससे मुझे
दुःख नहीं होता है किन्तु उसको जो यज्ञमें भाग नहीं मिलता है इसीसेही मेरे हृदयमें अत्यन्त मर्मवेदना होती है ॥ ९ ॥ भगवान् बोले–कि, हे देवि !
मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूं. इसकारण तुम्हारी सब अभिलाषा पूर्ण होगी. मैं कश्यपके औरस हो तुम्हारे गर्भमें अपने अंशसे उत्पन्न हूंगा ॥ १० ॥ तुम्हारे
गर्भमें जन्म लेकर सम्पूर्ण असुरकुलको निर्मूल करूंगा. हे नंदिनि ! शान्तिको प्राप्त करो ॥ ११ ॥ अदिति बोली कि, हे देवदेवेश ! प्रसन्नहो, हे विश्वभावन ! तुमको

नमस्कार है, हे ईश ! हे केशव ! मैं आपको अपने उदरमें वहन करनेको समर्थ नहींहूंगीं. कारण कि, आप सम्पूर्ण विश्वके उद्भवक्षेत्र और सबके ईश्वर हो, और फिर आपमेंही यह सम्पूर्ण संसार स्थित है ॥ १२ ॥ भगवान् बोले कि, हे नंदिनि ! मैं तुमको और अपनेको वहन करूंगा, तुमको किसीप्रकारकीभी पीड़ा नहीं होगी, तुम सुखसे रहो, मैं जाताहूं ॥ १३ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, यह कहकर भगवान् अन्तर्धान होगये, अदिति गर्भवती हुई ॥ १४ ॥ कृष्णभगवान्‌के गर्भमें आनेपर सम्पूर्ण पृथ्वी चलायमान होगई, सम्पूर्ण पर्वत कंपायमान होगये, समस्त महासागर क्षोभको प्राप्त होनेलगे ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणपुंगवो ! अदिति जिस २ स्थानमें जाती और अपने उत्तम चरण रखतीं उस उस स्थानकी पृथ्वी खेदसे नीची होजाती थी ॥ १६ ॥ मधुसूदनके गर्भमें आनेसे परमात्माने जिसप्रकारसे कहाथा

श्रीभगवानुवाच ॥ अहंचत्वांवहिष्यामिस्वात्मानंचैवनंदिनि ॥ नचपीडांकरिष्यामिस्वस्तितेऽस्तुव्रजाम्यहम् ॥१३॥ लोमहर्षणउवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितेदेवेदितिर्गर्भंसमादधे ॥ १४ ॥ गर्भस्थितेततःकृष्णेचचालसकलाक्षितिः ॥ चकंपिरेमहाशैलाजग्मुःक्षोभंमहाब्धयः ॥ १५ ॥ यतोयतोऽदितिर्याति ददातिपदमुत्तमम् ॥ ततस्ततःक्षितिःखेदान्ननामद्विजपुंगवाः ॥१६॥ दैत्यानामपिसर्वेषांगर्भस्थेमधुसूदने ॥ बभूवतेजसोहानिर्यथोक्तंपरमात्मना ॥१७॥ इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येअष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वासमस्तानसुरेश्वरः ॥ प्रह्लादमथपप्रच्छबलिरात्मपितामहम् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ ताताःनिस्तेजसोदैत्यानिर्दग्धाइववह्निना ॥ किमेतेसहसैवाद्यब्रह्मदंडहताइव ॥ २ ॥ दुरिष्टंकिंनुदैत्यानांकिंकृत्यासुरनिर्मिता ॥ नाशायैषासमुद्भूतायेननिस्तेजसोऽसुराः ॥ ३ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ इत्थंदैत्यवरस्तेनपृष्टःपौत्रेणब्राह्मणाः ॥ चिरंध्यात्वाजगादैवमसुरंतंतदाबलिम् ॥ ४ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ चलंतिगिरयोभूमिर्जहातिसहजांस्थितिम् ॥ नद्यःसमुद्राःक्षुभितादैत्यानिस्तेजसःकृताः ॥ ५ ॥

उसीके अनुसार सम्पूर्ण दैत्योंके तेजकी हानि हुई ॥ १७ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां वामनदेवजन्मनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, सम्पूर्ण असुरोंको तेजहीन देखकर असुरेश्वर बलि अपने पितामह प्रह्लादजीसे पूछनेलगे ॥ १ ॥ कि, हे तात ! दैत्यगण अग्निसे दग्धहुएकी समान अथवा ब्रह्मशापसे ग्रस्त हुएकी समान सहसा किसकारणसे तेजहीन होगये ? ॥ २ ॥ इन्होंने कौनसा दुरित अनुष्ठान किया है, अथवा देवताओंने इनके नाशके निमित्त ऐसा क्या कृत्या (अभिचार मारणप्रयोग) प्रगट किया है ? जिससे इनके तेजकी हानि हुई है ॥ ३ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, हे ब्राह्मणगण ! दैत्येश्वर अपने पोतेसे इसप्रकार पूछेजाकर बहुत देरतक चिन्ताकर फिर उनसे इसप्रकार बोले ॥४॥ प्रह्लाद बोले कि, पर्वत सब चलते हैं, पृथ्वी अपने स्वभावकी स्थितिको

त्यागकर विचलित होती है, सम्पूर्ण नदियें और सागर क्षुभित होगये हैं, दैत्योंकेभी तेजकी हानि हुई है ॥ ५ ॥ सूर्यके उदय होनेपर ग्रह पहलेकी समान अबं नहीं जाते, ऐसा अनुमान होता है कि, किसी कारणसे देवताओंकी परम समृद्धिकी बढ़ती हुई है ॥ ६ ॥ हे महावाहो ! दानवेश्वर ! यह कारण अत्यन्त बड़ा है, छोटा नहीं है विचार करो कि, किसप्रकारकी क्रियाका करना कर्तव्य होता है॥ ७॥लोमहर्षणजी बोले कि, असुरोत्तम प्रह्लाद दानवपतिसे इसप्रकार कहकर अत्यन्त भक्तिके साथ देवदेव जगतपति विष्णुके ध्यानमें मग्न हुए ॥ ८ ॥ वह असुर प्रह्लादजी प्रथम ध्यान करके पीछे भगवान् जनार्दनका यथार्थ विचार करने लगे ॥ ९ ॥ तब अदितिके उदरमें उन्हें वामनाकारसे देख और उन वामनदेवके अन्तरमें वसुगण, रुद्रगण, अश्वियुगल, मरुद्गण ॥ १० ॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण, गंधर्वगण, उरग

सूर्योदयेयथापूर्वंतथागच्छंतिनग्रहाः ॥ देवतानांपरालक्ष्मीःकारणेनानुमीयते ॥ ६ ॥ महदेतन्महावाहोकारणंदानवेश्वर ॥ नह्यल्पमितिमंतव्यं
क्रियाकार्याकथंचन ॥ ७ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ इत्युक्त्वादानवपतिंप्रह्लादःसोऽसुरोत्तमः ॥ अत्यर्थंभक्तोदेवेशंजगाममनसाहरिम् ॥ ८ ॥ सध्यानंप्रथमं
कृत्वाप्रह्लादस्तुततोऽसुरः ॥ विचारयामासततोयथादेवंजनार्दनम् ॥९॥ सददर्शोदरेतस्याःप्रह्लादोवामनाकृतिम् ॥ तदंतश्चवसून्रुद्रानाश्विनौमरुतस्तथा ॥
॥ १० ॥ साध्यान्विश्वांस्तथादेवान्गंधर्वोरगराक्षसान् ॥ विरोचनंचतनयंबलिंचासुरनायकम् ॥११ ॥ जंभंकुजंभंनरकंबाणमन्यांस्तथासुरान् ॥ आत्मानं
गगनंवायुंमनस्तोयंहुताशनम् ॥ १२ ॥ समुद्राद्रिद्रुमद्वीपान्सरांसिचपशून्महीम् ॥ वयोमनुष्यानखिलांस्तथैवचसरीसृपान् ॥ १३ ॥ समस्तलोकस्रष्टारं
ब्रह्माणंभवमेवच ॥ ग्रहनक्षत्रताराद्यानृषींश्चैवप्रजापतिम् ॥ १४ ॥ संपश्यन्विस्मयाविष्टःप्रकृतिस्थःक्षणात्पुनः ॥ प्रह्लादःप्राहदैत्येंद्रंबलिंवैरोचनंतदा ॥
॥ १५ ॥ वत्सज्ञातंमयासर्वंयदर्थंभवतामियम् ॥ तेजसोहानिरुत्पन्नातच्छृणुत्वमशेषतः ॥ १६ ॥ देवदेवोजगद्योनिर्जगदादिरजःप्रभुः ॥ अनादिरादिर्वि
श्वस्यवरेण्योवरदोहरिः ॥ १७ ॥

गण, राक्षसगण, अपने पुत्र विरोचन, उनके पुत्र बलि ॥ ११ ॥ जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण और अनेक असुरोंको आत्मा (निजस्वरूप) आकाश, वायु, मन, जलं, अग्नि ॥ १२॥ समुद्र, पर्वत, द्रुम, द्वीप, सरोवर, सम्पूर्ण पशु, पृथ्वी और मनुष्य, पक्षी, सरीसृप ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण लोकके स्रष्टा प्रजापति ब्रह्माजी और महेश्वर, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, ऋषिगण ॥ १४ ॥ इनका दर्शन कर आश्चर्यमय होगये, फिर उसीसमय सावधान होकर वह दैत्यनायक विरोचनके पुत्र बलिसे बोले ॥ १५ ॥ कि, हे वत्स ! जिस कारणसे तुम सबोंके यह तेजकी हानि हुई है उसको मैं भलीभाँति जानगया हूं, तुम विस्तारसहित सुनो॥ १६॥ देवताओंकेभी देवता हैं, जो जगत्की

योनि (उत्पत्तिस्थान) और आदि है, जो जन्मरहित और सबके प्रभु हैं,जिनकी आदि नहीं है, परन्तु जो सबके आदिहैं, जो वरेण्य, और वरके देनेवाले हैं, जो सबके शोक और तापको हरण करते हैं ॥ १७ ॥ परावर (प्रथमके और अबके) श्रेष्ठ और परावरवानोंकी गति हैं, जो सब प्रमाणोंकेभी प्रमाणस्वरूप हैं, जो सातों लोकोंके गुरुओंके गुरु हैं उन्हीं जगन्नाथ जनार्दनने जगत्की स्थिति करनेके निमित्त अदितिके गर्भमें अवतार लिया है ॥ १८॥ हेबलि ! वह प्रभुओंके प्रभु और परात्परस्वरूप हैं, उनकी आदि नहीं, मध्य नहीं और अंत नहीं है जो षडैश्वर्यवान् और परमात्मा हैं, जिन्होंने त्रिलोकीको सनाथ (सुरक्षित) करनेके निमित्त अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ १९॥ रुद्र जिनका स्वरूप नहीं जानते, ब्रह्माजीभी जिनको नहीं जानते इन्द्र और सूर्यकोभी जिनकी प्रकृति ज्ञात नहीं है, मरीचि इत्यादिभी जिनके स्वरूप जाननेमें समर्थ नहीं हैं, हे दैत्याधिपते ! यह उन वासुदेवने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ २० ॥ वेदके जाननेवाले मनुष्य जिनको अक्षयस्वरूप कहते हैं, जो

परावराणांपरमःपरापरवतांगतिः ॥ प्रभुःप्रमाणंमानानांसप्तलोकगुरोर्गुरुः ॥ स्थितिंकर्त्तुंजगन्नाथोह्यदित्यागर्भंगःप्रभुः ॥ १८ ॥ प्रभुःप्रभूणांपरमः पराणामनादिमध्योभगवाननंतः ॥ त्रैलोक्यमंशेनसनाथमेकःकर्त्तुंमहात्मादितिजोवतीर्णः ॥ १९ ॥ नयस्यरुद्रोनचपद्मयोनिर्नेन्द्रोनसूर्येंदुमरीचिमिश्राः॥ जानंतिदैत्याधिपतेस्वरूपंसवासुदेवःकलयावतीर्णः ॥ २० ॥ यमक्षरंवेदविदोवदंतिविशंतियत्रैवविधूतपापाः ॥ यस्मिन्प्रविष्टानपुनर्भवंतितंवासुदेवंप्रणमामिचाद्यम् ॥ २१ ॥ भूतान्यशेषाणियतोभवंतियथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम् ॥ लयंचयस्मिन्प्रलयेप्रयांतितंवासुदेवंप्रणतोस्म्यचिंत्यम् ॥२२॥ रूपंचचक्षुर्ग्रहणेत्वगेषास्पर्शग्रहेऽथोरसनारसस्य ॥ घ्राणंचगंधग्रहणेनियुक्तंत्वग्घ्राणचक्षूंषिनतानियस्य ॥ २३ ॥ सर्वेश्वरोवेदितव्यःसयुक्त्याह्यनादिमध्यंत्वनघंचदेवम् ॥ नमाम्यहंतंहरिमीशितारंलोकैकनाथंभवभीतिनाशनम् ॥ २४ ॥

अपने पापोंसे छुटकारा पाचुके हैं ऐसे पुरुष जिनमें प्रविष्ट होते हैं, जिसमें प्रवेश करनेसे (प्राणी) जन्म मरणसे छूटजाता है सबके आदि उन्हीं वासुदेवको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २१ ॥ जिसप्रकारसे अनेक लहरैं समुद्रसे उत्पन्न होती हैं उसी प्रकारसे सम्पूर्ण जीवगण जिससे प्रगट हुए हैं, और प्रलयके समय जिनमें लीन होजाते हैं, उन्हीं अचिन्त्यस्वरूप वासुदेवको प्रणाम करताहूं ॥ २२ ॥ जिन्होंने सबके नेत्रोंको रूपके ग्रहणमें, इस त्वचाको, स्पर्शके ग्रहणमें रसना (जिह्वा) को रसके ग्रहणमें, और घ्राणा (नासिका) को गंधके परिग्रहणमें नियुक्त किया है, परन्तु जो स्वयं त्वचा, घ्राण, चक्षु, आदिकसे रहित हैं, जो सबके ईश्वर हैं, और युक्तिके अनुसार अवश्य जाननेयोग्य हैं जिनकी आदि नहीं और जिनको पापका लेशमात्रभी नहीं है ॥२३॥जो नित्य लीलामय विग्रह और अपने प्रकाशमें

चैतन्यस्वरूप हैं, जो सबके निग्रहानुग्रहमें तिरस्कार और पुरस्कार देते हैं जो सम्पूर्ण लोकोंके अद्वितीय रक्षा करनेवाले हैं और जो संसारके भयको नाश करते हैं मैं उन्हीं हरिको नमस्कार करताहूं ॥ २४ ॥ जिन्होंने एकमात्र दाँतकी सहायतासे इस पृथ्वीका उद्धार कियाथा, और सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं. जो सब जगतके हरनेवाले हैं, उन्हीं सबके पूजनीय और नियन्ता सर्वव्यापी हरिको नमस्कार करताहूं ॥ २५ ॥ जिन्होंने अदितिके गर्भसे अवतार लेतेही सब असुरोंके तेजको हरण किया है, सम्पूर्ण संसाररूपी वृक्षोंके कुठाररूप अनंतस्वरूप उन हरिको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे महासुरेन्द्र! उन जगद्योनि महात्मा वासुदेवने सोलह, अंशोंसे सुरेन्द्रकी माताके उदरमें प्रविष्ट होकर तुम्हारे बल और वपुको हरण किया है ॥ २७ ॥ बलि बोले कि, हे तात! जिनसे हमें विपत्ति आकर उपस्थित हुई है,

येनैकदंष्ट्रेणसमुद्धृतेयंधराचलाधारयतीहविश्वम् ॥ इदंचहर्तासकलंजगद्यस्तमीड्यमीशंप्रणतोस्मिविष्णुम् ॥ २५ ॥ अंशावतीर्णेनचयेनगर्भेहृतानितेजां
सिमहासुराणाम् ॥ नमामितंदेवमनंतमीशमशेषसंसारतरोःकुठारम् ॥ २६ ॥ देवोजगद्योनिरयंमहात्मासषोडशांशेनमहासुरेंद्र ॥ सुरेंद्रमातुर्जठरंप्रविष्टो
हृतानिवस्तेनबलंवपूंषि ॥ २७ ॥ बलिरुवाच ॥ तातकोऽयंहरिर्नामयतोनोभयमागतम् ॥ संतिमेशतशोदैत्यावासुदेवबलाधिकाः ॥ २८ ॥ विप्रचित्तिः
शिबिःशंभुर्जंभःकुंभस्तथैवच ॥ हयशिराअश्वशिराभंगकारोमहाहनुः ॥ २९ ॥ वातापिःप्रवशःशुम्भःकुकुराक्षश्चदुर्जयः ॥ एतेचान्येचमेसंतिदैते
यादानवास्तथा ॥ ३० ॥ महाबलामहावीर्याभूभारधरणक्षमाः ॥ एषामेकैकशःकृष्णेनवीर्यबलसंमितः ॥ ३१ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ पौत्रस्यैतद्वचः
श्रुत्वाप्रह्लादोदैत्यपुंगवः ॥ सक्रोधश्चबलिंप्राहवैकुंठाक्षेपवादिनम् ॥ ३२ ॥ विनाशमुपयास्यंतिदैत्यास्तेचापिदानवाः ॥ येषांत्वमीदृशोराजादुर्बुद्धिर
विवेकवान् ॥ ३३ ॥ देवदेवंमहाभागंवासुदेवमजंविभुम् ॥ त्वामृतेपापसंकल्पःकोन्यएवंवदिष्यति ॥ ३४ ॥

वह हरि कौन हैं! देखो वासुदेवकी अपेक्षा अत्यन्त बलवान् सहस्र २ दैत्य हमारे अधीनमें हैं ॥ २८ ॥ विप्रचित्ति, शिबि, शम्भु, जम्भ, कुजम्भ, हयशिरा, भंगकार महाहनु ॥ २९ ॥ वातापि, प्रवश, शुम्भ, कुकुराक्ष, दुर्जय और अनेकदैत्यदानवगण मेरे अधीनमें स्थित हैं ॥ ३० ॥ सभी महाबलवान्, सभी महावीर्य और सभी भूमिके भारको ग्रहण करनेमें समर्थ हैं, इनमें एक जनेकेभी समान कृष्णमें बल वीर्य नहीं है ॥ ३१ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, दैत्यपति प्रह्लाद पोतेके यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधितहो भगवान्के आक्षेपवादमें प्रवृत्त उन बलिसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ तुम्हारे अधीनमें स्थित दैत्य और दानवगण सभी नाशको प्राप्त होंगे जिनके तुम ऐसे दुर्बुद्धि और विचारशून्य राजाहो ॥ ३३ ॥ तुम्हारे अतिरिक्त कौन पाप संकल्प पुरुष देवदेव महाभाग जन्मरहित अणिमादि विभवयुक्त भगवान्के

प्रति इसप्रकारके वचन नहीं कहसकता ॥ ३४ ॥ तुमने जिनका नाम कथन किया है, वह समस्त दैत्य और दानवगण, अधिक क्या कहूं ब्रह्माके सहित देवता, स्थावरपर्यन्त जाति समूह ॥ ३५ ॥ तुम, मैं और पर्वत, पादप, नदी और वनके सहित सम्पूर्ण जगत्, समुद्र और द्वीपके सहित समस्त लोक, चर और अचर ॥ ३६ ॥ जो सबके अभिवादन करनेयोग्य ब्रह्मादिककेभी वंदनीय, सम्पूर्ण संसारके व्याप्त करनेवाले परमात्माके एक २ अंशकी कलासे जन्म ग्रहण किया है और करते हैं तो ऐसा कौन पुरुष है जो उन परमात्माको ऐसे वचन कहसकता है ॥ ३७ ॥ केवल एक तुमही कहसकतेहो कि, तुम्हारा विनाश सन्मुख आगया है, फिर तिस पर तुम्हैं ज्ञानका लेशमात्र नहीं है और उसपर फिर तुमने दुर्बुद्धि अजितेन्द्रिय और वृद्धोंके शासनमें उल्लंघन किया है ॥ ३८ ॥ मैं सर्वथा चिन्ता करताहूं, कारण कि, मेरे घरमें तुम्हारे अधम पिताने जन्म लिया जिसके औरससे देवादिदेव वासुदेवकी निन्दा करनेवाले तुम ऐसे पुत्रने जन्म लिया ॥ ३९ ॥ अनेकजन्मोंमें

यएतेभवताप्रोक्ताःसमस्तादैत्यदानवाः ॥ सब्रह्मकास्तथादेवाःस्थावरांताश्चजातयः ॥३५॥ त्वंचाहंचजगच्चेदंसाद्रिद्रुमनदीवनम् ॥ समुद्रद्वीपलोकाश्चयच्चेङ्गतिचनेङ्गति ॥ ३६ ॥ यस्याभिवाद्यवंद्यस्यव्यापिनःपरमात्मनः ॥ एकैकांशकलाजन्मकस्तमेवंवदिष्यति ॥ ३७ ॥ ऋतेविनाशाभिमुखंत्वामेकमविवेकिनम् ॥ दुर्बुद्धिमजितात्मानंवृद्धानांशासनातिगम् ॥ ३८ ॥ शोच्योऽहंयस्यमेगेहेजातस्तवपिताधमः ॥ यस्यत्वमीदृशःपुत्रोदेवदेवावमानकः ॥ ॥ ३९ ॥ तिष्ठत्यनेकसंसारसङ्घाघौघविनाशिनी ॥ कृष्णेभक्तिरहंतावदवेक्ष्योभवतानकिम् ॥ ४० ॥ नमेप्रियतरंकृष्णादपिदेहंमहात्मनः ॥ इति जानात्ययंलोकोभवांश्चदितिजाधमः ॥ ४१ ॥ जानन्नपिप्रियतरंप्राणेभ्योपिहरिंमम ॥ निंदांकरोषितस्यत्वमकुर्वन्गौरवंमम ॥ ४२ ॥ विरोचनस्तवगुरुर्गुरुस्तस्याप्यहंबले ॥ ममापिसर्वजगतांगुरुर्नारायणोहरिः ॥ ४३ ॥ निंदांकरोषितस्मिंस्त्वंकृष्णेगुरुगुरोर्गुरौ ॥ यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद्भ्रंशमेष्यसि ॥ ४४ ॥ सदेवोजगतांनाथोबलेममजनार्दनः ॥ नत्वहंप्रत्यवेक्ष्यस्तेपितुर्मान्योत्रयोगुरुः ॥ ४५ ॥

किये हुए पापोंको नाश करनेवाली कृष्णभगवान्में मेरी भक्ति वर्तमान् है तब मेरी अपेक्षा करनाभी तुमको उचित नहीं है ॥ ४० ॥ महात्मा कृष्णकी अपेक्षा हमारा देहभी प्यारा नहीं है यह सबलोक जानते हैं और दैत्याधम तुम्हैंभी यह विदितही है ॥ ४१ ॥ तुम हरिको मेरे प्राणोंसेभी प्यारा जानकर हमारा गौरव (अदब) नहीं करके उनकी निन्दा करते हो ॥ ४२ ॥ हे बलि ! देखो विरोचन तुम्हारे गुरु (पिता) हैं फिर मैं उसका गुरु हैं, फिर वे नारायण हरि हमारे तुम्हारेही क्या समस्त जगत्के गुरु हैं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार गुरुकेभी गुरु उनकेभी गुरु उन भगवान् श्रीकृष्णकी जो तुम निन्दा करतेहो इसकारण कुछ दिनके बीचमें शीघ्रही अपने ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होंगे ॥ ४४ ॥ वह देव जनार्दन हमारे और विश्वसंसारके नाथ हैं, मैं जो इसलोकमें तुम्हारे पिताका मान्य होनेसे गुरु हूं, परन्तु तोभी तुमको मेरा

ध्यान नहीं करना चाहिये क्या अर्थात् अवश्य करना चाहिये ॥ ४५ ॥ जिस कारण तुमने जगत्के गुरु जनार्दनकी निन्दामें प्रवृत्तहो इतनाभी ध्यान नहीं दिया, इसीकारणसे मैं तुमको शाप देताहूं ॥ ४६ ॥ तुमने जो भगवान्की निन्दा की है, सो वह मेरे शिर काटनेसेभी कहीं अधिक भारी है इसीकारण तुम राज्यसे भ्रष्ट और पतित होंगे॥४७॥जिसप्रकार कृष्णके अतिरिक्त दूसरा इस संसारसागरसे पार उतारनेवाला नहीं है, उसी प्रकार शीघ्रही तुमको राज्यसे भ्रष्ट हुआ देखूंगा॥४८॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां प्रह्लादवाक्यं नैामकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥ लोमहर्षणजी बोले कि, दैत्यपति बलि अपने गुरु प्रह्लादजीके इसप्रकार अप्रिय वचनको सुनकर वारम्वार प्रणाम कर फिर उनको प्रसन्न करनेलगे ॥ १ ॥ बलि बोले कि, हे तात! प्रसन्नहो, मैं मोहसे ढकगया था मेरे ऊपर क्रोध न करना, मैंने

एतावन्मात्रमप्यत्रनिंदताजगतोगुरुम् ॥ नापेक्षितंत्वयायस्मात्तस्माच्छापंददामिते ॥ ४६ ॥ यथामेशिरसश्छेदादिदंगुरुतरंवचः ॥ त्वयोक्तमच्युताक्षेपि
राज्यभ्रष्टस्तथापत ॥ ४७ ॥ यथानकृष्णादपरःपरित्राणंभवार्णवे ॥ तथाऽचिरेणपश्येयंभवंतंराज्यविच्युतम् ॥ ४८॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्ये
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ इतिदैत्यपतिःश्रुत्वागुरोर्वचनमप्रियम् ॥ प्रसादयामासगुरुंप्रणिपत्यपुनःपुनः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥
प्रसीदतातमाकोपंकुरुमोहहतेमयि ॥ बलावलेपमूढेनमयैतद्वाक्यमीरितम् ॥ २ ॥ मोहापहतविज्ञानःपापोहंदितिजोत्तम ॥ यच्छप्तोस्मिदुराचारस्तंतत्साधु
भवताकृतम् ॥ ३ ॥ राज्यभ्रंशंयशोभ्रंशंप्राप्स्यामीतिततस्त्वहम् ॥ विषण्णोसियथातातथैवाविनयःकृतः ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यमन्यद्वाकिमपीहनदुर्ल
भम् ॥ संसारेदुर्लभास्तातगुरवोयेभवद्विधाः ॥ ५ ॥ तत्प्रसीदनमेकोपंकर्त्तुमर्हसिदैत्यप ॥ त्वत्कोपपरिदग्धोहंपरितप्येदिवानिशम् ॥६॥ प्रह्लादउवाच ॥
वत्सकोपेनमेमोहोजनितस्तेनतेमया ॥ दत्तःशापोविवेकश्चमोहेनापहृतोमम ॥ ७ ॥ यदिमोहेनमेज्ञानंनाक्षिप्तंस्यान्महासुर ॥ तत्कथंसर्वगंजानन्ह
रिंकंचिच्छपाम्यहम् ॥ ८ ॥

बलके गर्वसे मूढ होकर ऐसा कहा था ॥२॥ मोहके वशसे मुझे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका बोध नहीं रहा, अधिक क्या कहूं हे दितिजोत्तम! आपने मुझ पापात्मा और दुराचारीको जो शाप दिया है वह अच्छा किया ॥ ३ ॥ हे तात! आप खेदित हुए हैं ऐसाही अविनय किया था, इसकारण मैं राज्य और यशसे अवश्य भ्रष्ट हूंगा॥४॥ हे तात! देखो त्रिलोकीके ऐश्वर्य तथा अन्यप्रकारकी वस्तुमेंभी दुर्लभ नहीं हैं, परन्तु इस संसारमें आपके समान गुरुका होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५ ॥ हे दैत्यपति! इसकारण प्रसन्न हो मेरे ऊपर क्रोधित न हो, आपके क्रोधसे मैं अत्यन्त दग्ध होकर रातदिन अनुतापका अनुभव करूंगा ॥ ६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे वत्स! क्रोधसे मुझे मोह उत्पन्न हुआ और मोहने मेरे विवेकका अपहरण करलिया, इसी कारणसे मैंने तुम्हें शाप दिया है ॥ ७ ॥ हे महाअसुर! यदि मोहके वशसे मेरा ज्ञान न

जाता रहता तो मैं सर्वव्यापी हरिको जानकरभी किसीको क्यों शाप देता ॥ ८ ॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! मैंने तुमको जो शाप दिया है सो अवश्यही होनहार है, इसकारण तुम खेदित न होना ॥ ९ ॥ आजसे तुम देवाधिदेवं भगवान् अच्युतकी भक्ति करो ऐसा होनेसे वह तुम्हारा उद्धार करदेंगे ॥ १० ॥ तुम मेरेद्वारा शापित होकर यदि भगवान्‌का स्मरण करोगे तो जिसप्रकारसे तुम्हारा मंगल होसकैगा मैं उसी विशेषतासे कीर्तन करूंगा ॥ ११ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, इस ओर सर्वकामोंकी समृद्धिको देनेवाले परमयशस्वी भगवान् हरि अदितिके गर्भमें अवतार लेकर धीरे २ बढने लगे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त दशवें मासमें प्रसवकाल उपस्थित होजानेपर भगवान् गोविन्दने वामनमूर्तिसे अवतार लिया ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण अमरगणोंके ईश्वर उन जगन्नाथ हरिने अवतार लेतेही देवताओंकी माता अदिति आदि सभीने अपने २ दुःखको

योऽयंशापोमयादत्तोभवतेदैत्यपुंगव ॥ भाव्यमेतेनतेनूनंतस्मात्त्वंमाविषीदवै ॥ ९ ॥ अद्यप्रभृतिदेवेशेभगवत्यच्युतेहरौ ॥ भवेस्त्वंभक्तिमानीशेसतेत्राताभविष्यति ॥ १० ॥ शापंप्राप्यचमेवीरदेवेशःसंस्मृतस्त्वया ॥ तथातथावदिष्यामिश्रेयस्त्वंप्राप्स्यसेयथा ॥ ११ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ अदितिर्वैरमासाद्यसर्वकामसमृद्धिदम् ॥ क्रमेणैवहरिर्वृद्धिंदेवःप्राप्तोमहायशाः ॥ १२ ॥ ततोमासेचदशमेकालेप्रसवआगते ॥ अजायतसगोविंदोभगवान्वामनाकृतिः ॥ १३ ॥ अवतीर्णेजगन्नाथेतस्मिन्सर्वामरेश्वरे ॥ देवाश्चमुमुचुर्दुःखंदेवमाताऽदितिस्तथा ॥ १४ ॥ ववुर्वाताःसुखस्पर्शाःविरजस्कमभून्नभः ॥ धर्मेचसर्वभूतानांतदामतिरजायत ॥ १५ ॥ नोद्वेगश्चाप्यभूद्देहेमानवानांद्विजोत्तमाः ॥ तदाहिसर्वभूतानांधर्मेमतिरजायत ॥ १६ ॥ तंजातमात्रंभगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ जातकर्मादिकांकृत्वाक्रियांतुष्टावचप्रभुः ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जयाधीशजयाजेयजयसर्वगुरोहरे ॥ जन्ममृत्युजरातीतजयानंतजयाच्युत ॥ १८ ॥ जयाजितजयाशेषजयाव्यक्तस्थितेजय ॥ परमार्थार्थसर्वज्ञज्ञानज्ञेयार्थनिश्चित ॥ १९ ॥

दूर किया अर्थात् अपने २ पदप्राप्तिको प्रत्यासन्न मानके प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ और पवन सुखदायी होकर बहनेलगा, आकाश निर्मल होगया, उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंकी धर्ममें बुद्धि हुई ॥१५॥ हे द्विजोत्तमो ! मनुष्योंके शरीरमें अब उद्वेग (घबराहट) नहीं रहा, सम्पूर्ण प्राणिही स्वस्थचित्त हुए ॥ १६ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजी वामनरूपी भगवान्‌के प्रकट होतेही उनकी जातकर्मादि क्रियाओंको कर स्तुति करनेलगे ॥ १७ ॥ हे अधीश ! तुम्हारी जयहो । हे अजेय ! तुम्हारी जय हो ! हे सर्वगुरो हरे ! तुम्हारी जय हो, हे जन्ममृत्यु जरासे रहित अनन्तस्वरूप तुम्हारी जय हो, हे अच्युत ! तुम्हारी जय हो ! ॥ १८ ॥ हे अजित ! तुम्हारी जय हो, हे परमार्थभूत अर्थस्वरूप ! हे सर्वज्ञ हे ज्ञानज्ञेय ! तुम्हारी जय हो, हे सकलअर्थमें निश्चित (अवश्यकर रहनेवाले विभु) तुम्हारी जय हो ॥ १९ ॥

हे समस्तजगत्के साक्षीरूप ! तुम्हारी जय हो, हे जगत्के कर्ता ! हे जगद्गुरो ! तुम्हारी जय हो, हे चराचराधीश्वर ! आपही स्थिति समयमें सबका पालन करते हो
अतः तुम्हारी जय हो ॥ २० ॥ हे अखिलस्वरूप ! तुम्हारी जय हो, हे अशेषस्वरूप ! तुम्हारी जय हो, हे सबके हृदयमें स्थित रहनेवाले तुम्हारी जय हो, हे
आदिमध्यान्तमय ! हे सर्वज्ञानमय ! हे उत्तम ! तुम्हारी जय हो ॥ २१ ॥ हे मुमुक्षुओंके अनिर्देश्य ! हे मुक्तिकामयोगियोंसे नित्यदृष्ट ! हे ईश्वर ! तुम्हारी जय हो !
हे दमादिगुणभूषण ! तुम्हारी जय हो ॥ २२ ॥ हे अतिसूक्ष्म ! और दुर्ज्ञेयस्वरूप ! हेजगन्मूल ! और जगन्मय ! तुम्हारी जय हो, हे सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्वरूप ! तुम्हारी
जय हो, हे योगिन् ! हे अतीन्द्रिय ! तुम्हारी जय हो ॥ २३ ॥ हे स्वमायायोगस्थ ! तुम्हारी जय हो, हे शेषभोगशायिन् ! हे अक्षरस्वरूप ! तुम्हारी जय हो, हे
एकमात्रदन्तद्वारा वसुन्धराको उद्धार करनेवाले तुम्हारी जय हो ॥ २४ ॥ हे हिरण्यकशिपुके हृदयको विदीर्ण करनेवाले नृसिंहरूप ! तुम्हारी जय हो, हर सम

जयाशेषजगत्साक्षिञ्जगत्कर्त्तर्जगद्गुरो ॥ जगतोऽजगतश्चेशास्थितौपालयसेजय ॥ २० ॥ जयाखिलजयाशेषजयसर्वह्रदिस्थित ॥ जयादिमध्यांतमयसर्व
ज्ञानमयोत्तम ॥ २१ ॥ मुमुक्षुभिरनिर्देश्यनित्यहृष्टजयेश्वर ॥ योगिभिर्मुक्तिकामैस्तुदमादिगुणभूषण ॥ २२ ॥ जयातिसूक्ष्मदुर्ज्ञेयजगन्मूलज
गन्मय ॥ जयसूक्ष्मातिसूक्ष्मत्वंजययोगिन्नतींद्रिय ॥ २३ ॥ जयस्वमायायोगस्थशेषभोगशयाक्षर ॥ जयैकदंष्ट्राप्रांतेनसमुद्धृतवसुंधर ॥ २४ ॥
नृकेसरिन्सुराराातिवक्षःस्थलविदारण ॥ सांप्रतंजयविश्वात्मन्मायावामनकेशव ॥ २५ ॥ स्वमायापटलच्छन्नजगद्धातर्जनार्दन ॥ जयाचिंत्यजयानेकस्व
रूपैकनिधेप्रभो ॥ २६ ॥ वर्द्धस्ववर्द्धितानेकविकारप्रकृतेहरे ॥ त्वयैषाजगतीशेषसंस्थिताधर्मपद्धतिः ॥ २७ ॥ नत्वामहंनचेशानोनेंद्राद्यास्त्रिदशाहरे ॥
ज्ञातुमीशानऋषयःसनकाद्यानयोगिनः ॥ २८ ॥ त्वंमायापटसंवीतोजगत्यत्रजगत्पते ॥ कस्त्वांवेत्स्यतिसर्वेशत्वत्प्रसादंविनानरः ॥ २९ ॥

यभी मायारूप करके वामनमूर्ति धारण करनेवाले ! हे विश्वात्मन् ! हे केशव ! तुम्हारी जय हो ॥ २५ ॥ हे अपनी मायाजालसे आच्छन्न (ढकाहुआ) जगत्के
विधातः ! हे जनार्दन ! तुम्हारी जय हो, हे अचिन्त्य ! और अनेकस्वरूप ! हे एकनिधे ! हे प्रभो ! तुम्हारी जय हो ॥ २६ ॥ हे वर्द्धित किये हैं अनेक
विकार (कार्य) और उसके प्रकृति (कारण) को जिन्होंने ऐसे स्वरूपवाले ! हे हरे ! आपहीने सहस्रशीर्ष शेषभगवान्के मस्तकपर इस धर्मपद्धति धर्ममार्ग
अर्थात् कर्मभूमि इस पृथ्वीको स्थापित किया है ॥ २७ ॥ हे हरे ! मैं तुमको नहीं जानता हूं, और महादेवकोभी तुम्हारा स्वरूप विदित नहीं है, इन्द्रादि देवताभी
तुम्हैं नहीं जानसकते, ऋषि और सनकादि योगियोंकोभी तुम्हारा स्वरूप विदित नहीं है ॥ २८ ॥ हे जगत्पते ! तुम मायारूपी वस्त्रसे वेष्टितहोकर इस संसारमें विराज

मान हो, इसकारण हे सर्वेश ! कौन तुम्हारी कृपाके विना तुमको जानसकता है? ॥ २९ ॥ हे प्रसन्नमुखवाले ! हे प्रभो ! जो मनुष्य तुम्हारी आराधना करते हैं केवल वही तुमको जान सकते हैं दूसरे नहीं ॥ ३० ॥ हे नंदीश्वर शिवकेभी ईश्वर ! हेईशान ! विभो ! हे पृथुलोचन ! हे विश्वात्मन् ! तुम इस संसारके पालनके निमित्त वृद्धिको प्राप्तहो ॥ ३१ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, वे वामनरूपी हृषीकेश इसप्रकार स्तुति किये जाकर मंद मुसकुराते हुए गौरवयुक्त गंभीरभावसे यह वचन बोले ॥ ॥ ३२ ॥ प्रथम आपने इन्द्रादिदेवता और कश्यपके सहित हमारी स्तुति कीथी, उसीके अनुसार मैंने इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य देनेके निमित्त प्रतिज्ञा की ॥ ३३ ॥ फिर पुनर्वार अदितिकी स्तुति करनेपर उसके निकटभी इसप्रकारकी प्रतिज्ञा कर कहाथा कि, मैं इन्द्रको निष्कंटक (शत्रुरहित) त्रिलोकीका राज्य दूंगा ॥ ३४ ॥

त्वमेवाराधितोयेनप्रसादसुमुखःप्रभो ॥ सएवकेवलंदेववेत्तित्वांनेतरोजनः ॥ ३० ॥ नंदीश्वरेश्वरेशानविभोवर्द्धस्ववामन ॥ प्रभवायास्यविश्वस्यविश्वात्मन्पृथुलोचन ॥ ३१ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ एवंस्तुतोहृषीकेशःसतदावामनाकृतिः ॥ प्रहस्यभावगंभीरमुवाचारूढसंपदम् ॥ ३२ ॥ स्तुतोहंभवतापूर्वमिंद्राद्यैःकश्यपेनच ॥ मयाचास्यप्रतिज्ञातमिंद्रस्यभुवनत्रयम् ॥ ३३ ॥ भूयश्चाहंस्तुतोऽदित्यातस्याश्चापिमयाश्रुतम् ॥ यथाशक्रायदास्यामित्रैलोक्यं हतकंटकम् ॥ ३४ ॥ सोऽहंतथाकरिष्यामियथेंद्रोजगतःपतिः ॥ भविष्यतिसहस्राक्षःसत्यमेतद्ब्रवीमिवः ॥ ३५ ॥ ततःकृष्णाजिनंब्रह्माहृषीकेशाय दत्तवान् ॥ यज्ञोपवीतंभगवान्ददौतस्यबृहस्पतिः ॥ ३६ ॥ आषाढमददाद्दंडंमरीचिर्ब्रह्मणःसुतः ॥ कमंडलुंवसिष्ठश्चकुशांश्चीरमथांगिराः ॥ आसनंचैवपुलहःपुलस्त्यःपीतवाससी ॥ ३७ ॥ उपतस्थुश्चतंवेदाःप्रणवोच्चारभूषणाः ॥ शास्त्राण्यशेषाणितथासांख्ययोगोक्तयस्तथा ॥ ३८ ॥ सवामनोजटीदंडी छत्रीधृतकमंडलुः ॥ सर्ववेदमयोदेवोबलेरध्वरमभ्यगात् ॥ ३९ ॥ यत्रयत्रपदंविप्राभूभागेवामनोददौ ॥ ददातिभूमिर्विवरंतत्रतत्राभिपीडिता ॥ ४० ॥

इसकारण जिससे सहस्रलोचन इन्द्र जगतके पति हों मैं वही करूंगा, आपके निकट सत्य कहताहूं ॥ ३५ ॥ तब ब्रह्माजीने उन वामनरूपी हृषीकेशको मृगछालादिया, भगवान् बृहस्पतिने यज्ञोपवीत दिया ॥ ३६ ॥ ब्रह्माके पुत्र मरीचिने पलाशका दंड, वसिष्ठने कमंडलु, अंगिराने कुश और चीर पुलहने आसन और पुलस्त्यजीने पीताम्बरयुगल प्रदान किये ॥ ३७ ॥ ओंकारके उच्चारणसे चारों वेद, अशेष शास्त्र और सम्पूर्ण सांख्य और योगके विषय यह सभी उनको स्वयं उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥ वह सर्व वेदमय वामन देव जटा, दंड, छत्र और कमंडलुको धारण करके बलिके यज्ञमें गये ॥ ३९ ॥ हेविप्रो ! जानेके समयमें वह जिस २ भूभागपर चरण रखतेथे उसी २ स्थानकी पृथ्वी पीडित

होकर छिद्रयुक्त होजातीथी ॥४०॥ उनके मंद २ चलनेपरभी सम्पूर्ण पृथ्वी,पर्वत, वन और द्वीप सभीके साथ विचलित होनेलगे ॥४१॥ बृहस्पतिजी धीरे २ उनको शुद्ध मार्ग दिखाते हुये चले.उन्होंने पृथ्वीमें क्रीडा विनोदके अर्थ ऐसी गति अवलंबन की ॥ ४२ ॥ तब महानाग शेषजी रसातलसे निकलकर उन वामनरूपी देवदेव चक्रधरकी सहायता करनेमें प्रवृत्त हुए ॥४३॥ उनकाभी यह सहायताका स्थान अत्यन्त विस्तृत महोत्तमरूपसे संसारमें सर्वत्र विख्यात है उसके दर्शन करनेसे सर्पका भय नहीं होता है ॥४४॥ इति श्रीवामनपुराणेभाषाटीकायां बलियज्ञे वामनदेवप्रस्थानंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ लोमहर्षणजीबोले कि, राजा बलिने पर्वत वनोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षुभित (चलायमान) देखकर हाथ जोड़ गुरु शुक्राचार्यसे पूछा॥ १ ॥ कि, हेआचार्य ! सागर, पर्वत और अरण्यके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल, किस कारणसे

सवामनोजडगतिर्मृदुगच्छन्सपर्वताम् ॥ साद्रिद्वीपवनांसर्वांचालयामासमेदिनीम् ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिस्तुशनकैर्मार्गंदर्शयतेशुभम् ॥ तथाक्रीडाविनोदार्थेंगतिर्जगतिसाभवत् ॥ ४२ ॥ ततःशेषोमहानागोनिःसृत्यासौरसातलात् ॥ साहाय्यंकल्पयामासदेवदेवस्यचक्रिणः ॥ ४३ ॥ तदस्यापिचविख्यातंमहाविपुलमुत्तमम् ॥ तस्यसंदर्शनादेवनागेभ्योनभयंभवेत् ॥ ४४ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येत्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥लोमहर्षणउवाच ॥ सपर्वतवनामुर्वीदृष्ट्वासंक्षुभितांबलिः ॥ पप्रच्छोशनसंशुक्रंप्रणिपत्यकृतांजलिः ॥ १ ॥ आचार्यक्षोभमायातिसाब्धिभूभृद्वनामही ॥ कस्माच्चनासुरान्भागान्प्रतिगृह्णंतिवह्नयः ॥ २ ॥ इतिपृष्टोऽथबलिनाकाव्योवेदविदांवरः ॥ उवाचदैत्याधिपतिंचिरंध्यात्वामहामतिः ॥३॥ अवतीर्णोजगद्योनिःकश्यपस्यगृहेहरिः ॥ वामनेनेहरूपेणपरमात्मासनातनः ॥ ४ ॥ सनूनंयज्ञमायातितवदानवपुंगव ॥ यस्यपादप्रतिक्षेपादियंप्रचलितामही ॥५ ॥ कंपंतेगिरयश्चैवसंक्षुब्धामकरालयाः ॥ नैनंभूतपतिंभूमिःसमर्थावोढुमीश्वरम् ॥ ६ ॥ सदेवासुरगंधर्वयक्षराक्षसपन्नगा ॥ अनेनैवधृताभूमिरापोग्निःपवनोनभः ॥ धारयत्यखिलान्देवान्मनुष्यांश्चमहासुरान् ॥ ७ ॥

क्षुभितहोरहा है, और तीनों अग्नि किसनिमित्त असुरोंके दिये भागको ग्रहण नहीं करतीं ॥ २ ॥ इसके उपरान्त वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्यजी बलिके द्वारा इसप्रकार पूछेजानेसे चिरकाल ध्यान करके दैत्यराजसे बोले ॥ ३ ॥ कि, जगद्योनि परमात्मा सनातन कश्यपके घरमें वामनरूपसे प्रगट हुए हैं ॥ ४ ॥ हे दानवपुंगव ! वह निश्चयही तुम्हारे यज्ञमें आते हैं, जिनके चरणोंके पड़नेसे यह पृथ्वी कम्पायमान होरही है ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण पर्वत विचलित होरहे हैं और सम्पूर्ण सागर क्षुभित होरहे हैं, पृथ्वी इन भूपति ईश्वरको वहन करनेको समर्थ नहीं होती ॥ ६ ॥ कारण कि, वह देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नगसहित

पृथ्वी, जल, अग्नि, अनिल, आकाश और सम्पूर्ण देवता मनुष्य इस सभीको धारण करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ जगत्के विधाता श्रीकृष्णकी यह माया अति दुस्तर है देखो कि, जिसने सम्पूर्ण संसार धार्यधारकभावसे पीड़ित हुआ है ॥ ८ ॥ इससमय उनके सन्निधान (निकटवर्ती) होनेसे सुरोत्तमलोग अपने भागको प्राप्त करनेवाले होगये हैं इसी कारणसे तीनों अग्नि असुरोंके भागको ग्रहण नहीं करती हैं ॥ ९ ॥शुक्राचार्यके यह वचन सुनकर राजा बलि रोमाञ्चित होकर कहनेलगे कि, मैंही धन्य हूं ! मैंही कृतपुण्य हूं, जिसकारणसे स्वयं यज्ञपति जनार्दन ॥ १० ॥ मेरे यज्ञमें आते हैं । हे ब्रह्मन् ! मेरी अपेक्षा और कौन पुरुष आधिक्ययुक्त हैं ! देखो योगिगण सर्वदा उद्युक्त होकर ऐसे अविनाशीस्वरूप परमात्माके ॥ ११ ॥ देखनेके निमित्त उत्सुक रहते हैं, वही भगवान् मेरे यज्ञमें आवेंगे । इसकारण हे आचार्य ! जिस प्रकारका अनुष्ठान करना कर्त्तव्यहो सो आज्ञा मुझे दीजिये॥ १२ ॥शुक्राचार्य बोले कि, हे असुर ! वेदोंके प्रमाणसे देवताही यज्ञभागको भोग करते हैं परन्तु तुमने दानवोंको यज्ञके भागका भागी किया है ॥ १३ ॥ यही सत्वगुणव्यवहारी भगवान् (वामन) जी स्थिति (मर्यादा) का पालन करते हैं, और स्वयं सृजे हुएको कल्पान्तमें भक्षण (संहार) करते हैं ॥ १४ ॥ तुमने तो देवताओंकी वंचनाही की है, परन्तु विष्णुजीभी स्थितिके पालन करनेमें सर्वदा व्यवस्थित हैं, महाराज ! यह जानकर जो तुम्हारे मनमें आवै सो करो ॥ १५ ॥ हेदैत्यपते ! तुम कभी किंचिन्मात्रभी वस्तुको " मैं दानकरूंगा " ऐसी वामन देवके निकट प्रतिज्ञा न करना, केवल मधुर वचन बोलना, इससेही फल प्राप्त होगा ॥ १६ ॥ यद्यपि वह भगवान् स्वयं कृतकृत्य (वांछित उनको

इयमस्यजगद्धातुर्मायाकृष्णस्यदुस्त्यजा ॥ धार्यधारकभावेनययासंपीडितंजगत् ॥ ८॥ तत्सन्निधानादधुनाभागहाराःसुरोत्तमाः ॥ भुंजतेनासुरान्भागान
पिबैतेत्रयोग्नयः ॥ ९ ॥ शुक्रस्यवचनंश्रुत्वाहृष्टरोमाब्रवीद्बलिः ॥ धन्योऽहंकृतपुण्यश्चयतोयज्ञपतिःस्वयम् ॥ १० ॥ यज्ञमभ्यागतोब्रह्मन्मत्तःकोन्यो
धिकःपुमान् ॥ यंयोगिनःसदोद्युक्ताःपरमात्मानमव्ययम् ॥ ११ ॥ द्रष्टुमिच्छंतिदेवोसौममाध्वरमुपेष्यति ॥ यन्मयाचार्यकर्त्तव्यंतन्ममादेष्टुमर्हसि
॥ १२ ॥ शुक्रउवाच ॥ यज्ञभागभुजो देवावेदप्रामाण्यतोऽसुर ॥ त्वयातुदानवादैत्ययज्ञभागभुजःकृताः ॥ १३ ॥ अयंचदेवःसत्त्वस्थःकरोतिस्थि
तिपालनम् ॥ विसृष्टंचतथैवांतिस्वयमत्तिप्रजाःप्रभुः ॥ १४ ॥ त्वयातुवंचितादेवानूनंविष्णुःस्थितौस्थितः ॥ विदित्वैतन्महाराजकुरुयत्तेमनोगतम् ॥१५॥
त्वयाचदैत्याधिपतेस्वल्पकेपिहिवस्तुनि ॥ प्रतिज्ञानैववोढव्यावाच्यंसामतथाफलम् ॥ १६ ॥ कृतकृत्यस्यदेवस्यदेवार्थंचापिकुर्वतः ॥ नालंदातुमहंदे
वत्वयावाच्यंतुयाचतः ॥ कृष्णस्यदेवभूत्यर्थंप्रवृत्तस्यमहासुर ॥ १७ ॥

कुछ नहीं) है तथापि वह देवताओंके प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं, इसकारण याचना करनेमें उद्यत हुए उनसे कहना कि, हे देव ! आपने जो वाञ्छा की है मैं उसे पूरी नहीं करसकता ॥ १७ ॥ बलि बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आप किसप्रकारसे ऐसा कहते हैं, देखो साधारण लोकोंकेभी याचना करनेपर मैं उनको "ना" नहीं करसकता, तब फिर जो संसारके पापोंका नाश करते हैं उन्हीं देवताओंके प्रभु भगवान्से किसप्रकार कहूंगा ॥ ॥ १८ ॥ विविधव्रत और उपवासादि करके बडी कठिनतासे जिन प्रभु हरिको पायाजाता है, वही गोविन्द "दो" ऐसा कहैं तब इसकी अपेक्षा और अधिक क्या होसकता है ॥ १९ ॥ मनुष्य जिनकी प्रीतिके अर्थ शौचादिगुणयुक्त हो यज्ञ करते हैं वही देवाधिदेव मेरे निकट "दो" ऐसा कहैंगे, अर्थात् ऐसा समय बडे

बलिरुवाच ॥ ब्रह्मन्कथमहंब्रूयामन्येनापिहियाचितः ॥ नास्तीतिकिमुदेवेशसंसाराघौघहारिणम् ॥ १८ ॥ व्रतोपवासैर्विविधैर्यःप्रभुर्गृह्यतेहरिः ॥ सचेद्वक्ष्यतिदेहीतिगोविंदःकिमतोऽधिकम् ॥ १९ ॥ यत्प्रीतिकरणायैवपुंभिःशौचगुणान्वितैः ॥ यज्ञाःक्रियंतेदेवश्चसमांदेहीतिवक्ष्यति ॥ २० ॥ तत्साधु सुकृतंकर्मतपःसुचरितंचनः ॥ यन्मयादत्तमीशश्चस्वयमादास्यतेहरिः ॥ २१ ॥ नास्तीत्यहंगुरोवक्ष्येकथमागतमीश्वरम् ॥ प्राणत्यागंकरिष्यामिननास्ती तिनमेक्वचित् ॥ २२ ॥ तदेतद्वांछितंप्राप्तंनूनंचात्रनसंशयः ॥ यज्ञेऽस्मिन्यदियज्ञेशोयाचतेमांजनार्दनः ॥ २३ ॥ निजमूर्द्धानमप्यस्मैदास्याम्येवाविचा रितम् ॥ समेवक्ष्यतिदेहीतिगोविंदःकिमतोऽधिकम् ॥ २४ ॥ नास्तीतियन्मयानोक्तमन्येषामपियाचताम् ॥ वक्ष्यामिकथमायातेतास्मिन्नभ्यागतेऽच्युते ॥ ॥ २५ ॥ श्लाघ्यएवहिधीराणांदानाच्चापत्समागमः ॥ नबाधाकारियद्दानंतदंगबलवत्स्मृतम् ॥ २६ ॥ मद्राज्येनासुखीकश्चिन्नदरिद्रोनचातुरः ॥ नाभू षितोनचोद्विग्नोनप्रसादविवर्जितः ॥ २७ ॥

भाग्यसेभी मिलना कठिन है ॥ २० ॥ जो मेरे दिये हुएको स्वयं भगवान् हरि ग्रहण करैंगे तो मेरा सर्वोत्तम सुकृत (पुण्य) का अनुष्ठान और तपस्या जानी जायगी ॥ ॥ २१ ॥ ईश्वरके स्वयं आनेपरभी उनसे किसप्रकारसे नहीं कहूंगा ! हे गुरो ! प्राण त्याग करदूं परन्तु कभी "ना" नहीं कहसकता ॥ २२ ॥ जो इस यज्ञमें स्वयं यज्ञेश्वर जनार्दन मुझसे याचना करैंगे तो ऐसा होनेसे निश्चयही हमारी अभिलाषा सिद्ध होगी इसमें संदेह नहीं ॥ २३ ॥ इसकारण मैं किसी प्रकारका विचार न करके उनको अपना मस्तकभी दान करूंगा, स्वयं गोविन्द मुझसे "दो" ऐसा कहैंगे, फिर इसकी अपेक्षा और अधिक क्या होसकता है ॥ २४ ॥ मैं जब सामान्ययाचकों कोभी "ना" नहीं कहसकता तब स्वयं अच्युतके आनेपर उन्हें किसप्रकार ऐसा कहूंगा ॥ २५ ॥ वीरपुरुषोंको दानके करनेसे आपदों (दुःखों) का समागम हो तो वह प्रशंसनीय होता है, दान कभी बाधा देनेवाला नहीं होसकता, इसकारण हेगुरो ! दानही बलवान् गिनागया है ॥ २६ ॥ देखो हमारे राज्यमें कोईभी सुख

रहित, दरिद्री और आतुर (रोगी) नहीं है, और कोईभी भूषणरहित तथा उद्विग्न और अप्रसन्न नहीं है ॥ २७ ॥ सभी हृष्ट, पुष्ट, सुगंधयुक्त, तृप्त और सब गुणोंसे
युक्त हैं, अपनी बात तो मैं क्या कहूं मैं सर्वदा सुखी हूं ॥ २८ ॥ मुझे यह विशिष्ट रूप (जो आजतक किसीको नहीं मिला ऐसा) दानबीजका फल प्राप्त हुआ है,
हे मुनिशार्दूल ! आपके मुखसे जिसप्रकार सुना उसेही यह जानताहूँ ॥ २९ ॥ हे गुरो ! सर्व बीजश्रेष्ठ यह दानरूपी बीज यदि स्वयं जनार्दनकेसे महापात्रमें पतित हो
तो उससे हमें क्या न प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ हमारा यह दान सर्वथा विशिष्ट (सब दानसे बढकर) होगा इसकारण देवताभी संतुष्ट होंगे, वस्तुका उपभोगकी अपेक्षा
दान करना सहस्रगुण सुखका देनेवाला है ॥३१॥ मेरे यज्ञमें आराधना करनेसे हरि निश्चयही मुझे प्रसाद देनेको तैयार हुए हैं ॥३२॥ इसीकारण दर्शन देकर उपकार

हृष्टस्तुष्टःसुगंधीचतृप्तःसर्वगुणान्वितः॥ जनःसर्वोमहाभागकिमुताहंसदासुखी ॥ २८ ॥ एतद्विशिष्टमत्राप्तंदानबीजफलंमया ॥ विदितंमुनिशार्दूलयथै
तत्त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ २९ ॥ एतद्बीजवरंदानबीजंपततिचेद्गुरो ॥ जनार्दनेमहापात्रेकिंनप्राप्तंततोमया ॥ ३० ॥ विशिष्टंममतद्दानंपरितुष्टाश्चदेवताः ॥
उपभोगाच्छतगुणंदानंसुखकरंस्मृतम् ॥ ३१ ॥ मत्प्रसादपरोनूनंयज्ञेनाराधितोहरिः ॥ तेनाभ्येतिनसंदेहोदर्शनादुपकारकृत् ॥ ३२ ॥ अथकोपेनचा
भ्येतिदेवभागोपरोधिनम् ॥ मांनिहंतुंततोहिस्याद्वधःश्लाघ्यतमोऽच्युतात् ॥ ३३ ॥ समाहंतुंहृषीकेशःकथंवैसमुपेष्यति ॥३४ ॥ एतज्ज्ञात्वामुनिश्रेष्ठदान
विघ्नपरेणन ॥ त्वयाभाव्यंजगन्नाथेगोविंदेसमुपस्थिते ॥३५॥ लोमहर्षणउवाच ॥ इत्येवंवदतस्तस्ययज्ञवाटमुपागतः ॥ सहैवामरवृंदैःसबृहस्पतिपुरस्स
रैः ॥ ३६ ॥ बलिःपुनरुवाचेदंशुक्रंनिजपुरोहितम् ॥ मांचयाचितुमभ्येतियतोगेहागतोहरिः ॥ ३७ ॥ सयथात्मेच्छयासर्वचेतःसाक्षीजनार्दनः ॥ सर्वदे
वमयोऽचिंत्योमायावामनरूपधृक् ॥३८॥ तंदृष्ट्वायज्ञवाटंतुप्रविष्टमसुराःप्रभुम् ॥ जग्मुःप्रभावतःक्षोभंतेजसातस्यनिष्प्रभाः ॥ ३९ ॥

करनेके निमित्त आते हैं, तब तो उनके हाथसे मेरी मृत्युका होना अत्यन्तही प्रशंसनीय है ॥ ३३ ॥ यह हृषीकेश मुझे संहार करनेके निमित्त
क्योंकर आवेंगे ॥ ३४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप यह सब जानकर उन जगन्नाथ गोविन्दके उपस्थित होनेपर दानवोंका व्याघात (मना) नहीं करें॥
॥ ३५ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, बलि इसप्रकार कह रहेथे कि, इसी समयमें बृहस्पतिको आगे किये देवताओंके साथ वह भगवान् वामनजी उनके यज्ञस्थानमें
आये ॥ ३६ ॥ यह देखकर बलि पुनर्वार अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे बोले कि, जब हरि मेरे घरमें आते हैं तब वह मेरे निकट याचना करैंहींगे ॥ ३७ ॥ सबके
चित्तके साक्षी, सर्वदेवमय, अचिन्त्यस्वरूप उन जनार्दनने अपनी इच्छाके अनुसारसे वामनरूपको धारण किया है ॥ ३८ ॥ उस समय असुरगण उनको यज्ञभूमिमें

आये हुए देखकर उनके प्रभावसे क्षुभित और उनके तेजसे प्रभाहीन होगये. अर्थात् उन्हींका तेज जातारहा ॥ ३९ ॥ उस महायज्ञमें आये हुए ऋषिगण वसिष्ठ, गाधिज, (विश्वामित्र) गर्ग और अन्यान्य मुनिसत्तमगण सभी कम्पायमान होनेलगे ॥ ४० ॥ बलिने उनको देखतेही अपना जन्म सफल माना, उस समय सबके अत्यन्त क्षुभित होनेसे किसीके मुखसे कुछ वचन न निकला॥ ४१ ॥ फिर सभी उन देवाधिदेवकी पूजा करनेलगे, इसके उपरान्त असुरपति बलिको और उन मुनिश्रेष्ठोंको विनीत देखकर ॥ ४२ ॥ देवदेवपति वामनस्वरूप साक्षात् विष्णु यज्ञ, यजमान, ऋत्विकगण, अग्नि, यज्ञकर्मके अधिकारमें स्थित सदस्यवर्ग और द्रव्य सम्पत् इन सभीकी प्रशंसा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ४३ ॥ इतनेहीमें सभासद्गण और यज्ञवाटमें स्थित ब्राह्मणगण सभी उन विश्वरूपी पात्ररूपी वामनके प्रति वारम्वार साधु २ (बहुत ठीक २ क्यों नहीं) ऐसे वचन कहनेलगे ॥ ४४ ॥ उन महाअसुर बलिने आनंदसे रोमाञ्चित होकर अर्घ्य

वेपुश्चमुनयस्तत्रयेसमेतामहाध्वरे॥ वसिष्ठोगाधिजोगर्गस्तथान्येमुनिसत्तमाः॥ ४० ॥ बलिश्चैवाखिलंजन्ममेनेसफलमात्मनः ॥ ततःसंक्षोभमापन्नोनकश्चित्किंचिदुक्तवान् ॥ ४१ ॥ प्रत्येकंदेवदेवेशंपूजयामासतेजसा ॥ अथासुरपतिंप्रह्वंदृष्ट्वामुनिवरांश्चतान् ॥ ४२ ॥ देवदेवपतिःसाक्षाद्विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ तुष्टावयज्ञंवह्निंचयजमानमथर्त्विजः ॥ यज्ञकर्माधिकारस्थान्सदस्यान्द्रव्यसंपदः ॥४३॥ सदस्याःपात्रमखिलंवामनंप्रतितत्क्षणात् ॥ यज्ञवाटस्थिताविप्राःसाधुसाध्वित्युदीरयन् ॥ ४४ ॥ सचार्घ्यमादायबलिःप्रोद्भूतपुलकस्तथा ॥ पूजयामासगोविंदंप्राहचेदंमहासुरः ॥ ४५ ॥ बलिरुवाच॥ सुवर्णरत्नसंघातान्गजांश्चमहिषांस्तथा॥ स्त्रियोवस्त्राण्यलंकारान्गावःकुप्यंचपुष्कलम् ॥ ४६ ॥ सर्वंचसकलांपृथ्वींभवतोवायदीप्सितम् ॥ तद्ददामिशृणुश्रेष्ठममार्थाःसंतितेप्रियाः ॥ ४७ ॥ इत्युक्तोदैत्यपतिनाप्रीतिगर्भमिदंवचः॥ प्राहसस्मितगंभीरंभगवान्वामनाकृतिः ॥ ४८ ॥ ममाग्निशरणार्थायदेहिराजन्पदत्रयम् ॥ सुवर्णग्रामरत्नादितदर्थिभ्यःप्रदीयताम् ॥ ४९ ॥ बलिरुवाच ॥ त्रिभिःप्रयोजनंकिंतेपदैःपदवतांवर ॥ शतंशतसहस्रंवापदानांमार्गतांभवान् ॥ ५० ॥

ग्रहण कर गोविन्दकी पूजा की और यह वचन बोले ॥ ४५ ॥ बलि बोले, सुवर्ण और रत्नोंके समूह, हस्ती और महिष, स्त्रियें वस्त्र और सम्पूर्ण अलंकार और गौ बहुतसी ताम्रादि सम्पूर्ण धातुयें ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण पृथ्वी अथवा जो कुछ आपके अभिलषित हो, हे श्रेष्ठ ! आप माँगिये मैं वह सभी आपको देसकता हूं, हमारा जो कुछ प्रियपदार्थ है वह सभी आपका है ॥ ४७ ॥ वामनरूपी भगवान् दैत्यपतिके इसप्रकार कहनेपर मुसकाते हुए प्रीति और गर्वमें भरे गंभीर (गूढ़ार्थ) वचन बोले ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! हमैं अग्निके गृहनिमित्त तीन पैर पृथ्वी दान कीजिये, और जो सुवर्ण, ग्राम और रत्नादिकी प्रार्थना करते हों उनको वह दीजिये ॥ ४९ ॥ बलि बोले कि, हे चरणवालोंमें श्रेष्ठ ! तीन पैर पृथ्वीके लेनेसे आपका क्या अभीष्ट सिद्ध होगा ? इसकारण

शत वा सहस्रों पदोंकी वांछा कीजिये ॥ ५० ॥ श्रीवामनजी बोले कि, हे दैत्यपति ! इस तीन पैरकी भिक्षासेही मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा, और दूसरे याचकोंको अपनी अपनी इच्छानुसार आप प्रदान कीजियेगा ॥ ५१ ॥ महात्मा वामनजीकी यह प्रार्थना सुनकर महाबाहु बलिजीने उनको तीन पैर पृथ्वी दान की ॥ ५२ ॥ तब हाथमेंसे जल गिरतेही वह वामन अवामन होगये, अर्थात् उग्ररूपवाले होगये और उसीसमय सबके सामने सर्वदेवमयरूप दिखाया ॥ ५३ ॥ चंद्रमा और सूर्य इसप्रकारके दो नेत्र, स्वर्ग उनका शिर, पृथ्वी उनका चरण और सम्पूर्ण पिशाच यह उनके पैरकी अँगुलियें और गुह्यकगण उनके हाथोंकी अँगुलियें ॥ ५४ ॥ उनकी दोनों जानुओंमें विश्वेदेव और दोनों जंघाओंके बीचमें देवताओंके बीचमें श्रेष्ठ साध्यसंज्ञक देव स्थित, उनके सम्पूर्णअंगोंमें यक्ष और देवगण और अप्सरागण यह सभी स्थित हुए ॥ ५५ ॥ सम्पूर्ण नक्षत्र उन प्रभुकी दृष्टि, सूर्यकी किरणैं उनके केश, सम्पूर्ण तारागण उनके रोमकूप और उन रोमराजिमें महर्षिगण विराजमान हुए ॥ ५६ ॥ दिशायें उनकी बाहु, सम्पूर्ण दिशा श्रोत्र, अश्विनीकुमार यह उनके श्रवण (कान) महाबलवान् वायु यह उनकी नासिका हुए ॥ ५७ ॥ उनकी प्रसन्नतामें चंद्रमा, मनमें धर्म विराजमान हुआ. सत्य उनकी वाणी और देवी सरस्वती उनकी जिह्वा हुईं ॥ ५८ ॥ देवमाता अदिति यह उनकी ग्रीवा सम्पूर्ण विद्या उनका कंकणरूपी आभूषण मैत्रदेव यह स्वर्गद्वार त्वष्टा और पूषा उनकी भौं हैं हुईं ॥ ५९ ॥ उनके मुखमें वैश्वानर (अग्नि) प्रजापति उनके अंडकोश, परब्रह्म उनका हृदय और कश्यपमुनि उनके पुंस्त्व (पुरुषत्व) में विराजमान हुए ॥ ६० ॥ उनके पीठमें आठ वसु, सब संधियोंमें मरुद्गण और वक्षस्थलमें सम्पूर्ण रुद्र हुए

श्रीवामनउवाच ॥ एतैःपदैर्दैत्यपतेकृतकृत्योस्मिमार्गणे ॥ अन्येषामर्थिनांवित्तमिच्छयादास्यतेभवान् ॥ ५१ ॥ एतच्छ्रुत्वातुगदितंवामनस्यमहात्मनः ॥
ददौतस्मैमहाबाहुर्वामनायपदत्रयम् ॥ ५२ ॥ पाणौतुपतितेतोयेवामनोभूदवामनः ॥ सर्वदेवमयंरूपंदर्शयामासतत्क्षणात् ॥ ५३ ॥ चंद्रसूर्यौतुनयनेद्यौः
शिरश्चरणौक्षितिः ॥ पादांगुल्यःपिशाचास्तुहस्तांगुल्यश्चगुह्यकाः ॥ ५४ ॥ विश्वेदेवाश्चजानुस्थाजंघेसाध्याःसुरोत्तमाः ॥ यक्षाश्चांगेषुसंभूतालेखा
श्चाप्सरसस्तथा ॥ ५५ ॥ दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणिकेशाःसूर्यांशवःप्रभोः ॥ तारकारोमकूपाणिरोमेषुचमहर्षयः ॥ ५६ ॥ बाहवोविदिशस्तस्यदिशःश्रोत्रे
महात्मनः ॥ अश्विनौश्रवणेतस्यनासावायुर्महाबलः ॥ ५७ ॥ प्रसादेचंद्रमादेवोमनोधर्मःसमाश्रितः ॥ सत्यमस्याभवद्वाणीजिह्वादेवीसरस्वती ॥ ५८ ॥
ग्रीवादितिर्देवमाताविद्यास्तद्वलयस्तथा ॥ स्वर्गद्वारमभून्मैत्रंत्वष्टापूषाचवैभ्रुवौ ॥ ५९ ॥ मुखेवैश्वानरश्चास्यवृषणौतुप्रजापतिः ॥ हृदयंचपरंब्रह्मपुंस्त्वं
वकश्यपोमुनिः ॥ ६० ॥ पृष्ठेस्यवसवोदेवामरुतःसर्वसंधिषु ॥ वक्षःस्थलेतथारुद्राधैर्यंचास्यमहार्णवाः ॥ ६१ ॥

और चारों समुद्र उनके धैर्यस्थानमें विराजमान हुए ॥ ६१ ॥ उनके उदरमें गंधर्व और महाबलवान् मरुद्गण विराजमान हुए । लक्ष्मी, मेधा, धृति, कांति और सम्पूर्ण विद्यायें उनके कटिदेशमें स्थित हुईं ॥ ६२ ॥ इसप्रकार सर्व ज्योति और परम महत्—तपःस्वरूप उन देवाधिदेव वामनजीका विशिष्टरूप प्रगट हुआ ॥ ६३ ॥ उनके शरीर और कुक्षिमें चारों वेद और जानुमें महायज्ञ इष्टि (यज्ञके पूर्व और परमें होनेवाली पूर्वेष्टि अनुयागसंज्ञावाली) और पशु बंधन और ब्राह्मणोंका अन्यान्य व्यापार सब विराजमान होता हुआ ॥ ६४ ॥ महाबलवान् असुरगण विष्णुकी उस परमदेवमयी मूर्तिको देखकर अग्निको देखनेसे पतंगकी समान फिर उनके समीप न जासके ॥ ६५ ॥ महाबलवान् चिक्षुरदैत्यने अपने दांतोंसे उनके पैरके अँगूठेको पकडा,तब भगवान्ने अँगूठेके प्रहार

उदरेचास्यगंधर्वामरुतश्चमहाबलाः ॥ लक्ष्मीर्मेधाधृतिःकांतिःसर्वविद्याश्चवैकटिः ॥ ६२ ॥ सर्वज्योतिरसौदेवस्तपश्चपरमंमहत् ॥ तस्यदेवाधिदेवस्यतेजःप्रोद्भूतमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ तनौकुक्षिषुवेदाश्चजानुनीचमहामखाः ॥ इष्टयःपशुबंधाश्चद्विजानांचेष्टितानिच ॥ ६४ ॥ तस्यदेवमयंरूपंदृष्ट्वाविष्णोर्महाबलाः ॥ नोपसर्पंतितेदैत्याःपतंगाइवपावकम् ॥ ६५ ॥ चिक्षुरस्तुमहादैत्यःपादांगुष्ठंगृहीतवान् ॥ दंताभ्यांतस्यवैग्रीवामंगुष्ठेनाहनद्धरिः ॥ ६६ ॥ प्रमथ्यसर्वानसुरान्पादहस्ततलैर्विभुः ॥ कृत्वारूपंमहाकायंसंजहाराशुमेदिनीम् ॥६७॥ तस्यविक्रमतोभूमिंचंद्रादित्यौस्तनांतरे ॥ नभोविक्रममाणस्यसक्थिदेशेस्थितावुभौ ॥ ६८ ॥ परंविक्रममाणस्यजानुमूलेप्रभाकरौ ॥ विष्णोरास्तांस्थितस्यैतौदेवपालनकर्मणि ॥ ६९ ॥ जित्वालोकत्रयंकृत्स्नंहत्वाचासुरपुंगवान् ॥ पुरंदरायत्रैलोक्यंददौविष्णुरुरुक्रमः ॥७०॥ सुतलंनामपातालमधस्ताद्वसुधातलात् ॥ बलेर्दत्तंभगवताविष्णुनाप्रभविष्णुना॥७१॥ अथदैत्येश्वरंप्राहविष्णुःसर्वेश्वरेश्वरः ॥ यत्त्वयासलिलंदत्तंगृहीतंपाणिनामया ॥ ७२ ॥

से उसकी ग्रीवापर आघात किया ॥ ६६ ॥ इसप्रकारसे विभु वामनजीने चरण और हाथोंके तलप्रहारसे सम्पूर्ण असुरोंको मथितकर महाकायरूपको धारण करके शीघ्रही पृथ्वीको हरण किया ॥ ६७ ॥ उस समय पृथ्वीको नाँपते हुए, चंद्रमा और आदित्य यह दोनों स्तनोंके अन्तरभागमें विराजमान हुए, इसके उपरान्त आकाशको नाँपते हुए दोनों ने उनके सक्थिदेशमें स्थिति की ॥ ६८ ॥ जब उसके ऊपरभागमें पदार्पण करनेलगे तब देवताओंके पालनकर्ममें स्थित विष्णु भगवान्के चंद्रमा सूर्य यह दोनों जानुमूलमें विराजमान हुए ॥ ६९ ॥ इसप्रकारसे उरुक्रम विष्णु (वामन) भगवान्ने तीनोंलोकोंको जीतकर सम्पूर्ण असुरोंको संहारकर इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दिया ॥७०॥ इसके उपरान्त सबके प्रभु विष्णुभगवान्ने पृथ्वीके नीचे सुतलनामक पातालका राज्य बलिको दिया ॥ ७१ ॥ इसके उपरान्त सर्वेश्वर

विष्णु दैत्येश्वर बलिसे बोले कि, मैं ने जिसकारण तुम्हारे दियेहुए जलको ग्रहण किया ॥ ७२ ॥ इसकारण तुम्हारी आयु कल्पपर्यन्त और सर्वथा स्वास्थ्य युक्त होगी, वैवस्वतमन्वन्तरकालके व्यतीत होनेपर ॥ ७३ ॥ और सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर तुम इन्द्र होजाओगे, इससमय मैं ने तुम्हारे अधिकारके सम्पूर्ण भुवन देवराज इन्द्रको दिये हैं ॥ ७४ ॥ चारों युगोंके व्यवस्थाक्रमसे मैं कुछ अधिक इकहत्तर युग[1] अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तरके बीचमें जो इन्द्रका शत्रु होगा मैं उन सभीको इसीप्रकार निगृहीत करूंगा ॥ ७५ ॥ कारण कि, देवराजने पहले परमभक्तिके साथ मेरी आराधना की थी, हे बलि ! इसकारण तुम मेरे वचनके अनुसार सुतल नामक पातालमें ॥ ७६ ॥ मेरी आज्ञाको यथावत् पालन करतेहुए निवास करो. हे असुर ! वह स्थान देवासुरगणोंसे युक्त और सैकडों प्रासादों (राजाओंके रहने

कल्पप्रमाणंतस्मात्तेभविष्यत्यायुरुत्तमम् ॥ वैवस्वतेतथातीतेकालेमन्वंतरेतथा ॥ ७३ ॥ सावर्णिकेतुसंप्राप्तेभवानिंद्रोभविष्यति ॥ इदानींभुवनंदत्तंस
वैशक्रायवैतव ॥ ७४ ॥ चतुर्युगव्यवस्थाचसाधिकात्वेकसप्ततिः ॥ नियंतव्यामयासर्वेयेतस्यपरिपंथिनः ॥ ७५ ॥ तेनाहंपरयाभक्त्यापूर्वमाराधितोबले ॥
सुतलंनामपातालंसमादायवचोमम ॥ ७६ ॥ वसासुरममादेशंयथावत्परिपालयन् ॥ तत्रदेवासुरोपेतेप्रासादशतसंकुले ॥ ७७ ॥ प्रोत्फुल्लपंकजसरो
द्रुमशुद्धसरिद्वरे ॥ सुगंधीरूपसंपन्नोहेमाभरणभूषितः ॥७८॥ स्रक्चन्दनादिदिग्धांगोनृत्यगीतमनोहरः ॥ उपभुंक्ष्वमहाभोगान्विपुलान्दानवेश्वर ॥७९॥
ममाज्ञयाबलेतत्रातिष्ठस्त्रीशतसंवृतः ॥ यावत्सुरैश्चविप्रैश्चविरोधंनकरिष्यसि ॥ ८० ॥ तावत्त्वंभुंक्ष्वसंभोगान्सर्वकामसमन्वितान् ॥ यदासुरैश्चविप्रैश्च
विरोधंत्वंकरिष्यसि ॥ बंधकृच्चतदापाशोदारुणोघोरदर्शनः ॥ ८१॥ बलिरुवाच ॥ तत्राशनंमेपातालेभगवन्भवदाज्ञया ॥ किंभविष्यत्युपादानमुपभोगो
पपादकम् ॥ आप्यायितोऽतोदेवेशस्मरेयंत्वामहंसदा ॥ ८२ ॥

योग्य स्थानों) से व्याप्त है ॥७७॥ वहांके सरोवरमें कमल खिले हुएहैं, उस सरोवरके तटके वृक्ष सब फूले हुएहैं, और सम्पूर्ण पवित्र श्रेष्ठ नदियोंसे शोभायमान है, वहां उत्तम गन्ध (अतर आदिक) से युक्त रूपवान् सुवर्ण आभरणोंसे भूषित ॥ ७८ ॥ माला चंदन आदिकसे चर्चितदेह और नृत्य गीतसे प्रसन्नहृदय हो हे दानवेश्वर ! विपुल महाभोगोंको भोगकरो ॥७९॥ हे बलि ! मैं यह आज्ञा देताहूं कि, वहां सैकड़ों उत्तमस्त्रियोंसे वेष्टित होकर तबतक निवासकरो जबतक देवता और ब्राह्मणोंके साथ तुम विरोध न करोगे॥८०॥तबतक सबप्रकारकी कामनाओंसे युक्त सम्पूर्ण भोगोंको भोगो जब देवता और ब्राह्मणोंके साथ विरोध करोगे तभी भयानकदर्शनवाले दारुणपाशसे तुमको बांधूंगा ॥८१॥ बलि बोले कि, हे भगवन् ! आज्ञा दीजिये कि, उस पातालमें रहनेके समय मेरा किसप्रकार भोजन (सुख दुःखानुभव करने) तथा और प्रकारके

---

[1] हजार युगमें चौदह मनुका भोग होता है उस क्रमसे एक मनुका काल इतनाही होता है, इसके अनन्तर जब सावर्णिक मनु होंगे तब बलि इन्द्र होंगे.

भोगको दान करनेवाला उपादान (सामग्री) ही किसप्रकारकी होगी ? हे देवेश ! मैं जिससे तृप्त होकर सर्वदा आपको स्मरण करसकूं ॥८२॥ श्रीभगवान् बोले कि, विधि
पूर्वक न दिये हुए दान और विना वेदादि शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणोंके तथा पितरोंके लिये श्राद्ध, अश्रद्धापूर्वक कियागया होम, यह सभी तुमको फलदान करेंगे ॥ ८३ ॥
यहां जो दक्षिणाहीन यज्ञ और विधिहीन सम्पूर्ण क्रियायें और व्रतहीन अध्ययन यह सम्पूर्ण तुमको फलदान करेंगे ॥ ८४ ॥ और जो जलके विना पूजा, कुशके विना
क्रिया, और विना घृतका कियाहुआ होम, हे बलि ! इन सबका फल तुमको प्राप्त होगा ॥ ८५ ॥ जो परमपवित्र, ज्येष्ठाश्रम और विष्णुपद इन दोनों स्थानोंका
जो आश्रय करके जिस किसी क्रियाको करेंगे उससे असुरोंको कभी भाग नहीं प्राप्त होगा, जो इसप्रकार उक्त दो स्थानोंमें श्राद्ध करेंगे, व्रत करेंगे, नियम करेंगे, अथवा

श्रीभगवानुवाच ॥ दानान्यविधिदत्तानिश्राद्धान्यश्रोत्रियाणिच ॥ हुतान्यश्रद्धयायानितानिदास्यंतितेफलम् ॥ ८३ ॥ अदक्षिणास्तथायज्ञाःक्रियाश्चाविधि
नाकृताः ॥ फलानितवदास्यंतिअधीतान्यव्रतानिच ॥ ८४ ॥ उदकेनविनापूजाविनादर्भेणयाःक्रियाः ॥ आज्येनचविनाहोमःफलंदास्यंतितेबले ॥ ८५ ॥
यश्चेदंस्थानमाश्रित्यक्रियाःकाश्चित्करिष्यति ॥ नतत्रचासुरोभागोभविष्यतिकदाचन ॥ ८६ ॥ ज्येष्ठाश्रमंमहापुण्यंतथाविष्णुपदंह्रदम् ॥ येचश्राद्धानि
कुर्वन्तिव्रतंनियममेवच ॥ ८७ ॥ क्रियाकृताचयाकाचिद्विधिनाचमहात्मना ॥ सर्वंतदक्षयंतस्यभविष्यतिनसंशयः ॥ ८८ ॥ ज्येष्ठमासेसितेपक्षे
एकादश्यामुपोषितः ॥ ८९ ॥ द्वादश्यांवामनंदृष्ट्वास्नात्वाविष्णुपदेतथा ॥ दत्त्वादानंयथाशक्तिप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ ९० ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ बलयेऽमुं
वरंदत्त्वाशक्रायापित्रिविष्टपम् ॥ व्यापिनातेनरूपेणजगामादर्शनंहरिः ॥ ९१ ॥ शशासचयथापूर्वमिंद्रस्त्रैलोक्यपूजितः ॥ अवसच्चयथास्थानंबलिः
पातालमाश्रितः ॥ ९२ ॥ इत्येतत्कथितंतस्यविष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ शृणुयाद्योवामनस्यसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ९३ ॥ बलिप्रह्लादसंवादंमंत्रितंब
लिशक्रयोः ॥ बलेर्विष्णोश्चकथितंयेस्मरिष्यंतिमानवाः ॥ ९४ ॥

विविधविधानसे जिस किसी क्रियाको करेंगे, वह सभी अक्षय होजाँयगे इसमें संदेह नहीं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी एकादशीमें उपवास
करके ॥ ८९ ॥ द्वादशीमें वामनदेवका दर्शनकर, विष्णुपदमें स्थान और यथाशक्ति दान करनेसे विष्णुपद प्राप्त होजाताहै ॥९०॥ लोमहर्षणजी बोले कि, भगवान्
हरि राजा बलिको इसप्रकार वरदान और इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य देकर उस लोकत्रयव्यापी देहके सहित अन्तर्धान होगये ॥ ९१ ॥ तब राजा इन्द्र पहलेकी
समान त्रिभुवनसे पूजितहो उसका शासन करनेलगे, और राजा बलिभी अपने स्थानमें स्थितहो पातालमें राज्य करनेलगे ॥ ९२ ॥ यह मैंने वामन विष्णु
का परममाहात्म्य कहा, इसके सुननेसे सम्पूर्ण प्रकारके पातक दूर होजाते हैं ॥ ९३ ॥ जो मनुष्य बलि और प्रह्लादका संवाद तथा बलि और

इन्द्रकी मंत्रणा तथा बलि और विष्णुका संवाद स्मरण करैंगे ॥ ९४ ॥ उनको कभी आधि (मनके दुःख) व्याधि (देहके दुःख) का भोगना नहीं होगा और न कभी मन मोहित होगा, उसको पाप कभीभी उत्पन्न नहीं होसकते ॥ ९५॥ हेमहाभाग ब्राह्मणो ! इस उपारख्यानके सुननेसे ब्राह्मण विस्मृतवेदको प्राप्त होतेहैं और राज्यभ्रष्ट राजाको राज्य प्राप्त होताहै और वियोगियाको इष्टका संयोग होताहै॥ ९६ ॥वैश्य धनसमृद्धीको प्राप्त होताहै और शूद्र सुखी होते हैं अधिक क्या कहूं भगवान् वामनदेवके माहात्म्यको सुननेसे सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं॥ ९७॥ इति श्रीवामनपुराणे ब्रह्मसरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां वामनबलिचरितं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१ ॥ ऋषिगण बोले कि, सम्पूर्ण नदियोंमें उत्तमनदी कुरुक्षेत्रमें बहनेवाली महाभागा सरस्वतीजी किसप्रकारसे उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥ और किसप्रकारसे उन सकल लोक

नाधयोव्याधयस्तेषांनचमोहाकुलंमनः ॥ भविष्यतिद्विजश्रेष्ठाःपापंतस्यकदाचन ॥ ९५ ॥ च्युतराज्योनिजंराज्यमिष्टप्राप्तिंवियोगवान् ॥ समाप्नोति
महाभागानरःश्रुत्वाकथामिमाम् ॥ ९६ ॥ ब्राह्मणोवेदमाप्नोतिजयतिक्षत्रियोमहीम् ॥ वैश्योधनसमृद्धिंचशूद्रःसुखमवाप्नुयात् ॥ वामनस्यचमाहात्म्यं
शृण्वन् पापैःप्रमुच्यते ॥ ९७ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येवामनबलिचरितंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथमेषासमुत्पन्नानदी
नासुत्तमानदी ॥ सरस्वतीमहाभागाकुरुक्षेत्रप्रयायिनी ॥ १ ॥ कथंचसरआसाद्यकृत्वातीर्थानिपार्श्वतः ॥ प्रयातापश्चिमामाशांदृश्यादृश्यगतिःशुभा ॥
एतद्विस्तरतोब्रूहितीर्थंब्रह्मविदांवर ॥ २ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ प्लक्षवृक्षात्समुद्भूतासरिच्छ्रेष्ठासनातनी ॥ सर्वपापक्षयकरीस्मरणादपिनित्यशः ॥ ३ ॥
सैषाशैलसहस्राणिविदार्यचमहानदी ॥ प्रविष्टापुण्यतोयैषावनंद्वैतमितिश्रुतम् ॥ ४ ॥ तस्मिन्प्लक्षेस्थितांदृष्ट्वामार्कंडेयोमहामुनिः ॥ प्रणिपत्यतदामूर्ध्ना
तुष्टावाथसरस्वतीम् ॥ ५ ॥ त्वंदेविसर्वलोकानांमातावेदारणिःशुभा ॥ सदसद्देवियत्किंचिन्मोक्षबोधाययत्पदम् ॥ ६ ॥

शुभकारिणीने ब्रह्मसरमें आकर अपने पार्श्वग (दोबगली) में नाना तीर्थोंको निर्माणकरके कहीं दृश्य, कहीं अदृश्य रूपसे बहती हुई पश्चिम ओरको प्रस्थान कियाहै, हे ब्रह्मविच्छ्रेष्ठ ! इस वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, यह सनातनी श्रेष्ठनंदी सरस्वतीजी प्लक्ष (पिनखल) वृक्षसे उत्पन्न हुई हैं इनका नित्यप्रति स्मरण करतेही सब प्रकारके पातक दूर होजातेहैं ॥ ३ ॥ ऐसा सुनाजाता है कि, इस पुण्यजलवाली महानदीने हजारों पहाड़ोंको विदीर्ण करके द्वैतवनमें प्रवेश कियाथा ॥४॥ महामुनि मार्कंडेयजीने प्लक्षवृक्षमें स्थितिके समय इसको देखकर मस्तक नवाय प्रणामकर इस प्रकारसे स्तुति कीथी ॥ ५ ॥ कि, हे देवि ! तुम सम्पूर्णलोकोंकी जननी और वेदअरणी (उत्पादक) स्वरूपिणी होकर सबका कल्याण करतीहो, हे देवि ! जो कुछभी सत् (कारण) वा असत (कार्य) रूपी

संसार और जो मोक्ष जाननेके निमित्त कल्पितहैं ॥ ६ ॥ वह सभी समुद्रके जलकी समान तुममेंही स्थितहैं, परब्रह्म अक्षर (अविनाशी) स्वरूप और विश्व क्षर (विनाशी) स्वरूप दोनों तुममें हैं ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण काष्ठमें अग्निकी समान और पृथ्वीमें गंधकी समान तुमही निवास करती हो ॥ ८ ॥ हे देवि ! जिसमें स्थावर जंगम सम्पूर्ण प्रतिष्ठित हैं वही ओँकार अक्षरका जो संस्थान (स्वरूप) है सो अ इ उ इन तीन मात्राओंसे युक्तहै, इसमें दृश्य और अदृश्य सभी विराजमानहैं ॥ ९ ॥ (स्वर्ग-मर्त्य पाताल)ये तीनोंलोक,(ऋक्,यजु,साम,) यह तीनोंवेद (न्याय नीति, धर्म शास्त्र) यह तीनों विद्या,(दक्षिणाग्नि-गार्हपत्य-आहवनीय) यह तीनों अग्नि (आध्यात्मिक-आधिदैविक आधिभौतिक) यह तीन ज्योति, तीन वर्ग,(धर्म,ज्ञान, वैराग्य) यह तीन धर्म, ॥ १० ॥(सत्व, रज, तम)यह तीन,गुण,(ब्राह्मण,क्षत्री, वैश्य) यह तीन वर्ण,(ब्रह्मा,विष्णु,महेश) यह तीन देव,(सुवर्ण,रजत,ताम्र) यह तीनों धातु, (बाल्य, यौवन, स्थाविर) यह तीनों अवस्था एवं पितृगण और अणिमादि (अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व) यह आठों प्रकारकी सिद्धियें, सभी क्रमानुसार उल्लिखित तीनों मात्राओंमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ११ ॥ हे देवि सरस्वति ! यह तीनों मात्राही तुम्हारा स्वरूप हैं, जिसकी आकृति भिन्न २ हैं. तुम वेदकी आदि और अविनाशिनीस्वरूपा हो ॥ १२ ॥ जो कि, सोमसंस्था, हविसंस्था और पाकसंस्था रूप सनातन, वैदिक यज्ञक्रियाएँ हैं. हे देवि ! ब्रह्मवादीगण तुम्हारे उच्चारणसेही उसका साधन करते हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारा अर्धमात्राश्रित अन्यरूप निर्देश्य (देखने योग्य) नहीं होसकता, जिसका विकार नहीं, क्षय नहीं और परिणाम नहीं, वह दिव्य स्वरूप तुम्हाराही है ॥ १४ ॥ यह परमदिव्यरूप वैसाही है कि, जिसका वर्णन करनेकी हमें सामर्थ्य नहीं है और भी कोई मनुष्य इसका वर्णन नहीं करसकता ॥ १५ ॥ तुम्हारा यह अर्धमात्रास्थित रूपही विष्णु, ब्रह्मा, शिव और साक्षात् चंद्रार्क

यथाजलंसागरेहितथातत्त्वयिसंस्थितम् ॥ अक्षरंपरमंब्रह्मविश्वंचैतत्क्षरात्मकम् ॥ ७ ॥ दारुण्यवस्थितोवह्निर्भूमौगंधोयथाध्रुवम् ॥ तथात्वयिस्थितं
ब्रह्मजगच्चेदमशेषतः ॥ ८ ॥ ओँकाराक्षरसंस्थानंयत्रदेविस्थिरास्थिरम् ॥ तत्रमात्रात्रयंसर्वमस्तियद्देविनास्तिच ॥ ९ ॥ त्रयोलोकास्त्रयोवेदास्त्रैविद्यं
पावकत्रयम् ॥ त्रीणिज्योतींषिवर्गाश्चत्रयोधर्मादयस्तथा ॥ १० ॥ त्रयोगुणास्त्रयोवर्णास्त्रयोदेवास्तथाक्रमात् ॥ त्रिधातवस्तथावस्थाःपितरश्चाणिमादयः
॥ ११ ॥ एतन्मात्रात्रयंदेवितवरूपंसरस्वति ॥ विभिन्नदर्शनाआद्याब्रह्मणोहिसनातनाः ॥ १२ ॥ सोमसंस्थाहविःसंस्थाःपाकसंस्थाःसनातनाः ॥
तास्त्वदुच्चारणाद्देविक्रियंतेब्रह्मवादिभिः ॥ १३ ॥ अनिर्देश्यंतथाचान्यदर्धमात्राश्रितंपरम् ॥ अविकार्यक्षयंदिव्यंपरिणामविवर्जितम् ॥ १४ ॥ तथैतत्परमं
रूपंयन्नशक्यंमयोदितुम् ॥ नचान्येनतथाजिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ॥ १५ ॥ सविष्णुःसशिवोब्रह्माचंद्रार्कज्योतिरेवच ॥ विश्वावासंविश्वरूपं
विश्वात्मानंमहेश्वरम् ॥ १६ ॥

ज्योतिस्वरूप है अधिक क्या कहूं यह रूपही विश्वके आधार, विश्वरूप, विश्वआत्मा, महेश्वरहैं ॥ १६ ॥ सांख्यसिद्धान्त और सम्पूर्ण वेदोंमें इनकी कथा वर्णित हुई है, यह बहुतसी शाखाओंसे स्थिर हुआ है कि, उसका आदि नहीं, मध्य नहीं और अंत नहीं है, वही सर्वदा सत् (कारण) और असत् (कार्य) रूपसे विराजमान है ॥ १७ ॥ वह एक और अनेक अथवा भिन्न भाव समवायमें विच्छिन्न हैं उसकी किसी प्रकारकी आख्या नहीं, परन्तु यह सब षड्गुणाख्या बहुत प्रकारकी आख्यायुक्त और त्रिगुणाश्रित है ॥ १८ ॥ वह जैसे नानाप्रकारकी शक्तिमें विभावक है, उसी प्रकारसे नानाप्रकारकी शक्तियोंका विभावज्ञहै । यही तत्त्वगुणात्मक और महासौख्यस्वरूप तथा सुखकाभी सुखभावयुक्तहै ॥ १९ ॥ हे देवि ! इसप्रकारसे तुमने सम्पूर्ण निष्कल जगत्कों व्याप्त कियाहै, जो अद्वैतरूपसे प्रतिष्ठितहै उस ब्रह्मकोभी तुम व्याप्तकरके विराजमान रहतीहो ॥ २० ॥ जो सम्पूर्ण अर्थ नित्य और अविनाशी हैं, अथवा जो अर्थ स्थूल सूक्ष्म और विनाशयुक्त हैं, या जो

सांख्यसिद्धांतवेदोक्तंबहुशाखास्थिरीकृतम् ॥ अनादिमध्यनिधनंसदसच्चसदैवतु ॥ १७ ॥ एकंत्वनेकधाप्येकंभावभेदसमाश्रितम् ॥ अनाख्यंषड्गुणाख्यंचबह्वाख्यंत्रिगुणाश्रयम् ॥ १८ ॥ नानाशक्तिविभावज्ञंनानाशक्तिविभावकम् ॥ सुखात्सौख्यंमहासौख्यंरूपंतत्त्वगुणात्मकम् ॥ १९ ॥ एवंदेवित्वयाव्याप्तंनिष्कलंसकलंजगत् ॥ अद्वैतावस्थितंब्रह्मयच्चद्वैतेव्यवस्थितम् ॥ २० ॥ येर्थानित्यायेविनश्यंतिचान्येयेर्थाःस्थूलायेविनश्यंतिसूक्ष्माः ॥ येवाभूमौयेन्तरिक्षेन्यतोवातेषांदृश्यासात्वमेवोपलब्धिः ॥ २१ ॥ यद्वामूर्त्तंयच्चमूर्तंसमस्तंयद्वाभूतेष्वेवकर्मास्तिकिंचित् ॥ यद्वादेवेष्वस्तिलेखेन्यतोवातत्संबद्धंत्वक्षरैर्व्यंजनैश्च ॥ २२ ॥ एवंस्तुतातदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती ॥ प्रत्युवाचमहात्मानंमार्कंडेयंमहामुनिम् ॥ यत्रत्वंनेष्यसेविप्रतत्रयास्याम्यतंद्रिता ॥ २३ ॥
मार्कंडेयउवाच ॥ आद्यंब्रह्मसरंपुण्यंततोनागह्रदंस्मृतम् ॥ कुरुणाऋषिणाकृष्टंकुरुक्षेत्रंततःस्मृतम् ॥ तस्यमध्येनवैयाहिपुण्यापुण्यजलावहा ॥ २४ ॥
इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येसरस्वतीस्तोत्रंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अर्थ पृथ्वीमें अन्तरिक्ष और अन्यत्र स्थितहैं, तुम सबकोही दृश्य और तुमसेही उनकी साक्षात् उपलब्धिहै अर्थात् वचन व्यवहारके विना कोई नहीं जासकताहै ॥ ॥ २१ ॥ जो मूर्तिरहित और मूर्तियुक्त हैं, अथवा पृथ्वी आदिक पांचभूतोंके जो कर्महैं, या जो देवताओंमें और अन्यत्र प्रतिष्ठित हैं वह सभी स्वर और व्यंजनसे सम्बद्ध हैं ॥ २२ ॥ महामुनि महानुभाव मार्कण्डेयजीकी इसप्रकार स्तुति करनेपर विष्णुजीकी जिह्वारूपी सरस्वतीने उत्तर दिया हे विप्र ! तुम मुझे जिस स्थानपर लेजाओगे, मैं आलस्यरहित होकर उसी स्थानको चलूंगी ॥ २३ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि, प्रथम तो पवित्र ब्रह्मसर, दूसरा नागह्रद और पश्चात् कुरुराजर्षिके द्वारा कर्षित (जोतागया) होनेसे कुरुक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध स्थान है । उस कुरुक्षेत्रके मध्यमें तुम पवित्ररूपसे परमपवित्र जलराशिको वहन करती हुई प्रस्थान करो ॥ २४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां सरस्वतीस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

लोमहर्षणजी बोले कि, बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके यह वचन सुनकर सरस्वतीजीने प्रवाहयुक्त होकर कुरुक्षेत्रमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ वहां उस पुण्यसलिला सरस्वतीने रन्तुकको प्राप्त होकर कुरुक्षेत्रको आप्लावित (तर) कर पश्चिमकी ओर को प्रस्थान किया ॥ २ ॥ वहां और ऋषिगणोंसे सेवित जो सहस्रों तीर्थ हैं ब्रह्माजीके प्रसादसे मैं उन सबका वर्णन करूंगा ॥ ३ ॥ उन सम्पूर्ण तीर्थोंका स्मरण करनेसे पुण्य होताहै, दर्शन करनेसे पाप नष्ट होजाते हैं और वहां स्नान करनेसे निन्दित कर्म करनेवालेभी मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ४ ॥ जो सम्पूर्ण तीर्थोंका स्मरण करता है और उन तीर्थोंके देवताओंको प्रसन्न करता है अर्थात् उनकी पूजा वंदना करता तथा श्रद्धा और भक्तिके साथ उन तीर्थोंमें जो स्नान करता है उसको परमगति प्राप्त होती है ॥५॥ अपवित्रहो वा पवित्र हो जो मनुष्य सभी अवस्थाओंमें प्राप्त हुए पुंडरीकाक्षका स्मरण करते हैं, उनके शरीर और मन शुद्ध होजाते हैं ॥ ६ ॥ मैं कुरुक्षेत्रको जाऊंगा, अथवा मैं कुरुक्षेत्रमें वास करूंगा, इसप्रकारके मानसिक संकल्प या वचन उच्चारण करनेसेभी सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध गोगृहमें मरण और कुरुक्षेत्रमें वास यही चार प्रकारकी मुक्ति कही हैं ॥ ८ ॥ सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों नदियोंके बीचमें जो देश है उसे देवनिर्मित ब्रह्मावर्त्त देश कहते हैं ॥ ९ ॥ जो मनुष्य दूर रहकरभी मैं कुरुक्षेत्रको जाऊंगा, और कुरुक्षेत्रमें जाकर रहूँगा इत्यादि वचनोंका निरन्तर प्रयोग करता है उसके भी पाप नष्ट होजाते हैं ॥१०॥ और जो बुद्धिमान् मनुष्य सरस्वतीके किनारे निरंतर निवास करते हैं उनको ब्रह्ममय ज्ञान उत्पन्न होता है, इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ देवगण, ऋषिगण और सिद्धगण यह सभी कुरुक्षेत्रकी सेवा करते हैं उस कुरुक्षेत्रकी

लोमहर्षणउवाच ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वामार्कंडेयस्यधीमतः ॥ नदीप्रवाहसंयुक्ताकुरुक्षेत्रंविवेशह ॥ १ ॥ तत्रसारंतुकंप्राप्यपुण्यतोयासरस्वती ॥ कुरुक्षेत्रंसमाप्लाव्यप्रयातापश्चिमांदिशम् ॥ २ ॥ तत्रतीर्थसहस्राणिऋषिभिःसेवितानिच ॥ तान्यहंकीर्त्तयिष्यामिप्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ ३ ॥ तीर्थानांस्मरणंपुण्यं दर्शनंपापनाशनम् ॥ स्नानंपुण्यकरंप्रोक्तमपिदुष्कृतकर्मणः ॥ ४ ॥ येस्मरिष्यंतितीर्थानांदेवताःप्रीणयंतिच ॥ स्नांतिचश्रद्दधानाश्चतेयांतिपरमांगतिम् ॥ ५ ॥ अपवित्रःपवित्रोवासर्वावस्थांगतोऽपिवा ॥ यःस्मरेत्पुंडरीकाक्षंसबाह्याभ्यंतरःशुचिः ॥ ६ ॥ कुरुक्षेत्रंगमिष्यामिकुरुक्षेत्रेवसाम्यहम् ॥ अप्येतां वाचमुत्सृज्यसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ७ ॥ ब्रह्मज्ञानंगयाश्राद्धंगोग्रहेमरणंध्रुवम् ॥ वासःपुंसांकुरुक्षेत्रेमुक्तिरुक्ताचतुर्विधा ॥ ८ ॥ सरस्वतीदृषद्वत्योर्द्वयोर्नद्योर्यदंतरम् ॥ तंदेवनिर्मितंदेशंब्रह्मावर्त्तंप्रचक्षते ॥ ९ ॥ दूरस्थोपिकुरुक्षेत्रंगमिष्यामिवसाम्यहम् ॥ एवंयःसततंब्रूयात्सोपिपापैःप्रमुच्यते ॥ १० ॥ तत्रैवचवसन्धीरःसरस्वत्यास्तटेस्थितः ॥ तस्यज्ञानंब्रह्ममयंभविष्यतिनसंशयः ॥ ११ ॥ देवताऋषयःसिद्धाःसेवंतेकुरुजांगलम् ॥ तस्यसंसेवनान्नित्यं ब्रह्मचात्मनिपश्यति ॥ १२ ॥

नित्य सेवा करनेसे आत्मामें ब्रह्मका दर्शन होताहै ॥ १२ ॥ जो नाशवान् मनुष्य योनिको प्राप्त होकर मोक्षकी इच्छा करते हैं, वह दुराचारीभी हैं और आत्यनियमके साथ कुरुक्षेत्रमें वास करते हैं ॥१३॥ तो उनकेभी जन्म जन्मान्तरोंके संचित किये पाप दूर होजाते हैं, और वह हृदयमें विहार करनेवाले निर्मलस्वरूप सनातन वासुदेवका दर्शन करतेहैं ॥१४॥ कुरुक्षेत्र साक्षात् ब्रह्मवेदी है, ब्रह्मसर उसके निकट प्रतिष्ठित है इसकी सेवा करनेसे मनुष्योंको परमपद प्राप्त होता है॥ १५॥ ग्रह, नक्षत्र और तारागण इन सभीको कालके वशसे पतनका भय है, परन्तु कुरुक्षेत्रमें मरनेसे प्राणी किसी समयभी पतित नहीं होते ॥ १६ ॥ जहां कि, ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा और यह सभी स्थान (रहने) की इच्छासे इस कुरुक्षेत्रकी सेवा करते हैं ॥१७॥ श्रद्धायुक्त होकर कुरुक्षेत्रमें जाय स्थाणुह्रदमें स्नान करनेसे मनमें जो कुछभी चिन्ता करै निःसन्देह उसको उसी फलकी प्राप्ति होगी ॥ १८ ॥ मनुष्य नियमपूर्वक ब्रह्मसरकी प्रदक्षिणा कर रन्तुक

चंचलंहिमनुष्यत्वंप्राप्ययेमोक्षकांक्षिणः ॥ वसंतिनियतात्मानोयेपिदुष्कृतकारिणः ॥१३॥ तेविमुक्ताश्चकलुषैरनेकजन्मसंभवैः ॥ पश्यंतिनिर्मलंदेवंहृदयस्थंसनातनम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मवेदिःकुरुक्षेत्रंपुण्यंसन्निहितंसरः ॥ सेवमानानरानित्यंप्राप्नुवंतिपरंपदम् ॥ १५ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणांकालेनपतनाद्भयम् ॥ कुरुक्षेत्रमृतानांचपतनंनैवविद्यते ॥ १६ ॥ यत्रब्रह्मादयोदेवाऋषयःसिद्धचारणाः ॥ गंधर्वाश्चाप्सरोयक्षाःसेवंतेस्थानकांक्षिणः ॥ १७ ॥ गत्वातुश्रद्धयायुक्तःस्नात्वास्थाणुमहाह्रदे ॥ मनसाचिंतितंकामंलभतेनात्रसंशयः ॥ १८ ॥ नियमंचनरःकृत्वासरःकृत्वाप्रदक्षिणम् ॥ रंतुकंचसमासाद्यक्षामयित्वापुनः पुनः ॥ १९ ॥ सरस्वत्यांनरःस्नात्वायक्षंदृष्ट्वाप्रणम्यच ॥ पुष्पंधूपंचनैवेद्यंदत्त्वावाचमुदीरयेत् ॥ २० ॥ तवप्रसादाद्यक्षेंद्रवनानिसरितस्तथा ॥ भ्रमिष्यामिचतीर्थानिह्यविघ्नंकुरुमेसदा ॥ २१ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ वनानिसप्तनोब्रूहिसप्तनद्यश्चकाः स्मृताः ॥ तीर्थानिचसमग्राणितीर्थस्नानफलंतथा ॥ १ ॥ येनयेनविधानेनयस्यतीर्थस्ययत्फलम् ॥ तत्सर्वंविस्तरेणेहब्रूहिपौराणिकोत्तम ॥ २ ॥

तीर्थमें प्राप्त हो वारम्वार अपने समस्त अपराधोंकी क्षमा करनेके निमित्त बार २ प्रार्थना करै ॥ १९ ॥ और सरस्वतीजीमें स्नान कर यक्षका दर्शन कर प्रणाम करके धूप, दीप, नैवेद्यको चढ़ाय इस प्रकारसे कहै ॥ २० ॥ हे यक्षेन्द्र ! तुम्हारे प्रसादसे मैं नदी वन और सम्पूर्ण तीर्थोंमें भ्रमण करूंगा, आप मेरा यह कार्य निर्विघ्नतासे पूर्ण कीजिये ॥ २१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां कुरुक्षेत्रमाहात्म्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि, हे भगवन् ! सप्त वन और सप्त नदी किसको कहते हैं और सम्पूर्ण तीर्थ तथा उनमें स्नान करनेका क्या फल है सो हमारे निकट वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तुम पुराणके जाननेवालोंमें सबसे प्रधानहो, जिस २ विधानसे जिस २ तीर्थमें फल प्राप्त होता है उन सबका विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

लोमहर्षणजी बोले कि, कुरुक्षेत्रके मध्यवर्ती सप्तवनोंको सुनो, इनका नाम स्मरण करनेसेप्राणी परमपवित्रहो सब प्रकारके पापोंसे छूटजाता है ॥ ३ ॥ पहला काम्यकवन, दूसरा अदितिवन, तीसरा व्यासवन, चौथा फलकीवन ॥ ४ ॥ पांचवाँ सूर्यवन, छठा मधुवन, और सातवां शीतवन यह सातों अत्यन्त पुण्यके देनेवाले और सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह सातों वन मैं ने तुमसे कहे. अब नदियोंके नाम सुनिये, परमपवित्र वैतरणी, सरस्वती ॥ ६ ॥ महा पुण्या मंदाकिनी, (गंगा) मधुश्रवा अम्लू, पापनाशिनी कौशिकी ॥ ७॥ महापुण्या दृषद्वती, और हिरण्वती इनमें सरस्वतीको छोड़कर शेष सभी छहों वर्षाकालमें बहती हैं ॥ ८ ॥ वर्षाकालमें इनका जल परमपवित्र होता है, यह कभी रजस्वला[१]नहीं होतीं, तीर्थके प्रभावसे इनका रूप पवित्र होगया है ॥ ९ ॥ अब हे मुनियो !

लोमहर्षणउवाच ॥ शृणुसप्तवनानीहकुरुक्षेत्रस्यमध्यतः ॥ येषांनामानिपुण्यानिसर्वपापहराणिच ॥ ३ ॥ काम्यकंचवनंपुण्यंतथादितिवनंमहत् ॥
व्यासस्यचवनंपुण्यंफलकीवनमेवच ॥ ४ ॥ तथासूर्यवनंस्थानंतथामधुवनंमहत् ॥ पुण्यशीतवनंनामसर्वकल्मषनाशनम् ॥ ५ ॥ वनान्येतानिवैसप्तनदीः
शृणुतमेद्विजाः ॥ सरस्वतीनदीपुण्यातथावैतरणीनदी ॥ ६ ॥ आपगाचमहापुण्यागंगामंदाकिनीनदी ॥ मधुश्रवाअम्लुनदीकौशिकीपापनाशिनी ॥ ७ ॥
दृषद्वतीमहापुण्यातथाहिरण्वतीनदी ॥ वर्षाकालवहाःसर्वावर्जयित्वासरस्वतीम् ॥ ८ ॥ एतासामुदकंपुण्यंप्रावृट्कालेप्रकीर्तितम् ॥ रजस्वलात्वमेतासां
विद्यतेनकदाचन ॥ तीर्थस्यचप्रभावेणपुण्याह्येताः सरिद्वराः ॥९॥ शृण्वंतुमुनयःप्रीतास्तीर्थस्नानफलंमहत् ॥ गमनंस्मरणंचैवसर्वकल्मषनाशनम् ॥१०॥
रंतुकंचनरोदृष्ट्वाद्वारपालंमहाबलम् ॥ यक्षंसमभिवाद्यैवतीर्थयात्रांसमारभेत् ॥ ११ ॥ ततोगच्छेद्विविप्रेंद्रानाम्नादितिवनंमहत् ॥ अदित्यायत्रपुत्रार्थंकृतं
घोरंमहत्तपः ॥ १२ ॥ तत्रस्नात्वाचसंपूज्यह्यदितिंदेवमातरम् ॥ पुत्रंजनयतेशूरंसर्वदोषविवर्जितम् ॥ आदित्यशतसंकाशंविमानंचाधिरोहति ॥ १३ ॥

प्रीतिपूर्वक तीर्थोंके स्नानके महाफलको श्रवण कीजिये, सम्पूर्ण तीर्थोंमें जाने और उनका स्मरण करनेसे समस्त पाप नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥ मनुष्य रन्तुकतीर्थका दर्शन कर और महाबलवान् द्वारपाल यक्षको प्रणाम करके तीर्थोंकी यात्रामें प्रवृत्त होवे ॥ ११ ॥ हे विप्रो ! इसके उपरान्त महातीर्थस्वरूप अदितिके वनमें जाय जिस स्थानमें प्रथम अदितिने पुत्रकी प्रार्थनासे प्रणके साथ अत्यन्त कठिन तपस्या की थी ॥ १२ ॥ उस स्थानमें स्नान कर देवताओंकी माता अदितिकी पूजा करनेसे सब दोषोंसे रहित पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न होता है, और अन्तमें सहस्रों सूर्यके समान प्रभावाले विमानमें स्थित होकर विचरता है ॥ १३ ॥

---

[१] समुद्रगामिनी नदियोंके अतिरिक्त और नदी सिंह कर्क संक्रान्तिके बीचमें रजस्वला होती हैं,उससमय उनमें स्नान करना "सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाम्" इस वचनके अनुसार उचित नहीं है।

हे विप्रेन्द्रो! इसके उपरान्त सर्वोत्तम विष्णुके स्थानमें जाय यह तीर्थ सतत नामसे विख्यातहै, इस स्थानमें हरि सर्वदा विराजमान रहते हैं॥ १४ ॥ विमलतीर्थोंमें स्नान और विमलेश्वरका दर्शन करनेसे प्राणी निर्मल होकर स्वर्गमें प्राप्त हुआ रुद्रलोकको प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ एकादशीके दिन भगवान् हरि और बलदेवजीको एकत्र स्थित हुएका दर्शन करनेसे प्राणी कलियुगके महापातकोंसे उत्पन्न सब दोषोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त त्रिलोकीमें विख्यात पारिप्लवतीर्थको जाय और उस स्थानमें स्नानकर वेदयुक्त ब्रह्माजीका दर्शन करके ॥ १७ ॥ ब्रह्मयज्ञके फलको प्राप्त कर निर्मलहो स्वर्गमें प्राप्त होता है, वहां कौशिकीतीर्थसंभूत रमणीक संगम तीर्थ विराजमान है ॥ १८ ॥ उस संगममें स्नान करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है, वनके बीच जितनेक अपराध प्राणीने किये हैं वह वहां स्नान करतेही दूर होजाते

ततोगच्छेद्द्विविप्रेंद्राविष्णुस्थानमनुत्तमम् ॥ सततंनामविख्यातंयत्रसंनिहितोहरिः ॥ १४ ॥ विमलेचनरःस्नात्वादृष्ट्वाचविमलेश्वरम् ॥ निर्मलःस्वर्गमायाति रुद्रलोकंचगच्छति ॥ १५ ॥ हरिंचबलदेवंचाप्येकादश्यांसमन्वितौ ॥ दृष्ट्वादोषैर्विमुच्येतकलिकल्मषसंभवैः ॥ १६ ॥ ततःपारिप्लवंगच्छेत्तीर्थंत्रैलोक्य विश्रुतम् ॥ तत्रस्नात्वाचदृष्ट्वाचब्रह्माणंवेदसंयुतम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मयज्ञफलंप्राप्यनिर्मलःस्वर्गमाप्नुयात् ॥ तत्रापिसंगमंरम्यंकौशिक्यास्तीर्थसंभवम् ॥ १८ ॥ संगमेचनरःस्नात्वाप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ अरण्येचापराधायेकृताहिपुरुषेणवै ॥ सर्वास्तान्क्षमतेतत्रस्नातमात्रस्यदेहिनः ॥१९॥ ततोदक्षाश्रमंगत्वादृष्ट्वादक्षे श्वरंशिवम् ॥ अश्वमेधस्ययज्ञस्यफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ २० ॥ ततःशालूकिनंगच्छेत्स्नात्वातीर्थेद्विजोत्तमः ॥ हरिंहरेणसंयुक्तंपूजयित्वातुभक्तितः ॥ प्राप्नोत्यभिमतंलोकंसर्वपापविवर्जितः ॥२१॥ सर्पिर्दधिसमासाद्यनागानांतीर्थमुत्तमम् ॥ तत्रस्नानंनरःकृत्वामुक्तोनागभयाद्भवेत् ॥ २२ ॥ ततोगच्छेच्चविप्रें द्रानरकोद्धाररंतुकम् ॥ तत्रापिरजनीमेकांस्नात्वातीर्थवरेशुभे॥२३॥तत्रद्वितीयंसंपूज्यद्वारपालंप्रयत्नतः ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वाचप्रणिपत्यक्षमापयेत् ॥२४॥

हैं ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त दक्षके आश्रममें जाकर दक्षेश्वर शिवजीका दर्शन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ २० ॥ इसके पीछे शालुकी तीर्थमें जाय वहां स्नान कर महादेवजीके साथ विराजमान विष्णुभगवान्‌की भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर उत्तम लोकको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त नागतीर्थमें जाय और उस स्थानमें घृत दहीको मिलाकर उससे स्नान करनेसे मनुष्यको सर्पका भय दूर होजाता है ॥ २२ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इसके उपरान्त नरकसे उद्धार करनेवाले रन्तुक तीर्थमें जाय और उस स्थानमें भी एक रात्रि निवासकर परममंगलदायक उस तीर्थमें स्नान करै ॥ २३ ॥ वहां दूसरे द्वारपालकी विधिपूर्वक यत्न सहित पूजाकर ब्राह्मणोंको भोजन कराय हाथ जोड प्रणाम करै और उनसे अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना करै ॥ २४ ॥

कि, हे यक्षेन्द्र ! मैं आपके प्रसादसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होगया हूं, इस संसारमें जिस सिद्धिकी अभिलाषा कीथी वह मुझको प्राप्त हुई ॥ २५ ॥ इसप्रकार यक्षेन्द्रको प्रसन्न करके पीछे पंचनदीमें जाय ॥ २६ ॥ स्वयं महादेवजीने उस स्थानमें पंचनदियोंकी प्रतिष्ठा की है इसकारण सर्व लोकोंमें उसका नाम पंचनद विख्यात हुआ है दानवोंके निवास करनेसे यह नदियें अत्यन्त भयंकर हैं ॥ २७ ॥ जिसकारण महादेवजीने करोडों तीर्थोंको एकत्रित किया इसी कारणसे उसको तीनों लोकोंमें कोटितीर्थ कहते हैं ॥ २८ ॥ उस कोटितीर्थमें स्नानकर कोटीश्वर महादेवजीका दर्शन करनेसे पांच यज्ञोंके करनेका फल प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ और उसी स्थानमें देवताओंके साथ वामनदेवजी विराजमान हैं, वहां स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ भक्तिपूर्वक जितेन्द्रिय हो अश्विनीकुमारके तीर्थमें

तवप्रसादाद्यक्षेंद्रमुक्तोहंसर्वकिल्बिषैः ॥ सिद्धिर्मयाभिलषितासंसारेतांलभाम्यहम् ॥ २५ ॥ एवंप्रसाद्ययक्षेंद्रंततःपंचनदंव्रजेत् ॥ २६ ॥ पंचनद्यश्चरुद्रे
णकृतादानवभीषणाः ॥ तेनसर्वेषुलोकेषुतीर्थंपंचनदंस्मृतम् ॥ २७ ॥ कोटितीर्थानिरुद्रेणसमाजह्रेयतस्ततः ॥ तेनत्रैलोक्यविख्यातंकोटितीर्थंप्रचक्षते ॥
॥ २८ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वादृष्ट्वाकोटीश्वरंहरम् ॥ पंचयज्ञानवाप्नोतिनित्यंश्रद्धासमन्वितः ॥ २९ ॥ तत्रैववामनोदेवःसर्वदेवैःप्रतिष्ठितः ॥ तत्रापि
चनरःस्नात्वाह्यग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ ३० ॥ अश्विनोस्तीर्थमासाद्यश्रद्धावान्योजितेंद्रियः ॥ रूपवान्भाग्ययुक्तश्चसयशस्वीनसंशयः ॥ ३१ ॥ वराहतीर्थ
माख्यातंविष्णुनापरिकल्पितम् ॥ तस्मिन्स्नात्वाश्रद्दधानःप्रयातिपरमांगतिम् ॥ ३२ ॥ तत्रगच्छेच्चविप्रेंद्राःसोमतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रसोमस्तपस्तप्त्वाव्या
धिमुक्तोभवत्पुरा ॥ ३३ ॥ तत्रसोमेश्वरंदृष्ट्वास्नात्वातीर्थवरेशुभे ॥ राजसूयस्ययज्ञस्यफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ३४ ॥ व्याधिभ्यश्चविनिर्मुक्तःसर्वदोषविव
र्जितः ॥ सोमलोकमवाप्नोतिचंद्रेणरमतेचिरम् ॥ ३५ ॥ भूतेश्वरंचतत्रैवज्वालामालेश्वरंतथा ॥ तच्चलिंगंसमभ्यर्च्यनभूयोजन्मचाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

जानेसे मनुष्य रूपवान् कीर्तिवान् और भाग्यवान् होजाता है इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ विष्णु भगवान्से कल्पित कियाहुआ वराहतीर्थ नामसे जो तीर्थ विख्यात है, श्रद्धासहित उसमें स्नान करनेसे परमगति प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके उपरान्त अतिउत्तम सोमतीर्थमें जाय, वहां प्रथम चंद्रमा तपस्या करके सब व्याधियोंसे छूट गयेथे ॥ ३३ ॥ वहां सोमेश्वरका दर्शन और उन पवित्र तीर्थमें स्नान करनेसे राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ और व्याधियोंसे छूटकर सब दोषोंसे रहितहो प्राणी चंद्रलोकको प्राप्त कर चंद्रमाके सहित चिरकालतक विहार करता है ॥ ३५ ॥ उसी स्थानमें भूतेश्वर और ज्वालामालेश्वर नामका जो लिंग प्रतिष्ठित

---

१ सब स्त्रियोंमें समान नहीं वर्तनेके कारण कश्यपके शापसे राजयक्ष्मा रोग चंद्रमाको होगयाथा यह पुराणोत्तरमें कथा है ।

है उनकी विधिसहित पूजा करनेसे फिर मनुष्यका जन्म नहीं होता ॥ ३६ ॥ एक हंसतीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानके फलको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तीर्थसेवी पुरुषको कृतशौच नामक तीर्थको प्राप्त करनेसे, अर्थात् वहां जाकर स्नानादिक करनेसे और पुण्डरीक यज्ञके करनेसे जो फल मिलता है सोही फल प्राप्त होजाता है, और मनुष्य कृतशौच (सब प्रकारसे शुद्ध) होजाता है, इसके उपरान्त ध्यानशाली महादेवजीके मुञ्जवट नामक तीर्थमें ॥ ३८ ॥ एक रात्रि उपवास करनेसे महादेवजीके गणभावको प्राप्त होता है, और उसी स्थानमें सर्वलोकोंमें विख्यात महाभागा यक्षिणीका स्थान है ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें जाकर स्नान करनेसे महापातक नष्ट होजाते हैं, यही कुरुक्षेत्रका पुण्यवर्द्धक द्वारकानामसे विख्यात है ॥ ४० ॥ इसकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै, इसके

एकहंसेनरःस्नात्वागोसहस्रफलंलभेत् ॥ कृतशौचंसमासाद्यतीर्थसेवीद्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥ पौंडरीकमवाप्नोतिकृतशौचोभवेन्नरः ॥ ततोमुंजवटंनाममहादेवस्यधीमतः ॥ ३८ ॥ उपोष्यरजनीमेकांगाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ तत्रैवचमहाभागायक्षिणीलोकविश्रुता ॥३९॥ स्नात्वाभिगम्यतत्रैवमहापातकनाशनम् ॥ कुरुक्षेत्रस्यतद्द्वारंविश्रुतंपुण्यवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ प्रदक्षिणमुपावर्त्यब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ पुष्करंचततोगत्वाह्यभ्यर्च्यपितृदेवताः॥ ४१ ॥ जामदग्न्येनरामेणकृतंतच्चमहात्मना ॥ कृतकृत्योभवेद्राजाअश्वमेधंचविंदति ॥ ४२ ॥ कन्यादानंचयस्तत्रकार्त्तिक्यां वैकरिष्यति ॥ प्रसन्नादेवतास्तस्यदास्यंत्यभिमतं फलम् ॥ ४३ ॥ कपिलश्चमहायक्षोद्वारपालःस्वयंस्थितः ॥ विघ्नंकरोतिपापानांदुर्गतिंचप्रयच्छति ॥ ४४ ॥ पत्नीतस्यमहायक्षीनाम्नोलूखलमेखला ॥ आहत्यदुंदुभिंसातुभ्रमतेनित्यमेवहि ॥ ४५ ॥ साददर्शस्त्रियंचैकांसपुत्रांपापदेशजाम् ॥ तामुवाचतदायक्षीआहत्यनिशिदुंदुभिम् ॥ ४६ ॥

उपरान्त पुष्करतीर्थमें जाकर पितृदेवताओंकी पूजा करै ॥ ४१ ॥ महात्मा जमदग्नि और परशुरामने इस तीर्थकी प्रतिष्ठा की है, वहां जानेसे राजा कृतार्थ (लब्ध मनोरथ) होकर अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य कार्तिककी एकादशीसे आरंभ करके पूर्णमासीतक जिस किसी तिथिमें वहां कन्यादान करते हैं देवता लोग प्रसन्न होकर उनकी इच्छाके अनुसार फल देते हैं ॥ ४३ ॥ उस स्थानपर महायक्ष कपिलजी स्वयं द्वारपाल रूपसे विराजमान हैं, वह पापियोंके कार्योंमें विघ्न और उनकी दुर्गति करते हैं ॥ ४४ ॥ उनकी स्त्री महायक्षी उलूखल मेखला नामसे विख्यात है, और उस स्थानमें वह नित्य दुन्दुभि (नगारे) इत्यादि बाजे बजाकर भ्रमण करती है ॥ ४५ ॥ वह महायक्षी पापदेशमें उत्पन्न हुई पुत्रवती किसी स्त्रीको देखकर रात्रिमें दुन्दुभी बजाती हुई उससे

कहने लगी ॥ ४६ ॥ युगन्धर देशमें दधिभोजन, अच्युतस्थलमें वास और भूतालयमें स्नान कर पुत्रके सहित वास करनेकी अभिलाषा करती है क्यों ॥ ४७ ॥ मैंने दिनमें तुमसे कहीथी, अब रात्रिमें अवश्यही तुम्हें भक्षण करूंगी वह स्त्री इतना वचन सुनकर हाथ जोड तब यक्षिणीको प्रणाम कर ॥ ४८ ॥ दीन वचन बोली कि, हे भामिनि ! मेरे ऊपर प्रसन्न हो तब वो यक्षिणी कृपायुक्त होकर उससे बोली ॥ ४९ ॥ कि, जब किसी समय सूर्य ग्रहण होगा उस समय सरस्वतीमें स्नान करनेसे निष्पाप होकर स्वर्गमें जाओगी ॥ ५० ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां सप्तवनादिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

युगंधरेदधिप्राश्यउषित्वाचाच्युतस्थले ॥ तद्वद्भूतालयेस्नात्वासपुत्रावस्तुमिच्छसि ॥४७॥ दिवामयातेकथितंरात्रौभक्ष्यामिनिश्चितम् ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंप्रणिपत्यचयक्षिणीम् ॥ ४८ ॥ उवाचदीनयावाचाप्रसादंकुरुभामिनि ॥ ततःसायक्षिणीतांतुप्रोवाचकृपयान्विता ॥ ४९ ॥ यदासूर्यस्यग्रहणंकालेनभविताक्वचित् ॥ सरस्वत्यांतदास्नात्वापूतास्वर्गंगमिष्यसि ॥ ५० ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ ततोरामह्रदंगच्छेत्तीर्थसेवीद्विजोत्तमः ॥ तत्ररामेणविप्रेणतरसादीप्ततेजसा ॥ १ ॥ क्षत्रमुत्साद्यविप्रेणह्रदाःपंचनिवेशिताः ॥ पूरयित्वानरव्याघ्ररुधिरेणेतिनःश्रुतम् ॥ २ ॥ पितरस्तर्पितास्तेनतथैवचपितामहाः ॥ ततस्तेपितरःप्रीतारामम्मूचुर्द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥ रामराममहाबाहोप्रीताःस्मस्तवभार्गव ॥ अनयापितृभक्त्याचविक्रमेणचतेविभो ॥ ४ ॥ वरंवृणीष्वभद्रंतेकमिच्छसिमहायशः ॥ एवमुक्तस्तुपितृभीरामःप्रभवतांवरः ॥५॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंसपितॄन्गगनस्थितान् ॥ भवंतोयदिमेप्रीतास्तदनुग्राह्यतामयम् ॥ ६ ॥

लोमहर्षणजी बोले कि, हे द्विजोत्तमो ! तीर्थसेवी वहांसे रामह्रदमें गमन करे, वहाँ दीप्ततेजस्वी परमप्रभावशाली परशुरामजीने ॥ १ ॥ क्षत्रिय कुलको निर्मूल कर उनके रुधिरसे परिपूर्ण कर पांच ह्रद बनायेथे इसप्रकारसे विख्यात हैं ॥ २ ॥ इससे उन्होंने पिता और पितामहादिका तर्पण किया उससे प्रसन्नहो वे सब परशुरामसे बोले ॥ ३ ॥ कि, हे राम २ ! हे महाबाहो ! हे विभो ! तुम्हारी इस पितृभक्ति और पराक्रमको देखकर हमलोग तुमपर प्रसन्न हुए हैं ॥ ४ ॥ हे महायशा ! तुम अपनी इच्छानुसार वर मांगो, तुम्हारा मंगल होगा. प्रभुश्रेष्ठ महावीर परशुरामजी पितरोंसे इसप्रकार कहे जाकर ॥ ५ ॥ हाथ जोड़ उन गगनविहारी पितृगणोंसे

---

१ युगन्धर देशमें गधी और ऊँटनीके दूधका दही बनता है उसके खानेसे धर्मशास्त्रके अनुसार मद्यपान करनेका प्रायश्चित्त लगता है, यथा–"औष्ट्रमेकशफं क्षीरं सुरातुल्यं प्रकीर्तितम् । "

२ अच्युतस्थल उसको कहते हैं, जहां संकर जातियोंका वास है, वहां वास करनेसे धर्मशास्त्रके अनुसार प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्धि होती है, यथा–"संसृज्य सङ्करैः सार्द्धं प्राजापत्यं व्रतश्चरेत् ।" ३ भूतालय उस नदीका नाम है जहाँ शत्रुके ग्राममें रात्रिके समय अग्नि लगाकर दग्ध किये हुए मनुष्योंको बहादेते हैं उसमें स्नान करनेसे या उस स्थानपर वास करनेसेभी धर्मशास्त्रके अनुसार प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्धि होती है, यथा–"प्रोष्य भूतालये विप्रः प्राजापत्यं व्रतश्चरेत् ।" ४ उपरोक्त धर्मशास्त्रके विरुद्ध काम करके (युगन्धर देशमें दधिभोजन अच्युतस्थलमें वास और भूतालमें स्नान करके) महापातकिनी तू कैसे यहां वास पासकती है ।

बोले कि, यदि आपलोग मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो यह अनुग्रह कीजिये ॥ ६ ॥ मैं आप सबके प्रसादसे फिर तपप्राप्तिकी इच्छा करता हूं; जैसे मैं ने क्रोधके वशीभूत
होकर क्षत्रिय कुलको विध्वंस किया है ॥ ७ ॥ उसी कारणसे जो मुझको पातक हुआ है आपके तेजसे वह मुक्तहो (छूट) सकता है और हमारे प्रतिष्ठित
यह सभी ह्रद इस पृथ्वीमें तीर्थरूपसे विख्यात होंगे ॥ ८ ॥ पितृगण रामके इन शुभ वचनोंको सुनकर हर्षित हो प्रीतिपूर्वक यह वचन बोले ॥ ९ ॥ कि, हे पुत्र !
पितृभक्तिके प्रभावसे विशेष करके तुम्हारी तपस्या वृद्धिको प्राप्तहो और जो तुमने क्रोधित होकर क्षत्रियोंको उत्पादन (नाश) किया है ॥ १० ॥ उस पापसे तुम
मुक्ति पाओगे. कारण कि, वह सम्पूर्ण क्षत्री अपने २ कर्मके बलसे मरे हैं, आजसे तुम्हारे किये हुए सभी ह्रद तीर्थ होंगे, इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ११ ॥ जो

पितृप्रसादादिच्छेयंतपसोस्यापनंपुनः ॥ यतोरोषाभिभूतेनक्षत्रमुत्सादितंमया ॥ ७ ॥ ततस्तुपापान्मुच्येययुष्माकंतेजसाह्यहम् ॥ ह्रदाश्चैतेतीर्थभूताभ
वेयुर्भुविविश्रुताः ॥ ८ ॥ एवंश्रुत्वाशुभंवाक्यंरामस्यपितरस्तदा ॥ प्रत्यूचुःपरमप्रीतारामंहर्षपुरस्कृताः ॥ ९ ॥ तपस्तेवर्द्धतांपुत्रपितृभक्त्याविशेषतः ॥
यच्चरोषाभिभूतेनक्षत्रमुत्सादितंत्वया ॥ १० ॥ ततश्चपापान्मुक्तस्त्वंपातितास्तेस्वकर्मभिः ॥ ह्रदाश्चैतेत्वतीर्थत्वंगमिष्यंतिनसंशयः ॥ ११ ॥ ह्रदेष्वे
तेषुयःस्नात्वास्वान्पितृंस्तर्पयिष्यति ॥ तस्यदास्यंतिपितरोयथाभिलषितंफलम् ॥ १२ ॥ ईप्सितान्मानसान्कामान्स्वर्गवासंचशाश्वतम् ॥ एवंदत्त्वावरा
न्विप्रारामस्यपितरस्तदा ॥ १३ ॥ रामंसुभार्गवंप्रीतास्तत्रैवांतर्दधुस्तदा ॥ एवंरामह्रदाःपुण्याभार्गवस्यमहात्मनः ॥ १४ ॥ स्नात्वाह्रदेषुराम
स्यब्रह्मचारीशुचिव्रतः ॥ रामंसमभ्यर्च्यतथाविंदेद्बहुसुवर्णकम् ॥ १५ ॥ वंशमूलंसमासाद्यतीर्थसेवीसुसंयतः ॥ स्ववंशमुद्धरेद्विप्राःस्नात्वाचैवसमूलकम् ॥
॥ १६ ॥ कायशोधनमासाद्यतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ शरीरशुद्धिमाप्नोतिस्नातस्तस्मिन्नसंशयः ॥ १७ ॥

मनुष्य इन सब ह्रदोंमें स्नान कर पितरोंका तर्पण करैंगे तो पितृगण उनको अभिलषित फल देंगे ॥ १२ ॥ इसके अतिरिक्त औरभी उनके प्रसादसे
उनकी आंतरिक अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी और वह अक्षय स्वर्गमें निवास करेंगे. हे ब्राह्मणो ! पितृलोग रामको यह वर देकर ॥ १३ ॥ उन
भार्गवश्रेष्ठ रामके ऊपर प्रसन्न होकर उस स्थानसे अन्तर्धान हुए, इसी कारणसे परमात्मा परशुरामके सम्पूर्ण ह्रद पवित्र तीर्थ हुए हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी और अखंडित
व्रत होकर रामह्रदमें स्नान और परशुरामजीकी पूजा करनेसे बहुत सुवर्णकी प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त तीर्थसेवी द्विजोत्तम वंशमूलतीर्थमें जाकर
वहां स्नानकर अपने वंशका उद्धार करै ॥ १६ ॥ तिसके उपरान्त त्रिलोकीमें विख्यात कायशोधनतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे शरीर शुद्ध होता है इसमें कुछभी

संदेह नहीं ॥ १७ ॥ देहके शुद्ध होतेही प्राणी पुनर्जन्मके आवागमनसे छूटजाता है, तीर्थपरायण सिद्धगणोंको जबतक कायशोधनतीर्थ न प्राप्त हो तबतक वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें भ्रमण करते हैं ॥ १८॥ उन तीर्थोंमें संयत चित्तसे शरीरको पवित्र करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है, जहांसे फिर लौटना नहीं होता ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त हे विप्रेन्द्रो ! लोकोद्धारतीर्थमें जाय प्रभु विष्णुभगवान्ने इस स्थानमें सम्पूर्णलोकोंका उद्धार किया है ॥ २० ॥ इस लोकोद्धारमें जाकर ध्यानमें तत्पर हो स्नान करनेसे शाश्वतलोक (वैकुंठ) को प्राप्त होजाते हैं ॥२१॥ अविनाशी स्वरूप विष्णु और महादेव यह दोनोंही वहां प्रतिष्ठित हैं उन्हें प्रणामकर उनके प्रसन्न करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है, इसके उपरान्त अतिउत्तम श्रीतीर्थमें जाय वहां स्नान करनेसे भगवान् केशव उनके सन्मुख होते हैं ॥२२॥२३॥ इसके उपरान्त कपिलह्रद

शुद्धदेहश्चसंयातियस्मान्नावर्त्ततेपुनः ॥ तावद्भ्रमंतितीर्थेषुसिद्धास्तीर्थपरायणाः ॥ यावन्नप्राप्नुवंतीहतीर्थंतत्कायशोधनम् ॥ १८ ॥ तस्मिंस्तीर्थेचसंप्राप्य
कायंसंयतमानसः ॥ परंपदमवाप्नोतियस्मान्नावर्त्ततेपुनः ॥१९॥ ततोगच्छेच्चविप्रेंद्रास्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ लोकायत्रोद्धृताःसर्वेविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥
॥ २० ॥ लोकोद्धारंसमासाद्यतीर्थस्मरणतत्परः ॥ स्नात्वातीर्थवरेतस्मिँल्लोकंपश्यतिशाश्वतम् ॥ २१ ॥ यत्रविष्णुःस्थितोनित्यंशिवोदेवश्चशाश्वतः ॥
तौदेवौप्रणिपातेनप्रसाद्यमुक्तिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ श्रीतीर्थंतुततोगच्छेच्छालिग्राममनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातस्यसान्निध्यंसदादेवःप्रयच्छति ॥ २३ ॥ कपि
लंह्रदमासाद्यतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तत्रस्नात्वार्चयित्वाचदैवतानिपितॄंस्तथा ॥ २४ ॥ कपिलानांसहस्रस्यफलंविंदतिमानवः ॥ तत्रस्थितंमहादेवंक
पिलंवपुराश्रितम् ॥२५॥ दृष्ट्वामुक्तिमवाप्नोतिऋषिभिःपूजितंशिवम् ॥ सूर्यतीर्थंसमासाद्यस्नात्वानियतमानसः ॥२६॥ अर्चयित्वापितॄन्देवानुपवासपराय
णः॥अग्निष्टोममवाप्नोतिसूर्यलोकंचगच्छति ॥२७॥ सहस्रकिरणंदेवंभानुंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ दृष्ट्वामुक्तिमवाप्नोतिनरोज्ञानसमन्वितः ॥२८॥ भवानीवनमा
साद्यतीर्थसेवीयथाक्रमम्॥तत्राभिषेकंकुर्वाणोगोसहस्रफलंलभेत्॥२९॥पितामहस्यंपिबतोह्यमृतंपूर्वमेवहि॥ उद्गारात्सुरभिर्जातासाचपातालमाश्रिता ॥३०॥

नामक त्रिलोकीमें विख्यात तीर्थमें जाकर स्नान और पितरोंकी पूजा करनेसे ॥ २४ ॥ सहस्र गौओंके दानका फल प्राप्त होता है, उस स्थानपर महादेवजी कपिल शरीर धारणकर विराजमान हैं ॥ २५ ॥ उन ऋषिगणोंसे पूजित महादेवजीका दर्शन करनेसे मुक्ति प्राप्ति होजाती है, इसके उपरान्त सूर्यतीर्थमें जाकर संयत (निगृहीत) चित्तसे स्नान करके ॥ २६ ॥ उपवासकर पितर और देवताओंकी पूजा करै तो अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है ॥ ॥ २७ ॥ त्रिलोकीमें विख्यात सहस्र किरणयुक्त सूर्यका दर्शन करनेसे ज्ञानवान् होकर मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ तीर्थसेवी पुरुष भवानी (पार्वती) के वनमें जाकर वहां विधिपूर्वक स्नान करै तो सहस्र गौओंके दानका फल मिलता है ॥ २९ ॥ पूर्वकालमें पितामह (ब्रह्माजी) के अमृत पीनेके समय उनकी

डकारसे सुरभी (कामधेनु) उत्पन्न हुई और पातालको चली गई ॥ ३० ॥ उस सुरभीके गर्भसे लोकमाता सुरभीमाता (कामधेनु) सब उत्पन्न हुई हैं उनसे
यह समस्त पाताल लोक निरन्तर व्याप्त होगया ॥ ३१ ॥ पितामह ब्रह्माजीके यज्ञ करते समय उनकी दक्षिणाके अर्थ सम्पूर्ण सुरभी विवरमार्गके द्वारा लाईगईथीं
बुलाये हुए ब्राह्मणगण उस यज्ञविवरको देखकर भ्रान्त होगये ॥ ३२ ॥ उस विवरके द्वारपर स्वयं गणपतिजी विराजमान हैं, जितेन्द्रियहो उनका दर्शन
करनेसे सम्पूर्ण अभिलाषाएँ पूर्ण होजाती हैं ॥ ३३ ॥ मुक्तिके साक्षात् देनेवाले संगिनी नामक तीर्थमें जानेसे मुक्ति प्राप्त होती है, देवीके तीर्थमें स्नान करनेसे श्रेष्ठ
रूप प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ और पुत्र पौत्रादियुक्त होकर अनन्त लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर परमपद (मोक्ष) का अधिकारी होता है ॥ ३५ ॥

तस्याःसुरभयोजातामातरोलोकमातरः ॥ ताभिस्तत्सकलंव्याप्तंपातालंसुनिरंतरम् ॥ ३१ ॥ पितामहस्ययजतोदक्षिणार्थमुपाहृताः ॥ आहूताब्राह्मणास्ते
चविभ्रांताविवरेणहि ॥ ३२ ॥ तस्मिन्विवरद्वारेतुस्थितोगणपतिःस्वयम् ॥ यंदृष्ट्वासकलान्कामान्प्राप्नोतिनियतेंद्रियः ॥ ३३ ॥ संगिनींतुसमासाद्यतीर्थमु
क्तिसमाश्रयम् ॥ देव्यास्तीर्थेनरःस्नात्वालभतेरूपमुत्तमम् ॥३४॥ अनंतांश्रियमाप्नोतिपुत्रपौत्रैःसमन्वितः ॥ भोगांश्चविपुलाँल्लब्ध्वाप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥
॥ ३५ ॥ ब्रह्मावर्तेनरःस्नात्वाब्रह्मज्ञानसमन्वितः ॥ जायतेनात्रसंदेहःप्राणान्मुंचतिचेच्छया ॥ ३६ ॥ ततोगच्छेद्धिविप्रेंद्राद्वारपालंरंतुकम् ॥ तत्रतीर्थे
सरस्वत्यायक्षेंद्रस्यमहात्मनः ॥ ३७ ॥ तत्रज्ञानंसमासाद्यह्युपवासपरायणः ॥ यक्षस्यचप्रसादेनलभतेकामिकंफलम् ॥ ३८ ॥ ततोगच्छेद्धिविप्रें
द्राब्रह्मावर्त्तंमुनिस्तुतम् ॥ ब्रह्मावर्त्तेनरःस्नात्वाब्रह्मचाप्नोतिनिश्चितम् ॥ ३९ ॥ ततोगच्छेच्चविप्रेंद्राःसुतीर्थकमनुत्तमम् ॥ तत्रसन्निहितानित्यंपितरोदैवतैः
सह ॥ ४० ॥ तत्राभिषेकंकुर्वीतपितृदेवार्चनेरतः ॥ अश्वमेधमवाप्नोतिपितॄन्प्रीणातिशाश्वतम् ॥ ४१ ॥

मनुष्य ब्रह्मावर्त्तमें स्नान करनेसे निःसन्देह ब्रह्मज्ञानको प्राप्तकर इच्छानुसार मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके उपरान्त द्वारपाल रन्तुकतीर्थमें जाय
उस रन्तुकतीर्थमें सरस्वतीजी महात्मा यक्षेन्द्रके सन्निहित (करीब) ॥ ३७ ॥ उपवास और व्रत करनेसे यक्षके प्रसादसे मनुष्य ज्ञानको प्राप्त कर अपनी इच्छा
नुसार फलको प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! यहांसे फिर दूसरे ब्रह्मावर्तमें जाय, मुनियोंने इस तीर्थकी स्तुति की है, ब्रह्मावर्त्तमें स्नान करनेसे मनुष्योंको निश्च
यही ब्रह्मकी (ज्ञान) प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके उपरान्त अत्युत्तम सुतीर्थमें जाय, वहां देवताओंके साथ पितर लोग सर्वदा विराजमान रहते हैं
॥ ४० ॥ जो मनुष्य उस स्थानमें पितरोंकी और देवताओंकी पूजामें तत्पर रहकर नित्य स्नान कराकरैं तो उसके करनेसे पितरलोग चिरकालतक प्रसन्न

रहते हैं और अन्तमें अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त धर्मज्ञ पुरुष क्रमानुसार अवन्तीतीर्थमें प्राप्त होकर कामेश्वरतीर्थमें स्नान करै ॥ ॥ ४२ ॥ तो सम्पूर्ण व्याधियोंसे छूटकर वह ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होजाता है इसमें संदेह नहीं, और उसी स्थानमें विराजमान जो मातृतीर्थ हैं उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे ॥ ४३ ॥ सर्वदा प्रजा (सन्तान) की वृद्धि और अनन्त श्री (लक्ष्मी) प्राप्ति होती है, इसके उपरान्त जितेन्द्रिय हो हविष्यादिका अनुष्ठान करके मनुष्य सीतावनमें जाय ॥ ४४ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! उस स्थानमें जो और बड़े २ तीर्थ विराजमान हैं वह दूसरे स्थानोंमें दुर्लभ हैं उनका दर्शन करनेसे इक्कीस[1] पुरुषतक पवित्र होजाते हैं ॥ ४५ ॥ उस स्थानके एकही तीर्थमें मार्जन करतेही मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाते हैं, और उस स्थानमें विश्वलोमा यह नामका दूसरा तीर्थ है ॥ ४६ ॥

ततोऽवंत्यांचधर्मज्ञसमासाद्ययथाक्रमम् ॥ कामेश्वरस्यतीर्थेतुस्नात्वाश्रद्धासमन्वितः ॥ ४२ ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तोब्रह्मचाप्नोतिनिश्चितम् ॥ मातृतीर्थंचतत्रैवयत्रस्नातस्यभक्तितः ॥ ४३ ॥ प्रजाविवर्द्धतेनित्यमनंतांचाप्नुयाच्छ्रियम् ॥ ततःसीतावनंगच्छेन्नियतोनियताशनः ॥ ४४ ॥ तीर्थंतत्रचविप्रेन्द्रामहदन्यत्रदुर्लभम् ॥ पुनातिदर्शनादेवपुरुषानेकविंशतिम् ॥ ४५ ॥ केशानभ्युक्ष्यचैकस्मिन्पूतोभवतिपापतः ॥ तत्रतीर्थवरंचान्यच्छ्वुनांलोमापहंमहत् ॥ ४६ ॥ तत्रविप्रामहाप्राज्ञाविद्वांसस्तीर्थतत्पराः ॥ श्वविलोमापहेतीर्थेविप्रास्त्रैलोक्यविश्रुते ॥ ४७ ॥ प्राणायामैर्निर्हरंतिस्वलोमानिद्विजोत्तमाः ॥ पूतात्मानश्चतेविप्राःप्रयांतिपरमांगतिम् ॥ ४८ ॥ दशाश्वमेधिकंचैवतत्रतीर्थंसुविश्रुतम् ॥ तत्रस्नात्वाभक्तियुक्तस्तदेवलभतेफलम् ॥ ४९ ॥ ततोगच्छेद्धिश्रद्धावान्मानुषंलोकविश्रुतम् ॥ दर्शनात्तस्यतीर्थस्यमुक्तोभवतिकिल्बिषैः ॥ ५० ॥ पुराकृष्णमृगास्तत्रव्याधैस्तुशरपीडिताः ॥ अवगाह्यसरस्यस्मिन्मानुषत्वमुपागताः ॥ ५१ ॥

हे विप्रो ! त्रिलोकीमें विख्यात तिस विश्वलोमा यह तीर्थमें बड़े २ ज्ञानी तीर्थसेवी विद्वान् लोक निवास करते हैं ॥ ४७ ॥ वहां ब्राह्मणश्रेष्ठ[2] प्राणायामके द्वारा अपनी लोम अर्थात् पातकोंको दूर करते हैं, जिसके प्रभावसे वह पवित्रात्मा होकर परमगतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ४८ ॥ और उस स्थानमें दशाश्वमेधिक नामक विख्यात तीर्थ है, इस तीर्थमें भक्तिसहित स्नान करनेसे दश अश्वमेध यज्ञके करनेका फल मिलता है ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त श्रद्धावान् होकर मानुष तीर्थमें जाय, इसके दर्शन करनेहीसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ५० ॥ पूर्वकालमें कृष्णसार मृग व्याधोंके बाणोंसे पीडित होकर यहां आय इस सरोवरमें स्नान

---

[1] सात पितृकुलके, सात मातृकुलके, सात श्वशुरकुलके ऐसे २१ पुरुष जान लेना. [2] किसी व्याख्याकारने यहां प्राणायामपूर्वक क्षौर कराना लिखा है, परन्तु उसका समानाधिकरण नहीं बैठता. वैसे तीर्थविशेषमें क्षौर तो लिखा है ।

करनेसे मनुष्य भावको प्राप्त हुए थे । "इसी कारण इसका मानुष तीर्थ नाम हुआ"॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त व्याधोंने उन ब्राह्मणरूपी मृगोंसे पूछा कि, हे ऋषियो ! हमारे छोडेहुए बाणोंसे पीडित होकर वह सम्पूर्ण मृग कहां चले गये ॥ ५२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह क्या इस सरोवरको देखकर इसमें डूब गये हैं सो आप कहिये, इसप्रकार उन व्याधोंके पूछनेपर उन्होंने कहा कि, हम सब वही मृग हैं ॥५३॥ इस तीर्थके माहात्म्यसे मनुष्यरूप होगये हैं, इसकारण तुमभी मात्सर्य (किसीकी बुराई करना) को छोडकर भक्तिपूर्वक इस तीर्थमें स्नान करो ॥५४॥ इससे तुम्हारे सम्पूर्ण पाप दूर होजाँयगे, इसमें किंचित्भी संदेह नहीं. इस वचनको सुनकर सम्पूर्ण व्याधे इस तीर्थमें स्नानकर शुद्ध देह हो स्वर्गको चले गये ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो ! जो श्रद्धासहित इस मानुषतीर्थके माहात्म्यको सुनते हैं उनकोभी परमगति प्राप्त होती है ॥ ५६॥

ततोव्याधाश्चतेसर्वैंतानपृच्छन्द्विजोत्तमान् ॥ मृगाःक्वऋषयोयाताअस्माभिःशरपीडिताः ॥५२॥ निमग्नास्तेसरःप्राप्यकिंतद्भूताद्विजोत्तमाः ॥ तेऽब्रुवंस्तत्रवैपृष्टावयंतेचाद्विजोत्तमाः ॥५३ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मानुषत्वमुपागताः ॥ तस्माद्यूयंश्रद्दधानाःस्नात्वातीर्थेविमत्सराः ॥ ५४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताभविष्यथनसंशयः ॥ ततःस्नाताश्चतेसर्वैंशुद्धदेहादिवंगताः ॥ ५५ ॥ एतत्तीर्थस्यमाहात्म्यंमानुषस्यद्विजोत्तमाः ॥ येशृण्वंतिश्रद्दधानास्तेऽपियान्तिपरांगतिम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येपंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ मानुषस्यतुपूर्वेणक्रोशमात्रेद्विजोत्तमाः ॥ आपगानामविख्यातानदीद्विजनिषेविता ॥ १ ॥ श्यामाकंपयसासिद्धमाज्येनचपरिप्लुतम् ॥ येप्रयच्छंतिविप्रेभ्यस्तेषांपापंनविद्यते ॥ २ ॥ येतुश्राद्धंकरिष्यंतिप्राप्यतामापगांनदीम् ॥ तेसर्वकामसंयुक्ताभविष्यंतिनसंशयः ॥ ३ ॥ स्मरंतिपितरस्तस्यस्मरंतिचपितामहाः ॥ अस्माकंचकुलेपुत्रःपौत्रोवापिभविष्यति ॥ ४ ॥ यआपगांनदींगत्वाऽस्मांस्तिलैस्तर्पयिष्यति ॥ तेनतृप्ताभविष्यामोयावत्कुलशतंभवेत् ॥ ५ ॥ नभस्येमासिसंप्राप्तेकृष्णपक्षेविशेषतः ॥ चतुर्दश्यांतुमध्याह्नेपिंडदोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६ ॥

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां विविधतीर्थवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥ श्रीमान् लोमहर्षणजी बोले कि, हे द्विजोत्तमो ! मानुषतीर्थकी पूर्वदिशामें एक कोश दूरीपर आपगा नामसे विख्यात ब्राह्मणोंसे सेवित नदी बहती है॥ १ ॥ वहां जो मनुष्य दूधमें सिद्ध समेके चावलों (खीर) को घृतसे संयुक्त कर ब्राह्मणोंको देते हैं उनके सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं ॥ २ ॥ जो उस आपगा नदीपर जाकर श्राद्ध करते हैं उनके सम्पूर्ण प्रकारके मनोरथ सिद्ध होजाते हैं इसमें किंचित्भी संदेह नहीं है ॥ ॥ ३ ॥ और उनके पितृपितामह इत्यादि यह विचार करते रहते हैं कि, हमारे वंशमें पुत्र और पौत्रका जन्महो ॥ ४ ॥ और वह इस आपगापर हमारा तिलोंसे तर्पण करैं, जिससे हम सौ कल्पोंतक तृप्त रहैं ॥५॥ भादोंके महीनेके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको मध्याह्नके समय आपगानदीपर पिंडदान करनेसे मुक्ति प्राप्तहोती है ॥६॥

हे विप्रेन्द्रो ! इसके उपरान्त “ब्रह्मोदुम्बर” नामक सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात उत्तम तीर्थको जाय, यह पितामह ब्रह्माजीका अधिष्ठान क्षेत्र है ॥ ७ ॥ हे द्विजसत्तमो ! वहां ब्रह्मर्षियोंके कुंडोंमें स्नान करनेसे सप्तऋषियोंके प्रसादसे सोमयज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ, भगवान् अत्रि ऋषि ॥ ९ ॥ उपरोक्त सप्तऋषियोंने मिलकर इस भूलोकमें दुर्लभ कुंडकी कल्पना की है, और ब्रह्माजी उसकी सेवा करते हैं, इसीसे उसका नाम “ब्रह्मोदुम्बर” विख्यात हुआ है ॥ १० ॥ अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके तिस पवित्र तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मलोक प्राप्त होताहै, इसमें विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य उस स्थानपर पितर और देवताओंके उद्देशसे ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं उनके पितर

ततोगच्छेच्चविप्रेंद्राब्रह्मणःस्थानमुत्तमम् ॥ ब्रह्मोदुंबरमित्येवंसर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ ७ ॥ तत्रब्रह्मर्षिकुंडेषुस्नातस्यद्विजसत्तमाः ॥ सप्तर्षीणांप्रसादेनसप्तसोमफलंलभेत् ॥ ८ ॥ भरद्वाजोगौतमश्चजमदग्निश्चकश्यपः ॥ विश्वामित्रोवसिष्ठश्चअत्रिश्चभगवानृषिः ॥ ९ ॥ एतेसमेत्यतत्कुंडंकल्पितंभुविदुर्लभम् ॥ ब्रह्मणासेवितंतस्माद्ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते ॥१०॥ तस्मिंस्तीर्थवरेस्नात्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोतिनात्रकार्याविचारणा ॥११॥ देवान्पितॄन्समुद्दिश्ययोविप्रंपूजयिष्यति ॥ पितरस्तस्यसुखितादास्यंतिभुविदुर्लभम् ॥ १२ ॥ सप्तर्षींश्चसमुद्दिश्यपृथक्स्नानंसमाचरेत् ॥ ऋषीणांचप्रसादेनसप्तलोकाधिपोभवेत् ॥ १३ ॥ कपिलस्थेतिविख्यातंसर्वपातकनाशनम् ॥ यस्मिन्स्थितःस्वयंदेवोवृद्धकेदारसंज्ञितः ॥ १४ ॥ तत्रस्नात्वाऽर्चयित्वाचरुद्रंदंडिसमन्वितम् ॥ अंतर्द्धानमवाप्नोतिशिवलोकेसमोदते ॥ १५ ॥ यस्तत्रतर्पणंकृत्वापिबतेचुलकत्रयम् ॥ देवदेवंनमस्कृत्यकेदारस्यफलंलभेत् ॥ १६ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धंशिवमुद्दिश्यमानवः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यांप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ १७ ॥ कलस्यांतुततोगच्छेद्यत्रदेवीचसंस्थिता ॥ दुर्गाकात्यायनीभद्रानिद्रामायासनातनी ॥ १८ ॥

सुखी होकर जो पदार्थ पृथ्वीमें अत्यन्त दुर्लभ है वही उनको दान करते है ॥१२॥और जो मनुष्य उपरोक्त सप्तऋषियोंके उद्देशसे पृथक् २ रीतिसे स्नान करता है वह सप्तर्षियोंके प्रसादसे सात लोकोंका अधिपति होता है ॥ १३ ॥ और “ कपिलस्थ” नामसे विख्यात सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेहारे तीर्थसें स्वयं “ वृद्धकेदार ” नामको धारणकर महादेवजी विराजमान हैं ॥ १४ ॥ उस स्थानमें स्नानकर दंडियुक्त रुद्रकी पूजा करनेसे मनुष्य अन्तर्ध्यान गतिको प्राप्तहो शिवलोकमें सुखसे विहार करता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य यहां तर्पण कर तीन चुल्लू जलपान कर महादेवजीको नमस्कार करता है वह केदारके फलको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य शिवके उद्देशसे इस तीर्थमें चैत्रमासकी शुक्लचतुर्दशीमें श्राद्ध करता है उसको परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त कलसी तीर्थमें जाय,

इस तीर्थमें निद्रारूपिणी मायास्वरूपिणी भद्रादेवी सनातनी कात्यायनी दुर्गाजी विराजमान हैं ॥ १८ ॥ मनुष्य कलसी तीर्थमें स्नानकर किनारेपर विराजमान
दुर्गा देवीका दर्शन करनेसे संसाररूपी गहन (दुर्गम) वनके पार होजाता है, इसमें किंचित्‌भी संदेह नहीं ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त त्रिलोकीमें दुर्लभ सरकतीर्थमें
गमन करै, वहां कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें देवाधिदेव महादेवजीका दर्शन करनेसे ॥ २० ॥ सम्पूर्ण मनोरथ पूर्णहो शिवलोकको प्राप्त होता है, हे द्विजोत्तमो ! इस
सरक तीर्थमें तीन करोड़ तीर्थ विराजमान हैं ॥ २१ ॥ और सरोवरके बीचमें जो कूप है, उस कूपमें "रुद्रकोटि" नामक तीर्थ विराजमान है, उस सरोवरमें रुद्रको
टिका ध्यान करै ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त रुद्रकोटिकी पूजा करै तो मनुष्य रुद्रोंके प्रसादसे सम्पूर्ण दोषोंसे छूटजाता है इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ २३ ॥ और फिर

कलस्यांचनरःस्नात्वादृष्ट्वादुर्गांतटस्थिताम् ॥ संसारगहनंदुर्गंनिस्तरेन्नात्रसंशयः ॥ १९ ॥ ततोगच्छेद्द्विसरकंत्रैलोक्यस्यापिदुर्लभम् ॥ कृष्णपक्षेचतुर्द
श्यांदृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ २० ॥ लभतेसर्वकामांश्चशिवलोकंसगच्छति ॥ तिस्रःकोट्यस्तुतीर्थानांसरकेद्विजसत्तमाः ॥ २१ ॥ रुद्रकोटिस्तथाकूपेसरो
मध्येव्यवस्थिता ॥ तस्मिन्सरसियःस्नात्वारुद्रकोटिंस्मरेन्नरः ॥ २२ ॥ पूजयित्वारुद्रकोटिंभविष्यतिनसंशयः ॥ रुद्राणांचप्रसादेनसर्वदोषविवर्जितः ॥
॥ २३ ॥ ऐंद्रयानेनसंयुक्तःपरंपदमवाप्नुयात् ॥ इडास्पदंचतत्रैवतीर्थंपापभयापहम् ॥ २४ ॥ यस्मिन्मुक्तिमवाप्नोतिदर्शनादेवमानवः ॥ तत्रस्नात्वार्च
यित्वाचापितृदेवगणानपि ॥ २५ ॥ नदुर्गतिमवाप्नोतिर्चिंतितंमनसाप्नुयात् ॥ केदारंचमहातीर्थंसर्वकल्मषनाशनम् ॥ २६ ॥ तत्रस्नात्वातुपुरुषःसर्व
दानफलंलभेत् ॥ किंरूपंचमहातीर्थंतत्रैवभुविदुर्लभम् ॥ तस्मिन्स्नातस्तुपुरुषःसर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ २७ ॥ सरकस्यतुपूर्वेणतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥
अस्यजन्मभुविख्यातंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ २८ ॥ नारसिंहंवपुःकृत्वाहत्वादानवमूर्जितम् ॥ तिर्यग्योनिस्थितोविष्णुःसिंहीषुरतिमाप्तवान् ॥ २९ ॥

इन्द्रके विमानपर विराजमान होकर परमपदको प्राप्त होताहै, और उसी स्थानमें संपूर्ण पापोंको दूर करनेहारा जो इडास्पद नामक तीर्थ है ॥ २४ ॥
जिसका दर्शन करतेही मनुष्योंको मुक्ति प्राप्त होती है, उस स्थानमें पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे ॥ २५ ॥ मनुष्यको किसी समयभी दुर्गति प्राप्त
नहीं होती; मनमें जिस बातका विचार कियाजाताहै वही सिद्ध होजातीहै, और एक केदारनामका सर्वपापविनाशी तीर्थ है ॥ २६ ॥ उसमें स्नान करनेसे सब
प्रकारके दानका फल प्राप्त होता है, वही किंरूप नामका जो त्रिलोकीमें दुर्लभ महातीर्थ है उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको सब प्रकारके यज्ञानुष्ठान करनेका फल
प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ सरकके पूर्वकी ओर त्रिलोकीमें विख्यात सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेहारा मनोज्ञनामका जो तीर्थ है ॥ २८ ॥ विष्णु भगवान्‌ने नृसिंह देह

धारणकर महाबलवान् दानव (हिरण्यकशिपु) को मारकर तिर्यग् योनिमें स्थित हो सिंहिनीके साथ रमण करने लगे ॥ २९ ॥ यह देखकर देवताओंने गंधर्वोंके साथ मिलकर वरदान देनेवाले शिवजीकी आराधना करनेके पीछे सबने साष्टांग दंडवत् कर "विष्णुभगवान् अपने देवशरीरको प्राप्त करैं" यह निवेदन किया ॥ ३० ॥ उनके अनुरोधसे महात्मा महादेवजीने शरभके रूपको धारण करके नरसिंहजीसे दिव्य सहस्र वर्ष तक घोर युद्ध किया ॥ ३१ ॥ फिर तो सिंहरूपी विष्णु और शरभ रूपी महादेवजी परस्पर युद्ध करते हुए मनोज्ञ सरोवरके बीचमें जाकर गिरे॥ ३२॥उस सरोवरके किनारेपर देवर्षि नारदजी निवास करतेथे, वह अश्वत्थ (पीपल) वृक्षके स्थानका आश्रयकर उस समय ध्यानमें रत थे, दोनोंकी यह अवस्था उस समय उन्होंने देखी ॥ ३३ ॥ कि, ह्रदमें गिरतेही विष्णुभगवान् चतुर्भुज होगये, और

ततोदेवाःसगंधर्वाआराध्यवरदंशिवम् ॥ ऊचुःप्रणतसर्वांगाविष्णुदेहस्यलंभने ॥ ३० ॥ ततोदेवोमहात्मासौशारभंरूपमास्थितः ॥ युद्धंचकारसुमहद्दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ ३१ ॥ युद्ध्यमानौतुतौदेवौपतितौह्रदमध्यतः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्सरस्तटेविप्रोदेवर्षिर्नारदःस्थितः ॥ अश्वत्थस्थानमाश्रित्यध्यानस्थस्तौ ददर्शह ॥ ३३ ॥ विष्णुश्चतुर्भुजोजज्ञेलिंगाकारःशिवःस्थितः ॥ तौदृष्ट्वातत्रपुरुषौतुष्टावभक्तिभावतः ॥ ३४ ॥ नमःशिवायदेवायविष्णवेप्रभविष्णवे॥ हरयेचउमाभर्त्रेस्थितिकालभृतेनमः ॥ ३५ ॥ हरायबहुरूपायविश्वरूपायविष्णवे ॥ त्र्यंबकायसुसिद्धायकृष्णायज्ञानहेतवे ॥ ३६ ॥ धन्योऽहं सुकृतीनित्यंयद्दृष्टौपुरुषोत्तमौ ॥ ममाश्रममिदंपुण्यंयुवाभ्यांविमलीकृतम् ॥ ३७ ॥ अद्यप्रभृतित्रैलोक्येधन्यंजन्मेतिविश्रुतम् ॥ ३८ ॥ यइहागत्यच स्नात्वापितॄन्संतर्पयिष्यति ॥ तस्यश्रद्धान्वितस्येहज्ञानमिंद्रंभविष्यति ॥ ३९ ॥ अश्वत्थस्यचयन्मूलंसदातत्रवसाम्यहम् ॥ अश्वत्थवंदनं कृत्वाशिवंकृष्णंनमस्यति ॥ ४० ॥

शिवजी लिंगाकारसे विराजमान हुए, नारदजी उन महापुरुषोंकी यह अवस्था देखकर भक्तिभावसे स्तुति करनेलगे ॥ ३४ ॥ देव भगवान् शिव और सबके प्रभु विष्णु इन दोनोंकोही नमस्कार है हरि और उमापति यह दोनोंही क्रम स्थिति (पालन) काल (प्रलय) के करनेहारे हैं इन दोनोंको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ बहुरूपी हर और विश्वरूपी विष्णुको नमस्कार है परमसिद्धस्वरूप त्रिलोचन और ज्ञानके हेतुस्वरूप कृष्णको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ मैंही धन्यहूं, मैंही सुकृति (पुण्य) मान् हूं. कारण कि, मैंने दोनों पुरुषोत्तमोंका दर्शन किया, आपने हमारे इस आश्रमको परमपवित्र और सर्वथा निर्मल किया है ॥ ३७ ॥ आजसे यह स्थान धन्य और जन्मनामसे प्रकाशित हुआ ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य इस स्थानमें आकर पितरोंका तर्पण करेगा, वह श्रद्धावान् पुरुष इन्द्रके समान ज्ञानवान् होगा ॥ ३९ ॥ मैं इस अश्वत्थकी जड़में सर्वदा

निवास करताहूं इस अश्वत्थकी वंदना कर शिव और कृष्णको नमस्कार करै ॥ ४० ॥ तिसके उपरान्त हे विप्रेन्द्रो ! सर्वोत्तम नागह्रदको जाय और नागह्रदमें स्नान करनेसे मनुष्यको पुंडरीक यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ विशेष करके चैत्रमासके शुक्लपक्षकी दशमीको वहां स्नान जप और श्राद्ध करनेसे मुक्तिमार्ग प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त देवताओंसे सेवित त्रिविष्टप तीर्थको जाय, वहाँ पापनाशिनी पुण्यस्वरूपिणी वैतरणी नदी विराजमान है ॥ ४३ ॥ वहां मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर परमपवित्र हो परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके उपरान्त रसावर्त नामक श्रेष्ठ तीर्थमें जाय वहाँ भक्तिसहित स्नान करनेसे अत्युत्तम सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीमें अलेपक नामक तीर्थमें स्नानकर उस स्थानमें विराजमान

ततोगच्छेर्द्धिविप्रेंद्रानागस्यह्रदमुत्तमम् ॥ पुंडरीकाम्भसिस्नात्वायज्ञस्यफलमाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ दशम्यांशुक्लपक्षस्यचैत्रस्यतुविशेषतः ॥ स्नानंजपस्तथा श्राद्धंमुक्तिमार्गप्रदायकम् ॥ ४२ ॥ ततस्त्रिविष्टपंगच्छेत्तीर्थंदेवनिषेवितम् ॥ तत्रवैतरणीपुण्यानदीपापप्रमोचनी ॥ ४३ ॥ तत्रस्नात्वार्चयित्वाचशूलपाणिंवृषध्वजम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मागच्छेच्चपरमांगतिम् ॥ ४४ ॥ ततोगच्छेद्धिविप्रेंद्रारसावर्तनमुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाभक्तियुक्तःसिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ॥ ४५ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यांतीर्थेस्नात्वाह्यलेपके ॥ पूजयित्वाशिवंतत्रपापलेशोनविद्यते ॥ ४६ ॥ ततोगच्छेद्धिविप्रेंद्राःफलकीवनमुत्तमम् ॥ यत्रदेवाःसगंधर्वाःसाध्याश्चऋषयस्तथा ॥ तपश्चरंतिविपुलंदिव्यंवर्षसहस्रकम् ॥ ४७ ॥ दृषद्वत्यांनरःस्नात्वातर्पयित्वाचदेवताः ॥ अग्निष्टोमातिरात्रस्यफलंविंदतिमानवः ॥ ४८ ॥ सोमक्षयेचसंप्राप्तेसोमस्यचदिनेतथा ॥ यःश्राद्धंकुरुतेमर्त्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४९ ॥ गयायांचयथाश्राद्धंपितॄन्प्रीणातिनित्यशः ॥ तथाश्राद्धंचकर्त्तव्यंफलकीवनमाश्रितैः ॥ ५० ॥ मनसास्मरतेयस्तुफलकीवनमुत्तमम् ॥ तस्यैवपितरस्तृप्तिंप्रयास्यंतिनसंशयः ॥ ५१ ॥

भगवान् भवानीपति महादेवजीकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त हे विप्रेन्द्रो ! श्रेष्ठ फलकीवन नामक तीर्थमें जाय, जिस स्थानपर देवता, सिद्ध, गंधर्व, साध्य और ऋषियोंने दिव्य (देवताओंके) सहस्र वर्षतक घोर तपस्या की है ॥ ४७ ॥ दृषद्वतीमें स्नानकर देवताओंका तर्पण करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥ ४८ ॥ सोमवती अमावसके दिन अथवा सोमवारके दिन जो मनुष्य वहां श्राद्ध करताहै उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ ४९ ॥ गयाजीके क्षेत्रमें श्राद्ध करनेसे जिसप्रकार नित्य पितरोंको प्रीति उत्पन्न कराई जाती है उसी प्रकारका इस क्षेत्रमें श्राद्ध करनेसे फल प्राप्त होता है, फलकीवनका आश्रय कर इसप्रकारश्राद्ध करना योग्य है ॥ ५० ॥ जो मनुष्य अपने मनहीमनमें फलकीवनका स्मरण करता है उसके पितृगण तृप्तहोतेहैं

इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ५१ ॥ और उसीस्थानमें सम्पूर्ण देवताओंसे शोभित जो महातीर्थ है उसमें सहस्र गौओंके दानका फल प्राप्त होताहै ॥५२ ॥ जो मनुष्य पाणिखात तीर्थमें स्नानकर पितरोंका तर्पण करता है उसको राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है और सांख्ययोगका लाभ होताहै ॥ ५३ ॥ फिर यहांसे "मिश्रक" नामके सुमहत् पवित्र तीर्थमें जाय वहांपर मुनिश्रेष्ठ दधीचिके निमित्त महात्मा व्यासजीने सम्पूर्ण तीर्थोंको मिश्रित कियाथा, इसकारण जो मनुष्य मिश्रकमें स्नान करताहै, उसने मानों सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करलिया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त जितेन्द्रिय हो नियम सहित आहार करता हुआ व्यासजीके वनमें गमन करै और वहां "मनोजव" तीर्थमें स्नानकर भगवान् जटाधारी महादेवजीका दर्शन करनेसे ॥५६ ॥ मनुष्यके मनकी सम्पूर्ण अभिलाषाएँ निःसन्देह पूर्ण होजातीहैं, इसके पीछे मनुष्य

तत्रापितीर्थंसुमहत्सर्वदेवैरलंकृतम् ॥ तस्मिन्स्नातस्तुपुरुषोगोसहस्रफलंलभेत् ॥ ५२ ॥ पाणिखातेनरःस्नात्वापितॄन्संतर्प्यमानवः ॥ अवाप्नुयाद्राजसूयंसांख्यंयोगंचविंदति ॥ ५३ ॥ ततोगच्छेद्धिसुमहत्तीर्थंमिश्रकमुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थानिमुनिनामिश्रितानिमहात्मना ॥ ५४ ॥ व्यासेनमुनिशार्दूलदधीचार्थंमहात्मना ॥ सर्वतीर्थेषुसस्नातोमिश्रकेस्नातियोनरः ॥ ५५ ॥ ततोव्यासवनंगच्छेन्नियतोनियताशनः ॥ मनोजवेनरःस्नात्वादृष्ट्वादेवंमनीषिणम् ॥ ५६ ॥ मनसाचिंतितंसर्वंसिद्ध्यतेनात्रसंशयः ॥ गत्वामधुवनंचैवदेव्यास्तीर्थंनरःशुचिः ॥ ५७ ॥ तत्रस्नात्वाचवैदेवान्पितॄंश्चप्रयतोनरः ॥ सदेव्यासमनुज्ञातेयथासिद्धिंलभेन्नरः॥ ५८ ॥ कौशिक्याःसंगमेयस्तुदृषद्वत्यांनरोत्तमः ॥ स्नायीतनियताहारःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५९ ॥ ततोव्यासस्थलींगच्छेद्यत्रव्यासेनधीमता ॥ पुत्रशोकाभिभूतेनदेहत्यागायनिश्चयः ॥ ६० ॥ कृतोदेवैश्चविप्रेंद्रपुनरुत्थापितस्तदा ॥ अभिगम्यस्थलींतस्यपुत्रशोकंनविंदति ॥ ६१ ॥ किंदत्तरूपमासाद्यतिलप्रस्थंप्रदायच ॥ गच्छेच्चपरमांसिद्धिंततोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ अन्नंचसुदिनंचैवद्वेतीर्थेभुविदुर्लभे ॥ तयोःस्नात्वाविशुद्धात्मासूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥

शुद्ध भाव होकर मधुवनमें देवीके तीर्थमें जाकर॥५७॥ स्नानकर पवित्रहो देवता और पितरोंकी आराधना करनेसे मनुष्य देवीके प्रसादसे सिद्धिको प्राप्त करता है ॥५८ ॥ जो मनुष्य निराहार होकर कौशिकी और दृषद्वती इन दोनों नादियोंके संगममें स्नान करताहै उसके समस्त पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ५९ ॥ तिसके उपरान्त व्यासस्थली को जाय, इसी स्थानपर बुद्धिमान् वेदव्यासजीने पुत्रशोकसे कातर हो अपने शरीरको त्यागन करनेका संकल्प कियाथा ॥ ६० ॥ तब देवताओंने शरीर त्यागतेहुए व्यासजीको निवारणकर उस स्थानसे उठाया जो मनुष्य व्यासस्थलीमें जाते हैं उनको पुत्रशोक नहीं होता ॥ ६१ ॥ " किंदत्तरूप " नामक तीर्थमें जाकर सेरभर तिल दान करनेसे परमसिद्धि प्राप्तहो अन्तमें मुक्ति प्राप्त होतीहै ॥ ६२ ॥ "अन्न" और " सुदिन " नामक दोनों तीर्थ पृथ्वीमें अत्यन्त दुर्लभ हैं, इन दोनों तीर्थोंमें

स्नान करनेसे विशुद्ध अन्तःकरण हो सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त त्रिलोकीमें विख्यात कृतपुण्य तीर्थमें गमन करै, पवित्रतासे रहै और नित्य गंगाजीमें स्नान करै ॥ ६४ ॥ महादेवजीकी पूजा करनेपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होताहै, और उस स्थानमें करोड़ों तीर्थ स्थित हैं, उन तीर्थोंमें विराजमान प्रभु कोटेश्वरका दर्शनं करै ॥ ६५ ॥ वहां श्रद्धासहित स्नान करनेसे कोटियज्ञका फल प्राप्त होताहै, फिर वहांसे "वामनक" तीर्थको जाय यह तीर्थ त्रिलोकीमें विख्यात है॥ ॥ ६६ ॥ इस तीर्थमें प्रभु विष्णुजीने वामनरूपसे बलिका राज्य हरण करके इन्द्रको देदिया था ॥ ६७ ॥ वहां विष्णुपद तीर्थमें स्नान और वामनदेवकी पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥ उसी स्थानपर सर्व पापोंका नाश करनेहारा ज्येष्ठाश्रम तीर्थका दर्शन करनेसे मनुष्यको मुक्ति प्राप्त होतीहै इसमें किंचित्‌भी संदेह नहीं ॥ ६९ ॥ ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास कर द्वादशीके दिन उपवास करके मनुष्योंके बीच श्रेष्ठत्वको प्राप्त होताहै ॥ ७० ॥ वहां भगवान् विष्णुजीने दीक्षा और प्रतिष्ठायुक्त विष्णुभगवान्‌की प्रीति करनेमें तत्पर ऐसे ब्राह्मणोंको प्रतिष्ठित कियाहै ॥ ६१ ॥ उनको श्रद्धापूर्वक दियेहुए विविध प्रकारके दान जबतक मन्वन्तर स्थित है तबतक वह सभी अक्षय हो करतारहताहै ॥ ७२ ॥ वही त्रिलोकीमें विख्यात जो " कोटि " तीर्थ हैं उसमें स्नानकरनेसे मनुष्यको करोड़ यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ उस तीर्थमें कोटेश्वरका दर्शन करनेसे महादेवके प्रसादसे उनके गणभावको प्राप्त होता है ॥७४॥ वहां महात्मा सूर्यभगवान्‌का जो महान् तीर्थ है उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके उपरान्त

कृतपुण्यंततोगच्छेत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ तत्राभिषेकंकुर्वीतगङ्गायांप्रयतःस्थितः ॥ ६४ ॥ अर्चयित्वामहादेवमश्वमेधफलंलभेत् ॥ कोटितीर्थंचतत्रै
वदृष्ट्वाकोटीश्वरंप्रभुम् ॥ ६५ ॥ तत्रस्नात्वाश्रद्दधानःकोटियज्ञफलंलभेत् ॥ ततोवामनकंगच्छेत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ६६ ॥ यत्रवामनरूपेणविष्णुनाप्रभ
विष्णुना ॥ बलेरपहृतंराज्यमिंद्रायप्रतिपादितम् ॥ ६७ ॥ तत्रविष्णुपदेस्नात्वाअर्चयित्वाचवामनम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्माविष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥
ज्येष्ठाश्रमंचतत्रैवसर्वपातकनाशनम् ॥ तंतुदृष्ट्वानरोमुक्तिंसंप्रयातिनसंशयः ॥ ६९ ॥ ज्येष्ठमासेसितेपक्षेएकादश्यामुपोषितः ॥ द्वादश्यांचनरःस्नात्वाज्ये
ष्ठत्वंलभतेनृषु ॥ ७० ॥ तत्रप्रतिष्ठिताविप्राविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ताविष्णुप्रीणनतत्पराः ॥ ७१ ॥ तेभ्योदत्तानिश्राद्धानिदानानिवि
विधानिच ॥ अक्षयाणिभविष्यंतियावन्मन्वंतरस्थितिः ॥ ७२ ॥ तत्रैवकोटितीर्थंचत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वाकोटियज्ञफलंलभेत् ॥
॥ ७३ ॥ कोटीश्वरंनरोदृष्ट्वातस्मिंस्तीर्थेमहेश्वरम् ॥ महादेवप्रसादेनगाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥ तत्रैवसुमहत्तीर्थंसूर्यस्यचमहात्मनः ॥ तस्मिन्स्ना
त्वाभक्तियुतःसूर्यलोकेमहीयते ॥ ७५ ॥ ततोगच्छेच्चविप्रेंद्रास्तीर्थंकल्मषनाशनम् ॥ कुलोत्तारणकंनाम्नाविष्णुनाकल्पितंपुरा ॥ ७६ ॥

"कुलोत्तारण" नामक पापनाशी तीर्थको जाय, भगवान् विष्णुजीने पहले इस तीर्थकी प्रतिष्ठा की थी ॥ ७६ ॥ उन्होंने सम्पूर्ण वर्ण और सम्पूर्ण आश्रमोंके उद्धारके निमित्त इस निर्मल तीर्थकी कल्पना की थीं, इस तीर्थमें जाकर दर्शन करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति इन सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करै तो अपने पिताके सात कुल और पितामहके सात कुल ऐसे इक्कीस कुलोंका उद्धार करता है ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र भक्तिसहित उस तीर्थमें स्नान करनेसे परमपदको पाते हैं ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य दूर रहकरभी कुरुक्षेत्र और वामनजीका स्मरण करता है उसकोही जब मुक्ति प्राप्त होती है तब वहाँ निवास करनेवालोंकी तो बातही क्या कहैं ॥ ८० ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां विविधतीर्थानुकीर्तनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वर्णानामाश्रमाणांचतारणायसुनिर्मलम् ॥ तेपितत्तीर्थमासाद्यपश्यंतिपरमंपदम् ॥ ७७ ॥ ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा ॥ कुलानितारयेत्स्नातःसप्तसप्तचसप्तच ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःस्त्रियःशूद्राश्चतत्पराः ॥ तीर्थस्नाताभक्तियुताःपश्यंतिपरमंपदम् ॥ ७९ ॥ दूरस्थोपिस्मरेद्यस्तुकुरुक्षेत्रंसवामनम् ॥ सोपिमुक्तिमवाप्नोतिकिंपुनस्तुवसन्नरः ॥ ८० ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ पवनस्यह्रदेस्नात्वादृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ विमुक्तःसर्वकलुषैःशैवंपदमवाप्नुयात् ॥१॥ पुत्रशोकेनपवनोयस्मिँल्लीनोबभूवह ॥ ततःसब्रह्मकैर्देवैःस्तुत्वातंभक्तिसंयुतः ॥ २ ॥ ततोगच्छेद्धिहनुमत्स्थानंतच्छूलपाणिनः ॥ यत्रदेवैःसगंधर्वैर्हनूमान्प्रकटीकृतः ॥ ३ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाअमृतत्वमवाप्नुयात् ॥ कुलोत्तारणमासाद्यतीर्थसेवीद्विजोत्तमः ॥ ४ ॥ कुलानितारयेत्सर्वान्मातामहपितामहान् ॥ शालिहोत्रस्यराजर्षेस्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५ ॥ तत्रस्नात्वाविमुक्तस्तुकलुषैर्देहसंभवैः ॥ श्रीकुंजंतुसरस्वत्यांतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ६ ॥

लोमहर्षणजी बोले कि, पवनके ह्रदमें स्नानकर देवाधिदेव महादेवजीका दर्शन करतेही सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर शैवपदको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वायुपुत्र शोकसे इस ह्रदमें लीन होगये थे तब देवताओंने ब्रह्माजीके साथ मिलकर इस स्थानमें पवनदेवकी भक्तिसहित स्तुति करी है ॥ २ ॥ इसके उपरान्त उस प्रसिद्ध शूलपाणिके स्थानमें जाय जहां देवता और गंधर्वोंने मिलकर हनूमानको प्रगट किया है ॥ ३ ॥ उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य अमर होजाता है, इसके उपरान्त तीर्थसेवी द्विजोत्तम कुलोत्तारणतीर्थमें जाय ॥ ४ ॥ स्नानकर मातृपक्षके और पितृपक्षके सम्पूर्ण कुलोंको तारदेता है और जो राजर्षि शालिहोत्रका तीर्थ त्रिलोकीमें विख्यात है ॥ ५ ॥ उसमें स्नान करनेसे देहसम्भूत सब पापोंसे छूट जाता है, सरस्वतीमें श्रीकुंजनामका जो तीर्थ है सो त्रिलोकीमें विख्यात है ॥ ६ ॥

उसमें भक्तिसहित स्नान करनेसे मनुष्योंको अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होता है. इसके उपरान्त पवित्र होकर नैमिषकुंजमें गमन करै ॥ ७ ॥ नैमिषकुंजमें स्नान करनेसे नैमिषारण्यके स्नान करनेका फल प्राप्त होता है और उस स्थानमें वेदवतीका सेवित विख्यात महातीर्थ है ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रावणने उस वेदवतीके केशोंको ग्रहण किया था, वेदवतीने शोकसे व्याकुल होकर उसके वध करनेकी इच्छासे अपने प्राण त्याग कियेथे ॥ ९ ॥ और महात्मा जनकके घरमें जाकर जन्म ले सीता नामसे विख्यातहो रामचंद्रजीकी पतिव्रता स्त्री हुई॥ १० ॥ रावणने स्वयं अपने नाशके निमित्त उसका हरण कियाथा, इसी कारणसे रामचंद्रने रावणको मार विभीषण को राज्य देकर॥ ११ ॥ अपनी मूर्तिमती कीर्तिस्वरूपिणी सीताजीको घर लेआये उस तीर्थमें स्नान करनेसे कन्यायज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ और सब पापोंसे

तत्रस्नात्वानरोभक्त्याह्यग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ ततोनैमिषकुंजंतुसमासाद्यनरःशुचिः ॥ ७ ॥ नैमिषस्यचस्नानेनयत्पुण्यंतत्समाप्नुयात् ॥ तत्रतीर्थंमहत्ख्यातं
वेदवत्यानिषेवितम् ॥८॥ रावणेनगृहीतायाःकेशेषुद्विजसत्तमाः ॥ तद्वधायचसाप्राणान्मुमुचेशोककर्षिता ॥९॥ ततोजातागृहेराज्ञोजनकस्यमहात्मनः ॥
सीतानामेतिविख्यातारामपत्नीपतिव्रता ॥ १० ॥ साहृतारावणेनैवविनाशायात्मनःस्वयम् ॥ रामेणरावणंहत्वाअभिषिच्यविभीषणम् ॥ ११ ॥ समानी
तागृहंसीताकीर्तिरात्मवनंयथा ॥ तस्यास्तीर्थेनरःस्नात्वाकन्यायज्ञफलंलभेत् ॥ १२॥ विमुक्तःकलुषैःसर्वैःप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ ततोगच्छेत्सुमहद्ब्रह्मणः
स्थानमुत्तमम् ॥ १३ ॥ यत्रवर्णावरःस्नात्वाब्राह्मण्यंलभतेनरः ॥ ब्राह्मणश्चविशुद्धात्मापरंपदमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ ततोगच्छेत्सोमतीर्थंत्रैलोक्येचापिदुर्ल
भम् ॥ यत्रसोमस्तपस्तप्त्वाद्विजराज्यमवाप्तवान् ॥ १५ ॥ तत्रस्नात्वाऽर्चयित्वाचस्वपितॄन्दैवतानिच ॥ निर्मुक्तःस्वर्गमायातिकार्तिक्यांवामनंयथा ॥१६॥
सप्तसारस्वतंतीर्थंत्रैलोक्यस्यापिदुर्लभम् ॥ यत्रसप्तसरस्वत्यएकीभूतावहंतिच ॥ १७ ॥ सुप्रभाकांचनाक्षीचविमलापानसह्रदा ॥ सरस्वत्तोयनाम्नी
चसुवर्णाविमलोदका ॥ १८ ॥

छूटकर परमपदको प्राप्त होता है. इसके उपरान्त ब्रह्मस्थाननामक परममहत् उत्कृष्ट तीर्थमें गमन करै ॥ १३ ॥ जिसमें स्नान करनेसे क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णके मनुष्य ब्राह्मणवर्णको प्राप्त होजाते हैं ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त त्रिलोकीमें दुर्लभ सोमतीर्थको जाय, यहींपर चंद्रमा तपस्या करके द्विजराजत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ १५ ॥ यहाँ स्नान कर पितरों और देवताओंकी पूजा करनेसे कार्तिकमें वामनदेवजीकी पूजासे जिसप्रकार स्वर्ग प्राप्त होता है उसीप्रकारसे मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ और जो सप्तसारस्वत नामक त्रिलोकीमें दुर्लभ तीर्थ है, उसमें सातों सरस्वती एक साथ मिलकर बहती हैं ॥ १७ ॥ इन सप्तसरस्वतीके नाम जैसे–सुप्रभा, काञ्चनाक्षी,

विमला, मानसह्रदा, सरस्वत्तोया, सुवर्णा और विमलोदका ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी पुष्करजीमें विराजमान हो यज्ञका अनुष्ठान करने लगे तब उनसे सम्पूर्ण ऋषियोंने कहा
कि, आपका यह यज्ञ महाफलका देनेवाला नहीं है ॥ १९ ॥ कारण कि, यहाँपर सन्मुख बहनेवाली सरिद्वरा सरस्वतीजी नहीं दिखाई देती हैं, भगवान् ब्रह्माजीने
इसप्रकार ऋषियोंके वचन सुनकर प्रसन्न हो सरस्वतीजीका स्मरण किया ॥२०॥ यज्ञमें प्रवृत्त हुए ब्रह्माजीके आवाहन करनेसे देवी सरस्वतीजी सुप्रभा रूपसे विख्यात
हो वहां बहने लगी ॥ २१ ॥ मुनियोंने वेगवती सरस्वतीजीको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो ब्रह्माजीके सन्मानके अर्थ उन सरस्वतीजीका बहुत सत्कार किया ॥
॥ २२ ॥ इसप्रकारसे सरिद्वरा सरस्वतीजीके पुष्करमें आनेपर महात्मा मार्कंडेयजी उनको कुरुक्षेत्रमें लाये ॥२३॥ तपही है धन जिनका ऐसे शौनकादि

पितामहस्ययजतःपुष्करेषुस्थितस्यह ॥ अब्रुवन्नृषयःसर्वेनायंयज्ञोमहाफलः ॥ १९ ॥ नदृश्यतेसरिच्छ्रेष्ठापुरःस्थावैसरस्वती ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्प्रीतः
सस्माराथसरस्वतीम् ॥ २० ॥ पितामहेनयजताह्याहूतापुष्करेषुच ॥ सुप्रभानामसादेवीतत्रख्यातासरस्वती ॥ २१ ॥ तांदृष्ट्वामुनयःप्रीतावेगयुक्तां
सरस्वतीम् ॥ पितामहंमानयन्तींतेतुतांबहुमेनिरे ॥ २२ ॥ एवमेषासरिच्छ्रेष्ठापुष्करस्थासरस्वती ॥ समानीताकुरुक्षेत्रंमार्कंडेनमहात्मना ॥ २३ ॥
नैमिषेमुनयःस्थित्वाशौनकाद्यास्तपोधनाः ॥ तेपृच्छंतिमहात्मानंपुराणंलोमहर्षणम् ॥२४॥ कथंनःस्याद्यज्ञफलंवर्त्ततांसत्पथेमुने ॥ ततोब्रवीन्महाभागः
प्रणम्यशिरसामुनीन् ॥ २५ ॥ सरस्वतीस्थितायत्रतत्रयज्ञफलंमहत् ॥ एतच्छ्रुत्वातुमुनयोनानास्वाध्यायवेदिनः ॥ २६ ॥ समागम्यततःसर्वेसंस्मरंति
सरस्वतीम् ॥ सातुध्याताततस्तत्रऋषिभिःसत्रयाजिभिः ॥ २७ ॥ समागताप्लावनार्थंयज्ञेतेषांमहात्मनाम् ॥ नैमिषेकांचनाक्षीतुमंकणेनमहौजसा ॥२८॥
समायाताकुरुक्षेत्रंपुण्यतोयासरस्वती ॥ गयस्ययजमानस्यगयायांचमहाक्रतौ ॥ २९ ॥ आहूताचसरिच्छ्रेष्ठागययज्ञेसरस्वती ॥ विशालांनामतांप्राहुर्ऋ
षयःसंशितव्रताः ॥ ३० ॥

मुनियोंने नैमिषारण्यमें निवास करते हुए महात्मा लोमहर्षणजीसे पूँछा कि, हे मुने ! हम जो यज्ञ करते हैं उसका फल किसप्रकारसे सन्मार्गमें प्राप्त होगा ? तब
महात्मा लोमहर्षणजी उनको मस्तक नवाय प्रणामकर कहनेलगे॥ २४ ॥ २५ ॥ कि, जिसस्थानपर सरस्वतीजी विराजमान हो उस स्थानपर यज्ञ करनेसे महाफल प्राप्त होगा
अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले मुनि इस वचनको सुनकर ॥ २६ ॥ सभी एकत्रित हो सरस्वतीजीका स्मरण करनेलगे तब उन सत्रयजी (दीर्घसत्र नामक महायज्ञ करने
वाले) ऋषियोंके ध्यान करतेही उन महात्माओंके (सरस्वतीजी) उस यज्ञभूमिमें प्राप्त हुईं । उनके उस नैमिषारण्यमें आनेपर "काञ्चनाक्षी" नाम पड़ा, फिर महा
तेजस्वी मंकणऋषि ॥ २७ ॥ २८ ॥ उन पुण्यतोया सरस्वतीजीको अपने साथ कुरुक्षेत्रको लेगये गयाक्षेत्रमें इसके उपरान्त फिर गयराजाने महायज्ञ करना प्रारंभ

किया वहां गयराजाके यज्ञमें आवाहन करनेसे आई हुई सरस्वतीजीका शंसितव्रत [सम्यक् प्रकारसे सम्पादितकिया है व्रतको जिन्होंने ऐसे] ऋषियोंने विशालानाम रक्खा ॥ २९ ॥ ३० ॥ महा [illegible] पुनर्वार उनको बुलाया, तब वह महानदी कुरुक्षेत्रमें आकर उपस्थित हुई, और अपने पूर्वस्थानमें प्रवेश किया ॥ ॥ ३१ ॥ देवता और ऋषियोंसे सेवित परमपवित्र उत्तर कौशलदेशमें उद्दालक मुनिने सरस्वतीजीका ध्यान किया ॥ ३२ ॥ तो सरस्वतीजी उद्दालक मुनिके ध्यान करतेही उनके निमित्त वहाको गई, वहां वल्कल और मृगछालाके ओढनेवाले ऋषियोंने उनकी पूजाकरी ॥ ३३ ॥ केदारमें सरस्वतीजी मनोहरानामसे विख्यात हुई हैं. ऋषि, सिद्धगण यह उनकी सेवा करते हैं, यह मनोहरा सबपापोंकी नाश करनेहारी है ॥ ३४ ॥ मार्कंडेयजीने परमेश्वरकी आराधनाकरके उनके मुनियोंके उपकारके अर्थ कुरुक्षेत्रमें स्थित किया था ॥ ३५ ॥ दक्षजीने गंगाद्वार (हरिद्वार-कनखलक्षेत्र) में यज्ञकरनेके लिये प्रवृत्तहो उन विमलतोया

सरित्साहिसमाहूतामंकणेनमहात्मना ॥ कुरुक्षेत्रंसमायाताप्रविष्टाचमहानदी ॥ ३१ ॥ उत्तरेकोशलाभागेपुण्येदेवर्षिसेविते ॥ उद्दालकेनमुनिनातत्रध्या
तासरस्वती ॥ ३२ ॥ आजगामसरिच्छ्रेष्ठातंदेशंमुनिकारणात् ॥ पूज्यमानामुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ॥३३॥ मनोहरेतिविख्याताकेदारेयासरस्वती ॥
सर्वपापक्षयाज्ञेयाऋषिसिद्धनिषेविता ॥ ३४ ॥ सापितेनेहमुनिनाह्याराध्यपरमेश्वरम् ॥ ऋषीणामुपकारार्थंकुरुक्षेत्रंप्रवेशिता ॥ ३५ ॥ दक्षेणयजतासापि
गंगाद्वारेसरस्वती ॥ विमलोदाभगवतीदक्षेणप्रकटीकृता ॥ ३६ ॥ समाहूतायंयौतत्रमंकणेनमहात्मना ॥ कुरुक्षेत्रेतुकुरुणायजताचसरस्वती ॥ ३७ ॥
सरोमध्येसमानीतामार्कंडेयेनधीमता ॥ अभिष्टूयमहाभागःपुण्यतोयांसरस्वतीम् ॥ यत्रमंकणकःसिद्धःसप्तसारस्वतेस्थितः ॥३८॥ इति श्रीवामनपुराणे
सरोमाहात्म्येसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंमंकणकःसिद्धःकस्माज्जातोमहानृषिः ॥ नृत्यमानस्तुदेवेनकिमर्थंसनिवारितः ॥ १ ॥
लोमहर्षणउवाच ॥ कश्यपाच्चसुतोजज्ञेमानसोमंकणोमुनिः ॥ स्नानंकर्त्तुंव्यवसितोगृहीत्वावल्कलंद्विजाः ॥ २ ॥

भगवती सरस्वतीजीको वहां प्रगट किया ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त जब राजा कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करने लगे और इनका आवाहन किया तब यहांसे यह महात्मा मङ्कणजीके साथ चलीगई ॥ ३७ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने सरस्वतीजीको सरमें मिला दिया, जहां महात्मा मङ्कणजीने पुण्यतोया देवी सरस्वतीजीकी विशेष स्तुतिकर सप्तसारस्वतमें जाकर सिद्धिप्राप्त की ॥ ३८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां सरस्वतीमाहात्म्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

ऋषि बोले कि, महर्षि मंकणजी किसप्रकारसे सिद्ध हुए थे और किससे जन्म ग्रहण किया था, और जब वह नृत्य करनेमें प्रवृत्त हुए, तब महादेवजीने किसकारण उनको निवृत्त किया सो आप कहिये ॥ १ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! मंकणजी महर्षि कश्यपजीके मानसपुत्र थे, यह वल्कल ग्रहणकर स्नान करनेलगे ॥ २ ॥

रम्भा आदि सुन्दर रूपवाली अप्सरायें वहाँ आईं; वह मनोहर आकारवाली अप्सरायें आनंदचित्तसे वस्त्रोंको त्यागकर (नग्न हो) स्नान करनेलगीं ॥ ३ ॥ यह देखकर मंकणजीका मन क्षुभित हुआ, और वीर्य स्खलित होकर जलमें गिरा उसे एक व्याधेने लेकर कलशेमें डाललिया ॥ ४ ॥ वह जल कलशेके भीतर पडतेही सात भागोंमें विभक्त होगया, तब उससे सप्तऋषियोंका जन्म हुआ, जिनको मरुद्गण कहते हैं ॥ ५ ॥ वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमंडल, वायुकाल, वायुरेता और वायुचक्र, यही मरुद्गणोंके नाम हैं ॥ ६ ॥ मंकणऋषिके यह सातों पुत्र चराचर (स्थावर-जंगमरूप) संसारको धारण करते हैं, इसप्रकारकी जनश्रुति है, पहले मंकणऋषिने कुशाग्रकी सहायतासे सिद्धि प्राप्त की थी ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब कुशाग्रके लगजानेसे उनके हाथमें घाव होगये तब उन घावोंमेंसे

तत्रागताह्यप्सरसोरंभाद्याःप्रियदर्शनाः ॥ स्नांत्येवरुचिराकारामुक्तवस्त्राअनिंदिताः ॥ ३ ॥ ततोमुनेस्तदाक्षोभाद्रेतःस्कन्नंयदंभसि ॥ व्याधोजग्राहतद्रेतःकलशेन्यक्षिपत्तथा ॥ ४ ॥ सप्तधाप्रविभागंतुकलशस्थंजगामह ॥ तत्रर्षयःसप्तजाताविदुर्यान्मरुतोगणान् ॥ ५ ॥ वायुवेगोवायुबलोवायुहावायुमंडलः ॥ वायुकालोवायुरेतावायुचक्रश्ववीर्यवान् ॥ ६ ॥ एतेतनयास्तस्यर्षेर्धारयंतिचराचरम् ॥ पुरामंकणकःसिद्धःकुशाग्रेणेतिमेश्रुतम् ॥ ७ ॥ क्षतात्किलकरेविप्रास्तस्यशाकरसोस्रवत् ॥ सवैशाकरसंदृष्ट्वाहर्षाविष्टःसनृत्तवान् ॥ ८ ॥ ततःसर्वंप्रनृत्तंचस्थावरंजंगमंचयत् ॥ प्रनृत्तंचजगद्दृष्ट्वातेजसातस्यमोहितम् ॥ ॥ ९ ॥ ब्रह्मादिभिःसुरैस्तत्रऋषिभिश्चतपोधनैः ॥ विज्ञप्तोवैमहादेवोमुनेरर्थेद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ नायंनृत्येद्यथादेवतथात्वंकर्त्तुमर्हसि ॥ ततोदेवोमुनिंदृष्ट्वाहर्षाविष्टमतिंतदा ॥११॥ सुराणांहितकामार्थंमहादेवोभ्यभाषत ॥ हर्षस्थानंकिमर्थंचतवैवंमुनिसत्तम ॥ तपस्विनोधर्मपथेस्थितस्यद्विजसत्तम ॥ ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ किंनपश्यसिमेब्रह्मन्कराच्छाकरसंस्रुतम् ॥ यंदृष्ट्वाचप्रनृत्तोवैहर्षेणमहतान्वितः ॥ १३ ॥

प्रत्यक्ष शाकका रस निकलनेलगा, इन्होंने उस शाकरसको निकलता हुआ देखकर आनंदितहो नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ उनके नृत्य करनेसे स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् नृत्य करनेलगा, उनके तेजसे मोहित हुए सम्पूर्ण संसारको नृत्य करता हुआ देखकर ॥ ९ ॥ ब्रह्मादिदेवता और सम्पूर्ण तपोधन (तपही है धन जिनका) ऐसे ऋषियोंने महादेवजीसे जाकर विज्ञप्ति की ॥ १० ॥ कि, हे देव ! जिससे यह ऋषि नृत्य न करैं वैसाही उपाय आप करिये, तब महादेवजी मुनिको हर्षित देखकर ॥ ११ ॥ देवताओंके हित [illegible] बोले कि, हे मुनिसत्तम ! तुम तपस्वीहो और धर्ममार्गमें स्थिति करतेहो, फिर तुम्हारे हर्षका क्या कारण है ? ॥ १२ ॥ ऋषि बोले हे ब्रह्मन् ! आप क्या नहीं देखते हैं कि, हमारे हाथोंसे शाकरस निकल रहा है इस चरित्रको देखकर मैं अत्यन्त हर्षित हो नृत्य करता हूं ॥ १३ ॥

तब महादेवजी हँसकर उन रागमोहित मंकणजीसे बोले कि, हे विप्र ! मुझे देखो इस चरित्रको देखनेसे हमैं विस्मय नहीं प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! देवाधिदेव महातेजस्वी महादेवजीने मंकणजीसे इसप्रकार कहकर अपनी उँगलीके अग्रभागसे अपने अँगूठेको ताड़ित किया ॥ १५ ॥ तब उस ताड़ित अँगूठेसे हिम (बर्फ) के समान भस्म निकलनेलगी यह देखकर ब्राह्मण मंकणजी लज्जित होकर महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोले ॥ १६ ॥ कि, मैं आपको महात्मा शूलपाणि देवके अतिरिक्त नहीं मानता आप चराचर जगत्के गुरु शूलपाणि शिवही हैं॥ १७॥ हे अनघ ! ब्रह्मासे आदि लेकर सम्पूर्ण देवता आपकेही आश्रित देखेजाते हैं, आप सर्वस्वरूप हैं और आपही सम्पूर्ण देवताओंके करने, करानेहारे महान् (महत्व) स्वरूप हैं ॥ १८ ॥ आपहीके प्रसादसे देवता निर्भय होकर आनंद करते हैं आपही

तंप्रहस्याब्रवीद्देवोमुनिंरागेणमोहितम् ॥ अहंनविस्मयंविप्रगच्छामीहप्रपश्यमाम् ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठंदेवदेवोमहाद्युतिः ॥ अंगुल्यग्रेणविप्रेंद्राः
स्वांगुष्ठस्ताडितोऽभवत् ॥ १५ ॥ ततोभस्मक्षतात्तस्मान्निर्गतंहिमसन्निभम् ॥ तद्दृष्ट्वाव्रीडितोविप्रःपादयोःपतितोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥ नान्यद्देवादहंमन्ये
शूलपाणेर्महात्मनः ॥ चराचरस्यजगतोगुरुस्त्वमसिशूलधृक् ॥ १७ ॥ त्वदाश्रयाश्चदृश्यंतेसुराब्रह्मादयोऽनघ ॥ सर्वस्त्वमसिदेवानांकर्त्ताकारयि
तामहान् ॥ १८ ॥ त्वत्प्रसादात्सुराःसर्वेमोदंतेह्यकुतोभयाः ॥ सुरासुरस्यचाधीशनतपोमेक्षरेन्महत् ॥ १९ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ एवंस्तुत्वामहादे
वमृषिःसप्रणतोऽभवत् ॥ ततोदेवःप्रसन्नात्मातमृषिंवाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥ ईश्वरउवाच ॥ तपस्तेवर्द्धतांविप्रमत्प्रसादात्सहस्रधा ॥ आश्रमेचेहवत्स्या
मित्वयासार्द्धमहंसदा ॥ २१ ॥ सप्तसारस्वतेस्नात्वायोमामर्चिष्यतेनरः ॥ नतस्यदुर्लभंकिंचिदिहलोकेपरत्रच ॥ २२ ॥ सारस्वतंचतेलोकंगमिष्यंतिनसं
शयः ॥ शिवस्यचप्रसादेनप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ २३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सुर और असुरोंके स्वामी हैं. हे प्रभो ! जिससे मेरी अत्यन्त यत्नसे संचित कीहुई तपस्याका क्षय न हो वही उपाय कीजिये ॥ १९ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, उनऋषिने इसप्रकार महादेवजीकी स्तुति करके उनके चरणारविंदोंमें साष्टांग प्रणाम किया. तब महादेवजी प्रसन्नहो उन ऋषियोंसे बोले ॥ २० ॥ कि, हे विप्र ! हमारे प्रसादसे तुम्हारी तपस्या सहस्रगुणा बढ़ैगी, और मैं तुम्हारे साथ सर्वदा इसी आश्रममें निवास करूँगा ॥ २१ ॥ जो मनुष्य इस सप्तसारस्वतमें स्नानकर पूजन करैगा उसे इस लोक और परलोकमें कुछभी दुर्लभ नहीं होसकता है ॥ २२ ॥ और वह मनुष्य सारस्वतलोकको प्राप्त होगा, इसमें कुछभी संदेहं नहीं और मेरे प्रसादसे परमपदको प्राप्त होगा ॥ २३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां मंकणसिद्धिर्नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

लोमहर्षणजी बोले कि, इसके उपरान्त श्रद्धापूर्वक औशनसतीर्थमें गमन करै, जिस स्थानपर शुक्राचार्यजी सिद्धहो और ग्रहभावको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ उसी पवित्र कुरुक्षेत्रमें जानेसे जन्मभरके पातकोंसे मुक्त हो परब्रह्मको प्राप्त होजाता है, फिर उसका संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २ ॥ रहोदरनामके मुनि विशाल मस्तकसे ग्रस्त होकर तीर्थके माहात्म्यका दर्शनकर जिस स्थानपर उससे मुक्त हुएथे ॥ ३ ॥ ऋषि बोले कि, रहोदरमुनि किसप्रकारसे ग्रस्तहो वहाँ मुक्तिको प्राप्त हुए उस तीर्थके माहात्म्यको सुननेके लिये हम सबोंकी इच्छा होती है ॥ ४ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, हे द्विजश्रेष्ठो ! पहले महात्मा रामचंद्रजीने दंडकारण्यमें निवास करके राक्षसोंको निहत किया ॥ ५ ॥ उन्हींमेंसे एक दुरात्मा राक्षसके मस्तकको शित (तीक्ष्ण) धारवाले अस्त्र (तलवार) से छेदन कर दियाथा वह

लोमहर्षणउवाच ॥ ततश्चौशनसंतीर्थंगच्छेत्तुश्रद्धयान्वितः ॥ उशनायत्रसंसिद्धोग्रहत्वंसमवाप्तवान् ॥ १॥ तस्मिन्पुण्येकुरुक्षेत्रेपातकैर्जन्मसंभवैः ॥ मुक्तो
यातिपरंब्रह्मयतोनावर्त्ततेपुनः ॥ २ ॥ रहोदरोनाममुनिर्यत्रमुक्तोबभूवह ॥ महताशिरसाग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ ३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंरहो
दरोग्रस्तःकथंमोक्षमवाप्तवान् ॥ तीर्थस्यतस्यमाहात्म्यंश्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥ ४ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ पुरावैदंडकारण्येराघवेणमहात्मना ॥ वसता
द्विजशार्दूलाराक्षसास्तत्रर्हिंसिताः ॥ ५ ॥ तत्रैकस्यशिरश्छिन्नंराक्षसस्यदुरात्मनः ॥ क्षुरेणशितधारेणतत्पपातमहावने ॥ ६ ॥ रहोदरस्यतल्लग्नं
ग्रीवायांचयदृच्छया ॥ वनेविचरतस्तस्यह्यस्थिभित्त्वाविवेशह ॥ ७ ॥ सतेनलग्नेनतदाविहर्त्तुंनशशाकह ॥ अभिगम्यमहाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानिच ॥
॥ ८ ॥ सतुतेनापिस्रवतावेदनार्त्तोमहामुनिः ॥ जगामसर्वतीर्थानिपृथिव्यांयानिकानिचित् ॥ ९ ॥ ततःसकथयामासऋषीणांभावितात्मनाम् ॥
तेऽब्रुवन्नृषयोविप्रप्रयाह्यौशनसंप्रति ॥ १० ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाजगामसरहोदरः ॥ ततऔशनसंतीर्थंतस्यापःस्पृशतस्तदा ॥ ११ ॥ तच्छिरः
शरणंमुक्त्वापपातांतर्जलेद्विजाः ॥ ततःसविरजाभूत्वापूतात्मावीतकल्मषः ॥ १२ ॥

कटाहुआ मस्तक महावनमें जाकर गिरा ॥ ६ ॥ और दैवयोगसे रहोदरकी गर्दनमें जाकर लगा, वह वनमें विचरण कररहेथे कि, इसी समयमें वह मस्तक उनकी अस्थिको भेद कर गलेमें प्रवेश करगया ॥ ७ ॥ मस्तकके लगतेही वह फिर तीर्थ और देवालयोंमें आकर विहार करनेको समर्थ न हुए ॥ ८ ॥ धीरे २ वह पीड़ासे अत्यन्त कातर होगये, इसी अवस्थामें उन महाप्राज्ञ महामुनिने पृथ्वीमें जितनेक तीर्थ हैं सभीमें भ्रमण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त भावितात्मा (आत्मज्ञानी) ऋषियोंसे यह सब वृत्तान्त कहा तौ सब बोले कि, हे विप्र ! आप औशन तीर्थमें जाइये ॥ १० ॥ उनके यह वचन सुनकर रहोदरजी उसी औशन तीर्थमें गये और उस तीर्थके जलका स्पर्श करतेही॥ ११ ॥ उस राक्षसका मस्तक उनके गलेको छोड़कर जलमें जाकर गिरा, हे ब्राह्मणो ! तब वह

रजोहीन (दुःखरहित) पापहीन और पुण्यात्मा होकर ॥ १२ ॥ प्रसन्न हो अपने आश्रममें आये; और सम्पूर्ण ऋषियोंसे अपना वृत्तान्त कहा, ऋषिगण तीर्थोंमें से इस तीर्थके माहात्म्यको विशेष सुनकर ॥ १३ ॥ उस तीर्थमें गये और उस तीर्थका नाम कपालमोचन रक्खा और इसी स्थानमें विश्वामित्रका सर्वलोक विख्यात महातीर्थ है ॥ १४ ॥ महामुनि विश्वामित्रजीने इस स्थानमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था, इस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेसे निश्चयही ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण उसमें स्नान करनेसे परम पवित्र होकर परमपदको प्राप्त होता है, इसके उपरान्त जितेन्द्रिय और निराहार (हविष्याशी) होकर पृथूदक तीर्थमें गमन करे ॥ ॥ १६ ॥ वहां ऋषंगु नामक ब्रह्मर्षि सिद्ध हुए थे, वह जातिस्मर (पूर्वजन्मका स्मरण रखनेवाले) होकर गंगाजीके किनारे सर्वदा निवास करतेथे ॥ १७ ॥ इसके

आजगामाश्रमंप्रीतःकथयामासचाखिलम् ॥ तेश्रुत्वाऋषयःसर्वेतीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ कपालमोचनमितिनामचक्रुःसमागताः ॥ तत्रा
पिसुमहत्तीर्थंविश्वामित्रस्यविश्रुतम् ॥ १४ ॥ ब्राह्मण्यंलब्धवान्यत्रविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ तस्मिंस्तीर्थवरेस्नात्वाब्राह्मण्यंलभतेध्रुवम् ॥ १५ ॥
ब्राह्मणस्तुविशुद्धात्मापरंपदमवाप्नुयात् ॥ ततःपृथूदकंगच्छेन्नियतोनियताशनः ॥ १६ ॥ तत्रसिद्धस्तुब्रह्मर्षिर्ऋषंगुरितिनामतः ॥ जातिस्मरऋषं
गुस्तुगंगाद्वारेसदास्थितः ॥ १७ ॥ अंतकालंततोदृष्ट्वापुत्रान्वचनमब्रवीत् ॥ स्मृत्वातीर्थगुणान्सर्वान्प्राहेदमृषिसत्तमान् ॥ १८ ॥ सरस्वत्युत्तरेतीर्थे
यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ पृथूदकेजप्यपरोनैतस्यमरणंभवेत् ॥१९॥ तत्रैवब्रह्मयोन्यस्तिब्रह्मणायत्रवैपुरा ॥ पृथूदकंसमाश्रित्यसरस्वत्यास्तटेस्थितम् ॥
॥ २० ॥ चातुर्वर्ण्यस्यसृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत् ॥ तस्याभिध्यायतःसृष्टिंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥२१॥ मुखतोब्राह्मणाजाताबाहुभ्यांक्षत्रियास्तथा ॥
ऊरुभ्यांवैश्यजातीयाःपद्भ्यांशूद्रास्ततोऽभवन् ॥ २२ ॥ चातुर्वर्ण्यंततोदृष्ट्वाआश्रमाःस्थापितास्ततः ॥ एवंप्रतिष्ठितंतीर्थंब्रह्मयोनीतिसंज्ञितम् ॥ २३ ॥

उपरान्त अंतकाल उपस्थित हुआ देखकर सम्पूर्ण तीर्थके गुणोंको स्मरण कर अपने पुत्रोंसे बोले ॥ १८ ॥ कि, जो मनुष्य पृथूदक तीर्थमें जपमें तत्पर होकर अन्तमें सरस्वतीजीके उत्तर तीर्थमें अपने शरीरको त्यागता है उसकी पुनर्वार मृत्यु नहीं होती अर्थात् वह आवागमनसे छूट जाता है ॥ १९ ॥ वहां जो ब्रह्मयोनि तीर्थ है, पहले ब्रह्माजीने उस स्थानमें पृथूदकका आश्रय लेकर सरस्वतीके किनारे निवास किया था ॥ २० ॥ और चारों वर्णोंकी सृष्टिके निमित्त आत्मज्ञानपरायण हुए थे, उन अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीको पूर्वसृष्टिके ध्यानमार्गका अनुसरण करनेपर ॥ २१ ॥ उनके मुखसे सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका जन्म हुआ, इसके उपरान्त भुजाओंसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए, इसके पीछे उनकी दोनों जंघाओंसे वैश्यजातिका जन्म हुआ, फिर इनके चरणोंसे शूद्रोंने जन्म लियां[१] ॥ २२ ॥ उन्होंने चारों वर्णोंको उत्पन्न हुआ देखकर

---

[१] इसमें श्रुतिवाक्यभी प्रमाण है, यथा-ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ॥ ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत । (शुक्लयजुर्वेद अध्याय ३१.)

ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रम स्थापित किये, इसप्रकार ब्रह्माजीके द्वारा प्रतिष्ठित होनेसे इस तीर्थका नाम ब्रह्मयोनि हुआ है ॥ २३ ॥ मुक्तिकी इच्छासे यहां स्नान करने पर मनुष्यको फिर जन्म लेना नहीं होता, यह अवकीर्ण नामसे विख्यात तीर्थ है ॥ २४ ॥ जिस तीर्थमें बक और दाल्भ्य ऋषिने अवमानना युक्त हो राष्ट्रचयन (जिसमें सम्पूर्ण राज्यका हवन होता है) उस यज्ञका आरंभ किया, और उसमें ब्राह्मणोंके साथ होम करने लगे, तब धृतराष्ट्र राजा चैतन्य हुआ ॥ २५ ॥ ऋषि बोले कि, किस प्रकारसे अवकीर्ण नामसे विख्यात तीर्थकी प्रतिष्ठा हुईथी ? राजा धृतराष्ट्रने किस निमित्त उसे प्रसन्न नहीं किया ॥ २६ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, पहले नैमिषारण्यके निवासी ऋषियोंने दक्षिणाके अर्थ जाकर उनमेंसे बक और दाल्भ्यने धृतराष्ट्रके पास जाकर याचना की ॥ २७ ॥ धृतराष्ट्र उनकी निन्दा करने लगे, उनके निन्दावचन मनमें रख लिये, और वहांसे आकर वे ऋषि अत्यन्त क्रोधित होकर अपने मांसको काटकर ॥ २८ ॥ उस अवकीर्ण नामक

तत्रस्नात्वामुक्तिकामःपुनर्योनिंनपश्यति ॥ तत्रैवतीर्थंविख्यातमवकीर्णेतिनामतः ॥ २४ ॥ यस्मिस्तीर्थेबकोदाल्भ्योराष्ट्रंवैचित्त्यधर्षणात् ॥ जुहाव ब्राह्मणैःसार्धंतत्राबुध्यत्ततोनृपः ॥२५॥ ऋषयऊचुः ॥ कथंप्रतिष्ठितंतीर्थमवकीर्णेतिनामतः ॥ धृतराष्ट्रेणराज्ञासकिमर्थंनप्रसादितः ॥ २६ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ नैमिषेयाश्चऋषयोदक्षिणार्थंययुःपुरा ॥ तत्रैवचबकोदाल्भ्योधृतराष्ट्रमयाचत ॥ २७ ॥ तेनापितत्रनिंदार्थमुक्तंयच्चधृतंतुतत् ॥ ततःक्रोधेनमहतामांसान्युत्कृत्यतत्रह ॥ २८ ॥ पृथूदकेमहातीर्थेअवकीर्णेतिनामतः ॥ जुहावधृतराष्ट्रस्यराष्ट्रंनरपतेस्ततः ॥ २९ ॥ हूयमानेतदाराष्ट्रेप्रवृत्तेयज्ञकर्मणि ॥ अक्षीयतततोराष्ट्रंनृपतेर्दुष्कृतेनवै ॥ ३० ॥ ततःसचिंतयामासब्राह्मणस्यविचेष्टितम् ॥ पुरोहितेनसहितोरत्नान्यादायसर्वशः ॥ ३१ ॥ प्रसादनार्थंविप्रस्यह्यवकीर्णेययौतदा ॥ प्रसादितःसराज्ञाचतुष्टःप्रोवाचतंनृपम् ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणानावमंतव्याःपुरुषेणविजानता ॥ ब्राह्मणश्चेदवज्ञातोहन्यात्त्रिपुरुषंकुलम् ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वासनृपतिमाज्येनपयसापुनः ॥ उत्थापयामासमृतांस्तस्यराज्ञोहितेस्थितः ॥ ३४ ॥

पृथूदकमें विराजमान महातीर्थमें राजा धृतराष्ट्रके राज्यको होम करने लगे ॥ २९ ॥ जब यज्ञकर्मका आरम्भ हुआ, और उसमें धृतराष्ट्रके सम्पूर्ण राज्यका हवन होने लगा, तब राजाके उक्त पापसे सम्पूर्ण राज्य नाशको प्राप्त होने लगा ॥ ३० ॥ तब राजा धृतराष्ट्र उसके कारणकी चिन्ता करने लगा तो ज्ञान हुआ कि, उन मुक्तसे निरादर निन्दा पायेहुए ब्राह्मणोंका यह कर्तव्य है इतना जानकर बहुतसे रत्नोंको ले अपने पुरोहितको साथमें लेकर ॥ ३१ ॥ बक और दाल्भ्यकी प्रसन्नताके निमित्त उस अवकीर्ण तीर्थको जाकर उनको प्रसन्न करने लगा, तब वह संतुष्ट होकर राजासे बोले ॥ ३२ ॥ कि, ज्ञानवान् पुरुष कभी ब्राह्मणोंका अपमान या उनकी निन्दा नहीं करते, ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेसे पुरुषके तीनों कुल नष्ट होजाते हैं ॥ ३३ ॥ उन्होंने राजासे इसप्रकार कहकर उनके हितके निमित्त घृत और दूधकी आहुती दे

मृतकोंको पुनर्वार जीवित कर दिया ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और जितेन्द्रिय होकर इस तीर्थमें स्नानं करते हैं उनके समस्त मनोरथ पूर्ण होजाते हैं ॥ ३५ ॥ और इसी स्थानमें ययाति राजाके नामसे विख्यात यायात तीर्थ है, यहां जिन ययातिके अश्वमेध यज्ञ करनेके समय नदीने मधुक्षरण प्रवाहरूपसे वहन कियाथा, अर्थात् मधुकी नदी बह गई थी ॥ ३६ ॥ उसमें भक्ति सहित स्नान करनेसे मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे छूट जाता है और अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणों! उसी स्थानमें मधुस्रव नामक तीर्थ है, इस पवित्र तीर्थमें भक्तिसहित स्नानकर मधु (शहत) से पितरोंका तर्पण करै ॥ ३८ ॥ तहांभी वसिष्ठोद्वाह नामका महातीर्थ है, उसमें भक्तियुक्त होकर स्नान करनेसेप्राणी वसिष्ठलोकको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये

तस्मिंस्तीर्थेतुयःस्नातिश्रद्दधानोजितेंद्रियः ॥ सप्राप्नोतिनरोदिव्यंमनसाचिंतितंफलम् ॥३५॥ तत्रतीर्थंसुविख्यातंयायातंनामनामतः ॥ यस्येहयजमानस्य मधुसुस्राववैनदी ॥ ३६ ॥ तस्मिन्स्नातोथभक्त्यातुमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ फलंप्राप्नोतियज्ञस्यह्यश्वमेधस्यमानवः ॥३७॥ मधुस्रवंचतत्रैवतीर्थंपुण्यतमं द्विजाः ॥ तस्मिन्स्नात्वानरोभक्त्यामधुनातर्पयेत्पितॄन् ॥ ३८ ॥ तत्रापिसुमहत्तीर्थंवसिष्ठोद्वाहसंज्ञितम् ॥ तत्रस्नातोभक्तियुतोवासिष्ठंलोकमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ऋषयऊचुः ॥ वसिष्ठस्यापवाहोऽसौमहावेगोबभूवह ॥ किमर्थंसासरिच्छ्रेष्ठातमृषिंप्रत्यवाहयत् ॥ १ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ विश्वामित्रस्यराजर्षेर्वसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ भृशंवैरंबभूवेहतपःस्पर्द्धाकृतेमहत् ॥ २ ॥ आश्रमोवैवसिष्ठस्यस्थाणुतीर्थेबभूवह ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागेविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ ३ ॥ यत्रेष्ट्वाभगवान्स्थाणुःपूजयित्वासरस्वतीम् ॥ स्थापयामासदेवेशोलिंगाकारांसरस्वतीम् ॥ ४ ॥ वसिष्ठस्तत्रतपसाघोररूपेणसंस्थितः ॥ तस्येहतपसाहीनोविश्वामित्रोबभूवह ॥ ५ ॥ सरस्वतींसमाहूयइदंवचनमब्रवीत् ॥ वसिष्ठंमुनिशार्दूलंस्वेनवेगेनचानय ॥ ६ ॥

भाषाटीकायां विविधतीर्थानुकीर्तनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ऋषिबोले कि, यह जो वसिष्ठजीका महावेगशाली अपवाह (बहाना) हुआ, और फिर सरस्वतीजी किस कारणसे उन्हें (बहाकर लौटालाई) ॥ १ ॥ श्रीमान् लोमहर्षणजी बोले कि, राजार्षि विश्वामित्र और महात्मा वसिष्ठजीकी तपस्याकी स्पर्धासे (हिर्ससे) घोर शत्रुता होगईथी ॥ २ ॥ वसिष्ठजीका आश्रम स्थाणुतीर्थमें था और उसके पश्चिम ओरको बुद्धिमान् विश्वामित्रजीका आश्रम था ॥ ३ ॥ भगवान् स्थाणुजीने जहां यज्ञ और सरस्वतीजीकी पूजा कर लिंगाकारसे सरस्वतीजीको स्थापित कियाथा ॥ ४ ॥ वहां वसिष्ठजी घोररूपसे तपस्याकरतेथे, तब विश्वामित्रजी उनके तेजके प्रभावसे क्षीण होगये ॥५॥ तो विश्वामित्रने सरस्वतीको बुलाया और बोले कि, मुनिशार्दूल वसिष्ठजीको अपने वेगसे बहाकर यहां ले आओ ॥६॥

यहां आतेही उनका मैं संहार करूंगा इसमें किंचित्भी संदेह नहीं. सरस्वतीजी यह वचन सुनकर अत्यन्त व्याकुल हुई ॥ ७ ॥ और कम्पायमान होने लगी, विश्वामित्र इनकी यह दुःखकी अवस्था देखकर अत्यन्त क्रोधित हो बोले कि वसिष्ठजीको शीघ्रलाओ ॥ ८॥ तब सरिद्वरा सरस्वतीजी रोदन करती हुई ऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके पास जाकर उनसे विश्वामित्रजीके कहेहुए वचन कहने लगीं ॥ ९ ॥ वह महानदी तपके प्रभावसे अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण तथा शोकग्रस्त होगई थी। वसिष्ठजी उनसे बोले कि, तुम निःशंकहो मुझको बहाकर विश्वामित्रके पासको ले चलो ॥ १० ॥ कृपाशील ऋषिके यह वचन सुनकर महानदी सरस्वतीजीने अपने जलके प्रवाहसे उस स्थानको[1] परिपूर्ण किया ॥ ११ ॥ तब मैत्रावरुणि[2] वसिष्ठजी नदीके कूल (किनारे) को वेगसे अपहरण (कटाव) होते समय उद्यत

इहायातंमुनिश्रेष्ठंहनिष्यामिनसंशयः ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंव्यथितासानदीकिल ॥७॥ तथातांव्यथितांदृष्ट्वावेपमानांमहानदीम् ॥ विश्वामित्रोऽवदत्क्रुद्धो
वसिष्ठंशीघ्रमानय ॥ ८ ॥ ततोगत्वासरिच्छ्रेष्ठावसिष्ठंमुनिसत्तमम् ॥ कथयामासरुदतीविश्वामित्रस्यतद्वचः ॥ ९ ॥ तपःकृशांविवर्णांचभृशंशोकसम
न्विताम् ॥ उवाचतांसरिच्छ्रेष्ठांविश्वामित्रायमांवह ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकृपाशीलस्यसासरित् ॥ प्लावयामासतत्स्थानंप्रवाहेणांभसस्तदा ॥
॥ ११ ॥ सचकूलापहारेणमैत्रावरुणिरुह्यतः ॥ वहमानश्चतुष्टावतदादेवींसरस्वतीम् ॥ १२ ॥ पितामहस्यसरसःप्रवृत्तासिसरस्वति ॥ व्याप्तंत्वयाजगत्सर्वं
तैववांभोभिरुत्तमैः ॥ १३ ॥ त्वमेवकामगादेवीमेघेषुसृजसेपयः ॥ सर्वास्त्वापस्त्वमेवेतित्वत्तोवयंवहामहे ॥ १४ ॥ पुष्टिर्धृतिस्तथाकीर्त्तिः सिद्धिःकांतिः
क्षमातथा ॥ स्वधास्वाहातथावाणीतवायत्तमिदंजगत् ॥ १५ ॥ त्वमेवसर्वभूतेषुवाणीरूपेणसंस्थिता ॥ एवंसरस्वतीतेनस्तुताभगवतीतदा ॥ १६ ॥
सुखेनोवाहतंविप्रंविश्वामित्राश्रमंप्रति ॥ न्यवेदयत्तदार्चित्वाविश्वामित्रायतंमुनिम् ॥ १७ ॥

(कुलांच मारकर ऊपरस्थित)हो बहतेहुए देवी सरस्वतीजीकी स्तुति करनेलगे॥ १२॥ कि, हे सरस्वति ! तुम ब्रह्मसरसे उत्पन्न हुईहो और उसीसमय तुमने अपने पवित्र जलसे सम्पूर्ण संसारको व्याप्त किया है॥ १३॥ हे देवि ! तुम्हीं कामगामिनी (इच्छानुसारगमनकरनेवाली) और मेघोंके जलको सिरजतीहो, तुम्हीं सब जलस्वरूपिणी हो और तुमसेही हम बहाये जाते हैं॥ १४ ॥तुम्ही पुष्टि, धृति और कीर्ति हो, तुम्हीं सिद्धि, कांति और क्षमाहो, तुम्हीं स्वधा, स्वाहा और वाणी हो और यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारेही अधिष्ठित है ॥ १५ ॥ तुम्हीं सब प्राणियोंमें वाणीरूपसे विराजमानहो उनकी इसप्रकार स्तुति करनेपर भगवती सरस्वतीजीने ॥ १६ ॥ सुखसे उन्हें विश्वामित्रजीके

---

[1] जहांपर सरस्वतीजी बडे वेगसे वसिष्ठजीको बहाकर विश्वामित्रके पास लेगईं ।

[2] वसिष्ठजीका राजा निमिके शापसे देह पतित होकर मित्रावरुणकी उर्वशी अप्सराको देखतेही शुक्र स्खलित होनेपर उससे पुनर्वार देह ग्रहण (जन्म) हुआ है,यह कथा भागवत आदि महापुराणमें विस्तारसहित वर्णित है, इससे वसिष्ठजीकेभी नाम मैत्रावरुणि है (मित्रावरुणयोरपत्यं पुमान्मैत्रावरुणिः)

आश्रमके उद्देशसे बहाया, और विश्वामित्रकी पूजा करकै उन ऋषिसे कहा कि, मैं उन्हैं ले आई वो आगये ॥ १७ ॥ विश्वामित्रजी सरस्वतीसे लायेहुये वसिष्ठजीको देखकर अत्यन्त क्रोधित हुये और उसी समय वसिष्ठजीके नाश करनेके निमित्त अस्त्रको खोजने लगे ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजीको अत्यन्त क्रोधित देखकर महानदी सरस्वतीजीने ब्रह्महत्याके भयसे डरकर दोनोंके वचनोंकी रक्षा करतीहुई विश्वामित्रजीकी वञ्चना करके वसिष्ठजीको अपने जलके मध्य होकर उलटा बहाकै यथास्थानपर ले आई ॥ १९ ॥ तब महातपस्वी विश्वामित्रजी ऋषिसत्तम वसिष्ठजीको इसप्रकार अपोवाहित (प्रतिस्रोतसे बहनाहुआ) देखकर क्रोधितहो सरस्वतीजीसे बोले ॥ २० ॥ कि, हे सरिद्वरे ! जिस निमित्त तुम मेरी वंचना करकै उलटी बहीहो, इसकारण हे कल्याणि ! तुम राक्षसोंसे युक्त (सेवित) हो रुधिरकी

तमानीतंसरस्वत्यादृष्ट्वाकोपसमन्वितः ॥ अथान्विषत्प्रहरणंवसिष्ठांतकरंतदा ॥ १८ ॥ तंतुक्रुद्धमभिप्रेक्ष्यब्रह्महत्याभयान्नदी ॥ अपोवाहवसिष्ठंचमध्येनस्वांभसस्ततः ॥ उभयोःकुर्वतीवाक्यंवंचयित्वाचगाधिजम् ॥१९॥ ततोऽपवाहितंदृष्ट्वावसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ अब्रवीत्क्रोधरक्ताक्षोविश्वामित्रोमहातपाः ॥ ॥ २० ॥ यस्मान्मांसरितांश्रेष्ठेवंचयित्वाविनिर्गता ॥ शोणितंवहकल्याणिरक्षोग्रामसुसंयुता ॥ २१ ॥ ततःसरस्वतीशप्ताविश्वामित्रेणधीमता॥ अवहच्छोणितोन्मिश्रंतोयंसंवत्सरंतदा ॥ २२ ॥ अथर्षयश्चदेवाश्चगंधर्वाप्सरसस्तदा ॥ सरस्वतींतदादृष्ट्वाबभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तीर्थवरेरम्येशोणितंसमुपावहत् ॥ २४ ॥ ततोभूतपिशाचाश्चराक्षसाश्चसमागताः ॥ ततस्तेशोणितंसर्वेपिबंतिसुखमासते ॥२५॥ हृष्टाश्चतेनसुभृशंसुखिताविगतज्वराः ॥ नृत्यंतश्चहसंतश्चयथास्वर्गजितस्तथा ॥ २६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यमुनयःशतयोजनात् ॥ तीर्थयात्रांसमाजग्मुःसरस्वत्यांतपोधनाः ॥ २७ ॥ तांदृष्ट्वाराक्षसैर्घोरैःपीयमानांमहानदीम् ॥ परित्राणेसरस्वत्याःपरंयत्नंप्रचक्रिरे ॥ २८ ॥

बहा करो ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके शाप देतेही सरस्वतीजी रुधिरमिश्रित जलकी होकर एक वर्षपर्यन्त बहने लगीं ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त ऋषि देव गंधर्व और अप्सरा सरस्वतीजीको इस अवस्थामें देखकर अत्यन्त दुःखितहुए ॥ २३ ॥ सरस्वतीजी उस रमणीक तीर्थमें रुधिरमिश्रित जलकी होकर बहने लगीं ॥ २४ ॥ इसप्रकार इनको देखकर भूत, पिशाच, राक्षसगण सब वहां एकत्रित होकर उस रुधिरको पानकर सुखसे निवास करनेलगे ॥ २५ ॥ और सभी अत्यन्त गर्वित सुखित और संतापरहित होकर स्वर्गविजयीकी समान नृत्य करनेलगे ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त कुछ काल व्यतीत होनेपर तपोधन ऋषिलोग सैकडों योजनसे तीर्थयात्रा करते हुए उन सरस्वतीजीके निकट आये ॥ २७ ॥ आकर देखा कि, भयंकर निशाचर उसका जलपान कररहे हैं, यह देखकर

सरस्वतीजीको पवित्र करनेका यत्न करनेलगे ॥२८॥ इसके उपरान्त वह सम्पूर्ण महाभाग और महाव्रत मुनिगण सरिद्वरा सरस्वतीजीका आश्रयकर बोले ॥ २९ ॥
हे सरिद्वरा सरस्वति ! तुम किसकारणसे रुधिरमिश्रित जलवाली होकर बहती हो, तुम्हैं इसप्रकारसे आकुलता (गन्दापन) को पाई हुई देखकर हम सब पूछते हैं ॥ ३० ॥
तब सरस्वतीजीने विश्वामित्रजीके किये हुए चरित्र कह सुनाये, तब उन्होंने प्रसन्न होकर पवित्रजलवाली सर्वदुष्कृतनाशिनी अरुणा नदीको सरस्वतीमें मिलाया, यह देखकर
राक्षसगण अत्यन्त दुःखितहो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और दैत्योंके साथ मिलकर उन सब ऋषियोंसे वारम्वार कहनेलगे कि, हमलोग स्वभावसेही धर्महीन और क्षुधित
(भूंखे) हैं किसी समय भी हमारा क्षय नहीं है ॥ ३३ ॥ हम कभी इच्छा करके पाप नहीं करते, आप सबके प्रसाद न होनेसे, और पापकर्मके अनुष्ठान होनेसे

तेतुसर्वेमहाभागाःसमागम्यमहाव्रताः ॥ आश्रित्यसरितांश्रेष्ठामिदंवचनमब्रुवन् ॥ २९ ॥ किंकारणंसरिच्छ्रेष्ठेशोणितेनवहस्यहो ॥ एवमाकुलतांयातां
श्रुत्वापृच्छामहेवयम् ॥ ३० ॥ ततःसासर्वमाचष्टविश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ ततस्तेमुनयःप्रीताःसरस्वत्यांसमानयन् ॥ ३१ ॥ अरुणांपुण्यतोयौघांसर्व
दुष्कृतनाशनीम् ॥ दृष्ट्वातोयंसरस्वत्याराक्षसादुःखिताभृशम् ॥ ३२ ॥ ऊचुस्तान्वैमुनीन्सर्वान्दैत्ययुक्ताःपुनःपुनः ॥ वयंहिक्षुधिताःसर्वेधर्महीं
नाश्चशाश्वताः ॥ ३३ ॥ नचनःकामकारोयंयद्वयंपापकारिणः ॥ युष्माकंचाप्रसादेनदुष्कृतेनचकर्मणा ॥ ३४ ॥ पक्षोयंवर्धतेऽस्माकंयतश्चब्रह्मराक्षसाः ॥
एवंवैश्याश्चशूद्राश्चक्षत्रियाश्चविकर्मभिः ॥ ३५ ॥ येब्राह्मणान्प्रद्विषंतितेभवंतीहराक्षसाः ॥ आचार्यंमातरंचैवपितरंयेद्विषंतिह ॥ ३६ ॥ वृद्धानामवमाने
नतेभवंतीहराक्षसाः ॥ योषितांचैवपापानांयोनिदोषेणवर्द्धते ॥ ३७ ॥ शक्ताभवंतःसर्वेषांलोकानामपितारणे ॥ तेषांतेमुनयःश्रुत्वाकृपाशीलाःपुनश्चते ॥
॥ ३८ ॥ ऊचुःपरस्परंसर्वेतप्यमानाश्चतेद्विजाः ॥ क्षुतकीटावपन्नंचयत्त्वशिष्टाशितंभवेत् ॥ ३९ ॥ केशावपन्नमाधूतंमारुतश्वासदूषितम् ॥ एतैःसंस्पृष्ट
मन्नंचभागोवैराक्षसोभवेत् ॥ ४० ॥

॥ ३४ ॥ यह हमारा पक्ष बढ़चला है, जिस कारणसे हम सब ब्रह्मराक्षस हुए हैं। इसप्रकार वैश्य, शूद्र, और क्षत्री यह सभी कुकार्य करनेसे ब्रह्मराक्षस होतेहैं
॥ ३५ ॥ और जो ब्राह्मणोंके विद्वेषी होते हैं वे राक्षस होते हैं। जो आचार्य (गुरू) माता और पिता इनसे द्वेषकरते हैं ॥ ३६ ॥ और वृद्धोंका अपमान
करते हैं, वह राक्षसयोनिको प्राप्त होते हैं, सो इन सब पापोंके करनेसे तथा पापचारिणी कामिनियोंकी योनिदोषसे हमारा पक्ष बढ़चला है ॥ ३७ ॥ हे मुनियो !
आपलोगभी तारसकते हैं, कृपाशील ऋषियोंनें उनके यह वचन सुनकर पुनर्वार ॥ ३८ ॥ तप्यमान (उनके दुःख देखकर दुःखी) होकर परस्पर कहने लगे कि,
छींक और कोड़ेसे अपविद्ध (दूषित) हुआ, अशिष्टगणोंसे भक्षित हुआ ॥ ३९ ॥ केशसे अवपन्न (मिला) हुआ आधूत (उच्छिष्ट) और मारुत (अपानवायु)

और श्वाससे दूषित हुआ. और इनसे मिला हुआ और भी जो अन्न होगा वह सब राक्षसोंका भाग (हिस्सा) होता है ॥ ४० ॥ इस कारण ज्ञानवान् मनुष्य यह जानकर सर्वदा उन सब प्रकारके अन्नोंको परित्याग करै और जो मनुष्य स्वयं ऐसे अन्नको भोजन करता है उसने मानों राक्षसोंको भोजन कराया ॥ ४१ ॥ इसप्रकार उन तपोधन ऋषियोंने इस तीर्थको पवित्रकर राक्षसोंके उद्धारके अर्थ अरुणाके साथ संगमकी कल्पनाकी ॥ ४२ ॥ यह करुणा और सरस्वती दोनों नदीका संगम लोकमें विख्यात है, इसमें स्नान करके तीन रात्रि उपवास करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ४३॥ घोर कलियुगके आने और अधर्मके बढ़नेपर अरुणाके संगममें स्नानकरनेसे मनुष्योंको मुक्ति प्राप्तहोती है ॥४४॥ इसके उपरान्त वह भी राक्षस उस संगममें स्नानकर पापोंसे मुक्तहो दिव्यमाला और दिव्यवस्त्रोंको

तस्माज्ज्ञात्वासदाविद्वांस्तान्येतानिविवर्जयेत् ॥ राक्षसान्वैभोजयतेयोभुंक्तेस्वयमीदृशम् ॥ ४१ ॥ शोधयित्वातुतत्तीर्थमृषयस्तेतपोधनाः ॥ मोक्षार्थंरक्षसां तेषांसंगमंचाप्यकल्पयन् ॥ ४२ ॥ अरुणायाःसरस्वत्याःसंगमेलोकविश्रुते ॥ त्रिरात्रोपोषितःस्नातोमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ४३ ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे ह्यधर्मेप्रत्युपस्थिते ॥ अरुणासंगमेस्नात्वामुक्तिमाप्नोतिमानवः ॥ ४४ ॥ ततस्तेराक्षसाःसर्वेस्नाताःपापविवर्जिताः ॥ दिव्यमालांबरधराःस्वर्गस्त्रीभिःसमन्विताः ॥४६॥ इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ लोमहर्षणउवाच ॥ समुद्रास्तत्रचत्वारऋषिणानिर्मिताःपुरा ॥ प्रत्येकंचनरः स्नातोगोसहस्रफलंलभेत् ॥ १ ॥ यत्किंचित्क्रियतेतस्मिंस्तपस्तीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ परिपूर्णंहितत्सर्वमपिदुष्कृतकर्मणः ॥ २ ॥ शतसाहस्रकंतीर्थंतत्रैवशतिकंद्विजाः ॥ उभयोरिहसुस्नातोगोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३ ॥ सोमतीर्थंचतत्रापिसरस्वत्यास्तटेस्थितम् ॥ यस्मिन्स्नातस्तुपुरुषोराजसूयफलंलभेत् ॥४॥ रेणुकाष्टकमासाद्यश्रद्दधानोजितेन्द्रियः ॥ मातृभक्त्यातुयत्पुण्यंतत्पुण्यंप्राप्नुयान्नरः ॥ ५ ॥

धारणकर स्वर्गकी स्त्रियोंके साथ जाकर मिले ॥ ४५ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां सरस्वतीतीर्थशोधनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, वहां ऋषियोंने प्रथम चार समुद्रोंको निर्माण किया, उसमें प्रत्येकके स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस तीर्थमें जो कुछ तपस्या कीजाती है चाहै वह कर्ता पुरुष कैसाही पापी क्यों नहो परन्तु सभी उसकी पूर्ण होजाती है ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां शतसाहस्रक और शतिकनामका जो तीर्थ है, वहां स्नानकरनेसे सहस्र गोदानका फल होता है ॥ ३ ॥ वहां सरस्वतीजीके किनारे जो सोमतीर्थ है उसमें स्नानकरनेसे राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जितेन्द्रिय और श्रद्धावान् होकर रेणुकाष्ठमें गमन करै तो माताकी भक्ति करनेसे जो पुण्य संचित होता है वही पुण्य यहां प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंसे सेवित ऋणमोचनतीर्थ और कुमाराभिषेक, (जहां कुमार कार्तिकेयका अभिषेक हुआ है,) अर्थात् देवताओंने मिलकर उन्हें सेनापति बनाया है, ऐसे उस औजस तीर्थमें जाय ॥ ६ ॥ उसमें स्नान कियाहुआ पुरुष यशस्वी हो कुमारलोकको प्राप्त होता है चैत्रमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीतिथिमें वहां स्नान करके जो मनुष्य श्राद्ध करता है उसको गयाजीमें श्राद्ध करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य मिलता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ पहले वायुने कहा था कि, सन्निहत्या तीर्थमें श्राद्ध करनेसे जो महत्पुण्य प्राप्त होता है वहां श्राद्ध करनेसेभी वही पुण्य होता है, इसकारण यत्नपूर्वक इस तीर्थमें श्राद्ध करै ॥ ९ ॥ जो मनुष्य चैत्रशुक्ल षष्ठीमें वहां स्नान करता है, जिसके पितरोंके उद्देशसे दिया हुआ जल अक्षयगुण होजाता है ॥ १० ॥ वहां पंचवट नामक त्रिलोकीमें विख्यात तीर्थ है। महादेवजी स्वयं

ऋणमोचनमासाद्यतीर्थंब्राह्मणसेवितम् ॥ कुमारस्याभिषेकंचओजसंनामविश्रुतम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्स्नातस्तुपुरुषोयशसाचसमन्वितः ॥ कौमारंपुरमाप्नो
तिकृत्वास्नानंतुमानवः ॥ ७ ॥ चैत्रषष्ठ्यांशुक्लपक्षेयस्तुश्राद्धंकरिष्यति ॥ गयाश्राद्धेचयत्पुण्यंतत्फलंप्राप्नुयान्नरः ॥ ८ ॥ सन्निहत्यांयथाश्राद्धंवायुनाक
थितंपुरा ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनश्राद्धंतत्रसमाचरेत् ॥ ९ ॥ यस्तुस्नानंश्रद्दधानश्चैत्रषष्ठ्यांकरिष्यति ॥ अक्षयंचोदकंतस्यापितॄणामुपजायते ॥ १० ॥
तत्रपंचवटंनामतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ महादेवःस्थितोयत्रयोगमूर्तिधरःस्वयम् ॥ ११ ॥ तत्रस्नात्वाऽर्चयित्वाचदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ गाणपत्यमवाप्नोतिदैव
तैःसहमोदते ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्रंचविख्यातंकुरुणायत्रवैतपः ॥ ततंसुघोरंक्षेत्रस्यकर्षणार्थंद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ तस्यघोरेणतपसातुष्टइंद्रोब्रवीद्वचः ॥
राजर्षेपरितुष्टोस्मितपसानेनसुव्रत ॥ १४ ॥ यज्ञंचयेकुरुक्षेत्रेकरिष्यंतिशतक्रतुम् ॥ तेगमिष्यंतिसुकृताँल्लोकान्पापविवर्जितान् ॥ १५ ॥ अवहस्यततः
शक्रोजगामात्रिदिवंप्रभुः ॥ आगम्यागम्यचैवैनंभूयोभूयोऽवहस्यच ॥ १६ ॥ शतक्रतुरनिर्विण्णःपृष्ट्वापृष्ट्वाजगामह ॥ यदातुतपसोग्रेणसंतप्तंदेहमात्मनः ॥
ततःशक्रोऽब्रवीत्प्रीतोब्रूहियत्तेचिकीर्षितम् ॥ १७ ॥

योगमूर्तिको धारणकर वहां विराजमान हैं ॥ ११ ॥ वहां स्नानकर देवाधिदेव महेश्वरकी पूजा करनेपर उनके गणभावको प्राप्त होकर देवताओंके सहित आनंद करता है ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! कुरुक्षेत्र विख्यात तीर्थ है, इस स्थानपर राजा कुरुने क्षेत्रके कर्षणके अर्थ घोर तपस्या की थी ॥ १३ ॥ इन्द्रने उनकी अतिकठिन तपस्यासे संतुष्ट होकर कहा था कि, हे सुव्रत ! हे राजर्षे ! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं ॥ १४ ॥ जो कुरुक्षेत्रमें शतक्रतु (यज्ञ) को करैगा वह पापोंसे रहित हो अपने सुकृत पुण्यसे विवर्जित लोकोंको प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ यह कहकर प्रभु इन्द्र अवहास (हँसी) करके स्वर्गको चले गये, इसप्रकार वारम्वार आ २ कर कर्षण करते हुए राजाकी हँसी करते २ चलते समय अनेकवार राजासे पूंछकर खेदरहित चित्तसे चले गये, इसके उपरान्त जब राजा

---

१ सन्निहत्यातीर्थमें श्राद्धकरनेका माहात्म्य वायुपुराणमें लिखाहै।

कुरुकी उग्र तपस्यासे अपना शरीर संततसा होने लगा, तब इन्द्र प्रसन्न होकर उनसे बोले कि, तुम्हारी क्या इच्छा है सो कहो ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ कुरु बोले कि, जो मनुष्य श्रद्धाके सहित इस कुरुक्षेत्रतीर्थमें निवास करेंगे वह परमात्मा ब्रह्माजीके स्थानको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ जिन्होंने अन्य स्थानोंमें पाप किये हैं और जो पंच[1]महापापोंसे दूषित हैं, वह सभी इस तीर्थमें स्नान करनेसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पुण्यतम कुरुक्षेत्रमें जो कुरुक्षेत्र[2] नामका तीर्थ है उसका दर्शन करतेही पापोंसे छूटकर परमपदको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे मनुष्योंके सम्पूर्ण पाप छूटजाते हैं, और कुरुकी यह आज्ञा है कि, परमपदको प्राप्त करसकता है ॥ २१ ॥ इसके उपरांत "अनरक" नामक जो तीर्थ त्रिलोकीमें विख्यात है वहां जाय जिस स्थानके पूर्व ओर ब्रह्मा ओर दक्षिण ओर महादेवजी, पश्चिम ओर शिवजीकी स्त्री पार्वतीजी और उत्तर भागमें पद्मनाभ विष्णुजी हैं, इनके बीचमें अनरक तीर्थ विराजमान है, वह तीर्थ त्रिलोकीमें दुर्लभ है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्योंके सम्पूर्ण पाप छूट जाते हैं, वैशाख मासकी अष्टमी मंगलवारकी होनेपर ॥ २४ ॥ यदि वहां स्नान किया जाय तो मनुष्य पापोंसे मुक्त होजाता है जो मनुष्य तुर्य[3](चतुर्थ)भाग संयुक्त सुवर्ण ॥ २५ ॥ और पुओंसे परिशोधित कलशको दान करता है उसकेभी पाप मुक्त होजाते हैं, उसमें प्रथम तो रत्न सुवर्ण (अशर्फी) का चतुर्थांशसे युक्त कनकके द्वारा देवताओंको प्रीति उत्पन्न करै ॥ २६ ॥ पीछे सर्व पापोंका नाश करनेहारा दो कलशका दान करै, जो मनुष्य इसप्रकारकी विधिसे स्नान करता है ॥ २७ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर परमपदको पाता है और अन्यसमयमें भी मंगलके सहित षष्ठी तिथि

कुरुरुवाच ॥ येश्रद्दधानास्तीर्थेऽस्मिन्मानवानिवसंतिह ॥ तेप्राप्नुवंतिसदनंब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ १८ ॥ अन्यत्रकृतपापायेपंचपातकदूषिताः ॥ अस्मिंस्ती
र्थेनराःस्नातामुक्तायांतुपरांगतिम् ॥ १९ ॥ कुरुक्षेत्रेपुण्यतमेकुरुक्षेत्रंद्विजोत्तमाः ॥ तंदृष्ट्वामुक्तपापस्तुपरंपदमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ कुरुक्षेत्रेनरःस्नात्वामुक्तो
भवतिकिल्बिषैः ॥ कुरुणासमनुज्ञातःप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ २१ ॥ ततोगच्छेदनरकंतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ यत्रपूर्वेस्थितोब्रह्मादक्षिणेचमहेश्वरः ॥ २२ ॥
रुद्रपत्नीपश्चिमतःपद्मनाभोत्तरेस्थितः ॥ मध्येह्यनरकंतीर्थंत्रैलोक्यस्यापिदुर्लभम् ॥ २३ ॥ यस्मिन्स्नातास्तुपुरुषाःप्रमुच्यंतेचपातकैः ॥ वैशाखेच
यदाष्टम्यांमंगलस्यदिनंभवेत् ॥ २४ ॥ तदास्नानंतत्रकृत्वामुक्तोभवतिपातकैः ॥ यःप्रयच्छेच्चकनकंतुर्यभागेनसंयुतम् ॥ २५ ॥ कलशंचतथादद्यादपूपैः
परिशोभितम् ॥ देवताःप्रीणयेत्पूर्वंकरकैरत्नसंयुतैः ॥ २६ ॥ ततस्तुकलशौदद्यात्सर्वपातकनाशनौ ॥ अनेनैवविधानेनयस्तुस्नानंसमाचरेत् ॥ २७ ॥
समुक्तःकलुषैःसर्वैःप्रयातिपरमंपदम् ॥ अन्यत्रापियदाषष्ठीमंगलेनभविष्यति ॥ २८ ॥

---

[1] "ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गीचपंचमः" ॥ ऐसे पांचमहापातक हैं.

[2] कुरुराजानें भूभागका कर्षण कियाथा वह उसकेही सम्बन्धसे अनेक योजनका भूखडका नामकुरुक्षत्र देश है.

[3] कनक नाम सुवर्णका है, सुवर्ण संज्ञा अशर्फीका है उसकी दक्षिणाभी उतनेका चतुर्थांश होता है.

उपस्थित होनेपर ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां जो कुछभी कार्य किया जाता है उसमें मुक्ति प्राप्त होती है, सम्पूर्ण तीर्थोंके तीर्थस्वरूप उक्त तीर्थमें स्नान करनेसे ॥ २९ ॥ देवताओंकी कृपासे परमपदको प्राप्त होता है, काम्यकवन सब प्रकारके पापोंको नष्ट करता है ॥ ३० ॥ उसमें प्रवेश करतेही सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर मुक्तिलाभ करता है, सूर्य इस वनका आश्रय करके प्रगट भावसे विराजमान है ॥ ३१ ॥ हेब्राह्मणो ! पूषा उनका नाम है उसका दर्शन करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है, रविवारके आनेपर जो मनुष्य वहां स्नान करता है उसका अंतःकरण शुद्ध होकर अभिलषित फलको पाताहै ॥ ३२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां कुरुक्षेत्रादितीर्थानुकीर्तनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ऋषि बोले कि, काम्यकवनके पूर्वभागमें देवताओंसे सेवित जो वह तीर्थ कुंज है जिस प्रकारसे प्रगट हुआ है सो आप विस्तारसहित वर्णन

तत्रापिमुक्तिफलदाकृत्यातस्मिन्भविष्यति ॥ तीर्थेचसर्वतीर्थानांयस्मिन्स्नातोद्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥ सर्वदेवैरनुज्ञातःपरमंचाप्नुयात्पदम् ॥ काम्यकंचवनंपुण्यंसर्वपातकनाशनम् ॥ ३० ॥ यस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तुमुक्तोभवतिकिल्बिषैः ॥ समाश्रित्यवनंपुण्यंसविताप्रकटःस्थितः ॥ ३१ ॥ पूषानामद्विजश्रेष्ठादर्शनान्मुक्तिमाप्नुयात् ॥ आदित्यस्यादिनेप्राप्तेतस्मिन्स्नातस्तुमानवः ॥ विशुद्धमानसोऽभ्येतिमनसाचिंतितंफलम् ॥३२॥ इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ काम्यकस्यतुपूर्वेणकुंजंदेवैर्निषेवितम् ॥ तस्यतीर्थस्यसंभूतिंविस्तरेणब्रवीतुनः ॥ १ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ शृण्वंतुमुनयःसर्वेतीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ऋषीणांचरितंश्रुत्वामुक्तोभवतिकिल्बिषैः ॥ २ ॥ नैमिषेयाश्चऋषयःकुरुक्षेत्रंसमागताः ॥ सरस्वत्यांचस्नानार्थंप्रवेशंनचलेभिरे ॥ ३॥ ततस्तुकल्पयामासुस्तीर्थंयज्ञोपवीतिनम् ॥ शेषास्तुमुनयस्तत्रनप्रवेशंहिलेभिरे ॥४॥ रंतुकस्याश्रमाद्यावत्तावत्तीर्थंचचक्रकम् ॥ ब्राह्मणैःपरिपूर्णंतुदृष्ट्वादेवीसरस्वती ॥ ५ ॥ हितार्थंसर्वविप्राणांकृत्वाकुंडानिसानदी ॥ प्रयातापश्चिमंमार्गंसर्वभूतहितेस्थिता ॥ ६ ॥ पूर्वप्रवाहेयःस्नातिगंगास्नानफलंलभेत् ॥ प्रवाहेदक्षिणेतस्यानर्म्मदासरितांवरा ॥ ७ ॥

कीजिये ॥ १ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, तीर्थके माहात्म्यको सुनिये, मुनियोंके चरित्र श्रवण करनेसे सम्पूर्णपाप नष्ट होजाते हैं ॥ २ ॥ नैमिषारण्यके निवासी सम्पूर्ण ऋषियों सरस्वतीमें स्नान करनेके निमित्त कुरुक्षेत्रमें आये ॥ ३ ॥ तब उनमेंसे जो २ महात्मा थे उन्हीं उनने यज्ञोपवीती नामक प्रशस्त तीर्थकी कल्पनाकी और शेष मुनि वहां जानेको समर्थ न हुए, तब वह चक्रतीर्थपर आकर ठहरे ॥ ४ ॥ रन्तुकका आश्रम जितनी दूरतक था चक्रतीर्थभी उतनीही दूरतक विस्तारितहै, इस तीर्थको ब्राह्मणोंसे पूर्ण देखकर देवी सरस्वतीजी ॥ ५ ॥ उन समस्त ब्राह्मणोंके हितके अर्थ कुंडोंको निर्माण कर पश्चिम मार्गको बहने लगीं; वह सब प्राणियोंके हितसाधनमें तत्पर रहती हैं ॥ ॥ ६ ॥ उसके पूर्व प्रवाहमें जो मनुष्य स्नान करता है वह गंगास्नानके फलको पाता है, सरिद्वरा नर्मदाजी उसके दक्षिणप्रवाहमें एक साथ मिली हैं, अर्थात् उसमें स्नान

करनेहारेको नर्मदास्नानका फल मिलता है ॥ ७ ॥ पश्चिम ओर यमुना नदीने आश्रय (मेल) कियाहै अर्थात् उसमें स्नान करनेसे यमुनास्नान करनेका फल प्राप्त होता है जब यह नदी उत्तरकी ओरको बहती है तब सिन्धु (समुद्र) होजाती है.अर्थात् सिन्धुस्नानका फल देनेवाली होजाती है ॥ ८ ॥ इसप्रकारसे दिशाओंमें प्रवाहके अनुसार पुण्यदायिनी पूजने योग्य सरस्वतीजी दिशाओंमें बह रही हैं, इसमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण तीर्थोंके स्नानका फल होता है ॥ ९ ॥ हे द्विजपुङ्गवो ! इसके उपरान्त महात्मा मदनके तीर्थमें गमन करै, यह तीर्थ विहारनामसे त्रिलोकीमें विख्यातहै ॥ १० ॥ यहां देवतालोग शिवजीके दर्शनकी अभिलाषासे आयेथे परन्तु आते ही विहारमें तत्पर होनेके कारणसे देवीके सहित महादेवको नहीं देखसके ॥ ११ ॥ तब वह देव नन्दी और गणनायकोंकी स्तुति करने लगे, नंदीश्वरने प्रसन्न होकर

पश्चिमेतुदिशाभागेयमुनाचाश्रितानदी ॥ यदाह्युत्तरतोयातिसिंधुर्भवतिसानदी ॥ ८ ॥ एवंदिशाप्रवाहेणह्यतिपुण्यासरस्वती ॥ तस्यांस्नातःसर्वतीर्थे
स्नातोभवतिमानवः ॥ ९ ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठामदनस्यमहात्मनः ॥ तीर्थंत्रैलोक्यविख्यातंविहारंनामनामतः ॥ १० ॥ यत्रदेवाःसमागम्यशिवदर्शनकां
क्षिणः ॥ समागतानचापश्यन्देवंदेव्यासमन्वितम् ॥ ११ ॥ तेऽस्तुवन्तमहादेवंनंदिनंगणनायकम् ॥ ततःप्रसन्नोनंदीशःकथयामासचेष्टितम् ॥ १२ ॥
भवस्यउमयासर्वंविहारेक्रीडितंमहत् ॥ तच्छ्रुत्वादेवताःसर्वाःपत्नीमाहूयतेगताः ॥ १३ ॥ तेषांक्रीडाविनोदेनतुष्टःप्रोवाचशंकरः ॥ योऽस्मिंस्तीर्थेनरः
स्नातिविहारेश्रद्धयान्वितः ॥ १४ ॥ धनधान्यप्रियैर्युक्तोजायतेनात्रसंशयः ॥ दुर्गातीर्थंततोगच्छेद्दुर्गयासेवितंमहत् ॥ १५ ॥ यत्रस्नात्वापितॄन्पूज्यनदुर्ग
तिमवाप्नुयात् ॥ तत्रापिचसरस्वत्याःकूलंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६ ॥ दर्शनान्मुक्तिमाप्नोतिसर्वपातकवर्जितः ॥ यस्तत्रतर्पयेद्देवान्पितॄंश्चश्रद्धयानरः ॥ १७ ॥
अक्षय्यंलभतेसर्वंपितृतीर्थेविशिष्यते ॥ मातृहापितृहायश्चब्रह्महागुरुतल्पगः ॥ १८ ॥

उनसे शिवजीका उक्त चेष्टित (विहार) कहा ॥ १२ ॥ महादेवजीका देवी पार्वतीजीके साथ विहारतीर्थमें उस महाक्रीड़ाको सुनकर सम्पूर्ण देवता अपनी २ स्त्रियोंको वहां विहार करनेके अर्थ आह्वान करके उस विहार तीर्थमें चले और विहार करने लगे ॥ १३ ॥ महादेवजी उनके क्रीडाके आनंदको देखकर संतुष्ट होकर बोले कि, जो मनुष्य श्रद्धावान् होकर इस विहारतीर्थमें स्नान करेगा ॥ १४ ॥ वह धन, धान्य, और अन्यान्य प्रिय पदार्थोंसे युक्त होगा इसमें संदेह नहीं, इसके उपरान्त दुर्गातीर्थको जाय. दुर्गा देवीने इस महातीर्थकी सेवा करी है ॥ १५ ॥ जहां स्नान करनेसे और पितरोंकी पूजा करनेसे दुर्गति प्राप्त नहीं होती, औरभी सरस्वतीका त्रिलोकीमें विख्यात कूल (तट) विद्यमान है ॥ १६ ॥ उसका दर्शन करतेही सब पापोंसे छूटकर मुक्तिको पाता है जो मनुष्य श्रद्धासहित इस स्थानपर देवता और पितरोंका तर्पण करता है ॥ १७ ॥ वह सम्पूर्ण अक्षय होजाता है । यह पितृतीर्थ (गया) की अपेक्षा अधिक प्रभावयुक्त है,

जो मनुष्य मातृहत्या, और पितृहत्या करते हैं, और जो मनुष्य गुरुकी तल्प (शय्या) अर्थात् स्त्रीमें गमन करते हैं ॥ १८ ॥ इस स्थानमें स्नान कर वहभी पवित्र होजाते हैं, सरस्वतीजी इस स्थानपर प्राची (पूर्व) ओरको बहरही हैं और देवताओंके निमित्त उसी मार्गकी प्रतिष्ठाकरके देवमार्गके द्वारा निकल पड़ी हैं ॥ १९ ॥ प्राचीसरस्वती पापकर्माओंकोभी पवित्र करती है, जो मनुष्य प्राचीसरस्वतीको प्राप्त होकर त्रिरात्र स्नानदानादिक करता है ॥ २० ॥ किसी प्रकारभी दुष्कृति उसके शरीरका आश्रय नहीं कर सकती, श्रीमान् देवप्रवर नरनारायण, ब्रह्मा, स्थाणु (शिव) ऋषि ॥ २१ ॥ और इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता प्राचीसरस्वतीकी सेवा करते हैं, जो प्राचीसरस्वतीका आश्रयकर श्राद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ उनको इस लोक और परलोकमें कुछभी दुर्लभ नहीं रहता इस कारण सर्वदा प्राची सरस्वती

स्नात्वाशुद्धिमवाप्नोतियत्रप्राचीसरस्वती ॥ देवमार्गप्रतिष्ठायदेवमार्गेणनिःसृता ॥ १९ ॥ प्राचीसरस्वतीपुण्याअपिदुष्कृतकर्मणाम् ॥ त्रिरात्रंयेकरिष्यंतिप्राचींप्राप्यसरस्वतीम् ॥ २० ॥ तेषांनदुष्कृतंकिंचिद्देहमाश्रित्यतिष्ठति ॥ नरनारायणौदेवौब्रह्मास्थाणुस्तथाऋषिः ॥ २१ ॥ प्राचींदिशंनिषेवंतःसदा देवाःसवासवाः ॥ येतुश्राद्धंकरिष्यंतिप्राचीमाश्रित्यमानवाः ॥ २२ ॥ तेषांनदुर्लभंकिंचिदिहलोकेपरत्रच ॥ तस्मात्प्राचीसदासेव्यापंचम्यांचविशेषतः ॥ ॥ २३ ॥ पंचम्यांसेवमानस्तुलक्ष्मीवांश्चभवेन्नरः ॥ तीर्थमौशनसंतत्रत्रैलोक्यस्यापिदुर्लभम् ॥ २४ ॥ उशनायत्रसंसिद्धआराध्यपरमेश्वरम् ॥ ग्रहमध्येषूच्यतेसतस्यतीर्थस्यसेवनात् ॥ २५ ॥ एवंशुक्रेणमुनिनासेवितंतीर्थमुत्तमम् ॥ येसेवंतेश्रद्दधानास्तेयांतिपरमांगतिम् ॥ २६ ॥ यस्तुश्राद्धं नरोभक्त्यातस्मिंस्तीर्थेकरिष्यति ॥ पितरस्तारितास्तेनभविष्यंतिनसंशयः ॥ २७ ॥ चतुर्मुखंब्रह्मतीर्थंयत्रमर्यादयास्थितम् ॥ येसेवंतेचतुर्दश्यांसोपवासावसंतिच ॥ २८ ॥ अष्टम्यांकृष्णपक्षस्यचैत्रेमासिद्विजोत्तमाः ॥ तेपश्यंतिपरंसूक्ष्मंयस्मान्नावर्त्तनंपुनः ॥ २९ ॥

सेवा करनेके योग्य है विशेष करके पंचमीको प्राचीसरस्वतीकी सेवा करै ॥ २३ ॥ पंचमीको प्राचीसरस्वतीकी सेवा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, वहां त्रिलोकीमें दुर्लभ औशनस तीर्थ है ॥ २४ ॥ जहां उशना (शुक्र) जी परमेश्वरकी आराधना करके सिद्ध हुए थे उस तीर्थकी सेवा करके वह ग्रहोंके बीचमें गणना करने योग्य हुए हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकारसे शुक्राचार्यजीने इस श्रेष्ठ तीर्थकी सेवा की थी, जो मनुष्य श्रद्धासहित इसकी सेवा करते हैं उनको परमगति प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य भक्तिके सहित यहां श्राद्ध करते हैं उनके पितरोंका उद्धार होजाता है इसमें संदेह नहीं ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जहां चतुर्मुख (चारद्वारवाला) ब्रह्मतीर्थ मर्यादा (नियम) से अवस्थित है, जो मनुष्य चैत्रमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी अथवा चतुर्दशीको उपवास करके उस तीर्थकी सेवा करते हैं, वह परमसूक्ष्म (अव्यक्तस्वरूप पुण्यात्मा)

के दर्शन पातेहैं, जिससे पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त सहस्रलिंगोंसे शोभित स्थाणुतीर्थमें जाय, वहां स्थाणुवटका दर्शन करतेही सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ३० ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां स्थाणुतीर्थादिकथनंनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ऋषिबोले कि, हे महामुने ! स्थाणुतीर्थ और स्थाणुवटका माहात्म्य सन्निहत नामक सरोवरकी उत्पत्ति और फिर पीछेसे धूरिके द्वारा उसका भरना ॥ १ ॥ जिन लिंगोंका दर्शन करनेहीसे पुण्य होता है उनका स्पर्श करनेसे क्या फल प्राप्त होता है, और सरका क्या माहात्म्य है सो यह सम्पूर्ण विशेष करके वर्णन कीजिये इस समय वहां व्योममें विचरण करनेहारे देवतालोक अदृश्यरूपसे श्रवण कररहेथे उनके उद्देशसे ॥ २ ॥ लोमहर्षणजी बोले कि, आज सभी देवता[१] वामन महा

स्थाणुतीर्थंततोगच्छेत्सहस्रलिंगशोभितम् ॥ तत्रस्थाणुवटंदृष्ट्वामुक्तोभवतिकिल्बिषैः॥३०॥इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येद्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥
ऋषयऊचुः ॥ स्थाणुतीर्थस्यमाहात्म्यंवटस्यापिमहामुने ॥ सन्निहत्याःपुरोत्पत्तिपूरणंपांशुनाततः ॥ १ ॥ लिंगानांदर्शनात्पुण्यंस्पर्शनेनचकिंफलम् ॥
तथैवसरमाहात्म्यंब्रूहिसर्वमशेषतः ॥ २ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ शृण्वंतुदेवताःसर्वाःपुराणंवामनंमहत् ॥ यच्छ्रुत्वामुक्तिमाप्नोतिप्रसादाद्वामनस्यतु ॥ ३ ॥
सनत्कुमारमासीनंस्थाणोर्वटसमीपतः ॥ ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभिः ॥४ ॥ मार्कण्डेयोमुनिस्तत्रविनयेनाभिगम्यच ॥ पप्रच्छसरमाहात्म्यं
प्रमाणंचस्थितंतथा ॥ ५ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ब्रह्मपुत्रमहाभागसर्वशास्त्रविशारद ॥ ब्रूहिमेसरमाहात्म्यंसर्वपापभयापहम् ॥ ६ ॥ कानितीर्थानिदृश्या
निगुह्यानिद्विजसत्तम ॥ लिंगानिकतिपुण्यानिस्थाणोर्यानिसमीपतः ॥७॥येषांदर्शनमात्रेणमुक्तिंप्राप्नोतिमानवः ॥ वटस्यदर्शनंपुण्यमुत्पत्तिंकथयस्वमे ॥८॥

पुराणको सुनिये कि, जिसके सुननेसे वामनजीके प्रसादसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी स्थाणुवटके निकट बैठेथे, और ब्रह्मपुत्र महात्मा. वालखिल्यादि ऋषिभी उनके पासही विराजमानथे ॥ ४ ॥ कि, इसी समयमें मार्कंडेयजीने आकर विनयसहित सरोवरका माहात्म्य, उसका प्रमाण, और संस्थान (सकल) पूछा ॥ ५ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि, हे महाभाग ! आप ब्रह्माजीके पुत्र और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विशारद (निपुण) हो जिसके सुननेसे सब प्रकारके पाप दूर होजाते हैं, उसी सरके माहात्म्यको वर्णन कीजिये ॥ ६॥ हे द्विजोत्तमो ! कौन २ सा तीर्थ देखने अथवा न देखने योग्य है, इस स्थाणुवटके समीपमें स्थित इन सब लिंगोंके बीचमें कौन २ सा लिंग अतिपवित्र है ॥ ७ ॥ जिनका दर्शन करनेहीसे मुक्ति प्राप्त होती है, स्थाणुवटके दर्शन किसप्रकार करनेसे पुण्यफल प्राप्त होता है और उसकी उत्पत्ति

---

[१] यहाँ देवतापदसे, "आश्रमोऽस्त्रीद्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः" इस अमरकोशके लेखसे भूमिदेव ब्राह्मणही कहेजासक्ते हैं, क्योंकि उन्हींका प्रस्ताव चला आता है । दूसरे देवतापदसे अन्तरिक्षचारी देवगणके उद्देशसे लोमहर्षणजीका वचन है । अतः उक्त दोनों अर्थ आदरणीय हैं ।

किसप्रकार हुई है सो आप कहिये ॥ ८ ॥ यहांके सम्पूर्ण तीर्थोंकी परिक्रमा करनेसे किसप्रकारका फल प्राप्त होता है, उनमें स्नान करनेसे पुण्य कैसे संचित होता है गुप्त और देवताओंसेही अदृष्ट तीर्थ इन सबमें किसप्रकार पुण्य उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ देवाधिदेव स्थाणु (शिव) जी जिसप्रकार सरके बीचमें स्थित फिर इन्द्रने किस निमित्त पांशु (धूलि) से इस तीर्थको भर दियाथा ॥ १० ॥ स्थाणुतीर्थका माहात्म्य क्या है, चक्रतीर्थमें किसप्रकारसे फल प्राप्त होता है, सूर्यतीर्थ और सोमतीर्थ किसप्रकारके माहात्म्यवाले हैं सो आप मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! सरस्वतीके निकटमें शंकर और विष्णु इन दोनोंके जो जो गुप्तस्थान हैं उन्हें विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १२॥ आप देहधारी होकरभी भगवान् ब्रह्माजीके माहात्म्यको पूर्णरीतिसे जानते हैं, आपको उन विरञ्चि ब्रह्माजीके

प्रदक्षिणायांयत्पुण्यंतीर्थस्नानेनयत्फलम् ॥ गुह्येषुदेवदृष्टेषुयत्पुण्यमभिजायते ॥ ९ ॥ देवदेवोयथास्थाणुःसरमध्येव्यवस्थितः ॥ किमर्थंपांशुनाशक्रस्तीर्थंपूरितवान्पुनः ॥ १० ॥ स्थाणुतीर्थस्यमाहात्म्यंचक्रतीर्थस्ययत्फलम् ॥ सूर्यतीर्थस्यमाहात्म्यंसोमतीर्थस्य ब्रूहिमे ॥ ११ ॥ शंकरस्यचगुप्तानिविष्णोःस्थानानियानिच ॥ कथयस्वमहाभागसरस्वत्याःसविस्तरम् ॥ १२ ॥ त्वंदेहींचापिदेवस्यमाहात्म्यंवेत्सितत्त्वतः ॥ विरंचस्यप्रसादेनविदितंसर्वमेवच ॥ ॥ १३ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ मार्कण्डेयवचःश्रुत्वाब्रह्मात्मासमहामुनिः ॥ अतिभक्त्यातुतीर्थस्यप्रवणीकृतमानसः ॥ १४ ॥ पर्यंकंशिथिलीकृत्यनमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥ कथयामासतत्सर्वंयच्छ्रुतंब्रह्मणःपुरा ॥ १५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ नमस्कृत्वामहादेवमीशानंवरदंशुभम् ॥ उत्पत्तिंचप्रवक्ष्यामितीर्थानांब्रह्मभाषिताम् ॥ १६ ॥ पूर्वमेकार्णवेघोरेनष्टेस्थावरजंगमे ॥ बृहदंडमभूदेकंप्रजानांबीजसंभवम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्नंडेस्थितोब्रह्माशयनायोपचक्रमे ॥ सहस्रयुगपर्यंतंसुप्त्वासप्रत्यबुध्यत ॥ १८ ॥ सत्वोद्रिक्तस्तथाब्रह्माशून्यंलोकमपश्यत ॥ सृष्टिंचिंतयतस्तस्यरजसामोहितस्यच ॥ १९ ॥

प्रसादसे सम्पूर्णही विशेषकरके विदित है ॥ १३ ॥ लोमहर्षणजी बोले मार्कंडेय मुनिके यह वचन सुनकर तीर्थोंके प्रति अत्यन्तही भक्ति उदय होनेसे उन महामुनि महात्मा सनत्कुमारका मन प्रवणीकृत (तन्मय) होगया ॥ १४ ॥ तब वह आलस्य छोडकर हाथ जोड महेश्वरको प्रणाम कर प्रथम ब्रह्माजीके निकट जो कुछ सुनाथा उसे विस्तारसहित वर्णन करने लगे ॥ १५ ॥ और बोले कि, मैं सबके नियन्ता वरदाता उन मंगलस्वरूप महादेवजीको नमस्कार कर ब्रह्माजीके कहे हुए तीर्थोंकी उत्पत्तिका प्रकार कहूँगा ॥ १६ ॥ पूर्वकालमें घोर एकार्णवके बीचमें सम्पूर्ण स्थावर जंगमके नष्ट होनेपर प्रजाओंका बीज संभव एक बडा भारी अंडा प्रगट हुआ ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीने उस अंडेमें स्थित होकर शयन करनेका उपाय किया । और सहस्रयुग (एक कल्प) तक शयन कर पीछे जागे ॥ १८ ॥ उस समय एक मात्र सत्त्वगुणसे आविष्ट होकर उन्होंने देखा कि, सम्पूर्ण लोक शून्य हो रहा है, इस कारण वह रजोगुणसे मोहित हो सृष्टिके विषयकी चिन्ता करनेलगे,

उन महापुरुषोंके ॥ १९ ॥ रज सृष्टिका गुण है, सत्त्व स्थितिका गुण जानागया है, और उपसंहार(प्रलय) के समयमें तमोगुणका आविर्भाव होता है ॥ २० ॥ तथापि तत्त्वतः वह भगवान् सर्वव्यापी पुरुष गुणातीत (गुणोंसे रहित) कहकर विख्यात हैं जो कुछ जीवकी संज्ञा है, वह सम्पूर्ण उनसेही व्याप्त है ॥ २१ ॥ वही ब्रह्मा वही गोविन्द (विष्णु) और वही सनातनस्वरूप महादेव हैं. जो मनुष्य उन महात्माको जानते हैं वह निश्चयही सर्वज्ञ हैं ॥ २२ ॥ वह पुरुष गुणातीत परमात्मा और नित्य विद्यमान हैं, जो मनुष्य उन महात्माको जानते हैं वह सर्वज्ञ और मोक्षज्ञ हैं॥ २३ ॥ जिनका मन अखंडितभावसे उन परमात्मामें लगा है उन्हें तीर्थोंकी सेवासे क्या प्रयोजन है और चार आश्रमकाही क्या फल है ॥ २४ ॥ आत्मारूपी नदी, संयम उसका पवित्र तीर्थ, और सत्य उसका जल है। उस शील शम दमादि युक्त नदीमें

रजःसृष्टिगुणंप्रोक्तंसत्त्वंस्थितिगुणंविदुः ॥ उपसंहारकालेचप्रवर्त्ततेतमोगुणः ॥ २० ॥ गुणातीतःसभगवान्व्यापकःपुरुषःस्मृतः ॥ तेनेदंसकलंव्याप्तंय
त्किंचिज्जीवसंज्ञितम् ॥ २१ ॥ सब्रह्मासचगोविंदईश्वरःससनातनः ॥ यस्तंवेदमहात्मानंससर्ववेदानिश्चितम् ॥ २२ ॥ गुणातीतःसपुरुषःपरमात्मास
नातनः ॥ यस्तंवेदमहात्मानंससर्ववेदमोक्षवित् ॥ २३ ॥ किंतेषांसकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वाप्रयोजनम् ॥ येषांचानंतकंचित्तमात्मन्येवव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥
आत्मानदीसंयमपुण्यतीर्थासत्योदकाशीलशमादियुक्ता ॥ तस्यांस्नातःपुण्यकर्मापुनातिनवारिणाशुद्ध्यतिचांतरात्मा ॥ २५ ॥ एतत्प्रधानंपुरुषस्यकर्म
यदात्मसंबोधसुखेप्रविष्टम् ॥ ज्ञेयंतदेवप्रवदंतिसंतस्तत्प्राप्यदेहीविजहातिकामान् ॥ २६ ॥ नैतादृशंब्राह्मणस्यास्तिवित्तंयथैकतासमतासत्यताच ॥
शीलंस्थितिर्दंडविधानमार्जवंततस्ततश्चोपरमःक्रियासु ॥ २७ ॥ अपिब्रह्मसमासेनयदुक्तंतेद्विजोत्तम ॥ यज्ज्ञात्वाब्रह्मपरमंप्राप्स्यसित्वंनसंशयः ॥२८॥
इदानींशृणुचोत्पत्तिंब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ इमंचोदाहरंस्तत्रश्लोकंनारायणंप्रति ॥ २९ ॥ आपोनाराइतिप्रोक्ताआपोवैनरसूनवः ॥ तासुशेतेसयस्माच्च
तेननारायणःस्मृतः ॥ ३० ॥

स्नान करनेसेही पुण्यकर्मा मनुष्य पवित्र होता है, जलके द्वारा अंतरात्मा कभी शुद्ध नहीं होती ॥ २५ ॥ आत्मज्ञानरूप सुखसे सर्वदाही युक्त होकर रहै, यही पुरुषके प्रधान कर्म हैं, साधुओंने कहा है कि, यही पुरुषका एक मात्र ज्ञेय (जानने योग्य) है और उसके प्राप्त होतेही मनुष्योंकी एक साथही अभिलाषाएँ नष्ट होजाती हैं॥ ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंका इससे बढ़के कोई धन नहीं है. जैसा कि, एकता, समता, सत्यता, शील, स्थिति, दंड, विधान और ऋजुता, फिर उस २ संसरणहेतु, क्रियाओंसे चित्तकी निवृत्ति होना है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे निकट मैंने जो कुछ संक्षेपसे ब्रह्मस्वरूपका वर्णन किया, सो इसे जानकर तुम परब्रह्मको प्राप्त होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ अब परमात्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्ति सुनिये, नारायणकेही आश्रयसे इसप्रकारके श्लोक प्राचीनऋषियोंसे उदाहृत हुए हैं ॥ २९ ॥ जलको नारा कहते हैं

कारण कि, जल नराख्य परब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है; उसमें जो शयन किया, इसी कारण नारायण नाम हुआ है ॥ ३० ॥ उस पवित्रजलमें संसारको अन्तर्हित हुआ जानकर भगवान्ने उस अंडेको भेदन किया, उसमेंसे “ ॐ ” ऐसा शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ भूः[1] भुवः और तीसरा स्वः शब्द उत्पन्न हुआ है, इसके एक योगका नाम भूर्भुवःस्वः है ॥ ३२ ॥ इसमें सविताका वरेण्य (वरने प्रार्थना करने योग्य) तेज प्रगट हुआ, वह तेज अणु (किंचित्) निकल सम्पूर्ण जलको शुद्ध कर ॥ ३३ ॥ तेजबलसे शोषित होनेपर फिर जो कुछ शेष रहता है वह कललत्वको प्राप्त होता है, कललसे बुल्बुलोंका जन्म हुआ, यह बुल्बुले कठिनताको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ उसी कठिनतासे धरिणी (पृथ्वी) प्रादुर्भूत हुई है, यही प्राणियोंके धरिणी हैं जिस स्थानमें अंडा स्थित था उसी स्थानमें सन्निहित नामक सरोवर हुआ है ॥ ३५ ॥ जिसलिये आदि कालमें वह तेज निकला है उसीसे उसका आदित्य नाम हुआ है, और लोकपितामह ब्रह्माजी उस अंडेसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ मेरु उनका गर्भवेष्टनचर्म है, सम्पूर्ण पर्वत यह उसके जरायु हैं, समुद्र और सहस्रों नदियें यह उसकी गर्भोदक हैं ॥ ३७ ॥ उनके नाभिस्थानमेंसे जो परम निर्मल उदक (जल) निकला है उसी पवित्र श्रेष्ठ जलसे यह महासर पूर्ण हुआ है ॥ ३८ ॥ इस सरमें स्थाणुरूपी वटका वृक्ष विराजमान है, इससे ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥ और इन ब्राह्मणादिकोंकी शुश्रूषाके निमित्त सम्पूर्ण शूद्रोंने जन्म लिया है, इसके उपरान्त अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी सृष्टिकी

विशुद्धसलिलेतस्मिन्विज्ञायांतर्गतंजगत् ॥ अंडंविभज्यभगवांस्तस्मादोमित्यजायत ॥ ३१ ॥ ततोभूरभवत्तस्माद्भुवइत्यपरःस्मृतः ॥ स्वःशब्दश्चतृतीयोभूद्भूर्भुवःस्वेतिसंज्ञिताः ॥ ३२ ॥ तस्यांतेजःसमभवत्तत्सवितुर्वरेण्यंयत् ॥ उदकंशोषयामासयत्तेजोणुविनिःसृतम् ॥ ३३ ॥ तेजसाशोषितंशेषंकललत्वमुपागतम् ॥ कललाद्बुद्बुदंज्ञेयंततःकाठिन्यतांगतम् ॥ ३४ ॥ काठिन्याद्धरिणीज्ञेयाभूतानांधारिणीहिसा ॥ यस्मिन्स्थानेस्थितंह्यंडंतस्मिन्सन्निहितंसरः ॥ ३५ ॥ यदाद्यंनिःसृतंतेजस्तस्मादादित्यउच्यते ॥ अंडमध्येसमुत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ॥ ३६ ॥ तस्योल्बंमेरुरभवज्जरायुःपर्वताःस्मृताः ॥ गर्भोदकंसमुद्राश्चतथानद्यःसहस्रशः ॥ ३७ ॥ नाभिस्थानाद्यदुदकंब्रह्मणोनिर्मलंमहत् ॥ महत्सरस्तेनपूर्णंविमलेनवरांभसा ॥ ३८ ॥ तस्मिन्मध्येस्थाणुरूपीवटवृक्षोमहामनाः ॥ तस्माद्विनिर्गतावर्णाब्राह्मणाःक्षत्रियाविशः ॥३९॥ शूद्राश्चतस्मादुत्पन्नाःशुश्रूषार्थंद्विजन्मनाम् ॥ ततश्चिंतयतःसृष्टिंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ४० ॥

---

[1] ॐ यह परब्रह्मकी संज्ञा है. इसमें अ- उ- म- यह तीन अक्षर क्रमसे ब्रह्मा,विष्णु, महादेवके वाचक हैं, उसी परमात्मासे भूः- भुवः- स्वः यह तीन व्याहृति अर्थात् स्थूल- लिङ्ग- कारण शरीर उत्पन्न होते हुए । यह तीन शब्द तीनों शरीरोंके वाचक हैं ।

चिन्तामें प्रवृत्त हुए ॥ ४० ॥ तब साक्षात् शुद्धिस्वरूप वालखिल्यादि ऋषि उनके मनसे उत्पन्न हुए, उनकी संख्या अट्ठासी सहस्र हुई, और वह सभी ऊर्ध्वरेता हुए॥ ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी पुनर्वार सृष्टिकी चिन्ता करनेलगे, तब सनकादि ऋषि उनके मनसे उत्पन्न हुए ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त बुद्धिमान् वह ब्रह्माजी फिर प्रजाकी इच्छासे सृष्टिकी चिन्ता करनेलगे तब सप्त ऋषियोंने जन्म लिया, वह सभी प्रजापति हुए ॥ ४३ ॥ पुनर्वार रजसे मोहित होकर चिन्ता करनेलगे, तब तपःस्वाध्यायमें तत्पर सम्पूर्ण वालखिल्य ऋषि प्रगट हुए ॥ ४४ ॥ वह सभी सर्वदा स्नानमें निरत और देवताओंकी पूजामें रत होकर उपवास और कठिन व्रतका अनुष्ठान करके शरीरको सुखानेलगे ॥४५॥ उन्होंने दुर्बल और धमनिसन्तत (नाड़ी सब जगह आई हैं जिनके ऐसे) होकर

वालखिल्याःसमुत्पन्नामानसाःशुद्धिरूपिणः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणिबभूवुश्चोर्ध्वरेतसः ॥ ४१ ॥ ततःसृष्टिंचिंतयतोब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ मनसोमानसा जाताःसनकाद्यामहर्षयः ॥४२॥ पुनश्चिंतयतस्तस्यप्रजाकामस्यधीमतः ॥ ऋषयःसप्तचोत्पन्नास्तेप्रजापतयोऽभवन् ॥४३॥ पुनश्चिंतयतस्तस्यरजसामोहितस्यच ॥ वालखिल्याःसमुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः ॥ ४४ ॥ तेसदास्नाननिरतादेवार्चनपरायणाः ॥ उपवासैर्व्रतैस्तीव्रैःशोषयंतिकलेवरम् ॥ ॥ ४५ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतेकृशाधमनिसंतताः ॥ आराधयंतिदेवेशंनचतुष्यतिशंकरः ॥ ४६ ॥ ततःकालेनमहताउमयासहशंकरः ॥ आकाशमार्गेणतदादृष्ट्वादेवीसुदुःखिता ॥ ४७ ॥ प्रसाद्यदेवदेवेशंशंकरंप्राहसुव्रता ॥ क्लिश्यंतितेमुनिगणादेवदारुवनाश्रयाः ॥ ४८ ॥ तेषांक्लेशक्षयंदेवविधेहिकुरुमेदयाम् ॥ किंदेवधर्मनिष्ठानामनंतंदेवदुष्कृतम् ॥ ४९ ॥ नाद्यापियेनसिद्ध्यंतिशुष्कस्नाय्वस्थिशोषिताः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदेव्याःपिनाकीपतितांतकः ॥ प्रोवाचप्रहसन्मूर्ध्नाचारुचंद्रांशुशोभितः ॥ ५० ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ नवेत्सिदेवितत्त्वेनधर्मस्यगहनांगतिम् ॥ नैतेधर्म्मंविजानंतिनचकामविवर्जिताः॥५१॥

सहस्रोंवर्षतक देवाधिदेव शिवजीकी आराधना की परन्तु तो भी वह प्रसन्न न हुए ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त बहुत समय बीतनेपर महादेवजी पार्वतीजीके साथ आकाश मार्गको जारहेथे, देवी इन वालखिल्य ऋषियोंको देखकर अत्यन्त दुःखिता हुईं ॥ ४७ ॥ और देवाधिदेव महादेवको प्रसन्न करके बोलीं कि, देवदारुवनके आश्रित यह वालखिल्य ऋषिलोग क्लेश भोग रहे हैं ॥ ४८ ॥ हे देव ! मेरे ऊपर कृपाकरके उनका क्लेश दूर कीजिये. हे देव ! इन धर्मनिष्ठोंने ऐसा क्या अक्षय दुष्कर्म किया है ॥ ४९ ॥ जिससे शुष्कस्नायु अस्थिसे शोषित होकर आजतक सिद्धिको प्राप्त नहीं करसके, पतितपावन महादेवजी पार्वतीजीके वचन सुनकर मुसकाते हुये बोले ॥५०॥ कि, हेदेवि ! धर्मकी गति अत्यन्त दुर्बोध है तुम उसका रूप तत्त्वसे नहीं जानतीहो, इन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है, और फिर यह कामनाशून्यभी

नहीं हैं ॥ ५१ ॥ अभीतक इनका क्रोध दूर नहीं हुआ है, बुद्धि मोहसे ढकीहुई है, देवी ऐसा सुनकर महादेवजीसे यह वचन बोलीं ॥ ५२ ॥ हे देव ! आप इनको अपना दर्शन दीजिये, मुझे यह अत्यन्त कौतूहल (उत्कंठा) उत्पन्न हुआ है । देवाधिदेव महादेवजी इसप्रकार सुनकर मुसकाते हुये बोले ॥ ५३ ॥ तुम यहां ठहरी रहो जहां यह सम्पूर्ण ऋषि घोर तपस्या कररहे हैं मैं वहां जाकर इनको अपना व्यवहार दिखाऊंगा ॥ ५४ ॥ महात्मा शंकरके ऐसा कहनेपर भुवनेश्वरी देवी हर्षितहो अपने भर्ता (शिवजी) से बोलीं कि, आप जाइये ॥ ५५ ॥ उनके वचनसे शिवजी जहाँ वह सम्पूर्ण महाभाग ऋषिगण अग्निहोत्र क्रियाका अनुष्ठान कर स्वाध्याय (वेदपाठ) में तत्पर होकर डेलेके समान एकाग्रहो विराजमान थे वहांको गये ॥ ५६ ॥ वहां उनको देख कर नग्न, सर्वाङ्गसुन्दरवनमालाओंसे शोभा

नचक्रोधेननिर्मुक्ताःकेवलंमूढबुद्धयः ॥ एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवीमामेवंसंशितव्रतम् ॥ ५२ ॥ देवप्रदर्शयात्मानंपरंकौतूहलंहिमे ॥ सइत्युक्तउवाचेदंदेवदेवः
स्मिताननः ॥ ५३ ॥ तिष्ठत्वमत्रयास्यामियत्रैतेमुनिपुंगवाः ॥ साधयंतितपोघोरंदर्शयिष्यामिचेष्टितम् ॥ ५४ ॥ इत्युक्तातुततोदेवीशंकरेणमहा
त्मना ॥ गच्छस्वेत्याहमुदिताभर्त्तारंभुवनेश्वरी ॥ ५५ ॥ यत्रतेमुनयःसर्वेकाष्ठलोष्ठसमाःस्थिताः ॥ अधीयानामहाभागाःकृताग्निसदनक्रियाः ॥ ५६ ॥
तान्विलोक्यततोदेवोनग्नःसर्वांगसुंदरः ॥ वनमालाकृतापीडोयुवाभिक्षाकपालभृत् ॥ ५७ ॥ आश्रमेपर्यटन्भिक्षांमुनीनामाश्रमंप्रति ॥ देहिभिक्षांततश्चो
क्त्वासंभ्रमन्नाश्रमंययौ ॥ ५८ ॥ तंविलोक्याश्रमगतंयोषितोब्रह्मवादिनाम् ॥ सकौतुकस्वभावेनतस्यरूपेणमोहिताः ॥ ५९ ॥ प्रोचुःपरस्परंनार्यएहि
पश्यामभिक्षुकम् ॥ परस्परमितिप्रोक्त्वागृह्यमूलफलंबहु ॥६०॥ गृहाणभिक्षामूचुस्तास्तंदेवंमुनियोषितः ॥ सतुभिक्षाकपालंतत्प्रसार्यबहुसादरम्॥६१॥
देहिभिक्षांशिवंवोस्तुभवतीभ्यस्तपोधनाः ॥ हसमानस्तुदेवेशस्तत्रदेव्यानिरीक्षितः ॥ ६२ ॥

यमान देह युवा अवस्थाको धारणकर कपाल हाथमें ले ॥ ५७ ॥ उन मुनियोंके आश्रमके निकट भिक्षाके निमित्त घूमने लगे, और "हमें भिक्षा दो" यह कह कर भ्रमण करते हुए उन्हींके आश्रमको चले गये ॥ ५८ ॥ ब्रह्मवादी (वेद पाठी) ऋषियोंकी स्त्रियें इनको आश्रममें आये हुए देखकर इनके रूपसे मोहित होगईं, और स्वकौतुक स्वभावके वशसे उन शिवके रूपसे मोहित हुईं ॥ ५९ ॥ परस्पर (आपसमें) कहने लगीं कि, आओ २ इस अपूर्व भिक्षुकका दर्शन करैं, ऐसा कहकर बहुत प्रकारके फल मूलको लेकर ॥ ६० ॥ उन भिक्षुरूपी महादेवजीसे बोलीं कि, भिक्षाको ग्रहण करो, तब महादेवजीने आदरमानके साथ उस भिक्षाको कपालमें रख लिया और बोले कि ॥६१॥ हे तपस्विनियो ! तुम्हारा मंगलहो, हमें भिक्षा दो, उन्हें मुसकाते हुए वहां ऐसा कहनेपर देवी पार्वतीजी

उन्हें देखने लगीं ॥ ६२ ॥ तब वह मुनिस्त्रियें उस भिक्षाको देकर कामातुर होकर पूछती हुईं कि, हे तापस ! तुमने कौनसा ऐसा व्रत लिया है ? देखो जिसमें तुम्हारा शरीर नग्न और वनमालाओंसे विभूषित है, इसकारण तुम्हारा तपस्वी वेश और भी मनोहर है, यदि इच्छाहो तो विशेष करके वर्णन कीजिये॥ ६३॥ ६४ ॥ तापसवेषी शंकर इसप्रकार उनके वचनोंको सुन मुसकाते हुए उत्तर देते हुए कि, हमारा यह व्रत कुछ एकरहस्यमय है, इसीकारण प्रकाश करनेका नहीं है ॥ ६५ ॥ यहां बहुत लोग सुनेंगे, इसकारण यहां इस व्रतके रहस्यको नहीं खोलूंगा, हे सुभगो ! यह विचार कर चलो ॥ ६६ ॥ उनके ऐसा कहनेपर इन स्त्रियोंने उन्हें उत्तर दिया कि, हे मुने ! तो चलो हम चलेंगी, हमें इस विषयमें अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ ६७ ॥ यह कहकर उन्होंने अपने कोमल हाथोंसे उन्हें पकड़ लिया, उनमेंसे कोई तो कन्दर्पसे व्याकुल होकर उनके कंठको लिपट गई और किसीने कामके वशीभूतहो ॥ ६८ ॥ दोनों जंघाओंको पकड़ा, कोई बालोंको पकड़कर लटकने लगी, और किसीने कमर पकड़ली, और किसीने दोनों चरणोंको पकड़ लिया ॥ ६९ ॥ ऋषियोंने आश्रमके बीच अपनी २ स्त्रियोंकी ऐसी चित्तकी वृत्ति देखकर, "इस तपस्वीको मारडालो" यह कहकर लकड़ी और पत्थर हाथमें ले ॥ ७० ॥ महादेवजीके भयंकर ऊर्द्ध्व लिंगको गिरादिया, लिंगके गिरतेही परमेश्वर अन्तर्धान होगये ॥ ७१ ॥ और पार्वतीजीके साथ हँसते २ कैलास पर्वतको चले गये, इस ओर देवाधिदेवका लिंग चराचरभूपृष्ठमें पतित हुआ ॥ ७२ ॥ तो वह भावितात्मा ऋषि अत्यन्तही क्षुभित हुए, और वहां व्याकुल होकर रहनेलगे ॥ ७३ ॥ तब उनमेंसे एक बुद्धिमान् ऋषिने कहा कि, इस महात्मा तपस्वीके सद्भाव (स्थिति)

तत्रदत्त्वैवतांभिक्षांपप्रच्छुस्ताःस्मरातुराः ॥ नार्यऊचुः ॥ कोऽसौनामव्रतविधिस्त्वयातापससेव्यते ॥ ६३ ॥ यत्रनग्नेनलिंगेनवनमालाविभूषितः ॥ भवा
न्वैतापसोहृद्योब्रूहिस्मयदिमन्यसे ॥ ६४ ॥ इत्युक्तस्तापसस्ताभिःप्रोवाचहसिताननः ॥ इदंममव्रतंकिंचिन्नरहस्यंप्रकाशते ॥ ६५ ॥ शृण्वंतिबहवो
यत्रतत्रवाख्यानविद्यते ॥ अस्यव्रतस्यसुभगाइतिमत्वागमिष्यथ ॥ ६६ ॥ एवमुक्तास्तदातेनप्रत्यूचुस्तंतदामुनिम् ॥ ततोभ्येहिगमिष्यामोमुनेनःकौ
तुकंमहत् ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वातास्तदातंवैजगृहुःपाणिपल्लवैः ॥ काचित्कंठेसकंदर्पाकाचित्कामपरातथा ॥६८॥ जानुभ्यामपरानारीकेशेषुललितापरा ॥
अपरातुकटीरंध्रेह्यपरापादयोरपि ॥ ६९ ॥ क्षोभंविलोक्यमुनयआश्रमेतुस्वयोषिताम् ॥ हन्यतामितिसंभाष्यकाष्ठपाषाणपाणयः ॥ ७० ॥ पातयंति
स्मदेवस्यलिंगमूर्ध्वंविभीषणम् ॥ पातितेतुततोलिंगेगतोंतर्धानमीश्वरः ॥७१॥ देव्याजहासभगवान्कैलासंनगमाश्रितः ॥ पतितेदेवदेवस्यलिंगपृष्ठेचराचरे॥
॥ ७२ ॥ क्षोभोबभूवसुमहानृषीणांभावितात्मनाम् ॥ एवंविदित्वातेतत्रवर्ततेव्याकुलाःस्मृताः ॥७३॥ उवाचैकोमुनिवरस्तत्रबुद्धिमतांवरः ॥ नवयंविद्मः
सद्भावंतापसस्यमहात्मनः ॥ ७४ ॥

को हम लोग नहीं जानते हैं कि, वह कहां रहता है ॥ ७४ ॥ इस कारण पितामह ब्रह्माजीकी शरण लें, वह इसकी कुचेष्टाको भली भांतिसे जानते होंगे, उनके इसप्रकार कहनेपर सम्पूर्ण जितेन्द्रिय ऋषि॥ ७५॥ सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित ब्रह्माजीके स्थानकोगये, और देवताओंके नियन्ता ब्रह्माजीको देखकर लज्जासे नीचेको मुख करके खड़े हुए ॥ ७६ ॥ उनको दुःखित देखकर पितामह ब्रह्माजी बोले कि, अहो ! तुम अत्यन्त मूढहो इसीकारण क्रोधसे व्याकुल चित्त होगयेहो ॥ ७७ ॥ मूढ बुद्धियोंको किसी प्रकारकी धर्मकी क्रिया विदित नहीं है, तुम क्रूरकर्मा हो, धर्मके सर्वस्वको सुनो ॥ ७८ ॥ इसके जानतेही बुद्धिमान् मनुष्य धर्मके फलको प्राप्त होताहै, जो विभु इस देहके बीचमें आत्मा होकर स्थित है ॥ ७९ ॥ उनकी आदि नहीं है, वही महास्थाणु (कूटस्थ) और सर्वदा निर्लिप्त कहकर प्रख्यात है, मणि जैसे शानद्वारा उज्ज्वलवर्णके शरीरको

विरिंचिंशरणंयामःसहिज्ञास्यतिचेष्टितम् ॥ एवमुक्ताःसर्वएवमुनयःसंजितेंद्रियाः ॥ ७५ ॥ ब्रह्मणःसदनंजग्मुर्देवैःसर्वैर्निषेवितम् ॥ प्रणिपत्याथदेवेशं
लज्जयाधोमुखाःस्थिताः ॥ ७६ ॥ अथतान्दुःखितान्दृष्ट्वाब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ अहोमुग्धायदायूयंक्रोधेनैकलुषीकृताः ॥७७॥ नधर्मंचक्रियांकांचिज्जानते
मूढबुद्धयः ॥ श्रूयतांधर्मसर्वस्वंतापसाःक्रूरकर्मणः ॥ ७८ ॥ विदित्वायद्बुधःक्षिप्रंधर्मस्यफलमाप्नुयात् ॥ योऽसावात्मनिदेहेऽस्मिन्विभुर्नित्योऽव्यवस्थितः॥
॥ ७९ ॥ सोऽनादिःसमहास्थाणुःपृथक्त्वेपरिसूचितः ॥ मणिर्यथोपधानेनधत्तेवर्णोज्ज्वलोपिवै ॥ ८० ॥ तन्मयोभवतेतद्वदात्मापिमनसाकृतः ॥ मनसोभे
दमाश्रित्यकर्मभिश्चोपचीयते ॥ ८१ ॥ ततःकर्मवशाद्भुंक्तेयद्भोगान्स्वर्गनारकान् ॥ तन्मनःशोधयेद्धीमान्ज्ञानयोगमुपक्रमैः ॥ ८२ ॥ तस्मिञ्छुद्धेह्यं
तरात्मास्वयमेवनिराकुलः ॥ नशरीरस्यसंक्लेशैरपिनिर्दहनात्मकः ॥ ८३ ॥ शुद्धिमाप्नोतिपुरुषःसंशुद्धंयस्यनोमनः ॥ क्रियानियमनार्थायपातकेभ्यः
प्रकीर्त्तिताः ॥ ८४ ॥ यस्मादत्याविलंदेहंनशीघ्रंशुद्ध्यतेकिल ॥ तेनलोकेषुमार्गोयंसत्पथस्यप्रवर्त्तकः ॥ ८५ ॥ वर्णाश्रमविभागोयंलोकाध्यक्षेणकेन
चित् ॥ निमित्तंमोहमाहात्म्यंनिह्नवोत्तमभागिनाम् ॥ ८६ ॥

धारण करता है ॥ ८० ॥ आत्माभी उसीप्रकार मनके द्वारा विषयकृत होनेपर तन्मय होजाता है, और मनसे भेदके आश्रय करनेपर कर्मोंके द्वारा उपचित होता है ॥ ८१ ॥ तब कर्मके वशसे क्रमानुसार उसको नरक और स्वर्ग भोगना होता है इसीकारणसे बुद्धिमान् मनुष्य पहले ज्ञानयोग और उपासनासे मनको शुद्ध करै ॥ ८२ ॥ उसके शुद्ध होतेही अन्तरात्मा (जीव) स्वयं निराकुल (स्वस्थ) होजाता है, और शारीरिकक्लेशों से उसे दग्ध होना नहीं पड़ता ॥ ८३ ॥ जिसका अंतःकरण शुद्ध है, वही मनुष्य शुद्धिको प्राप्त करता है, क्रियाओंको पातकोंसे नियमन (हटाने) के अर्थ शास्त्रने बोधन किया है ॥ ८४ ॥ जिस कारण अत्यन्त मलीन होनेपर शीघ्र शुद्ध नहीं होसकता, इस कारण मनुष्योंके परम्पराका यह वेदबोधित मार्गही सन्मार्गका प्रवर्त्तक है ॥ ८५ ॥ प्रचलित यह वर्णाश्रमका विभाग

किसी लोकाध्यक्षके द्वारा स्थापित हुआ है इससे मोहका माहात्म्य नहीं है ॥८६॥परन्तु तुम सब तो आश्रममें स्थित होकरभी क्रोध और कामसे ढकेहो, आश्रमही
ज्ञानियोंका गृह है और गृह अयोगियोंका आश्रम है ॥ ८७ ॥ कहां तो सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग और कहां स्त्रीरूपी भ्रमजाल, और कहां ऐसा भयंकर क्रोध
जिसके होनेसेही आत्माको नहीं जानते हैं ॥ ८८ ॥ क्रोधी पुरुष जो कुछ यज्ञ, पूजा, दान, तपस्या और होम इस लोकमें नित्य नियमसे करता है उसका परलोकमें
कुछभी फल प्राप्त नहीं होता, उस क्रोधी पुरुषका सभी निष्फल होजाता है ॥८९॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां ब्रह्मानुशासनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥
सनत्कुमारजी बोले कि, ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर सम्पूर्ण ऋषियोंने पुनर्वार जगत्के कल्याणके निमित्त पूछा॥१॥तब ब्रह्माजी बोले कि, हमने भगवान् शूलपाणि

भवंतःक्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमेस्थिताः ॥ ज्ञानिनामाश्रमोवेश्मवेश्माश्रममयोगिनाम् ॥ ८७ ॥ क्वचन्यस्तसमस्तेच्छाक्वचनारीमयोभ्रमः ॥ क्वक्रोधई
दृशोघोरोयेनात्मानंनजानथ ॥ ८८ ॥ यत्क्रोधनोयजतियच्चददातिनित्यंयद्वातपस्तपतियच्चजुहोतितस्य ॥ प्राप्नोतिनैवकिमपीहफलंहिलोकेमोघंफलं
भवंतितस्यहिकोपनस्य॥८९॥इतिश्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वाऋषयःसर्वएवते ॥
पुनरेवचपप्रच्छुर्जगतःश्रेयकारणम् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गच्छामःशरणंदेवंशूलपाणिंत्रिलोचनम् ॥ प्रसादाद्देवदेवस्यभविष्यथयथापुरा ॥ २ ॥
इत्युक्त्वाब्रह्मणासार्द्धंकैलासंगिरिमुत्तमम् ॥ ददृशुस्तेसमासीनमुमयासहितंहरम् ॥ ३ ॥ ततःस्तोतुंसमारब्धोब्रह्मालोकपितामहः ॥ देवाधिदेवंवरदंत्रैलो
क्यस्यशिवंप्रभुम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अनंतायनमस्तुभ्यंवरदायपिनाकिने ॥ महादेवायदेवायस्थाणवेपरमात्मने ॥५॥ नमोऽस्तुभुवनेशायतुभ्यं
तारकसर्वदा ॥ ज्ञानानांदायकोदेवस्त्वमेकःपुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ नमस्तेपद्मगर्भायहृत्पद्मशायिनेनमः ॥ घोरशातितपापायचंडक्रोधनमोस्तुते ॥ ७ ॥

त्रिलोचनकी शरण ग्रहण की, चलो तुमभी उन देवाधिदेव महादेवजीकी कृपासे पुनर्वार अपनी पहली अवस्थाको प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ पितामह ब्रह्माजीके इसप्रकार कहनेपर
वह सभी गिरिवर कैलासपर्वतको गये और जाकर देखा कि, भगवान् देवी उमाके सहित बैठे हैं॥ ३ ॥ यह देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओंके आदिदेव, सबके वरदाता
त्रिलोकीके प्रभु शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥४॥ तुम अनन्त हो तुमको नमस्कार है, तुम वर देनेहारे और पिनाक (धनुष) को धारण करतेहो तुमको नमस्कार है,
तुम स्थाणु परमात्मा देव और महादेवहो ॥५॥ तुम त्रिलोकीके ईश्वर और सर्वदा सबका उद्धार करतेहो, तुम सबके ज्ञानदाता, अद्वयस्वरूप, देव और पुरुषोत्तम हो
तुमको नमस्कार है ॥ ६ ॥ तुम पद्मगर्भहो तुमको नमस्कार है, तुमने हृत्पद्ममें शयन किया है तुमको नमस्कार है, तुम सम्पूर्ण भयंकर पापोंका नाश करतेहो और

तुम्हारा क्रोध अत्यन्त भयंकर है तुमको नमस्कार है ॥ ७ ॥ तुम देव और विश्व (संसार) के ईश्वर हो तुमको नमस्कार है, तुम शूरोंके नायक हो तुमको नमस्कार है; तुम शूलपाणि हो तुमको नमस्कार है; तुम विश्वभावनहो तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ ब्रह्मा और ऋषियोंकी ऐसी स्तुति करनेपर महादेवजी उनसे बोले कि, तुम सब जाओ अब पुनर्वार लिङ्ग प्रादुर्भूत होगा ॥ ९ ॥ तुम शीघ्रही हमारी आज्ञाका पालन करो लिङ्गकी प्रतिष्ठा करतेही मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ॥ १० ॥ जो भक्तिपूर्वक मेरे लिङ्गकी पूजा करेंगे उनको कभी कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होगी ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहूं लिङ्गकी पूजा करनेसे जानके किये हुएभी सब पाप दूर होजाँयगे इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२ ॥ तुम सबसे निपातित लिंग शीघ्र सन्निहिततीर्थमें प्रतिष्ठित होकर महासरका उद्धार कर विख्यात होगा ॥ १३ ॥ ऐसा होनेसे तुम इच्छानुसार सिद्धिको प्राप्त करसकोगे. स्थाणुनामक यह लिङ्ग देवताओंका पूजनीय होगा ॥ १४ ॥ स्थाणवीश्वरमें जाकर स्थाण्वीश्वरनामसे प्रसिद्ध होंगे, जो सर्वदा स्थाणुके ध्यान धारणामें प्रवृत्त होंगे वह सब पापोंसे छूट जाँयगे ॥ १५ ॥ स्थाणुका दर्शन करनेसे देह शुद्धि होकर मोक्ष प्राप्ति होगी. भगवान् शूलीके ऐसे कहनेपर ऋषियोंने ब्रह्माजीके साथ ॥ १६ ॥ लिङ्गको उस दारुवनसे लेजानेका उपाय किया, परन्तु देवगण ऋषियोंके साथ मिलकरभी उसको न चलासके ॥ १७ ॥ तब अत्यन्त परिश्रान्त (थकित) होकर ब्रह्माजीकी शरणागत हुए, ब्रह्माजी उन श्रमसे आतुर हुए देवताओंसे बोले ॥ १८ ॥ तुम्हारा अधिक परिश्रम करना व्यर्थ है. कारण कि, तुम लिंगके लेजानेको किसी प्रकारसेभी समर्थ नहींहो, देवाधिदेव महादेवजीनेही

नमस्तेदेवविश्वेशनमस्तेशूरनायक ॥ शूलपाणेनमस्तेऽस्तुनमस्तेविश्वभावन ॥ ८ ॥ एवंस्तुतोमहादेवोब्रह्मणाऋषिभिस्तदा ॥ उवाचतानाव्रजतलिंगं
वोभवितापुनः ॥ ९ ॥ क्रियतांमद्वचःशीघ्रंयेनमेप्रीतिरुत्तमा ॥ भविष्यतिप्रतिष्ठायांलिङ्गस्यात्रनसंशयः ॥ १० ॥ येलिंगंपूजयिष्यंतिमामकंभ
क्तिमाश्रिताः ॥ नतेषांदुर्लभंकिंचिद्भविष्यतिकदाचन ॥ ११ ॥ सर्वेषामपिपापानांकृतानामपिजानता ॥ शुद्ध्यतेलिंगपूजायानात्रकार्याविचारणा ॥
॥१२॥ युष्माभिःपातितंलिंगंतारयित्वामहत्सरः ॥ सन्निहत्यांतुविख्यातंतस्मिञ्छीघ्रंप्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥ यथाभिलषितंकामंततःप्राप्स्यथब्राह्मणाः ॥
स्थाणुनाम्नाहिलोकेषुपूजनीयोदिवौकसाम् ॥१४॥ स्थाण्वीश्वरेस्थितोयस्मात्ततःस्थाण्वीश्वरःस्मृतः ॥ येस्मरंतिसदास्थाणुंतेमुक्ताःसर्वकिल्बिषैः॥१५॥
शुद्धदेहाभविष्यंतिदर्शनान्मोक्षगामिनः ॥ इत्येवमुक्तादेवेनऋषयोब्रह्मणासह ॥ १६ ॥ तस्माद्दारुवनाल्लिंगंनेतुंसमुपचक्रमुः ॥ अशक्तास्तंचालयितुं
तेदेवाऋषिभिःसह ॥ १७ ॥ श्रमेणमहतायुक्ताब्रह्माणंशरणंययुः ॥ तेषांश्रमाभिपन्नानामिदंब्रह्माब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥ किंवाश्रमेणमहतानयूयंवहनक्षमाः ॥
स्वेच्छयापातितंलिंगंदेवदेवेनशूलिना ॥ १९ ॥

अपनी इच्छासे लिंगको पतित किया (गिराया) है ॥ १९ ॥ इस कारण हे देवताओ ! तुम सभी उनकी शरण जाओ महादेवजी प्रसन्न होतेही स्वयं लिंगको चलावेंगे ॥ २० ॥ ऋषि और देवगण ऐसे कहे जानेपर ब्रह्माजीके साथ महादेवजीके दर्शनकी इच्छासे कैलासपर्वतको गये ॥ २१ ॥ परन्तु वहाँ महादेवजीको न देखकर सभी चिन्तित होकर ब्रह्माजीसे बोले कि, वह भगवान् शूली कहाँ है ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजीने बहुत समयतक विचार करके देखा कि, मानस सनकादि मुनियोंसे स्तुत देवदेव महेश्वर हस्तीरूपसे विराजमान हैं ॥ २३ ॥ तब ऋषि और देवता यह सब ब्रह्माजीके साथ मिलकर परम पवित्र महासरोवरको गये जहाँ देवाधिदेव महेश्वर स्वयं विराजमान थे ॥ २४ ॥ परन्तु उस स्थानपरभी इनको न देखकर इधर उधर खोज करने लगे, चिन्तासे आक्रान्त हुये हृदयसे ब्रह्माजीके सहित खोजनेके प्रसंगमें ॥ २५ ॥ कमंडलु हाथमें ली हुई परम प्रीतियुक्ता देवीका दर्शन किया, इन्हें देखकर देवतालोग प्रसन्नहो यह वचन कहनेलगे ॥ २६ ॥ हेदेवि ! हेमातः ! कहाँ जानेसे सर्वत्र समदर्शी सर्वदाता देवाधिदेव महादेवजीका दर्शन करसकेंगे, हम अत्यन्त क्लेशित होकर उनकी खोज कररहे हैं ॥ २७ ॥ तब देवी दयालु होकर उनसे बोलीं कि, हे महाभागो ! तुम आज इसी स्थानमें उन महेश्वरको देखोगे ॥ २८ ॥ हे देवताओ ! तुम सब अमृत पान करो तब तुम महेश्वरको जानोगे, भवानीके यह वचन सुन कर ॥ २९ ॥ देवताओंने सुखसे उपविष्टहो (बैठ) कर उस शुद्ध अमृतको पान किया, इसके उपरान्त जब उनका परिश्रम भली प्रकारसे दूर होगया तब परमेश्वरीसे पूछनेलगे ॥ ३० ॥ कि, वह महादेव हस्तिरूपको धारणकर इस स्थानपर कहाँ विराजमान हुए हैं, तब देवीजीने सरके बीचमें विराजमान महादेवजीको

तस्मात्तमेवशरणंयास्मामःसहिताःसुराः ॥ प्रसन्नश्चमहादेवःस्वयमेवसनेष्यति ॥२०॥ इत्येवमुक्ताऋषयोदेवाश्चब्रह्मणासह ॥ कैलासंगिरिमासाद्यरुद्रदर्श
नकांक्षिणः ॥ २१ ॥ नचपश्यंतितेदेवंततश्चिंतासमन्विताः ॥ ब्रह्माणमूचुर्मुनयःक्कसदेवोमहेश्वरः ॥ २२ ॥ ततोब्रह्माचिरंध्यात्वादेवदेवंमहेश्वरम् ॥
हस्तिरूपेणतिष्ठंतंमुनिभिर्मानसःस्तुतम् ॥ २३ ॥ अथतेऋषयःसर्वेदेवाश्चब्रह्मणासह ॥ गतामहत्सरःपुण्यंयत्रदेवःस्वयंस्थितः ॥ २४ ॥ नचपश्यंति
तेदेवमन्विषंतस्ततस्ततः ॥ ततश्चिंतान्वितादेवाब्रह्मणासहितास्तथा ॥२५॥ पश्यंतिदेवींसुप्रीतांकमंडलुविभूषिताम् ॥ प्रीयमाणास्तदादेवीमिदंवचनमब्रु
वन् ॥ २६ ॥ क्कदेविमातर्देवेशोदृश्यतेसर्वदासमः ॥ श्रमेणमहतायुक्ताअन्विषंतोमहेश्वरम् ॥ २७ ॥ ततस्तुकृपयाविष्टादेवीवचनमब्रवीत् ॥ अत्रै
वाद्यमहाभागास्तंद्रक्ष्यथमहेश्वरम् ॥ २८ ॥ पीयताममृतंदेवास्ततोज्ञास्यथशंकरम् ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंभवान्याससमुदाहृतम् ॥ २९ ॥ सुखोपविष्टास्ते
देवाःपपुस्तदमृतंशुचि ॥ अनंतरंसुखासीनाःपप्रच्छुःपरमेश्वरीम् ॥ ३० ॥ क्कसदेवइहायातोहस्तिरूपधरःस्थितः ॥ दर्शितश्चतदादेव्यासरो
मध्येव्यवस्थितः ॥ ३१ ॥

इन्हें लेजाकर दिखादिया ॥ ३१ ॥ इनको देखकर सम्पूर्ण देवता हर्षित होकर पितामह ब्रह्माजीको पुरस्कृत (आगे) कर कहनेलगे ॥ ३२ ॥ कि, हे महादेव ! आपने जो लिंग परित्याग किया है उसे और कोईभी लानेको समर्थ नहीं होता ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा आदिक देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् हर ऋषियोंके साथ दारुवनके आश्रमको गये ॥ ३४ ॥ वहाँ जाकर इन्होंने हस्तीरूप धारण कर हाथोंसे अनायासही उस परमेश्वररूपी लिंगको ग्रहण किया ॥ ३५ ॥ फिर उठा कर उसे महर्षियोंके द्वारा स्तूयमान (स्तुतिको प्राप्त) हुए सरोवरके पश्चिमपार्श्व (बगल) में स्थापित किया ॥ ३६ ॥ तब देवता और तपोधन ऋषि अपनेको सुफल देखकर महादेवजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ३७ ॥ हे परमात्मन् ! हे अनन्तयोने ! हे लोकसाक्षिन् ! हे परमेष्ठिन् ! हे भगवन् ! हे सर्वज्ञ ! हे क्षेत्रज्ञ ! और

दृष्ट्वादेवंहर्षयुक्ताःसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वाइदंवचनमब्रुवन् ॥ ३२ ॥ त्वयात्यक्तंमहादेवलिंगंत्रैलोक्यवंदितम् ॥ तस्यचानयनेनान्यःसमर्थः स्यान्महेश्वर ॥ ३३ ॥ इत्येवमुक्तोभगवान्देवोब्रह्मादिभिर्हरः ॥ जगामऋषिभिःसार्द्धंदेवदारुवनाश्रयम् ॥ ३४ ॥ तत्रगत्वामहादेवोहस्तिरूपधरोहरः ॥ करेणजग्राहततोलीलयापरमेश्वरम् ॥ ३५ ॥ तमादायमहादेवःस्तूयमानोमहर्षिभिः ॥ निवेशयामासतदासरःपार्श्वेतुपश्चिमे ॥ ३६ ॥ ततोदेवाःसर्व एवऋषयश्चतपोधनाः ॥ आत्मानंसफलंदृष्ट्वास्तोत्रंचक्रुर्महेश्वरे ॥ ३७ ॥ नमस्ते परमात्मन् अनंतयोने लोकसाक्षिन् परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ ज्ञानज्ञेय सर्वेश्वर महाविरंचे महाविभूते महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास मनोनिवास आदिदेव महादेव सदाशिव ईशान दुर्विज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर परमेश्वर महायोगेश्वर त्र्यंबक महायोगिन् परब्रह्म परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ॐकार वषट्कार स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण सर्वगत सर्वदर्शन सर्वशक्त सर्वदेव अज सहस्रार्चिः सुधामन् हरधाम वंशवर्त्त संवर्त्त संकर्षण वडवानल आग्नीषोमात्मक पवित्र महापवित्र महामेघ महाका महन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर महाकामुक महाहंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित हिरण्यवाह हिरण्यरेतः हिरण्यनाभ हिरण्याग्रकेश

ज्ञानज्ञेय ! हे सर्वेश्वर ! हे महाविरंचे ! महाविभूते ! हे महाक्षेत्रज्ञ ! और हे महापुरुष ! हे सर्वभूतावास ! हे मनोनिवास ! हे आदिदेव ! और हे महादेव ! हे सदाशिव ! हे ईशान ! हे दुर्विज्ञेय ! हे दुराराध्य ! हे महाभूतेश्वर ! हे परमेश्वर ! हे महायोगेश्वर ! हे त्र्यम्बक ! हे महायोगिन् ! हे परब्रह्म और हे परमज्योतिः ! हे ब्रह्म विदुत्तम ! हे ओंकार ! वषट्कार ! स्वाहाकार ! और स्वधाकार ! हे परमकारण ! सर्वगत ! और सर्वदर्शन ! हे सर्वशक्त ! और सर्वदेव ! हे अज ! हे सहस्रार्चि ! हे सुधामन् ! और हरधाम ! हेवंशवर्त्त ! और संवर्त्त ! हे संकर्षण ! वड़वानल ! और अग्नीषोमात्मक ! हे पवित्र ! और महापवित्र ! हे महामेव ! और महाकामहन् ! हे हंस ! और परमहंस ! हेमहाराजिक ! महेश्वर ! महाकामुक ! और महाहंस ! हेभवक्षयकर ! हेसुरसिद्धार्चित ! हिरण्यबाहु ! हिरण्यरेतः ! हिरण्यनाभ और हिरण्याग्रकेश !

हे मुञ्जकेशिन् ! हे सर्वलोकवरप्रद ! और सर्वानुग्रहकर ! हे कमलेशय ! और हृदयेश ! हे ज्ञानोदधे ! हे शम्भो ! विभो ! महायज्ञ ! महायाज्ञिक ! सर्वयज्ञमय ! और सर्वयज्ञसम्भूत ! हे निराश्रय ! हे समुद्रेश ! हे अत्रिसम्भूत ! हे भक्तानुकम्पक ! हे अभग्नयोग ! हे योगधर ! हे वासुकि ! महाविद्योतितविग्रह ! हे हरितनयन ! त्रिलोचन ! जटाधर ! नीलकंठ ! चंद्रार्धधर ! उमाशरीरार्द्धधर ! शूलधर ! पिनाकधर ! खड्गचर्मधर ! और गजचर्मधर ! हे दुस्तर संसारमहासंहारकर ! हे भक्तवत्सल ! तुम्हैं नमस्कार है तुम प्रसन्न हो ॥ ३८ ॥ ब्रह्ममुख्य देवगण और स्वयं पितामहकी भक्तिके साथ इस प्रकारकी स्तुति करनेपर महादेवजी उसी समय हस्तिरूपको छोड़कर उस लिंगमें प्रवेश कर गये ॥ ३९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां हरस्तुतिर्नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

मुंजकेशिन् सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर कमलेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शंभो च विभो महायज्ञ महायाज्ञिक सर्वयज्ञमय सर्वयज्ञसंस्तुत निराश्रय समुद्रेश अत्रिसंभूत भक्तानुकंपक अभग्नयोग योगधर वासुकिमहाहिविद्योतितविग्रह हरितनयन त्रिलोचन जटाधर नीलकंठ चंद्रार्धधर उमाशरीरार्धधर शूलधर पिनाकधर खड्गचर्मधर गजचर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर प्रसीद भक्तजनवत्सल ॥ ३८ ॥ एवंस्तुतोदेवगणैःसुभक्त्यासब्रह्ममुख्यैश्च पितामहेन ॥ त्यक्त्वातदाहस्तिरूपंमहात्मालिंगंतदासंनिधानंचकार ॥ ३९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ अथोवाचमहादेवोदेवान्ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ऋषीणांचैवप्रत्यक्षंतीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥ एतत्सन्निहतंप्रोक्तंसरःपुण्यतमंमहत् ॥ मयोपवेशितंयस्मात्तस्मान्मुक्तिप्रदायकम् ॥ २ ॥ इहयेपुरुषाःकेचिद्ब्राह्मणाःक्षत्रियाविशः ॥ लिंगस्यदर्शनादेवपश्यंतिपरमंपदम् ॥ ३ ॥ अहन्यहनितीर्थानिआसमुद्रात्सरांसिच ॥ स्थाणुतीर्थंसमेष्यंतिमध्यंप्राप्तेदिवाकरे ॥ ४ ॥ स्तोत्रेणानेनसततंयेमांस्तोष्यंतिभक्तितः ॥ तस्याहंसुलभोनित्यं भविष्यामिनसंशयः ॥ ५ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि, इसके उपरान्त पितामह ब्रह्मादिक देवता और ऋषियोंके निकट महादेवजी उस परमोत्तम तीर्थका माहात्म्य कहने लगे ॥ १ ॥ यह सरोवर अत्यन्तही पुण्यदायक "सन्निहित" कहकर विख्यात हुआ है, जिस कारणसे मैं ने उसे प्रतिष्ठापित किया है इसी निमित्त यह मुक्तिफलका देनेवाला होगा ॥ २ ॥ इस स्थानपर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो कोई मनुष्य आकर लिंगका दर्शन करैगा वह इस लिंगके दर्शन मात्रहीसे परमपदको प्राप्त होगा ॥ ३ ॥ प्रतिदिन दिवाकरके मध्यभागमें आते समय यहांसे समुद्रपर्यन्त जो तीर्थ वा पुण्यसरोवर हैं वह सभी स्थाणुतीर्थमें सम्प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥ और जो लोग भक्तिके साथ ऊपर लिखे

हुए स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेंगे, मैं उन्हें सर्वदा सुलभ होजाऊँगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५ ॥ यह कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्धान होगये तब देवता और ऋषि यहभी अपने २ स्थानोंको चले गये ॥ ६ ॥ उस दिनसे स्थाणुलिंगके दर्शनके माहात्म्यसे सभी लोक स्वर्गको प्राप्त करने (पहुँचने) लगे. इससे स्वर्गलोक मनुष्योंसे एक साथही भरगया ॥ ७ ॥ यह देखकर इन्द्रादिक सभी देवता ब्रह्माजीकी शरण गये, उन्हें देख ब्रह्माजी बोले कि, तुम लोग किस निमित्त यहां आयेहो ॥ ८ ॥ तब सभी देवता यह वचन कहनेलगे कि, हमें मनुष्योंसे तीव्र भय उपस्थित हुआ है, उससे आप हम सबकी रक्षा करो ॥ ९ ॥ पितामह ब्रह्माजी देवनायक इन्द्रके उद्देश करके उन सब देवताओंसे बोले कि, तुम सब एक साथ मिलकर पांशु (धूली) से उस सरको पूर्ण करो, हे इन्द्र ! तुम इसकी चेष्टा करो ॥ १० ॥ तब स्वयं भगवान् पाकशासन (इन्द्र) धूलिकी वर्षा करनेलगे, इस प्रकारसे इन्द्र इत्यादि देवताओंने एक सप्ताहमें धूलि वर्षाकर सरको परिपूर्ण किया॥

इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रोह्यंतर्धानंगतःप्रभुः ॥ देवाश्चऋषयःसर्वेस्वानिस्थानानिभेजिरे ॥६॥ ततोनिरंतरंस्वर्गंमानुषैर्मिश्रितंकृतम् ॥ स्थाणुलिंगस्यमाहात्म्य
दर्शनात्स्वर्गमाप्नुयुः ॥ ७ ॥ ततोदेवगणाःसर्वेब्रह्माणंशरणंययुः ॥ तानुवाचतदाब्रह्माकिमर्थमिहचागताः ॥ ८ ॥ ततोदेवाःसर्वएवइदंवचनमब्रुवन् ॥
मानुषेभ्योभयंतीव्रंरक्षास्माकंपितामह ॥ ९ ॥ तानुवाचतदाब्रह्मादेवंत्रिदशनायकम् ॥ पांशुनापूर्यतांशीघ्रंसार्द्धंशक्रेहितंकुरु ॥ १० ॥ ततोववर्षभगवा
न्पांशुनापाकशासनः ॥ सप्ताहंपूरयामासुःसेंद्रादेवास्तदास्मृताः ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वापांशुवर्षंचदेवदेवोमहेश्वरः ॥ करेणधारयामासलिंगंतीर्थवटंतथा ॥१२॥
तस्मात्पुण्यतमंतीर्थंपाद्यंयत्रोदकंस्थितम् ॥ तस्मिन्स्नातःसर्वतीर्थेस्नातोभवतिमानवः ॥ १३ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धंवटलिंगस्यचांतरे ॥ तस्यप्रीताश्चपितरो
दास्यंतिभुविदुर्लभम् ॥ १४ ॥ पूरितंचततोदृष्ट्वाऋषयःसर्वएवते ॥ पांशुनासर्वगात्राणिस्पृशंतिश्रद्धयान्विताः ॥ १५ ॥ तेपिनिर्धूतपापाश्चपांशुनामुनयो
गताः ॥ पूज्यमानाःसुरगणैःप्रयाताब्रह्मणःपदम् ॥ १६ ॥ येतुसिद्धामहात्मानस्तेलिंगंपूजयंतिच ॥ व्रजंतिपरमांसिद्धिंपुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ १७ ॥

॥ ११ ॥ देवाधिदेव महेश्वर (महादेव) ने उस धूलिकी वृष्टिको देखकर हाथके ऊपर लिंग और तीर्थवटको उठालिया ॥ १२ ॥ इसी कारणसे यह तीर्थ पुण्यतम हुआ है, इस स्थानपर पादोदकतीर्थ प्रतिष्ठित है, जो इस तीर्थमें स्नान करता है मानों उसने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करलिया ॥ १३ ॥ जो उस वट और लिंगके बीचमें श्राद्ध करता है, पितर उसके ऊपर प्रसन्न होकर उसको पृथ्वीमें दुर्लभ पदार्थ देते हैं ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण ऋषि उसे परिपूर्ण देखकर श्रद्धासहित धूलिको समस्त शरीरमें लेपनेलगे ॥ १५ ॥ उस धूलिके लेपद्वारा वहभी सम्पूर्णपापोंसे मुक्त होकर स्वर्गमें जाय देवताओंसे पूजितहो ब्रह्माजीके लोकमें प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जो महानुभाव सिद्धपुरुष होते हैं वही इस लिंगकी पूजा करते हैं और परमसिद्धिको प्राप्त होतेहैं, जिससे उनका पुनर्वार जन्म लेना दुर्लभ होगया है ॥ १७ ॥

तब ऐसा जानकर पितामह ब्रह्माजीने लिंगको नीचे स्थापित करके उसके ऊपर शैलमय (पत्थरके) लिंगको स्थापित किया॥ १८॥इसके उपरान्त बहुतकाल बीतनेपर
उन नीचे स्थित तेजोमयलिंगके तेजसे वह शैलमयलिंग रंजित (तत्समानप्रभावशाली)होगया; सम्पूर्ण मनुष्य उसे स्पर्श करतेही सिद्ध होकर परमपदको प्राप्त होनेलगे ॥ १९ ॥
हे द्विजसत्तमो ! तब देवताओंने पुनर्वार ब्रह्माजीसे जाकर कहा कि, सम्पूर्णलोक लिंगका दर्शन करतेही परमसिद्धिको प्राप्त करते हैं॥ २०॥भगवान् ब्रह्माजीने यह सुनकर
देवताओंके हितकी इच्छासे तल ऊपर और सात लिंगको स्थापित किया ॥ २१ ॥ तबसे सिद्धाश्रमपरायण मुक्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य यत्नके साथ उस धूलिको
सेवनकर परमपदमें स्थित (मुक्त) होनेलगे ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्रमें वायुसे उड़ाई हुई धूलियेंभी महा दुष्कर्म करनेवाले मनुष्योंकोभी स्पर्शमात्रहीसे परमपदको प्राप्त

एवंज्ञात्वातदाब्रह्मालिंगंशैलमयंतदा ॥ आद्यंलिंगंतदास्थाप्यतस्योपरिन्यधीयत ॥ १८ ॥ ततःकालेनमहतातेजसातस्यरंजितम् ॥ तस्यापिस्पर्शना
त्सिद्धाःपरंपदमवाप्नुयुः ॥ १९ ॥ ततोदेवैःपुनर्ब्रह्माविज्ञप्तोद्विजसत्तमाः ॥ एतेयांतिपरांसिद्धिंलिंगसंदर्शनात्पराम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्ब्रह्मादेवानांहि
तकाम्यया ॥ उपर्युपरिलिंगानिसप्ततत्रचकारह ॥ २१ ॥ ततोयेमुक्तिकामाश्चसिद्धाश्रमपरायणाः ॥ सेव्यपांशुंप्रयत्नेनप्रयाताःपरमंपदम् ॥ २२ ॥
पांशवोपिकुरुक्षेत्रेवायुनासमुदीरिताः ॥ महादुष्कृतकर्माणःप्रापयन्तिपरंपदम् ॥ २३ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिस्त्रियावापुरुषस्यवा ॥ नश्यतेदुष्कृतंसर्वं
स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥ २४ ॥ लिंगस्यदर्शनान्मुक्तिःस्पर्शनाच्चवटस्यच ॥ तत्सन्निधौजलेस्नात्वाप्राप्नोत्यभिमतंफलम् ॥ २५ ॥ पितॄणांतर्पणं
यस्तुजलेतस्मिन्करिष्यति ॥ बिंदौबिंदौतुतोयस्यह्यनंतफलभाग्भवेत् ॥ २६ ॥ यस्तुकृष्णतिलैःश्राद्धंस्थाणोर्लिंगस्यपश्चिमे ॥ तर्पयेच्छ्रद्धयायुक्तः
प्रीणयेत्सयुगत्रयम् ॥ २७॥ यावन्मन्वंतरंप्रोक्तंयावल्लिंगस्यचस्थितिः ॥ तावत्प्रीताश्चपितरःपिबंतेजलमुत्तमम् ॥ २८ ॥ कृतेयुगेसन्निहत्यांत्रेतायांवायुसं
ज्ञितम् ॥ कलिद्वापरयोर्मध्येकूपेरुद्रह्रदंस्मृम् ॥ २९ ॥

कराती है ॥ २३ ॥ स्त्री हो, अथवा पुरुषहो, अज्ञान वा ज्ञानसे किये हुए उनके सभी पाप स्थाणुतीर्थके प्रभावसे नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥ लिंगका दर्शन करनेसे मुक्ति
होती है, उसी प्रकारसे वटका स्पर्श करनेसेभी मुक्ति प्राप्त होती है, और उसके निकटके जलमें स्नान करनेसे इच्छानुसार फल प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य उस
जलसे पितरोंका तर्पण करता है वह उस जलकी बूँद २ से अनन्त फलका भागी होता है॥ २६ ॥ जो मनुष्य स्थाणुलिंगके पश्चिमओर स्थित होकर श्राद्ध करे
समय काले तिलोंसे तर्पण करता है, वह तीनों युगोंतक अपने पितरोंको तृप्त कराता है ॥२७॥ जबतक एक मन्वन्तर रहता है और जबतक लिंग विराजमान है तब
तक पितर प्रसन्न होकर उस तर्पणसे दियेहुए पवित्र जलको पान करते हैं॥ २८॥ सतयुगमें, सन्निहतमें, त्रेतामें, वायुसंज्ञितमें और कलिद्वापरके बीचमें, कूपमें रुद्रह्रद

विराजमान रहता है ॥२९॥ उत्तम मनुष्य चैत्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको रुद्रकर तीर्थमें स्नान करनेसे परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ जो मनुष्य स्थाणुवटमें निवास कर रात्रिमें परमेश्वर (शिव) का ध्यान करता है, वह स्थाणु (शिवजी) के प्रसादसे इच्छानुसार सम्पूर्णफलोंको पाताहै ॥ ३१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां स्थाणुवटमाहात्म्यवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि, हे द्विजोत्तमो ! स्थाणुवटके उत्तरमें शुक्रतीर्थ है, पूर्वमें व्योमतीर्थ है ॥ १ ॥ दक्षिणमें दक्षतीर्थ, और पश्चिममें नकुलीशगण प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ चारों ओर यह सब पुण्यवान् तीर्थ हैं, और बीचमें स्थाणु विराजमान है उसका दर्शन करतेही परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ अष्टमी और चतुर्दशीको इन सब तीर्थोंमें परिक्रमा करै, उमा लिंगरूपसे उसमें विराजमान हो महादेवजीका पार्श्व (वामभाग) कभी त्याग नहीं करतीं ॥ ४ ॥ उनके दर्शनसेही मनुष्य सिद्धिको प्राप्त करते हैं, वटके उत्तरपार्श्वमें महात्मा तक्षकजीके द्वारा ॥ ५ ॥ सब कामनाओंका देनेवाला महालिंग प्रतिष्ठित हुआ है, इसके पूर्वभागमें विश्वकर्मासे बनायागया ॥ ६ ॥ पश्चिम ओर मुखवाला महालिंग है, उसका दर्शन करनेसे मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है, देवी सरस्वतीजी लिंगरूपसे उसीमें विराजमान हैं ॥ ७ ॥ यत्नसहित उनका दर्शन और प्रणाम करनेसे बुद्धि और मेधा (धारणाशक्ति) को प्राप्त करता है, वटके पार्श्वमें जो लिंग है, स्वयं ब्रह्माजीने उसकी प्रतिष्ठा की है ॥ ८ ॥ उन भगवान् वटेश्वरका दर्शन करनेसे परम पदको प्राप्त होजाता है. इसके उपरान्त स्थाणुवटका दर्शन कर जो प्रदक्षिणा करता है ॥ ९ ॥ तो मानों उसने सात द्वीपोंकी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करली ।

चैत्रस्यकृष्णपक्षेचचतुर्दश्यांनरोत्तमः ॥ स्नात्वारुद्रकरेतीर्थेपरंपदमवाप्नुयात् ॥ ३० ॥ वटेयस्तुस्थितोरात्रौध्यायतेपरमेश्वरम् ॥ स्थाणोर्वटप्रसादेनमनसाचिंतितंफलम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्येपंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ स्थाणोर्वटस्योत्तरतःशुक्रतीर्थंप्रकीर्त्तितम् ॥ स्थाणोर्वटस्यपूर्वेणव्योमतीर्थंद्विजोत्तमाः ॥१॥ स्थाणोर्वटंदक्षिणतोदक्षतीर्थमुदाहृतम् ॥ स्थाणोःपश्चिमदिग्भागेनकुलस्यगणःस्मृतः ॥ २ ॥ एतानिपुण्यतीर्थानिमध्येस्थाणुरितिस्मृतः ॥ तस्यदर्शनमात्रेणप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ ३ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यांयस्त्वेतानिपरिक्रमेत् ॥ उमाचलिंगरूपेणहरपार्श्वंनमुंचति ॥ ४ ॥ तस्यादर्शनमात्रेणसिद्धिंप्राप्नोतिमानवः ॥ वटस्यउत्तरेपार्श्वेतक्षकेणमहात्मना ॥५॥ प्रतिष्ठितंमहालिंगंसर्वकामप्रदायकम् ॥ वटस्यपूर्वदिग्भागेविश्वकर्मकृतंमहत् ॥६॥ लिंगंप्रत्यङ्मुखंदृष्ट्वासिद्धिमाप्नोतिमानवः ॥ तत्रैवलिंगरूपेणस्थितादेवीसरस्वती ॥ ७ ॥ प्रणम्यतांप्रयत्नेनबुद्धिमेधांचविंदति ॥ वटपार्श्वेस्थितंलिंगंब्रह्मणातत्प्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥ दृष्ट्वावटेश्वरंदेवंप्रयातिपरमंपदम् ॥ ततःस्थाणुवटंदृष्ट्वाकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणीकृतातेनसप्तद्वीपावसुंधरा ॥ स्थाणोःपश्चिमदिग्भागेनकुलीशोगणःस्मृतः ॥ १० ॥

स्थाणुके पश्चिमभागमें नकुलीशगण प्रतिष्ठित हैं ॥ १० ॥ यत्नसहित उनकी पूजा करनेपर सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं, उसके दक्षिणभागमें रुद्रकर तीर्थ प्रतिष्ठितहै ॥ ११ ॥ उस रुद्राकरतीर्थमें स्नानकरनेवाला मनुष्य सर्वतीर्थोंमें स्नानकरनेके फलको प्राप्त होताहै उस रुद्राकरतीर्थके उत्तरकी ओर महात्मा रावणने ॥ १२ ॥ गोकर्णनामका महालिंग स्थापन कियाहै, आषाढमासकी जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी होगी ॥ १३ ॥ उसदिन स्नानकरके उपोषण करनेवाला जो पुरुषहै वह सर्व पातकोंसे मुक्त होताहै. वहांही मेघनादने सिद्धिदायक लिंग स्थापन कियाहै ॥ १४ ॥ उसका यत्नपूर्वक पूजन करनेसे मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त होतीहै. उसके पश्चिमभागमें कुंभकर्णने लिंगस्थापन करके पूजन कियाहै ॥ १५ ॥ ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीके दिन जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक उपवास करके इस लिंगकी उपासना करेगा उसका पुण्यफल सुनो ॥ १६ ॥

तमभ्यर्च्यप्रयत्नेनसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ तस्यदक्षिणदिग्भागेतीर्थंरुद्राकरंस्मृतम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्स्नातःसर्वतीर्थैस्नातोभवतिमानवः ॥ तस्यचोत्तरदि
ग्भागेरावणेनमहात्मना ॥ १२ ॥ प्रतिष्ठितंमहालिंगंगोकर्णनामनामतः ॥ आषाढमासेयाकृष्णाभविष्यतिचतुर्दशी ॥ १३ ॥ तत्रस्नात्वासोपवासोमुक्तो
भवतिकिल्बिषैः ॥ तत्रैवसिद्धिदंलिंगंमेघनादेनस्थापितम् ॥ १४ ॥ संपूजयित्वायत्नेनलभतेमहतांश्रियम् ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागेकुंभकर्णेनपूजितम् ॥
॥ १५ ॥ ज्येष्ठमासिसितेपक्षेअष्टम्यांश्रद्धयानरः ॥ सोपवासोवसेद्यस्तुतस्यपुण्यफलंशृणु ॥ १६ ॥ पदेपदेयज्ञफलंसप्राप्नोतिनसंशयः ॥ एतानिमुनि
भिःसाध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ॥ १७ ॥ मरुद्भिर्वह्निभिश्चैवसेवितानिप्रयत्नतः ॥ अन्येपिप्राणिनःकेचित्प्रविष्टाःस्थाणुमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तेसर्वेपाप
निर्मुक्ताःप्रयांतिपरमंपदम् ॥ अस्तियत्संनिधौलिंगंदेवदेवस्यशूलिनः ॥ १९ ॥ उमासालिंगरूपेणहरपार्श्वंनमुंचति ॥ यश्चपश्यतिगोकर्णंतस्यपुण्यफलं
लभेत् ॥ २० ॥ कामतोऽकामतोवापियत्पापंतेनसंचितम् ॥ तस्माद्विमुच्यतेपापात्पूजयित्वाहरंशुचिः ॥ २१ ॥ कौमारेब्रह्मचर्येणयत्पुण्यंप्राप्यतेनरैः ॥
तत्पुण्यंशंकरंतस्यामष्टम्यांयोऽर्चयेच्छिवम् ॥ २२ ॥

उसको पदपदमें यज्ञका फल प्राप्त होताहै इसमें संशय नहींहै, ये सब लिंग मुनिजन, साध्य, आदित्य और वसुगण ॥ १७ ॥ मरुद्गण और अग्नि, इन्होंने प्रयत्नसे सेवन कियेहैं. और अन्यभी कितनेक प्राणी इस उत्तम स्थाणु (अचलतीर्थ) में प्रविष्ट होते हैं ॥ १८ ॥ वे सब पापसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त होतेहैं. जो अपने समीप देवाधिदेव महादेवका लिंग है ॥ १९ ॥ उस लिंगरूपसे रहनेवाले महादेवके समीप उमा भगवती निरंतर रहतीहै. इसके देखनेसे मनुष्यको गोकर्णलिंगके देखनेका फल प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ जो मनुष्य पवित्र (सिद्धांतःकरण) होकर हर महादेवका पूजन करताहै. उसने जो कोई पाप कामनासे कियाहो अथवा कामनारहित होकर किया हो तौभी उस पापसे मुक्त होताहै ॥ २१ ॥ कौमारअवस्थामें ब्रह्मचर्यके पालनकरनेसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होताहै, वही फल उस अष्टमीमें जो

शंकरका आराधन करताहै उसको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ यदि सुंदररूप, सौभाग्य, धन, संपत्ति इनकी इच्छा होवे तौ कुमारेश्वरके माहात्म्यसे वह सब कामना सिद्ध होतीहैं. इसमें संदेह नहीं॥ २३ ॥उसकी उत्तरदिशामें विभीषणने लिंगपूजा कीहै. उसकरके वह अजर और अमर हुआ है॥ २४ ॥ आषाढमासके शुक्लपक्षकी जो अष्टमी तिथिहै, उसमें उपवासकरके लिंगपूजन करनेसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २५॥ हेद्विजश्रेष्ठ ! उसकी पूर्वदिशामें पूर्णलिंग स्थितहै. उसका यत्नपूर्वक पूजनकरनेसे सर्वमनोरथोंको प्राप्त होताहै॥ २६ ॥वहांपर पहले दूषण और त्रिशिरा इन दोनोंने महेश्वर भगवान्का पूजन किया था, उसकरके उनको आनन्द पूर्वक इच्छित मनोरथ प्राप्त हुए॥ २७॥ जो मनुष्य चैत्रमासके शुक्लपक्षमें महादेवजीकी पूजा करता है, महादेव और महादेवी यह दोनोंही उसे मनवांछित फल देते हैं ॥ २८ ॥ स्थाणुवटके

यदीच्छेत्परमंरूपंसौभाग्यंधनसंपदः ॥ कुमारेश्वरमाहात्म्यात्सिद्ध्यतेनात्रसंशयः ॥ २२ ॥ तस्यचोत्तरदिग्भागेलिंगंपूज्यविभीषणः ॥ अजरश्चामरश्चैवकल्पयित्वाबभूवह ॥ २४ ॥ आषाढस्यतुमासस्यशुक्लायाचाष्टमीभवेत् ॥ तस्यांपूज्यःसोपवासश्चामृतत्वमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ पूर्वेंपूर्णेंरितंलिङ्गंतस्मिन्स्थानेद्विजोत्तम ॥ तंपूजयित्वायत्नेनसर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २६ ॥ दूषणस्त्रिशिराश्चैवतत्रपूज्यमहेश्वरम् ॥ यथाभिलषितान्कामानापतुस्तौमुदान्वितौ ॥ २७ ॥ चैत्रमासेसितेपक्षेयोनरस्तत्रपूजयेत् ॥ तस्यतौवरदौदेवौप्रयच्छेतेऽभिवांछितम् ॥ २८ ॥ स्थाणोर्वटस्यपूर्वेणहस्तिपादेश्वरःशिवः ॥ तंदृष्ट्वामुच्यतेपापैरन्यजन्मनिसंभवैः ॥ २९ ॥ तस्यदक्षिणतोलिंगंहारीतस्यऋषेःस्थितम् ॥ यत्प्रणम्यप्रयत्नेनसिद्धिंप्राप्नोतिमानवः ॥ ३० ॥ तस्यदक्षिणपार्श्वेतुवापीतस्यमहात्मनः ॥ लिङ्गंत्रैलोक्यविख्यातंसर्वपापहरंशिवम् ॥ ३१ ॥ कंकालरूपिणाचापिरुद्रेणसुमहात्मना ॥ प्रतिष्ठितंमहालिंगंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ भुक्तिदंमुक्तिदंप्रोक्तंसर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ लिंगस्यदर्शनादेवह्यग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागेलिंगंसिद्धंप्रतिष्ठितम् ॥ सिद्धेश्वरन्तुविख्यातंसर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३४ ॥

पूर्वमें हस्तिपादेश्वर महादेवजी विराजमान हैं, इनका दर्शन करतेही जन्मान्तरके सम्पूर्ण पातक दूर होजाते हैं ॥ २९ ॥ उसके दक्षिणओर महर्षि हारीतका लिंग विराजमान है, जो लोग उनकी पूजा करते हैं, वह तत्कालही सिद्धिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ३० ॥ उसके दक्षिणपार्श्वमें उन महात्माकी जो वापी है, वह त्रिलोकीमें विख्यात है, वहाँ सर्व पापोंका हरनेहारा मंगलस्वरूप लिंग विराजमान है ॥ ३१ ॥ कंकालरूपी परममहात्मा रुद्र (शिवजी) ने उस सर्वपापको नाश करनेहारे लिंगकी स्थापना की है ॥ ३२ ॥ यह लिंग भुक्ति (भोग) मुक्ति (मोक्ष) और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेहारा कहकर विख्यात हुआ है, इसका दर्शन करतेही अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इसके पश्चिमभागमें सिद्धलिंग स्थापित है, यह लिंग सिद्धेश्वरनामसे विख्यात है, इसी कारण यह सब

प्रकारकी सिद्धिका देनेवाला है ॥ ३४ ॥ इसके दक्षिणभागमें महात्मा मृकंडर्जीने जिस लिंगकी प्रतिष्ठा की थी उसका दर्शन करतेही सिद्धि प्राप्त होतीहै॥ ३५॥ इसके पूर्वओर महात्मा आदित्यजीने जिस लिंगकी प्रतिष्ठा की थी वह अशेषपापोंको नष्ट करता है ॥ ३६ ॥ गंधर्व चित्राङ्गद और अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भा यह दोनों परस्परमें अनुरागरक्त होकर स्थाणुके दर्शनकी इच्छाके वशीभूत हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त स्थाणुका दर्शन कर परस्परमें अनुरागसहित हो पूजा कर देवाधिदेव महादेवजीकी प्रतिष्ठा करके अपने गृहको आये ॥ ३८ ॥ हेब्राह्मणो ! उस चित्राङ्गदेश्वर और रम्भेश्वर इन दोनों लिंगोंका दर्शन करनेसे मनुष्य सुन्दर दर्शनीय (देखनेयोग्य मनोहर) और महाकुलमें उत्पन्न होताहै ॥ ३९ ॥ उसके दक्षिणओर पहले समयमें वज्रधर इन्द्रने जिस लिंगकी प्रतिष्ठा की थी उनके प्रसादसे मनमें कल्पना किये हुए सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त किया था वह फल उसके दर्शन पूजनसे होता है॥ ४० ॥वहाँ महर्षि पराशरने शंकरका दर्शन और उनकी आराधना करके परमोत्तम कविताको प्राप्त किया था वो फल उसके दर्शन पूजनसे होता है ॥ ४१ ॥ महर्षि वेदव्यासजी वहाँ परमेश्वर (शिवजी) की आराधना करके उनके प्रसादसे सर्वज्ञत्व और ब्रह्मज्ञत्वको प्राप्त हुए थे ॥ ४२ ॥ स्थाणुके पश्चिमभागमें हैमवतेश्वर नामका विख्यात लिंग प्रतिष्ठित है, पुण्यात्माओंके द्वारा स्थापित होनेसे उस लिंगका दर्शन करतेही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ४३ ॥ उसके पश्चिम भागमें कार्तवीर्यद्वारा स्थापित “पापहर” नामक लिंगका दर्शन करनेसे उसी क्षणमें सम्पूर्ण पापोंका हरण और पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥४४॥ उसकेही उत्तरभागके सुपार्श्वमें स्थापित जो लिंग है हनुमान्‌र्जीने उसकी पूजा कर उन देवके प्रसादसे सिद्धि प्राप्त की थी॥ ४५॥

तस्यदक्षिणदिग्भागेमृकंडेनमहात्मना ॥ तत्रप्रतिष्ठितंलिंगंदर्शनात्सिद्धिदायकम् ॥३५॥ तस्यपूर्वेंचदिग्भागेआदित्येनमहात्मना ॥ प्रतिष्ठितंलिंगवरंसर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ३६ ॥ चित्रांगदस्तुगंधर्वोरंभाचाप्सरसांवरा ॥ परस्परंसानुरागौस्थाणुदर्शनकांक्षिणौ ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वास्थाणुंपूजयित्वासानुरागौपरस्परम् ॥ आगम्यवरदंदेवंप्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ३८ ॥ चित्रांगदेश्वरंदृष्ट्वातथारंभेश्वरंद्विज ॥ सुभगोदर्शनीयश्चकुलेजन्मसमाप्नुयात ॥ ३९ ॥ तस्यदक्षिणतोलिंगंवज्रिणास्थापितंपुरा ॥ तस्यप्रसादात्संप्राप्तंमनसाचिंतितंफलम् ॥ ४० ॥ पराशरेणमुनिनातथैवाराध्यशंकरम् ॥ प्राप्तंकवित्वंपरमंदर्शनाच्छंकरस्यच ॥ ४१ ॥ वेदव्यासेनमुनिनाआराध्यपरमेश्वरम् ॥ सर्वज्ञत्वंब्रह्मज्ञानंप्राप्तंदेवप्रसादतः ॥ ४२ ॥ स्थाणोःपश्चिमदिग्भागेलिंगंहिमवतेश्वरम् ॥ प्रतिष्ठितंपुण्यकृतांदर्शनात्सिद्धिकारकम् ॥ ४३ ॥ तस्यापिपश्चिमेभागेकार्तवीर्येणस्थापितम् ॥ लिंगंपापहरंसद्योदर्शनात्पुण्यमाप्नुयात् ॥ ४४ ॥ तस्याप्युत्तरतोभागेसुपार्श्वेस्थापितंपुनः ॥ आराध्यहनुमांश्चापसिद्धिंदेवप्रसादतः ॥ ४५ ॥

उसके पूर्वदिशाके भागमें प्रभु विष्णुजीनें चक्रके बीचमें (जिस अत्यन्त सुन्दर वरद इच्छापूर्ण करनेवाले) लिंगकी प्रतिष्ठा की थी उसकी आराधनासे इच्छानुसार फल प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ उसकेभी पूर्वदिशाके भागमें इन्द्र और वरुण इन दोनोंमें दो लिंग स्थापित किये, वह दोनोंही सब कामनाओंको पूर्ण करते हैं ॥४७॥ मुनिगण, साध्यगण, आदित्यगण, वसुगण, इन सभीने यत्नसहित इन सकल पापनाशी लिंगोंकी सेवा की है ॥ ४८ ॥ वैसेही स्वयम्भू स्थाणुजीकी सेवा की है, इसके अतिरिक्त तत्त्वके जाननेवाले और २ ऋषियोंने जिन लिंगोंकी प्रतिष्ठा की है, उनकी संख्या नहीं हो सक्ती है ॥ ४९ ॥ तिसके उत्तर ओर जहाँ तक ओघवती नदी है वहाँ स्थाणुदेवके पश्चिम ओर लगाकर एक सहस्र लिंग प्रतिष्ठित हैं ॥ ५० ॥ उसकेभी पूर्वदिशाके भागमें महात्मा वालखिल्यऋषियोंके

तस्यैवपूर्वदिग्भागेविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ आराध्यवरदंदेवंचक्रमध्येसुदर्शनम् ॥ ४६ ॥ तस्यापिपूर्वदिग्भागेइंद्रेणवरुणेनच ॥ प्रतिष्ठितेलिंगवरेसर्व
कामप्रदायके ॥४७॥ एतानिमुनिभिःसाध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ॥ सेवितानिप्रयत्नेनसर्वपापहराणिवै॥४८॥ स्वयंभुवंतथास्थाणुमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
प्रतिष्ठितानिलिंगानियेषांसंख्यानविद्यते ॥ ४९ ॥ तस्यामुत्तरतश्चैवयावदोघवतीनदी ॥ सहस्रमेकंलिंगानांदेवपश्चिमतःस्थितम् ॥ ५० ॥ तस्यापिपूर्व
दिग्भागेवालखिल्यैर्महात्माभिः ॥ प्रतिष्ठितारुद्रकोटिर्यावत्सन्निहितंसरः ॥ ५१ ॥ दक्षिणेनतुदेवस्यगंधर्वैर्यक्षकिन्नरैः ॥ प्रतिष्ठितानिलिंगानियेषांसं
ख्यानविद्यते ॥ ५२ ॥ तिस्रःकोटयोऽर्धकोटीचलिंगानांवायुरब्रवीत् ॥ असंख्याताःसहस्राणियद्रुद्रस्थानमाश्रिताः ॥ ५३ ॥ एतज्ज्ञात्वाश्रद्दधानः
स्थाणुलिंगंसमाश्रयेत् ॥ यस्यप्रसादात्प्राप्नोतिमनसाचिंतितंफलम् ॥ ५४ ॥ अकामोवासकामोवाप्रविश्यस्थाणुमंदिरम् ॥ विमुक्तःपातकैर्घोरैःप्राप्नोति
परमंपदम् ॥ ५५ ॥ चैत्रेमासेत्रयोदश्यांदिव्यनक्षत्रयोगतः ॥ शुक्रार्कचन्द्रसंयोगेदिनेपुण्यतमेशुभे ॥ ५६ ॥ प्रतिष्ठितंस्थाणुलिंगंब्रह्मणालोकधारिणा ॥
ऋषिभिर्देवसंघैश्चपूजितंशाश्वतीःसमाः ॥ ५७ ॥

प्रतिष्ठित रुद्रकोटि नामके तीर्थ हैं; वह ब्रह्मसरके निकट हैं ॥५१॥ उसके दक्षिण ओर गंधर्व, यक्ष और किन्नरगणोंके प्रतिष्ठित जो लिंग हैं उनकी संख्या नहीं होसकती ॥ ५२ ॥ वायुने कहा है कि, यहाँ सब मिलकर साढे तीन करोड़ लिंग हैं, फिर इसके अतिरिक्त अनेकस्थानमें स्थित औरभी सहस्रों रुद्र (शिव) लिंग हैं उनकी संख्या नहीं होसकती ॥ ५३ ॥ यह जानकर श्रद्धासहित स्थाणुलिंगका आश्रय करै, जिसके प्रसादसे मनुष्य मनवांछित फलको पाता है ॥ ५४ ॥ अकामसे अथवा सकामसे जिस किसी अवस्थामेंभी हो स्थाणुके मंदिरमें प्रवेश करतेही सम्पूर्ण भयंकर पापोंसे छूटकर परमपदको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ चैत्रमासकी त्रयोदशीमें दिव्यनक्षत्रके योगमें, शुक्र, अर्क और चंद्र इन सबके योगमें परमपवित्र दिनमें ॥ ५६ ॥ लोकधारी ब्रह्माजीने इस स्थाणुलिंगकी प्रतिष्ठा की थी,

ऋषि और देवतागणोंकी जबसेही चिरकालसे इनकी पूजा चली आती है ॥५७॥ उस समय (चैत्र कृष्ण त्रयोदशी) में निराहार और श्रद्धायुक्त होकर जो महादेवजीकी पूजा करते हैं, वह परमपदको प्राप्त होते हैं ॥५८॥ वहां महादेवजीको अधिरूढ़ जानकर प्रदक्षिणा करते हैं, उन्होंने मानों सातद्वीपोंकी (पृथ्वी) की परिक्रमा करली ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां लिंगमाहात्म्य वर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

मार्कंडेयजी बोले कि, हे मुने ! मैं स्थाणुतीर्थके माहात्म्यको सुननेके लिये उत्सुक हुआ हूं. किस मनुष्यने इस स्थानमें सब प्रकारके पापभय नाश करनेहारी सिद्धिको प्राप्त किया था ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि, स्थाणुतीर्थके माहात्म्यको सुनिये, जिसके सुननेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ २ ॥ ब्रह्म

तस्मिन्कालेनिराहारामानवाःश्रद्धयान्विताः ॥ पूजयंतिशिवंयेवैतेयांतिपरमंपदम् ॥ ५८ ॥ तत्रारूढमिदंज्ञात्वाकुर्वंतिचप्रदक्षिणाम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातैस्तुसप्तद्वीपावसुंधरा ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ स्थाणुतीर्थप्रभावंतुश्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ॥ केनसिद्धिरिहप्राप्तासर्वपापभयापहा ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुसर्वमशेषेणस्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुक्तोभवति मानवः ॥ २ ॥ एकार्णवेजगत्यस्मिन्नष्टेस्थावरजंगमे ॥ विष्णोर्नाभिसमुद्भूतःसर्वलोकपितामहः ॥ ३ ॥ तस्मान्मरीचिरभवन्मरीचेःकश्यपःसुतः ॥ कश्यपादभवद्भास्वांस्तस्मान्मनुरजायत ॥ ४ ॥ मनोस्तुक्षुवतःपुत्रउत्पन्नोमुखसंभवः ॥ पृथिव्याश्चतुरंतायाराजाधर्मस्यरक्षिता ॥ ५ ॥ तस्यपत्नी बभूवाथभयानामभयावहा ॥ मृत्योःसकाशादुत्पन्नाकालस्यदुहितातदा ॥ ६ ॥ तस्यांसमभवद्वेनोदुरात्मावेदनिंदकः ॥ सदृष्ट्वापुत्रवदनंक्षुतोराजावनं ययौ ॥ ७ ॥ तत्रकृत्वातपोघोरंधर्मेणावृत्यरोदसी ॥ प्राप्तवांस्तत्परंधामपुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ वेनोराजासमभवत्समस्तेक्षितिमंडले ॥ समाता महदोषेणवेनःकालात्मजात्मजः ॥ ९ ॥

संसारके एकार्णव और उसके साथ स्थावर जंगमके विनाश होनेपर विष्णु भगवान्की नाभिसे सर्वलोकोंके पितामह ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ उनसे मरीचि उत्पन्न हुए, मरीचिके पुत्र कश्यप, कश्यपसे सूर्यका जन्म हुआ और उनके पुत्र वैवस्वत नामक मनु हुए ॥ ४ ॥ मनुके छींकते समय उनके मुखसे पुत्र उत्पन्न हुए, यह पुत्र चतुःसमुद्रान्त (चारोंखूंट) पृथ्वीके राजा और धर्मके रक्षा करनेवाले हुए ॥५॥ उनकी स्त्रीका नाम भया था, वह मृत्युरूपी कालसे उत्पन्न होनेके कारण सभीको भय देनेवाली थी ॥ ६ ॥ उसके गर्भसे दुरात्मा वेदनिन्दक वेनका जन्म हुआ, राजा उस पुत्रका मुख देखकर वनको चले गये ॥ ७ ॥ वहां जाकर घोर तपस्याकर धर्मकेद्वारा स्वर्ग और पृथ्वीको आवृत करके पुनर्जन्मसे रहित परमधामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ तब वेन सम्पूर्णक्षितिमंडलके राजा हुए, वह काल

पुत्री भयाके पुत्र मातामहके दोषसे ॥ ९ ॥ दुरात्मा और वेदनिन्दक होकर नगरमें यह ढंडोरा फेरदिया कि, कोई कभी दान न करे, यज्ञ न करे, होम न करे ॥
॥ १० ॥ एक मैंही संसारमें तुम्हारा वंदन करने योग्य और सर्वदा पूजनीय हूं, मैंही तुम्हारा पालन करता हूं तुम सुखसे निवास करो ॥ ११ ॥ संसारमें और कोई
दूसरा देवता नहीं है, जिसका अद्वितीयरूपसे आश्रय करो, सम्पूर्ण रूढि इसके यह वचन सुनकर ॥ १२ ॥ परस्पर एकत्रित होकर राजाके निकट आये और
यह वचन बोले कि, श्रुतिही धर्मका प्रमाण है, इससे यज्ञ प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ यज्ञके विना स्वर्गवासी देवताओंको प्रसन्नता नहीं होती, विना प्रसन्न वे शस्य (धान्य)
की वृद्धिके निमित्त वर्षा नहीं करते ॥ १४ ॥ इसप्रकारसे यज्ञ और देवताओंने स्थावर जंगमात्मक संसारको धारण किया है, यह वचन सुनकर वेन क्रोधित दृष्टि

घोषयामासनगरेदुरात्मावेदनिंदकः ॥ नदातव्यंनयष्टव्यंनहोतव्यंकदाचन ॥ १० ॥ अहमेकोऽत्रवैवंद्यःपूज्योहंभवतांसदा ॥ मयाहिपालितायूयंनिवसध्वं
यथासुखम् ॥ ११ ॥ तन्मत्तोऽन्योनदेवोऽस्तियुष्माकंयत्परायणम् ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनमृषयःसर्वएवते ॥ १२ ॥ परस्परंसमागम्यराजानंवाक्यमब्रुवन् ॥
श्रुतिःप्रमाणंधर्मस्यततोयज्ञःप्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥ यज्ञैर्विनानोप्रीयंतेदेवाःस्वर्गनिवासिनः ॥ अप्रीतानप्रयच्छंतिसस्यस्यचविवृद्धये ॥ १४ ॥ तस्माद्यज्ञै
श्चदेवैश्चधार्यंतेसचराचरम् ॥ एतच्छ्रुत्वाक्रोधदृष्टिर्वैनःप्राहपुनःपुनः ॥ १५ ॥ नयष्टव्यंनदातव्यमित्याहक्रोधमूर्च्छितः ॥ ततःक्रोधसमाविष्टाऋषयः
सर्वएवते ॥ १६ ॥ निर्जघ्नुर्मंत्रपूतैस्तेकुशैर्वज्रसमान्वितैः ॥ ततस्त्वराजकेलोकेतमसासंवृतेतदा ॥ १७ ॥ दस्युभिःपीड्यमानास्तानृषींस्तेशरणंययुः ॥
ततस्तेऋषयःसर्वेममंथुस्तस्यवैकरम् ॥ १८ ॥ सव्यंतस्मात्समुत्तस्थौपुरुषोह्रस्वदर्शनः ॥ तमूचुर्ऋषयःसर्वेनिषीदतुभवानिति ॥ १९ ॥ तस्मा
न्निषादाउत्पन्नावेनकल्मषसंभवाः ॥ ततस्तेऋषयःसर्वेममंथुर्दक्षिणंकरम् ॥ २० ॥ मथ्यमानेकरेतस्मिन्नुत्पन्नःपुरुषोऽपरः ॥ बृहच्छैलप्रतीकाशो
दिव्यलक्षणलक्षितः ॥ २१ ॥

कर वारम्वार कहनेलगा ॥ १५ ॥ कि, कोई दान अथवा यज्ञ नहीं करसकेगा, इसके क्रोधसे मूर्च्छित हो ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण ऋषियोंने अत्यन्त क्रोधित होकर ॥
॥ १६ ॥ वज्रके समान मंत्रसे पवित्र कुशसमूह हाथमें लेकर हुंशब्दसे उसे निहत किया, तब राज्य विनाराजाका होगया और सम्पूर्ण अंधकारसे छागया ॥ १७ ॥
इसकारण सम्पूर्णलोक चोरोंसे पीडित होकर इन ऋषियोंके शरणागत हुए, यह देखकर सबऋषि मिलकर उस वेनके बाँये हाथको मंत्रद्वारा मथन करनेलगे ॥ १८ ॥ उसमें
से एक छोटासा पुरुष उत्पन्न हुआ, ऋषिलोग उससे बोले कि, "भवान्"(आप) "निषीदतु" (बैठिये) ॥ १९ ॥ इस पुरुषसे सम्पूर्ण निषादजाति उत्पन्न हुए हैं. वे वेनके पापोंसे
उत्पन्न होनेके कारण नीचजातिस्वभावके हुए, इसके उपरान्त ऋषियोंने वेनके दहिने हाथको मंत्रपूर्वक मथन किया ॥ २० ॥ दहिने हाथके मथतेही उसमेंसे एक

दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ, यह पुरुष महापर्वतके समान ऊँचा और दिव्य लक्षणोंसे युक्त था ॥ २१ ॥ जिसके हाथमें धनुष, बाण, चक्र और ध्वजाका चिह्न था, सम्पूर्ण सभासद् और इन्द्र आदिक सब देवताओंने उस उत्पन्न हुए पुरुषको देखकर ॥ २२ ॥ पृथ्वी पालन करनेके निमित्त राजारूपसे अभिषेकित किया ॥ तब वह राजपदपर प्रतिष्ठित हो धर्मानुसार पृथ्वीको रञ्जित (पालनद्वारा प्रसन्न[१]) करनेलगा ॥२३॥ उनके पिता वेनने पृथ्वीको विरञ्जित (विरसा उत्पादित नाराज) की थी, वह उसे सम्यक् पालन करनेलगे, इसप्रकार पृथ्वीके रंजन करनेसे उसका नाम राजा हुआ ॥ २४ ॥ वह वेनपुत्र राज्यको पायकर चिन्ता करनेलगा कि, मेरें पिता अत्यन्त अधार्मिक थे और सबको यज्ञ करनेसे रोक दियाथा ॥ २५ ॥ किसप्रकार और कैसी क्रियाके अनुष्ठान करनेसे उन्हैं परलोकमें सुख मिलसके ?

धनुर्बाणांकितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः ॥ तमुत्पन्नंतदादृष्ट्वासर्वेदेवाःसवासवाः ॥ २२ ॥ अभ्यषिंचन्पृथिव्यांतंराजानंभूमिपालकम् ॥ ततःसरंजयामासधर्मेणपृथिवींतदा ॥ २३ ॥ पित्राविरंजितातस्यतेनसापरिपालिता ॥ ततोराजेतिशब्दोऽस्यपृथिव्यारंजनादभूत् ॥ २४ ॥ सराज्यंप्राप्यवैन्यस्तुचिंतयामासपार्थिवः ॥ पितामम अधर्मिष्ठोयज्ञविच्छित्तिकारकः ॥२५॥ कथंतस्यक्रियाकार्यापरलोकसुखावहा ॥ इत्येवंचिंतयानस्यनारदोभ्याजगामह॥२६॥ तस्मैसचासनंदत्त्वाप्रणिपत्यचपृष्टवान् ॥ भगवन्सर्वलोकस्यजानासित्वंशुभाशुभम् ॥ २७ ॥ पितामम दुराचारोदेवब्राह्मणनिंदकः ॥ स्वधर्मरहितो विप्रपरलोकमवाप्तवान् ॥ २८ ॥ ततोऽब्रवीन्नारदस्तंज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ म्लेच्छमध्येसमुत्पन्नःक्षयकुष्ठसमन्वितः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य नारदस्यमहात्मनः ॥ चिंतयामासदुःखार्त्तःकथंकार्यंमयाभवेत् ॥ ३० ॥ इत्येवंचिंतयानस्यमतिर्जातामहात्मनः ॥ पुत्रःसकथ्यतेलोकेयःपितॄंस्त्रायते भयात् ॥ एवंसंचिंत्यसतदानारदंपृष्टवान्मुनिम् ॥ ३१ ॥

इसप्रकारकी चिन्ता करतेथे कि, इसी समयमें नारदजी आये ॥ २६ ॥ वेनने इन्हैं (देवर्षि) नारदजीको बैठनेके लिये आसन दे प्रणाम करके पूछा कि, हे भगवन् ! आप सब लोकोंके शुभाशुभके विषयको जानते हैं ॥ २७ ॥ हे विप्र ! पिता दुराचारी वेदनिन्दक और स्वधर्मसे रहित थे, उसी अवस्थामें वह परलोकवासी हुए, वह कैसे हैं ? ॥ २८ ॥ देवर्षि नारदजी अपनी दिव्यदृष्टिसे जानकर उनसे बोले कि, तुम्हारे पिता म्लेच्छोंमें उत्पन्न होकर क्षय कुष्ठसे युक्त होरहे हैं ॥ २९ ॥ महात्मा नारदजीके यह वचन सुनकर वह अत्यन्त दुःखितहो विचारने लगे कि, मुझे इस समय क्या करना उचित है ॥ ३० ॥ इसप्रकारकी चिन्ता करते २ उन महात्माके

---

[१] इससे राजा पदका पूर्ण अर्थ उनमें सङ्घटित हुआ देखा गया है "राजते रञ्जयति प्रजाः इति राजा" जो प्रजाको राजी करै उसे राजा कहते हैं ऐसा राजपदका निर्वचन (अर्थ) होता है यहीं अर्थ अग्रिम श्लोकसे स्पष्ट विदित होता है ।

मनमें यह विचार हुआ कि, उसीको पुत्र कहते हैं कि, जो अपने पिताको भयसे उद्धार करै, इसप्रकारकी चिन्ता करनेके उपरान्त उन्होंने देवर्षि नारदजीसे पूछा कि,
उनके उद्धार होनेका क्या उपाय है ?॥ ३१ ॥ देवर्षि नारदजी बोले कि, तुम सब तीर्थोंमें जाकर उनकी देहको निर्मल करो, जो सन्निहित सरके निकट महातीर्थ है उसमें
स्नान करनेसे शुद्ध होंगे ॥ ३२ ॥ महात्मा नारदजीके यह वचन सुनकर म्लेच्छदेश की चिन्ता (खोज) करनेलगे इसके उपरान्त वहां गये ॥ ३३ ॥ उन्होंने उत्तरदेशमें जाकर
म्लेच्छोंके बीच में देखा कि, पिता कुष्ठरोग और क्षयरोगसे आक्रान्त होरहेहैं ॥ ३४ ॥ उन्हें देखकर महाशोकसे संतप्तहो बोले कि, हा म्लेच्छो ! मैं नमस्कार करता हूं, तुम्हारे इस
पुरुषको मैं अपने घर लेजाता हूँ ॥ ३५ ॥ यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं इनको वहां लेजाकर इनका रोग दूर करूंगा, म्लेच्छगण दयावान राजाके इस वचनको

नारदउवाच ॥ गच्छत्वंतस्यतंदेहंतीर्थेषुकुरुनिर्मलम् ॥ यत्रस्नातोमहत्तीर्थंसरःसंनिहितंप्रति ॥ ३२ ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनंनारदस्यमहात्मनः ॥ चिंतया
मासतंदेशंराजासचजगामह ॥ ३३ ॥ सगत्वाउत्तरंदेशंम्लेच्छमध्येददर्शह ॥ कुष्ठरोगेणतंवीक्ष्यक्षयेणचसमन्वितम् ॥ ३४ ॥ ततःशोकेनमहतासंतप्तो
वाक्यमब्रवीत् ॥ हाम्लेच्छानौमिपुरुषंस्वगृहंचनयाम्यहम् ॥३५॥ तत्राहमेनंनिरुजंकरिष्येयदिमन्यथ ॥ तथेतिसर्वेतोम्लेच्छाःपुरुषंतंदयापरम् ॥३६॥
ऊचुःप्रणतसर्वांगायथाजानासितत्कुरु ॥ ततआनीयपुरुषाञ्छिबिकावाहनोचितान् ॥३७॥ दत्त्वाशुल्कंचद्विगुणंसुखेनानीयतान्द्विज ॥ ततःश्रुत्वातुवच
नंतस्यराज्ञोदयावतः ॥ ३८ ॥ गृहीत्वाशिबिकांक्षिप्रंकुरुक्षेत्रेणयांतिते ॥ तत्रनीत्वास्थाणुतीर्थमवतीर्यततोगताः ॥ ३९ ॥ ततःसराजामध्याह्नेतंस्नाप
यितुमुद्यतः ॥ ततोवायुरंतरिक्षेइदंवचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥ मातातसाहसंकार्षीस्तीर्थंरक्षप्रयत्नतः ॥ अयंपापेनघोरेणअतीवपरिवेष्टितः ॥ ४१ ॥ वेद
निंदामहत्पापंतस्यांतोनैवलभ्यते ॥ सोयंस्नातोमहत्तीर्थंनाशयिष्यतितत्क्षणात् ॥ ४२ ॥ एतद्वायोर्वचःश्रुत्वादुःखेनमहतान्वितः ॥ उवाचशोकसं
तप्तस्तस्यदुःखेनदुःखितः ॥ एषघोरेणपापेनह्यतीवपरिवेष्टितः ॥ ४३ ॥

सुनकर ॥ ३६ ॥ प्रणाम करके बोले कि, आपकी जो इच्छा हो सो कीजिये तब वेनके पुत्रने पालकी मँगवाई, और उसके उठानेवाले पुरुषोंको मँगवाया ॥ ३७ ॥
और दुगुनी मजदूरी देकरके बोले कि, सुखसे इन द्विजन्माको लेचलो, वे सब दयालु राजाके वचन सुनकर ॥ ३८ ॥ पालकीको ले शीघ्रही कुरुक्षेत्रको चले, और
वहां जा स्थाणुतीर्थमें उतारकर अपने स्थानको चले गये ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त राजा मध्याह्नके समयमें उन्हें स्नान करानेके लिये तैयार हुए, इतनेमें वायु
आकाशमें आकर इनसे बोले ॥ ४० ॥ हे तात ! ऐसा साहस मत करो, यत्नपूर्वक तीर्थकी रक्षा करो यह मनुष्य अत्यन्त भयंकर पापोंसे वेष्टित होरहा है ॥ ४१ ॥
वेदनिन्दक, महापापी है उसका अंत होना कठिन है, इसकारण यह मनुष्य स्नान करतेही इसी समय महातीर्थको नष्ट करेगा ॥४२॥ राजा वायुके यह वचन सुनकर

अत्यन्त दुःखित हुए, और उनके दुःखसे दुःखी तथा शोकसे संतप्त हो कहने लगे ॥ ४३ ॥ देवताओंने मुझसे कहा है मैं उसीके अनुसार प्रायश्चित्त करूंगा, यह सुनकर सब देवता बोले ॥ ४४ ॥ कि, तुम तीर्थमें स्नान करके अपने जलसे उनका अभिषेक करो, फिर जबतक पापोंका क्षय न हो तबतक प्रतिकूलवाहिनी सरस्वतीमें ॥ ४५ ॥ श्रद्धासहित पुण्यवान् मनुष्य स्नान करनेसे मुक्ति प्राप्त करसकता है, यह मनुष्य अपना पोषण करने और देवताओंके दोष लगानेमें तत्पर था ॥ ४६ ॥ इसकारण ब्राह्मणोंके द्वारा त्याग किया गया है, यह कभी शुद्धिको प्राप्त नहीं करसकता। इस निमित्त तुम स्वयं इसके उद्देशसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें भक्तिपूर्वक ॥ ४७ ॥ स्नान करके उस जलसे इसका अभिषेक करो, तब यह सर्वथा शुद्ध होगा, राजाने देवताओंके यह वचन सुनकर उनके निमित्त आश्रम निर्माण

प्रायश्चित्तंकरिष्येऽहंयद्वदिष्यंतिदेवताः ॥ ततस्तादेवताःसर्वाइदंवचनमब्रुवन् ॥ ४४ ॥ स्नात्वास्नात्वाचतीर्थैत्वमभिषिंचस्ववारिणा ॥ आगसोलुम्पनंयावत्प्रतिकूलांसरस्वतीम् ॥ ४५ ॥ स्नात्वामुक्तिमवाप्नोतिपुरुषःश्रद्धयान्वितः ॥ एषस्वपोषणपरोदेवदूषणतत्परः ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणैश्चपरित्यक्तोनैषशुद्ध्यतिकर्हिचित् ॥ तस्मादेनंसमुद्दिश्यस्नात्वातीर्थैषुभक्तितः ॥ ४७ ॥ अभिषिंचस्वतोयेनततःपूतोभविष्यति ॥ इत्येतद्वचनंश्रुत्वाकृत्वातस्याश्रमंततः ॥ ४८ ॥ तीर्थयात्रांययौराजाउद्दिश्यजनकंस्वकम् ॥ सतेष्वाप्लवनंकुर्वंस्तीर्थैषुचदिनेदिने ॥ ४९ ॥ अभ्यषिंचत्स्वापितरंतीर्थतोयेननित्यशः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुसारमेयोजगामह ॥ ५० ॥ स्थाणोर्मठेकौलपतिर्देवद्रव्यस्यरक्षिता ॥ परिग्रहस्यद्रव्यस्यपरिपालयितासदा ॥ ५१ ॥ प्रियश्चसर्वलोकेषुदेवकार्यपरायणः ॥ तस्यैवंवर्त्तमानस्यधर्ममार्गेस्थितस्यच ॥ ५२ ॥ कालेनचलिताबुद्धिर्देवद्रव्यस्यनाशने ॥ तेनाधर्मेणयुक्तस्यपरलोकगतस्यच ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वायमोऽब्रवीद्वाक्यंश्वयोनिंव्रजमाचिरम् ॥ तद्वाक्यानंतरंजातःश्वावैसौगंधिकेवने ॥ ५४ ॥

कर ॥ ४८ ॥ अपने पिताके उद्देशसे तीर्थकी यात्रा की और प्रतिदिन उन सब तीर्थोंमें स्नान कर ॥ ४९ ॥ उस जलसे अपने पिताका अभिषेक करनेलगे, इसी समयमें एक कुत्ता वहां आया ॥ ५० ॥ वह पहले स्थाणुमठमें कौलगणोंके अधिनायक (पुजारी) थे, स्थाणुदेवके द्रव्य (पूजाके सामान) की रक्षा और सर्वदा परिग्रह इधर उधरसे भेंट पूजा ले यह आये द्रव्योंका परिपालन करतेथे ॥ ५१ ॥ फिर देवताओंके कार्यमें रत होनेसे वह सबकेही प्रिय थे, इसप्रकार धर्ममार्गका आश्रय लेकर जीवनको निर्वाह करते करते ॥ ५२ ॥ कालके साथ देवद्रव्यके निवास करनेकी इच्छामें उनकी बुद्धि चलायमान हुई, ऐसे अधर्ममें प्रवृत्त होनेसे मृत्युने उनको आक्रमण किया जब वह परलोकमें गये ॥ ५३ ॥ तब यमराज इन्हें देखकर बोले कि, तुम इसी समय कुत्तेकी योनि प्राप्त करो, देर मतकरो, उनके यह वचन कहतेही वह

सौगन्धिकवनमें कुत्ते होकर उत्पन्न हुए ॥५४॥ इसके उपरान्त बहुत समयके बीतनेपर वह कुत्तोंके यूथसे परिवृत और परिभूत होकर अत्यन्त दुःखित हृदयसे ॥५५॥ द्वैतवनको छोड़ सन्निहत्य सरके निकट चले आये, वहां प्रवेश करतेही स्थाणुदेवकेही प्रसादसे ॥ ५६ ॥ अत्यन्त प्यास लगनेके कारण सरस्वतीमें निमग्न हुए, उनका शरीर सरस्वतीके जलसे छूतेही सम्पूर्ण पापोंसे दूर होगया ॥ ५७ ॥ तब आहारकी अभिलाषासे कुलमठमें प्रवेश किया, वहां उनको भयभीत चित्तसे प्रवेश करते हुए देखकर ॥ ५८ ॥ वेनने धीरे २ उसको स्पर्श कर स्थाणुतीर्थमें स्नान किया, पूर्व सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान किये हुए संनिहत्यसरके बिन्दुओंसे अपने पिताको परिसेचित किया ॥ ५९ ॥ वह पहलेभी इस कुत्तेके शरीरपरके जलबिन्दुसे स्पर्श पाचुकेथे, अतः वो तथा वो कुत्ता दोनों उसी समय संसारसे विरक्तचित्त होगये ॥ ६० ॥ इसप्रकार स्थाणुतीर्थके माहात्म्यसे वह पुत्रके द्वारा उद्धारको प्राप्त हो वह उसी समय दिव्यदेह होकर जितेन्द्रिय होगये. तब वेन प्रणाम करके

ततःकालेनमहताश्वयूथपरिवारितः ॥ परिभूतःसारमेयोदुःखेनमहतावृतः ॥ ५५ ॥ त्यक्त्वाद्वैतवनंपुण्यंसांनिहत्यंययौसरः ॥ तस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तु स्थाणोरेवप्रसादतः ॥ ५६ ॥ अतीवतृषयायुक्तःसरस्वत्यांममज्जह ॥ तत्रसंप्लुतदेहस्तुविमुक्तःसर्वकिल्बिषैः ॥ ५७ ॥ आहारलोभेनतदाप्रविवेशकुलं मठम् ॥ प्रविशंतंतदादृष्ट्वाश्वानंभयसमान्वितम् ॥ ५८ ॥ सतंपस्पर्शशनकैःस्थाणुतीर्थेममज्जह ॥ पतितःपूर्वतीर्थेषुविप्रुषैःपरिषेचितः ॥ ५९ ॥ शुनोऽस्यगात्रसंभूतैरब्बिंदुभिःसांसिचितः ॥ विरक्तदृष्टिःसशुनःक्षणेनचततःपरम् ॥ ६०॥ स्थाणुतीर्थस्यमाहात्म्यात्सपुत्रेणचतारितः ॥ नियतस्तत्क्षणाज्जातो दिव्यदेहसमन्वितः॥प्रणिपत्यतदास्थाणुंस्तुतिंकर्त्तुंप्रचक्रमे ॥ ६१ ॥ वेनउवाच ॥ प्रपद्येदेवमीशानंत्वामजंचंद्रभूषणम् ॥ महादेवंमहात्मानंविश्वस्यजगतःपतिम् ॥ ६२ ॥ नमस्तेदेवदेवेशसर्वशत्रुनिषूदन ॥ देवेशबलिविष्टंभिन्देवैर्दैत्यैश्वपूजित ॥ ६३ ॥ विरूपाक्षसहस्राक्षत्र्यक्षयक्षेश्वरप्रिय ॥ सर्वतःपाणिपादत्वंसर्वतोऽक्षिशिरोमुख ॥ ६४ ॥ सर्वतःश्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्त्यतिष्ठसि ॥ शंकुकर्णमहाकर्णकुंभकर्णार्णवालय ॥ ६५ ॥

स्थाणुकी स्तुति करनेलगे ॥ ६१ ॥ वेन बोले कि, तुम दिव्य लीलाविग्रह और सबके नियन्ता और चंद्रभूषण हो, मैं तुम्हारी शरण हूं, तुम महादेव, महात्मा और विश्व जगत्के पतिहो मैं तुम्हारी शरणागत हूं ॥६२॥ हे देवदेवेश ! हे सर्व शत्रुविनाशन ! तुम देवताओंकेभी ईश्वर हो, तुमने बलि इन्द्रको विष्टब्ध (स्तम्भन) किया है, फिर देवता और दैत्य सभी तुम्हारी पूजा करते हैं मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं ॥ ६३ ॥ तुम विरूपाक्ष, सहस्राक्ष और त्रिलोचन हो, तुम यक्षेश्वर (कुबेर) के परमप्रीतिपात्रहो, सब ओरही तुम्हारा पाणि (हाथ) और पाद (चरण) फैलाहुआ है, तुम्हारे नेत्र, मुख और मस्तकभी विश्वके चारोंओर व्याप्त होरहे हैं ॥६४॥ तुम संसारमें सब ओर श्रुतिमान् (कर्णवाले) और सबको आवृत्त (वेष्टित) करके विराजमानहो, तुम शंकुकर्ण (सुकड़ेहुए कानवाले) महाकर्ण (विशालकर्णवाले)

कुंभकर्ण (घटकी समान कर्णवाले) और अर्णवालय (समुद्रनिवासी) हो ॥ ६५ ॥ तुम सिंहके समान कर्णवाले गोकर्ण (गौकी समान कर्णवाले) और पाणिकर्ण (हाथकी समान कर्णवाले) हो तुमको नमस्कार है, तुम शतजिह्व (सौ जिह्वावाले) शतावर्त्त (सौनाभिवाले) शतोदर (सौ उदर पेटवाले) और शतमुख हो ॥ ६६ ॥ गायत्रीके उपासकलोग तुम्हारी महिमाका गान करते हैं, और सूर्यके उपासकलोग सूर्यरूपी तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हें महात्मालोग ब्रह्मस्वरूप और इन्द्रके ऊर्ध्वमें विराजमान मानगये हैं ॥ ६७ ॥ हे महामूर्ति गोष्ठ (विशालगौशाला) में गौ सबकी समान, तुम्हारी मूर्तिमेंही सम्पूर्ण देवता और सम्पूर्ण मेदिनीमंडल प्रतिष्ठित है ॥ ६८ ॥ मैं तुम्हारे शरीरमें चंद्रमा, अग्नि, वरुण, नारायण, सूर्य, ब्रह्मा, तथा बृहस्पतिजीको देखताहूं ॥ ६९ ॥ हे भगवन् ! तुम कारण और कार्य हो, तुम्हीं क्रिया और उसके कर्ताहो, तुमसेही सृष्टि और प्रलय है तुम्हीं सत् महदहंकारादि-असत्-स्थूलभूतादि और उसके अधिष्ठाता देवताहो॥ ७० ॥

गजेंद्रकर्णगोकर्णपाणिकर्णनमोस्तुते ॥ शतजिह्वशतावर्तशतोदरशतानन ॥ ६६ ॥ गायंतित्वांगायत्रिणोह्यर्कयंत्यर्कमर्किणः ॥ ब्रह्माणंत्वाशतक्रतोरूर्ध्वं त्वामिहमेनिरे ॥ ६७ ॥ मूर्त्तौहितेमहामूर्त्तेसमुद्रास्तुधरातथा ॥ देवताःसर्वएवात्रगोष्ठेगावइवासते ॥ ६८ ॥ शरीरेतवपश्यामिसोममग्निंजलेश्वरम् ॥ नारायणंतथासूर्यंब्रह्माणंचबृहस्पतिम् ॥ ६९ ॥ भगवन्कारणंकार्यंक्रियाकारणमेवतत् ॥ प्रभवःप्रलयश्चैवसदसच्चापिदैवतम् ॥ ७० ॥ नमोभवायशर्वायवरदायोग्ररूपिणे ॥ अंधकासुरहंत्रेचपशूनांपतयेनमः ॥७१॥ त्रिजटायत्रिशीर्षायत्रिशूलासक्तपाणये ॥ त्र्यंबकायत्रिनेत्रायात्रिपुरघ्ननमोऽस्तुते ॥७२॥ नमोदंडायचंडायअंडायोत्पत्तिहेतवे ॥ डिंडिमासक्तहस्तायदंडिमुंडायतेनमः ॥ ७३ ॥ नमोर्ध्वकेशदंष्ट्रायशुष्काायाविकृतायच ॥ धूम्रलोहितकृष्णायनीलग्रीवायतेनमः ॥ ७४ ॥ नमोस्त्वप्रतिरूपायविरूपायशिवायच ॥ सूर्यमालायसूर्यायस्वरूपध्वजमालिने ॥ ७५ ॥ नमोनानाभिरामायनमःपटुतरायच ॥ नमोगणेंद्रनाथायवृषस्कंधायधन्विने ॥ ७६ ॥

तुम भव, शर्व, वरद और उग्ररूपी हो तुमको नमस्कार है,तुम अंधकासुरके निहन्ता और पशुगणोंके पति हो, तुमको नमस्कारहै॥ ७१ ॥ तुम त्रिजट और त्रिशीर्ष हो,तुम त्रिशूलधारी, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र और त्रिपुरासुरके मारनेवाले हो तुमको नमस्कार है॥ ७२॥ तुम दंडस्वरूप, चंडस्वरूप, अंड (ब्रह्मांड) स्वरूप, और उत्पत्तिके हेतुस्वरूप हो तुमको नमस्कार है, तुम डिंडिमासक्त और दंडिमुंड हो तुमको नमस्कार है॥ ७३ ॥ तुम ऊर्ध्वकेश और ऊर्ध्वदंष्ट्र हो, तुम शुक्र और विकृतिस्वरूप हो, तुम धूम्रलोहित, कृष्णवर्ण और नीलग्रीव हो तुमको नमस्कार है ॥ ७४ ॥ तुम अप्रतिरूप विरूप, और शिवस्वरूप हो, तुम सूर्यमाल और सूर्यस्वरूप और स्वरूप ध्वज (मुंड) मालासे अलंकृतहो तुमको नमस्कारहै॥ ७५ ॥ तुम बहुरूप और अभिरामरूप हो तुमको नमस्कार है,तुम पटुतरहो तथा धनुर्धारी,गणोंके स्वामी पुष्ट कंधाहो तुमको नमस्कारहै॥ ७६ ॥

तुम संक्रन्दन और पर्णधार पुट और चंडस्वरूपहो तुमको नमस्कार है, तुम हिरण्यवर्ण हो तुमको नमस्कार है, तुम कनकवर्णहो तुमको नमस्कार है ॥ ७७ ॥ तुम स्तुत, स्तुत्य, और स्तुतिस्थहो तुमको नमस्कार है ॥ ७८ ॥ तुम सर्वभक्ष और सर्वभूतशरीर हो तुमको नमस्कार है ॥ ७९ ॥ तुम होता, हन्ता और शितोदग्र पताकी (श्वेतउन्नत पताकावाले) हो तुमको नमस्कार है, तुम नमस्वरूप और मंत्रस्वरूपहो तुमको नमस्कार है, तुम कटकटस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ८० ॥ तुम नाट्योपहारलुब्ध (नाट्यरूपी उपहार) (नजर) उसके लुब्ध (लोभी) स्वरूप और मुखवाद्यशालीहो तुमको नमस्कार है ॥ ८१ ॥ तुम ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बल और अतिबलके घाती, कालनाशक, कालस्वरूप और संसार क्षयरूपीहो तुम्हें नमस्कार है॥ ८२ ॥तुम हिमालयकी पुत्री (पार्वती) के भर्ता और भैरवहो तुमको नमस्कार

संक्रंदनायचंडायपर्णधारपुटायच ॥ नमोहिरण्यवर्णायनमःकनकवर्चसे ॥ ७७ ॥ नमःस्तुतायस्तुत्यायस्तुतिस्थायनमोस्तुते ॥ सर्वायसर्वभक्षायसर्वभूतशरीरिणे ॥ ७८ ॥ नमोहोत्रेचहंत्रेचसितोदग्रपताकिने ॥ नमोनमायमंत्रायनमःकटकटायच ॥ ७९ ॥ नमोऽस्तुकृशनाशायशायितायोत्थितायच ॥ स्थितायधामसारायमुंडायकुटिलायच ॥ ८० ॥ नमोनर्त्तनशीलायलयवादित्रशालिने ॥ नाट्योपहारलुब्धायमुखवादित्रशालिने ॥ ८१ ॥ नमोज्येष्ठायश्रेष्ठायबलातिबलघातिने॥ कालनाशायकालायसंसारक्षयरूपिणे ॥८२॥ हिमवद्दुहितुर्भर्त्रेभैरवायनमोस्तुते ॥ उग्रायचनमोनित्यंनमोस्तुदशबाहवे ॥ ॥ ८३ ॥ चितिभस्मप्रियायैवकपालासक्तपाणये ॥ बिभीषणायभीष्मायाहिमव्रतधरायच ॥ ८४ ॥ नमोविकृतवक्रायवक्रप्रांतोग्रदृष्टये ॥ पक्काममांसलुब्धायतुंबीवीणाप्रियायच ॥ ८५ ॥ नमोवृषांकवृष्टायगोमिनेतेनमोनमः ॥ कटंकटायभीमायनमःपचपचायच ॥ ८६ ॥ नमःसर्ववरिष्ठायवरायवरदायिने ॥ नमोविरक्तवक्रायभावनायाक्षमालिने ॥ ८७ ॥ विभेदभेदभिन्नायछायायैतपनायच ॥ अघोरघोररूपायघोरघोरतरायच ॥ ८८ ॥ नमः शिवायशांतायनमःशांततमायच ॥ बहुनेत्रकपालायएकमूर्त्तेनमोस्तुते ॥ ८९ ॥

है, तुम उग्रहो तुमको नित्य नमस्कार करते हैं, तुम दशबाहुहो तुमको नमस्कार है ॥ ८३ ॥ तुम चिताभस्मप्रिय और कपालधारीहो, तुम विभीषण और भीष्म और हैमव्रतधारीहो तुमको नमस्कार है ॥८४॥ तुम विकृतवक्र गतोग्रदृष्टिहो तुम्हें नमस्कार है, तुम पक्क और आम (कच्चा) मांसके लुब्धहो तुम तुम्बी और वीणाप्रियहो तुमको नमस्कार है ॥ ८५ ॥ तुम वृषाङ्कवृष्ट गोमित और मितहो तुमको नमस्कार है, तुम कटकट और पच २ एवं भीमस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥८६॥ तुम सर्ववरिष्ठ वरदायी और वरस्वरूप हो तुमको नमस्कार है, तुम विरक्त, वक्त्र,भावन, और अक्षमाली हो तुम्हें नमस्कार है ॥ ८७ ॥ तुम विभेद भेद भिन्नस्वरूप और छायास्वरूप तपनस्वरूपहो, तुम अघोर और घोररूपहो, तुम घोर और घोरतरस्वरूप हो तुमको नमस्कार है ॥ ८८ ॥ तुम शिव और शान्तस्वरूपहो तुमको नमस्कार है, तुम

शान्ततमहो तुमको नमस्कार है, तुम बहुनेत्र बहुकपालधारीहो, तुम एकमूर्तिहो तुम्हैं नमस्कार है ॥ ८९ ॥ तुम क्षुद्र, लुब्ध और यज्ञभागप्रिय हो तुमको नमस्कार है, तुम पञ्चाल, सितांग और यमकेभी नियामी (नियन्ता शासक) हो तुमको नमस्कार है ॥ ९० ॥ तुम चित्रोरुघंट और घंटाघंटनिघंटीहो तुमको नमस्कार है, तुम सहस्रघंटा शतघंट और घंटामालासे विभूषितहो तुम्हैं नमस्कार है ॥ ९१ ॥ तुम प्राणीसंघट घंटस्वरूप, तुम किलकिलाशब्दप्रियहो तुम्हैं नमस्कार हैं, तुम हुंकार पार, हुंकार और प्रियस्वरूप हो तुम्हैं नमस्कार है ॥ ९२ ॥ तुम समसमि और गृह वृक्ष निकेतनहो तुम्हैं नमस्कार है, तुम गर्भ मांसके शृगालस्वरूप और तारक और तरस्वरूपहो तुम्हैं नमस्कार है ॥ ९३ ॥ तुम यज्ञ और यजमान तुम हुत और प्रहुतहो तुमको नमस्कार हैं, तुम यज्ञ वा हव्य, तप्य और तपनहो तुम्हैं नमस्कार है

नमःक्षुद्रायलुब्धाययज्ञभागप्रियायच ॥ पंचालायसितांगायनमोयमनियामिने ॥ ९० ॥ नमश्चित्रोरुघंटायघंटाघंटनिघंटिने ॥ सहस्रशतघंटायघं
टामालाविभूषिणे ॥ ९१ ॥ प्राणिसंघट्टघंटायनमःकिलकिलप्रिय ॥ हुंहुंकारायपारायहुंकारायप्रियायच ॥ ९२ ॥ नमःसमसमेनित्यंगृहवृक्षनिकेतिने ॥
गर्भमांसशृगालायतारकायतरायच ॥ ९३ ॥ नमोयज्ञाययजिनेहुतायप्रहुतायच ॥ यज्ञवाहायहव्यायतप्यायतपनायच ॥ ९४ ॥ नमस्तुंडायतुंड्यायतुं
डानांपतयेनमः ॥ अन्नदायान्नपतयेनमोनानान्नभोजिने ॥ ९५ ॥ नमःसहस्रशीर्षायसहस्रचरणायच ॥ सहस्रोद्यतशूलायसहस्राभरणायच ॥ ९६ ॥
बालानुचरगोत्रेचबाललीलाविलासिने ॥ नमोबालायवृद्धायक्षुब्धायक्षोभणायच ॥ ९७ ॥ गंगालुलितकेशायमुंजकेशायवैनमः ॥ नमःषट्कर्मतुष्टाय
त्रिकर्मनिरतायच ॥ ९८ ॥ नग्नप्राणायचंडायकृशायास्फोटनायच ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांकथ्यायकथनायच ॥ ९९ ॥ सांख्यायसांख्यमुख्यायसां
ख्ययोगमुखायच ॥ नमोविरथरथ्यायचतुष्पथरथायच ॥ १०० ॥

॥ ९४ ॥ तुम तुंड, तुंडच्य और तुंडगणोंके पति हो तुमको नमस्कार है, तुम अन्नदाता, अन्नपति और विविधभाँतिके अन्नोंके भोक्ताहो तुम्हैं नमस्कार है ॥ ९५ ॥ तुम सहस्रशीर्ष और सहस्रपाद हो तुम्हैं नमस्कार है, तुमने सहस्र २ शूलोंको उद्यत कियाहै, और सहस्र २ आभरणोंसे शोभायमान देह है तुमको नमस्कार है ॥ ९६ ॥ तुम बालकोंके अनुचर तथा रक्षकहो और बाललीलाविलासीहो, तुमको नमस्कार है, तुम बालक, वृद्धस्वरूप और क्षुब्ध क्षोभणस्वरूप हो तुमको नमस्कार है ॥ ९७ ॥ तुम्हारे केशोंमेंसे भागीरथीजी निकलरही है, तुम मुंजकेशहो तुमको नमस्कार है, तुम्हीं षट्कर्मोंसे तुष्ट और तीन कर्मोंमें निरतहो ॥ ९८ ॥ तुम नग्न प्राण और चंड स्वरूप हो, तुम कृश और आस्फोटनस्वरूपहो तुम्हैं नमस्कार है. तुम धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके कहनेवाले और कथनस्वरूप हो ॥ ९९ ॥ तुम सांख्य, सांख्यमुख्य

और सांख्ययोगके मुखस्वरूपहो, तुमको नमस्कार है. तुम विरथ रथ्य और चतुष्पथ रथस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ १०० ॥ तुम कृष्णाजिनके (कृष्ण मृगचर्म) के उत्तरीयवस्त्र (ओढ़नेके वस्त्र) विशिष्ट और हरिकेशहो तुमको नमस्कार है, तुम त्रिनेत्र और अम्बिकानाथ हो, तुम व्यक्त और अव्यक्तस्वरूपहो और सबके विधाताहो तुम्हें नमस्कार है ॥ १०१ ॥ तुम काम, कामद और कामघ्नहो, तुम तृप्त अतृप्त और विचारयुक्तहो तुमको नमस्कार है, तुम सबके ऊपर दया करतेहो और कल्प (प्रातः) संध्याविचारीहो तुमको नमस्कार है ॥ १०२ ॥ तुम महासत्व, महाबाहु और महाबलवानहो तुमको नमस्कार है; तुम महामेघधर प्रख्य, महाकाल और महाद्युतिहो तुमको नमस्कार है ॥ १०३ ॥ तुम मेघावर्त, युगावर्त और चंद्रमाके पतिहो तुम्हें नमस्कार है; तुम अन्न, अन्नभोक्ता पक्कभुक् पावन और अनल (अग्नि) स्वरूपहो ॥ १०४ ॥ तुम जरायुज, (मनुष्य पशुआदि) अंडज (पक्षी सर्पादि) स्वेदज (कृमि दंशादि) और उद्भिज्ज (तरुलतादि) स्वरूप हो तुमको नमस्कार है, तुम देव और देवताओंके ईश्वरहो, तुम्हीं भूतग्राम (समूह) हो और चतुर्विधहो तुमको नमस्कार है ॥ १०५ ॥ तुम इस चराचर विश्वकी सृष्टिके कर्ता और पालन करनेवाले तथा संहार करनेवाले हो, विद्वान् मनुष्य तुम्हें परब्रह्म और ब्रह्मके जाननेवालोंकी गति कहते हैं ॥ १०६ ॥ तुम मनकी परमज्योतिःस्वरूप और ज्योतियोंकेभी ज्योतिस्वरूपहो, ब्रह्मवादीहो, तुमको हंस, वृक्ष और मधुकर नामसे पुकारते हैं ॥ १०७ ॥ मुनिगण तुमको यज्ञेष्टक और श्रेष्ठ कहते हैं, वेद और उपनिषद्की सहायतासे नित्य तुम्हारी स्तुतिका पाठ करते हैं ॥ १०८ ॥ तुम्हीं ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य निकृष्ट वर्णसमूहहो, तुम्हीं मेघसंघहो, तुम्हीं विद्युत्पुंज और तुम्हीं अशनिगर्जनहो ॥ १०९ ॥ तुम्हीं संवत्सर, ऋतु, मास और पक्षहो, तुम्हीं युग, नियम, काष्ठा, नक्षत्र

कृष्णाजिनोत्तरीयायहरिकेशनमोस्तुते ॥ त्र्यंबिकांबिकनाथायव्यक्ताव्यक्तायवेधसे॥ १०१ ॥ कामकामदकामघ्नतृप्तातृप्तविचारिणे ॥ नमःसर्वदयापघ्नक
ल्पसंध्याविचारिणे॥ १०२ ॥ महासत्त्वमहाबाहोमहाबलनमोस्तुते ॥ महामेघधरप्रख्यमहाकालमहाद्युते ॥ १०३ ॥ मेघावर्त्तयुगावर्त्तचंद्रार्कपतयेनमः ॥
त्वमन्नमन्नभोक्ताचपक्कभुक्पावनोऽनलः ॥ १०४ ॥ जरायुजाश्चांडजाश्चस्वेदोद्भिज्जाश्चतेनमः ॥ त्वमेवदेवदेवेशभूतग्रामश्चतुर्विधः ॥१०५॥ स्त्रष्टाचराच
रस्यास्यपाताहंतातथैवच ॥ त्वामाहुर्ब्रह्मविद्वांसःपरंब्रह्मविदांगतिः ॥ १०६ ॥ मनसःपरमंज्योतिज्योंतिस्त्वंज्योतिषामपि ॥ हंसोवृक्षोमधुकरःप्राहुस्त्वां
ब्रह्मवादिनः ॥ १०७ ॥ यज्ञेष्टकाःश्रेष्ठकश्चत्वामाहुर्मुनयस्तथा ॥ पव्यसेस्तुतिभिर्नित्यंवेदोपानिषदांगणैः ॥ १०८ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रावर्णा
वराश्चये ॥ त्वमेवमेघसंघाश्चविद्युतोऽशनिगर्जितम् ॥१०९॥ संवत्सरस्त्वमृतवोमासोमासार्धमेवच ॥ युगानिमेषाःकाष्ठाश्चनक्षत्राणिग्रहाबलाः ॥११०॥

और ग्रहसमूहहो ॥ ११० ॥ तुम्हीं वृक्षोंके बीचमें ककुभ (अर्जुनवृक्ष) गिरिवरोंके बीचमें हिमालय, मृगोंके बीचमें व्याघ्र, पक्षियोंके बीचमें गरुड़, और सर्पोंके बीचमें अनन्त (शेषनाग) हो ॥ १११ ॥ तुम्हीं सम्पूर्ण सागरके बीचमें समुद्र, यंत्रोंके बीचमें धनु, अस्त्रोंके बीचमें वज्र और व्रतोंके मध्यमें सत्य हो ॥ ११२ ॥ तुम्हीं द्वेष, इच्छा, राग, मोक्ष, क्षमा और अक्षमाहो. तुम्हीं व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजयहो ॥ ११३ ॥ तुम्हीं शरी (शर धारण करनेवाले) तुम्हीं गदी (गदा धारण करनेहारे) तुम्हीं खट्वाङ्गी (खट्वाङ्गधारी) और शरासनी (धनुषधारी) हो तुम्हीं छेत्ता (छेदन करनेवाले) भेत्ता (भेद करनेवाले) प्रहर्त्ता (प्रहार करनेवाले) मन्ता (मनन करनेवाले) नेता (नायक) और अविनाशीस्वरूप हो ॥ ११४ ॥ तुम्हीं दशलक्षणयुक्त[1] धर्म, तुम्हीं अर्थ और कामहो तुम्हीं समुद्र, सरित्, गंगा, पर्वत और सरोवरसमूह हो ॥ ११५ ॥ तुम्हीं लता और वल्लीहो, तुम्हीं सम्पूर्ण तृण और औषधी हो, तुम्हीं समस्त पशु, मृग और पक्षीस्वरूपहो तुम्हीं बड़े २ कर्मोंके गुणों (फलों) का आरंभ देनेवालेहो, तुम्हीं पुष्प और फलके देनेवाले काल हो ॥ ११६ ॥ तुम्हीं वेदोंके आदि और अन्तहो, तुम्हीं गायत्री और ओंकारस्वरूप हो तुम्हीं लोहित, हरित, नील, कृष्ण, पीत और श्वेतस्वरूप हो ॥ ११७ ॥ तुम्हीं कद्रु (कषाय) कपिल, कपोत और मेचक वर्ण हो, तुम्हीं वर्णयुक्त और वर्णहीनहो तुम्हीं कर्ता और हर्ताहो ॥ ११८ ॥ तुम्हीं इन्द्र, चंद्र, वरुण, कुबेर और अग्निहो तुम्हीं उपप्लव, सूर्य, स्वर्भानु और भानुहो ॥ ११९ ॥ तुम्हीं शिष्य, होत्र, त्रिसौपर्ण और यजुर्वेदके बीचमें शतरुद्रियहो, तुम्हीं पवित्रोंमें सबसे पवित्र और मंगलोंमें मंगल

वृक्षाणांककुभोसित्वंगिरीणांहिमवान्गिरिः ॥ व्याघ्रोमृगाणांपततांतार्क्ष्योऽनंतश्चभोगिनाम् ॥ १११ ॥ क्षीरोदोस्युदधीनांचयंत्राणांधनुरेवच ॥ वज्रं
प्रहरणानांचव्रतानांसत्यमेवच ॥ ११२ ॥ त्वमेवद्वेषइच्छाचरागोमोक्षःक्षमाक्षमे ॥ व्यवसायोधृतिर्लोभःकामक्रोधौजयाजयौ ॥११३॥ त्वंशरीत्वंगदीचा
पिखट्वांगीचशरासनी ॥ छेत्ताभेत्ताप्रहर्तासिमन्तानेतासनातनः ॥११४॥ दशलक्षणसंयुक्तोधर्मोऽर्थःकामएवच ॥ समुद्राःसरितोगंगापर्वताश्चसरांसिच ॥
॥ ११५ ॥ लतावल्ल्यस्तृणौषध्यःपशवोमृगपक्षिणः ॥ पृथुकर्मगुणारंभःकालःपुष्पफलप्रदः ॥ ११६ ॥ आदिश्चांतश्चवेदानांगायत्रीप्रणवस्तथा ॥
लोहितोहरितोनीलःकृष्णःपीतःसितस्तथा ॥ ११७ ॥ कद्रुश्चकपिलश्चैवकपोतोमेचकस्तथा ॥ सवर्णश्चाप्यवर्णश्चकर्त्ताहर्त्तात्वमेवहि ॥ ११८ ॥ त्व
मिंद्रश्चयमश्चैववरुणोधनदोनिलः ॥ उपप्लवस्तत्रभानुःस्वर्भानुर्भानुरेवच ॥ ११९ ॥ शिष्याहौत्रंत्रिसौपर्णयजुषांशतरुद्रियम् ॥ पवित्रंचपवित्राणांमं
गलानांचमंगलम् ॥ १२० ॥

---

[1] "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्" इति मनूक्तः।

स्वरूपहो ॥१२०॥ तुम्हीं तिन्दुक वृक्ष (तेंदु) गिरिज (शिलाजीत) मुद्ग (मूंग) प्राण और अखिलप्राणियोंके प्राणस्वरूपहो. तुम्हीं सत्त्व, रज, तम और प्रतिपत्पति, हो ॥ १२१ ॥ तुम्ही प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानहो, तुम्हीं उन्मेषं, निमेष क्षुत और जृम्भितहो ॥ १२२ ॥ तुम्हीं लोहितान्तर्गतदृष्टि, महावक्त्र और महोदरहो, तुम्हीं शुचिरोमहो, हरिश्मश्रु, ऊर्ध्वकेश और चलाचलहो ॥ १२३ ॥ तुम्हीं गीत, वादित्र और नृत्यज्ञ और वादित्रप्रियहो तुम्हीं मत्स्य, जाल, जलौंका कालकेलि और कलाकलिहो ॥ १२४ ॥ तुम्हीं अकाल, विकाल, दुष्काल और कालस्वरूपहो, तुम्हीं मृत्यु और मृत्युकर्ताहो तुम्हीं यज्ञ और यज्ञभयंकरहो ॥ ॥ १२५ ॥तुम्हीं संवर्तक अंतक, और संवर्तक बलाहकहो, तुम्हीं घंटा, घंटी और महाघंटीहो, तुम्हीं चरी, माली और मातलिहो ॥ १२६ ॥ तुम्हीं ब्रह्मा, काल, यम

तिंदुकोगिरिजोवृक्षोमुद्गंचाखिलजीविनाम् ॥ प्राणाःसत्त्वंरजश्चैवतमश्चप्रातिपत्पतिः ॥ १२१ ॥ प्राणोऽपानःसमानश्चउदानोव्यानएवच ॥ उन्मेषश्चनिमेषश्चक्षुतंजृंभितमेवच ॥ १२२ ॥ लोहितांतर्गतोदृष्टिर्महावक्त्रोमहोदरः ॥ शुचिरोमाहरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥ १२३ ॥ गीतवादित्रनृत्यज्ञोगीतवादित्रकप्रियः ॥ मत्स्योजालोजलौकाश्चकालकेलिःकलाकलिः ॥ १२४ ॥ अकालश्चविकालश्चदुष्कालःकालएवच ॥ मृत्युश्चमृत्युकर्त्ताचयज्ञोयज्ञभयंकरः ॥ १२५ ॥ संवर्त्तकोऽतकश्चैवसंवर्त्तकबलाहकः ॥ घंटोघंटीमहाघंटीचरीमालीचमातलिः ॥ १२६ ॥ ब्रह्मकालयमाग्नीनांदंडीमुंडीत्रिमुंडधृक् ॥ चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः ॥ १२७ ॥ चातुराश्रम्यनेताचचातुर्वर्ण्यकरस्तथा ॥ नित्यलक्षप्रियोमूर्त्तोंगणाध्यक्षोगणाधिपः ॥ १२८ ॥ रक्तमाल्यांबरधरोगिरिकोगैरिकप्रियः ॥ शिल्पीचशिल्पिनांश्रेष्ठःसर्वशिल्पप्रवर्त्तकः ॥ १२९ ॥ भगनेत्रांकुशःशंभुःपूष्णोदंतविनाशनः ॥ स्वाहास्वधावषट्कारोनमस्कारोनमोनमः ॥ १३० ॥ गूढव्रतोगुह्यतपास्तारकस्तारकामयः ॥ धाताविधातासंधातापृथिव्याधरणेपरः ॥ १३१ ॥ ब्रह्मातपश्चसत्यंचब्रतचर्यमथार्जवम् ॥ भूतात्माभूतकृद्भूतिर्भूतभव्यभवोद्भवः ॥१३२॥ भूर्भुवःस्वर्ऋतंचैवध्रुवोदंतोमहेश्वरः ॥ दीक्षितोऽदीक्षितःकांतोदुर्दांतोदांतसंभवः १३३॥

और अग्नि इनके दंडकर्ताहो,तुम्हीं मुंडी और त्रिमुंडीहो,तुम्हीं चारोंयुग चारोंवेद और चतुर्होत्रोंके प्रवर्त्तकहो ॥ १२७ ॥ तुम्हीं चारों आश्रमोंके नेता और चारों वर्णोंके प्रतिष्ठाताहो, तुम्हीं नित्य लक्षप्रिय, मूर्तिमान् गणाध्यक्ष और गणाधिप हो ॥१२८॥ तुम लालमाला और लालवस्त्रोंको धारण करतेहो, गिरि गैरिक तुम्हैं अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करते हैं, तुम शिल्पी और शिल्पीगणोंमें श्रेष्ठहो और सम्पूर्ण शिल्पोंके प्रवर्त्तकहो ॥ १२९ ॥ तुमने भगनेत्राङ्कुश, शम्भु और पूषाके दांतोंका विनाश कियाथा, तुम स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार हो तुमको नमस्कार है नमस्कार है ॥१३०॥ तुम गूढव्रत, गुप्ततप, तारक और तारकामयहो, तुम धाता, विधाता और पृथ्वीके सन्धाताहो ॥ १३१ ॥ तुम ब्रह्मा, तपस्या, सत्य, ब्रह्मचर्य और ऋजुताहो, तुम भूतात्मा, भूतकृत, भूति और भूतभव्यभवोद्भव हो ॥ १३२ ॥ तुम भूर्भुव और

स्वःस्वरूपहो । तुम ऋत, ध्रुव, दन्त और महेश्वरहो, तुम दीक्षित, अदीक्षित, कान्त, दुर्दान्त और दान्तसंभवहो॥ १ ३ ३ ॥तुम चंद्रावर्तहो, युगावर्त, संवर्त और सम्प्रवर्तकहो, तुम बिन्दुकाम, अणु, स्थूल और कर्णिकारस्रजप्रियहो ॥ १३४ ॥ तुम नंदी मुख, भीममुख, सुमुख और दुर्मुख हो, तुम्ही हिरण्यगर्भ, शकुनि महान सर्पोंके स्वामी और विराट्स्वरूपहो ॥ १३५ ॥ तुम्हीं अधर्महन्ता, महादेव, दंडधारी और गणोत्कटहो. तुम्हीं गोनर्द, गोप्रतार और गोवृषेश्वर वाहनहो ॥ १३६ ॥ तुम्हीं तीनों लोकोंके रक्षक, गोविन्द, गोमार्ग और मार्गस्वरूपहो, तुम्हीं स्थिर, श्रेष्ठ स्थाणु, विकोप और कोपस्वरूपहो ॥१३७॥ तुम्हीं दुर्वारण, दुर्विषह, दुःसह और दुरतिक्रमहो. तुम्हीं दुर्धर्ष, दुष्प्रकाश, दुर्दर्श, दुर्जय और जयस्वरूप हो ॥ १३८ ॥ तुम्हीं चंद्रमा, अग्नि, शीत, उष्ण, क्षुधा, तृष्णा, जरा और आमयहो. तुम्हीं आधि

चंद्रावर्त्तोयुगावर्त्तःसंवर्त्तःसंप्रवर्त्तकः ॥ बिंदुःकामोह्यणुःस्थूलःकर्णिकारस्रजप्रियः ॥ १३४ ॥ नंदिमुखोभीममुखःसुमुखोदुर्मुखस्तथा ॥ हिरण्यगर्भःशकु
निर्महोरगपतिर्विराट् ॥ १३५ ॥ अधर्महामहादेवोदंडधारोगणोत्कटः ॥ गोनर्दोगोप्रतारश्चगोवृषेश्वरवाहनः ॥ १३६ ॥ त्रैलोक्यगोप्तागोविंदोगोमार्गोमार्ग
एवच ॥ स्थिरःश्रेष्ठश्चस्थाणुश्चविकोपःकोपएवच ॥ १३७ ॥ दुर्वारणोदुर्विषहोदुःसहोदुरतिक्रमः ॥ दुर्द्धर्षोदुष्प्रकाशश्चदुर्दर्शोदुर्जयोजयः ॥ १३८ ॥
शशांकानलशीतोष्णक्षुत्तृषाश्चजरामयाः ॥ आधयोव्याधयश्चैवआधिहाव्याधिनाशनः ॥ १३९ ॥ समूहश्चासमूहश्चहंतादेवःसनातनः ॥ शिखंडीपुंडरी
काक्षःपुंडरीकवनालयः ॥ १४० ॥ त्र्यंबकोदंडधारश्चउग्रदंष्ट्रःकुलांतकः ॥ विषाग्र्यंयःसुरश्रेष्ठःसोमपास्त्वंमरुत्पते ॥ १४१॥ अमृताशीजगन्नाथोवेददे
वगणेश्वरः ॥ विषाग्निपाःसोमपाश्चक्षीरपाआज्यपास्तथा ॥१४२॥ मधुश्च्युतानांमधुपाब्रह्मवांस्त्वंघृतच्युतः ॥ सर्वलोकस्यभोक्तात्वंसर्वलोकपितामहः ॥
॥ १४३ ॥ हिरण्यरेताःपुरुषस्त्वमेकस्त्वंस्त्रीपुमांस्त्वंहिनपुंसकंच ॥ बालोयुवास्थविरोजीर्णदंष्ट्रस्त्वन्तोगिरिर्विश्वकृद्विश्वकर्त्ता ॥ १४४ ॥

और व्याधिहो, तुम्हीं आधिनाशक और व्याधिनाशकहो ॥ १३९ ॥ तुम समूह और असमूहहो, तुम्हीं हन्ता और सनातनस्वरूपहो, तुम्हीं शिखंडी पुंडरीकाक्ष और पुंडरीकवननिवासीहो ॥ १४० ॥ तुम्हीं त्र्यम्बक, दंडधारी, उग्रदंष्ट्र और कुलान्तकहो, तुम्हीं सुरश्रेष्ठ, सोम और मरुत्पतिहो ॥ १४१ ॥ तुम्हीं अमृताशी, जगन्नाथ, देवदेव और गणेश्वरहो, तुम्हीं विषाग्निपायी, सोमपायी, क्षीरपायी, और आज्यपायीहो ॥ १४२ ॥ तुम मधु और मधुपहो, तुम ब्रह्मवान् और घृतच्युतहो, तुम्हीं सबलोकोंकेभी भोक्ता सबलोकोंके पितामहहो ॥ १४३ ॥ तुम्हीं हिरण्यरेता और अद्वितीय पुरुषस्वरूपहो, तुम स्त्री, तुम पुरुष, तुम्हीं नपुंसकहो, तुम्हीं बालक,

युवा, वृद्ध और जीर्णदंष्ट्रहो; तुम्हीं पर्वत विश्वकृत् और विश्वकर्ताहो ॥ १४४ ॥ तुम्हीं विश्वके रचनेवालेहो, तुम्हीं वरेण्य (वरनेयोग्य) हो; विश्वके रचनेवाले सर्वदा नमनकर तुम्हारी पूजा करतेहैं; सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं, तुम अग्नि और प्रपितामहहो; और भवानी (श्रीपार्वतीजी) ही वाग्बलकी मूलभूता (जननी) सरस्वती हैं और तुम्हीं अहोरात्ररूप उन्मेष और निमेषके कर्त्ताहो ॥ १४५ ॥ हे शंकर ब्रह्मा, गोविन्द और प्राचीन ऋषिगण यह कोईभी तुम्हारे माहात्म्यको यथार्थरूपसे जाननेमें समर्थ नहीं है ॥ १४६ ॥ तुम शतसहस्र पुरुषोंमें व्याप्त होकर असीम तमके परे स्थिति करतेहो तुम्हीं गोप्ता और मन्ताहो ॥ १४७ ॥ लोकजित, श्वास और जितेन्द्रिय सत्वगणोंके अनुसारी होकर योगमार्गका आश्रय करके जिन जितेन्द्रियोंका दर्शन करतेहो वही ज्योतिःस्वरूप योगात्मा तुमहो तुमको नमस्कार करता हूं ॥ १४८ ॥ तुम्हारी जो मूर्तियें सबमें अव्यक्त हैं, इसीकारण उनके निदर्शन (दृष्टान्तसे उनका स्वरूप परिचय) करनेकी सामर्थ्य नहीं है, उन सम्पूर्ण मूर्तियोंसे पिता जैसे औरसपुत्रकी रक्षा करता है उसीप्रकार हमारी रक्षा करो ॥ १४९ ॥ हे अपापविद्ध ! मैं तुम्हारा रक्षणीय हूं, मेरी रक्षा करो तुमको नमस्कार करता हूं तुम भक्तानुकंपी भगवान्‌हो, मैं सर्वदा तुम्हारा भक्त हूं ॥ १५० ॥ तुम जटादंडी, लम्बोदर और ऋतुस्वरूपहो. तुम दीर्घजिह्वावाले और महादंष्ट्रहो और तुम्हीं रुद्रात्माहो तुमको नमस्कार है ॥ १५१ ॥ जिनके सम्पूर्ण केश मेघसमूह हैं, जिनके सर्वाङ्ग शरीरमें समस्त नदियें हैं कुक्षिके बीचमें सम्पूर्ण सागर हैं उन्हीं तोयात्माको नमस्कार है ॥ १५२ ॥ प्रलय समय उपस्थित होनेपर जो सर्व भूतोंको भक्षणकर जलके भीतर प्रवेश कर शयन करते हैं उन्हीं अम्बु जलशायीकी

त्वंवैधाताविश्वकृतोवरेण्यस्त्वांपूजयंतिप्रणताःसदैव ॥ चंद्रादित्यौचक्षुषीतेभवानीत्वमेवचाग्निःप्रपितामहश्च ॥ सरस्वतीवाग्बलमूलभूताअहोरात्रेनिमिषो
न्मेषकर्त्ता ॥१४५॥ नब्रह्मानचगोविंदःपौराणाऋषयोनते ॥ माहात्म्यंवेदितुंशक्तायाथातथ्येनशंकर ॥१४६॥ पुंसांशतसहस्राणियत्समावृत्यातिष्ठति ॥
महतस्तमसःपारेगोप्तामंताभवान्सदा ॥ १४७ ॥ यंविनिद्राजितश्वासाःसत्त्वस्थाःसंजितेंद्रियाः ॥ ज्योतिःपश्यंतियुंजानास्तस्मैयोगात्मनेनमः ॥
॥१४८॥यामूर्त्तयश्चसूक्ष्मास्तेनशक्यायानिदर्शितुम् ॥ ताभिर्मांसततंरक्षपितापुत्रमिवौरसम् ॥ १४९ ॥ रक्षमांरक्षणीयोयंतवानघनमोस्तुते ॥
भक्तानुकंपीभगवान्भक्तश्चाहंसदात्वयि ॥ १५० ॥ जटिनेदंडिनेनित्यंलंबोदरतथाक्रतो ॥ दीर्घजिह्वमहादंष्ट्रतस्मैरुद्रात्मनेनमः ॥ १५१ ॥
यस्यकेशेषुजीमूतानद्यःसर्वांगसंधिषु ॥ कुक्षौसमुद्राश्चत्वारस्तस्मैतोयात्मनेनमः ॥ १५२ ॥ संभक्ष्य सर्वभूतानियुगांतेपर्युपस्थिते ॥ यःशेतेजलमध्य
स्थस्तंप्रपद्येऽबुशायिनम् ॥ १५३ ॥

मैं शरणागत हुआहूं ॥ १५३ ॥ जो आप राहुके शरीरमें प्रवेशकर चंद्रमाको पान करते हैं, जिस आपके तेजसे सूर्यको ग्रास करनेके समयमें स्वर्भानु (राहु) की रक्षा
हुई है उन्हीं आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १५४ ॥ जो रुद्रतोकके रक्षा करनेवाले गर्भ पतित होते हैं, वे आपकी कृपासे आनंदित होते हैं, ऐसे स्वाहा स्वधाका
रूप आपको नमस्कार है ॥ १५५ ॥ जो एक अँगूठेकी बराबर आकारसे सब प्राणियोंके शरीरमें (लिंगदेहहोकर) विराजमान है वह सर्वदा हमारी रक्षा करैं,
और हमारे समीप रहैं ॥ १५६ ॥ जो सम्पूर्ण नदियोंमें, समस्त समुद्रोंमें, पर्वतोंमें, गुहाओंमें, वृक्षोंकी जडमें, गोशालाओंमें और कान्तार (दुर्गममार्ग) में गहनवनमें ॥
॥ १५७ ॥ जो चतुष्पथ (चौराहे) में रथ्या (गली) में चत्वर (मैदान वा आँगन) में और सभामें, हस्ती, अश्व; रथशालाओंमें जीर्ण (अतिप्राचीन) उद्यान(बाग)

प्रविश्यवदनंराहोर्यःसोमंपिबतेनिशि ॥ ग्रसन्नर्कंचस्वर्भानूरक्षितस्तेचतेजसा ॥१५४॥ येचानुपतितागर्भारुद्रतोकस्यरक्षिणः ॥ नमस्तेस्तुस्वधास्वाहाप्रा
प्नुवंतिमुदंतुते ॥ १५५ ॥ येंऽगुष्ठमात्राःपुरुषादेहस्थावरदेहिनाम् ॥ रक्षंतुदेहिनांनित्यंतेममाप्याययंतुवै ॥ १५६ ॥ येनदीषुसमुद्रेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥
वृक्षमूलेषुगोष्ठेषुकांतारगहनेषुच ॥१५७॥ चतुष्पथेषुरथ्यासुचत्वरेषुसभासुच ॥ हस्त्यश्वरथशालासुजीर्णोद्यानालयेषुच ॥ १५८ ॥ येचपंचसुभूतेषु
दिशासुविदिशासुच ॥ चंद्रार्कयोर्मध्यगतायेचचंद्रार्करश्मिषु ॥ १५९ ॥ रसातलगतायेचयेचतस्मात्परंगताः ॥ नमस्तेभ्योनमस्तेभ्योनमस्तेभ्यश्च
नित्यशः ॥ १६० ॥ येषांनविद्यतेसंख्याप्रमाणंरूपमेवच ॥ असंख्यायेगणारुद्रानमस्तेभ्योऽस्तुनित्यशः ॥ १६१ ॥ प्रसीदममभद्रंतेतवभावगतस्यच ॥
त्वयिमेहृदयंदेवत्वयिबुद्धिर्मतिस्त्वयि ॥१६२॥स्तुत्वैवंसमहादेवंविररामद्विजोत्तमः॥१६३॥ इति श्रीवामनपुराणेसरोमाहात्म्येसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥
सनत्कुमारउवाच ॥ अथैनमब्रवीद्देवस्त्रैलोक्याधिपतिर्भवः ॥ आश्वासनकरंचास्यवाक्यविद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

में और समस्त आयतन (मकान आदिक स्थानों) में ॥ १५८ ॥ जो पंच भूतोंमें जो पंचदिशा और विदिशाओंमें, जो चंद्रमा और सूर्यके भीतर और जो उनकी
किरणोंमें हैं ॥ १५९ ॥ जो रसातल और उसके ऊपरके देशमें स्थिति और गमन करते हैं, सर्वदा उनको नमस्कार नमस्कार और नमस्कार है ॥ १६० ॥ जिनकी
संख्या नहीं है, प्रमाण नहीं है, रूप नहीं है उन्हीं अगण्य रुद्रगणोंको सर्वदा नमस्कार है ॥ १६१ ॥ तुम हमारे ऊपर प्रसन्नहो. हे देव ! हमारा हृदय जो तुममें बँधगयाहै,
हमारी बुद्धि मानो तुममेंही आसक्तहो और हमारी मतिभी तुममेंही लगी रहै ॥ १६२ ॥ महात्मा वेन इसप्रकारसे महादेवजीकी स्तुतिकर विरागको प्राप्त हुए ॥ १६३ ॥
इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां हरस्तुतिर्नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि, त्रैलोक्याधिपति वाक्यवित् महादेवजी आश्वास जनक

शिवउवाच ॥ अहोतुष्टोस्मितेराजन्स्तवेनानेनसुव्रत ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनमत्समीपेवसिष्यसि ॥ २ ॥ उषित्वासुचिरंकालंममगात्रोद्भवःपुनः ॥ असुरोह्यंधकोनामभविष्यसिसुरांतकृत् ॥ ३ ॥ हिरण्याक्षगृहेजन्मप्राप्यवृद्धिंगमिष्यसि ॥ पूर्वाधर्मेणघोरेणवेदनिंदाकृतेनच ॥ ४ ॥ साभिलाषोजगन्मातुर्भविष्यसियदातदा ॥ देहंशूलेनहत्वाऽहंपातयिष्येसमार्बुदम् ॥५॥ तत्रापिकल्मषंत्यक्त्वादृष्ट्वामांभक्तितःपुनः ॥ ख्यातोगणाधिपोभूत्वानाम्नाभृंगिरिटिःस्मृतः ॥ ॥ ६ ॥ मत्संनिधानेस्थित्वात्वंततःसिद्धिंगमिष्यसि ॥ वेनप्रोक्तंस्तवमिमंकीर्त्तयेद्यःशृणोतिच ॥ ७ ॥ नाशुभंप्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ यथासर्वेषुदेवेषुविशिष्टोभगवाञ्छिवः ॥ ८ ॥ तथास्तवोवरिष्ठोयंस्तवानांवेननिर्मितः ॥ यशोराज्यसुखैश्वर्यधनमानार्थकांक्षिभिः ॥ ९ ॥ श्रोतव्योभक्तिभास्थायविद्याकामैश्चयत्नतः ॥ व्याधितोदुःखितोदीनश्चोरराजभयान्वितः ॥ १० ॥ राजकार्यविमुक्तोवामुच्यतेमहतोभयात् ॥ अनेनैवतुदेहेनवर्णानांश्रेष्ठतांव्रजेत् ॥ ११ ॥ तेजसायशसाचैवयुक्तोभवतिनिर्मलः ॥ नराक्षसाःपिशाचावानभूतानविनायकाः ॥ १२ ॥ विघ्नंकुर्युर्गृहेतत्रयत्रायंपठ्यतेस्तवः ॥ शृणुयाद्यास्तवंनारीअनुज्ञांप्राप्यभर्तृतः ॥ १३ ॥

प्रशस्तवचनोंसे उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे अत्यन्त संतुष्ट हुआहूं इस विषयमें अधिक कहनेका प्रयोजन क्या है, तुम मेरे निकट निवास करोगे ॥ २ ॥ बहुतकालतक निवासकर फिर मेरे गात्रसे उत्पन्न होकर अंधक नामक असुररूपसे प्रगट होगे, और देवताओंका विनाश करोगे ॥ ३ ॥ हिरण्याक्ष के घरमें जन्म लेकर बढोगे और वेदके निन्दा करनेसे पूर्व अवस्थासे कृत घोर २ अधर्मोंसे ॥ ४ ॥ जब तुम जगज्जननी पार्वतीके प्रति अभिलाषाके वश होगे, तब तुम्हारी उस देहका शूलके प्रहारसे संहारकर एक अर्बुद (अर्व) वर्ष पर्यन्त अधोगति (पिशाचादि निकृष्टयोनियों) में रक्खूंगा ॥५॥ उस निकृष्टयोनिमें रहकर मेरी भक्तिके साथ दर्शनकर तुम निष्पापहो पुनर्वार भृंगिऋषि नामसे विख्यात मेरे गणोंके अधिपति होकर ॥ ६ ॥ सर्वदा मेरे निकट रहकर शीघ्रही सिद्धिको प्राप्त होंगे, जो मनुष्य वेनके कहेहुए इस स्तोत्रको कीर्तन और श्रवण करेंगे ॥७॥ उनको किसीप्रकारकाभी अशुभ नहीं होगा, और वह दीर्घायु होंगे जैसे सम्पूर्ण देवताओंके बीचमें भगवान् शिव जी बडे हैं ॥८॥ वेनका कहाहुआ उसीप्रकारका यह स्तोत्रभी सम्पूर्ण स्तोत्रोंके बीचमें श्रेष्ठहै. यश, ऐश्वर्य, राज्य, सुख, धन और सब प्रकारके मनोरथोंको चाहनेवाले मनुष्य ॥९॥ और विद्याका अभिलाषी मनुष्य सभी भक्तिपूर्वक यत्नके साथ इसको सुने तो व्याधिग्रस्त, दीनदशाग्रस्त तथा राजभयग्रस्त ॥ १० ॥ और राजकार्यसेविमुक्त पृथक् किया गया मनुष्य इसको सुनकर महाभयोंसे छूटजाता है, और इसी शरीरसे सम्पूर्ण वर्णोंके बीचमें प्रधानताको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ अधिकन्त, तेजस्वी, यशस्वी और सर्वदा शुद्धगुणसम्पन्न होता है. राक्षसगण, भूतगण और विनायकगण ॥ १२ ॥ जिसके घरमेंभी इस स्तोत्रका पाठ होता है, वहां कोईभी विघ्न नहीं

कर सकता,जो स्त्री स्वामीकी आज्ञाको लेकर इस स्तोत्रको सुनती है॥ १३ ॥ वह देवीकी समान मातृपक्षमें और पितृपक्षमें पूजनीय होजाती है.जो मनुष्य सावधान होकर इस दिव्यस्तुतिको सुनते और पढ़ते हैं ॥ १४ ॥ उनके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होजाते हैं, इसके अतिरिक्त जो मनमें अभिलाषा करता है और मुखसे कीर्तन करता है उन सबकी अभिलाषाएँ इस स्तोत्रके कीर्तनके प्रभावसे पूर्ण होजाती हैं ॥ १५ ॥ और (सबके कीर्तनसे) कायिक, वाचिक, मानसिक तीनों पातकभी नष्ट होजाते हैं अब तुम अपनी इच्छानुसार वरको ग्रहण करो, तुम्हारा मंगल होगा ॥ १६ ॥ वेन बोले कि, हे भगवन् ! मैं इस लिंगके माहात्म्यसे और इस लिंगके दर्शनकी प्राप्तिसे आपके साक्षात्कार प्रभावसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होगयाहूं ॥ १७ ॥ हे देवेश ! यदि आप मेरे ऊपर संतुष्ट हुए हैं, यदि मुझे वर देनेकी इच्छा है, तो आपके इस

मातृपक्षेपितुःपक्षेपूज्याभवातिदेविवत् ॥ शृणुयाद्यःस्तवंदिव्यंकीर्त्तयेद्वासमाहितः ॥ १४ ॥ तस्यसर्वाणिकार्याणिसिद्धिंगच्छंतिनित्यशः ॥ मनसाचिंतितंयच्चयच्चवाचानुकीर्तितम् ॥ १५ ॥ सर्वंसंपद्यतेतस्यस्तवनस्यानुकीर्त्तनात् ॥ मनसाकर्मणावाचाकृतमेनोविनश्यति ॥ वरंवरयभद्रंतेयत्त्वयामनसेप्सितम् ॥१६॥ वेनउवाच ॥ अस्यलिंगस्यमाहात्म्यात्तथालिंगस्यदर्शनात् ॥ मुक्तोहंपातकैःसर्वैस्तवदर्शनतःकिल ॥ १७ ॥ यदितुष्टोसिदेवेशयदिदेयोवरोमम ॥ देवस्वभक्षणाज्जातंश्वयोनौतवसेवकम् ॥ १८ ॥ एतस्यापिप्रसादंत्वंकर्त्तुमर्हसिशंकर ॥ एतस्यापिभवान्मध्येसरसोहंनिमज्जितः ॥ १९ ॥ दैवैर्निवारितःपूर्वंतीर्थेस्मिन्स्नानकारणात् ॥ अयंकृतोपकारश्चएतदर्थंवृणोम्यहम् ॥ २० ॥ तस्यैतद्वचनंश्रुत्वातुष्टःप्रोवाचशंकरः ॥ एषोऽपिपापनिर्मुक्तोभविष्यतिनसंशयः ॥ २१ ॥ प्रसादान्मेमहाबाहोशिवलोकंगमिष्यति ॥ तथास्तवमिमंश्रुत्वामुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्रस्यमाहात्म्यंसरसोऽस्यमहीपते ॥ ममलिंगस्यचोत्पत्तिंश्रुत्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २३ ॥

सेवकने जो इस देवद्रव्यको भक्षण करके जो कुत्तेकी योनि प्राप्त की है ॥ १८ ॥ इसके ऊपरभी आप अनुग्रहं प्रकाश कीजिये. हे शंकर ! मैं इसीके भयसे सरके बीचमें निमज्जित हुआहूं ॥ १९ ॥ देवताओंने पहले मुझे इस तीर्थमें स्नान करनेके लिये निषेध कियाथा, परन्तु इस मनुष्यने मेरा उपकार किया है, इसी कारण मैं इस प्रकारके वरको प्रार्थना करताहूं ॥ २० ॥ महादेवजी उन वेन राजाके यह वचन सुनकर संतुष्टहो बोले कि, यह मनुष्यभी अपने पापोंसे मुक्त होगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ २१ ॥ हे महाबाहो ! मेरे प्रसादसे यह शिवलोकको प्राप्त होगा, और तुम्हारी इसस्तुतिके सुननेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगा ॥ ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कुरुक्षेत्रका माहात्म्य और इस सरोवरकी महिमा और मेरे लिंगकी उत्पत्तिको सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ २३ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि, सम्पूर्ण लोकोंके नमस्कार करनेयोग्य भगवान् इसप्रकार कहकर सबके सामने अन्तर्धान होगये ॥ २४ ॥ और वह कुत्ताभी उसी समय अपने पूर्वजन्मको स्मरणकर दिव्यमूर्तिको धारणकर राजा वेनके सन्मुख उपस्थित हुआ ॥ २५ ॥ इस ओर वेनका पुत्र स्नानकर पिताके दर्शनकी इच्छासे स्थाणुतीर्थमें स्थित उस पर्णशालमें गया, और उसको शूना देखकर अत्यन्तही शोकित हुआ ॥ २६ ॥ वेन उसे देखकर अत्यन्तही हर्षित हो कहने लगे कि, हे वत्स ! तुम हमारे सत्पुत्रहो, तुमने हमारा नरकसे उद्धार किया है ॥२७॥ इस तीर्थके पुलिन (तट) में होकर तुम्हारे हाथमें नित्य अभिषेचित होनेके प्रभावसे और स्थाणुदेवके दर्शनसे ॥ २८ ॥ मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट होगये हैं और मैं इससमय शिवलोकको जाता हूं वेनने अपने पुत्र राजा पृथुसे इतना कहकर महेश्वरकी प्रतिष्ठाकर स्थाणुतीर्थमें सिद्धि

॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वाभगवान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥ पश्यतांसर्वलोकानांतत्रैवांतरधीयत ॥२४॥ सचश्वातत्क्षणादेवस्मृत्वाजन्मपुरातनम् ॥
दिव्यमूर्त्तिधरोभूत्वातंराजानमुपस्थितः ॥ २५ ॥ कृत्वास्नानंततोवैन्यःपितृदर्शनलालसः ॥ स्थाणुतीर्थेकुटींशून्यांदृष्ट्वाशोकसमन्वितः ॥ २६॥ दृष्ट्वाब्रवी
त्ततोवाक्यंहर्षेणमहतान्वितः ॥ सत्पुत्रेणत्वयावत्सत्रातोहंनरकार्णवात् ॥ २७ ॥ त्वयाभिर्षिचितोनित्यंतीर्थस्थपुलिनेस्थितः ॥ अस्यसाधोःप्रसादेनस्था
णोर्देवस्यदर्शनात् ॥ २८ ॥ मुक्तपापश्चस्वर्लोकंयास्येयत्रशिवःस्थितः ॥ इत्येवमुक्त्वाराजानंप्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ २९ ॥ स्थाणुतीर्थेययौसिद्धिंते
नपुत्रेणतारितः ॥ सचश्वापरमांसिद्धिंस्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥ ३० ॥ विमुक्तःकलुषैःसर्वैर्जगामभवमंदिरम् ॥ राजापितृऋणैर्मुक्तःपरिपाल्यवसुंधराम् ॥
॥ ३१ ॥ पुत्रानुत्पाद्यधर्मेणकृत्वायज्ञंनिरर्गलम् ॥ दत्त्वाकामांश्चविप्रेभ्योभुक्त्वाभोगान्पृथग्विधान् ॥ ३२ ॥ सुहृदोद्रविणैर्युक्तान्कामैःसंतर्प्यचस्त्रियः ॥
अभिषिच्यसुतंराज्येकुरुक्षेत्रंययौनृपः ॥ ३३ ॥ तत्रतप्त्वातपोघोरंपूजयित्वाचशंकरम् ॥ आत्मेच्छयाततुंत्यक्त्वाप्रयातःपरमंपदम् ॥३४॥ एतत्प्रभावंती
र्थस्यस्थाणोर्यःशृणुयान्नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःप्रयातिपरमांगतिम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

प्राप्त की और पुत्रके द्वारा उद्धार हुए, वह कुत्ताभी स्थाणुतीर्थके प्रभावसे परमसिद्धिको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ और सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर शिवलोकको गया, राजा पृथुभी पितृऋणसे मुक्तहोकर पृथ्वीका पालनकर ॥ ३० ॥ अनेक पुत्रोंको उत्पादनकर और धर्मानुसार निर्विघ्नतासे यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको इच्छानुसार दानदे विविध प्रकारके भोगोंको भोगकर ॥ ३१ ॥ मित्रोंको द्रव्यदान और स्त्रियोंको परमप्रीति विधानकर पुत्रको राज्यपदपर अभिषिक्तकर राजा कुरुक्षेत्रको चलेगये ॥ ३२ ॥ वहां जा घोर तपस्याकर शंकरकी आराधना करते हुए अपनी इच्छानुसार शरीरको त्यागकर परमपदको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य स्थाणुतीर्थके इसप्रभावको सुनते हैं वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां स्थाणुतीर्थप्रभावानुकीर्तनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

श्रीमान् मार्कंडेयजी बोले कि, हे अनघ ! मेरे निकट ब्रह्माजीकी उत्पत्ति और पृथ्वीश्वरोंके जन्मकी कथा विस्तारसहित वर्णन कीजिये, इनके सुननेके लिये मुझे अत्यन्तही अभिलाषा हुई है ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि, हे अनघ ! पद्मजन्मा ब्रह्माजीको सृष्टिकी इच्छा होनेपर जो हुआ था वह मैं विस्तारसहित कहताहूं श्रवण करो ॥ २ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजीने स्थावर और जंगमके भेदसे सब प्रकारके प्राणियोंकी सृष्टि की ॥ ३ ॥ फिर पुनर्वार वह सृष्टिकी चिन्ता करनेलगे, तब एक कन्या उत्पन्न हुई, यह कन्या सबके मनको हरण करनेवाली और नीले कमलकी पखुडियोंकी समान श्याम वर्ण उसका मध्यदेश क्षीण और दोनोंनेत्र अत्यन्त सुन्दर थे ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने उस मनोरमणी कन्याको देखकर मैथुनके अर्थ उसे बुलाया, उसी महापापसे उनका शिर छिन्न होगया ॥ ५ ॥ वह उसी

मार्कंडेयउवाच ॥ चतुर्मुखानामुत्पत्तिविस्तरेणममानघ ॥ पृथ्वीश्वराणांचतथाश्रोतुमिच्छाप्रवर्त्तते ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुसर्वमशेषेणकथ
यिष्यामितेनघ ॥ ब्रह्मणःस्रष्टुकामस्ययद्वृत्तंपद्मजन्मनः ॥ २ ॥ उत्पन्नएवभगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ससर्जसर्वभूतानिस्थावराणिचराणिच ॥ ३ ॥
पुनश्चिंतयतःसृष्टिंजज्ञेकन्यामनोरमा ॥ नीलोत्पलदलश्यामातनुमध्यासुलोचना ॥ ४ ॥ तांदृष्ट्वाभिमतांब्रह्मामैथुनायाजुहावताम् ॥ तेनपापेनमहता
शिरोशीर्यंतवेधसः ॥५॥ तेनशीर्णेनसययौतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ सान्निहत्यंसरःपुण्यंसर्वपापक्षयावहम् ॥६॥ तत्रपुण्येस्थाणुतीर्थेऋषिसिद्धनिषेविते ॥
सरस्वत्युत्तरेतीरेप्रतिष्ठाप्यचतुर्मुखः ॥ ७ ॥ आराधयामासतदाधूपैर्गंधैर्मनोरमैः ॥ उपहारैस्तथाहृद्यैरुद्रसूक्तैर्दिनेदिने ॥ ८ ॥ तस्यैवंभक्तियुक्तस्य
शिवपूजारतस्यच ॥ स्वयमेवाजगामाथभगवान्नीललोहितः ॥ ९ ॥ तमागतंशिवंदृष्ट्वाब्रह्मालोकपितामहः ॥ प्रणम्यशिरसाभूमौस्तुतिंतस्यचकारह ॥
॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्तेस्तुमहादेवभूतभव्यभवाश्रय ॥ नमस्तेस्तुतिनित्यायनमस्त्रैलोक्यपालिने ॥ ११ ॥ नमःपवित्रदेहायसर्वकल्मषनाशिने ॥
चराचरगुरोगुह्यगुह्यानांचप्रकाशकृत् ॥ १२ ॥

छिन्नशिरसे त्रिलोकीमें विख्याततीर्थको गये, इसतीर्थका नाम सन्निहत्यसर था, यह परमपवित्र और सबपापोंका नाश करनेवाला है ॥ ६ ॥ वह उसी ऋषि और सिद्धोंसे सेवित स्थाणुतीर्थमें सरस्वतीके उत्तरकिनारे महादेवजीकी प्रतिष्ठाकर ॥ ७ ॥ मनोहर, धूप, हृदयहारी उपहार और रुद्रसूक्तद्वारा प्रतिदिन उनकी पूजा करनेलगे ॥ ८ ॥ उनके इसप्रकार शिवजीकी पूजामें रत होनेसे भगवान् नीललोहित (महादेवजी) स्वयं आकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजी शिवजीको सन्मुख आया हुआ देखकर मस्तक झुकाय प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे महादेव ! तुम भूत, भविष्यत् और वर्तमानके आश्रयहो तुमको नमस्कार है, तुम्हारी स्तुति नित्य है तुमको नमस्कार है, तुम त्रिलोकीके पालन कर्ताहो तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ तुम पवित्र देहयुक्त और

सम्पूर्ण पापोंका नाश करतेहो, तुम स्थावर जंगमके गुरुहो और गुप्त आगमों (तंत्रमंत्रों) को प्रकाश कर्ताहो तुमको नमस्कार है ॥१२॥ जो रोग वैद्योंकी चिकित्सासेभी नहीं जासकते, आप उन सबप्रकारके रोगोंको विनाश करतेहो, तुम मृगचर्मको ओढ़नेवाले और वीतशोक (शोकरहित) हो तुमको नमस्कार है ॥ १३ ॥ तुम जलकी तरंगोंसे क्षुब्ध (हलचल) समुद्रकी तरह अपार महाबुद्धिके विघट्टन (संक्षोभ) होताहै जिसमें ऐसे अपार बुद्धिवैभवहो, हे देव ! तुम्हारे नामका जप करनेसे फिर संसारमें जन्म लेना नहीं होता ॥ १४ ॥ तुम नित्यस्वरूप और त्रिलोकीके नाश कर्ताहो तुमको नमस्कार है, तुम शंकर और अप्रमेयस्वरूप और सम्पूर्ण व्याधियोंको नाश करतेहो ॥ १५ ॥ तुम पर और अपरमेय और सब भूतोंके प्रियहो, तुम योगेश्वर दिव्यमूर्ति और सबपापोंके विनाशकर्ता हो तुमको नमस्कार है ॥१६॥तुम स्थाणु, प्रसिद्ध और सिद्धगणरूपी बन्दीस्तुतहो तुमको नमस्कार है, तुम भूत (प्राणी) संसारके दुर्गस्वरूप और विश्वस्वरूप हो तुमको नमस्कार है ॥

रोगानयांतिभिषजैःसर्वरोगविनाशन ॥ रौरवाजिनसंवीतवीतशोकनमोस्तुते ॥ १३ ॥ वारिकल्लोलसंक्षुब्धमहाबुद्धिविघट्टन ॥ त्वन्नामजापिनोदेवनभवंतिभवाश्रयाः ॥ १४ ॥ नमस्तेनित्यनित्यायनमस्त्रैलोक्यनाशिने ॥ शंकरायाप्रमेयायव्याधीनांशमनायच ॥ १५॥ परायापरिमेयायसर्वभूतप्रियायच ॥ योगेश्वरायदेवायसर्वपापक्षयायच ॥ १६ ॥ नमःस्थाण्वेप्रसिद्धायसिद्धवंदिस्तुतायच ॥ भूतसंसारदुर्गायविश्वरूपायतेनमः ॥१७॥ फणींद्रोक्तमहिम्नेतेफणींद्रांगदधारिणे ॥ फणींद्रवरहारायभास्करायनमोनमः ॥ १८॥ एवंस्तुतोमहादेवोब्रह्माणंप्राहशंकरः ॥ नचमन्युस्त्वयाकार्योभाविन्यर्थेकदाचन ॥ १९ ॥ पुरावाराहकल्पेतेयन्मयापकृतंशिरः ॥ चतुर्मुखंचतदभून्नकदाचिन्नशिष्यति ॥ २० ॥ अस्मिन्सन्निहितेतीर्थेलिंगानिममभक्तितः ॥ प्रतिष्ठाप्यविमुक्तस्त्वंसर्वपापैर्भविष्यसि॥ २१ ॥ सृष्टिकामेनचत्वयायतोहंप्रेरितःकिल ॥ तेनाहंत्वांतथेत्युक्त्वाभूतेभ्योदर्शनंगतः ॥ २२ ॥ दीर्घकालंतपस्तप्त्वामग्नःसंनिहतेस्थितः ॥ सुमहांततःकालंत्वंप्रतीक्षांममाकरोः ॥ २३ ॥

॥ १७ ॥ तुम फणीन्द्र शेषनागसे उक्त (कहेगये) महिमाओंसे मुक्त और फणीन्द्रहींके अंगद (जोशन) धारण करतेहो, तुम भास्कररूप और फणीन्द्र (वासुकि) रूपी श्रेष्ठहारसे भूषित हो तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीके इसप्रकार स्तुति करनेपर महादेवजी उनसे बोले कि, हे ब्रह्मन् ! भावी अर्थके विषय तुमको कदापि क्रोध करना उचित नहीं ॥ १९ ॥ मैंने पहले वाराहकल्पमें तुम्हारे मस्तकको जो छेदन किया था इसीसे तुम चतुर्मुख हुए हो, यह (चतुर्मुखस्वरूप) कभी नष्ट नहीं होगा ॥ २० ॥ इस सन्निहततीर्थमें भक्तिपूर्वक मेरे लिंगोंकी प्रतिष्ठा करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाओगे ॥ २१॥ तुमको सृष्टिकी इच्छासे हमने भेजा था इसीकारण हमने तुम्हारे वचनोंपर सम्मतहो भूतादिकोंसे अदर्शनको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ तब दीर्घकालसे तपस्या करके इस सन्निहत (सर) में मग्न हुए, इसी

कारणसे तुमने चिरकालतक हमारी प्रतीक्षा की ॥ २३ ॥ और सबप्रकारके प्राणियोंको रचनेवाले मेरे (रूप) को मनसे कल्पना किया है, तब वह (कल्पितपुरुष) मुझको जलमें मग्न देखकर तुमसे बोला ॥ २४ ॥ कि, जो मेरेसे अग्रज और कोई नहींहो तौ मैं सृष्टि रचूंगा। तब तुमने कहाथा कि, तुमसे पहले और किसी पुरुषने आगे जन्म नहीं लिया है ॥ २५ ॥ इससमय यह स्थाणुजलमें मग्न होगये हैं, इससे मैं विवश होगयाहूं, इसकारण तुम मेरा उपकार करो, तब उन देवने सबभूतों (प्राणियों) की और दक्षादिप्रजापतियोंकी सृष्टि की ॥ २६ ॥ उन प्रजापतियोंकेद्वारा इन (स्वेदज-अण्डज-उद्भिज्ज-जरायुज भेदसे) चारप्रकारके भूतोंकी सृष्टि कीथी, इस सम्पूर्ण प्रजाके सृजतेही क्षुधित होकर सभी प्रजापतिको ॥ २७ ॥ भक्षण करनेके लिये दौडी, तब वह उन प्रजाओंसे भक्षित होतेहुए, छुटकारा पानेकी इच्छासे (पितामह तुम) के समीप जाकर बोले ॥ २८ ॥ कि, अब इस सम्पूर्ण प्रजाका आजीव विधान कीजिये. यह वचन

स्रष्टाहंसर्वभूतानांमनसाकल्पितस्त्वया ॥ सोब्रवीत्त्वांतदादृष्ट्वामांमग्नंचततोंभसि ॥ २४ ॥ यदिनैवाग्रजस्त्वेभ्यस्ततःस्रक्ष्यामहेप्रजाः ॥ त्वयैवोक्तश्चनैवास्तित्वदन्यःपुरुषोग्रजः ॥ २५ ॥ स्थाणुरेषजलेमग्नोविवशःकुरुमद्धितम् ॥ ससर्वभूतानसृजद्दक्षादींश्चप्रजापतीन् ॥ २६ ॥ यैरिमंप्राकरोत्सर्वभूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ताःसृष्टमात्राःक्षुधिताःप्रजाःसर्वाःप्रजापतिम् ॥ २७ ॥ जिघत्सवस्तदाब्रह्मन्सहसाप्राद्रवंस्तदा ॥ संभक्ष्यमाणस्त्राणार्थीपितामहमुपाद्रवत् ॥ ॥ २८ ॥ अथासांचमहावृत्तिःप्रजानांसंविधीयताम् ॥ दत्तंताभ्यस्त्वयाह्यन्नंस्थावराणांमहौषधीः ॥ २९ ॥ जंगमानिचभूतानिदुर्बलानिबलीयसाम् ॥ विहितान्नाःप्रजाःसर्वाःपुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ ३० ॥ ततोववृधिरेसर्वाःप्रीतियुक्ताःपरस्परम् ॥ भूतग्रामेविवृद्धेतुतुष्टेलोकगुरौत्वयि ॥ ३१ ॥ समुत्तिष्ठञ्जलात्तस्मात्प्रजाःसंदृष्टवानहम् ॥ ततोऽहंताःप्रजादृष्ट्वाविहिताःस्वेनतेजसा ॥ ३२ ॥ क्रोधेनमहतायुक्तोलिंगमुत्पाट्यचाक्षिपम् ॥ तत्क्षिप्तंसरसोमध्येऊर्ध्वमेवयदास्थितम् ॥ ३३ ॥ तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिन्स्थाणुरित्येषविश्रुतः ॥ सकृद्दर्शनमात्रेणविमुक्तःसर्वकिल्बिषैः ॥ ३४ ॥

सुनकर (तुम) उन प्रजाओंको अन्न भक्ष देकर, जैसे औषधियें स्थावरों (वृक्षपर्वतादिकों) के भोजन हुईं ॥ २९ ॥ और जंगमों (मनुष्यादिकों) में दुर्बल-बलवान् का भोजन हुआ, इसीप्रकार अपना २ अन्न विधान करके सभी यथा स्थानके चली गईं ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त वह सब परस्पर प्रीतियुक्त होकर बढने लगे इस सबप्रजाको अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होते हुए और इसीकारणसे लोकोंके गुरु तुम्हारे प्रसन्न होनेपर ॥ ३१ ॥ मैंने उसजलमेंसे उठकर सम्पूर्ण प्रजाको देखा कि, मेरेही तेजसे वह निर्माण कीगई है उसको देखकर ॥ ३२ ॥ मैंने अत्यन्तही क्रोधित हो लिंगको उखाडकर फेंका इसलिंगने सरके बीचमें गिरकर ऊर्द्ध्वमुख होकर जब स्थित हुआ तभीसे उसका नाम संसारमें स्थाणु (अर्थात्-स्थिर) करके विख्यात हुआ और एकबार स्थाणुका दर्शन करतेही सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाते हैं॥ ३३ ॥ ३४ ॥

और जिससे पुनर्वार संसारमें जन्म नहीं उसी प्रकारकी मुक्ति प्राप्त होती है,जो मनुष्य कृष्णपक्षकी अष्टमीको आकर इसतीर्थमें निवास करता है ॥ ३५ ॥ वह अगम्यागम्य जनित सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाता है, यह कहकर भगवान् भव (महादेव जी) उसीस्थानमें अन्तर्धान होगये ॥ ३६ ॥ इस ओर ब्रह्माजीभी पापसे मुक्त होकर चतुर्मुखकी आराधनाकर उससरोवरके बीचमें देवाधिदेव चतुर्मुख शिवजीके (लिंगसे चिह्नितस्थानों) को सृजते हुए ॥ ३७ ॥ उनमेंसे पहला "ब्रह्मसर" है वह परमपवित्र है जो कि, हरि भगवान्के पार्श्व (पृष्ठ) भागमें प्रतिष्ठित है, दूसरा "ब्रह्मसदन" उनका लिङ्गाङ्कितस्थान अपने आश्रममें बनाया ॥ ३८ ॥ उसीके पूर्वभागमें तीसरा उनकालिंग स्थापित किया, चतुर्थलिंगको सरस्वतीके किनारे स्थापित किया ॥ ३९ ॥ उनके द्वारा यह परमपवित्र और सबके पवित्रता

प्रयातिपरमंमोक्षंयस्मान्नावर्त्ततेपुनः ॥ यश्चेहतीर्थेनिवसेत्कृष्णाष्टम्यांसमाहितः ॥ ३५ ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैरगम्यागमनोद्भवैः ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देवस्तत्रैवांतरधीयत ॥ ३६ ॥ ब्रह्माविशुद्धपापस्तुपूज्यदेवंचतुर्मुखम् ॥ लिंगानिदेवदेवस्यससृजेशरमध्यतः ॥ ३७ ॥ आद्यंब्रह्मसरःपुण्यंहरेःपार्श्वेप्रतिष्ठितम् ॥ द्वितीयंब्रह्मसदनंस्वकीयेह्याश्रमेकृतम् ॥ ३८ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागेतृतीयंचप्रतिष्ठितम् ॥ चतुर्थंब्रह्मणोलिंगंसरस्वत्यास्तटेस्थितम् ॥३९॥ कृतमेतानितीर्थानिपुण्यानिपावनानिच ॥ येपश्यंतिनिराहारास्तेयांतिपरमांगतिम् ॥ ४० ॥ कृतेयुगेहरेःपार्श्वेत्रेतायांब्रह्मणाश्रमे ॥ द्वापरेतस्यपूर्वेणसरस्वत्यास्तटेकलौ ॥ ४१ ॥ एतानिपूजयित्वातुदृष्ट्वाभक्तिसमन्विताः ॥ विमुक्ताःकलुषैःसर्वैःप्रयांतिपरमांगतिम् ॥ ४२ ॥ सृष्टिकालेभगवतापूजितस्तुमहेश्वरः ॥ सरस्वत्युत्तरेतीरेनाम्नाख्यातश्चतुर्मुखः ॥ ४३ ॥ तंपूजयित्वायत्नेनसोपवासोजितेंद्रियः ॥ अगम्यागमनैर्दोषैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ॥ ४४ ॥ ततस्त्रेतायुगेप्राप्तेस्थाणोर्देवसमीपतः ॥ पूजितंसुमहल्लिंगंतत्रापिचचतुर्मुखम् ॥ ४५ ॥

जनक तीर्थ निर्मित हुए, जो निराहार होकर इनसबका दर्शन करते हैं उनको परमगति प्राप्त होती है ॥ ४० ॥ सत्ययुगमें हरिके पार्श्वमें, त्रेतामें ब्रह्माजीके आश्रममें, द्वापरमें उसके पूर्वभागमें, कलियुगमें सरस्वतीके किनारे प्रतिष्ठित तीर्थ सेवनीय है ॥ ४१ ॥ भक्तिके सहित इन सबलिंगोंकी पूजा और दर्शन करनेसे सबपापोंसे छूटकर परमपदको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ सृष्टिके समय सतयुगमें भगवान् पितामह ब्रह्माजीने सरस्वतीके उत्तरकिनारे चतु र्मुख नामसे विख्यात महेश्वरकी पूजा की थी ॥ ४३ ॥ जितेन्द्रिय और उपवासी होकर उनकी पूजा करनेसे अगम्यागम्यजनित सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त जब त्रेतायुग प्राप्त हुआ तब ब्रह्माजी स्थाणुदेवके समीप चतुर्मुख शिवजीके अतिविशाल लिंगका पूजन करते हुए ॥ ४५ ॥

श्रद्धायुक्त होकर उनको प्रणाम करनेसे प्राणी सबप्रकारके पापोंसे मुक्त होता है, वह लिंगलीला शंकरसंभूत, भानुशंकर नामसे विख्यात है॥४६॥ इसके उपरान्त द्वापर
युगके आनेपर वैसेही अपने आश्रममें स्थित श्रद्धासहित शंकरकी पूजा करनेसे वर्णसंकर संभूत राजभावसे मुक्त होगये ॥ ४७ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको उनकी
पूजा करनेसे मनुष्यका अभोजनीय अन्नभक्षण करनेके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ॥४८॥ इसके उपरान्त कलिकालके आनेपर वसिष्ठाश्रममें स्थित होकर चतुर्मुखकी
स्थापना करनेसे परमोत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ इनमें जो मनुष्य विशेष रूपसे आहारको त्यागकर जितेन्द्रियहो श्रद्धासहित महादेवजीकी पूजाकरते हैं
उनको शीघ्रही परमपद प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ मैंने तुम्हारे निकट इस स्थाणुतीर्थके माहात्म्यको कहा, मनुष्य इसके सुननेसे समस्तपापोंसे मुक्त होजाता है ॥५१॥

तंप्रणम्यश्रद्दधानोमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः॥ लीलाशंकरसंभूतंतथावैभानुशंकरम् ॥ ४६ ॥ तथैवद्वापरेप्राप्तेस्वाश्रमेप्राच्यशंकरम् ॥ विमुक्तोराजसैर्भावैर्वर्ण
संकरसंभवैः ॥ ४७ ॥ ततःकृष्णचतुर्दश्यांपूजयित्वातुमानवः ॥ विमुक्तःपातकैःसर्वैरभोज्यस्यान्नसंभवैः ॥ ४८ ॥ कलिकालेतुसंप्राप्तेवसिष्ठाश्रममा
स्थितः ॥ चतुर्मुखंस्थापयित्वाययौसिद्धिमनुत्तमाम् ॥ ४९ ॥ तत्रापियेनिराहाराश्रद्दधानाजितेंद्रियाः ॥ पूजयंतिमहादेवंतेयांतिपरमंपदम् ॥ ५० ॥
इत्येतत्स्थाणुतीर्थस्यमाहात्म्यंकीर्त्तितंतव ॥ तच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुक्तोभवतिमानवः ॥ ५१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये एकोनपञ्चाशत्तमो
ऽध्यायः ॥ ४९ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ततोब्रवीद्देववरस्तुतीर्थंयस्माद्भवानेकतयाप्रयाति ॥ पृथूदकेत्येवचनामतुभ्यंभविष्यतेतीर्थवरःपृथिव्याः ॥ १ ॥
एवंपृथूदकंदेवाःपुण्यंपापभयापहम्॥ तंगच्छध्वंमहातीर्थंयाचिष्यंतोनिबोधथ ॥ २ ॥ यदामृगशिरोऋक्षेशशिसूर्यौबृहस्पतिः ॥ तिष्ठंतिसातिथिःपूर्वा
त्वक्षयापरिगीयते ॥ ३ ॥ तद्गच्छध्वंसुरश्रेष्ठायत्रप्राचीसरस्वती ॥ पितृनाराधयध्वंचतत्रश्राद्धेनभक्तितः ॥ ४ ॥

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां स्थाणुतीर्थमाहात्म्य वर्णनं नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥
सनत्कुमारजी बोले कि, इसके उपरान्त देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवजी उस तीर्थसे बोले कि, जिसकारण तुम एकताके साथ प्रयाण करतेहो उसी कारण पृथूदक
नामसे विख्यात पृथ्वीमें प्रधानतीर्थ होगे ॥ १ ॥ हे देवताओ ! इसप्रकार पृथूदक जैसे परमपवित्र है उसीप्रकारसे सब प्रकारके पापोंको नष्ट करता है, तुम्हारे इस महा
तीर्थमें जाकर जिसप्रकारकी वांछा करैगा उसे सुनिये ॥ २ ॥ जिस समय चंद्रमा सूर्य और बृहस्पति मृगशिर नक्षत्रमें आवें उस समय वह तिथि अक्षय नामसे
परिगणित होती है ॥ ३ ॥ इसकारण हेसम्पूर्ण देवताओ ! जहां सरस्वती प्राचीमुखी हुई हैं, वहां जाकर भक्तिसहित श्राद्धकर पितरोंकी आराधना करो ॥ ४ ॥

इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता मुरारी (विष्णुभगवान्) के यह वचन सुनकर पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्र पृथूदकमें पहुँचे ॥ ५ ॥ वहां जा स्नानकर सब जने बृहस्पतिजीसे बोले कि, हे भगवन् ! विवस्वन् ! आप मृगशिर नक्षत्रको पापहारिणी और पुण्यजननी तिथिरूपमें विहित कीजिये ॥ ६ ॥ आपका समय उपस्थित हुआ है, सूर्य वहां विराजमान हैं, चंद्रमानेभी प्रवेश किया है ॥ ७ ॥ हे गुरो ! देवताओंका यह कार्य आपहीके अधीन है, इसकारण उसको आप कीजिये, देवगुरु बृहस्पतिजी देवताओंसे इसप्रकार कहे जाकर बोले ॥ ८ ॥ कि, हे देवताओ ! जो मैं वर्षाधिपति होजाऊंगा तौ ऐसा अवश्य करूंगा, देवता इस नियमपर सम्मत हुए तौ उन्होंनें मृगशिरको संक्रमण किया ॥ ९ ॥ इसमें आषाढ़के महीनेमें मृगशिर नक्षत्रमें जो चंद्रक्षय तिथि उपस्थित हुई इन्द्रने प्रसन्नहो

ततोमुरारिवचनंदृष्ट्वादेवाःसवासवाः ॥ समाजग्मुःकुरुक्षेत्रेपुण्यंतीर्थंपृथूदकम् ॥५॥ तत्रस्नात्वासुराःसर्वैबृहस्पतिमचोदयन् ॥ विवस्वन्भगवन्नृक्षमिदं
मृगशिरःकुरु ॥ ६ ॥ पुण्यांतिथिंपापहरांतवकालोऽयमागतः ॥ प्रवर्त्ततेरविस्तत्रचंद्रमापिविशत्यसौ ॥ ७ ॥ तवायत्तंगुरोकार्यंसुराणांतत्कुरुष्ववः ॥
इत्येवमुक्तोदेवैस्तुदेवाचार्योऽब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥ यदिवर्षाधिपोऽहंस्यांततोयास्यामिदेवताः ॥ बाढमूचुःसुराःसर्वेततोऽसौप्राक्रमन्मृगम् ॥ ९ ॥ आषाढेमा
सिमार्गर्क्षेचंद्रक्षयतिथिर्हिया ॥ तस्यांपुरंदरःप्रीतःपिंडंपितृषुभक्तितः ॥ १० ॥ प्रादात्तिलमधून्मिष्टंहविष्यान्नंकुरुष्वच ॥ ततःप्रीतास्तुपितरस्तां
प्राहुस्तनयांनिजाम् ॥ ११ ॥ मेनांदेवाश्चशैलायहिमयुक्तायवैददुः ॥ तांमेनांहिमवाँल्लब्ध्वाप्रमादाद्दैवतेष्वथ ॥ प्रीतिमानभवच्चासौरेमेसतुयथेच्छया ॥
॥ १२ ॥ ततोहिमाद्रिःपितृकन्ययासमंसंतर्पयन्वैविषयान्यथेष्टम् ॥ अजीजनत्सातनयाश्चतिस्रोरूपातियुक्ताःसुरयोषितस्तु ॥१३॥ इति श्रीवामनपुराणे
उमासंभवेकुरुक्षेत्रमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ मेनायांकन्यकास्तिस्रोजातारूपगुणान्विताः ॥ सुनाभइतिचख्यातश्चतु
र्थस्तनयोभवत् ॥ १ ॥ रक्तांगीरक्तनेत्राचरक्तांबरविभूषिता ॥ रागिणीनामसंजाताज्येष्ठामेनासुतामुने ॥ २ ॥

भक्तिसहित उसीसमय पितरोंके निमित्त हविष्यान्न भोजनपूर्वक तिलमिश्रित मधुमिश्रित पिंडप्रदान किया, तब पितृगणोंने प्रसन्न होकर अपने तनयाको प्रदान किया ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ देवताओं ने हिमालयके हाथमें उनको स्त्रीरूपसे दान किया, हिमालय देवताओंके प्रसादसे उसे पाकर उनके प्रति प्रसन्न होकर विहार करने लगा ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त वह हिमालय पितृकन्या मेनाके सहित इच्छानुसार विषयको भोगकर अत्यन्त प्रसन्न हुए मेनाने इसी समयमें उनके सहवाससे अत्यन्तही सौन्दर्यशालिनी तीन कन्याओंको उत्पन्न किया, वह सबसे सुन्दरी स्त्री हुईं ॥ १३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां कुरुक्षेत्रमाहात्म्यं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, मेनाके गर्भसे रूपगुणसम्पन्न तीन कन्या और सुनाभ नामसे विख्यात एक पुत्रने जन्म ग्रहण किया ॥ १ ॥ इनमेंसे मेनाकी बडीकन्याका

नाम रागिणी था, इसका अंग लालवर्णका था, नेत्रभी लालवर्णके थे और यह वस्त्रभी लालवर्णके धारण करती थी ॥ २ ॥ दूसरी कन्याका नाम कुटिला था, इसका वर्ण अत्यन्तही गौर था, दोनों नेत्र कमलके पत्रकी समान थे, बालघूँघरवाले और नीले थे, और वह श्वेतवर्णकी माला तथा श्वेतही वर्णके वस्त्रोंको धारण करती थी ॥ ३ ॥ मेनाकी तीसरी कन्याका नाम काली था इसके वर्ण नीलेअंजनके ढेरकी समान और दोनों नेत्र नीलेकमलकी समान थे, और सम्पूर्णरूपोंमें उसकी उपमा नहीं होसकती है, वह इसप्रकार रूपवाली थी ॥ ४ ॥ हे मुने ! यह तीनों कन्या छैः वर्षकी अवस्थासे पहलेही तपस्या करनेके निमित्त चली गईं, तब देवताओंने इन सुन्दर लक्षणयुक्त कन्याओंको देखा ॥ ५ ॥ तब द्वादश आदित्य और आठों वसु उस चंद्रमाकी समान कान्तिवाली कुटिला नामकी तपस्विनीको ब्रह्मलोकमें लेगये ॥ ६ ॥ और लेजाकर सम्पूर्ण देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा कि, यह क्या महिषासुरके मारनेवाले पुत्रको उत्पन्न करैगी सो आप कहिये ॥ ७ ॥ सुरपति

शुभांगीपद्मपत्राक्षीनीलकुंचितमूर्धजा ॥ श्वेतमाल्यांबरधराकुटिलानामचापरा ॥ ३ ॥ नीलांजनचयप्रख्यानीलेंदीवरलोचना ॥ रूपेणानुपमाकालीजघन्यामेनकासुता ॥ ४ ॥ जातास्ताःकन्यकास्तिस्रःषडब्दात्पुरतोमुने ॥ कर्त्तुंतपःप्रयाताश्चदेवास्तादद्दशुःशुभाः ॥ ५ ॥ ततोदिवाकरैःसर्वैर्वसुभिश्चतपस्विनी ॥ कुटिलाब्रह्मलोकंतुनीताशशिकरप्रभा ॥ ६ ॥ अथोचुर्देवताःसर्वाःकिंत्वियंजनयिष्यते ॥ पुत्रंमहिषहंतारंब्रह्मन्व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥ ततोब्रवीत्सुरपतिर्नैयंशक्तातपस्विनी ॥ शार्वंधारयितुंतेजोवराकीमुच्यतांत्वियम् ॥ ८ ॥ ततस्तुकुटिलाक्रुद्धाब्रह्माणंप्राहनारद ॥ तथायतिष्येभगवन्यथाशार्वंसुदुर्द्धरम् ॥ ९ ॥ धारयिष्याम्यहंतेजस्तथैवशृणुसत्तम ॥ तपसाहंसुतप्तेनसमाराध्यजनार्द्दनम् ॥ १० ॥ यथाहरस्यमूर्धानंनमयिष्येपितामह ॥ तथादेवकरिष्यामिसत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ ११ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततःपितामहःक्रुद्धःकुटिलांप्राहदारुणाम् ॥ भगवानादिकृद्ब्रह्मासर्वेशोपिमहामुने ॥ ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यस्मान्मद्वचनंपापेनक्षांतंकुटिलेत्वया ॥ तस्मान्मच्छापनिर्दग्धासर्वास्वापोभविष्यसि ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले कि, यह तपस्विनी शंभुके तेजको धारण नहीं करसक्ती है, इसकारण इस कन्याको छोडदो ॥ ८ ॥ हे नारद ! तब वह कुटिला क्रोधित होकर ब्रह्माजीसे बोली कि, हे भगवन् ! मैं ऐसा यत्न करूंगी जिससे शंभुके दुर्धर्ष ॥ ९ ॥ तेजको धारण करसकूंगी, हे सत्तम ! (देवश्रेष्ठ) सुनिये मैं पुनर्वार घोर तपस्यासे भगवान् जनार्दनकी आराधना करके ॥ १० ॥ जिससे महादेवजीके मस्तकको अवनत करनेमें समर्थ हूं, हे पितामह ! मैं सत्यही सत्य कहती हूं कि, उसी प्रकारका कार्य करूंगी ॥ ११ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे महामुने ! सबके पितामह ईश्वर और आदिकृत सबके ईश (प्रभु) भगवान् ब्रह्माजी क्रोधित होकर उस दारुण प्रकृतिवाली कुटिलासे बोले ॥ १२ ॥ कि, हे पापिनी कुटिले ! जिस निमित्त तुमने मेरे वचन नहीं माने है इसी कारण तुम मेरे शापसे दग्ध होकर जलरूप होजाओगी ॥ १३ ॥

हे मुने ! हिमालयनंदिनी कुटिला इसप्रकार शापित होकर वेगवती जलमयी मूर्तिको धारणकर ब्रह्मलोकको बहाने लगी ॥ १४ ॥ पितामह ब्रह्माजीने उसको अधिक जलवती देखकर ऋक्-साम-अथर्व-यजुर्वेदकी वाणीरूपी बंधनसे सब ओरसे दृढरूपसे बांध दिया ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! वह गिरिकन्या कुटिला इस प्रकारसे नियोजितहो जलमय शरीरसे परमनिर्मल ब्रह्मलोकको प्लावित कर उस स्थानमें स्थिति करने लगी ॥ १६ ॥ इस ओर देवता उस रागिणी नामक दूसरी हिमालयनंदिनीको स्वर्गमें लेजाकर पितामह ब्रह्माजीके निकट बोले, पितामह ब्रह्माजीने उससे भी इसीप्रकारसे कहा ॥ १७ ॥ रागिणी उनके यह वचन सुनकर अत्यन्तही क्रोधितहो बोली कि, मैं उसी प्रकारकी कठोर तपस्या करूंगी कि, जिससे मेरे नाम संयुक्त होकर महिषहन्ता जन्म ले ॥ १८ ॥ तब ब्रह्माजी उसे शाप देकर बोले कि, तुम संध्या समयके लाली (रङ्ग) होगी, जिसकारण तुमने मेरे अलंघ्य (नहीं काटनेयोग्य) वचनोंका निरादरकर बलपूर्वक देवताओंकोभी अतिक्रम किया ॥ १९ ॥

इत्येवंब्रह्मणाशप्ताहिमवद्दुहितामुने ॥ आपोमयीब्रह्मलोकंप्लावयामासवेगिनी ॥ १४ ॥ तामुद्धतजलांदृष्ट्वाप्रबबंधपितामहः ॥ ऋक्सामाथर्वयजुर्भिर्बंधनैः
सर्वतोदृढम् ॥ १५ ॥ साबद्धासंस्थिताब्रह्मंस्तत्रैवगिरिकन्यका ॥ आपोमयीप्लावयंतीब्रह्मणोविमलालयम् ॥ १६ ॥ यासारागवतीनामसापिनीतासुरै
र्दिवम् ॥ ब्रह्मणेतांनिवेद्यैवतामप्याहप्रजापतिः ॥ १७ ॥ सापिक्रुद्धाऽब्रवीच्चैनंतथातप्स्येमहत्तपः ॥ यथामन्नामसंयुक्तोमहिषघ्नोभविष्यति ॥ १८ ॥
तांशशापाथसब्रह्मासंध्यारागोभविष्यति ॥ यामद्वाक्यमलंघ्यंवैसुरैर्लंघयसेबलात् ॥ १९ ॥ सापिजातामुनिश्रेष्ठसंध्यारागवतीततः ॥ प्रतीच्छन्कृ
त्तिकाभागेशैलेय्याविग्रहंदृढम् ॥ २० ॥ ततोगतेकन्यकेद्वेज्ञात्वामेनातपस्विनी ॥ तपसोवारयामासउमेत्येवाब्रवीच्चसा ॥ २१ ॥ तदेवमातानामास्याश्चक्रे
पितृश्रुताशुभा ॥ उमेत्येवहिकन्यायाःसाजगामतपोवनम् ॥ २२ ॥ ततःसामनसादेवंशूलपाणिंवृषध्वजम् ॥ रुद्रंचेतसिसंधार्यतपस्तेपेसुदुष्करम् ॥२३॥
ततोब्रह्माब्रवीद्देवान्गच्छध्वंहिमवत्सुताम् ॥ इहानयध्वंतत्कालंतपस्यंतींहिमालये ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त हे मुनिश्रेष्ठ ! उस रागिणीने ब्रह्माजीके शापसे संध्याराग होकर जन्म लिया, उस समयमें विचरती हुई कृत्तिका (नक्षत्र) गण उस एक देशमें पतित शैलसुता (रागिणी) के दृढ विग्रहको स्वीकार करलेती हुई ॥ २० ॥ इसके उपरान्त तपस्विनी मेनाने जब यह जाना कि, मेरी दो कन्या गत (शापित) हुई हैं तब अपनी तीसरी कन्या कालीको तप करनेसे निवारण कर बोली कि, उमा अर्थात् उ (हेपुत्री) मा तपस्या न करना॥ २१ ॥उसने वही अर्थात् उमा शब्दसे ही कन्याका नामकरण किया, इसीसे उसका नाम उमा हुआ, इसके उपरान्त उमा तपोवनको गई॥ २२ ॥वहां वह भगवान् वृषध्वज शूलपाणि रुद्रको मनद्वारा हृदयमें धारण करके घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई ॥ २३ ॥ यह देखकर पितामह ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि, तुम हिमालयमें जाकर वहां तप करनेमें युक्त हिमालयकी पुत्रीको यहां

लेआओ ॥ २४ ॥ देवताओंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे हिमालयमें जाकर शैलनंदिनीको देखा परन्तु उसके तेजसे पराभूत हो उसके निकट नहीं जासके ॥ २५ ॥ राजा इन्द्र ने देवताओंके सहित उसके तेजसे पराभूत होकर ब्रह्माजीके निकट जा उसके तेजकी इस प्रकारसे अधिकता कहकर खड़े हुए ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि, यह निश्चयही शंकरवल्लभा होगी. कारण कि, तुम सभी उनके तेजसे विक्षिप्त और कांतिरहित हुए हो ॥ २७ ॥ इसकारण महिषासुर तारकाके सहित संग्राममें निहत हुआ है, निश्चयपूर्वक संतापको छोड़कर फिर अपने २ स्थानोंको प्रस्थान करो ॥ २८ ॥ इन्द्रके सहित सम्पूर्ण देवता भगवान् पितामह ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहेजाकर विगतसंताप हो अपने २ स्थानोंको चलेगये ॥ २९ ॥ इस ओर उमाके तपस्यामें प्रवृत्त होनेपर पर्वतपति हिमालय स्त्रीके सहित मिलकर उन्हें तपस्यासे निवृत्तकर अपने घर ले आये ॥ ३० ॥ महाबुद्धिमान् भगवान् महादेवजीभी उस निराश्रममें रौद्रव्रतका आश्रयकर मेरुपर स्थित महाशैलपर विचरण करने लगे ॥ ३१ ॥ वह विचार करते २ किसी समय महापर्वत हिमालयमें जा पहुँचे, तब पर्वतपति हिमालयने श्रद्धासहित उनकी पूजा करी, और महादेवजीने एक रात्रि वहां निवास किया ॥ ३२ ॥ दूसरे दिन उन्हें निमंत्रित करके कहनेलगे कि, हे विभो ! तपसाधनके अर्थ इस स्थानमें निवास कीजिये ॥ ३३ ॥ पर्वतपति हिमाचलके ऐसा कहनेपर उमापति महादेवजी उस निराश्रम व्रतको त्याग और आश्रमका आश्रयकर वहाँ निवास करनेके निमित्त सम्मत हुए ॥ ३४ ॥ देवदेव शूलीके इसप्रकार आश्रमी होनेपर गिरिराजकी तीसरी कन्या वह अत्यन्त सुन्दरी काली इस स्थानमें आई ॥ ३५ ॥ महादेवजी अपनी प्रिया सतीको पुनर्वार जन्म लेकर

ततोदेवाःसमाजग्मुर्ददृशुःशैलनंदिनीम् ॥ तेजसाविजितास्तस्यानशेकुरुपसर्पितुम् ॥ २५ ॥ इंद्रोमरुद्गणैःसार्धंनिर्द्धूतस्तेजसातया ॥ ब्रह्मणोऽधिकतेजो
स्याविनिवेद्यप्रतिष्ठितः ॥ २६ ॥ ततोब्रह्माब्रवीद्देवान्ध्रुवंशंकरवल्लभा ॥ यूयंसतेजसोनूनंविक्षिप्तास्तुहतप्रभाः ॥ २७ ॥ तस्माद्व्रजध्वंस्वंस्वंहिस्थानंभो
विगतज्वराः ॥ सतारकंहिमहिषंविदध्वंनिहतंरणे ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तादेवेनब्रह्मणासेंद्रकाःसुराः ॥ जग्मुःस्वान्येवधिष्ण्यानिसद्योवैविगतज्वराः ॥ २९ ॥
उमामपितपस्यंतींहिमवान्पर्वतेश्वरः ॥ निवर्त्यतपसस्तस्मात्सदारोह्यनयद्गृहान् ॥ ३० ॥ देवोप्याश्रित्यतद्रौद्रंव्रतंनामनिराश्रयम् ॥ विचचारमहाशैलान्मे
रुप्राग्र्यान्महामतिः ॥ ३१ ॥ सकदाचिन्महाशैलंहिमवंतंसमागतः ॥ तेनार्चितःश्रद्धयासौतांरात्रिमवसद्धरः ॥ ३२ ॥ द्वितीयेह्निगिरीशेनमहादेवोनिमं
त्रितः ॥ इहैवतिष्ठस्वविभोतपःसाधनकारणात् ॥ ३३ ॥ इत्येवमुक्तोगिरिणाहरश्चक्रेमतिंचताम् ॥ तथाचाश्रममाश्रित्यत्यक्त्वासस्वंनिराश्रमम् ॥ ३४ ॥
वसतोप्याश्रमेतस्यदेवदेवस्यशूलिनः ॥ तंदेशमगमत्कालीगिरिराजसुताशुभा ॥ ३५ ॥ तामागतांहरोदृष्ट्वाभूयोजातांप्रियांसतीम् ॥ स्वागतेनाभिसं
पूज्यतस्थौयोगरतोहरः ॥ ३६ ॥

अपने निकट आती हुई देख आदर सन्मानकर विशेष अभिनंदनादि कर योगकी चर्चा करनेलगे ॥ ३६ ॥ तब उस वरारोहा भामिनी कालीने हाथ जोड़कर सखियों सहित वहां आय चरणोंकी वंदना की॥ ३७॥ महादेवजी बहुत देरतक गिरिराजकी पुत्रीको देखकर फिर बोले कि, तुम्हारा यह अनुष्ठान सर्वथा युक्तिके बाहर है, यह कहकर वह प्रथम गणोंके सहित अंतर्धान होगये ॥ ३८॥ गिरिनंदिनी काली उनके अत्यन्त भयंकर ज्ञानयोगको प्राप्तहो दुःखितहृदयसे पिताके पास आकर बोली ॥ ३९ ॥ हे पितः ! मैं भगवान् महादेवजीकी आराधना करनेकी इच्छासे घोर तपस्या करनेके निमित्त महावनमें जाऊँगी ॥ ४० ॥ पिता हिमालय उनके यह वचन सुन सम्मत हुए, वह उसी विस्तारित पाददेशमें महादेवजीकी आराधनाकी अभिलाषासे ललिता नामको धारणकर घोरतपस्या करने लगीं ॥ ४१ ॥ उस समय उनकी सखियें आ फूल मूल और समित् कुशको लाकर उनकी परिचर्यामें प्रवृत्त हुईं ॥ ४२ ॥ और उन्होंने चित्तविनोद साधनके अर्थ मट्टीके त्रिशूलधारी वरको निर्माण करदिया वह यह देखकर बोली कि, यह तेजस्वी रुद्र मानों हमारेही हैं ॥ ४३ ॥ यह कहकर वह वारंवार उनका दर्शनकर उनकी पूजा करनेलगीं, त्रिपुरारी भगवान् शिवजी उनकी ऐसी श्रद्धा और भक्ति देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त पलाशनिर्मित दंड, मूँजकी मेखला (कौंधनी) यज्ञोपवीत, छत्र और मृगछाला इन सबसे विभूषित महादेवजी बटुरूपको धारणकर ॥ ४५ ॥ कमंडलु हाथमें लिये शरीरपर भस्म लगाये आश्रमकी ओरको घूमते २ कालीके आश्रममें आये ॥ ४६ ॥ हे नारद ! उसी समय काली सखियोंके सहित उठकर न्यायानुसार उनकी पूजाकर इन वच

साचाभ्येत्यवरारोहाकृतांजलिपरिग्रहा ॥ ववंदेचरणौशैलेसखिभिःसहभामिनी ॥ ३७ ॥ ततस्तुसुचिराच्छर्वःसमीक्ष्यगिरिकन्यकाम् ॥ नयुक्तंचैवमुक्त्वाथसगणोन्तर्दधेततः ॥ ३८ ॥ सापिशर्ववचोरौद्रंश्रुत्वाज्ञानसमन्विता ॥ अंतर्दुःखेनदह्यंतीपितरंप्राहपार्वती ॥ ३९ ॥ तातयास्येमहारण्येतप्तुंघोरंमहत्तपः ॥ आराधनायदेवस्यशंकरस्यपिनाकिनः ॥ ४० ॥ तथेत्युक्तंवचःपित्रापादेतस्यैवविस्तृते ॥ ललिताख्यातपस्तेपेहराराधनकाम्यया ॥ ४१ ॥ तस्याःसख्यस्तदादेव्याःपरिचर्यांतुकुर्वते ॥ समित्कुशफलंचापिमूलाहरणमादितः ॥ ४२ ॥ विनोदनार्थंपार्वत्यामृन्मयःशूलधृग्वरः ॥ कृतश्चतेजोयुक्तश्च रुद्रोमेस्त्विवतिसाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ पूजांकरोतितस्यैवतंपश्यन्तीमुहुर्मुहुः ॥ ततोऽस्यास्तुष्टिमगमच्छ्रद्धयात्रिपुरांतकृत् ॥ ४४ ॥ बटुरूपंसमाधायआषाढीमुंजमेखली ॥ यज्ञोपवितीछत्रीचमृगाजिनधरस्तथा ॥ ४५ ॥ कमंडलुव्यग्रकरोभस्मारुणितविग्रहः ॥ प्रत्याश्रमंपर्यटन्सतंकाल्याश्रममागतः ॥ ४६ ॥ तमुत्थायतदाकालीसखीभिःसहनारद ॥ पूजयित्वायथान्यायंपर्यपृच्छदिदंततः ॥ ४७ ॥

नोंसे पूँछने लगी ॥ ४७ ॥ हे विभो ! तुम कहांसे आयेहो ! कहां आपका आश्रम है और कहांको आप जाँयगे सो कृपाकर शीघ्र मुझसे कहिये ॥ ४८ ॥ भिक्षुक बोले कि, हे बाले ! हे शुचिव्रते ! वाराणसीमें हमारा आश्रम है, हम अब तीर्थयात्रा करनेके निमित्त पृथूदक तीर्थको जाते हैं ॥ ४९ ॥ देवी बोलीं कि, हे विप्रेन्द्र ! आप जो पृथूदकको जाते हैं सो वहां किसप्रकारका पुण्यसंचय होता है, और किस २ तीर्थमें स्नान करनेसे किस २ प्रकारका फल प्राप्त किया है ? ॥ ५० ॥ भिक्षुक बोले कि, मैं ने प्रथम प्रयागराजमें स्नान किया था, पीछे क्रमानुसार कुब्जाम्रमें, जयन्तमें, चंडिकेश्वरमें ॥ ५१ ॥ बंधुवृन्दमें, कर्कन्धमें, कनखलमें, सरस्वतीमें, अग्निकुंडमें, भद्रामें, त्रिविष्टपममें ॥ ५२ ॥ कौनट, कोटितीर्थोंमें और तक्षकमें निष्काम होकर स्नानकर तुम्हारे आश्रममें आया ॥ ५३ ॥ यहां तुमसे

उमोवाच ॥ कस्मादागम्यतेभिक्षोकुत्रस्थानेतवाश्रमः ॥ कुतस्त्वंपरिगंतासिममशीघ्रंनिवेदय ॥ ४८ ॥ भिक्षुरुवाच ॥ ममाश्रमपदंबालेवाराणस्यांशुचिव्रते ॥ अथैतत्तीर्थयात्रायांगमिष्यामिपृथूदकम ॥ ४९ ॥ देव्युवाच ॥ किंपुण्यंतत्रविप्रेंद्रयद्यासित्वंपृथूदके ॥ पथिस्नानेनचफलंकेषुकिंलब्धवानसि ॥ ॥ ५० ॥ भिक्षुरुवाच ॥ मयास्नानंप्रयागेतुकृतंप्रथममेवहि ॥ ततोथतीर्थेकुब्जाम्रेजयंतेचंडिकेश्वरे ॥ ५१ ॥ बंधुवृंदेचकर्कंधेतीर्थेकनखलेतथा ॥ सरस्वत्यामग्निकुंडेभद्रायांतुत्रिविष्टपे ॥ ५२ ॥ कौनटेकोटितीर्थेचतक्षकेचकृशोदरि ॥ निष्कामेनकृतंस्नानंततोभ्यागांतवाश्रमम् ॥ ५३ ॥ इहस्थांत्वां समाभाष्यगमिष्यामिपृथूदकम् ॥ पृच्छामियदहंत्वांवैतत्रनक्रोद्धुमर्हसि ॥ ५४ ॥ अहंयस्तपसात्मानंशोषयामिकृशोदरि ॥ बाल्येऽपिसंयततनुस्ततः श्लाघ्यंद्विजन्मनाम् ॥ ५५ ॥ किमर्थंभवतीरौद्रंप्रथमेवयासिस्थिता ॥ तपःसमाश्रिताभीरुसंशयःप्रतिभातिमे ॥ ५६ ॥ प्रथमेवयसिस्त्रीणांसहभर्त्राविलासिनि ॥ सुभोगाभोगिताःकालाव्रजंतिस्थिरयौवने ॥ ५७ ॥ तपसावांछयंतीहगिरिजेसचराचराः ॥ रूपाभिजनमैश्वर्यंतच्चतेवर्त्ततेबहु ॥ ५८ ॥ तत्किमर्थमपास्यैतानलंकारान्जटाधृताः ॥ चीनांशुकंपरित्यज्यकित्वंवल्कलधारिणी ॥ ५९ ॥

वार्तालाप कर अब पृथूदकको जाऊंगा, तुमसे जो कुछ पूछता हूं इससे तुम क्रोधित न होना ॥ ५४ ॥ हे कृशोदरि ! मैंने जो बाल्यावस्थासेही जितेन्द्रियहो तपस्याके द्वारा अपने शरीरको शुष्क किया था वह अब ब्राह्मणोंको श्लाघनीय है ॥ ५५ ॥ हे भीरु ! तुम प्रथमही अवस्थामें स्थिति करकै किस आशयसे तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुईहो, इसमें मुझे अत्यन्तही संदेह होता है ॥ ५६ ॥ हे विलासिनि ! प्रथम अवस्थामें स्वामीके साथ विविधप्रकारके उपायोंसे भोग विषयमें स्त्रियोंको समय बिताना होता है ॥ ५७ ॥ हे गिरिनंदिनि ! मनुष्य तपस्या करके रूप, अभिजन और ऐश्वर्य इनकी वांछा करते हैं सो तुममें तौ यह सभी विद्यमान हैं ॥ ५८ ॥ तब किसकारण अलंकारोंको छोड़कर जटाके भारको धारण और चीनांशुकको त्यागकर वल्कलोंको धारण किया है ॥ ५९ ॥

---

[1] चीनदेशके वस्त्रोंको चीनांशुक कहते हैं ।

पुलस्त्यजी बोले कि, हे नारद ! तब सोमप्रभा नामक तपोवृद्धा देवीकी दूसरी सखी उस भिक्षुकसे बोली॥ ६० ॥कि, हेद्विजश्रेष्ठ ! पार्वतीजी जिसकारणसे तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई है सो सुनिये, यह महाकाली महादेवजीकी पतिरूपसे कामना करती है ॥ ६१ ॥श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, वह भिक्षुकरूपी महादेवजी सोमप्रभाके यह वचन सुनकर शिरको कंपायमान कर हँसते हुये बोले ॥ ६२ ॥ हे पार्वति ! मैं पूछताहूं कि, किस मनुष्यने तुम्हें इसप्रकारकी बुद्धि दी है; देखो तुम्हारे कोमल पल्लव कर किसप्रकारसे महादेवजीके भुजंग (सर्प) युक्त हाथोंके साथ मिलैंगे ! ॥६३॥ अधिक क्या कहूं तुम तो दुकूलाम्बर(रेशमी दुपट्टे) को धारण करतीहो, और महादेवजी मृगचर्मको परिधान करते हैं, तुम चंदनचर्चित हो और महादेवजी भस्मसे विभूषित हैं, इसकारण इस घटनाको देखकर हमें उक्तरूपसे विश्वास नहीं होता ॥

पुलस्त्यउवाच ॥ ततस्तुतपसावृद्धादेव्याःसोमप्रभासखी ॥ भिक्षवेकथयामासयथावत्साहिनारद ॥ ६० ॥ सोमप्रभोवाच ॥ तपश्चर्याद्विजश्रेष्ठपार्वत्यायेनहेतुना ॥ तंशृणुष्वमहाकालीहरंभर्त्तारमिच्छति ॥ ६१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ सोमप्रभायावचनंश्रुत्वासंकप्प्यवैशिरः ॥ विहस्यचमहाहासंभिक्षुराहवचस्त्विदम् ॥ ६२ ॥ भिक्षुरुवाच ॥ वदामितेपार्वतिवाक्यमेवंकेनप्रदत्तातवबुद्धिरेषा ॥ कथंकरःपल्लवकोमलस्तेसमेष्यतेशार्वकरंससर्पम् ॥ ॥ ६३ ॥ तथादुकूलांबरशालिनीत्वंमृगारिचर्माभिवृतस्तुरुद्रः ॥ त्वंचंदनाक्तासचभस्मभूषितोनयुक्तरूपंप्रतिभातिमेत्विदम् ॥ ६४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एवंवादिनिविप्रेंद्रपार्वतीभिक्षुमब्रवीत् ॥ मामैवंवदभिक्षोत्वंहरःसर्वगुणाधिकः ॥६५॥ शिवोवाप्यथवाभीमःसधनोनिर्धनोथवा ॥ अलंकृतोवादेवेशस्तथावाप्यनलंकृतः ॥ ६६ ॥ यादृशस्तादृशोवापिसमेनाथोभविष्यति ॥ निवार्यतामयंभिक्षुर्विवक्षुःस्फुरिताधरः ॥ नतथानिंदकःपापीयथाश्रोताशशिप्रभे ॥ ॥ ६७ ॥ पुलस्त्यउषाच ॥ इत्येवमुक्त्वावरदासमुत्थातुमथैच्छत ॥ ततोऽत्यजद्भिक्षुरूपंस्वरूपस्थोऽभवच्छिवः ॥ ६८ ॥

॥ ६४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे विप्रेन्द्र ! भिक्षुकके इसप्रकार कहनेपर श्री पार्वतीजी बोली कि, हे भिक्षो ! तुम यह वचन मुखसे न निकालो. कारण कि, महादेवजी सबसे अधिक गुणोंसे विभूषित हैं ॥ ६५ ॥ अथवा यह शिव हो या भीम (भयानक) ही हो, धनीहो, या निर्धनीहो, अलंकृत (भूषणभूषितदेह) अथवा अनलंकृतहो ॥६६ ॥ वह जैसे हो वैसेही हो, परन्तु वही हमारे नाथ होंगे. हे सखि ! इस भिक्षुकको निवारण करो (बोलनेसे मना करदो) देखो कुछ कहनेके निमित्त इसके अधर कंपित होरहे हैं, हे शशिप्रभे ! महादेवजीकी निन्दा करनेसे उतना पाप नहीं होता है जितना कि, उनकी निन्दा सुननेसे होता है ॥ ६७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, वरदा पार्वतीजी इतना कहकर उठनेकी अभिलाषिनी हुई, यह देखकर महादेवजीने भिक्षुकके रूपको छोड़कर अपना स्वरूप धारण किया ॥ ६८ ॥

इसके उपरान्त वह बोले कि, हे प्रिये ! तुम इस समय पिताके गृहको जाओ, मैं तुम्हारे निमित्त महर्षियोंको वहां भेजूंगा ॥ ६९ ॥ तुमने रुद्रकी प्राप्तिकी इच्छासे
उनकी जो मृत्तिकामय (मट्टीकी) प्रतिमा निर्माण की थी, यह मूर्ति भद्रेश्वर नामसे त्रिलोकीमें विख्यात होगी ॥ ७० ॥ देवता, गंधर्व, दैत्य, यक्ष, किन्नर, उरग और
मनुष्यगण यह सभी शुभकामनाकी इच्छासे सर्वदा इसकी पूजा करेंगे ॥ ७१ ॥ भगवान् महादेवजीके इसप्रकार कहनेपर गिरिराजनंदिनी, आकाशमार्ग होकर
अपने पिताके स्थानको गई ॥ ७२ ॥ तब महातेजस्वी महादेवजीनेभी उन्हें छोड़कर पृथूदकमें जाय विधानपूर्वक स्नान किया ॥ ७३ ॥ इसप्रकारसे देवताओंमें
श्रेष्ठ महेश्वर पृथूदकमें स्नानकर सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होनेपर नंदी प्रमथगण तथा और सब वाहनोंको साथ ले महागिरि मंदराचलपर आये ॥ ७४ ॥

भूत्वोवाचप्रियेगच्छस्वमेवभवनंपितुः ॥ तवार्थायप्रहेष्यामिमहर्षीन्हिमवद्गृहे ॥ ६९ ॥ यच्चेहरुद्रमीहंत्यामृन्मयश्चेश्वरःकृतः ॥ असौभद्रेश्वरेत्येवंख्यातो
लोकेभविष्यति ॥७०॥ देवदानवगंधर्वायक्षाःकिंपुरुषोरगाः ॥ पूजयिष्यंतिसततंमानवाश्चशुभेप्सवः॥७१॥ इत्येवमुक्तादेवेनगिरिराजसुतामुने ॥ जगामां
बरमाविश्यस्वमेवभवनंपितुः ॥७२॥ शंकरोपिमहातेजाविसृज्यगिरिकन्यकाम् ॥ पृथूदकंजगामाथस्नानंचक्रेविधानतः ॥७३॥ ततस्तुदेवप्रवरोमहेश्वरः
पृथूदकेस्नानमपास्तकल्मषः ॥ कृत्वासनंदीसगणःसवाहनोमहागिरिंमंदरमाजगाम ॥७४॥ आयातित्रिपुरांतकेसहगणैःपर्यायतःसप्तभिरारोहत्पुलकोबभौ
गिरिवरःसंहृष्टचित्तःक्षणात् ॥ चक्रेदिव्यफलैर्जलेनशुचिनामूलैश्चकंदादिभिःपूजांसर्वगणेश्वरैःसहविभोरद्रिस्त्रिनेत्रस्यतु ॥७५॥ इति श्रीवामनपुराणेउमासं
भवेमंदरगिरिप्रवेशोनामएकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततःसंपूजितोरुद्रःशैलेनप्रीतिमानभूत् ॥ सस्मारचमहर्षींस्तुअरुंधत्यासमं
ततः ॥ १ ॥ तेसंस्मृतास्तुऋषयःशंकरेणमहात्मना ॥ समाजग्मुर्महाशैलंमंदरंचारुकंदरम् ॥ २ ॥ तानागतान्समीक्ष्यैवदेवस्त्रिपुरनाशनः ॥ अभ्युत्थाया
भिपूज्यैतानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ धन्योयंपर्वतश्रेष्ठःश्लाघ्यःपूज्यश्चदैवतैः ॥ धूतपापस्तथाजातोभवतांपादपंकजैः ॥ ४ ॥

त्रिपुरान्तक उन महादेवजीके आकाशसे आनेपर मंदराचलपर्वत अन्तन्त प्रसन्न और संतुष्ट हुआ और उसने दिव्य फल, मूल और परमपवित्रजलसे उन सब गणेश्वरों
सहित विभु पशुपति (महादेव) की पूजा की ॥ ७५ ॥ इति श्रीवामनपुराणे उमासम्भवे भाषाटीकायां मंदरगिरिप्रवेशो नाम एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥
पुलस्त्यजी बोले कि, हिमालयकी विधिपूर्वक पूजा करनेपर महादेवजीने प्रसन्न हो अरुन्धतीसमेत कश्यपादि सप्त महर्षियोंको स्मरण किया ॥ १ ॥ महात्मा
शंकरके स्मरण करतेही सप्तऋषि चारुकन्दरसे शोभायमान मंदराचलपर आये ॥ २ ॥ त्रिपुरनाशी देव महादेवजीने उनको आया हुआ देख उठ भलीभाँतिसे पूजा की
और फिर यह वचन बोले ॥ ३ ॥ कि, यह मंदराचलपर्वत आपके चरणोंके संसर्गसे धन्य है. श्रेष्ठ, प्रशंसनीय और देवताओंसे पूजनीय और सर्वथा आज यह पापसे

शून्य होगया ॥ ४ ॥ अब आप इस समय शुभ, रमणीक और विस्तारित पर्वतके शिखरमें चिकनी कमलके समान वर्णवाली शिलापर विराजिये ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, कश्यपादि महर्षिगण भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर अरुन्धतीके साथ शैलशिखरपर बैठे ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त सब ऋषियोंके बैठजानेपर देवताओंके अग्रणीय नन्दी उनकी अर्घ्यादिकसे पूजा करके स्थिरचित्त हो खडे हुए ॥ ७ ॥ तब सुरपति महादेवजी अपने यशको बढाने की इच्छासे उन विनययुक्त सुर सप्तऋषियोंसे यह धर्मसंगत हितवचन बोले॥ ८ ॥हे कश्यप ! हे अत्रे ! हे वारुणेय ! हे गाधेय ! हे गौतम ! सभी सुनिये, हे भरद्वाज ! आपभी सुनिये, हे अंगिरा ! आपभी श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥ दक्षकी पुत्री पहले मेरी प्रिया थी, दक्षके प्रति क्रोधके वशसे उन्होंने योगमार्गका अनुसरण कर प्राणोंको त्याग दिया ॥ १० ॥ अब यह शैलराजदुहिता उमारूपसे पुनर्वार उत्पन्न हुई हैं, हे द्विजसत्तम ! हमारे निमित्त उन पर्वतराजके निकट उमाकी याचना कीजिये ॥ ११ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, सप्तऋषि इसप्रकारके वचन सुनकर इस विषयमें सम्मत हुए उसके उपरान्त सभी “ॐ नमः शंकराय” कहकर हिमालयको गये ॥ १२ ॥ तब शिवजी अरुन्धतीसे बोले कि, हे सुन्दरि ! तुमभी हिमालयको जाओ कारण कि, स्त्रियें स्त्रियोंके धर्मकी गतिको जानती हैं ॥ १३ ॥ अरुन्धती इसप्रकारके वचन सुन दुर्लंघ्य लोकाचारके अनुरोधसे “रुद्र तुमको नमस्कार है” इसप्रकारके वचन वारम्वार कहकर स्वामीके सहित चली गईं ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त सभीने औषधिप्रस्थनामक हिमाद्रिके शिखरपर जाकर इन्द्रकी पुरीकी समान उनकी नगरीको देखा ॥ १५ ॥ उनके आनेपर वहाँकी स्त्रियें और

स्थीयतांविस्तृतेरम्येगिरिप्रस्थेसमेशुभे ॥ शिलासुपद्मवर्णासुश्लक्ष्णासुचमृदुष्वथ ॥ ५ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तादेवेनशंकरेणमहर्षयः ॥ समवेत्यत्वरुंधत्याविविशुःशैलसानुनि ॥ ६ ॥ उपविष्टेषुऋषिषुनंदीदेवगणाग्रणीः ॥ अर्घ्यादिभिःसमभ्यर्च्यस्थितःप्रयतमानसः ॥ ७ ॥ ततोऽब्रवीत्सुरपतिर्धर्म्यवाक्यंहितंसुरान् ॥ आत्मनोयशसोवृद्ध्यैसप्तर्षीन्विनयान्वितान् ॥ ८ ॥ हरउवाच ॥ कश्यपात्रेवारुणेयगाधेयशृणुगौतम ॥ भरद्वाजशृणुष्वत्वमंगिरस्त्वंशृणुष्वच ॥ ९ ॥ ममासीद्दक्षतनुजाप्रियासादक्षकोपतः ॥ उत्ससर्ज्जसतीप्राणान्योगंदृष्ट्वापुराकिल ॥१०॥ साद्यभूयःसमुद्भूताशैलराजसुताउमा ॥ तांमदर्थायशैलेंद्रोयाच्यतांद्विजसत्तमाः ॥ ११ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ सप्तर्षयश्चैवमुक्ताबाढमित्यब्रुवन्वचः ॥ ॐनमःशंकरायेतिप्रोक्त्वाजग्मुर्हिमालयम् ॥ ॥ १२ ॥ ततोप्यरुंधतींशर्वःप्राहगच्छस्वसुंदरि ॥ पुरंध्र्योहिपुरंध्रीणांगतिंधर्मस्यवैविदुः ॥ १३ ॥ इत्येवमुक्तादुर्लंघ्यंलोकाचारात्वरुंधती ॥ नमस्तेरुद्रइत्युक्त्वाजगामपतिनासह ॥ १४ ॥ गत्वाहिमाद्रिशिखरमोषधिप्रस्थमेवच ॥ ददृशुःशैलराजस्यपुरंदरपुरीमिव ॥ १५ ॥ ततःसंपूज्यमानास्तेशैलयोषिद्भिरादरात् ॥ सुनाभादिभिरव्यग्रैःपूज्यमानातुपार्वती ॥ १६ ॥

सुनाभादि अन्यान्य मनुष्य प्रसन्नचितसे उनकी पूजा करनेलगे ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उन सबने गंधर्व, किन्नर, यक्ष और अन्यान्य पुरुषोंके साथमें हिमालयके सुवर्णकी समान उज्वल रमणीक भवनमें प्रवेश किया ॥ १७ ॥ वह सभी महात्मा और सभी तपोबलसे सर्वथा निष्पाप हुएथे, महाद्वारपर जाकर द्वारवानोंकी अपेक्षा करनेलगे ॥ १८ ॥ द्वाररक्षक स्वयं गंधमादन शीघ्रतासे आ उपस्थित हुए उनके हाथमें पद्मका बना हुआ बड़ा दंड था ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण ऋषि उन्हें देखकर बोले कि, तुम जाकर हिमालयसे कहो कि, हम किसी बडे कार्यके निमित्त आये हैं ॥ २० ॥ गंधमादन ऋषियोंके यह वचन सुन जहाँ हिमालय पर्वतोंसे युक्त होकर विराजमान थे वहाँ जाकर ॥ २१ ॥ घुटनोंको पृथ्वीपर टेक और मुखमें हाथदे बगलमेंसे दंडको रखकर कहनेलगे ॥ २२ ॥ कि, हे शैलराज ! बहुतसे ऋषि

गंधर्वैःकिंनरैर्यक्षैस्तथान्यैस्तत्पुरस्सरैः ॥ विविशुर्भुवनंरम्यंहिमाद्रेर्हाटकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥ ततःसर्वेमहात्मानस्तपसाधौतकल्मषाः ॥ समासाद्यमहाद्वा
रंसंतस्थुर्द्वाःस्थकारणात् ॥१८॥ ततस्तुत्वरितोभ्यागाद्द्वाःस्थोद्रिर्गंधमादनः ॥ धारयन्वैकरेदंडंपद्मरागमयंमहत् ॥१९॥ ततस्तमूचुर्मुनयोगत्वाशैलपतिं
शुभम् ॥ निवेदयास्मान्संप्राप्तान्महत्कार्यार्थिनोवयम् ॥ २० ॥ इत्येवमुक्तःशैलेंद्रमृषिभिर्गंधमादनः ॥ जगामतत्रयत्रास्तेशैलराजोऽद्रिभिर्वृतः ॥ २१ ॥
निषण्णोभुविजानुभ्यांदत्त्वाहस्तौमुखेगिरिः ॥ दंडंनिःक्षिप्यकक्षायामिदंवचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ गंधमादनउवाच ॥ इमेहिऋषयःप्राप्ताशैलराजतवा
जिरे ॥ द्वारेस्थिताःकार्यिणस्तेतवदर्शनलालसाः ॥ २३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ द्वाःस्थवाक्यंसमाकर्ण्यसमुत्थायाचलेश्वरः ॥ स्वयमभ्यागमद्द्वा
रिसमादायार्घ्यमुत्तमम् ॥ २४ ॥ तानर्च्यार्घ्यादिनाशैलःसमानीयसभातलम् ॥ उवाचवाक्यंवाक्यज्ञःकृतासनपरिग्रहान् ॥ २५ ॥ हिमवानुवाच ॥
अनभ्रवृष्टिःकिमियमुताहोऽकुसुमंफलम् ॥ अप्रतर्क्यमचिंत्यंचभवदागमनंत्विदम् ॥ २६ ॥ अद्यप्रभृतिधन्योस्मिशैलराजोस्मिसत्तमाः ॥ संशुद्धदेहो
स्म्यद्यैवयद्भवंतोममाजिरम् ॥ २७ ॥

आपकी आंगणभूमिमें आकर द्वारपर खड़े हुए हैं, वह किसी कार्यके निमित्त आये हैं, आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥ २३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, द्वाररक्षकके यह वचन सुनकर अचलेश्वर हिमालय स्वयं अर्घ्यको ले द्वारपर आये ॥ २४ ॥ और उस अर्घ्यादिकसे उनकी पूजा कर यत्नसहित सभामंडपमें ले आये और जब उन सबोंने अपने २ आसनोंको स्वीकार किया; तब वाक्यके वेत्ता वह शैलराज उनसे बोले ॥ २५ ॥ कि, यह क्या विना मेघोंके वृष्टिकेसी और फूलोंके विना आये उत्पत्तिकेसी यह अचानक आपके आगमनसे चिन्ता और तकर्ना करने योग्य नहीं होता है ॥ २६ ॥ हे सत्तम! आजसे मैं धन्य और

यथार्थमेंही पर्वतोंका राजा हुआ, आजहीसे मेरी देहभी सर्वथा शुद्ध हुई, जिसकारणसे आपने मेरे स्थानपर पदार्पण किया है ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूँ आपके अपने पदार्पण और दृष्टिपात करके असित्के संसर्गसे सर्वथा मलीन मेरे शरीरको साक्षात् सरस्वतीतीर्थकी तरह पवित्र किया ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैं आपका दासहूँ अब मैं सब प्रकारसे कृतपुण्य हुआ, आप जिस कारणसे आये हैं सो आज्ञा दीजिये ॥ २९ ॥ मैं पुत्र, कलत्र और भाइयोंके सहित आपके आज्ञाकारी किंकररूपसे स्थिति करता हूं, मुझे क्या करना होगा सो आज्ञा दीजिये ॥ ३० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, शंसितव्रतऋषियोंने शैलराजके वचनोंको सुनकर उनके निकट कार्यको निवेदन करनेके निमित्त वृद्ध अंगिराको प्रेरणा किया ॥ ३१ ॥ अंगिराजी इसप्रकार कश्यपादि ऋषियोंसे प्रेरित हो, अग्रिम श्रेष्ठवचनोंको गिरिराजसे कहने लगे॥ ३२॥ कि, हे पर्वतश्रेष्ठ ! हमलोग जिसकार्यके निमित्त देवी अरुन्धतीके सहित आपके निकट आये हैं सो सुनिये॥ ३३॥ जो महात्मा और सर्वात्मा हैं, जिन्होंने दक्षके यज्ञको विध्वंस किया है, जो शंकर और शूलधारी हैं, जो शर्व और त्रिनेत्र हैं, जो वृषवाहन हैं॥ ३४॥ जो जीमूतकेतु और शत्रुघ्न हैं, जो यज्ञ भोक्ता और स्वयं प्रभु हैं, जिनको ईश्वर,शिव,स्थाणुवर और हर कहते हैं ॥ ३५॥ जो भीम, उग्र, महेशान, महादेव और पशुपति नामसे विख्यात हैं, हे गिरीश्वर ! हम उन्हींके द्वारा आपके पास भेजेहुए आये हैं ॥ ३६ ॥ तुम्हारी पुत्री सर्वलोकोंमें सुन्दरी कालीको देवाधिदेव महादेवजीके निमित्त प्रार्थना करते हैं, इसकारण तुम उनको दान करो ॥ ३७॥ हे गिरिसत्तम ! वही पिता धन्य है, जिसकी कन्या रूपगुण और सत्कुलसे सम्पन्न सर्वदा लोकोत्तर सौभाग्यवान पतिको प्राप्त होती है ॥ ३८॥

असत्संसर्गसंशुद्धंकृतवंतोद्विजोत्तमाः ॥ दृष्टिपूतंपदाक्रांतंतीर्थंसारस्वतंयथा ॥ २८ ॥ दासोहंभवतांविप्राकृतपुण्यश्चसांप्रतम् ॥ येनार्थिनोहितेयूयं तन्मानुज्ञातुमर्हथ ॥ २९ ॥ सदारोहंसमंपुत्रैर्भृत्येनप्रभुरव्ययः ॥ किंकरोऽस्मिस्थितोयुष्मदाज्ञाकारीतदुच्यताम् ॥ ३० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शैलराजवचःश्रुत्वाऋषयःसंशितव्रताः ॥ ऊचुरंगिरसंवृद्धंकार्यमद्रौनिवेदय ॥ ३१ ॥ इत्येवंचोदितःसर्वैर्ऋषिभिःकश्यपादिभिः ॥ प्रत्युवाचपरंवाक्यंगिरिराजंतमंगिराः ॥ ३२ ॥ अंगिराउवाच ॥ श्रूयतांपर्वतश्रेष्ठयेनकार्येणवैवयम् ॥ समागतास्त्वत्सदनमरुंधत्यासमंगिरे ॥ ३३ ॥ योऽसौमहात्मासर्वात्मादक्षयज्ञक्षयंकरः ॥ शंकरःशूलधृक्शर्वस्त्रिणेत्रोवृषवाहनः ॥ ३४ ॥ जीमूतकेतुःशत्रुघ्नोयज्ञभोक्तास्वयंप्रभुः ॥ यमीश्वरंवदन्त्येकेशिवंस्थाणुवरं हरम् ॥ ३५ ॥ भीममुग्रंमहेशानंमहादेवंपशोःपतिम् ॥ वयंतेनप्रेषिताःस्मस्त्वत्सकाशंगिरीश्वर ॥ ३६ ॥ इयंयात्वत्सुताकालीसर्वलोकेषुसुंदरी ॥ तांप्रार्थयतिदेवेशस्तांभवान्दातुमर्हसि ॥ ३७ ॥ सएवधन्योहिपितायस्यपुत्रीपतिंशुभम् ॥ रूपाभिजनसंपत्त्याप्राप्नोतिगिरिसत्तम ॥ ३८ ॥

हे गिरीन्द्र :! स्थावरं और जंगमके भेदमें जितने जरायुज, अण्डज, स्वेदज-उद्भिज्ज-चारप्रकारके प्राणिसमूह देखनेमें आते हैं; यह देवी काली उनकी माता होगी. कारण कि, महादेवजी उनकेभी पिता कहकर विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ देवता लोगं शंकरको प्रणामं करके तुम्हारी इस पुत्रीको प्रणाम करैंगे, तुम भस्माङ्कित निज चरणोंको अपने शत्रुओंके मस्तकपर रक्खो ॥ ४० ॥ हम याचक-स्वयं महादेव वर, तुम सम्प्रदाता और सर्वजगत्की जननी यह उमा वधू होगी, इसकारण जो तुम्हैं अच्छा लगे सो करो ॥ ४१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, अंगिराके यह वचन सुनकर कालीने अधोमुख होकर स्थिति की, उसी समय उनके हृदयमें हर्षका उदय हो फिर सद्यः दीनभावका आविर्भाव हुआ ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त शैलपति हिमालय गंधमादनसे बोले कि, तुम जाकर सम्पूर्ण पर्वतोंको निमंत्रित कर लेआओ ॥ ४३ ॥ गंधमादन उनकी आज्ञानुसार वेगमें भर अतिशीघ्र गृहसे अन्य गृहमें जाकर मेरु इत्यादि श्रेष्ठपर्वतोंको चारों ओरसे बुला लाये ॥ ४४ ॥ वह सभी कार्यकी गौरवताको विचारकर शीघ्रताके साथ गिरिराजके भवनमें प्रवेश कर विस्मित हृदयसे सुवर्णनिर्मित आसनोंपर बैठे ॥ ४५ ॥ इसप्रकारसे उदय, हेमकूट, रम्यक, मन्दर, उद्दालक, वारुण, वराह, गरुड़ासन ॥ ४६ ॥ शुक्तिमान, वेगसानु, दृढशृङ्ग, शृङ्गवान, चित्रकूट, त्रिकूट और अन्यान्य सम्पूर्ण, छोटे २ पर्वत वह सभी ऋषियोंको प्रणामकर सभाके बीचमें बैठे ॥ ४७ ॥ इसी समयमें गिरिराजने अपनी सहधर्मिणी (भार्या) मेनाको स्वयं बुलानेकी आज्ञा दी कि, भामिनी (मेना) पुत्रके सहित यहां आवें ॥ ४८ ॥ तब तपस्विनी मेनाने ऋषियोंके चरणोंकी वंदना कर स्वयं अपने ज्ञातियोंको कहलाकर आप स्वयं

यावंतोजंगमागम्याभूताःशैलचतुर्विधाः ॥ तेषांमातात्वियंदेवीयतःप्रोक्तःपिताहरः ॥३९ ॥ प्रणम्यशंकरंदेवाःप्रणमंतुसुतांतव ॥ कुरुष्वपादंशत्रूणांमूर्ध्निभ
स्मपरिप्लुतम् ॥४०॥ याचितारोवयंशर्वैंवरोदातात्वमप्युमा ॥ वधूःसर्वजगन्माताकुरुयच्छ्रेयसेतव ॥४१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ तद्वचोङ्गिरसःश्रुत्वाकाली
तस्थावधोमुखी ॥ हर्षमागम्यसहसापुनर्दैन्यमुपागता ॥ ४२ ॥ ततःशैलपतिःप्राहपर्वतंगंधमादनम् ॥ गच्छशैलानुपामंत्र्यसर्वानाहर्तुमर्हसि ॥ ४३ ॥
ततःशीघ्रतरःशैलोगृहाद्गृहमगाज्जवी ॥ मेर्वाद्यान्पर्वतश्रेष्ठानाजुहावसमंततः ॥ ४४ ॥ तेप्याजग्मुस्त्वरावंतःकार्यमत्वामहत्तदा ॥ विविशुर्विस्मयाविष्टाः
सौवर्णेष्वासनेषुच ॥ ४५ ॥ उदयोहेमकूटश्चरम्यकोमंदरस्तथा ॥ उद्दालकोवारुणश्चवराहोगरुडासनः ॥ ४६ ॥ शुक्तिमान्वेगसानुश्चदृढशृंगोपिशृं
गवान् ॥ चित्रकूटस्त्रिकूटश्चतथान्येक्षुद्रपर्वताः ॥ उपविष्टाःसभायांवैप्रणिपत्यऋषींश्चतान् ॥ ४७ ॥ ततोगिरीशःस्वांभार्यांमेनामाहूतवान्स्वयम् ॥
समागच्छतुकल्याणीसमंपुत्रेणभामिनी ॥ ४८ ॥ साभिवंद्यऋषीणांचचरणांश्चतपस्विनी ॥ सर्वान्ज्ञातीन्समाभाष्यविवेशससुतातदा ॥ ४९ ॥

कन्याके सहित वहां प्रवेश किया ॥ ४९ ॥ हे नारद ! इसके उपरान्त सम्पूर्ण पर्वतोंके बैठनेपर वाक्यको पूर्णरीतिसे जाननेवाले महापर्वत हिमालय उन सकल निजज्ञातियोंको सुनाकर यह वचन बोले ॥ ५० ॥ यह परमपवित्रस्वभाव सप्तऋषि महादेवके निमित्त मेरी पुत्रीकी प्रार्थना करते हैं, यह वार्ता आप सभीको निवेदन करना उचित है, इस कारण मैं पूँछता हूं ॥ ५१ ॥ कि, आप सब हमारी जातिहो इसमें जो न्याय संमतहो सो कहिये, मैं आपलोगोंकी आज्ञाको उल्लंघन करके किसी प्रकारभी कन्यादान नहीं करसकता, इसकारण क्या करनेसे सब ओरकी रक्षा होगी सो कहिये ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हिमालयके वचन सुनकर मेरु इत्यादि एकत्रित सम्पूर्ण पर्वत आसनपर बैठेही कहने लगे ॥ ५३ ॥ महर्षिगण स्वयं याचना करते हैं, साक्षात् देवाधिदेव त्रिपुरान्तक महादेवजी वर हैं, यह जामाता सर्वांशसेही

ततोद्रिषुमहाशैलउपविष्टेषुनारद ॥ उवाचवाक्यंवाक्यज्ञःसर्वानाभाष्यसुस्वरम् ॥ ५० ॥ हिमवानुवाच ॥ इमेसप्तर्षयःपुण्यायाचितारःसुतांमम ॥ महेश्वरार्थंकन्यांतुतच्चावेद्यंभवत्सुवै ॥ ५१ ॥ तद्वदध्वंयथान्यायंज्ञातयोयूयमेवमे ॥ नोल्लंघ्ययुष्मान्दास्यामितत्क्षमंवक्तुमर्हथ ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ हिमवद्वचनंश्रुत्वामेर्वाद्याःस्थावरोत्तमाः ॥ सर्वएवाब्रुवन्वाक्यंस्थितास्तेष्वासनेषुते ॥ ५३ ॥ याचितारश्चमुनयोवरस्त्रिपुरहाहरः ॥ दीयतांशैलकालीयंजामाताभिमतोहिनः ॥ ५४ ॥ मेनाथप्राहभर्त्तारंशृणुशैलेंद्रमेवचः ॥ पितृभिस्तनयामह्यंदत्तानेनैवहेतुना ॥ ५५ ॥ यस्तस्यांभूतपतिनापुत्रोदत्तोभविष्यति ॥ सहनिष्यतिदैत्येंद्रंमहिषंतारकंतथा ॥ ५६ ॥ इत्येवंमेनयाप्रोक्तःशैलेशैलेश्वरःसुताम् ॥ प्रोवाचपुत्रिदत्तासिशर्वायत्वंमयाधुना ॥ ५७ ॥ ऋषीनुवाचकालीयंममपुत्रीतपोधनाः ॥ प्रणामंशंकरवधूर्भक्तिनम्राकरोतिवः ॥ ५८ ॥ ततोप्यरुंधतीकालीमंकमारोप्यचाटुकैः ॥ विलज्जमानामाश्वास्यहरनामोचितैःशुभैः ॥ ५९ ॥

हमारे सबके अभिमत हैं हे शैल ! (हिमालय !) इसकारण आप कालीको प्रदान कीजिये ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त मेना अपने स्वामी हिमालयसे बोली कि, हे शैलेन्द्र ! मेरे वचनोंको श्रवण करो, महादेवजीके देनेके निमित्तही पिताने हमें कन्यादान की है ॥ ५५ ॥ इसके गर्भसे भूतपति महादेवजी जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगे दैत्येन्द्र महिष और तारक उसीके हाथसे निधनको प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ मेनाके इसप्रकार कहनेपर शैलेन्द्र हिमालय कालीसे बोले कि, हे वत्से ! मैंने अब तुमको महादेवजीके हाथमें प्रदान किया ॥ ५७ ॥ यह कहकर वह ऋषियोंसे बोले कि, हे तपोधन ! मेरी नंदिनी काली यह शंकरकी वधू हुई, भक्तिसहित नम्रहो आपको प्रणाम करताहूं ॥ ५८ ॥ तब अरुन्धतीने लज्जित हो कालीको गोदीमें बैठालकर महादेवके नामपर शर्वाणी, भवानी इत्यादि मधुर वचनोंसे लजातीहुईसीने उसका समाश्वासन

(आदर सत्कार) किया ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त सप्तऋषि शैलराजसे बोले कि, सुनो, जामित्र सगुणासयुक्त तिथि अत्यन्त पवित्र और परममंगलमयी है ॥ ६० ॥ आजसे तीसरे दिनमें उत्तराफाल्गुनीके साथ योग होगा इस योगसमूहका नाम मैत्र करके कहा है ॥ ६१ ॥ महादेवजी उस तिथिमेंही मंत्रपूर्वक तुम्हारी कन्याका पाणिग्रहण करैंगे; इस समय आज्ञा दो तो हम जाँय ॥ ६२ ॥ शैलराज हिमालयने उस समय फलमूलादि प्रदान कर भलीभाँतिसे ऋषियोंकी पूजाकर शनैः शनैः उनको बिदा किया ॥ ६३ ॥ उन्होंने भी शीघ्रतासे आकाशमार्गको उठकर पुनर्वार मंदराचलपर जाकर महेश्वरसे साक्षात्कार किया ॥ ६४ ॥ और उनको प्रणाम कर बोले कि, आप भर्ता और अद्रिनंदिनी आपकी वधू हुई हैं अब ब्रह्माजीके सहित तीनोंलोक धन वाहन आपको स्त्रीसहित देखेंगे ॥ ६५ ॥ तब महेश्वरने प्रसन्न

ततःसप्तर्षयःप्रोचुःशैलराजनिशामय ॥ जामित्रगुणसंयुक्तांतिथिंपुण्यांसुमंगलाम् ॥ ६० ॥ उत्तराफाल्गुनीयोगंतृतीयेह्निहिमांशुमान् ॥ गमिष्यति
चतत्रोक्तोमुहूर्त्तोमैत्रनामकः ॥ ६१ ॥ तस्यांतिथौहरःपाणिंग्रहीष्यतिसमंत्रकम् ॥ तवपुत्र्यावयंयामस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६२ ॥ ततःसंपूज्यविधिनाफलमू
लादिभिःशुभैः ॥ विसर्जयामासशनैःशैलराड्ऋषिपुंगवान् ॥६३॥ तेप्याजग्मुर्महावेगात्त्वाक्रम्यमहदालयम् ॥ आसाद्यमंदरगिरिंभूयोऽपश्यंतशंकरम् ॥
॥६४॥ प्रणम्योचुर्महेशानंभवान्भर्ताद्रिजावधूः ॥ सब्रह्मकास्त्रयोलोकाद्रक्ष्यंतिघनवाहनम् ॥ ६५ ॥ ततोमहेश्वरःप्रीतऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥ पूजयामास
विधिनाअरुंधत्यासमंहरः ॥ ६६ ॥ ततःसंपूजिताजग्मुःसुराणांमंत्रणायते ॥ तेऽथाजग्मुर्हरंद्रष्टुंब्रह्मविष्णिवद्रभास्कराः ॥ ६७ ॥ ततःसमभ्येत्यमहेश्वरस्य
कृतप्रणामाविविशुर्महर्षे ॥ सस्मारनंदिप्रमुखांश्चसर्वानभ्येत्यतेवंद्यहरंनिषण्णाः ॥ ६८ ॥ देवैर्गणैश्चापिवृतोगणेशःसंशोभतेमुक्तजटाग्रभारः ॥ यथावनेसर्ज्ज
कदंबमध्येप्ररोहमूलोऽथवनस्पतिर्वा ॥ ६९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे उमासंभवेगौरीविवाहेद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ समागता
न्सुरान्दृष्ट्वानंदिराख्यातवान्विभो ॥ अथोत्थायहरिंभक्त्यापरिष्वज्यन्यपीडयत् ॥ १ ॥

होकर क्रमानुसार विधिपूर्वक अरुन्धतीके सहित ऋषियोंकी पूजा की ॥ ६६ ॥ वह विशेष रूपसे पूजित हो सम्पूर्ण देवताओंको निमंत्रित करनेके अर्थ गये तब ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और भास्कर यह सब महादेवजीके देखनेके निमित्त आये ॥ ६७ ॥ हे महर्षे ! उन्होंने महेश्वरके सन्मुख होकर उन्हें प्रणामकर उनके गृहमें प्रवेश किया, इसी समयमें महादेवजीके स्मरण करनेसे नंदी इत्यादि सम्पूर्णगण आकर उनकी वंदनाकर वहां बैठे ॥ ६८ ॥ इसप्रकारसे देवताओंके चारों ओर बैठनेपर महादेवजी जटाभारको खोलकर उनमें बैठ वनके भीतर सर्ज्जसमूहके बीचमें बैठकर प्ररोहमूल वनस्पतिकी समान शोभायमान हुए ॥ ६९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये भाषाटीकायां गौरीविवाहो नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, नंदी देवताओंको आया हुआ देखकर महादेवजीसे बोले

कि, हे विभो ! देवता आये हैं, तब महादेवजीने उठकर भक्ति दिखाकर वारम्वार हरिको आलिंगनकर उनके हाथसे हाथ मिलाया ॥ १ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजीको मस्तकद्वारा प्रणाम, इन्द्रसे संभाषण और अन्यान्य देवताओंको देखकर सावधान किया, तब वीरभद्र इत्यादि प्रमथगण और पाशुपताद्य शैवगण सभी उनकी जय कर मंदराचलपर बैठे ॥ २ ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महादेवजी विवाहसम्बन्धी व्यापारको समाधान करनेंके अर्थ उस मंदराचलसे देवताओंके सहित कैलासको चले गये ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त देवता अदिति, सुरभि, (कामधेनु) और सुरमा इत्यादि अन्यान्य देवस्त्रियें महाशैल कैलासमें आकर सभी उत्साहसे व्यग्र होकर पार्वतीको सजाने लगीं ॥ ५ ॥ इस ओर तब महादेवजीने महत् अस्थिको शिरोमणि भूषण करके तथा गोरोचनका तिलक लगाय सिंहके चर्म

ब्रह्माणंशिरसानत्वासमाभाष्यशतक्रतुम् ॥ आलोक्यान्यान्सुरगणान्संभावयत्सशंकरः ॥ २ ॥ गणाश्चजयदेवेतिवीरभद्रपुरोगमाः ॥ शैवाःपाशुपताद्याश्च विविशुर्मंदराचलम् ॥ ३ ॥ ततस्तस्मान्महाशैलंकैलासंसहदैवतैः ॥ जगामभगवाञ्छर्वःकर्तुंवैवाहिकंविधिम् ॥ ४ ॥ ततस्तस्मिन्महाशैलेदेवमातादितिः शुभा ॥ सुरभिःसुरसाचान्याश्चक्रुर्मंडनमाकुलाः ॥ ५ ॥ महास्थिशेखरीचारुरोचनातिलकोहरः ॥ सिंहाजिनीचातिनीलभुजंगकृतकुंडलः ॥ ६ ॥ महाहि रत्नवलयहारकेयूरनूपुरः ॥ समुन्नतजटाभारोवृषभस्थोविराजते ॥ ७ ॥ तस्याग्रतोगणाःस्वैःस्वैरारूढायांतिवाहनैः ॥ देवाश्चपृष्ठतोजग्मुर्हुताशनपुरोगमाः ॥ ८ ॥ वैनतेयंसमारूढःसहलक्ष्म्याजनार्दनः ॥ प्रयातिदेवपार्श्वस्थोहंसेनचपितामहः ॥ ९ ॥ गजाधिरूढोदेवेंद्रश्छत्रंशुक्लपटंविभो ॥ धारयामास विततंसहेंद्राण्यासहस्रधृक् ॥ १० ॥ यमुनासरितांश्रेष्ठावालव्यजनमुत्तमम् ॥ श्वेतंप्रगृह्यहस्तेनकच्छपेसंस्थिताययौ ॥ ११ ॥ हंसकुंदेंदुसंकाशंवालव्य जनमुत्तमम् ॥ सरस्वतीसरिच्छ्रेष्ठागजारूढासमादधे ॥ १२ ॥

को ओढकर अत्यन्त नीलसर्परूप कुंडल तथा ॥ ६ ॥ महासर्पके ही रत्नवलय (खडुए) हार, केयूर, (जोशन) और नूपुर, पहनकर उन्नत जटाभार इनसबसे अलंकृतहो वृषभपर चढ़कर परमशोभाको विस्तार करने लगे ॥ ७ ॥ सबगण अपने २ वाहनोंपर चढ़कर उनके आगे २ हुए, हुताशन इत्यादि देवता उनके पीछे २ चले ॥ ८ ॥ जनार्दनजी लक्ष्मीके सहित गरुड़पर चढ़कर और पितामह ब्रह्माजी हंसपर अधिष्ठित हो उनके पार्श्वका आश्रयकर चले ॥ ९ ॥ सहस्रलोचन देवराज इन्द्र शचीके साथ ऐरावतपर चढ़कर श्वेतछत्रको धारणकर साथ २ हुए ॥ १० ॥ सरिद्वरा यमुनाजी उत्तम श्वेत चौंरोंको लेकर कछुएपर चढ़कर चलीं ॥ ११ ॥ सरित नदियोंमें प्रधाना सरस्वतीजी हँसकर, कुन्द, (बबूलेकेफूल) चंद्रमाके सदृश श्वेत उत्तम बालश्वेत चमरको लेकर हाथीकी पीठपर

चढ़कर संग २ जाने लगीं ॥ १२ ॥ कामचारी छहौं ऋतुमें परम सुगंधित पंच वर्णके फूलोंको महादेवजीके निमित्त यत्नसहित ग्रहणकर लेचलीं ॥ १३ ॥
पृथूदक ऐरावतपर मतवाले हाथीपर चढ़कर अनुलेपनको हाथमें ले शीघ्रतासे चले ॥ १४ ॥ तुम्बुरुप्रभृति गंधर्वगण मधुर स्वरसे गान करते हुए और किन्नरगण बाजे
बजाते हुए महादेवजीके आगे २ हुए ॥ १५ ॥ अप्सरागण नृत्य और मुनिगण उनकी स्तुति करनेलगे, और गंधर्वगण वैसेही (खाली) शूलपाणि त्रिनयनके पीछे
चलने लगे, एकादश करोड़ रुद्र और बारह करोड़ ः इनैत्य और आठ करोड़ वसु उनके संग २ चले॥१६॥१७॥सड़सठ करोड़ प्रमथगण और चौवीस करोड़ ऊर्द्ध
रेता ऋषि जानेलगे ॥ १८ ॥ असंख्यों राक्षस, किन्नर और सम्पूर्ण यक्ष दिवाहके निमित्त अत्यन्त व्याकुलहो पीछे २ चले ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त महादेवजी क्षण

ऋतवःषट्समादायकुसुमंगंधसंयुतम् ॥ पंचवर्णंमहेशार्थंजग्मुस्तेकामचारिणः ॥ १३ ॥ मत्तमैरावतनिभंगजमारुह्यवेगवान् ॥ अनुलेपनमादाययय‍ौतत्र
पृथूदकः ॥ १४ ॥ गंधर्वास्तुंबरुमुखागायंतोमधुरस्वरम् ॥ अनुजग्मुर्महादेवंवादयंतश्चकिंनराः ॥ १५ ॥ नृत्यंत्यप्सरसश्चैवस्तुवंतोमुनयश्चतम् ॥ गंधर्वा
यांतिदेवेशंत्रिणेत्रंशूलपाणिनम् ॥ १६ ॥ एकादशतथाकोट्योरुद्राणांतत्रवैययुः ॥ द्वादशैवादितेयानामष्टौकोट्योवसूनपि ॥ १७ ॥ सप्तषष्टिस्तथाकोट्यो
गणानामृषिसत्तमाः ॥ चतुर्विंशत्तदाजग्मुर्गणानामूर्ध्वरेतसाम् ॥१८॥ असंख्यातानियूथानियक्षकिन्नररक्षसाम् ॥ अनुजग्मुर्महेशानंविवाहायसमाकुलाः ॥
॥१९॥ ततःक्षणेनदेवेशःक्ष्माधराधिपतेस्तलम् ॥ संप्राप्तश्चागमच्छैलाःकुंजरस्थाःसमंततः॥२०॥ततोननामभगवांस्त्रिणेत्रःस्थावराधिपम् ॥ शैलाःप्रणेमुरी
शानंततोऽसौमुदितोऽभवत् ॥२१॥ समंसुरैःपार्षदैश्चविवेशवृषकेतनः ॥ नंदिनादर्शितेमार्गेशैलराजपुरंमहत् ॥२२॥ जीमूतकेतुरायातइत्येवंनगरस्त्रियः ॥
निजकर्मपरित्यज्यदर्शनायाद्दताभवन् ॥२३॥ माल्यदामसमादायकरेणैकेनभामिनी॥केशपाशंद्वितीयेनशंकराभिमुखीगता ॥ २४ ॥ अन्यालक्तकरागाढ्यं
पादंकृत्वाकुलेक्षणा ॥ अनलक्तकमेकंहिहरंद्रष्टुमुपागता॥२५॥एकेनाक्ष्णांजितेनैवश्रुत्वाभीममुपागतम् ॥ सांजनांचप्रगृह्यान्याशलाकांसुष्ठुधावति ॥ २६ ॥

कालके बीचमेंही हिमालयपर जापहुँचे, तब सम्पूर्ण पर्वतभी हाथीपर चढ़कर चारों ओरसे उनकी ओरको चले ॥ २० ॥ इसके उपरान्त त्रिलोचन (महादेवजी)
को स्थावरोंके अधिपति हिमालयके प्रणाम करनेपर उन सब पर्वतोंने उन्हें प्रणाम किया, उससे हिमालय अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ उस समय नंदी मार्ग दिखाते
हुए महादेवजी अपने पार्षद और अमरगणोंके सहित पर्वतराजकी विशालपुरीमें गये ॥ २२ ॥ जीमूतकेतु महादेवजी आये हैं यह समाचार सुनकर नगरकी स्त्रियें
अपने २ गृहकर्मोंको त्यागकरके उनके दर्शनोंकी अनुरागिणी हुईं ॥ २३ ॥ इनमेंसे एक स्त्रीने एक हाथमें माला और दूसरे हाथमें अपने काढ़े हुए शिरके बालोंको
शीघ्रताके कारण नहीं बांधकर केवल अपने हाथसे उसे ग्रहणकर शंकरकी ओरको चली ॥ २४॥ दूसरी स्त्रीने एक पैरमें तो महावर लगाई और दूसरेमें विना

लगायेही केवल अंजनसहित सलाई हाथमें लियेहुए शीघ्रतासे चली ॥ २५ ॥ २६ ॥ दूसरी सुन्दरी हरके दर्शनकी इच्छाके वश होकर रसना (कोंधनी) सहित वस्त्र हाथोंसे पकड़कर उन्मत्तताकी समान नंगीसी हो दौड़ी ॥ २७ ॥ स्तनोंके भारसे मंद २ चलनेवाली दूसरी कृशोदरी स्त्रीने सुना कि, महादेवजी आगे बढ़गये, तब वह कुचभारसे शीघ्र पहुँचनेमें अशक्त हो अपने कुच और यौवनकी निन्दा करनेलगीं ॥ २८ ॥ इसप्रकारसे महादेवजी नगरनिवासियोंकी स्त्रियोंको क्षोभ उत्पन्न कराते हुए वृषभपर चढ़े ससुरालके दिव्यमंदिरमें आये ॥ २९ ॥ उन्होंने शैलेन्द्रके भवनमें प्रवेश किया है यह देखकर वहाँकी कामिनियें कहनेलगीं कि, अम्बिका पार्वतीने जैसा दुश्चर तप किया है वैसाही फल प्राप्त हुआ है. कारण कि, यह सब देवताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् शम्भु महादेवहैं ॥ ३० ॥ इन्होंने ही कुसुमायुध कन्दर्पको अनंग किया था, यही दक्षका यज्ञ विनाशक हैं, यही भगदेवताकी आँखें निकालनेवाले हैं, और यही त्रिशूल और पिनाकको धारण करते हैं ॥ ३१ ॥ हे शंकर ! तुमको नमस्कार

अन्यासरशनंवासःपाणिनादायसुंदरी ॥ उन्मत्तेवागमन्नग्नाहरदर्शनलालसा ॥ २७ ॥ अन्यातिक्रांतमीशानंश्रुत्वास्तनभरालसा ॥ अनिंदतकुचौबाला यौवनंस्वंकृशोदरी ॥ २८ ॥ इत्थंसनागरस्त्रीणांक्षोभंसंजनयन्हरः ॥ जगामवृषभारूढोदिव्यंश्वशुरमंदिरम् ॥ २९ ॥ ततःप्रविष्टंप्रसमीक्ष्यशंभुंशैलेंद्रवेश्मन्यबलाब्रुवंति ॥ स्थानेतपोदुश्चरमंबिकायाश्चीर्णंमहानेषसुरस्तुशंभुः ॥ ३० ॥ सएषयेनांगमनंगतांकृतंकंदर्पनाम्नःकुसुमायुधस्य ॥ क्रतोःक्षयीदक्षविनाशकर्त्ताभगाक्षिहाशूलधरःपिनाकी ॥ ३१ ॥ नमोनमःशंकरशूलपाणेमृगारिचर्मांबरकालशत्रो ॥ महाहिहारांकितकुंडलायनमोनमःपार्वतिवल्लभाय ॥ ॥ ३२ ॥ इत्थंसंस्तूयमानःसुरपतिविधृतेनातपत्रेणशंभुःसिद्धैर्वंद्यःसपक्षैरहिकृतवलयीचारुभस्मोपलिप्तः ॥ अग्रस्थेनाग्रजेनप्रमुदितमनसाविष्णुनाचानुगेनवैवाहींमंगलाढ्यांहुतवहसहितामारुरोहाथवेदीम् ॥ ३३ ॥ आयातित्रिपुरांतकेसहचरैःसार्धंचसप्तर्षिभिर्व्यग्रोभूद्गिरिराजवेश्मनिजनःकन्यासमालंकृतौ ॥ व्याकुल्यंसमुपागताश्चगिरयःपूजादिनादेवताःप्रायोव्याकुलिताभवंतिसुहृदःकन्याविवाहोत्सुकाः ॥ ३४ ॥

है. हे शूलपाणे ! तुमको नमस्कार है, हे मृगारि (व्याघ्र) चर्माम्बर ! हे कालशत्रो ! तुमको वारम्वार नमस्कार है, तुम महानागरूपहार और कुंडलोंसे अलंकृतहो, तुमको नमस्कार है, तुम पार्वतीके वल्लभहो तुमको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार महादेवजी वहांकी कामिनीगणोंके द्वारा स्तुति किये जाकर और सपक्ष (सहाय-साथी) सिद्धोंसे वंदितहो परममंगलमयी अग्निके सहित विवाहकी वेदीपर अधिरूढ़ हुए, उनके हाथोंमें सर्पोंके खड़ुए थे और शरीर अति शुक्लभस्मसे शोभायमान था, और सुरपति इन्द्र उस समय उनके मस्तकपर छत्र लगाये हुए थे, ब्रह्माजी प्रसन्नहो उनके आगे हुए और विष्णुजी हर्षित हृदयहो उनके साथ चले ॥ ३३ ॥ त्रिपुरान्तक महादेवजीके सप्तऋषियों और सहचरोंके साथ युक्त होकर आगमन करनेसे गिरिराज हिमालयके सम्पूर्ण भवनमें

स्थित सब जनोंने व्याकुलहो कन्याको सजाना प्रारंभ किया, आयेहुए सम्पूर्ण पर्वतभी देवताओंकी पूजा इत्यादि व्यापारोंसे अत्यन्तही व्यस्त होगये, कन्याके विवाहमें उत्सुक सुहृद्गण सभी इसप्रकारसे व्याकुल होजाते हैं ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण स्त्रियें पार्वतीको सजाय शुक्लवर्णकी चादरसे उनके अंगोंको ढककर शिवजीके निकट लेजानेके लिये उस समय भ्राता सुनाभ (मैनाक) कोभी इस उत्सवमें बुलाया, ये पार्वतीको उनके निकट लेगये ॥ ३५ ॥ आयेहुए देवतालोग शोभायमान हिरण्मय हर्म्यके नीचे बैठकर शंकर और पार्वती इन दोनोंकी चेष्टितको देखने लगे. इसप्रकारसे हर कृशांगी काली (पार्वती) के सहित लौकिकविवाहपद्धतिके अनुसार कर्म करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३६ ॥ जहाँ उनके क्रीड़ाके अर्थ उत्तम २ सुगंधित फूलोंसे लदेहुए सम्पूर्ण वृक्ष विराजमान हैं, झरनेके जलबिंदुगिररहे हैं, उस

प्रसाध्यदेवींगिरिजांततःस्त्रियोदुकूलशुक्लाभिवृतांगयष्टिकाम् ॥ भ्रात्रासुनाभेनतदोत्सवेकृतेसाशंकराभ्याशमथोपपादिता ॥ ३५ ॥ ततःशुभेहर्म्यतलेहिरण्मयेस्थिताःसुराःशंकरकालिचेष्टितम् ॥ पश्यंतिदेवापिसमंकृशांग्यालोकानुजुष्टंपदमाससाद ॥३६॥ यत्रक्रीडाविचित्राःसकुसुमतरवोवारिणोबिंदुपातैर्गंधाढ्यैर्गंधचूर्णैःप्रविरलमवनौगुंठितौगुंडिकायाम् ॥ मुक्तादामैःप्रकामंहरगिरितनयाक्रीडनार्थंतदाघ्नन्पश्चात्सिंदूरपुञ्जैरविरतविततैश्चक्रतुःक्ष्मांसुरक्ताम् ॥ ॥ ३७ ॥ एवंक्रीडांहरःकृत्वासमंचगिरिकन्यया ॥ आगच्छद्दक्षिणांवेदिमृषिभिःसेवितांदृढाम् ॥ ३८ ॥ अथाजगामहिमवाञ्छुक्लांबरधरःशुचिः ॥ पवित्रपाणिरादायमधुपर्कमथाकुलम् ॥ ३९ ॥ उपविष्टस्त्रिणेत्रस्तुशाक्रींदिशमपश्यत ॥ सप्तर्षिकांश्चशैलेंद्रःसूपविष्टोविलोकयन् ॥ ४० ॥ सुखासीनस्यशर्वस्यकृतांजलिपुटोगिरिः ॥ प्रोवाचवचनंश्रीमान्धर्मसाधनमात्मनः ॥ ४१ ॥

गंडिकाभूमिमें गंधोंसे भरे हुए गंधचूर्ण अर्थात् कुंकुम आदिकरके पार्वती और महादेव दोनों परस्पर क्रीड़ा करनेलगे, जिससे उन दोनोंका शरीर गुंठित अर्थात लिप्त होगया, और उससमय वहांपर स्थित देवगण शिव और पार्वतीजीके ऊपर मुक्तादाम (गजमुक्ताकी मालाओं) को फेंकनेलगे, अर्थात् सब एक साथही शिवजीको पहरानेलगे, इसके उपरान्त वे दोनोंनेही निरन्तर फैलते हुए सिन्दुर फूलोंकेद्वारा उस वेदीकी भूमिको अत्यन्त लाल करदिया ॥ ३७ ॥ महादेवजी इस प्रकारसे गिरिकन्या (पार्वतीजी) के साथ क्रीड़ा करके ऋषिगणोंसे सेवित दृढबद्ध दक्षिणवेदीमें गये ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त हिमवान पवित्रपाणिहो शुक्लवस्त्रोंको पहन व्यग्रचित्तसे मधुपर्कको लेकर उस स्थान (दक्षिणवेदी) में आये ॥ ३९ ॥ उस समय महादेवजी बैठे हुए पूर्वदिशाकी ओर देख रहेथे, अर्थात् पूर्वमुखहो बैठेथे और गिरिराज हिमालय सुखसे बैठकर सप्तऋषियोंको देखनेलगे अर्थात् पश्चिम मुखहो बैठे ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त वह हाथ

जोड सुखसे बैठे हुए शंकरको सम्बोधन कर अपने धर्मसाधन वचन कहनेलगे ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! मेरी पुत्री और पुलहाग्रजकी पोती और पितरोंकी दौहित्री (धेवती) इस कालीको ग्रहण कीजिये, मैं इसे दान करताहूँ ॥४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, शैलराजने इसप्रकारके वचन कहकर फिर वारम्वार ऊँचे स्वरसे हे भगवन् ! ग्रहण कीजिये, इस प्रकारसे शीघ्रताके साथ कालीके हाथको महादेवजीके हाथमें दे दिया ॥ ४३ ॥ तब महादेवजी बोले हमारी माता नहीं, जाति नहीं और बांधवादि कोईभी नहीं है, हम सर्वथा निराश्रय हैं, फिर गिरिशृंगही हमारा वास है, हे अद्रिराज ! ऐसा मैं आपकी पुत्रीका पाणिग्रहण करता हूँ ॥ ४४ ॥ यह कहकर वरद महादेवजीने दृढमुष्टि अपने दक्षिणहाथसे अद्रिकुमारी कालीके हाथको पकड़लिया. हे सुरर्षे ! तब वह कालीभी महादेवजीके करस्पर्शको पाकर परम हर्षित हुई ॥ ४५ ॥ पूर्वोक्तप्रकारसे महादेवजी अद्रिनंदिनीके सहित वेदीमें बैठेहुए मधुपर्कको किञ्चित् भोजन कर, शुक्लवर्णके कलश, धानके लाजाय अर्थात् खीलोंको

हिमवानुवाच ॥ मत्पुत्रींभगवन्कालींपौत्रींचपुलहाग्रजे ॥ पितॄणामपिदौहित्रींप्रतीच्छेमांमयोदिताम् ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वाशैलेंद्रोहस्तं
हस्तेनयोजयन् ॥ प्रादात्प्रतीच्छभगवन्निदमुच्चैरुदीरयन् ॥ ४३ ॥ हरउवाच ॥ नमेऽस्तिमातानपितातथैवनज्ञातयोवापिचबांधवाद्याः ॥ निराश्रयोऽहं
गिरिशृंगवासीसुतांप्रतीच्छामितवाद्रिराज ॥ ४४ ॥ इत्येवमुक्त्वावरदोऽवपीडयत्करंकरेणाद्रिकुमारिकायाः ॥ साचापिसंस्पर्शमवाप्यशंभोःपरांमुदं
लब्धवतीसुरर्षे ॥ ४५ ॥ तथाधिरूढोवरदोऽथवेदिंसहाद्रिपुत्र्यामधुपर्कमश्नन् ॥ दत्त्वाचलाजान्कलमस्यशुक्लांस्ततोविरंचोगिरिजामुवाचह ॥ ४६ ॥
कालिपश्येशवदनंरम्यंशशधरप्रभम् ॥ समदृष्टिःस्थिराभूत्वाकुरुष्वाग्नेःप्रदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥ ततोंबिकाहरमुखेदृष्टेशैत्यमुपागता ॥ यथार्करश्मिसं
तताप्राप्यवृष्टिमिवावनिः ॥४८॥ भूयःप्राहविभोर्वक्रमीक्षस्वेतिपितामहः ॥ लज्जयासापिदृष्टेतिशनैर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ समंगिरिजयातेनहुताशस्त्रिः
प्रदक्षिणम् ॥ कृतोलाजाश्चहविषासमंक्षिप्ताहुताशने ॥ ५० ॥

अग्निके बीचमें प्रक्षेप करनेके अर्थ मैनाकके हाथसे कालीके हाथमें दिलाकर लाजाहुति करनेमें प्रवृत्त हुए, इसी समय स्वयं पितामह (ब्रह्माजी) देवी कालीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि, हे काली ! तुम शिवजीके रमणीक चंद्रमाके समान प्रभावाले मुखमंडलको देखो, और समानदृष्टिसे स्थितहो अग्निकी प्रदक्षिणा करो ॥४७॥ पितामह ब्रह्माजीके वचनोंसे अम्बिका पार्वती शिवजीके मुखका दर्शन कर सूर्यकेद्वारा संतापित हुई पृथ्वी जैसे वृष्टिको पाकर शैत्य (ठंडापन) का अनुभव करती है उसीप्रकारसे हृदयमें शीतल हुई ॥ ४८ ॥ पितामह ब्रह्माजी पुनर्वार बोले कि, महादेवजीके मुखको देखो, उन्होंने लज्जायुक्त हो ब्रह्माजीसे धीरे २ कहा कि, दर्शन किया ॥४९॥ इसके उपरान्त महादेवजीने गिरिनंदिनीके सहित तीन वार अग्निकी प्रदक्षिणा कर उसमें घृतसहित सम्पूर्ण लाज (खीलैं) को निक्षेप किया ॥ ५० ॥

इसी समयमें मालिनी नामक अम्बिकाकी सखीने दाय (इनाम) के निमित्त महादेवजीके चरणोंको पकडा. तब वह बोले कि, चरण छोड़दो,
तुम्हारी प्रार्थना क्या है सो कहो उसे मैं पूर्ण करूंगा ॥ ५१ ॥ मालिनी बोली कि, हे शंकर ! मेरी सखी कालिको अपना गोत्रीय (घरसे
लायेहुए) सौभाग्य (गहना इत्यादि चढ़ावा) प्रदान कीजिये, ऐसे होनेसे आप छुटकारा पावेंगे ॥ ५२ ॥ महादेवजी बोले कि, हे मालिनी ! मैंने वही दिया
इस समय छोड़दो, मैंने तुम्हारी इस सखीको अपना गोत्रीय सौभाग्यस्वरूप जोदिया सो कहताहूं श्रवण करो ॥५३॥ यह जो शंख, चक्र, पीताम्बरधारी मधुसूदन
विराजमान हैं मैं ने इन्हींके सौभाग्यको अपना गोत्रीय मानकर प्रदान किया ॥ ५४ ॥ वृषभध्वज महादेवजीके इसप्रकार कहनेपर निजगोत्रके शुभचारित्ररूप

ततोहरांघ्रिर्मालिन्यागृहीतोदायकारणात् ॥ किंयाचसेतेदास्यामिमुंचस्वेतिहरोब्रवीत् ॥ ५१ ॥ मालिनीशंकरंप्राहमत्सख्यादेहिशंकर ॥ सौभाग्यंनि
जगोत्रीयंततोमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ५२ ॥ अथोवाचमहादेवोदत्तंमालिनिमुंचमाम् ॥ सौभाग्यंनिजगोत्रीयंयोस्यास्तंशृणुवच्मिते ॥ ५३ ॥ योऽसौपीतां
बरधरःशंखधृङ्मधुसूदनः ॥ एतदीयंहिसौभाग्यंदत्तंमद्गोत्रमेवहि ॥ ५४ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेप्रमुमोचवृषध्वजम् ॥ मालिनीनिजगोत्रस्यशुभचारित्रमा
लिनी ॥ ५५ ॥ यदाहरोहिमालिन्यागृहीतश्चरणेशुभे ॥ तदाकालीमुखंब्रह्मादर्दर्शशशिनोऽधिकम् ॥ ५६ ॥ तद्दृष्ट्वामोहमगमच्छुक्रच्युतिमवापच ॥
तच्छुक्रंवालुकायांचखिलीचक्रेससाध्वसः ॥ ५७ ॥ ततोब्रवीद्धरोब्रह्मन्नद्विजान्हंतुमर्हसि ॥ अमीमहर्षयोधन्यावालखिल्याःपितामह ॥ ५८ ॥ ततो
महेशवाक्यांतेसमुत्तस्थुस्तपस्विनः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणिवालखिल्याइतिस्मृताः ॥ ५९ ॥ ततोविवाहेनिर्वृत्तेप्रविष्टःकौतुकंहरः ॥ रेमेसहोमयारा
त्रिप्रभातेपुनरुत्थितः ॥ ६० ॥

मालाको धारणकरनेवाली उसमालिनीने उनको छोड़दिया ॥ ५५ ॥ मालिनीने जब महादेवजीके चरणोंको ग्रहणकिया था उससमय ब्रह्माजीने देखा कि, देवी
कालीका मुखमंडलप्रसन्नताके कारणसे चंद्रमाकी अपेक्षासे कहीं अधिक सौन्दर्यवान् होगया था ॥ ५६ ॥ उस प्रसन्नमुखमंडलको देखकर वह मोहको प्राप्त हुए
उसके साथही उनका वीर्य स्खलित हुआ, उन्होंने भयभीतहो उसशुक्रको रेतेके बीचमें गिरादिया ॥ ५७ ॥ महादेवजी यह घटना देखकर उनसे बोले कि, हे
ब्रह्मन् ! ब्राह्मणोंका वध करना आपको उचित नहीं है, हे पितामह ! यह सब धन्य (साक्षात् सर्वलोकवरणीय) वालखिल्य महर्षि कहावेंगे ॥ ५८ ॥ महादेवजीके
इसप्रकारके वचन कहनेके उपरान्त अठासी सहस्र वालखिल्य महर्षि उसरेतसे समुत्थित हुए और उनका नाम वालखिल्य हुआ ॥५९ ॥ इसके उपरान्त वैवाहिक

क्रियाके होचुकनेपर महादेवजी कौतुकागारमें अर्थात् कोवर घरमें प्रवेशकर रात्रि भर उमाके सहित विहारकर पुनर्वार प्रभातको उठबैठे ॥ ६० ॥ इसप्रकारसे वह अद्रिसुताको प्राप्तकर पर्वतपति हिमालयके द्वारा आमंत्रित और संपूजितहो सम्पूर्ण भूतगणोंके साथमें आनंदपूर्वक शीघ्रही अपने मंदिर (मंदराचल) कोगये॥ ६१ ॥ फिर अष्टमूर्ति महादेवजी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र इत्यादि देवताओंको उचित प्रणाम आदिसे पूजाकर विदादे भूतगणोंके साथ मंदराचलपर्वतपर वास करनेलगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे उमासम्भवे भाषाटीकायां गौरीविवाहोनाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हेमुने ! महादेवजी उस मंदराचलपर जाय विश्वकर्माको बुलाकर बोले कि, हमारा घर बनादो ॥ १ ॥ तब विश्वकर्माजीने महादेवजीका स्वास्तिक लक्षण (सर्वतोभद्ररूप) गृह निर्माण करदिया, यह गृह प्रमाणमें चौंसठ योजन और सुवर्णसे बना हुआ था ॥ २ ॥ इसके बोरण (बाहरदरवाजा) हाथी दांतके, उसके भीतरका भाग मुक्ताजालसे खचित और सम्पूर्ण सीढ़ियें स्फटिककी बनी हुई थीं, वैदूर्यमणिका उसपर चित्र किया हुआ था ॥ ३ ॥ ऐसा सात महल ऊँचा अत्यन्त विशाल और सबप्रकारके गुणयुक्त गृहके बनजानेपर देवपति पशुपतिने गृहस्थ कर्त्तव्य उसमें वास्तुयज्ञादिक किया ॥ ४ ॥ हे मुने ! शंकर महादेवजी उस पूर्वमहर्षि आदिकसे आचरित मार्गका अनुसरण करने लगे. ऐसे पूर्वचरितमार्गमें स्थितिकर पार्वतीजीके साथ विहार करतेहुए उन त्रिलोचन भगवान्का बहुत समय बीतगया, तब एकसमय जगत्पति महादेवजीने धर्मानुष्ठानके निमित्त पार्वतीजीको 'काली' कहकर पुकारा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ऐसे सम्बोधनको सुनकर पार्वतीजी क्रोधयुक्तहो उनसे बोलीं कि, अरण्यबाणसे विद्ध अथवा कुठार द्वारा छिन्न होनेसेभी पुनर्वार पौंधता है-परन्तु वचनोंसे जो दुर्वचन कहाजाता है वह बीभत्स अर्थात् दारुणदुःखदायी होता है. कारण कि, उसका फिर पुनरुत्थान

ततोद्रिपुत्रींसमवाप्यशंभुःसर्वैःसमंभूतगणैश्चहृष्टः ॥ संपूजितःपर्वतपार्थिवेनस्वमंदिरंशीघ्रमुपाजगाम ॥६१॥ ततःसुरान्ब्रह्महरींद्रमुख्यान्प्रणम्यसंपूज्ययथा
विभागम् ॥ विसृज्यभूतैःसहितोमहीध्रमध्यावसन्मंदरमष्टमूर्तिः ॥ ६२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे उमासंभवेगौरीविवाहोनामत्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥
पुलस्त्यउवाच ॥ ततोगिरौवसन्रुद्रःस्वेच्छयाविचरन्मुने ॥ विश्वकर्माणमाहूयअवोचत्कुरुमेगृहम् ॥ १ ॥ ततश्चकारशर्वस्यगृहंस्वास्तिकलक्षणम् ॥
योजनानिचतुःषष्टिःप्रमाणेनहिरण्मयम् ॥ २ ॥ दंततोरणनिर्व्यूहंमुक्ताजालांतरंशुभम् ॥ शुद्धस्फटिकसोपानंवैडूर्यकृतरूपकम् ॥ ३ ॥ सप्तकक्षंसुविस्ती
र्णंसर्वसमुदितंगुणैः ॥ ततोदेवपतिश्चक्रेयज्ञंगार्हस्थ्यलक्षणम् ॥ ४ ॥ तंपूर्वचरितंमार्गमनुयातिस्मशंकरः ॥ तथासतस्त्रिणेत्रस्यमहान्कालोभ्यगान्मुने ॥
॥ ५ ॥ रमतःसहपार्वत्याधर्मापेक्षीजगत्पतिः ॥ ततःकदाचिद्ब्रह्मार्थेकालीत्युक्ताभवेनहि ॥ ६ ॥ पार्वतीमन्युनाविष्टाशंकरंवाक्यमब्रवीत् ॥ संरोहतीषुणा
विद्धंवनंपरशुनाहतम् ॥ वाचादुरुक्तंबीभत्संनप्ररोहतिवाक्क्षतम् ॥ ७ ॥

नहीं होता ॥ ७ ॥ वचनरूपी बाणोंके शरीरमें पतितहोनेसे जिसको आघात लगता है वह दिनरात शोक करता है, अतः बुद्धिमान् और पंडित लोग कभी
उसको नहीं छोड़ते. आज आपने उस सज्जनोंसे आचरित नियमरूपी धर्मको व्यर्थ कर दिया ॥ ८ ॥ इसकारण हे देवेश ! मैं अतिउत्तम तप करनेके निमित्त जाकर
इसप्रकारका यत्न करूंगी कि, जिससे फिर तुम मुझे ‘काली’ न कहसको ॥ ९ ॥ गिरिनंदिनी महादेवजीसे इसप्रकार कह प्रणामकर उनकी आज्ञा लेकर पीछे स्वर्गमें
गईं ॥ १० ॥ वह शीघ्रतासे कूदकर हिमालयके परमपवित्र शिखरपर उतरीं जैसा कि, प्रयत्नपूर्वक ब्रह्माजीसे बनायाहुआ मंदराचलका शिखर टंक (छेनी) से कट
कर गिर गयाहो ॥ ११ ॥ और उतरतेही जया, विजया, महापुण्या जयन्ती और चौथी अपराजिताको स्मरणकिया ॥ १२ ॥ स्मरण करतेही वह देवी कालीका

वाक्सायकावदनान्निष्पतंतितैराहतःशोचतिरात्र्यहानि ॥ नतान्विमुंचेतहिपंडितोजनस्तद्द्यधर्मंवितथंत्वयाकृतम् ॥ ८ ॥ तस्माद्व्रजामिदेवेशतप
स्तप्तुमनुत्तमम् ॥ तथायतिष्येनयथाभवान्कालीतिवक्ष्यति ॥ ९ ॥ इत्येवमुक्त्वागिरिजाप्रणम्यचमहेश्वरम् ॥ अनुज्ञातात्रिणेत्रेणदिवमेवोत्पपातह ॥१०॥
समुत्पत्यचवेगेनहिमाद्रेःशिखरंशिवम् ॥ टंकच्छिन्नंप्रयत्नेनविधात्रानिर्मितंयथा ॥ ११ ॥ ततोऽवतीर्यसस्मारजयांचविजयांतथा ॥ जयंतींचमहापुण्यां
चतुर्थीमपराजिताम् ॥ १२ ॥ ताःसंस्मृताःसमाजग्मुःकालींद्रष्टुंहिदेवताः ॥ अनुज्ञातास्तथादेव्याःशुश्रूषांचक्रिरेशुभाः ॥ १३ ॥ ततस्तपसिपार्वत्यां
स्थितायांहिमवद्वनात् ॥ समाजगामतंदेशंव्याघ्रोदंष्ट्रानखायुधः ॥ १४ ॥ एकपादस्थितायांवैदेव्यांव्याघ्रस्त्वचिंतयत् ॥ यदापतिष्यतेचेष्टंतदादास्यामिवै
अहम् ॥ १५ ॥ इत्येवंचिंतयन्नेवदत्तदृष्टिर्मृगाधिपः ॥ पश्यमानस्तद्वदनमेकदृष्टिरजायत ॥ १६ ॥ ततोवर्षशतंदेवीगृणंतीब्रह्मणःपदम् ॥ तपोऽतप्यत्ततो
भ्यागाद्ब्रह्मात्रिभुवनेश्वरः ॥ १७ ॥ पितामहस्तथोवाचदेवींप्रीतोस्मिशाश्वते ॥ तपसाधूतपापासिवरंवृणुयथेप्सितम् ॥ १८ ॥

दर्शन करनेके निमित्त वहाँ आईं और उनकी आज्ञाको ग्रहणकर उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगीं ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त पार्वतीजीके तप करनेके समय दांत और
नाखून हैं अस्त्र जिसके ऐसा एक व्याघ्र हिमालयके बनसे निकलकर उस स्थानमें आया ॥ १४ ॥ देवी पार्वतीजीके एक पैरसे स्थिति करनेपर वह व्याघ्र
चिन्ता करनेलगा कि, जब यह देवी गिरैंगी तभी मैं इनको ग्रहण करूंगा ॥ १५ ॥ वह व्याघ्र इसप्रकारकी चिन्ताकर एकटक लोचनसे पार्वतीजीके शरीरको देखनेलगा,
और उसी अवस्थामें एकदृष्टि होकर रहा ॥ १६ ॥ इस ओर देवीने ब्रह्मपदको उच्चारण करती हुई एकसौ वर्षतक तपस्या की, तब त्रिलोकीके ईश्वर ब्रह्माजी
आये ॥ १७ ॥ और पार्वतीजीसे बोले कि, हेशाश्वतस्वरूपिणी ! मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआहूं, तपके प्रभावसे तुम्हारे सम्पूर्ण पाप धुलगये हैं अब इच्छानुसार बर मांगो ॥ १८ ॥

पार्वतीजी बोलीं कि, हे कमलोद्भव ! प्रथम इस व्याघ्रको वर दीजिये ऐसा होनेसे मैं परमप्रसन्न हूंगी ॥ १९ ॥ तब कमलयोनि ब्रह्माजी उस अद्भुत कर्मा
व्याघ्रको वर देकर बोले कि, तुम शिवजीके गणोंमें सर्दार होंगे, महादेवजीमें भक्ति होगी, अजेय होंगे और धार्मिक होंगे ॥ २० ॥ इसप्रकारसे व्याघ्रको वर
देकर शिवकान्ता पार्वतीजीसे बोले कि, हे अम्बिके ! तुम व्यग्रचित्तहो वरको ग्रहण करो मैं दान करताहूं ॥ २१ ॥ गिरिनंदिनी देवी ब्रह्माजीसे बोलीं कि, हे भगवन् !
मेरा वर्ण कंचनकी समान होजाय मुझे यही वर दीजिये ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, यही होगा. ऐसा कहकर वह चलेगये, पार्वतीनेभी कृष्णवर्णकी देहको त्याग
कर पद्मरागकी समान गौरकान्तिवाला देह धारण किया ॥ २३ ॥ हे मुने ! वह उस कोशसे पुनर्वार कात्यायनीरूपसे उत्पन्न हुईं, तब सहस्रलोचन इन्द्र आये

अथोवाचवचःकालीव्याघ्रस्यकमलोद्भव ॥ वरदोभवतेनाहंयास्येप्रीतिमनुत्तमाम् ॥ १९ ॥ ततःप्रादाद्वरंब्रह्माव्याघ्रस्याद्भुतकर्मणः ॥ गाणपत्यंविभौभ
क्तिमजेयत्वंचधर्मिताम् ॥ २० ॥ वरंव्याघ्रायदत्त्वैवंशिवकांतामथाब्रवीत् ॥ वृणीष्ववरमव्यग्रावरंदास्येतवांबिके ॥ २१ ॥ ततोवरंगिरिसुताप्राहदेवीपि
तामहम् ॥ वरःप्रदीयतांब्रह्मन्वर्णंकनकसंनिभम् ॥ २२ ॥ तथेत्युक्त्वागतोब्रह्मापार्वतीचाभवत्ततः ॥ कोशंकृष्णंपरित्यज्यपद्मकिंजल्कसन्निभा ॥२३॥
तस्मात्कोशाच्चसाजाताभूयःकात्यायनीमुने ॥ तामभ्येत्यसहस्राक्षःप्रतिजग्राहदक्षिणाम् ॥ प्रोवाचगिरिजांदेवोवाक्यंस्वर्गायवासवः ॥ २४ ॥ इंद्रउवाच ॥
इयंप्रदीयतांमह्यंभगिनीमेस्तुकौशिकी ॥ त्वत्कोशसंभवाचेयंकौशिकीकौशिकोप्ययम् ॥ २५ ॥ तांप्रादादितिसंश्रुत्यकौशिकींरूपसंयुताम् ॥ सहस्राक्षो
ऽपितांगृह्यविंध्यंवेगाज्जगामच ॥ २६ ॥ तत्रगत्वात्वथोवाचतिष्ठचात्रमहाचले ॥ पूज्यमानासुरैर्नाम्नाख्यातात्वंविंध्यवासिनी ॥ २७ ॥ तत्रस्थाप्यहरिर्देवीं
दत्त्वासिंहंचवाहनम् ॥ भवामरारिहंत्रीचेत्युक्त्वास्वर्गमुपागमत् ॥२८॥ उमापितंवरंलब्ध्वामंदिरंपुनरेत्यच ॥ प्रणम्यचमहेशानंस्थितासविनयंमुने ॥२९॥
ततोऽमरगुरुःश्रीमान्पार्वत्यासहितोव्ययः ॥ तस्थौवर्षसहस्रंहिमहामोहनकेमुने ॥ ३० ॥

और देवी गिरिनंदिनीसे बोले ॥ २४ ॥ कि, आप अपनी इस भगिनी कौशिकीको मुझे दीजिये, यह आपके कोश (देह) से उत्पन्न हुई है, इसीसे इनका नाम
कौशिकी होगा ॥ २५ ॥ देवी पार्वतीने इन्द्रके यह वचन सुनकर परमसौंदर्य शालिनी कौशिकीको प्रदान किया, देवराज उनको लेकर शीघ्रतासे विन्ध्याचलको
चलेगये ॥२६॥ वहाँ जाकर उनसे कहा कि, आप इस महाचलमें स्थित हूजिये, देवता आपकी पूजा करेंगे और आप विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात होंगी॥२७॥
देवराज इन्द्र देवीको वहाँ स्थापितकर और सिंहवाहनको प्रदानकर आपही देवताओंके शत्रुओंका संहार करोगी, इसप्रकार कहकर स्वर्गको चलेगये ॥ २८ ॥ इधर
पार्वतीजीभी वर पाकर अपने स्थानपर जा शिवजीको प्रणामकर विनयपूर्वक रहने लगीं ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त देवताओंके गुरु अविनाशी श्रीमान् महादेवजी

पार्वतीजीके सहित सहस्र वर्षतक महामोहसे आच्छादित रहे ॥ ३० ॥ उनके महामोहके वशीभूत होनेपर सम्पूर्ण लोग डाँवाडोल होगये, और सातों समुद्र शुद्ध भावको प्राप्तहुए, और सम्पूर्णदेवता भयभीत होगये ॥ ३१ ॥ तब देवता महेन्द्रके सहित ब्रह्माजीके पास जाकर उन महेशानको प्रणाम कर बोले कि, किसकारणसे यह विश्वसंसार क्षुभित होगया है ॥ ३२ ॥ वह (ब्रह्माजी) बोले कि, भगवान् भव महादेवजी महामोहके वशवर्ती हुए हैं, यह दृश्यमान संसार उनके द्वारा आक्रान्त होकर दुर्निवार क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ यह कहकर उनके तूर्ष्णीभावके अवलम्बन करनेपर देवता हरि (इन्द्र) से बोले कि, हे शक्र ! आओ, जबतक महादेवजी मोहसे निवृत्त न हो तबतक हम सब वहाँ जापहुँचे चलो ॥ ३४ ॥ मोह (काम) के निवृत्त होतेही जो अविनाशी बालक उत्पन्न होगा वह अवश्यही

महामोहस्थितेरुद्रेभुवनाश्चेलुरुद्धताः ॥ चुक्षुभुःसागराःसप्तदेवाश्चभयमागमन् ॥ ३१ ॥ ततःसुरामहेंद्रेणब्रह्मणःसदनंगताः ॥ प्रणम्योचुर्महेशानंजगत्क्षु
ब्धंतुकिंत्विदम् ॥ ३२ ॥ तानुवाचभवोनूनंमहामोहनकेस्थितः ॥ तेनाक्रांतास्त्विमेलोकाजग्मुःक्षोभंदुरत्ययम् ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वासोभवत्तूष्णींततो
प्यूचुःसुराहरिम् ॥ आगच्छशक्रगच्छामोयावत्तन्नसमाप्यते ॥३४॥ समाप्तेमोहनेबालोयःसमुत्पत्स्यतेऽव्ययः ॥ सनूनंदेवराजस्यपदमैंद्रंहरिष्यति ॥३५॥
ततोऽमराणांवचनाद्दिवौकोबलघातिनः ॥ भयाज्ज्ञानंततोनष्टंभाविकर्मप्रचोदनात् ॥ ३६ ॥ ततःशक्रःसुरैःसार्धंवह्निनाचसहस्रदृक् ॥ जगाममंदरागि
रिंतच्छृंगेष्वपिसत्तम ॥ ३७ ॥ अशक्ताःसर्वएवैतेप्रवेष्टुंतद्भवाजिरम् ॥ चिंतयित्वातुसुचिरंपावकंतेव्यसर्जयन् ॥ ३८ ॥ सचाभ्येत्यसुरश्रेष्ठोदृष्ट्वाद्वारे
चनंदिनम् ॥ दुष्प्रवेशंचतंदृष्ट्वाचिंतांवह्निःपरांगतः ॥ ३९ ॥ सतुचिंतार्णवेमग्नःप्रापश्यच्छंभुसद्मनः ॥ निष्क्रामंतींमहापंक्तिंहंसानांविमलांतथा ॥४०॥
असावुपायइत्युक्त्वाहंसरूपीहुताशनः ॥ वंचयित्वाप्रतीहारंप्रविवेशहराजिरम् ॥ ४१ ॥

देवराज इन्द्रके पदको हरण करैगा ॥ ३५ ॥ देवताओंके वचनसे स्वर्गवासियोंका बलविनाश करनेवाला भय और भाभी उसके कर्मके सुननेसे इन्द्रका ज्ञान विलुप्त हुआ ॥ ३६ ॥ तब देवराज इन्द्र अग्नि और देवताओंके सहित मंदराचलपर गये परन्तु उसके शृंगोंमें जानेपरभी ॥ ३७ ॥ महादेवजीके गृहमें कोईभी प्रवेश नहीं कर सका, तब बहुत देरतक चिन्ता करनेके पीछे सब देवताओंने मिलकर अग्निको विसर्जन किया (भेजा) ॥ ३८ ॥ सुरश्रेष्ठ अग्नि द्वारपर खड़ेहो नंदीको देख प्रवेश करना दुःसाध्य जानकर अत्यन्त चिन्तित हुए ॥ ३९ ॥ उन्होंने चिन्तामें मग्न होकर देखा कि, महादेवजीके भवनसे विमल हंसोंकी पंक्ति निकल रही है ॥ ४० ॥ यह देखकर "यही उपाय है" इसप्रकार कहकर अग्निने हंसरूपहो द्वारपालकी वंचना कर महादेवजीके गृहमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

जातेही सूक्ष्ममूर्तिको धारणकर कपर्दीके शिरकी ओर जाकर ऊँचे स्वरसे हँसते हुए गंभीर वचन बोले कि, सम्पूर्ण देवता द्वारपर खड़े हैं ॥४२॥ हेनारद ! महादेवजी यह वचन सुनकर उसी समय उठकर गिरिनंदिनीको त्याग अग्निके साथ चलदिये ॥ ४३ ॥ सुरपतिके आनेपर देवताओंने प्रसन्नहो इन्द्र, चन्द्र, सूर्य और अग्निके सहित मस्तकको पृथ्वीपर झुकाया ॥ ४४ ॥ तब भगवान् महादेवजी देवताओंसे प्रसन्न हो बोले कि, शीघ्र कहो कि, मुझे क्या करना होगा मैं तुमपर प्रसन्न हुआहूँ इस कारण तुमको वर दूंगा ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि, यदि देवताओंके प्रति प्रसन्न होकर वर देनेकी इच्छा करते हो तो हे ईश्वर ! महामैथुनको त्यागकीजिये ॥ ४६ ॥ महादेवजी बोले कि, हे सुरोत्तमो ! अच्छा यही होगा, मैंने इसको एकवारही त्याग किया मेरें इस उठे हुए तेजको कोई मनुष्य ग्रहण करै ॥ ४७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इन्द्र, चंद्रमा और दिवाकरके साथ देवता शंभुकेद्वारा इसप्रकार कहे जाकर पंकमग्न गवेन्द्रों (गोश्रेष्ठ-विजारों) की समान मौन होगये ॥ ४८ ॥ उनके मौन होतेही अग्नि सन्मुख होकर शंकरसे बोले कि, हे शंकर ! आप तेजको छोडिये मैं ग्रहण करूँगा ॥४९॥ इसके उपरान्त भगवान् महादेवजीके उस स्कन्न (निकलता हुआ) तेजको छोडनेपर वह तेज जैसेही निकला कि, वैसेही जलको पिपासाकुल पुरुषकी तरह अग्निने उस गिरते हुए तेजको पान किया ॥ ५० ॥ इसप्रकारसे अग्निदेवके शंभुके तेजको पान करनेपर देवगण महादेवजीको भलीभाँतिसे आमंत्रण कर स्वर्गको चलेगये ॥ ५१ ॥ देवताओंके चले जानेपर महादेवजीभी अपने मंदिरमें जाकर महादेवी गौरीसे बोले ॥ ५२ ॥ कि, हे देवि ! देवताओंने यहाँ आकर यत्नसहित

प्रविश्यसूक्ष्ममूर्त्तिश्चशिरोदेशेकपर्दिनः ॥ प्राहप्रहस्यगंभीरंदेवाद्वारिस्थिताइति ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वासहसोत्थायपरित्यज्यगिरेःसुताम् ॥ विनिष्क्रांतोजिराच्छर्वोवह्निनासहनारद ॥ ४३ ॥ विनिष्क्रांतेसुरपतौदेवामुदितमानसाः ॥ शिरोभिरवनींजग्मुःसेंद्रार्कशशिपावकाः ॥ ४४ ॥ ततःप्रीत्यासुरानाह वदध्वंकार्यमाशुमे ॥ प्रणामावनतावोहिदास्येहंवरमुत्तमम् ॥४५॥ देवाऊचुः ॥ यदितुष्टोसिदेवानांवरंदातुमिहेच्छसि ॥ तदिहत्यज्यतांतावन्महामैथुनमीश्वर ॥ ४६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंभवतुसंत्यक्तोमयाभावोऽमरोत्तमाः ॥ ममेदंतेजउद्रिक्तंकश्चिदेवप्रतीच्छतु ॥ ४७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्युक्ताःशंभुना देवाःसेंद्रचंद्रदिवाकराः ॥ असीदंतयथामग्नाःपंकेगावस्तथासुराः ॥ ४८ ॥ सीदत्सुदैवतेष्वेवंहुताशोभ्येत्यशंकरम् ॥ प्रोवाचमुंचतेजस्त्वंप्रतीच्छाम्येवशंकर ॥ ४९ ॥ ततोमुमोचभगवांस्तद्रेतःस्कन्नमेवतु ॥ जलंतृषार्तोवैयद्वत्तैलपानंपिपासितः ॥ ५० ॥ ततःपीतेरेतसिवैशार्वेदेवेनवह्निना ॥ स्वस्थाः सुराःसमामन्त्र्यहरंजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ५१ ॥ संप्रयातेषुदेवेषुहरोपिनिजमंदिरम् ॥ समभ्येत्यमहादेवीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५२ ॥ देवीदेवैरिहाभ्येत्य यत्नात्प्रेष्यहुताशनम् ॥ ततःप्रोक्तोनिषिद्धस्तुपुत्रोत्पत्तितवोदरात् ॥ ५३ ॥

अग्निको भेजकर तुम्हारे उदरसे पुत्रोत्पत्तिका निषेध किया है ॥ ५३ ॥ उन्होंने स्वामीके वचन सुनकर लाल २ नेत्रकर सम्पूर्ण देवताओंको यह शाप दिया कि, तुम्हारे कभी पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी ॥ ५४ ॥ तुम्हारी प्रकृति अत्यन्त दुष्ट है, इसकारण जैसे हम पुत्रोत्पत्तिकी कामना नहीं करैंगी वैसेही तुमभी अपनी २ स्त्रियोंसे पुत्रोत्पन्न नहीं करसकोगे ॥५५ ॥ गौरी देवताओंको इसप्रकार शाप दे शौचशाला में जा मालिनीको बुलाकर स्नान करनेके लिये सन्नद्ध हुई ॥ ५६ ॥ कनकप्रभा मालिनी परमसुगंधित और पवित्र उपटनको लेकर हाथोंसे उनके शरीरको मलने लगी ॥ ५७ ॥ परंतु पार्वतीके वह शौच इच्छानुसार न हुआ, तब मालिनी परम पवित्र और अत्यन्त सुगंधित उपटनसे पार्वतीको उद्वर्तित कर ॥ ५८ ॥ उनके स्नानके कारण शीघ्रही गृहके बीचमें गई, मालिनीके जानेपर शैलनंदिनीने अपने शरीरसे

सापिभर्तुर्वचःश्रुत्वाक्रुद्धारक्तांतलोचना ॥ शशापदेवताःसर्वानष्टपुत्रोद्भवाशिवा ॥ ५४ ॥ यस्मान्नेच्छन्तितेदुष्टाममपुत्रंममौरसम् ॥ तस्मात्तेनजनिष्यं
तिस्वासुयोषित्सुपुत्रकान् ॥ ५५ ॥ एवंशप्त्वासुरान्गौरीशौचशालामुपागमत् ॥ आहूयमालिनींस्नातुंमतिंचक्रेतपोधन ॥ ५६ ॥ मालिनीसुरभिंगृह्य
श्लक्ष्णमुद्वर्तनंशुभा ॥ देव्यंगमुद्वर्तयतेकराभ्यांकनकप्रभा ॥ ५७ ॥ तच्छौचंपार्वतीनैवंमेनेकीटग्गुणेनहि ॥ उद्वर्त्यपार्वतींतांतुशुभेनोद्वर्तनेनच ॥ ५८ ॥
मालिनीतूर्णमगमद्गृहंस्नानस्यकारणात् ॥ तस्यांगतायांशैलेयीमलाच्चक्रेगजाननम् ॥ ५९ ॥ चतुर्भुजंपीनवक्षःपुरुषंलक्षणान्वितम् ॥ कृत्वोत्ससर्ज
तंभूम्यांस्थिताभद्रासनेपुनः ॥ ६० ॥ मालिनीतच्छिरःस्नानंददौविहसतीतदा ॥ ईषद्धासमुखींदृष्ट्वामालिनींप्राहनारद ॥ ६१ ॥ किमर्थंभीरुशनकैर्हस
सित्वमतीवच ॥ साथोवाचहसाम्येवंभवत्यास्तनयःकिल ॥ ६२ ॥ भविष्यतीतिदेवेनप्रोक्तोनंदिगणाधिपः ॥ तच्छ्रुत्वाममहासोऽयंसंजातोद्यशुभोदरि ॥
॥ ६३ ॥ यस्माद्देवीपुत्रकामाच्छंकरोविनिवारितः ॥ एतच्छ्रुत्वावचोदेवीसस्नौतत्रविधानतः ॥ ६४ ॥ स्नात्वार्च्यशंकरंभक्त्यासमभ्यागाद्गृहंप्रति ॥
ततःशंभुःसमागत्यतस्मिन्भद्रासनेपिच ॥ ६५ ॥

चतुर्भुज और विशाल वक्षस्थलादि लक्षणोंसे युक्त गजाननकी सृष्टिकी । सृष्टि करके पृथ्वीमें खडाकर स्वयं भद्रासन (सिंहासन) पर पुनर्वार बैठी ॥ ५९ ॥ ६० ॥ यह देखकर मालिनीने हँसते२ उन्हें शिरसे स्नान कराया, हे नारद ! मालिनीको कुछ एक हँसता हुआ देखकर देवी बोली ॥ ६१ ॥ हे भीरु ! किस कारण धीरे २ अत्यन्त हँसरहीहो ? मालिनी बोली कि, आपके पुत्र होगा, भगवान् महादेवजीने नंदीसे यह वार्ता कही थी इसीकारणसे मैं हँसतीहूँ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इसका कारण यह है कि, देवताओंने महादेवजीको पुत्रकी कामनासे विमुख किया है, देवीने यह वार्ता सुनकर भलीभाँतिसे स्नान किया ॥ ६४ ॥ स्नान करनेके पीछे

भक्तिसहित पूजा कर गृहमें प्रवेश किया, इसके उपरान्त महादेवजीके पास जाकर उस भद्रासनमें ॥ ६५ ॥ बैठकर स्नान किया, वह समल पुरुष गजानन वहां बैठे, पार्वतीका स्वेद और महादेवजीका स्वेदजल पृथ्वीमें संसक्त हुआ था ॥ ६६ ॥ उसके स्पर्शसे फूत्कारके साथ गजाननका परम पवित्र हाथ उठा, भुवनेश्वर महेश्वर अपने पुत्रको जानकर परमप्रसन्न हुए ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त वह पुत्रको ग्रहणकर नंदीसे बोले कि, यह हमारे पुत्र हैं, पीछे उनके स्नान करनेके उपरान्त देवता अग्नि और पितरोंकी पूजा की ॥ ६८ ॥ और सहस्रनामका जपकर उमाकी गोदीमें बैठाया, और उनके साथ मिलकर हँसतेहुए बोले ॥ ६९ ॥ कि, हे शैलेयि ! गुणोंसे विभूषित अपने पुत्रको देखो, तुम्हारेही अंगके मलसे यह दिव्य आकृतिवाले गजमुख (गणेशजी) उत्पन्न हुए हैं ॥ ७० ॥ पार्वतीजीने यह वचन सुन

स्नातस्तस्यततस्तस्मात्स्थितःसमलपूरुषः ॥ उमास्वेदभवस्वेदंजलभूमिसमन्वितम् ॥ ६६ ॥ तत्संपर्कात्समुत्तस्थौफूत्कृत्यकरमुत्तमम् ॥ अपत्यंहिवि
दित्वाचप्रीतिमान्भुवनेश्वरः ॥ ६७ ॥ तंचादायहरोनंदिमुवाचभगनेत्रहा ॥ रुद्रःस्नात्वार्च्यदेवादीन्वाह्निरग्निपीतॄनपि ॥ ६८ ॥ जप्त्वासहस्रनामानमुमापार्श्व
मुपागतः ॥ समेत्यदेवींविहसन्शंकरःशूलधृग्वचः ॥६९॥ प्राहत्वंपश्यशैलेयित्वत्सुतंगुणसंयुतम् ॥ इत्युक्तापर्वतसुताह्युपेत्यापश्यदद्भुतम् ॥७०॥ यस्त्व
दंगमलाद्दिव्यःकृतोगजमुखोनरः ॥ ततःप्रीतागिरिसुतातंपुत्रंपरिषस्वजे ॥ ७१ ॥ मूर्ध्निचैनमुपाघ्रायततःशर्वोब्रवीदुमाम् ॥ नायकेनविनादेविमयाभूतो
पिपुत्रकः ॥ ७२ ॥ यस्माज्जातस्ततोनाम्नाभविष्यतिविनायकः ॥ एषविघ्नसहस्राणिदेवादीनांहनिष्यति ॥ ७३ ॥ पूजयिष्यंतिदेवाश्चदेविलोकाश्चरा
चराः ॥ इत्येवमुक्त्वादेव्यास्तुदत्तवांस्तनयंसहि ॥ ७४ ॥ सहायंतुगणश्रेष्ठंनाम्नाख्यातंघटोदरम् ॥ तथामातृगणाघोराभूताविघ्नकराश्चये ॥ ७५ ॥
तेसर्वेपरमेशेनदेव्याःप्रीत्योपपादिताः ॥ देवीचतंसुतंदृष्ट्वापरांमुदमवापच ॥ ७६ ॥ रेमेथशंभुनासार्द्धंमंदिरेचारुकंदरे ॥ एवंभूयोभवद्देवीइयंकात्यायनी
विभो ॥ याजघानमहादैत्यौपुराशुंभनिशुंभकौ ॥ ७७ ॥

कर उस अद्भुत स्वभावयुक्त पुत्रको देखकर अत्यन्त गाढ़ आलिंगन किया ॥ ७१ ॥ और उनके मस्तकको सूँघा, तब शंभु उनसे बोले कि, मैं तुम्हारा नायक हूँ यह पुत्र उसनायकके विना उत्पन्न हुआ है इसी कारणसे ॥ ७२ ॥ विनायकनामसे विख्यात होगा और देवताओंके सहस्रों विघ्न विनाश करैगा ॥ ॥ ७३ ॥ हे देवि ! इसीकारणसे देवता, स्थावर, जंगम सम्पूर्ण लोक इनकी पूजा करैंगे, यह कहकर वह पुत्र उन्होंने देवीको दिया ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त घटोदरनामक श्रेष्ठगणको इनकी रक्षाके लिये नियत किया, इसके अतिरिक्त मातृगण, घोरस्वभाव भूतगण और अन्यान्य विघ्नकरगण ॥ ७५ ॥ इन सबको उन्होंने देवीकी प्रीतिके निमित्त उनकी सहायताके अर्थ नियुक्त किया, देवी उसपुत्रको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ ७६ ॥ और शंभुके साथ सुन्दर कन्दरामें

शोभायमान पर्वतपर विहार करनेलगीं. हे विभो ! देवी कात्यायनी इसप्रकारसे पुनर्वार उत्पन्न हुई थीं और महादैत्य शुंभ और निशुंभका संहार किया था ॥ ७७ ॥ मृड़ानी (पार्वती) का जिसप्रकार जन्म हुआ था सो मैं ने आपके निकट यह शुभ आख्यान वर्णन किया । अद्रिनंदिनीके इसआख्यानको सुननेसे स्वर्गकी प्राप्ति और यशकी वृद्धि होती है, और सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाता है और वह परमतेजस्वी होता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे उमासम्भवे भाषाटीकायां विनायकोत्पत्तिर्नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे सत्तम ! कश्यपकी दनु नामकी जो भार्या थी. उसके गर्भसे तीन पुत्रोंका जन्म हुआ, वह तीनोंही इन्द्रसेभी अधिक बलवान हुए ॥ १ ॥ उनमें बड़ेका नाम शुम्भ, दूसरेका नाम निशुम्भ और तीसरेका नाम नमुचि हुआ, यह

एतत्तवोक्तंवचनंसुभाष्यंयथोद्भवःपर्वततोमृडान्याः ॥ स्वर्ग्यंयशस्यंचतथाऽघहारिआख्यानमूर्ज्जस्करमद्रिपुत्र्याः ॥ ७८ ॥ इति श्रीवामनपुराणेउमासंभवेविनायकोत्पत्तिर्नामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ कश्यपस्यदनुर्नाम्नाभार्यासीद्द्विजसत्तम ॥ तस्याःपुत्रत्रयंचासीत्सहस्राक्षाद्बलाधिकम् ॥ १ ॥ ज्येष्ठःशुंभइतिख्यातोनिशुंभश्चापरोऽसुरः ॥ तृतीयोनमुचिर्नाममहाबलसमन्वितः ॥ २ ॥ योऽसौनमुचिरित्येवंख्यातोदनुसुतोऽसुरः ॥ तंहंतुमिच्छतिहरिःप्रगृह्यकुलिशंकरे ॥ ३ ॥ त्रिदिवेशंसमायांतंनमुचिस्तुभयादथ ॥ प्रविवेशरथंभानोस्ततोनाशकदच्युतः ॥ ४ ॥ शक्रस्तेनाथसमयंप्रचक्रेसमहामनाः ॥ अवध्यत्वंवरंप्रादाच्छस्त्रैरस्त्रैश्चनारद ॥५॥ ततोऽवध्यत्वमाज्ञायशस्त्रैरस्त्रैश्चनारद ॥ संत्यज्यभास्कररथंपातालमुदयादथ ॥ ॥ ६ ॥ सनिमज्जन्नपिजलेसामुद्रंफेनमुत्तमम् ॥ ददृशेदानवपतिस्तंप्रगृह्येदमब्रवीत् ॥ ७ ॥ यदुक्तंदेवपतिनावासवेनवचोस्तुतत् ॥ अयंस्पृशतुमांफेनःकराभ्यांगृह्यदानवः ॥ ८ ॥ मुखनासादिकर्णादीन्समापूर्ययथेच्छया ॥ तस्मिञ्छक्रोसृजद्वज्रमंतर्हितमपीश्वरः ॥ ९ ॥

नमुचि महाबलवान् था ॥ २ ॥ देवराज इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर नमुचिनामसे विख्यात दनुके, इसपुत्रको संहार करनेका संकल्प किया ॥ ३ ॥ नमुचि इन्द्रको आता हुआ देख भयभीतहो सूर्यके रथमें जाबैठा, फिर इन्द्र उसे वध न करसके ॥ ४ ॥ हे नारद ! तब उन महामान्य इन्द्रने उसके साथ नियम बाँधा कि, तुम्हारा अस्त्र शस्त्रोंसे वध नहीं होगा, यह तुमको वर दिया ॥ ५ ॥ हे नारद ! नमुचि अपनेको अस्त्रशस्त्रोंसे अवध्य जानकर भास्करके रथको छोड़कर पातालको गया ॥ ६ ॥ और समुद्रके जलमें निमग्नहो श्रेष्ठफेनको देख उसे ग्रहणकर बोला ॥ ७ ॥ कि, देवराज इन्द्रने जो कहा है वह सिद्धहो. यह फेन मुझे स्पर्श करे, यह कहकर उसे हाथमें ग्रहणकर ॥८॥ इच्छानुसार उसने अपने मुख नासिका, और कर्णादिको परिपूरित किया, इसओर देवराज इन्द्रने इसमें अंतर्धान होकर वज्रकी सृष्टि की ॥९॥

इससे नासिकाके बंद होतेही नमुचि जैसे पड़ा था वैसेही मृतक होगया. तब ब्रह्महत्याने इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ वह तीर्थयात्राकर वहाँ तीर्थमें स्नान कर पापसे मुक्त हुए। इस ओर नमुचिके भ्राता वीरोंमें श्रेष्ठ शुंभ और निशुंभ अत्यन्त क्रोधित हो ॥ ११ ॥ उद्योगकी सहायतासे देवताओंसे बदला लेनेके निमित्त आये, यह देखकर देवता इन्द्रको आगे कर बाहर हुए ॥ १२ ॥ शुंभ और निशुंभने आक्रमणकर बलपूर्वक सेनासहित सम्पूर्ण देवताओंको पराजित किया और बलपूर्वक इन्द्रका ऐरावत (हाथी) और यमका महिष (भैंसा) ॥ १३ ॥ वरुणका मणि और छत्र और माधव (विष्णु) की गदा छीन ली; इसके उपरान्त दानवोंने आक्रमणकर शंख पद्मादि सबका खजाना छीनलिया ॥ १४ ॥ हे नारद ! सम्पूर्ण त्रिलोकी इन दोनों दैत्योंके वशीभूत होगई, इसके उपरान्त उन्होंने महीपृष्ठपर

तेनासौरुद्धनासास्यःपपातचममारच ॥ समयेनतथानष्टेब्रह्महत्यास्पृशद्धरिम् ॥ १० ॥ सचैतत्तीर्थमासाद्यस्नातःपापादमुच्यत ॥ ततोऽस्यभ्रातरौवीरौ क्रुद्धौशुंभनिशुंभकौ ॥ ११ ॥ उद्योगंसुमहत्कृत्वासुरान्बाधितुमागतौ ॥ सुरास्तेपिसहस्राक्षंपुरस्कृत्यविनिर्ययुः ॥ १२ ॥ जितास्त्वाक्रम्यदैत्याभ्यां सबलाःसपदानुगाः ॥ शक्रस्याहृत्यचगजंयाम्यंचमहिषंबलात् ॥ १३ ॥ वरुणस्यमणिंछत्रंगदांवैमाधवस्यच ॥ निधयःशंखपद्माद्याहृतास्त्वाक्रम्य दानवैः ॥१४ ॥ त्रिलोकीवशगाचास्तेऽनयोर्नारददैत्ययोः ॥ आजम्मतुर्महीपृष्ठंददृशातेमहासुरम् ॥ १५ ॥ रक्तबीजमथोचुस्तेकोभवानितिसोऽब्रवीत् ॥ सचाहदैत्योस्मिविभोसचिवोमहिषस्यतु ॥ १६ ॥ रक्तबीजेतिविख्यातोमहावीर्योमहाभुजः ॥ अमात्यौरुचिरौवीरौचंडमुंडावितिश्रुतौ ॥ १७ ॥ तावास्तांसलिलेमग्नौभयाद्देव्यामहाभुजौ ॥ यस्त्वासीत्प्रभुरस्माकंमहिषोनामदानवः ॥ १८ ॥ निहतःसमहादेव्याविंध्यशैलेसुविस्तृते ॥ भवंतौकस्य तनयौकिंवानाम्नापरिश्रुतौ ॥ किंवीर्यौकिंप्रभावौचएतच्छंसितुमर्हथः ॥ १९ ॥ शुंभनिशुंभावूचतुः ॥ अहंशुंभइतिख्यातोदनोःपुत्रस्तथौरसः ॥ निशुंभोयंममभ्राताकनीयाञ्छक्रदर्पहा ॥ २० ॥

उतरकर रक्तबीजको देखा ॥ १५ ॥ देखतेही उससे बोले कि, तुम कौन हो ? रक्तबीजने उत्तर दिया कि, मैं दैत्य और स्वामी महिषासुरका मंत्री हूँ ॥ १६ ॥ और महावीर्य महाबाहु रक्तबीजनामसे विख्यात हूँ महिषासुरके औरभी दो राजमंत्री चंड मुंड नामसे विख्यात रुचिभावयुक्त महाबलवान् हैं ॥ ॥ १७ ॥ वह महाबाहु चंड मुंड देवीके भयसे जलमें निमग्न होरहे हैं, हमारे स्वामी महिषासुर ॥ १८ ॥ महादेवीके द्वारा विस्तारित विंध्याचल पर्वतपर मारे गये हैं आप किसके पुत्र हैं आपका नाम क्या है ? कैसा वीर्य है, और कैसा प्रभाव है ? यह आप कहिये ॥ १९ ॥ शुंभ बोला कि, मैं दनुका औरस जातपुत्र शुंभ नामसे

विख्यात हूँ, और यह निशुंभ मेरा छोटा भ्राता इन्द्रके गर्वको नाश करनेवाला है ॥ २० ॥ इस निशुंभने इन्द्र, रुद्र और दिवाकरके साथ सम्पूर्ण देवताओंको सेनासहित आक्रमणकर पराजय किया है ॥ २१ ॥ इससमय कहो महिषासुर किसप्रकारसे मारागया है, हम दोनोंजने अपनी सेनाको इकट्ठाकर उसके मारनेवालेका संहार करैंगे ॥ २२ ॥ हे मुने! वह नर्मदाके किनारे स्थित होकर यह कहरहेथे कि, इसीसमयमें दानव चंड और मुंड यह दोनों जलमेंसे निकल आये ॥ २३ ॥ और रक्तबीजका आश्रयकर मधुरवचनोंसे रक्तबीजसे बोले कि, यह कौन है जो तुम्हारे पूर्वओरको खड़ा है ॥ २४ ॥ रक्तबीज इनदोनोंसे बोला कि, इनका नाम देवताओंका नाशक शुंभ है और इनका छोटा भ्राता निशुंभ नामसे विख्यात है ॥ २५ ॥ मैं इन दोनोंका सहारा लेकर जगत्में रत्नस्वरूप उस दुष्टा

अनेनबहुशोदेवाःसेंद्ररुद्रदिवाकराः ॥ समेत्यनिर्जितावीरायेचान्येबलवत्तराः ॥ २१ ॥ तदुच्यतांकथंदैत्योनिहतोमहिषासुरः ॥ यावत्तान्घातयिष्यावः
स्वसैन्यपरिवारितौ ॥ २२ ॥ इत्थंतयोस्तुवदतोर्नर्मदायास्तटेमुने ॥ जलवासाद्विनिष्क्रांतौचंडमुंडौचदानवौ ॥ २३ ॥ ततोभ्येत्यसुरश्रेष्ठौरक्तबीजंसमा
श्रितौ ॥ ऊचतुर्वचनंश्लक्ष्णंकोयंतवपुरस्सरः ॥ २४ ॥ सचोभौप्राहदैत्योसौशुंभोनामसुरार्दनः ॥ कनीयानस्यचभ्राताद्वितीयोहिनिशुंभकः ॥ २५ ॥
एतावाश्रित्यतांदुष्टांमहिषघ्नींनसंशयः ॥ अहंविवाहयिष्यामिरत्नभूतांजगत्त्रये ॥ २६ ॥ चंडउवाच ॥ नसम्यगुक्तंभवतारत्नार्होसिनसांप्रतम् ॥ यःप्रभुः
स्यात्सरत्नार्हस्तस्माच्छुंभाययोज्यताम् ॥ २७ ॥ तदाचचक्षेशुंभायनिशुंभायचकौशिकीम् ॥ भूयोपितद्विधांजातांकौशिकींरूपशालिनीम् ॥ २८ ॥
ततःशुंभोनिजंदूतंसुग्रीवंनामदानवम् ॥ दैत्यंचप्रेषयामाससकाशंविंध्यवासिनीम् ॥ २९ ॥ सगत्वातद्वचःश्रुत्वादेव्यागत्यमहासुरः ॥ निशुंभशुंभावाहे
दंमन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ ३० ॥ सुग्रीवउवाच ॥ युवयोर्वचनाद्देवीप्रादिष्टादैत्यनायकौ ॥ गतवानहमद्यैवतामहंवाक्यमब्रुवम् ॥ ३१ ॥ यथाशुंभोतिवि
ख्यातःककुदंदानवेष्वपि ॥ सत्वांप्राहमहाभागेप्रभुरस्मिजगत्त्रये ॥ ३२ ॥

महिषनाशिनी स्त्रीके साथ निःसन्देह विवाह करूंगा ॥ २६ ॥ चण्डने कहा कि, तुम्हारे यह वचन यथार्थ नहीं हैं—कारण कि, तुम आजतकभी रत्नप्राप्त करनेके योग्य नहीं हुए । जो प्रभु होता है वही रत्नको प्राप्त करता है इसीकारणसे शुंभकोही वह स्त्री रत्नप्रदान करना योग्य है ॥ २७ ॥ यह कहकर वह शुंभ निशुंभको कौशिकीकी कथाको सुनाय बोला कि, वह रूपशालिनी कौशिकी पुनर्वार इसप्रकारसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २८ ॥ तब शुंभने अपने दूत सुग्रीव नामक दानवको विन्ध्यवासिनीके पास भेजा ॥ २९ ॥ वह महाअसुर सुग्रीव देवीके पास जाकर उनके वचनोंको सुन क्रोधित हो शुंभ और निशुंभसे आकर कहनेलगा ॥ ३० ॥ सुग्रीव बोला—कि, हे दैत्यनायको ! आपके वचनानुसार मैं ने देवीजीसे जाकर कहा ॥ ३१ ॥ कि, हे महाभागे ! शुंभ अत्यन्त विख्यात और दानवोंमें अग्रणीय है

सो उन्होंने तुमसे कहा है कि, मैं तीनोंलोकोंका प्रभु हूँ ॥ ३२ ॥ हे सुन्दरि ! स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें जो रत्न हैं वह सभी मेरे घरमें सर्वदा विराजमान हैं ॥ ३३ ॥ हे कृशोदरि ! चंड मुंडने कहा है कि, तुम साक्षात् रत्नस्वरूप हो इसकारण तुम मुझे अथवा मेरे भाई निशुंभको पतिभावसे स्वीकार करो ॥ ३४ ॥ देवी यह वचन सुन हँसकर मुझसे बोली कि, हे सुग्रीव ! सुनो मैं सत्य कहती हूँ त्रिलोकीपति शुंभ रत्न प्राप्त करनेके योग्य है ॥ ३५ ॥ परन्तु मैं उद्धता (अभिमानवाली) हूँ मेरे मनमें इसप्रकारका मनोरथ है कि, जो वह महाअसुर युद्धमें मुझे जीतले तो वही मेरा स्वामी होगा ॥ ३६ ॥ मैंने उत्तर दिया कि, तुमको अत्यन्त गर्व होगया है, देखो ! जिसने सुरासुरसमेत सम्पूर्ण लोकोंको जीतलिया है वह क्या तुमको नहीं जीतसकता है, इस कारण हे भामिनि ! उठो ॥ ३७ ॥ देवीने

यानिस्वर्गेमहीपृष्ठेपातालेचापिसुंदरि ॥ रत्नानिसंतितावंतिममवेश्मनिनित्यशः ॥ ३३ ॥ त्वमुक्ताचंडमुंडाभ्यांरत्नभूताकृशोदरी ॥ तस्माद्भजस्वमां
वात्वंनिशुंभंवाममानुजम् ॥ ३४ ॥ साचाहमांविहसतीशृणुसुग्रीवमद्वचः ॥ सत्यमुक्तंत्रिलोकेशःशुंभोरत्नार्हएवच ॥ ३५ ॥ किंत्वस्तिदुर्विनीतायाहृदये
मेमनोरथः ॥ योमांविजयतेयुद्धेसभर्तास्यान्महासुरः ॥ ३६ ॥ मयाचोक्ताऽवलिप्तासियोजयेत्ससुरासुरान् ॥ सत्वांकथंनजयतेसात्वमुत्तिष्ठभामिनि ॥
॥ ३७ ॥ साऽथमांप्राहकिंकुर्मोयदनालोचितःकृतः ॥ मनोरथस्तुतद्गच्छशुंभायत्वंनिवेदय ॥ ३८ ॥ तयैवमुक्तस्त्वभ्यागांत्वत्सकाशंमहासुर ॥ तांचा
ग्निकोटिसंकाशांमत्वैवंकुरुयत्क्षमम् ॥ प्राहदूतंत्विदंशुंभोदानवंधूम्रलोचनम् ॥३९॥ शुंभउवाच ॥ धूम्राक्षगच्छतांदुष्टांकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥ सापराधां
यथादासींकृत्वाशीघ्रमिहानय ॥ ४० ॥ यश्चास्याःपक्षकृत्कश्चिद्भविष्यतिमहाबलः ॥ सहंतव्योऽविचार्यैवयदिहिस्यात्पितामहः ॥ ४१ ॥ सएवमुक्तः
शुंभेनधूम्राक्षोऽक्षौहिणीशतैः ॥ वृतःषड्भिर्महातेजाविंध्यंगिरिमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

कहा किं, मैं क्या करूँगी, विना विचार करकेही मनोरथकी कल्पना की थी, इसकारण तुम जाओ और शुंभको मेरे वचन सुनाओ ॥ ३८ ॥ हे महाअसुर ! देवीके यह वचन सुनकर मैं आपके पास आया. उस स्थानमें देवी कोटि (करोड़) अग्निके समान प्रकाशमान हैं ऐसा जानकर जैसा आप उचित समझें वैसा करें अर्थात् जिससे युद्ध हो वही उपाय कीजिये. यह वचन सुनकर शुंभ अपने दूसरे दूतदानव धूम्रलोचनसे बोला ॥ ३९ ॥ कि, हे धूम्राक्ष ! तुम जाओ उस दुष्टाके केशों (बालों) को पकड़कर अपराध करनेवाली दासीकी समान व्याकुलकर शीघ्र मेरे पास ले आओ ॥ ४० ॥ जो कोई महाबलवान्भी उसका पक्ष करैगा तो वह स्वयं ब्रह्माजी होनेपरभी मेरे हाथसे मृत्युको प्राप्त होगा अर्थात् मैं विना विचार कियेहुएही उसका वध करूँगा ॥ ४१ ॥ धूम्राक्ष शुंभके ऐसे वचन सुनकर (१००) सौ

अक्षौहिणी सेनाको ले बड़े तेजके साथ विन्ध्याचलपर्वतपर गया ॥४२॥ और दुर्गादेवीको देखकर भ्रान्त दृष्टिहो (नेत्र घुमाकर) कहनेलगा कि, हे मूढ़े ! कौशिकि ! आओ, आओ, महाराज शुंभको स्वामीरूपसे वरण करो, नहीं तो मैं तुम्हारे बालोंको पकड़कर तुम्हैं व्याकुल करता हुआ बलपूर्वक लेजाऊँगा ॥ ४३ ॥ देवी बोली कि, मुझे बलपूर्वक लेजानेके निमित्त शुंभने तुमको भेजा है मैं अबला हूँ, क्या करसकती हूँ, इसकारण तुम्हारी जो इच्छाहो सो करो ॥ ४४ ॥ पुलस्त्यजी बोले, कि, कौशिकीदेवीने इसप्रकार कहकर महबलवान् धूम्राक्षको उसी समय एक हुँकारके शब्दसे भस्म करदिया ॥ ४५ ॥ कौशिकीने दानवको इसप्रकारसे भस्म किया, यह देखकर समस्त संसारमें हाहाकार पड़गया॥ ४६ ॥ भयंकर हाहाकारका शब्द शुंभकोभी सुनाई आई, तब उसने महाबलवान् महाअसुर चंड मुंडको और

तत्रदृष्ट्वाचतांदुर्गांभ्रांतदृष्टिरुवाचह ॥ एह्येहिमूढेभर्तारंशुंभमिच्छस्वकौशिकि ॥ नचेद्बलान्नयिष्यामिकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ४३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रेषितोसीहशुंभेनबलान्नेतुंहिमांकिल ॥ तत्रकिंह्यबलाकुर्याद्यथेच्छसितथाकुरु ॥ ४४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एवमुक्तोविभावर्याबलवान्धूम्रलोचनः ॥ हुंकारेणैवतंभस्मसाचकारांबिकातथा ॥ ४५ ॥ ततोहाहाकृतमभूज्जगत्यस्मिश्चराचरे ॥ सबलंभस्मसान्नीतंकौशिक्यावीक्ष्यदानवम् ॥ ४६ ॥ तंचशुंभोपिशुश्रावमहच्छब्दमुदीरितम् ॥ अथादिदेशबलिनौचंडमुंडौमहासुरौ ॥ ४७ ॥ रुरुंचबलिनांश्रेष्ठंतथाजग्मुर्मुदान्विताः ॥ तेषांचसैन्यमतुलंगजाश्वरथसंकुलम् ॥ ४८ ॥ समाजगामसहसायत्रास्तेकोशसंभवा ॥ तदायांतंरिपुबलंदृष्ट्वाकोटिशतावरम् ॥ ४९ ॥ अथसिंहोधुतसटःपाटयन्दानवान्रणे ॥ कांश्चित्करप्रहारेणकांश्चिदास्येनलीलया ॥५०॥ नखरैःकांश्चिदाक्रम्यउरसास्तमियायच ॥ तेवध्यमानाःसिंहेनगिरिकंदरवासिना ॥५१॥ भूतैश्चदेव्यनुचरैश्चंडमुंडौसमाश्रयम् ॥ तावार्त्तौस्वबलंदृष्ट्वाकोपप्रस्फुरिताधरौ ॥५२॥ समाद्रवेतांदुर्गांवैपतंगाविवपावकम् ॥ तावायांतौततोरौद्रौदृष्ट्वाक्रोधपरिप्लुता ॥५३॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ रुद्रको आज्ञा दी, वह सब हर्षित होकर चले उनके साथ रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित बहुतसी पैदल सेना ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उसी समय कौशिकीके निकट जापहुँची, तब देवीने देखा कि, करोडों बलवान् शत्रु आ रहे हैं॥ ४९ ॥इसके उपरान्त देवीका वाहन सिंह अपने सटा (कन्धेके बालों) को कंपायमान करता हुआ दानवोंको युद्धमें विदारित करनेलगा; किसीको थप्पडसे और किसीको थूथडेसे अनायास मारनेलगा ॥ ५० ॥ किसीको छातीसे दबाकर नखोंके प्रहारसे यमालयका अतिथि करनेलगा इसप्रकार दैत्यगण गिरिकंदरविहारी केसरी (सिंह) के द्वारा मारे जाकर ॥ ५१ ॥ और देवीके अनुचर भूतगणोंसे हनन किये जाकर चंड और मुंडके आश्रयमें गये, वे अपनी सम्पूर्ण सेनाको पीडित देखकर क्रोधसे होठोंको कम्पाते हुए ॥ ५२ ॥ अग्निमें पतंगकी समान देवीके

निकटको दौड देवी उस भयंकरप्रकृति चंड मुंडको आता हुआ देखकर क्रोधसे व्याकुल होगई ॥ ५३ ॥ और उसी समय भौंहोंको तीन जगह टेढा करती हुई, तब उस भ्रुकुटिदेशसे कुटिल देवीके ललाटफलकसे सब मंगलयुक्त करालवदना योगिनी काली निकली ॥ ५४ ॥ उनके हाथमें भयंकर खड्ग और कालके समान उग्र और अत्यन्त प्रचंड म्यानसे निकलीहुई असि (तलवार) थी, उनका शरीर अत्यन्त शुष्क और रुधिरकी धारासे भीगा हुआ था, और गलेमें नरेन्द्रोंके मस्तकोंकी माला शोभायमान थी ॥ ५५ ॥ वह प्रगट होकर किसीको खड्गसे छेदन और किसीको खट्वाङ्गसे विदारण करनेलगीं और अत्यन्त क्रोधितहो घोडे हाथी और रथोंके सहित शत्रुसमूहको निर्मूल कर दिया ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त वह अम्बिका चर्म (ढाल) अंकुश, मुद्गर, धनुष, घंटा और हाथियोंको तोप बंदूक आदिक यंत्रोंके सहित भक्षण करनेलगी ॥ ५७ ॥ और चक्र (पहिया) कूबर (जुयेके आधारभूत काष्ठ) सारथी, घोडे और योधाओंके शरीरोंको तोड़ मडोरकर चर्वण करना प्रारंभ किया ॥ ५८ ॥ वह किसीके बालोंको दबा, किसीकी गर्दनको पकड झिटककर और किसीको अपने दोनों चरणोंसे दबाकर यमराजके भवनमें भेजनेलगी ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त देवीने गणाधिप (सर्दार) सहित सम्पूर्ण सेनाको भक्षण किया है, यह देखकर रुरु नामक दीर्घरोमवाला दैत्य मृगाकृति उनके ऊपर दौडा चंड स्वयं यह चरित्र देखनेलगा ॥ ६० ॥ तब देवीने इस महाअसुरके शिरमें, खड्गका प्रहार किया, उससे वह निहत होकर जडसे कटेहुए वृक्षकी समान पृथ्वी पर गिरपडा ॥ ६१ ॥ देवीने उसको गिरा हुआ देखकर पशु (मेंढे) की भाँति उसके हाथोंसे लेकर चरणतकके केशोंको क्षुरप्रनामक अस्त्रसे काटकर गिरादिया ॥ ६२ ॥ और उन केशोंको लेकर विमल जटाभारको बाँधा, उनमेंसे १ जटा नहीं बँधी तब उसे उखाडकर पृथ्वीपर पटकदिया ॥ ६३ ॥

त्रिशिखांभृकुटींचक्रेचकारपरमेश्वरी ॥ भृकुटीकुटिलाद्देव्याललाटफलकाद्द्रुतम् ॥ कालीकरालवदनानिःसृतायोगिनीशुभा ॥ ५४ ॥ खट्वांगमादायकरेणरौद्रमसिंचकालोग्रमकोशमुग्रम् ॥ संशुष्कगात्रीरुधिराप्लुतांगीनरेंद्रमूर्धास्रजमुद्वहंती ॥ ५५ ॥ कांश्चित्खड्गेनचिच्छेदखट्वांगेनपरान्रणे ॥ न्यषूदयद्भृशंक्रुद्धासरथांश्वगजान्रिपून् ॥ ५६ ॥ चर्मांकुशंमुद्गरंचसधनुष्कंसघंटिकम् ॥ कुंजरंसहयंत्रेणप्रचिक्षेपमुखेंबिका ॥ ५७ ॥ सचक्रकूबररथंससारथितुरंगमम् ॥ समंयोधेनवदनेक्षिप्यचर्वयतेंबिका ॥ ५८ ॥ एकंजग्राहकेशेषुग्रीवायामपरंतथा ॥ पादेनाक्रम्यचैवान्यंप्रेषयामासमृत्यवे ॥ ५९ ॥ ततस्तुतद्बलंदेव्याभक्षितंसगणाधिपम् ॥ रुरुर्दृष्ट्वाप्रदुद्रावतंचंडोददृशेस्वयम् ॥ ६० ॥ आजघानाथशिरसिखट्वांगेनमहासुरम् ॥ सपपातहतोभूम्यांछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ॥ ६१ ॥ ततस्तंपतितंदृष्ट्वापशोरिवविभावरी ॥ कोशमुत्कर्त्तयामासकरादिचरणांतिकम् ॥ ६२ ॥ साचकोशंसमादायबबंधविमलाजटाः ॥ एकानबंधमगमत्तामुत्पाट्याक्षिपद्भुवि ॥ ६३ ॥

तब जटासे एक अत्यन्त भयंकरमूर्ति स्त्री उत्पन्न हुई,उसके केश तेलसे अभिषिक्त थे और शरीर आधा काला और आधा सफेद था ॥ ६४ ॥ वह प्रगट होकर
बोली कि, मैं एक प्रधान महाअसुरका संहार करूंगी, देवीने उसका नाम चंडमारी रक्खा, यह नाम त्रिलोकीमें विख्यात है ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त वह चंडमारीसे
बोली कि, हे सुभगे ! चंड मुंडको यहां लेआओ ॥ ६६ ॥ चंडमारी देवीके यह वचन सुनकर शीघ्रतासे दौड़ी चंड मुंड यह देखकर भयसे आतुर हो दक्षिण दिशाको
भागनेलगे ॥ ६७ ॥ तब चंडमारी गरुड़की समान महावेगवान् गर्दभपर चढ़कर वस्त्रोंको त्यागकर अर्थात् विवस्त्रा (नंगी) होकर शीघ्रतासे उनके पीछे २ दौड़ी
॥ ६८ ॥ जहां वह दोनों दैत्य जाते उसी स्थानपर वह देवीभी जातीं, जातेसमयमें यमराजके वाहन पौंड्रनामक महिषको देखकर ॥ ६९ ॥ सर्पाकार उसकी दोनों

साजातासृतरांरौद्रीतैलाभ्यक्तशिरोरुहा ॥ कृष्णार्धमर्धशुक्लंचधारयंतीस्वकंवपुः ॥ ६४ ॥ साब्रवीद्धरमेकंतुमारयामिमहासुरम् ॥ तस्यानामतदाचक्रेचं
डमारीतिविश्रुतम् ॥६५॥ प्राहगच्छस्वसुभगेचंडमुंडाविहानय ॥ स्वयंहिमारयिष्यामितावानेतुंत्वमर्हसि ॥६६॥ श्रुत्वैवंवचनंदेव्याःसाभ्यद्रवततावुभौ॥
प्रदुद्रुवतुर्भयात्तौदिशमाश्रित्यदक्षिणाम् ॥ ६७ ॥ ततस्तावपिवेगेनप्राधावत्त्यक्तवाससा ॥ साधिरुह्यमहावेगंरासभंगरुडोपमम् ॥ ६८ ॥ यतोगतौहितौदै
त्यौतत्रैवानुययौशिवा ॥ साददर्शतदापौंड्रंमाहिषंवैयमस्यच ॥ ६९ ॥ सातस्योत्पाटयामासविषाणंभुजगाकृतिम् ॥ तंप्रगृह्यकरेणैवदानवानन्वगाज्जवात्॥
॥ ७० ॥ तौचापिभूमिंसंत्यज्यजग्मतुर्गगनंतदा ॥ वेगेनाभिसृतासाचरासभेनमहेश्वरी ॥ ७१ ॥ ततोददर्शगरुडंपन्नगेंद्रंविषादिषु ॥ कर्कोटकंसदृष्ट्वैवऊर्ध्व
रोमाव्यजायत ॥ ७२ ॥ भयार्त्तश्चैवगरुडोमांसपिंडोपमोबभौ ॥ न्यपतंस्तस्यपत्राणिरौद्राणिहिपतत्रिणः ॥७३॥ खगेंद्रपत्राण्यादायनागंकर्कोटकंतथा ॥
वेगेनाथासरद्देवीचंडमुंडौभयातुरौ ॥ ७४ ॥ संप्राप्तौचतदादेव्याचंडमुंडौमहासुरौ ॥ बद्धौककर्कोटकेनैवबद्धाविंध्यमुपागमत् ॥ ७५ ॥ निवेदयित्वाकौ
शिक्याःकोशमादायभैरवम् ॥ शिरोभिर्दानवेंद्राणांतार्क्ष्यपत्रैश्चशोभनैः ॥ ७६ ॥

सींग उखाडलीं, और हाथमें ले वेगसे उनके पीछे २ चलीं ॥ ७० ॥ यह देखकर वह (चंडमुंड) पृथ्वीको त्यागकर आकाशको चले गये, तब उन परमेश्वरीने
अपने गर्दभको शीघ्रतासे चलाया ॥ ७१ ॥ मार्गमें विषप्रधान सर्पोंके बीचमें विचरते हुए गरुड़जीको देखा, इतनेमें गरुड़जी पन्नगपति कर्कोटकको देखतेही उनके
पर भयसे खड़े होगये और काँपनेलगे ॥ ७२ ॥ और भयसे आतुर होकर मांसके पिंड (लोंदे) की समान दीखपडनेलगे कारण कि, उनके भयंकर सम्पूर्ण पर
गिर पड़े ॥ ७३ ॥ उन्हों (चंडीदेवी) ने उन गरुड़के परोंको और कर्कोटकको हाथमें लेकर शीघ्रतासे भयसे आतुर हुए उस चंड मुंडका पीछा किया ॥ ७४ ॥
इसके उपरान्त देवी महाअसुर चंड मुंडको पकड़कर कर्कोटकसे उसे बांध विंध्याचलपर लेआईं ॥ ७५ ॥ और कौशिकीको निवेदन किया और भयंकर उसके

केशोंको ग्रहण करके दानवेन्द्रोंके मस्तकों और गरुड़के शोभायमान परोंकी॥ ७६ ॥ उपमारहित दो माला बनाकर चंडिकाके निकट निवेदना की, और मृगेन्द्र (उसी रुरुनामक मृगाकृति दैत्य) के चर्मकी घर्घरा (घाघरा) बनाकर उन्हें समर्पणकी ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त गरुडके पंखोंकी एक दूसरी माला बनाकर अपने शिरसे बांध दानवोंके रुधिररूपी (मद्यादि) को पान करनेलगी ॥ ७८ ॥ इस ओर दुर्गादेवीने असुरनायक चंड मुंडको ग्रहणकर क्रोधमें भरकर उनके मस्तकको छेदन करके फेंकदिया ॥ ७९ ॥ और उनके मस्तकोंसे शेखरकी रचना कर शर्वाके सहित कौशिकीके निकट आईं ॥ ८० ॥ इसके उपरान्त उनके साथ मिलकर बोलीं कि, इस शेखरोत्तमको ग्रहण करो, नागराजोंकेद्वारा बनाकर दैत्योंके मस्तकोंसे इसे गुँथा है ॥ ८१ ॥

कृत्वास्रजमनौपम्यांचंडिकायैन्यवेदयत् ॥ घर्घरांचमृगेंद्रस्यचर्मणःसासमर्पयत् ॥ ७७ ॥ स्रजमन्यांखगेंद्रस्यपत्रैर्मूर्ध्निनिबध्यच ॥ आत्मनासापपौ पानंरुधिरंदानवेष्वपि ॥ ७८ ॥ चंडंत्वादायमुंडंचमुंडंचासुरनायकौ ॥ चकारकुपितादुर्गाविशिरस्कौमहासुरौ ॥ ७९ ॥ तयोरेवतदादेव्याशेखरःशिरसा कृतः ॥ कृत्वाजगामकौशिक्याःसकाशंशर्वयासह ॥ ८० ॥ समेत्यसाऽब्रवीद्देविगृह्यतांशेखरोत्तमः ॥ ग्रथितोदैत्यशीर्षाभ्यांनागराजेनवेष्टितः ॥ ८१ ॥ तंशेखरंशिवागृह्यचामुंडामूर्ध्निविस्तृतम् ॥ बबंधप्राहचैवैनांकृतंकर्मसुदारुणम् ॥ ८२ ॥ शेखरंचंडमुंडाभ्यांयस्माद्धारयतेशुभम् ॥ तस्माल्लोकेतव ख्यातिश्चामुंडेतिभविष्यति ॥ ८३ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंत्रिनेत्रांतांचंडमुंडस्रजधारिणींवै ॥ दिग्वाससंचाभ्यवदत्प्रतीतानिषूदयस्वारिबलान्यमूनि ॥ ॥ ८४ ॥ सात्वेवमुक्ताऽथविषाणकोट्यासवेगयुक्तेनशरासनेन ॥ निषूदयंतीरिपुसैन्यमुग्रंचचारचान्यानसुरांश्चखाद ॥ ८५ ॥ ततोंबिकायास्त्वथचंडमुंडौ मार्यांचसिंहेनचभूतसंघैः ॥ निपात्यमानादनुपुंगवास्तेककुद्मिनंसिंहमुपाश्रयंतम् ॥ ८६ ॥ इति श्रीवामनपुराणेदेवीमाहात्म्येचंडमुंडवधोनामप श्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

चामुंडा उस शेखरको ले और मस्तकको भलीप्रकारसे बांधकर उसे बोलीं कि, तुमने अत्यन्त भयंकर कार्य किया है ॥ ८२ ॥ कारण कि, चंड मुंडके मस्तक द्वारा गुँथी हुई इस मालाको धारण करती हो, इसीकारणसे लोकमें चामुंडा नामसे विख्यात होगी ॥ ८३ ॥ चंड मुंडोंकी माला धारण करनेवाली वह त्रिनेत्रासे इसप्रकार कहकर प्रसन्न हो दिग्वस्त्रोंसे बोली कि, तुम इस सम्पूर्ण शत्रुसेनाका संहार करो ॥ ८४ ॥ वह इसप्रकार कही जाकर विषाणकोटि (शृंगके अग्रभाग) और वेगवान् बाणोंके द्वारा प्रचंड शत्रुबलका संहार और इधर उधर विचरण कर अन्यान्य असुरोंको भक्षण करनेलगी ॥ ८५ ॥ तदनन्तर अंबिकाजीके सिंह मारी और भूतसंघ इन करके पतन किये गये चंडमुंड और दनुजश्रेष्ठ बलवान् सिंहका आश्रय करते भये ॥ ८६ ॥ इति श्रीवामनपुराणे देवीमाहात्म्ये

भाषाटीकायां चंडमुंडवधो नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, चंड मुंडको मरा और सम्पूर्ण सेनाको रणसे भागा हुआ देखकर शुंभने महाअसुर रक्तबीजको आज्ञा दी ॥ १ ॥ तब तैंतीस करोड़ अक्षौहिणी सेनाको लेकर रक्तबीज चला, दैत्योंकी सेनाको आतीहुई देखकर परमेश्वरी चंडिका ॥ २ ॥ कालीके सहित सिंहनाद करनेलगीं उनके इसप्रकारसे शब्द करनेपर उनके मुखसे ब्रह्माणी उत्पन्न हुईं ॥ ३ ॥ वह अक्षसूत्र और हाथमें कमंडलु लियेहुए विमानपर विराजमान थीं, उसी समय त्रिशूलधारिणी त्रिनेत्रा वृषभपर चढ़ी हुईं ॥ ४ ॥ महासर्परूपी वलय (खडुये) को पहनेहुए कमंडलुको हाथमें लिये घोरप्रकृतिशालिनी महेश्वरी उत्पन्न हुईं, इसके उपरान्त मोरके पंखको शिरोमुकुटमें करेहुए शक्ति (साँग) को धारण कियेहुए कौमारी (स्वामी कार्तिकेयकी शक्ति) नेभी जन्म ग्रहण किया ॥ ५ ॥ हे देवर्षे ! वह मोरके विमानपर बैठीहुई हैं, पीछे उनकी भुजाओंसे शंख चक्र गदा खड्गको धारण कीहुई गरुड़पर चढी हुई

पुलस्त्यउवाच ॥ चंडमुंडौचनिहतौदृष्ट्वासैन्यंचविद्रुतम् ॥ समादिदेशातिबलंरक्तबीजंमहासुरम् ॥ १ ॥ अक्षौहिणीनांत्रिंशद्भिःकोटिभिःपरिवारितम् ॥ तमापतंतंदैत्यानांबलंदृष्ट्वैवचंडिका ॥ २ ॥ मुमोचासिंहनादंवैकाल्यासहमहेश्वरी ॥ निनदंत्यास्ततोदेव्याब्रह्माणीमुखतोऽभवत् ॥३ ॥ हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमंडलुः ॥ माहेश्वरीत्रिनेत्राचवृषारूढात्रिशूलिनी ॥ ४ ॥ महाहिवलयारौद्राजाताकुंडलिनीक्षणात् ॥ ततोऽथजाताकौमारीबर्हिपत्राचशक्तिनी॥ ॥ ५ ॥ समुद्भूताचदेवर्षेमयूरवरवाहना ॥ बाहुभ्यांगरुडारूढाशंखचक्रगदासिनी ॥ ६ ॥ शार्ङ्गबाणधराजातावैष्णवीरूपशालिनी ॥ महोग्रमुशलारौद्रादंष्ट्रोल्लिखितभूतला ॥ ७ ॥ वाराहीपृष्ठतोजाताशेषनागोपरिस्थिता ॥ विक्षिपंतीसटाक्षेपैर्ग्रहनक्षत्रतारकाः ॥ ८ ॥ नखिनीहृदयाज्जातानारसिंही सुदारुणा ॥ ताभिर्निपत्यमानंतुनिरीक्ष्यबलमासुरः ॥ ९ ॥ ननादभूयोनादान्वैचंडिकानिर्भयारिपून् ॥ तन्निनादंमहच्छुत्वात्रैलोक्यप्रतिपूरकम् ॥१०॥ समाजगामदेवेशःशूलपाणिस्त्रिलोचनः ॥ अभ्येत्यवंद्यचैवैनांप्राहवाक्यंतदांबिकाम् ॥ ११ ॥ समायातोस्मिवैदुर्गेदेह्याज्ञांकिंकरोस्मिते ॥ तद्वाक्यसमकालंचदेव्यादेहोद्भवाशिवा ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ और धनुष बाणको हाथमें लिये हुए रूपशालिनी वैष्णवी प्रगट हुईं, उपरान्त दंष्ट्राद्वारा पृथ्वीको विदारित करके महाउग्र मूसल भयंकरप्रकृति ॥ ७ ॥ शेषनागपर चढ़ी हुई वाराही उनकी पीठभागसे प्रगट हुईं, पीछे सटा (कन्धेके बालों) को फैलाकर उसके द्वारा ग्रह नक्षत्र और तारागण इन सबको इधर उधर विक्षिप्त करने लगीं ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त नखशालिनी अत्यन्त दारुण प्रकृति नारसिंही उनके हृदयसे उत्पन्न हुईं, वह असुरोंके नाश करनेमें प्रवृत्त हुई हैं, यह देखकर ॥ ९ ॥ चंडिका निर्भयहो रिपुदलके उद्देशकरके पुनर्वार शब्दकर उठीं, इस महानादसे सम्पूर्ण लोक परिपूर्ण होगये, उस विपुल शब्दको सुनकर ॥ १० ॥ देवेश शूलपाणि त्रिलोचन वहाँ आये और उन अम्बिकाकी वंदनाकर उनसे बोले॥ ११ ॥ कि, हे दुर्गे ! मैं आयाहूं आज्ञा दीजिये, मैं तुम्हारा किंकरहूं महादेवजीके यह वचन

कहतेही उसी समय देवीकी देहसे शिवा देवी उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥ उत्पन्न होतेही उन देवेश (शिवजी) से बोलीं कि, हे शंकर ! आप हमारे दूत बन शुंभ निशुंभसे जाकर कहो कि, जो तुम्हारी बचनेकी अभिलाषा है ॥ १३ ॥ तो हे दुराचारियो ! सप्तम पातालमें चले जाओ, वासव इन्द्र स्वर्गको प्राप्त करै देवता व्यथारहित होंगे॥ ॥ १४ ॥ इस समय ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यज्ञानुष्ठान करैं, नहीं तो जो तुम बलसे गर्वितहो युद्धकी अभिलाषा करतेहो ॥ १५ ॥ तो अव्यग्र चित्तसे आओ, मैं तुम्हारा संहार करूंगी. हे नारद ! जिस प्रकारसे उन्होंने शिवजीको दूत बनाकर भेजा ॥ १६ ॥ इसी कारणसे महादेवीका नाम शिवदूती हुआ, दैत्यगण शंकरके वचन सुनकर गर्वमें भर हुंकार करते हुए शीघ्रही जहां वह कात्यायनी देवी विराजमान थीं वहाँ आ पहुँचे ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त बाणोंके ढेरके ढेर,

जातासाचाहदेवेशंगच्छदौत्येनशंकर ॥ ब्रूहिशुंभंनिशुंभंचयदिजीवितुमिच्छथ ॥१३॥ तद्गच्छध्वंदुराचाराःसप्तमंहिरसातलम् ॥ वासवोलभतांस्वर्गंदेवाः
संतुगतव्यथाः ॥ १४ ॥ यजंतुब्राह्मणाद्यामीवर्णायज्ञांश्चसांप्रतम् ॥ नोचेद्बलावलेपेनभवंतोयोद्धुमिच्छथ ॥ १५ ॥ तदागच्छध्वमव्यग्राएषाहंविनिषूदये॥
यतस्तुसाशिवंदौत्येन्ययोजयतनारद ॥ १६ ॥ ततोनाममहादेव्याःशिवदूतीत्यजायत ॥ तेचापिशंकरवचःश्रुत्वागर्वसमन्वितम् ॥ हुंकृत्वाभ्यद्रवन्सर्वे
यत्रकात्यायनीस्थिता ॥ १७ ॥ ततःशरैःशक्तिभिरंकुशैर्वरैःपरश्वधैःशूलभुशुंडिपट्टिशैः ॥ प्रासैःसुतीक्ष्णैःपरिघैश्चविस्तृतैर्ववर्षतुर्दैत्यवरौसरस्वतीम् ॥
॥ १८ ॥ साचापिबाणैर्वरकार्मुकच्युतैश्चिच्छेदशस्त्राण्यथबाहुभिःसह ॥ जघानचान्यान्रणचंडविक्रमामहासुरान्बाणशतैर्महेश्वरी ॥ १९ ॥ माःरीत्रि
शूलेनजघानचान्यान्खट्वांगपातैरपरांश्चकौशिकी ॥ महाजलक्षेपहतप्रभावान्ब्राह्मीतथान्यानसुरांश्चकार ॥ २० ॥ माहेश्वरीशूलविदारितोरसश्चकारदग्धां
श्चपरांश्चवैष्णवी ॥ शक्त्याकुमारीकुलिशेनचंडीतुंडेनचक्रेणवराहरूपिणी ॥२१॥

शक्ति, अंकुश और परश्वध (फरसा) चमकता हुआ शूल, भुशुंडि और पट्टिश तीक्ष्ण और बड़े २ परिघ देवींके ऊपर चलाने लगे ॥ १८ ॥ उन्होंनेभी श्रेष्ठ धनुषसे छोड़े हुए बाणोंको संधानकर उनके भुजाओंके सहित सम्पूर्ण अस्त्रोंको छेदन करके फेंक दिया, और वही रणचंडविक्रमा महादेवीजी सहस्रों बाणोंको फेंककर अन्यान्य महाअसुरोंको यमके भवनमें भेजने लगीं ॥ १९ ॥ इसी शक्ति त्रिशूलके द्वारा अन्यान्य असुरोंका संहार करने लगीं और कौशिकी खट्वांगके प्रहारोंसे औरोंको संहार करने लगीं, ब्रह्माजीने निजन्मा खडलुको विक्षेप करके अन्यान्य दैत्योंके प्रभावको नष्टकर दिया ॥ २० ॥ तब महेश्वरीने शूलके प्रहारसे असुरोंके वक्षस्थलको विदीर्ण किया; और वैष्णवी उनको दग्ध करने लगीं, यह देखकर देवी कुमारीने शक्तिकेद्वारा, चंडीने वज्रके द्वारा और वाराहीने

तुंड (थोथड़ी) और चक्रके द्वारा अन्यान्य असुरोंका संहार किया ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त नारसिंहीने अन्यान्य दैत्योंको नखोंके प्रहारसे विदारित किया, रुद्र दूतीने अट्टहास्यकी सहायतासे निपातित किया, स्वयं रुद्रने त्रिशूलके प्रयोगसे संहार किया, और विनायकको परश्वध (फरसे) के आघातसे संहार करने लगीं ॥ २२ ॥ इसप्रकार देवीके विविधप्रकारके रूपोंका संहार होनेपर, दैत्यश्रेष्ठ पृथ्वीपर जैसे पतित हुए वैसेही उसी समय भूतगण उन्हें भक्षण करने लगे, जिससे थोडेही समयमें प्रलयकी अवस्था प्राप्त होगई ॥ २३ ॥ वह महाअसुर देवताओंके द्वारा वध्यमान और माताओंके द्वारा व्याकुलेन्द्रियहो खुले हुए बालोंसे चंचल नेत्रोंसे घबडाये हुए रक्तबीजकी शरण हुए ॥ २४ ॥ रक्तबीजने उसी समय बडे २ अस्त्रोंको लेकर एकाएकी रणभूमिमें आकर भूतगणों

नखैर्विभिन्नानपिनारसिंहीअट्टाट्टहासैरपिरुद्रदूती ॥ रुद्रस्त्रिशूलेनतथैवचान्यान्विनायकश्चापिपरश्वधेन ॥ २२ ॥ एवंहिदेव्याविविधैस्तुरूपैर्निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते ॥ पेतुःपृथिव्यांभुविचापिभूतैस्तेभक्ष्यमाणाःप्रलयंप्रजग्मुः ॥ २३ ॥ तेवध्यमानास्त्वथदेवताभिर्महासुरामातृभिराकुलाश्च ॥ विमुक्तके शास्तरलेक्षणाभयात्तेरक्तबीजंशरणंहिजग्मुः ॥ २४ ॥ सरक्तबीजःसहसाभ्युपेत्यवरास्त्रमादायचमातृमंडलम् ॥ विद्रावयन्भूतगणान्समंताद्विवेशको पात्स्फुरिताधरश्च ॥ २५ ॥ तमापतंतंप्रसमीक्ष्यमातरःशस्त्रैःशिताग्रैर्दितिजंववर्षुः ॥ योरक्तबिंदुर्न्यपतत्पृथिव्यांसतत्प्रमाणस्त्वपरोऽपिजज्ञे ॥ २६ ॥ ततश्चमारीस्वयमंबिकाऽथप्रहन्यतांसांप्रतमित्युवाच ॥ पिबस्वचंडेरुधिरंत्वरातेर्वितन्यवक्त्रंवडवानलाभम् ॥ २७ ॥ सात्वेवमुक्तावरदांबिकाहिवितत्यवक्त्रं विकरालमुग्रम् ॥ तुष्टंनभःस्पृक्पृथिवीस्पृगास्यंकृत्वाचिरंतिष्ठतिचर्ममुंडा ॥ २८ ॥ ततोंऽबिकाकेशविकर्षणाकुलंकृत्वारिपुंप्राक्षिपत्स्वेचवक्त्रे ॥ बिभे दशूलेनतथाप्युरस्तःक्षतोद्भवोवान्यपतंश्चवक्त्रे ॥ २९ ॥

को विदारित करते हुए क्रोधमें भर अधरोंको कंपायमान करते हुए, माताके मंडलमें प्रवेश किया ॥ २५ ॥ मातृगण उसको आता हुआ देखकर उसके ऊपर तीक्ष्णाग्र बाणोंकी वर्षा करने लगीं, उसके शरीरसे पृथ्वीमें जो रुधिरकी बूँदें गिरीं उनसे रक्तबीजकी समान आकृतिवाले सहस्रों रक्तबीजोंका जन्म हुआ ॥ ॥ २६ ॥ यह देखकर देवी मारी स्वयं अम्बिका कहने लगीं, इन्हें इसी समय मारो, हे चंडे ! तुम वडवानलको वदनसे वितथ कर इस शत्रुके रुधिरका पान करो ॥ २७ ॥ उन वरदा अम्बिकाने इसप्रकार कहकर अत्यन्त प्रचंड और विकराल मुखको फैलाकर स्थिति की यह देखकर देवी चामुण्डा आकाश और पृथ्वीव्यापि शरीरको फैलाकर खड़ी हुईं ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त अम्बिकाने उस शत्रुके बालोंको पकड़कर उसे घसीटनेसे व्याकुलेन्द्रियकर अपने

ततस्तुशोषंप्रजगामरक्तंरक्तक्षयेहीनबलोबभूव ॥ तंहीनवीर्यंशतधाचकारचक्रेणचामीकरभूषितेन ॥ ३० ॥ तस्मिन्हतेवैदनुसैन्यनाथेतेदानवादीनतरंविनेदुः ॥ हातातहाभ्रातरितिब्रुवंतःक्वयासितिष्ठस्वमुहूर्तमेहि ॥ ३१ ॥ तथापरेविलुलितकेशपाशाविशीर्णचर्माभरणादिगंबराः ॥ निपातिताधरणितलेमृडान्याप्रदुद्रुवुर्गिरिवरमुह्यदैत्याः ॥ ३२ ॥ विशीर्णचर्मायुधभूषणंतद्बलंनिरीक्ष्यैवहिदानवेंद्रः ॥ विकीर्णचक्राक्षरथेनिशुंभःक्रोधान्मृडानींसमुपाजगाम ॥ ३३ ॥ खड्गंसमादायचचर्मभास्वरंधुन्वञ्छिरःप्रेक्ष्यचरूपमस्याः ॥ संस्तभ्यमोहंज्वरपीडितोथचित्रेयथासौलिखितोबभूव ॥३४॥ तंस्तंभितंवीक्ष्यसुरारिमग्रेप्रोवाचदेवीवचनंविहस्य ॥ अनेनवीर्येणसुरास्त्वयाजिताअनेनमांप्रार्थयसेबलेन ॥ ३५ ॥ श्रुत्वातुवाक्यंकौशिक्यादानवःसुचिरादिव ॥ प्रोवाचचिंतयित्वाथवचनंवदतांवरः ॥ ३६ ॥ सुकुमारशरीरात्वंमच्छस्त्रपतनादपि ॥ शतधायास्यसेभीरुआमपात्रमिवांभसि ॥ ३७ ॥ एवंसंचिंतयन्नर्थंत्वांप्रहर्त्तुंनसुंदरि ॥ करोमिबुद्धिंतस्मात्त्वंमांभजस्वायतेक्षणे ॥ ३८ ॥

मुखमें रखलिया पीछे शूलसे उसके वक्षस्थलको विदारितकर उसके रुधिरसे उत्पन्न हुए अन्य असुरोंकोभी अपने मुखमें रखती हुई ॥ २९ ॥ इसप्रकार संहार करनेसे उसका रुधिर जब शुष्क होगया, तब रक्तबीज हीनबल होगया, उसके हीनबल होतेही सुवर्णभूषित चक्रसे उसको सहस्र खंड करके फेंकदिया ॥ ३० ॥ दैत्यसेनापति रक्तबीजके मारेजानेपर दानवगण अत्यन्त दीनभाव होकर शब्द कर उठे, और हाहाकार कर हाभ्रातः ! हातात ! तुम मारेगये, कहां जातेहो, एक मुहूर्त्तको ठहरो, आओ इस प्रकारसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ मृडानी (शिव पत्नी) अन्यान्य असुरोंको पृथ्वीमें निपातित कर महादेवजीके केशोंमें छिपने लगीं उनके चर्माभरण छिन्न भिन्न होगये, और वह नग्न होगई यह देख कर बचे बचाये सम्पूर्ण राक्षस इधर उधर भागने लगे ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण सेनाके चर्म (ढाल) और आयुध (अस्त्र) छिन्न भिन्न होगये हैं, यह देखकर दानवेन्द्र शुंभ विकीर्ण चक्राक्ष रथपर चढ़कर क्रोधमें भर मृडानीके सन्मुख हुआ ॥ ३३ ॥ और चमकती हुई तलवार और ढालको ले बाणोंको धारणकर मस्तकको कंपायमान करता फिर उनके रूपको देखकर मोहसंभ्रमके साथ ज्वरसे पीड़ितहो चित्रखिंचे हुएकी समान होगया ॥ ३४ ॥ देवी उस सन्मुख आये स्तम्भित मुरारीको देखकर ऊँचे स्वरसे हास्य करने लगीं कि, तुमने जिस प्रकार अपने वीर्यकी सहायतासे देवताओंको परास्त किया है, उसी प्रकारसे बलकी सहायतासे हमारीभी प्रार्थना करतेहो ? ॥ ३५ ॥ वदताम्वर (बड़ावक्ता) शुंभ कौशिकीके वचन सुनकर बहुत देरतक चिन्ता करता रहा, फिर यह उत्तर दिया ॥ ३६ ॥ कि, हे भीरु ! तुम्हारा शरीर अत्यन्त कोमल है, मेरे शस्त्रके लगतेही जलके बीचमें कच्चे बर्तनकी समान सहस्रों खंड होजाओगी ॥ ३७ ॥ हेसुन्दरी ! ऐसी चिन्ता करके मैं तुमपर प्रहार करनेकी इच्छा नहीं करता, इस कारण हे आयतलोचनी !

तुम मेरेको पतिभावसे स्वीकार करो ॥ ३८ ॥ इन्द्रभी मेरे खड्गके प्रहारको सहन नहीं कर सकता, इस कारण युद्धको त्याग कर मेरी भार्या बनो ॥ ३९ ॥ हे मुने ! योगेश्वरी निशुंभके यह वचन सुन कर ऊंचे स्वरसे हास्य कर गंभीर वचन उससे बोलीं ॥ ४० ॥ कि, हेवीर ! विना युद्धमें पराजित हुई मैं किसीकीभी भार्या नहीं बनूंगी इसकारण यदि जो भार्याकी इच्छा है तो युद्धमें हमें पराजित करो ॥ ४१ ॥ हे नारद ! मृडानीके यह वचन सुनकर दानव (शुंभ) ने खड्गको घुमाकर शीघ्रतासे कौशिकीके ऊपर चलाया ॥ ४२ ॥ देवीने मोरके पंखसे शोभायमान छः बाणोंसे चर्म (ढाल) सहित उस आये हुए खड्ग [तलवार] को छेदनकर दिया, तब वह अत्यन्त आश्चर्यमें हुआ ॥ ४३ ॥ चर्मके सहित खड्गके छिन्न होतेही महाअसुर [शुम्भ] गदाको लेकर वायुके वेगकी समान गतिको अवलम्बनकर कौशिकीके प्रति दौड़ा ॥ ४४ ॥

ममखड्गनिपातंहिनेंद्रोधारयितुंक्षमः ॥ निवर्त्तयमतिंयुद्धाद्भार्यामेभवसांप्रतम् ॥ ३९ ॥ इत्थंनिशुंभवचनंश्रुत्वायोगेश्वरीमुने ॥ विहस्यभावगंभीरंनिशुंभं
वाक्यमब्रवीत् ॥ ४० ॥ नाजिताऽहंरणेवीरभवेभार्याहिकस्यचित् ॥ भवान्यदीहभार्यार्थीततोमांजयसंयुगे ॥४१॥ इत्येवमुक्तेवचनेखड्गमुद्भ्राम्यदानवः ॥
प्रचिक्षेपतदावेगात्कौशिकींप्रतिनारद ॥ ४२ ॥ तमापतंतंनिस्त्रिंशंषड्भिर्बर्हणवाजिभिः ॥ चिच्छेदचर्मणासार्द्धंतदद्भुतमिवाभवत् ॥४३॥ खड्गेसचर्मणि
च्छिन्नेगदांगृह्यमहासुरः ॥ समाद्रवत्कोशभवांवायुवेगसमोजवे ॥४४॥ तस्यापततएवाशुकरौश्लिष्टौसमौदृढौ ॥ गदयासहचिच्छेदक्षुरप्रेणरणेंबिका ॥४५॥
तस्मिन्निपतितेरौद्रेसुरशत्रौभयंकरे ॥ चंड्याद्यामातरोहृष्टाश्चक्रुःकिलकिलाध्वनिम् ॥ ४६ ॥ गगनस्थास्ततोदेवाःशतक्रतुपुरोगमाः ॥ जयस्वविजये
त्यूचुर्हृष्टाःशत्रौनिपातिते ॥ ४७ ॥ ततस्तूर्याण्यवाद्यंतभूतसंघैःसमंततः ॥ पुष्पवृष्टिंचमुमुचुःसुराःकात्यायनींप्रति ॥ ४८ ॥ निशुंभंपतितंदृष्ट्वाशुंभः
क्रोधान्महामुने ॥ वृंदारकंसमारुह्यप्रासपाणिःसमभ्यगात् ॥ ४९ ॥

अम्बिकाने उसके आतेही क्षुरका प्रहारकर गदाके साथ उसका समश्लिष्ट (चोकवा) दृढ़ दोनों हाथोंको छेदन करके फैंक दिया ॥ ४५ ॥ उस भयंकर रौद्र प्रकृति देवताओंके शत्रुके मारे जानेपर चंडीआदिक मातायें हर्षितहो किलकिला ध्वनि करनेलगीं ॥ ४६ ॥ शत्रुके मरतेही आकाशमें स्थितहो इन्द्र इत्यादि सम्पूर्ण देवता हर्षितहो देवी कात्यायनीकी जय हुई यह कहनेलगे ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त भूतगणोंने चारों ओरसे सम्पूर्ण बाजे बजाने प्रारंभ किये, देवता देवी कात्यायनीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४८ ॥ हे महामुने ! निशुंभ मारागया है यह देखकर शुंभ अत्यन्त क्रोधितहो वृन्दारक देवताओंपर चढ़कर देवीके

निकट आया ॥ ४९ ॥ देवीने दानवेश्वरको हाथीपर चढाहुआ देखकर चंद्राकार देदीप्यमान चार बाणोंको ग्रहण किया ॥ ५० ॥ और क्षुरेके समान अग्र भागवाले उन बाणोंमेंसे दो बाणोंसे एकसाथही हाथीके दोनों पैर काटडाले. इसके उपरान्त हँसते २ लीलाकेसाथ दो बाण उस हाथीके मस्तकमें मारे ॥ ५१ ॥ दोनों पैरोंके कटजानेसे यह हस्ती वज्रसे कटेहुए पर्वतके शृंगकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ५२ ॥ हाथीके गिरतेही शुंभने जैसे उठनेका उपाय किया, शिवाने उसी समय उसके मस्तकको छेदन करके फेंकदिया ॥ ५३ ॥ मृड़ानीने देवताओंके शत्रु शुंभ निशुंभका संहार किया है, यह सुनकर इन्द्र, सूर्य, मरुत, अश्विनीकुमार, आठ वसु इत्यादि देवता गिरिश्रेष्ठ विंध्याचलपर आकर विनयसहित नम्र हो श्रुतिसुख अर्थात् सुनने योग्य देवीकी स्तुति करनेलगे ॥५४॥ ५५ ॥ उँ भगवति ! तुम

तमापतंतंदृष्ट्वाथसगजंदानवेश्वरम् ॥ जग्राहचतुरोबाणान्श्चंद्रार्धाकारवर्चसः ॥ ५० ॥ क्षुरप्राभ्यांसमंपादौद्वौचिच्छेदद्विपस्यसा ॥ द्वाभ्यांकुंभेजघानाथह
संतीलीलयांबिका ॥ ५१ ॥ निकृत्ताभ्यांगजःपद्भ्यांनिपपातयथेच्छया ॥ शक्रवज्रसमाक्रांतंशैलराजशिरोयथा ॥ ५२ ॥ तस्यावर्जितनागस्यशुंभस्या
प्युत्पतिष्यतः ॥ शिरश्चिच्छेदबाणेनकुंडलालंकृतंशिवा ॥ ५३ ॥ छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रोनिपपातसकुंजरः ॥ ययासमहिषःक्रौंचोमहासेनेनसंहतः ॥ ५४ ॥
श्रुत्वासुरासुररिपूनिहतौमृडान्यासेंद्राःससूर्यमरुदश्विवसुप्रधानाः ॥ आगत्यतंगिरिवरंविनयावनम्रादेव्यास्तदाश्रुतिसुखंत्विदमीरयंतः ॥५५॥ देवाऊचुः ॥
ॐ ॥ नमोस्तुतेभगवतिपापनाशिनिनमोस्तुतेसुरारिपुदर्पशातनि ॥ नमोस्तुतेहरिहरराज्यदायिनिनमोस्तुतेमखभुजकार्यकारिणि ॥ ५६ ॥ नमोस्तुते
त्रिदशरिपुक्षयंकरिनमोस्तुतेशतमखपादपूजिते ॥ नमोस्तुतेमहिषविनाशकारिणिनमोस्तुतेहरिहयभास्करस्तुते ॥ ५७ ॥ नमोस्तुतेऽष्टादशबाहुशालि
निनमोस्तुतेशुंभनिशुंभघातिनि ॥ नमोस्तुतेचार्त्तिहरेत्रिशूलिनिनमोस्तुनारायणिचक्रधारिणि ॥५८॥ नमोस्तुवाराहिसदाधराधरेत्वांनारसिंहिप्रणतानमो
स्तुते ॥ नमोस्तुतेवज्रधरेगजध्वजेनमोस्तुकौमारिमयूरवाहिनि ॥ ५९ ॥

पापोंको विनाश करतीहो तुमको नमस्कार है, तुमने देवताओंके शत्रुका गर्व नाश किया है तुमको नमस्कार है; तुम हरि (विष्णु) और हर (शिव) के अपने २ राज्यको देनेवाली हो तुमको नमस्कार है, तुम देवताओंके कार्यको पूर्ण करतीहो तुमको नमस्कार है ॥ ५६ ॥ तुम त्रिदश (देव) गणोंके शत्रुओंकी रक्षा करतीहो तुमको नमस्कार है। शतमुख इन्द्र तुम्हारी पाद (चरण) की पूजा करते हैं तुमको नमस्कार है, तुम महिषासुरका विनाश करनेवालीहो तुमको नमस्कार है, हरि हर और भास्कर सर्वदा तुम्हारी स्तुति करते हैं तुमको नमस्कार है ॥ ५७ ॥ तुम्हारी अठारह भुजायें हैं तुमको नमस्कार है; तुम शुम्भ और निशुम्भका घात करतीहो तुमको नमस्कार है । तुम आर्तहारिणी और त्रिशूलधारिणीहो तुमको नमस्कार है, तुम नारायणी और चक्रधारिणीहो तुमको नमस्कारहै॥५८॥तुम सर्वदा धराधारिणी

वाराहीहो तुमको नमस्कार है, तुम मयूरवाहिनी कौमारीहो तुमको नमस्कार है ॥ ५९ ॥ तुम हंसवाहिनी ब्रह्माणी हो तुमको नमस्कार है, तुम माला विकटा और सुकेशिनीहो तुमको नमस्कार है । तुम वासव (गर्दभ) पृष्ठवाहिनीहो तुमको नमस्कार है, तुम सबके शोकको हरण करनेवाली और जगन्मयीहो तुमको नमस्कार है ॥ ६० ॥ तुम संसारकी ईश्वरीहो तुमको नमस्कार है, तुम संसारका पालन और ब्राह्मणों तथा देवताओंके शत्रुओंका दलन करतीहो, तुम सर्वमयी और त्रिलोचनीहो तुमको नमस्कार है, तुम वरदा हो तुमको नमस्कार है, तुम प्रसन्नहो ॥ ६१ ॥ तुम ब्रह्माजी मृगानीहो तुम श्रेष्ठ मयूरचारिणी शक्तिहस्ता कुमारीहो, तुम सुन्दरवदनशालिनी वाराहीहो, तुम गरुड़वाहिनी शार्ङ्गधारिणी वैष्णवीहो, तुम अतिदुष्प्रेक्षणीया नारसिंहीहो, घुर्घुरित शब्द करती हो, तुम वज्रधारिणी ऐन्द्रीहो, तुम मारी और चंडमुंडाहो, तुम शववाहिनी योगसिद्धाहो ॥ ६२ ॥ तुम त्रिनेत्रा और भगवतीहो तुमको नमस्कार है; जो प्रतिदिन शिर नवाकर नम्रहो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय करते हैं, जो सर्वदा स्तुति परायण और नैवेद्य पुष्पादिक हाथमें लियेहुए तुम्हारे निकट उपस्थित रहते हैं. उनको कभी अशुभका भोगकरना नहीं होता ॥ ६३ ॥ देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाली कात्यायनी देवताओंके द्वारा इस प्रकारसे स्तुति सुनकर हँसती हुई देवता, सिद्ध और महर्षियोंसे कहनेलगी कि, मैं ने आपहीके प्रसादसे इसप्रकारके युद्धमें अद्भुत विक्रम दिखाकर देवताओंके शत्रुओंको जय किया है ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य आप सबकी कही हुई इस स्तुतिको भक्तिसहित कीर्तन करते हैं उनके सम्पूर्ण दुःस्वप्न (खोटे स्वप्नके फल) नाश होजाते हैं, इसमें कुछभी संदेह नहीं. अब आप सब वर माँगिये ॥ ६५ ॥ देवता बोले कि, जिस कारण आप गौ ब्राह्मण और बालकोंके हितसाधनमें सर्वदाही रत रहतीहो

नमोस्तुपैतामहहंसवाहनेनमोस्तुमालाविकटेसुकेशिनि ॥ नमोस्तुतेरासभपृष्ठवाहनिनमोस्तुसर्वार्त्तिहरेजगन्मये ॥ ६० ॥ नमोस्तुविश्वेश्वरिपाहिविश्वं
निषूदयारिंद्विजदेवतानाम् ॥ नमोस्तुतेसर्वमयित्रिनेत्रेनमोनमस्तेवरदेप्रसीद ॥ ६१ ॥ ब्रह्माणीत्वंमृडानीवराशिखिगमनाशक्तिहस्ताकुमारीवाराहीत्वं
सुवक्त्राखगपतिगमनावैष्णवीत्वंसशार्ङ्गी ॥ दुर्दर्शानारसिंहीघुरुघुरितरवात्वंतथैंद्रीसवज्रात्वंमारीचर्ममुंडाशवगमनरतायोगिनीयोगसिद्धा ॥ ६२ ॥ ॐ ॥
नमस्तेत्रिनेत्रेभगवतितवचरणानुच्छ्रितायेअहरहर्विनताशिरोधरांसनम्राः ॥ नहिनहिपरमस्त्यशुभंसततंस्तुतिबलिकुसुमकराःसततंये ॥ ६३ ॥ ॐ ॥
एवंस्तुतासुरवरैःसुरशत्रुनाशीप्राहप्रहस्यसुरसिद्धमहर्षिवर्यान् ॥ प्राप्तोमयाद्भुततमोभवतांप्रसादात्संग्राममूर्ध्निसुरशत्रुजयःप्रमर्दात् ॥ ६४ ॥ इमांस्तु
तिंभक्तिपरानरोत्तमाभवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयंति ॥ दुःस्वप्ननाशोभवितानसंशयोवरस्तथान्योव्रियतामभीप्सितः ॥ ६५ ॥ देवाऊचुः ॥ यदिवरदाभवती
त्रिदशानांद्विजशिशुगोषुयतस्वहिताय ॥ पुनरपिदेवरिपूनपरांस्त्वंप्रदहहुताशनतुल्यशरीरे ॥ ६६ ॥

इसकारण यदि देवताओंको वर देनेके निमित्त सन्नद्ध हुईंहो तो अग्निके समान शरीरमें प्रवेशकर पुनर्वार अन्य देवताओंके शत्रुओंका संहार करो ॥ ६६ ॥ देवी बोली कि, मैं नंदजीके घर रानी यशोदाके गर्भमें अवतार ले पुनर्वार देवताओंके शत्रु लवण नामक दैत्यका संहार करूंगी, इस प्रकारसे प्रगट होकर दांतोंके प्रहारसे पुनर्वार उत्पन्न हुए, शुंभ निशुंभके विनाश करनेमें प्रवृत्त हुईं ॥ ६७ ॥ हे देवताओ ! पुनर्वार मैं तिष्ययुगमें अकालपीड़ित मनुष्योंको निरशन (भोजनरहित) देखकर शतक्रतुके गृहमें मारीरूपसे प्रगट हूंगी, और शाकोंके ढेरके द्वारा सम्पूर्ण देवताओंका भरण करूंगी ॥ ६८ ॥ हे देवताओ ! पुनर्वार मैं शत्रुपक्ष नाश और ऋषियोंकी रक्षाके अर्थ दुष्ट दैत्योंका संहारकर देवताओंको जिताऊंगी ॥ ६९ ॥ हे देवताओ ! जब अरुणाक्ष महाअसुर प्रगट होगा तब सबके हित करनेके निमित्त महा

देव्युवाच ॥ भूयोवधिष्यामिसुरारिमुत्तमंसंभूयनंदस्यगृहेयशोदया ॥ तत्रावतीर्णालवणंतथापरौशुंभंनिशुंभंदशनप्रहारिणी ॥ ६७ ॥ भूयःसुरास्तिष्ययुगे निराशनान्निरीक्ष्यमारीचगृहेशतक्रतोः ॥ संभूयदेव्याइतिसत्तधामयासुरान्भरिष्यामिचशाकसंकरैः ॥ ६८ ॥ भूयोविपक्षक्षपणायदेवाविंध्येभविष्याम्यृषिरक्षणार्थम् ॥ दुर्वृत्तचेष्टान्विनिहत्यदैत्यान्भूयःसमेष्यामिसुराजयंहि ॥६९॥ यदारुणाक्षोभवितामहासुरस्तदाभविष्यामिहितायदेवताः ॥ महालिरूपेण विनष्टजीवितंकृत्वासमेष्यामिपुनस्त्रिविष्टपम् ॥ ७० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वावरदासुराणांकृत्वाप्रणामंद्विजपुंगवानाम् ॥ विसृज्यभूतानिजगामदेवीखंसिद्धसंघैरनुगम्यमाना ॥ ७१ ॥ इदंपुराणंपरमंपवित्रंदेव्याजयंमंगलदायिपुंसाम् ॥ श्रोतव्यमेतन्नियतैःसदैवरक्षोघ्नमेतद्भगवानुवाच ॥ ७२ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेदेवीमाहात्म्येशुंभनिशुंभवधोनामषट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ कथंसमहिषःक्रौंचोभिन्नःस्कंदेनसुव्रत ॥ एतन्मेविस्तराद्ब्रह्मन्कथयस्वामितद्युते ॥ १ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुष्वकथयिष्यामिकथांपुण्यांपुरातनीम् ॥ यशोवृद्धिंकुमारस्यकार्तिकेयस्यनारद॥२॥

लिरूपसे प्रगट हूंगी; और उसके जीवनको नष्टकर फिर स्वर्गको चलीजाऊंगी ॥ ७० ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, वरदा कात्यायनी देवताओंको इस प्रकारसे वर देकर ऋषियोंको प्रणामकर सम्पूर्ण भूतोंको बिदा दे सिद्धगणोंके द्वारा अनुगम्यमान होकर आकाशको चली गईं ॥ ७१ ॥ देवीका यह परमपवित्र पुराण जयका आख्यान मनुष्योंको मंगलका देनेहारा है, स्वयं भगवान्ने कहा है कि, यह राक्षसोंका विनाश करती हैं, इसकारण निरन्तर इसको श्रवण करै ॥ ७२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायां शुंभनिशुंभवधो नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ नारदजी बोले कि, हे सुव्रत ! कार्तिकेयने किसप्रकारसे महिष सहित क्रौंचपर्वतको विदारित किया था ? हे महाद्युते ! हे ब्रह्मन् ! आप मेरे निकट यह वृत्तान्त विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे नारद ! सुनो मैं

कार्तिकेयके यशकी वृद्धि जिसप्रकारसे हुई उस पवित्रकारिणी प्राचीन कथाको कहताहूं ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कि, अग्निने शिवजीके स्खलित वीर्यरूपी तेजको पान किया था, उस तेजके भारसे आक्रांत होकर अग्निभी मंदतेज होगये ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त अमितद्युति (अपरिमित तेजवाले) अग्नि देवताओंके निकट गये, उन्होंने शीघ्र उनको ब्रह्मलोकको भेजदिया ॥ ४ ॥ उन (अग्नि) ने मार्गमें जाते हुए देवी कुटिल (गंगाजी) को देखा वह देखकर बोले कि, हे कुटिले ! (गंगे !) इस दुर्द्धर्षतेजको ॥ ५ ॥ महादेवजीने त्याग किया है, यह सम्पूर्ण भुवनोंको अनायासही दग्ध करसकता है इसकारण तुम इसको धारण करो, तुम्हारे त्रिलोकीमें पूज्यमान् पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ६ ॥ महानदी कुटिला इसप्रकार अग्निके वचनोंके द्वारा अपनी अभिप्रेत वार्ताको स्मरण[१] करके उनसे बोली कि, मेरे जलमें

यत्तत्पीतंहुताशेनस्कन्नंशुक्रंपिनाकिनः ॥ तेनाक्रांतोभवद्ब्रह्मन्मंदतेजाहुताशनः ॥ ३ ॥ ततोजगामदेवानांसकाशममितद्युतिः ॥ तैश्चापिप्रहितस्तूर्णंब्रह्मलोकंजगामह ॥ ४ ॥ सगच्छन्कुटिलांदेवींददर्शपथिपावकः ॥ तांदृष्ट्वाप्राहकुटिलेतेजएतत्सुदुर्द्धरम् ॥ ५ ॥ महेश्वरेणसंत्यक्तंनिर्दहेद्भुवनान्यपि ॥ तस्मात्प्रतीच्छपुत्रोयंतवधन्योभविष्यति ॥ ६ ॥ इत्यग्निनासाकुटिलास्मृत्वास्वमतमुत्तमम् ॥ प्रक्षिपस्वांभसिममप्राहवह्निंमहापगा ॥ ७ ॥ ततस्त्वधारयद्देवीशार्वंतेजस्त्वपूपुषत् ॥ हुताशनोपिभगवान्कामचारीपरिभ्रमन् ॥ ८ ॥ पंचवर्षसहस्राणिधृतवान्हव्यभुक्ततः ॥ मांसमस्थीनिरुधिरंमेदोमज्जाथतस्यहि ॥ ९ ॥ रोमश्मश्र्वक्षिकेशाद्याःसर्वेंजाताहिरणमयाः ॥ हिरण्यरेतालोकेषुतेनगीतश्चपावकः ॥ १० ॥ पंचवर्षसहस्राणिकुटिलाज्वलनोपमम् ॥ धारयंतीतदागर्भंब्रह्मणःस्थानमागता ॥ ११ ॥ तांदृष्ट्वान्पद्मजन्मासंतप्यंतींमहापगाम् ॥ दृष्ट्वापप्रच्छकेनायंतवगर्भःसमाहितः ॥ १२ ॥ साचाहशाङ्करंयत्तच्छुक्रंपीतंहिवह्निना ॥ तदशक्तेनतेनाद्यनिःक्षिप्तंमयिसत्तम ॥ १३ ॥

आप इसको डालिये ॥ ७ ॥ तब अग्निने उसको निक्षेप किया, देवी (गंगा) भी उसको धारण करके पोषण करनेलगी, भगवान् हुताशन (अग्नि) भी इच्छानुसार इधर उधर विचरनेलगे ॥ ८ ॥ हव्यभोक्ता अग्निने उस तेजको पांचसहस्रवर्षतक धारण किया था, इसीसे उसमें मांस, अस्थि, रुधिर, मेद, मज्जा ॥ ९ ॥ रोम, श्मश्रु, अक्षि, केश इत्यादि सम्पूर्ण सुवर्णमय होगया, इसीकारणसे लोकमें उन (अग्नि) का नाम हिरण्यरेता कहकर विख्यात हुआ है ॥ १० ॥ इस ओर कुटिलाभी पांचसहस्रवर्षतक उस अग्नितुल्य गर्भको धारणकर ब्रह्माजीके निकट गईं ॥ ११ ॥ पद्मयोनि (ब्रह्माजी) उस महानदी कुटिलाको परमसन्तुष्टा देखकर पूँछते हुए कि, किसने तुम्हारे गर्भको स्थापन किया ॥ १२ ॥ वह बोलीं कि, महादेवजीने जिस तेजको त्यागन किया अग्निने उसको पान करलियाथा,

---

[१] ब्रह्माजीसे प्रतिज्ञाकी थी कि, मैं शिववीर्यको धारण करूंगी, इस अपनी प्रतिज्ञाको स्मरणकरके ।

इसके उपरान्त हे सत्तम ! (परमपूज्य !) उन्होंने अशक्त हो मुझमें रखदिया ॥ १३ ॥ हे पितामह ! इस तेजको धारण करते हुए मुझे पांच सहस्रवर्ष होगये, और गर्भकालभी उपस्थित होगया है, तोभी यह किसी प्रकारसे पतित नहीं होता ॥ १४ ॥ भगवान् पितामह ब्रह्माजी कुटिलाके यह वचन सुनकर बोले कि, तुम उदयाचल पर्वतपर जाओ, वहाँ सौ योजन विस्तारवाला अत्यन्त भयंकर एक शरवण (शरकण्डे नडकुल) के वन है ॥ १५ ॥ हे सुश्रोणि ! उस विस्तीर्ण पर्वतके शिखरमें इसे गिराओ । दश सहस्र वर्षके बीतनेपर बालकका जन्म होगा ॥ १६ ॥ कुटिला ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर शरीरको धारणकर उदयाचलमें आई और सुअवसर पाय गर्भको त्यागदिया ॥ १७ ॥ इसप्रकारसे वह कुटिला उस बालकको वहाँ त्यागकर उसी समय पितामहके सामने आई, और उनके मंत्रके वशसे फिर जलमयी होगईं, अर्थात् जलरूपसे नदीआकारहो बहने लगीं ॥ १८ ॥ इस ओर शम्भुके तेजके संसर्गके वशसे सुविशाल शरवण सुवर्णवर्णका होगया, वैसेही वहाँके पशु पक्षी और मृग इन सबोंने सुवर्णकी मूर्ति धारण की ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त दश सहस्र वर्षके पूर्ण होनेपर बालसूर्यके समान कांतिवाला कमललोचन बालक उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ वह पूर्ण ऐश्वर्यवान् बालक उत्तानशायीहो दिव्य उस शरवणके बीच पड़ेहुए मुखमें अँगूठेको डालकर घनराज (बड़ेमेघ) की समान गंभीरस्वरसे रोदन करनेलगे ॥ २१ ॥ इसी अवसरमें परमतेजस्विनी दिव्यरूपिणी छः कृत्तिकाओंने इच्छानुसार जाते २ उस अवस्थामें बालकको देखा ॥ २२ ॥ और दयाकर जिस देशमें बालक स्थित था वहाँही गईंऔर 'मैं पहले मैं पहले' इसे अपना स्तन पिलाऊँगी यह कहकर परस्पर आक्रोश करनेलगीं ॥ २३ ॥ उनको विवाद करती हुईं देखकर बालकने छः मुख प्रगट किये, तब वह सभी बालकका स्नेहसे भरण पोषण करनेलगीं ॥ २४ ॥

पंचवर्षसहस्राणिधारयंत्यापितामह ॥ गर्भस्यवर्त्ततेकालोनायंपततिकर्हिचित् ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवानाहगच्छत्वमुदयंगिरिम् ॥ तत्रास्तियोजनशतं
रौद्रंशरवणंमहत् ॥ १५ ॥ तत्रैनंक्षिपसुश्रोणिविस्तीर्णेगिरिसानुनि ॥ दशवर्षसहस्रांतेततोबालोभविष्यति ॥ १६ ॥ साश्रुत्वाब्रह्मणोवाक्यंरूपिणीऽगि
रिमागता ॥ आगत्यगर्भंतत्याजसुखेनैवाद्रिनंदिनी ॥ १७ ॥ सातुसंत्यज्यतंबालंब्रह्माणंसहसागमत् ॥ आपोमयीमंत्रवशात्संजाताकुटिलासती ॥ १८ ॥
तेजसाचापिशार्वेणरौक्मंशरवणंमहत् ॥ तन्निवासरताश्चान्येपादपामृगपक्षिणः ॥ १९ ॥ ततोदशसुपूर्णेषुशरदांहिशतेष्वथ ॥ बालार्कदीप्तिःसंजातोबालः
कमललोचनः ॥ २० ॥ उत्तानशायीभगवान्दिव्येशरवणेस्थितः ॥ मुखेंगुष्ठंसमाक्षिप्यरुरोदघनराडिव ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नंतरेदिव्याःकृत्तिकाःषट्सुते
जसः ॥ ददृशुःस्वेच्छयायान्त्योबालंशरवणेस्थितम् ॥२२॥ कृपायुक्ताःसमाजग्मुर्यत्रस्कंदःस्थितोऽभवत् ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वंतस्मैस्तन्यविचुक्रुशुः ॥ २३ ॥
विवदंतीःसताद्दष्ट्वाषण्मुखःसमजायत ॥ अबीभरंश्चताःसर्वाःशिशुस्नेहाच्चकृत्तिकाः ॥ २४ ॥

हे मुने ! उनके द्वारा पालित होकर यह बालक धीरे २ बढ़नेलगा और कृत्तिकाद्वारा पालित होनेके कारणसे कार्तिकेय नामसे विख्यात और बलवानोंमें प्रथम गणना करने योग्य हुआ ॥ २५ ॥ इसी समयमें पद्मयोनि ब्रह्माजी अग्निसे बोले कि, सम्प्रति तुम्हारा पुत्र गुह कितना बड़ा हुआ है ॥ २६ ॥ अग्नि उनके वचन सुनकर गुहको अपना आत्मज जानकरभी देवेश कमलयोनि ब्रह्माजीसे बोले कि, गुह कौन है उसे मैं नहीं जानता ॥ २७ ॥ भगवान् ब्रह्माजी उससे प्रसन्नहो बोले कि, तुमने पहले जिस तेजको पान कियाथा उसीसे त्रिलोकीके ईश्वर बालकरूपसे जन्म लेकर शरवणमें स्थिति करते हैं ॥ २८ ॥ पितामहके यह वचन सुनकर पावक शीघ्रगामी मेष (मेढा) पर चढ़कर चले तब कुटिलाने उनको देखा ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त कुटिलाने पूँछा हे वह्ने ! इतनी

भ्रियमाणःसताभिस्तुबालोवृद्धिमगान्मुने ॥ कार्त्तिकेयइतिख्यातोजातःसबलिनांवरः ॥२५॥ एतस्मिन्नंतरेब्रह्मन्पावकंप्राहपद्मभूः ॥ कियत्प्रमाणःपुत्रस्ते वर्त्ततेसांप्रतंगुहः ॥ २६ ॥ सतद्वचनमाकर्ण्यजानन्नपिहिचात्मजम् ॥ प्रोवाचवह्निर्देवेशंनवेद्मिकतमोगुहः ॥२७॥ तंप्राहभगवान्प्रीतस्तेजःपीतंपुरात्वया ॥ त्रैयंबकंत्रिलोकेशोजातःशरवणेशिशुः ॥ २८॥ श्रुत्वापितामहवचःपावकस्त्वरितोऽभ्यगात् ॥ वेगिनंमेषमारुह्यकुटिलातंददर्शह ॥ २९ ॥ ततःपप्रच्छकुटिलाशीघ्रंक्वव्रजसेकवे ॥ सोऽब्रवीत्पुत्रहष्ट्यर्थंजातःशरवणेशिशुः ॥ ३० ॥ साब्रवीत्तनयोमह्यंममेत्याहचपावकः ॥ विवदंतौददर्शाथस्वेच्छाचारीजनार्दनः ॥ ३१ ॥ तौपप्रच्छकिमर्थंवाविवादमिहचक्रतुः ॥ तावूचतुःपुत्रहेतोरुद्रशुक्रोद्भवोयदि ॥ ३२ ॥ तावुवाचहरिर्देवोगच्छतंत्रिपुरांतकम् ॥ सयद्वक्ष्यतिदेवेशस्तत्कुरुध्वमसंशयम् ॥ ३३ ॥ इत्युक्तौवासुदेवेनकुटिलाग्नीहरांतिके ॥ समभ्येत्योचतुस्तथ्यंकस्यपुत्रोतिनारद ॥ ३४ ॥ रुद्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्यहर्षनिर्भरमानसः ॥ दिष्ट्यादिष्ट्येतिगिरिजांप्रोद्भूतपुलकोब्रवीत् ॥ ३५ ॥

शीघ्रतासे कहाँ जारहेहो ? वह बोले कि, पुत्रको देखनेके निमित्त मेरा बालक शरवणमें उत्पन्न होकर वहाँ निवास करता है ॥ ३० ॥ कुटिला बोलीं कि, यह पुत्र हमारा है. अग्नि बोले कि, नहीं मेरा है. इसप्रकार परस्परमें विवाद करते हुए उन दोनोंको भगवान् विष्णुने यथेच्छ विचरते हुए वहाँ आकर देखा, और देखकर ॥ ३१ ॥ पूँछा कि, तुम दोनों किस निमित्त झगड़ा कररहेहो ? वह बोले कि, जो रुद्रके शुक्रसे उत्पन्न हुआ है उस पुत्रके निमित्त विवाद कररहाहूँ ॥ ३२ ॥ भगवान् जनार्दन बोले कि, तुम दोनों त्रिपुरनिहन्ता महादेवजीके निकट जाओ वह देवेश जो कहैं सो निःसंदेह करना ॥ ३३ ॥ हे नारद ! कुटिला और अग्नि यह दोनों वासुदेवके वचनके अनुसार महादेवजीके निकट जाकर बोले कि, यह पुत्र किसका है ? ॥ ३४ ॥ रुद्र यह वचन सुनकर हर्षित हृदय पुलकायमान शरीरहो

गिरिजासे वारम्वार कहनेलगे कि, अहो! कैसा सौभाग्य है! ॥ ३५ ॥ तव अम्बिका महादेवजीसे बोलीं कि, हे देव! हम उस बालकके निकट चलैंगी और जाकर उस बालकसे पूछैंगी, फिर वह जिसका आश्रय करैगा उसीका पुत्र होगा ॥ ३६ ॥ भगवान् वृषभध्वज "अस्तु" ऐसा कहकर उमा, कुटिला और अग्निके सहित उठ खड़े हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सभीने शरवणमें जाकर देखा कि, वह कोमलांग बालक कृत्तिकाओंकी गोदमें शयन कर रहा है ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त वह बालक उनके अभिप्रायको विचारकर योगबलसे उस बालअवस्थामेंही चतुर्मूर्ति और छः वदनका होगया ॥ ३९ ॥ इसमें कुमाररूपसे शंकरको, विशाखरूपसे गिरिजाको, शाखरूपसे कुटिलाको और नैगमेयरूपसे अग्निका आश्रय किया ॥ ४० ॥ इसकारण रुद्र, उमा, कुटिला, यह सभी प्रसन्न हुए और देवेश अग्निभी अत्यन्त आह्लादित हुए ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त कृत्तिकायें कहनेलगीं कि, यह षड्वदन क्या महादेवजीका आत्मज है? यह सुनकर महादेवजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ४२ ॥ कि, यह बालक कार्तिकेय नामसे तुम्हारा होगा और कुमार नामसे कुटिलाका पुत्र होगा ॥ ४३ ॥ फिर यह बालक स्कंद नामसे गौरीका पुत्र होगा, और गुह नामसे मेरा पुत्र कहकर विख्यात होगा ॥ ४४ ॥ और महासेन नामसे अग्निका पुत्र होगा, और सारस्वत नामसे शरवणका पुत्र होगा ॥ ४५ ॥ इसप्रकारसे यह महायोगी पृथ्वीमें प्रसिद्धि प्राप्त करैगा. षडंशत्व प्रयुक्त यह महाबाहु षड्वदन नामसे विख्यात होगा ॥ ४६ ॥ इतना कहकर भगवान् शूलपाणि (महादेवजी) ने देवताओंके सहित पितामह (ब्रह्माजी) का स्मरण किया, वे सभी स्मरण करतेही वहाँ शीघ्र उपस्थित होगये ॥ ४७ ॥

ततोंबिकाप्राहहरंदेवगच्छावतंशिशुम् ॥ प्रष्टुंसमाश्रयेद्यंसतस्यपुत्रोभविष्यति ॥ ३६ ॥ बाढमित्येवभगवान्समुत्तस्थौवृषध्वजः ॥ सहोमयाकुटिलयापावकेनचधीमता ॥ ३७ ॥ संप्राप्तास्तेशरवणंहरोमाकुटिलाग्नयः ॥ ददृशुःशिशुकंतंचकृत्तिकोत्संगशायिनम् ॥ ३८ ॥ ततःसबालकस्तेषांमत्वाचिंतितमादरात् ॥ योगाच्चतुर्मूर्तिरभूच्छिशुत्वेपिचषण्मुखः ॥ ३९ ॥ कुमारःशंकरमगाद्विशाखोगिरिजामगात् ॥ कुटिलामभ्यगाच्छाखोनैगमेयोग्निमभ्यगात् ॥ ४० ॥ ततःप्रीतियुतोरुद्रउमाचकुटिलातथा ॥ पावकश्चापिदेवेशःपरांमुदमवापह ॥ ४१ ॥ ततोब्रुवन्कृत्तिकास्ताःषण्मुखःकिंहरात्मजः ॥ ततोऽब्रवीद्धरःप्रीत्याविशेषवचनंमुने ॥ ४२ ॥ नाम्नातुकार्तिकेयेतियुष्माकंचभवत्वसौ ॥ कुटिलायाःकुमारेतिपुत्रोयंभविताव्ययः ॥ ४३ ॥ स्कंदइत्येवविख्यातोगौरीपुत्रोभवत्वसौ ॥ गुहइत्येवनाम्नाचममासौतनयःस्मृतः ॥ ४४ ॥ महासेनइतिख्यातोहुताशस्यास्तुपुत्रकः ॥ सारस्वतइतिख्यातःपुत्रःशरवणस्यच ॥ ॥ ४५ ॥ एवमेषमहायोगीपृथिव्यांख्यातिमेष्यति ॥ षडंशत्वान्महाबाहुःषण्मुखोनामगीयते ॥ ४६ ॥ इत्येवमुक्त्वाभगवाञ्छूलपाणिःपितामहम् ॥ सस्मारदैवतैःसार्द्धंतेप्याजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४७ ॥

आकर कामारि(शिवजी)तथा गिरिनंदिनी उमाको प्रणामकर प्रीतिमें भर अग्नि कुटिला और कृत्तिकाओंको देखकर ॥ ४८ ॥ उस सूर्यके समान षड्वदन अति उग्रबालकको देखा, उस बालकने अपने तेजसे सबके नेत्रोंको मूँद दियाथा॥ ४९ ॥ यह देख देवता कौतुकाकुलितहो सभी कहनेलगे कि, हे देव ! (शिव !)आपने दिव्यअग्निकेद्वारा देवताओंका कार्य पूर्ण किया है ॥ ५० ॥ अब उठिये ! आजही सब मिल औजस और अव्यय तीर्थ कुरुक्षेत्रमें जाकर सरस्वतीके जलसे षड्वदनका अभिषेक करेंगे ॥ ५१ ॥ हे गंधर्व ! और किन्नरो ! यही सेनापति होकर महिष अतिदारुण प्रकृति तारकासुरका संहार करै ॥ ५२ ॥ महादेवजी इन वचनोंपर सम्मत हुए, देवता उठे और कुमारको साथ लेकर परमफलदायक कुरुक्षेत्रको गये ॥ ५३ ॥ वहीं ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जनार्दन और मुनियोंके साथ मिलकर

प्रणिपत्यचकामारिमुमांचगिरिनंदिनीम् ॥ दृष्ट्वाहुताशनंप्रीत्याकुटिलांकृत्तिकास्तथा ॥ ४८ ॥ ददृशुर्बालमत्युग्रंषण्मुखंसूर्यसन्निभम् ॥ मुष्णंतमिवचक्षूंषितेजसास्वेनदेवताः ॥ ४९ ॥ कौतुकाभिवृताःसर्वेएवमूचुःसुरोत्तमाः ॥ देवकार्यंत्वयादेवकृतंदिव्याग्निनातदा ॥ ५० ॥ तदुत्तिष्ठव्रजामोद्यतीर्थमौजसमव्ययम् ॥ कुरुक्षेत्रंसरस्वत्यामभिषिंचामषण्मुखम् ॥ ५१ ॥ सेनायाःपतिरस्त्वेषदेवगंधर्वकिंनराः ॥ महिषंघातयत्वेषतारकंचसुदारुणम् ॥ ५२ ॥ बाढमित्यब्रवीच्छर्वःसमुत्तस्थुःसुरास्ततः ॥ कुमारसहिताजग्मुःकुरुक्षेत्रंमहाफलम् ॥ ५३ ॥ तत्रैवदेवताःसेंद्रारुद्रब्रह्मजनार्दनाः ॥ यत्नमस्याभिषेकार्थं चक्रुर्मुनिगणैःसह ॥ ५४ ॥ ततोंबुनासप्तसमुद्रवाहिनानदीजलेनापिमहाफलेन ॥ वनौषधिष्वेवसहस्रमूर्तिभिस्तमभ्यषिंचंतहराच्युताद्याः ॥ ५५ ॥ अभिषिक्तेतुसेनान्यांकुमारेदिव्यरूपिणि ॥ जगुर्गंधर्वऋषयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५६ ॥ अभिषिक्तंकुमारंहिगिरिपुत्रीनिरीक्ष्यहि ॥ स्नेहादुत्संगगंस्कंदं मूर्ध्न्यंजिघ्रन्मुहुर्मुहुः ॥ ५७ ॥ जिघ्रतीकार्त्तिकेयस्यअभिषेकार्द्रमाननम् ॥ भात्यद्रिजायथेंद्रस्यदेवमाताऽदितिःपुरा ॥ ५८ ॥ तदाभिषिक्तंतनयं दृष्ट्वाशर्वोमुदंययौ ॥ पावकःकृत्तिकाश्चैवकुटिलाचयशस्विनी ॥ ५९ ॥

कुमारके अभिषेक करनेके निमित्त यत्न करनेलगे ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त सातों समुद्रके जल मँगवाये गये, और महाफलदायक गंगादिक नदियोंका जलभी मँगवाया, उसमें सर्वौषधियां डालकर सहस्र धाराजलसे शिव विष्णु आदि देवगण उन स्वामीकार्तिकेयका अभिषेक करते हुए ॥ ५५ ॥ दिव्यरूपधारी कार्तिकेयके सेनानीपदपर अभिषिक्त होनेपर गंधर्व और ऋषि आदि मिलकर गान करनेलगे, अप्सराओंने नृत्य करना प्रारंभ किया ॥ ५६ ॥ गिरिपुत्री कार्तिकेयको अभिषिक्त हुआ देखकर स्नेहके वशीभूत हो उन्हें अपनी गोदीमें ले वारम्वार मस्तकको सूँघने लगीं ॥ ५७ ॥ उस समय अभिषेकार्द्र कार्तिकेयके वदनको सूँघती हुई गिरिनंदिनी पूर्वकालमें इन्द्रके मुख सूँघनेमें प्रवृत्त हुई देवमाता अदितिकी समान शोभा पाती हुई ॥ ५८ ॥ उन्हैं अभिषिक्त देखकर महादेवजीभी अति प्रसन्न हुए । अग्नि,

कृत्तिकायें और यशस्विनी कुटिलाभी अत्यन्त आनंदको अनुभव करनेलगीं ॥५९॥ इसके उपरान्त महादेवजीने सेनापत्यमें अभिषिक्त गुहको इन्द्रके समान पराक्रमवाले चार प्रमथगण प्रदान किये ॥६०॥ उनका नाम घंटाकर्ण, लोहिताक्ष, नन्दिषेण, और बलिप्रधान कुमुदमाली यहभी दारुण (भयंकरप्रकृतिवाले) प्रख्यात हैं ॥ ६१ ॥ हे नारद ! हरके दियेहुए चारों गणोंको देखकर ब्रह्मा आदि देवताभी अपने २ गणोंको उन्हें देनेलगे ॥ ६२ ॥ इनमेंसे ब्रह्माजीने स्थाणु नामक गणको दिया, विष्णुजीने संक्रम, विक्रम और पराक्रम नामसे विख्यात तीनों गणोंको दिया ॥ ६३ ॥ इन्द्रने उत्क्लेश, और पंकज, रवि (सूर्य) दंड और कपिञ्जल, चंद्रमा, मणि और वसुमणि दो अश्विनीकुमार वत्स और नंदी ॥ ६४ ॥ अग्निने ज्योतिः और ज्वलज्जिह्व, धाता (प्रजापति) ने कुन्द मुकुन्द और

ततोभिषिक्तस्यहरःसेनापत्येगुहस्यच ॥ प्रमथांश्चतुरःप्रादाच्छक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ ६० ॥ घंटाकर्णंलोहिताक्षंनंदिषेणंचदारुणम् ॥ चतुर्थंबलिनांमुख्यं
ख्यातंकुमुदमालिनम् ॥ ६१ ॥ हरदत्तान्गणान्दृष्ट्वादेवाःस्कंदस्यनारद ॥ प्रददुःप्रमथान्स्वांश्चसर्वेब्रह्मपुरोगमाः ॥ ६२ ॥ स्थाणुंब्रह्मागणंप्रादाद्विष्णुः
प्रादाद्गणत्रयम् ॥ संक्रमंविक्रमंचैवतृतीयंचपराक्रमम् ॥ ६३ ॥ उत्क्लेशपंकजौशक्रोरविर्दंडकपिंजलौ ॥ चंद्रोमणिंवसुमणिमश्विनौवत्सनंदिनौ ॥ ६४ ॥
ज्योतिर्हुताशनःप्रादाज्ज्वलज्जिह्वंतथापुरम् ॥ कुंदंमुकुंदंकुसुमंत्रीन्धातानुचरान्ददौ ॥ ६५ ॥ चक्रानुचक्रौत्वष्टाचवेधानिस्थिरसुस्थिरौ ॥ पाणित्यजंका
लिकंचप्रादात्पूषामहाबलौ ॥६६॥ स्वर्णमालंघनाह्वंचहिमवान्प्रमथोत्तमौ ॥ प्रादादेवोच्छ्रितोर्विंध्यस्त्वतिकृष्णंचपार्षदम् ॥६७॥ सुवर्चसंचवरुणःप्रददौ
चातिवर्चसम् ॥ संग्रहंविग्रहंचापिनागाजयपराजयौ ॥ ६८ ॥ उन्मादंशंकुकर्णंचपुष्पदंतंतथांबिका ॥ घसंचातिघसंवायुःप्रादादनुचरावुभौ ॥६९॥ परिघं
वटकंभीमंदाहातिदहनौतथा ॥ प्रददावंशुमान्पंचप्रमथान्षण्मुखायहि ॥ ७० ॥

कुसुम नामके तीनों गणोंको गुहकी सेवाके अर्थ प्रदान किये ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त त्वष्टा. (विश्वकर्मा) ने चक्र और अनुचक्र नामके दो गण प्रदान किये, वेधा (प्रजापति) ने निस्थिर और सुस्थिर नामके विख्यात दो गण दिये, इसके उपरान्त पूषा (आदित्य) ने पाणित्यज और कालि नामक दो महागण प्रदान किये ॥ ६६ ॥ हिमवान् (हिमालय) ने स्वर्गमाल और घन नामके दो प्रधान प्रमथ उनकी सेवामें नियुक्त किये, इसके उपरान्त विंध्यगिरिने अतिकृष्ण नामक पार्षदको प्रदान किया ॥ ६७ ॥ वरुणने सुवर्चा और अतिवर्चा, सम्पूर्ण भोग संग्रह विग्रह जय और पराजय ॥ ६८ ॥ अम्बिकाने उन्माद, शंकुकर्ण और पुष्पदन्त, वायुने घस और अतिघस, नामके दो अनुचर ॥ ६९ ॥ और अंशुमानने पांच गण दिये, उनका नाम परिघ, वटक, भीम, दाह

और अतिदहन ॥ ७० ॥ यमने प्रमथ, उन्मथ, कालसेन, महामुख, तालपत्र और कालजंघ नामके छैः गणोंको दिया ॥ ७१ ॥ हे द्विजोत्तम ! धाताने सुप्रभ और शुभकर्मा, मित्र, सुव्रत और सत्यसन्धको प्रदान किया ॥ ७२ ॥ और यक्षोंने अत्यन्त शंकुपीठ, निकुम्भ कुमुद, अम्बुज, एकाक्ष कुनटी, चक्षु, किरीटी, कलशोदर, सूचीवक्र, कोकनद, प्रहास, प्रियक, अच्युत इन पंद्रहगणोंको गुहकी सहायताके अर्थ दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त कालिन्दी[1] (यमुना) कलकन्दको, नर्मदा रणोत्कटको, गोदावरी सिंधुयात्रको, तमसा अद्रि और कम्पकको ॥ ७५ ॥ शीता सहस्रबाहूको, वंजुला स्मितोदरको, मंदाकिनी गंधको, विपाशा प्रियङ्करको ॥ ७६ ॥ ऐरावती

यमःप्रमथमुन्माथंकालसेनंमहामुखम् ॥ तालपत्रंकालजंघंषडेवानुचरान्ददौ ॥ ७१ ॥ सुप्रभंशुभकर्माणंददौधातागणेश्वरौ ॥ सुव्रतंसत्यसंधंचमित्रः
प्रादाद्द्विजोत्तम ॥ ७२ ॥ अनंतःशंकुपीठश्चनिकुंभःकुमुदोंबुजः ॥ एकाक्षःकुंनटीचक्षुःकिरीटीकलशोदरः ॥ ७३ ॥ सूचीवक्रःकोकनदःप्रहासःप्रियको
ऽच्युतः ॥ गणाःपंचदशैतेहियक्षैर्दत्तागुहस्यतु ॥ ७४ ॥ कालिंद्याकलकंदश्चनर्मदायारणोत्कटः ॥ गोदावर्यासिद्ध्यात्रंतमसासाद्रिकंपकौ ॥ ७५ ॥
सहस्रबाहुशीतायावंजुलायाःस्मितोदरः ॥ मंदाकिन्यास्तदागंधोविपाशायाःप्रियंकरः ॥ ७६ ॥ ऐरावत्याश्चतुर्दंष्ट्रःषोडशाख्योवितस्तया ॥ मार्जारिंकौ
शिकीप्रादात्क्रथक्रौंचौचगौतमी ॥ ७७ ॥ बाहुदाशतशीर्षंचवाहागोनंदनंदिकौ ॥ भीमंभीमरथीप्रादाद्वेगारिंसरयूर्ददौ ॥ ७८ ॥ अष्टबाहुंददौकालीसुबाहुम
पिगंडकी ॥ महानदीचित्रदेवंशिप्राचित्ररथंददौ ॥ ७९ ॥ कुहूःकुवलयंप्रादान्मधुवर्णमधूदका ॥ जंबूकंधूतपापाचवेत्राश्वेताननंददौ ॥ ८० ॥ स्तुतं
चप्रथमंवर्णारेवासागरवेगिनम् ॥ प्रभावार्थसहंप्रादात्कांचनाकनकेक्षणम् ॥ ८१ ॥ गृध्रवक्रंचविमलाचारुपत्रंमनोहरा ॥ धूतपापामहारावंकर्णाविद्रुमस
न्निभम् ॥ ८२ ॥ सुप्रसादंसुवेणुंचजिष्णुमोघवतीददौ ॥ यज्ञबाहुंविशालाचसरस्वत्योददुर्गणान् ॥ ८३ ॥

चतुर्दंष्ट्रको, वितस्ता शोषशको, कौशिकी माजिरको, गौतमी क्रथ और क्रौंचको ॥ ७७ ॥ बाहुदा शतशीर्षको, वाहा गोनंद और नंदिकको, भीमरथी भीमको सरयू वेगारिको ॥ ७८ ॥ काली अष्टबाहुको, गंडकी सुबाहुको, महानदी चित्रदेवको, शिप्रा चित्ररथको दीं ॥ ७९ ॥ कुहू कुवलयको मधूदका मधुवर्णको, धूतपापा जम्बूकको, वेत्रा श्वेताननको ॥ ८० ॥ वेणा स्तुतको, रेवा सागरवेगीको, काञ्चना प्रभावको, आर्थसह और कनकेक्षणको ॥ ८१ ॥ विमला गृध्रवक्रको, मनोहरा चारुपत्रको धूतपापा महारावको, कर्णाविद्रुम सन्निभको ॥ ८२ ॥ ओघवती सुप्रसादको और सुवेणुको, विशाला यज्ञबाहुको, इसप्रकार नदियोंने अपने २ गण प्रदान किये ॥ ८३ ॥

---

१ कालिन्दी आदिक नदियोंके नाम हैं ।

और कुटिलाने इन्द्रकी समान बलवान् तीस गणोंको प्रदान किया. यह गण उसके पुत्रथे, जटाधर, कराल, सितकेश, कृष्णकेश, जटाधर ॥ ८४ ॥ मेघनाद, चतुर्दंष्ट्र, विद्युज्जिह्व, दशानन, सोमाप्यायन, उग्र, देवयाजी ॥ ८५ ॥ और कृत्तिकाओंने हंसास्य, कुंडजठर, मुग्धग्रीव हयानन, कूर्मग्रीव इन पाँच गणको पुत्रके निमित्त अनुचररूपसे नियुक्त किया ॥ ८६ ॥ ऋषियोंने स्थाणुजंघ, कुंभवक्त्र, लोहजंघ, महानन और पिंडारक यह पाँच गण प्रदान किये ॥ ८७ ॥ पृथूदक[1] तीर्थ, नागजिह्व, चंद्रभास, पाणि, कूर्म, आशिक्षक, चापवक्त्र, जम्बूकको प्रदान किया ॥ ८८ ॥ कनखल, चक्रतीर्थ, सुचक्राख्य, मकराख्य, गयाशिर और शिव

कुटिलातनयान्प्रादात्त्रिंशच्छक्रबलान्गणान् ॥ करालंसितकेशंचेकृष्णंकशजटाधरा ॥ ८४ ॥ मेघनादंचतुर्दंष्ट्रंविद्युज्जिह्वंदशाननम् ॥ सोमाप्यायनमे
वोग्रंदेवयाजिनमेवच ॥ ८५ ॥ हंसास्यंकुंडजठरंमुद्गग्रीवंहयाननम् ॥ कूर्मग्रीवंचपंचैतान्ददुःपुत्रायकृत्तिकाः ॥ ८६ ॥ स्थाणुजंघंकुंभवक्त्रंलोहजंघंमहान
नम् ॥ पिंडाकरंचपंचैतान्ददुःस्कंदायचर्षयः ॥ ८७ ॥ नागजिह्वंचंद्रभासंपाणिकूर्ममाशिक्षकम् ॥ चापवक्त्रंचजंबूकंददौतीर्थंपृथूदकम् ॥८८ ॥ चक्रतीर्थं
सुचक्राख्यंमकराख्यंगयाशिरः ॥ गणंपंचाशिवंनामददौकनखलंस्वकम्॥ ॥ ८९ ॥ बंधुदत्तंचाजिशिराबाहुशालंचपुष्करम् ॥ सर्वौजसंमाहिषकंमानसः
पिंगलंतथा ॥ ९० ॥ रुद्रमौशनसःप्रादात्ततोन्यान्मातरोददुः ॥ वसुदामंसोमतीर्थःप्रभासोनंदिनीमपि ॥९१॥ इंद्रतीर्थंविशोकांचउदपानोघनस्वनाम् ॥
सप्तसारस्वतःप्रादान्मातरश्चतुरोऽद्भुताः ॥ ९२ ॥ गीतप्रियांमाधवींचतीर्थनेमिंस्मिताननम् ॥ एकचूडांनागतीर्थःकुरुक्षेत्रंफलास्पदम् ॥ ९३ ॥ ब्रह्मयो
निश्चंडशितांभद्रकालींत्रिविष्टपम् ॥ रोंडींसेंडींपोषभेडींप्रादाद्द्विरदपावनः ॥ ९४ ॥ मोपलीयांमहीप्रादाच्छालिकांमानसोह्रदः ॥ शतघंटांशतानंदातथो
लूखलमेखलाम् ॥ ९५ ॥ पद्मावतींमाधवींचददौबदरिकाश्रमः ॥ सुषमामेकचूडांचदेवीधमधमांतथा ॥ ९६ ॥

इन पांच गणोंको दिया ॥ ८९ ॥ पुष्कर तीर्थ, बन्धूदत्त आजिशिरा और बाहुशाल मानसतीर्थ, सर्वौजस महिष और पिंगल ॥ ९० ॥ औशनस रुद्र और मातृका अन्यान्य गण प्रदान किये इसके उपरान्त सोमतीर्थ, नसुदाम, प्रभासनंदिनी ॥९१॥ इन्द्रतीर्थ, विशोक, उदपान, घनरचना, सप्तसारस्वत अद्भुतस्वभावयुक्त ॥ ९२ ॥ गीतप्रिया, माधवी, तीर्थनेमि, और स्मितानन नामसे विख्यात चारों मातृकाएँ, नागतीर्थ, एकचूड़ा, कुरुक्षेत्रमें फलास्पद ॥ ९३ ॥ ब्रह्मयोनि, चंडशीता, भद्रकाली, त्रिविष्टप, द्विरदपावन, रोंडीसेंडी, पोषभेंडी ॥ ९४ ॥ मानसह्रद, शालिका, शता नंदा, शतघंटा और उलूखलमेखला ॥ ९५ ॥ बदरिकाश्रममें पद्मावती, माधवी,

---

[1] यहाँ तीर्थोंसे उनके अधिष्ठात्री देवता लेना, क्योंकि उन्हींको फल देनेकी सामर्थ्य है ।

सुखमा और एक चूड़ा देवी धमधमा ॥ ९६ ॥ उक्कार्थनी, वेदमंत्रा केदार मातृका इत्यादि सुनक्षत्र कलुला सुप्रभात सुमंगल ॥ ९७ ॥ रौद्रमहालय, देवमित्रा, चित्रसेना, कोंटरा, मूर्द्धवेणा श्रीमती बाहुपुत्रिका ॥ ९८ ॥ पतिता और कमलाक्षी सर्वपाप विमोचन मातृकासमूह सुषमा, मधुर्पिंगा, क्षान्ति दहदहा ॥ ९९ ॥ खेटकरा, सन्तानिका, विकला, क्रमुका, वरवासिनी ॥ १०० ॥ जलेश्वरी और ककुटिका, सुदामा, लोहमेखला श्वेततीर्थ, वपुष्मती उल्मूकाक्षी, कोकनामा महासर्नी ॥ १०१ ॥ रौद्रा, कर्कटिका और तुंडा, तथा श्वेततीर्थको दिया ॥ १०२ ॥ महात्मा गरुड़जीने इन गण और मातृकाओंको देखकर अपने पुत्र महावेगवान् मयूरको गरुड निजात्मक ताम्रचूडको प्रदान किया हुताशनने शक्ति अद्रिसुताने वस्त्र, रुद्रने दंड, कुटिलाने कमंडलु ॥ १०३ ॥ हरिने माला, शूल

उक्राथनीवेदमंत्रांकेदारोमातरोददौ ॥ सुनक्षत्रंकलूलांचसुप्रभातंसुमंगलम् ॥ ९७ ॥ देवमित्रांचित्रसेनांददौरौद्रमहालयः ॥ कोटरामूर्द्धवेणींचश्रीमतीं बाहुपुत्रिकाम् ॥ ९८ ॥ पतितांकमलाक्षींचप्रयागोमातरोददौ ॥ सुयमांमधुर्पिगांचक्षांतिंदहदहांपराम् ॥ ९९ ॥ प्रादात्खेटकरांचान्यांसर्वपापविमोचनः ॥ संतानिकांचविकलांक्रमुकांबरवासिनीम् ॥ १०० ॥ जलेश्वरींकर्कुटिकांसुदामालोहमेखलाम् ॥ वपुष्मत्युल्मुकाक्षींचकोकनामामहासनी ॥ १०१ ॥ रौद्राकर्कटिकातुंडाश्वेततीर्थोददौत्विमाम् ॥ एतानिभूतानिगणांश्चमातरोदृष्ट्वामहात्माविनतातनूजः ॥ १०२ ॥ ददौमयूरंस्वसुतंमहाजवं तथारुणस्ताम्रचूडंचपुत्रम् ॥ शक्तिंहुताशोऽद्रिसुताचवस्त्रंदंडंगुरुःसाकुटिलाकमंडलुम् ॥ १०३ ॥ मालांहरिःशूलधरःपताकंकंठेचहारंमघवानुरस्तः ॥ गणैर्वृतोमातृभिरध्वयातोमयूरसंस्थोवरशक्तिपाणिः ॥ सेनाधिपत्येसकृतोभवेनरराजसूर्योवमहावपुष्मान् ॥ १०४ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेकार्तिकेयोत्पत्तौ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ सेनापत्येभिषिक्तस्तुकुमारोदैवतैरथ ॥ प्रणिपत्यभवंभक्त्यागिरिजांपावकंशुचिम् ॥ १ ॥ षट्कृत्तिकाश्चसरसांप्रणम्यकुटिलामपि ॥ ब्रह्माणंचनमस्कृत्यइदंवचनमब्रवीत् ॥२॥ कुमारउवाच ॥ नमोभगवतींदेवीमोंनमोऽस्तुतपोधनाः ॥ युष्मत्प्रसादाज्जेष्यामिशत्रूमहिषतारकौ ॥ ३ ॥

पाणिने पताका और इन्द्रने कंठहार दिया तब महावपुष्मान् कार्तिकेय सबसे वेष्टितहो माताओंसे अनुसृत और मोरपर स्थित महादेवजीके द्वारा सेनापतिके पदपर नियुक्तहो हाथमें श्रेष्ठ शक्तिको धारण कर सूर्यके समान विराजमान हुए ॥ १०४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां कार्तिकेयाभिषेक नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि; कुमारदेवताओंके द्वारा सेनापतिके पदपर नियुक्त हो भक्तिसहित महादेवजीको प्रणामकर गिरिनंदिनी अग्नि ॥ १ ॥ छैः कृत्तिका और कुटिलाको प्रणाम तथा ब्रह्माजीको नमस्कार कर यह वचन बोले ॥ २ ॥ कि, भगवतीदेवीको नमस्कार है. हे तपोधनो ! मैं आपके प्रसादसे शत्रुमहिष और

तारकको जय करूँगा ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! मैं बालकहूँ कुछभी नहीं जानता, इसकारण आप सब ब्रह्माजीके साथ मिलकर मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ४ ॥ महात्मा कुमारके यह वचन कहनेपर सभी विगतसाध्वसहो उनके मुखको देखनेलगे ॥ ५ ॥ शिवजीने पुत्रस्नेहके वशवर्तीहो उठकर प्रजापतिका दहिना हाथ पकडकर कुमारके निकटको लेगये ॥ ६ ॥ तब उमा उनसे बोलीं कि, हे पुत्र ! हे शत्रुहन्ता ! आओ सब लोकोंको नमस्कार करने योग्य विष्णुभगवान्‌की वन्दना करैं ॥ ७ ॥ गुह इस वचनको सुन हँसते हुए बोले कि, हे मातः ! यह कौन हैं ? सो मुझसे कहिये, मेरी समान सम्पूर्ण लोक आदरसहित इनको प्रणाम किया करते हैं ॥ ८ ॥ माता उनसे बोलीं कि, देवकार्यके समाप्त होनेपर पद्मयोनिने उन महात्मा गरुड़ध्वजका परिचय दिया ॥ ९ ॥ केवल तुम्हारे पिता महादेवजीने हमसे इनके सम्बन्धमें इस

शिशुरस्मिनजानामिवक्तुंकिंचनदेवताः ॥ दीयतांब्रह्मणासार्धमनुज्ञाममसांप्रतम् ॥ ४ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेकुमारेणमहात्मना ॥ मुखंनिरीक्ष्यतंसर्वाःसर्वेविगतसाध्वसाः ॥ ५ ॥ शंकरोपिसुतस्नेहात्समुत्थायप्रजापतिम् ॥ आदायदक्षिणेपाणौस्कंदांतिकमुपाययौ ॥६॥ अथोमाप्राहतनयंपुत्रएह्येहिशत्रुहन् ॥ वंदस्वचरणौदिव्यौविष्णोर्लोकनमस्कृतौ ॥ ७ ॥ ततोविहस्याहगुहःकोयंमातर्वदस्वमाम् ॥ यस्यादरात्प्रणामोयंक्रियतेमद्विधैर्जनैः ॥ ८ ॥ तंमाताप्राहवचनंकृतेकर्मणिपद्मभूः ॥ वक्ष्यतेतवयोऽयंहिमहात्मागरुडध्वजः ॥ ९ ॥ केवलंत्विहमांदेवत्वत्पिताप्राहशंकरः ॥ नान्यःपरतरोस्माद्धिवयमन्येचदेहिनः ॥ १० ॥ पार्वत्यागदितेस्कंदःप्रणिपत्यजनार्दनम् ॥ तस्थौकृतांजलिपुटस्त्वाज्ञांप्रार्थयतेऽच्युतात् ॥११॥ कृतांजलिपुटंस्कंदंभगवान्भूतभावनः ॥ कृत्वास्वस्त्ययनंदेवोह्यनुज्ञांप्रददौततः ॥ १२ ॥ नारदउवाच ॥ यत्तत्स्वस्त्ययनंपुण्यंकृतवान्गरुडध्वजः ॥ शिखिध्वजायविप्रर्षेतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ॥ १३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुस्वस्त्ययनंपुण्ययत्प्राहभगवान्हरिः ॥ स्कंदस्यविजयार्थायवधायमहिषस्यच ॥ १४ ॥ ॐस्वस्तिकुरुतांब्रह्मापद्मयोनीरजोगुणः ॥ स्वस्तिचक्रांकितकरोविष्णुस्तेविदधात्वजः ॥ १५ ॥

प्रकार कहा था कि, मैं अथवा और कोई प्राणीभी इनकी अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं है॥ १०॥ पार्वतीके इसप्रकार कहनेपर कुमार जनार्दनको प्रणामकर उनको कुछ आज्ञा करनेकी प्रार्थनाकर हाथ जोड़कर खड़े हुए ॥ ११ ॥ तब भूतभावन भगवान्‌ने हाथ जोड़े हुए स्कंदको सावधानकर आज्ञा दी ॥ १२ नारदजी बोले कि, गरुड़ध्वजने शिखिध्वजकी उस समय जो परमपवित्र स्तुतिकीथी हे विप्रर्षे ! आप वही हमसे कहिये ॥ १३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, भगवान् हरिने कार्तिकेयकी विजय और महिषके वध करनेके अर्थ जो स्तुति की थी सो कहता हूँ तुम श्रवण करो ॥ १४ ॥ पद्मयोनि रजोगुण ब्रह्माजी तुम्हारी स्तुतिका विधान करैं, हाथमें चक्र लिये

हुए विष्णु भगवान् तुम्हारी स्तुतिको सम्पादन करैं ॥ १५ ॥ वृषभध्वज पार्वतीजीके सहित मिलकर भक्तिसहित तुम्हारा मंगल करैं, शिखिवाहन
तुम्हारा कल्याण सम्पादन करैं ॥ १६ ॥ दिवाकर भौमके सहित, चंद्रमा बुधके सहित और शुक्र यह सर्वदा तुम्हारा मंगल विधान करै, शनैश्चर तुम्हारी
स्वस्त्ययन करै ॥१७॥ मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वसिष्ठ, भृगु, अङ्गिरा, सोमात्मज बुध और स्वर्गमें स्थित सप्तमहर्षि, यह सर्वदा तुम्हारा मंगल करैं॥ १८॥
विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, साध्यगण, मरुद्गण, अग्नि, आदित्य, शूलधारी महेश्वर यक्ष और पिशाच, आठवसु, और किन्नर सभी सर्वदा उद्यत होकर तुम्हारा
कल्याण करैं ॥ १९ ॥ नाग, सुपर्ण, सरित् (नदी) और सरोवर, पवित्रतीर्थ और सम्पूर्ण ह्रद, समस्त समुद्र महाबलवान् भूत और सम्पूर्ण गणेन्द्र यह सर्वदा

स्वस्तितेशंकरोभक्त्यासपत्नीकोवृषध्वजः ॥ पावकःस्वस्तितुभ्यंचकरोतुशिखिवाहनः ॥ १६ ॥ दिवाकरःस्वस्तिकरोस्तुतेसदासोमःसभौमःसबुधो
गुरुश्च ॥ काव्यःसदास्वस्तिकरोस्तुतुभ्यंशनैश्चरःस्वस्त्ययनंकरोतु ॥ १७ ॥ मरीचिरत्रिःपुलहःपुलस्त्यःक्रतुर्वसिष्ठोभृगुरंगिराश्च ॥ मृगांकजस्ते
कुरुताद्धिमंगलंमहर्षयःसप्तदिविस्थिताश्चये ॥ १८ ॥ विश्वेश्विनौसाध्यमरुद्गणाग्नयोदिवाकराःशूलधरामहेश्वराः ॥ यक्षाःपिशाचावसवोऽथकिन्नरास्ते
स्वस्तिकुर्वंतुसदोद्यतास्त्वमी ॥ १९ ॥ नागाःसुपर्णाःसरितःसरांसितीर्थानिपुण्यानिह्रदाःसमुद्राः ॥ महाबलाभूतगणागणेंद्रास्तेस्वस्तिकुर्वंतुसदो
द्यतास्त्वमी ॥ २० ॥ स्वस्तिद्विपादिकेभ्यश्चचतुष्पादेभ्यएवच ॥ स्वस्तितेबहुपादेभ्यस्त्वपादेभ्योस्त्वनामयम् ॥ २१ ॥ प्राग्दिशंरक्षतांवज्रीदक्षिणां
दंडनायकः ॥ पाशीप्रतीचीमवतुयक्षेशःपातुचोत्तराम् ॥ २२ ॥ वह्निर्दक्षिणपूर्वांतुकुबेरोदक्षिणापराम् ॥ प्रतीचीमुत्तरांवायुःशिवःपूर्वोत्तरामपि ॥ २३ ॥
उपरिष्टाद्ध्रुवःपातुह्यधस्ताच्चधराधरः ॥ मुसलीलांगलीवज्रीधनुष्मानंतरेषुच ॥ २४ ॥ वाराहोंबुनिधौपातुदुर्गेपातुनृकेसरी ॥ सामवेदध्वनिःश्रीमान्सर्वतः
पातुमाधवः ॥ २६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एवंकृतस्वस्त्ययनोगुहःशक्तिधरोऽग्रणीः ॥ प्रणिपत्यसुरान्सर्वान्भूतलादुत्पपातखम् ॥ २६ ॥

उद्यत होकर तुम्हारा मंगल करैं ॥ २० ॥ द्विपद और चतुष्पदोंसे तुम्हारी स्वस्ति (कल्याण) हो, बाहुपाद और अपादगण तुम्हारे आरोग्यको साधन करैं ॥ २१ ॥
इन्द्र तुम्हारी पूर्वओरसे, यम तुम्हारी दक्षिणसे, वरुण तुम्हारी प्राचीओरसे, यक्ष तुम्हारी उत्तर ओरसे रक्षा करैं ॥ २२ ॥ अग्नि अग्निकोणकी ओरसे, कुबेर नैर्ऋत्य
कोणकी ओरसे, वायु वायुकोणकी ओरसे और शिव तुम्हारा ईशान कोणकी ओरसे पालन करैं ॥ २३ ॥ ध्रुव तुम्हारी ऊपरकी ओरसे रक्षा और शेषनाग
तुम्हारा नीचेकी ओरसे पालन करै । और मूसली, लांगली, वज्री और धनुष्पाणी तुम्हारी मध्यकी ओरसे रक्षा करैं ॥ २४ ॥ वाराह तुम्हारे समुद्रमें, नृसिंह तुम्हारे
संकटमें और सामवेदध्वनि श्रीमान् माधव सब स्थानोंमें तुम्हारी रक्षा करैं ॥२५॥ पुलस्त्यजी बोले कि, भगवान् माधवके इसप्रकारसे स्वस्त्ययन (रक्षा) करनेपर

अग्रणी (देवसेनापति) शक्तिधर गुह (कार्त्तिकेय) सब देवताओंको प्रणाम कर यहाँसे आकाशकी ओरको उडे अर्थात् योगबलसे चले ॥ २६ ॥ तब अन्यान्यपूर्वोक्त देवताभी गण और मुनियोंको साथ ले उन कुमार (कार्त्तिकेय) के पीछे २ चले ॥ २७ ॥ यह देखकर पूर्वोक्त मातृगणभी महाबल महाअसुरको संहार करनेकी इच्छा करती हुई स्कन्दके साथ आकाशको चली गईं ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त कुमार बहुत दूर जाकर सब गणोंसे बोले कि, हे महाबलवानो ! तुम शीघ्रही पृथ्वी पर उतरो ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण गण गुहकी आज्ञानुसार पृथ्वीमें उतर पर्वतके निकट जाकर महाभयंकर शब्द करनेलगे ॥ ३० ॥ उनके शब्दने पृथ्वी और आकाशको सर्वतोभावसे पूर्ण कर समुद्रके रन्ध्रके द्वारा दानवोंके स्थान पातालमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त वह शब्द महिषासुर, धीमान् तारकासुर, विरोचन, कुंभ निकुंभ इन

तमन्येचगणाःसर्वेदेवाश्चमुनिदैवतैः ॥ अनुजग्मुःकुमारंतेकामरूपाविहंगमाः ॥ २७ ॥ मातरश्चतथासर्वाःसमुत्पेतुर्नभस्तलम् ॥ समंस्कंदेनबलिनाहं
तुकामामहासुरान् ॥ २८ ॥ ततःसुदीर्घमध्वानंगत्वास्कंदोऽब्रवीद्गणान् ॥ भूम्यांतूर्णमहावीर्याःकुरुध्वमवतारणम् ॥२९॥ गणागुहवचःश्रुत्वाअवतीर्यमही
तलम् ॥ आरात्पर्वतमभ्येत्यनादंचक्रुर्भयंकरम् ॥ ३० ॥ तन्निनादोमहींसर्वानभर्मापूयचस्तलम् ॥ विवेशार्णवरंध्रेणपातालंदानवालयम् ॥ ३१ ॥
श्रुतःसमहिषेणाथतारकेणचधीमता ॥ विरोचनेनकुंभेननिकुंभेनासुरेणच ॥ ३२ ॥ श्रुत्वाचसहसानादंवज्रपातोपमंदृढम् ॥ किमेतदितिसंचिंत्यतूर्णंजग्मु
स्तदांधकम् ॥ ३३ ॥ तेसमेत्यांधकेनैवसमंदानवपुंगवाः ॥ मंत्रयामासुरुद्विग्नास्तच्छब्दंप्रतिनारद ॥ ३४ ॥ मंत्रयत्सुचदैत्येषुपातालात्सूकराननः ॥
पातालकेतुर्दैत्येंद्रःसंप्राप्तोऽथरसातलम् ॥ ३५ ॥ सबाणविद्धोव्यथितःकंपमानोमुहुर्मुहुः ॥ अब्रवीद्वचनंदीनंसमभ्येत्यांधकासुरम् ॥ ३६ ॥ पातालके
तुरुवाच ॥ गतोऽहमासंदैत्येंद्रगालवस्याश्रमंप्रति ॥ तद्विध्वंसयितुंयत्नःसमारब्धोबलान्मया ॥ ३७ ॥

सब महा असुरोंको सुनाई आया ॥ ३२ ॥ वह सभी इस वज्रपातकी समान दृढ शब्दको एकाएकी सुनकर “यह कैसा शब्द है ” इस प्रकारकी चिन्ता करते शीघ्रही अंधकासुरके निकटको गये ॥ ३३ ॥ हे नारद ! वह सम्पूर्ण दानवश्रेष्ठ अंधकके साथ मिलकर उद्विग्न हृदयसे उस शब्दके विषयमें विचार करनेलगे ॥ ३४ ॥ वह सभी मिलकर विचार कररहे हैं कि, इसी समय सूकरके समान मुखवाला पातालकेतु नामक दैत्येन्द्र पातालसे रसातलको आया ॥ ३५ ॥ वह बाणसे विद्ध होगयाथा, इसकारण व्यथित और वारम्वार कम्पायमान होकर अंधकासुरके निकट जाकर दीनताके साथ कहनेलगा ॥ ३६ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मैं एक समय गालव मुनि

के आश्रमको गयाथा, और उसको बलसे विध्वंस करनेके निमित्त यत्न करनेलगा ॥ ३७ ॥ मैंने जैसे सूकररूपसे उस आश्रममें प्रवेश किया कि, वैसेही किसी मनुष्यने मेरे बाण मारा, हे राजन्! मैं उस मनुष्यको नहीं जानता जिसने मेरे ऊपर बाण चलाया ॥ ३८ ॥ शत्रुके बाणके आघातसे जत्रु[१] (कंधेका संधिभाग) विंधगया, तब भयसे कातरहो शीघ्रतासे उस आश्रमसे भागा, तब उस मनुष्यने मेरा पीछा किया ॥ ३९ ॥ हे असुर ! उसी समय घोडोंके खुरोंका बडी जोरसे खटाखट शब्द सुनाई आने लगा, मेरे पीछे आते हुए उस मनुष्यने "ठहरो ठहरो" कहना प्रारंभ किया, उसके भयसे मैं दक्षिण सागरमें जा पहुँचा ॥ ४० ॥ वहाँ आकर मैंने नाना प्रकारके वेषधारी और भाँति २ की आकृतियुक्त मनुष्योंको देखा, उनके बीचमें कोई मेघोंकी समान गर्जन कर रहा है, कोई उसके प्रतिगर्जन कररहा है ॥ ४१ ॥ और

यावत्सूकररूपेणप्रविशामितदाश्रमम् ॥ नजानेहंनरंराजन्येनमेप्रहितःशरः ॥ ३८ ॥ शरसंभिन्नजत्रुश्चभयार्तश्चमहाजवः ॥ प्रपलाय्याश्रमात्तस्मात्सचमां
पृष्ठतोन्वगात् ॥ ३९ ॥ तुरंगखुरनिर्घोषःश्रूयतेपरमोऽसुर ॥ तिष्ठतिष्ठेतिवदतःसूकरस्यचपृष्ठतः ॥ तद्भयादस्मिजलधिंसंप्राप्तोदक्षिणार्णवम् ॥ ४० ॥
यावत्पश्यामितत्रस्थान्नानावेषाकृतीन्नरान् ॥ केचिद्गर्जंतिघनवत्प्रत्यगर्जंस्तथापरे ॥ ४१ ॥ अन्येचोचुर्वयंनूनंनिहन्मोमहिषासुरम् ॥ तारकंघातयामो
ह्यवदंत्यन्येसुतेजसः ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वासुतरांत्रासोममजातोऽसुरेश्वर ॥ महार्णवंपरित्यज्यपतितोस्मिभयातुरः ॥ ४३ ॥ धरण्यांविवृतंगर्तंसमामन्वप
तद्बली ॥ तद्भयात्संपरित्यज्यहिरण्यपुरमात्मनः ॥ ४४ ॥ तवांतिकमनुप्राप्तःप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ तच्छ्रुत्वाचांधकोवाक्यंप्राहमेघस्वनंवचः ॥ ४५ ॥
नभेतव्यंत्वयातस्मात्सत्यंगोप्तास्मिदानव ॥ महिषस्तारकश्चोग्रोबाणश्चबलिनंदनः ॥ ४६ ॥ अनाख्यायैवतेवीरास्त्वंधकंमहिषादयः ॥ स्वपरिग्रहसं
युक्ताभूमौयुद्धायनिर्ययुः ॥ ४७ ॥

कोई २ इस प्रकारके वचन कह रहा है कि, मैं अवश्यही महिषासुरका वध करूँगा और दूसरे परमतेजस्वी मनुष्य यह कह रहेथे कि, मैं तारकासुरका विनाश करूँगा ॥ ४२ ॥ हे असुरेश्वर ! इन वचनोंके सुननेसे मुझे अत्यन्तही भय उपस्थित हुआ तब मैं भयातुरहो महार्णवको छोडकर पृथ्वीके विस्तारित गर्त (गड्ढे) में जाकर गिरा, उस मनुष्यने मेरा पीछा नहीं छोडा, मैं उसीके भयसे अपने हिरण्यपुरको त्यागकर ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आपके निकट आयाहूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करिये, यह वचन सुनकर अंधक मेघकी समान गंभीर वचन बोला कि, हे दानव ! तुम्हें कुछ भय नहीं है, मैं निश्चय तुम्हारी रक्षा करूँगा ॥ ४५ ॥ इस ओर यह वचन सुनकर महिष, तारक, दारुण प्रकृति बाणासुर और विरोचन ॥ ४६ ॥ इन सब वीरोंने अंधकसे विना कहेही अपनी २ सेना और युद्धकी सामग्रीको साथ लेकर

---

[१] "स्कन्धो भुजशिरोंसोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी" इत्यमरः ।

यत्रतेदारुणाकारागणाश्चक्रुर्महास्वनम् ॥ तत्रदैत्याःसमाजग्मुःसायुधाःसबलामुने ॥ ४८ ॥ दैत्यानांपतयोदृष्ट्वाकार्त्तिकेयगणांस्ततः ॥ अभ्यद्रवं
तसहसातेचोग्रंमातृमंडलम् ॥ ४९ ॥ तेषांपुरस्सरःस्थाणुःप्रगृह्यपरिघंबली ॥ न्यषूदयत्परबलंक्रुद्धोरुद्रःपशूनिव ॥ ५० ॥ तंनिघ्नंतंमहादेवंनिरी
क्ष्यकलशोदरः ॥ कुठारंपाणिनादायहंतिसर्वान्महासुरान् ॥ ५१ ॥ ज्वालामुखोभयकरःकरेणादायचासुरम् ॥ सरथंसगजंसाश्वंविस्तृतेवदनेऽक्षिपत् ॥
॥ ५२ ॥ दंडकश्चापिसंक्रुद्धःप्रासपाणिंमहासुरम् ॥ सवाहनंप्रक्षिपतिसमुत्पाटचमहार्णवे ॥५३॥ शंकुकर्णश्चमुसलीहलेनाहत्यदानवान् ॥ संचूर्णयतिमंत्री
वराजानंहीनपौरुषम् ॥ ५४ ॥ खड्गचर्मधरोवीरःपुष्पदंतोगणेश्वरः ॥ द्विधात्रिधाचबहुधाचक्रेदैतेयदानवान् ॥ ५५ ॥ पिंगलोदंडमुंडैश्चयत्रयत्रप्रधाव
ति ॥ तत्रतत्रप्रदृश्यंतेराशयःसर्वदानवैः ॥ ५६ ॥ सहस्रनयनःशूलंभ्रामयन्वैगणाग्रणीः ॥ निजघानासुरान्वीरःसवाजिरथकुंजरान् ॥ ५७ ॥ भीमोभीम
शिलावर्षैःसपुरःसरिणोऽसुरान् ॥ निजघानयथैवेंद्रोवज्रवृष्टयानगोत्तमान् ॥ ५८ ॥

भूमिमें युद्ध करनेके निमित्त निकले ॥ ४७ ॥ हे नारद ! जहाँ वह दारुण आकृतिवाले गण महाशब्द कर रहेथे, सम्पूर्ण दैत्यगणभी अपनी २ सेनासहित आयुधों (अस्त्रों) को हाथमें ले २ कर उसी स्थानमें आ पहुँचे ॥ ४८ ॥ वहाँ आकर उन दैत्यराजाओंने कार्तिकेयके सम्पूर्णगणोंको देखकर प्रचंड प्रकृति मातृमंडलके प्रति दौड़े ॥ ४९ ॥ उन कार्तिकेयके गणोंके अग्रगामीहो स्थाणु (शिवजी) परिघको ग्रहणकर जिसप्रकारसे क्रोधितहो रुद्रने पशुओंका संहार कियाथा उसी प्रकारसे उस शत्रुसेनाका संहार करनेलगे ॥ ५० ॥ तब कलशोदर नामकगण महादेवजीको शत्रुबलको संहार करनेमें प्रवृत्त देखकर हाथमें कुठार (कुल्हाडी) ले सम्पूर्ण असुरोंका विनाश करनेलगा ॥ ५१ ॥ भयकारी ज्वालामुख अश्व, गज और रथके सहित असुरोंको हाथोंसे पकडकर विस्तारित अपने मुखमें रखनेलगा ॥ ५२ ॥ दंडकनामक गणनेभी अत्यन्त क्रोधित होकर प्रासको हाथमें ले एक महाअसुरको वाहनके सहित उठाकर महार्णवमें फेंकदिया ॥ ५३ ॥ महाबलवान् मूसलधारी शंकुकर्णने हलद्वारा दानवको आहत कर मंत्री जिसप्रकार पौरुषहीन राजाको, उसीप्रकारसे उनको चूर्ण (बलहीन) करनेलगा ॥ ५४ ॥ खड्ग चर्मधारी वीरगणेश्वर पुष्पदंतने दैतेय तथा अन्यान्य दानवोंके दो तीन और बहुतसारे टुकडे २ करके फेंकदिये ॥ ५५ ॥ पिंगल, दंड और मुंड ये जिस २ स्थानमें गये सम्पूर्ण दानवोंने उस २ स्थानमें मरेहुए असुरोंकी बहुतसी राशियोंको देखा ॥ ५६ ॥ गणोंमें अग्रणीय सहस्रलोचन (इन्द्र) शूलको घुमाकर अश्व, रथ, और गजके सहित असुरोंको संहार करनेलगे ॥ ५७ ॥ भयंकर शिलावृष्टिकी सहायतासे अपने २ पुरस्सर (अग्रगामी सेना) सहित असुरोंको जिसप्रकारसे

इन्द्रने वज्रवृष्टिसे पर्वतोंको निहत कियाथा उसी प्रकारसे निहत करनेलगे ॥ ५८ ॥ शकटचक्र नामक पांच शिखायुक्त अत्यन्त भयंकरप्रकृति महाबलवान् गण बडे वेगसे मुद्गरको घुमाकर दैत्योंके प्राणनाश करनेको प्रवृत्त हुआ ॥ ५९ ॥ गिरिभेदी नामक गणने बडे वेगसे चपतोंके प्रहारसे हाथीवानुसहित हाथी और सारथी सहित रथको भस्म करदिया ॥ ६० ॥ महाबलवान् नाडीजांघ नामक गण मुट्ठी और जांघोंकी प्रहारसे तथा वज्रतुल्य कीलोंकी प्रहारोंसे असुरोंका संहार करनेलगा ॥ ६१ ॥ कूर्मग्रीव और हयग्रीव शिर और लातोंके प्रहारोंसे तथा भूमिमें लौटनेसे आघात कर दानवोंके सहित दैत्योंको निहत करने लगे ॥ ॥ ६२ ॥ पिंडाकर नामक गणने तुंड (थूथड) के प्रहार द्वारा और कलिप्रियने दोनों सींगोंकी सहायतासे संग्राममें उद्दण्ड दानवोंको विदारित करदिया ॥ ६३ ॥

रौद्रःशकटचक्राख्योगणःपंचशिखोबली ॥ भ्रामयन्मुद्गरंवेगान्निजघानबलाद्रिपून् ॥ ५९ ॥ गिरिभेदीतलेनैवसारोहंकुंजरंरणे ॥ भस्मचक्रेमहावेगोरथं
चराथिनासह ॥६०॥ नाडीजंघोनिपातैश्चमुष्टिभिर्जानुनासुरान् ॥ कीलाभिर्वज्रतुल्याभिर्जघानबलवान्मुने ॥६१॥ कूर्मग्रीवोहयग्रीवःशिरसाचरणेनच ॥
लुंठनेनतदादैत्यान्निजघानसवाहनान् ॥ ६२ ॥ पिंडाकरस्तुतुंडेनशृंगाभ्यांचकलिप्रियः ॥ विदारयतिसंग्रामेदानवान्समरोद्धतान् ॥ ६३ ॥ ततोदृष्ट्वै
वस्वबलंवध्यमानंगणेश्वरैः ॥ प्रदुद्रावाथमहिषस्तारकश्चगणाग्रणीः ॥६४॥ तेहन्यमानाःप्रमथादानवानांवरायुधैः ॥ परिवार्यसमंतात्तेयुयुधुःकुपितास्तदा॥
॥ ६५ ॥ हंसास्यःपट्टिशेनाथजघानमहिषासुरम् ॥ षोडशास्यस्त्रिशूलेनशतशीर्षोवरासिना ॥ ६६ ॥ श्रुतायुधस्तुगदयाविशोकोमुसलेनच ॥ बंधुदत्त
स्तुशूलेनमूर्ध्निदैत्यमताडयत् ॥ ६७ ॥ तथान्यैःपार्षदैर्युद्धेशूलशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥ नाकंपत्तुद्यमानोपिमैनाकइवपर्वतः ॥ ६८ ॥ तारकोभद्रकाल्या
चतथोलूखलयारणे ॥ बध्यतेनेकचूडायादार्यतेपरमायुधैः ॥ ६९ ॥

गणेश्वरोंके द्वारा इसप्रकारसे अपनी सेनाका संहार होताहुआ देखकर दैत्योंमें प्रथम गिनने योग्य तारक और महिष यह दोनोंही उनकी ओरको झपटे ॥ ६४ ॥ तब प्रमथगण दानवोंके बडे २ अस्त्रोंसे वध्यमान होकर क्रोधितहो चारोंओरसे घिरकर युद्ध करने लगे ॥ ६५ ॥ हंसास्यनामक गण पट्टिशके द्वारा महिषासुरको आहत करने लगा, शोडशाख्यनामक गण उसके ऊपर त्रिशूलोंका प्रहार करने लगे और शतशीर्ष नामक गण खड्गसे उसे आहत करने लगे ॥ ६६ ॥ श्रुतायुध, गदासे, विशोक मूसलसे, और बंधुदत्त शूलसे, उसके मस्तकके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त अन्यान्य पार्षदोंनेभी शूल, शक्ति, ऋष्टि और पट्टिशद्वारा उसपर प्रहार करना प्रारंभ किया, परन्तु वह मैनाक पर्वतकी समान किंचित्भी कंपायमान नहीं हुआ ॥ ६८ ॥ इसी समयमें भद्रकाली, उलूखला और

अनेक चूडा सम्पूर्ण उत्तम २ आयुधोंका प्रयोग करके तारकको आहत और विदारित करने लगे॥६९॥वह दोनों महाअसुर (महिष और तारक) प्रमथ और मातृमंडली द्वारा ताडित होकर किसी प्रकारसेभी क्षुभित न हुए और प्रत्युतगणोंको क्षोभित करने लगे ॥ ७० ॥ महिषने शीघ्रही गदाके प्रहारसे प्रमथोंको पराजित कर कुमार के निकट अपने आयुधोंको हाथमें लिये हुए आहीरहाथा ॥ ७१ ॥ कि, इतनेमें सुचक्राक्षनामक गणने दानवनंदन महिषको आताहुआ देखकर अत्यन्तही क्रोधित हो चक्रको उठाकर उसे रोक लिया, अर्थात् उसके सन्मुख युद्धार्थ उपस्थित हुआ ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार उस समय गदा और चक्र हाथमें लियेहुए दोनों ही परस्परमें शीघ्रता और विचित्रता तथा सुन्दरताके साथ युद्ध करने लगे ॥७३॥ महिषने गदा घुमाकर सुचक्राक्षके ऊपर फेंकी तब सुचक्राक्षने अपना चक्र उसके

तौताड्यमानौप्रमथौमातृभिश्चमहासुरैः ॥ नक्षोभंजग्मतुर्वीरौक्षोभयंतौगणानपि ॥७०॥महिषोगदयातूर्णंप्रहारैःप्रमथानपि ॥ पराजित्यप्रयात्येवकुमारं
प्रतिसायुधः ॥ ७१ ॥ तमापतंतंमहिषंसचक्राक्षोनिरीक्ष्यहि ॥ चक्रमुद्यम्यसंक्रुद्धोरुरोधदनुनंदनम् ॥ ७२ ॥ गदाचक्रांकितकरौगणासुरमहारथौ ॥
अयुध्येतांतदाब्रह्मँल्लघुचित्रंचसुष्ठुच ॥ ७३ ॥ गदांमुमोचमहिषःसमाविध्यगणायतु ॥ सुचक्राक्षोनिजंचक्रमुत्ससर्ज्जरथंप्रति ॥ ७४ ॥ गदांछित्वासुती
क्ष्णारंचक्रंमहिषमाद्रवत् ॥ ततउच्चुक्रुशुर्दैत्याहाहतोमहिषस्त्विति ॥ ७५ ॥ तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवद्बाणःप्रासमाविध्यवेगवान् ॥ जघानचक्रंरक्ताक्षंपंचमुष्टिश
तेनहि ॥ ७६ ॥ पंचबाहुशतेनापिसुचक्राक्षंबबंधसः ॥ बलवानपिबाणेननिष्प्रयत्नगतिःकृतः ॥ ७७ ॥ सुचक्राक्षंसचक्रंहिबद्धंबाणासुरेणहि ॥
दृष्ट्वाद्रवद्गदापाणिर्मकराक्षोमहाबलः ॥ ७८ ॥ गदयामूर्ध्निपातेननिजघानमहाबलः ॥ सचापितेनसंयुक्तोव्रीडायुक्तोमहामनाः ॥ ७९ ॥

रथके ऊपरको फेंका ॥ ७४ ॥ यह तीक्ष्ण धारसे शोभायमान चक्र गदाको काटकर महिषासुरकी ओरको चला यह देखकर दैत्यगण हाहाकार कर कहने और चिल्लाने लगे कि, हाय ! हाय ! महिषासुर मारागया ॥ ७५ ॥ बाणासुर इस शब्दको सुनकर पाशको हाथमें ले अतिवेगसे प्राशनामक अस्त्रको घुमाकर उस चक्रको आहत (रोक) करके पांचसौ मुक्कोंसे एकबारही रक्ताक्ष[1]को मारा ॥ ७६ ॥ और पंचसौबाहुद्वारा सुचक्राक्षको इसप्रकारसे मुसकें बांधकर बांधा कि, सुचक्राक्षके बलवान् होनेपरभी बाणासुर उसके उस बन्धनसे वह विना प्रयत्न गति होगया, अर्थात् शशकने लगा ॥ ७७ ॥ महाअसुर बाणने चक्रसहित सुचक्राक्षको बांधलिया है यह देखकर महाबलवान् मकराक्ष गदा हाथमें लेकर दौड़ा ॥७८॥ और बाणासुरके मस्तकपर गदाका प्रहार किया, उदारचित्त बाणासुर उस गदासे आहत

---

[1] "रक्ताक्ष" यह सुचक्राक्षकाही नामान्तर जानना, क्योंकि उसीका प्रस्ताव है।

होकर अत्यन्त लज्जित हुआ ॥७९॥ तब मकराक्ष संग्रामको छोड़कर शालिग्रामके निकटको गया, बाणासुरभी उसके द्वारा ताड़ितहोकर युद्धसे विमुख हुआ॥८०॥ हे देवर्षे ! यह देखकर सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना रणसे भागगई तब गणेश्वरके गण उस सम्पूर्ण दैत्यबलको भग्नकर ॥ ८१ ॥ अत्यन्त क्रोधितहो दानवोंके दलको दलन करके रणस्थलमें विराजमान हुए. तब बलवान् तारकासुर अपने बलको परास्त हुआ देखकर खड्ग हाथमें ले गणेश्वरोंकी ओरको दौड़ा॥८२॥ तब अपरिमित पराक्रम खड्गहस्त उस तारकासुरसे संग्राममें पराजित हो हंसमुख आदिक गणेश्वर और मातृगण भयभीत हो स्कंद (कार्त्तिकेय) भगवान्की शरणागत हुए ॥ ८३ ॥ महेश्वरात्मक कुमारने गणोंको भग्न और तारकासुरको तलवार लिये आता हुआ देखकर अपनी तीक्ष्ण शक्तिके प्रहारसे उसके हृदयको विदारित करदिया; मर्मस्थानमें आघातके लगनेसे तारक पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ८४ ॥ हे महर्षे ! भ्राता तारकके भग्नदर्प होनेपर महिष अत्यन्त भयभीत होकर संग्रामभूमिको छोड़ हिमालयको चलागया ॥ ८५ ॥ वीर तारकके निहत होनेपर और महिषके भयसे कातर हो हिमालयको चले जानेपर गणोंसे सम्पूर्ण अपराधी सेनाके अपराधी, परास्त होनेपर बाणासुर भयसे व्याकुलहो सागरमें चलागया ॥ ८६ ॥ इस ओर कुमाररणस्थलमें तारकको संहार शक्तिको लेकर शिखंडमंडित मोरपर चढ़कर शीघ्रतासे महिषासुरका विनाश करनेके निमित्त चले ॥ ८७ ॥ महिष श्रेष्ठ शक्ति हाथमें लिये मोरपर चढेहुए कार्त्तिकेयको पीछे २ आता हुआ देखकर कैलासको छोड़ क्रौंचपर्वतकी गुहामें चलागया ॥ ८८ ॥ भगवान् पिनाकपाणीनंदन गुह महिषके गुहामें प्रवेश करनेपर यत्नसहित प्रतीक्षा (राह) करनेलगे, और किसप्रकारसे

ससंग्रामंपरित्यज्यशालिग्राममुपाययौ ॥ बाणोपिमकराक्षेणताडितोभूत्पराङ्मुखः ॥ ८० ॥ अभज्यतबलंसर्वंदैत्यानांसुरतापस ॥ प्रभज्यतद्बलंसर्वंदैत्यानांतेगणेश्वराः ॥ ८१ ॥ तिष्ठंतस्तेभृशंक्रुद्धादैत्यान्व्यद्रावयन्रणे ॥ ततःस्वबलमीक्ष्यैवप्रभग्नंतारकोबली ॥ खड्गोद्यतकरोदैत्यःप्रदुद्रावगणेश्वरान् ॥ ॥ ८२ ॥ ततस्तुतेनाप्रतिमेनसासिनातेहंसवक्रप्रमुखागणेश्वराः ॥ तामातरश्चापिपराजितारणेस्कंदंभयार्त्ताःशरणंप्रपेदिरे ॥८३॥ भग्नान्गणान्वीक्ष्यमहेश्वरात्मजस्तंतारकंसासिनमापतंतम् ॥ दृष्ट्वैवशक्त्याहृदयेबिभेदसभिन्नमर्मान्यपतत्पृथिव्याम् ॥८४॥ तस्मिन्हतेभ्रातरिभग्नदर्पेभयातुरोभून्महिषोमहर्षे ॥ संत्यज्यसंग्रामशिरोदुरात्माजगामशैलंसहिमाचलंच ॥ ८५ ॥ बाणोऽथवीरेनिहतेऽथतारकेगतेहिमाद्रौमहिषेभयार्त्ते ॥ भयाद्विवेशोग्रमपांनिधानंगणैर्बलेविध्यतिसापराधे ॥ ८६ ॥ हत्वाकुमारोरणमूर्ध्नितारकंप्रगृह्यशक्तिंमहताजवेन ॥ मयूरमारुह्यशिखंडमंडितंययौनिहंतुंमहिषासुरंच ॥ ८७ ॥ सपृष्ठतःप्रेक्ष्यशिखंडिकेतनंसमापतंतंवरशक्तिपाणिनम् ॥ कैलासमुत्सृज्यहिमाचलंतथाक्रौंचंसमभ्येत्यगुहांविवेश ॥ ८८ ॥ दैत्यंप्रविष्टंसपिनाकिसूनुर्जुगोपयत्नाद्भगवान्गुहोपि ॥ स्वबंधुहंताभविताकथंत्वहंविचिंतयन्नेवततःस्थितोभूत् ॥ ८९ ॥

अपने बंधु (क्रौंच) की हत्या करूँगा इसप्रकारकी चिन्ता करते खड़े रहे ॥ ८९ ॥ कि, इसी अवसरमें पद्मयोनि ब्रह्माजीके भगवान् भव (विष्णु) और देवराज इन्द्रके सहित यहाँ आये, और इनसे बोले कि, शक्तिके प्रहारसे पर्वतके सहित महिषासुरको मारकर देवताओंका कार्य पूर्ण कीजिये ॥ ९० ॥ कार्तिकेय इन प्रियवचनोंको सुनकर हँसते २ देवताओंसे बोले कि, मैं किसप्रकारसे मातामहकेनप्ता अपने (ममेरा) भ्राता और जननीके भ्रातृपुत्र (भतीजे) को मारूँगा॥ ९१ ॥ वेदके जाननेवाले महर्षि लोक जिसका गान करते हैं, और जिसका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त पापी मनुष्यभी स्वर्गको जाता है, वही प्राचीन श्रुति इसप्रकार प्रचलित है ॥ ९२ ॥ गो, ब्राह्मण, वृद्ध, समृद्ध, बालक अपने बंधु सुदुष्टा स्त्री और आचार्य आदिक गुरु इनके अपराध करनेपरभी वध करना नहीं चाहिये ॥ ९३ ॥

ततोभ्यगात्पुष्करसंभवश्चहरोमुरारिस्त्रिदशेश्वरश्च ॥ अभ्येत्यचोचुर्महिषंसशैलंभिंदस्वशक्त्याकुरुदेवकार्यम् ॥ ९० ॥ तत्कार्तिकेयःप्रियमेवतथ्यं
श्रुत्वावचःप्राहसुरान्विहस्य ॥ कथंहिमातामहनप्तृकंचस्वभ्रातरंभ्रातृसुतंचमातुः ॥ ९१ ॥ एषाश्रुतिश्चापिपुरातनीकिलगायंतियांवेदविदोमहर्षयः ॥
कृत्वाचयस्यांमतमुत्तमायांस्वर्गंव्रजंतित्वतिपापिनोपि ॥९२॥ गांब्राह्मणंवृद्धमथापिचाढ्यंबालंस्वबंधुंललनांसुदुष्टाम् ॥ कृतापराधामपिनैववध्यादाचार्य
मुख्यागुरवस्तथैव ॥ ९३ ॥ एवंजानन्धर्ममग्र्यंसुरेंद्रानाहंवध्यांभ्रातरंमातुलेयम् ॥ यथादैत्योभिगमिष्यद्गुहातस्तथाशक्त्याघातयिष्यामिशत्रुम् ॥ ९४॥
श्रुत्वाकुमारवचनंभगवान्महर्षेकृत्वामतंस्वहृदयेगुहमाहशक्रः ॥ मत्तोभवान्नमतिमान्वदसेकिमित्थंवाक्यंशृणुष्वहरिणागदितंहिपूर्वम् ॥ ९५ ॥ नैकस्यार्थे
बहून्हन्यादितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ एकंहन्याद्बहूनांहिनपापीतेनजायते ॥ ९६ ॥ एतच्छ्रुत्वामयापूर्वंसमयस्तेनचाग्निज ॥ निहतोनमुचिःपूर्वंसोदरोपि
सहानुजः ॥ ९७ ॥ तस्माद्बहूनामर्थायसक्रौंचमहिषासुरम् ॥ घातयस्वपदाक्रम्यशक्त्यापावकदत्तया ॥ ९८ ॥

हे सुरेन्द्रो ! मैं इसप्रकारके श्रेष्ठ धर्मको विचारकर मातुलेय (ममेरेभाई) भ्राताकावध नहीं करसकता, दैत्य जैसेही गुहामेंसे निकलेगा वैसेही शक्तिके द्वारा उसका संहार करूँगा ॥ ९४ ॥ हे महर्षे ! भगवान् इन्द्र कुमारके यह वचन सुनकर अपने हृदयमें विचारकर उनसे बोले कि, हमारी अपेक्षा तुम अधिक बुद्धिमान् नहींहो, इसकारण फिर किस निमित्त ऐसा कहतेहो, भगवान् हरिने प्रथम जो कहाथा सो सुनो ॥ ९५ ॥ एकके निमित्त अनेकोंका वध न करै यही शास्त्रकी मीमांसा है, परन्तु बहुतके निमित्त एकका वध करनेसे उसको पापभागी होना नहीं होता ॥ ९६ ॥ हे अग्निनंदन ! मैंने इसप्रकारके वचन सुनकर पूर्वमें समय (उक्तसिद्धान्त) को स्थापन किया उसके अनुसार सहोदर और अनुजके सहित नमुचिको निहत कियाथा ॥ ९७ ॥ इसकारण तुम अनेकोंके निमित्त क्रौंचके सहित

महिषासुरको चरणोंकेद्वारा आक्रमण कर अग्निकी दी हुई शक्तिके प्रहारसे इसका संहार करो ॥ ९८ ॥ इन्द्रके यह वचन सुनकर कुमार लाल २ नेत्र कर क्रोधितहो
कंपायमान होते हुए इन्द्रसे कहने लगे ॥ ९९॥ कि, हे मूढ़ वृत्रहन् ! तुम्हारे शरीर अथवा भुजाओंमें ऐसा क्या बल है कि, जिससे हमारा निरादर करतेहो और
पृथ्वीके बीचमें तुम्हीं एक बुद्धिमान्‌हो ॥ १०० ॥ सहस्राक्ष (इन्द्र) ने उत्तर दिया कि, हे गुह ! मैं स्वतःही बलवानहूं तब गुह बोले कि, यदि तुम बलवान्‌हो
तो आओ २ हमारे साथ युद्ध करो ॥ १०१ ॥ इन्द्र बोले कि, हे कृत्तिकानंदन ! हम तुम दोनोंमेंसे जो अत्यन्त शीघ्र इस क्रौंच पर्वतकी परिक्रमा देसके वही बलवान्
माना जायगा ॥ १०२ ॥ स्कन्द उनके यह वचन सुनकर उसी समय मोरसे उत्तर पादचारी (पैदल) प्रदक्षिणा करनेके लिये शीघ्रतासे चले ॥ १०३॥ इन्द्रभी नागेन्द्र

पुरंदरवचःश्रुत्वाक्रोधादारक्तलोचनः ॥ कुमारःप्राहवचनंकंपमानःशतक्रतुम् ॥ ९९ ॥ मूढकिंतेबलंबाह्वोःशारीरंवापिवृत्रहन् ॥ येनाधिक्षिपसेमांत्वंभुवने
मतिमानसि ॥१००॥ तमुवाचसहस्राक्षःस्वतोहंबलवान्गुह ॥ तंगुहःप्राहएह्येहियुद्धयस्वबलवान्यदि ॥१०१॥ शक्रःप्राहाथबलवाञ्ज्ञायतेकृत्तिकासुत ॥
प्रदक्षिणंशीघ्रतरंयःकुर्यात्क्रौंचमेवहि ॥ १०२ ॥ श्रुत्वातद्वचनंस्कंदोमयूरंप्रोज्झ्यतत्क्षणात् ॥ प्रदक्षिणंपादचारीकर्त्तुंतूर्णंतरोभ्यगात् ॥ १०३ ॥ शक्रो
वतीर्यनागेंद्रात्पादेनाथप्रदक्षिणाम् ॥ कृत्वातस्थौगुहोभ्येत्यमूढकिंस्वित्स्थितोभवान् ॥ १०४ ॥ तमिंद्रःप्राहकौटिल्यान्मयापूर्वंप्रदक्षिणा ॥ कृता
ऽस्यतत्त्वयापूर्वंकुमारःशक्रमब्रवीत् ॥ १०५ ॥ मयापूर्वंमयापूर्वंविवदंतौपरस्परम् ॥ आगम्योचुर्महेशायब्रह्मणेमाधवायच ॥ १०६ ॥ अथोवाचहरिः
स्कंदंप्रष्टुमर्हसिपर्वतम् ॥ योऽयंवक्ष्यतिपूर्वंसभविष्यतिमहाबलः ॥ १०७ ॥ तन्माधववचःश्रुत्वाक्रौंचमभ्येत्यपावकिः ॥ पप्रच्छाद्रिमिदंकेनकृतंपूर्वं
प्रदक्षिणम् ॥ १०८ ॥ इत्येवमुक्तःक्रौंचस्तुप्राहपूर्वंमहामतिः ॥ चकारगोत्रभित्पूर्वंत्वयाकृतमथोगुह ॥ १०९ ॥

(ऐरावत) से उतरकर पादचारकी प्रदक्षिणा करके वहां स्थितहुए, स्कन्दभी प्रदक्षिणा कर वहां आकर उनसे बोले कि, हे मूढ ! तुम किसकारणसे खड़ेहुए हो॥ १०४ ॥इन्द्रने
कुटिलतासे उत्तर दिया कि, मैंने पहले तुमसे प्रदक्षिणा की है, पीछे तुमने प्रदक्षिणा की है कुमार बोले ॥ १०५ ॥ कि, नहीं मैंनेही प्रथम किया ऐसे मैंने प्रथम किया
यह कहकर दोनों परस्परमें विवाद करने लगे, इसके उपरान्त दोनोंही आकर महादेव और विष्णुजीके निकट आकर कहने लगे ॥१०६॥ विष्णु बोले कि, हे स्कंद !
तुम क्रौंचसे पूछो वह प्रथम जिसका नाम लेगा वही बलवान् होगा ॥ १०७ ॥ स्कन्द माधवके यह वचन सुनकर क्रौंचके निकट जाकर उससे पूछने लगे कि, हम
दोनोंमेंसे तुम्हारी प्रदक्षिणा प्रथम किसने की है ॥ १०८ ॥ महाबुद्धिमान् क्रौंचके इसप्रकार कहे जानेपर वह बोला कि, हे गुह ! पहले इन्द्रने मेरी प्रदक्षिणा की है

पीछे तुमने की है ॥ १०९ ॥ क्रौंचके इस प्रकार कहनेपर कुमार क्रोधमें भर असुरोंको कंपायमान करते हुए अपनी शक्तिके प्रहारसे इन्द्रदेवको कुटिलताके कारण महिषासुरके सहित कर क्रौंचको उसी समय विदारित करदिया ॥ ११० ॥ पुत्रके निहत होनेपर पर्वतराज (हिमालय) सुनाभ (मैनाक) वहाँ आये, इतनेमें रुद्र, इन्द्र, मरुत, अश्विनीकुमार और वसु इत्यादि देवता महिषासुरको मृतक देखकर स्वर्गको चले गये ॥ १११ ॥ इसके उपरान्त बलवान् कुमार (कार्त्तिकेय) अपने मातुल (मैनाक) को देखकर शक्तिको उठाकर संहार करनेके निमित्त सन्नद्ध हुए, इतनेमें चक्रधर विष्णु भगवानने दोनों भुजाओंको पकड़कर " गुरुहत्या न करना " यह कहकर उनको निवारण किया ॥ ११२ ॥ इसी अवसरमें हिमाचल आय सुनाभका हाथ पकडकर लेगये, इधर पन्नगशत्रु (गरुड़) पुत्रभी शीघ्रतासे भगवान्

एवंब्रुवंतंक्रौंचंसक्रोधात्प्रस्फुरिताधरः ॥ बिभेदशक्त्याकौटिल्यान्महिषेणसमंतदा ॥ ११० ॥ तस्मिन्हतेऽथतनयेबलवान्सुनाभोवेगेनभूमिधरपार्थिवजस्तथागात् ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्रमरुदश्विवसुप्रधानाजग्मुर्दिवंमहिषमीक्ष्यहतंगुहेन ॥ १११ ॥ स्वमातुलंवीक्ष्यबलीकुमारःशक्तिंसमुत्पाट्यनिहंतुकामः ॥ निवारितश्चक्रधरेणवेगादालिंग्यदोर्भ्यांगुरुरित्युदीर्य ॥ ११२ ॥ सुनाभमभ्येत्यहिमाचलस्तुप्रगृह्यहस्तेननिनायतंच ॥ हरिंकुमारंसशिखंडिनंनयन्वेगाद्दिवंपन्नगशत्रुपत्रः ॥ ११३ ॥ ततोगुहःप्राहहरिंसुरेशंमोहेननष्टोभगवन्विवेकी ॥ भ्रातामयामातुलेयोनिरस्तस्तस्मात्करिष्येस्वशरीरशोषम् ॥ ११४ ॥ तमाहविष्णुर्व्रजतीर्थवर्यंपृथूदकंपापहरंकुमार॥ स्नात्वौघवत्यांहरमीक्ष्यभक्त्याभविष्यसेसूर्यसमप्रभावः ॥ ११५ ॥ इत्येवमुक्तोहरिणाकुमारस्त्वभ्येत्यतीर्थंप्रसमीक्ष्यशंभुम् ॥ स्नात्वार्च्यदेवान्सरविप्रकाशोजगामशैलंसदनंहरस्य ॥ ११६ ॥ सुचक्रनेत्रोपिमहाश्रमेतपश्चचारशैलेपवनाशनस्तु ॥ आराधयामासवृषध्वजंतथाहरोपितुष्टोवरदोबभूव ॥ ११७ ॥

विष्णु और मेरे साथ कार्त्तिकेयको स्वर्गमें लेगये ॥ ११३ ॥ इसके उपरान्त गुह सुरेश्वर हरिसे बोले कि, हे भगवन् ! मोहके वशसे मेरा ज्ञान नष्ट होगया था इसी कारणसे मैंने अपने मातुलेय (ममेरे) भाईका संहार किया, इस निमित्त मैं अपने शरीरको तपके द्वारा सुखाऊंगा ॥ ११४ ॥ विष्णु भगवान् बोले कि, हे कुमार ! तुम पापके हरनेहारे श्रेष्ठ तीर्थ पृथूदकको चले जाओ, वहाँ अघवतीमें स्नान और भक्तिसहित महादेवजीका दर्शन करतेही सूर्यकी समान प्रकाशमान् होगे ॥ ११५ ॥ कुमार इस प्रकार हरि भगवान्से पृथूदकमें जाकर और महादेवजीको देखकर स्नान और देवताओंका पूजनकर सूर्यके समान प्रकाशमानहो महादेवजीके स्थान कैलास पर्वतको चले गये ॥ ११६ ॥ इसी समयमें सुचक्रनेत्र नामक गणेश्वर केवल वायुको भक्षण कर कैलास पर्वतपर तप करताहुआ महादेवजीकी आराधना करने

लगा, तब वह संतुष्ट होकर वर देनेके लिये उद्यत हुए ॥ ११७ ॥ तब सुचक्रनेत्र उनके निकट आयुधके अर्थ यह वर माँगा कि, क्रौंचान्तकारी कार्तिकेयके शत्रु बाणासुरके समान बलशाली भुजाओंको अपनी बाहुसे जिस प्रकार छेदन करसकूं ऐसा एक आयुध मुझे प्रदान कीजिये ॥ ११८ ॥ महादेवजी उससे बोले कि, तुम जाओ जो वर मांगा मैंने वही तुम्हें दिया, इस चक्रसेही बाणके उस अतिवर्द्धित बाहुवनको छेदन करोगे, इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ११९ ॥ त्रिपुरान्तक हरके ऐसा वर देनेपर गणेश्वर (सुचक्रनेत्र) कार्तिकेयके निकट जाकर उनके चरणोंमें जाकर पड़े, और प्रणामकर हर्षितहो उनसे महादेवजीकी कृपा कहसुनाई ॥ १२० ॥ त्रिनेत्रात्मजने शक्तिद्वारा विदारितकर महिषासुर और क्रौंचको जिस प्रकारसे वेधित किया था वह मैंने समस्त

देवात्सवव्रेवरमायुधार्थंक्रौंचांतकारीरिपुबाहुखंडम् ॥ छिन्द्यांयथात्वत्प्रतिमंकरेणबाणस्यतन्मेभगवान्ददातु ॥ ११८ ॥ तमाहशंभुर्व्रजदत्तमेतद्वरंहि चक्रस्यतवायुधस्य ॥ बाणस्यतद्बाहुवनंप्रवृद्धंसंछेत्स्यसेनात्रविचार्यमस्ति ॥ ११९ ॥ वरेप्रदत्तेत्रिपुरांतकेनगणेश्वरःस्कंदमुपाजगाम ॥ निपत्यपादौप्रतिवेद्यहृष्टोनिवेदयामासहरप्रसादम् ॥ १२० ॥ एवंतवोक्तंमहिषासुरस्यवधास्त्रिणेत्रात्मजशक्तिभेदात् ॥ क्रौंचस्यमृत्युःशरणागतानांपापापहंपुण्यविवर्धनंच ॥ १२१ ॥ इति श्रीवामनपुराणेमहिषासुरतारकवधोपाख्यानेक्रौंचभेदनंनामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ योसौमंत्रयतांप्राप्तोदैत्यानांशरताडितः ॥ सकेनवदनिर्भिन्नःशरेणदितिजेश्वरः ॥ १ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ आसीन्नृपोरघुकुलेरिपुजिन्महर्षेतस्यात्मजोगुणगणैकनिधिर्महात्मा ॥ शूरोरिसैन्यदमनोबलवान्सुहृष्टोविप्रांधदीनकृपणार्तिशमःपृथिव्याम् ॥ २ ॥ ऋतध्वजोनाममहामहीशःसगालवार्थेतुरगाधिरूढः ॥ पातालकेतुंनिजघानपृष्ठेबाणेनचंद्रार्धनिभेनवेगशः ॥ ३ ॥

तुम्हारे निकट वर्णन किया, इसके श्रवण करनेमें पापोंका नाश होकर पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ १२१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां महिषासुरतारकोपाख्यानक्रौंचभेदननामकअष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ नारदजी बोले कि, पुलस्त्यजी दैत्यगण जब अंधकासुरके निकट आकर परस्पर विचार करनेलगे थे कि, उस समय जो असुर बाणोंसे ताड़ित होकर आया था सो किसी मनुष्यके बाणके प्रहारसे भिन्न किया था, उसका नाम मुझसे कहिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, ॥ हे महर्षे ! रघुकुलमें एक रिपुजित नामके राजा थे उनके पुत्रका नाम ऋतध्वज था, वह ऋतध्वज गुणोंकी खान महात्मा, शूर, शत्रुसैन्य मर्दन, बलवान् और प्रहृष्ट स्वभाव और विप्र, अंध, दीन और कृपणोंके आर्त्तप्रशमन करते थे ॥ २ ॥ उस पृथ्वीपति ऋतध्वजने गालव मुनिके आश्रमकी रक्षाके निमित्त घोडेपर

चढ़कर अर्द्धचंद्राकारयुक्त बाणसे पातालकेतुकी पीठके ऊपर बड़े जोरसे आघात किया ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि, हे सत्तम ! किसकारण उन्होंने गालवका कार्य साधन किया जो कि, शीघ्रही दैत्यको बाणसे मारा ? ॥४॥ श्रीमान् पुलस्त्यजी बोले कि, पूर्वकालमें महर्षि गालवजी अपने आश्रममें बैठे हुए तपस्या कररहे थे कि, इसीसमयमें वह दैत्य पातालकेतु मूढ़ताके वशसे उनकी तपस्यामें विघ्न और समाधिको भंग करने लगा ॥ ५ ॥ यद्यपि महर्षि उसको अनायासही भस्मकर सकते थे परन्तु तपस्याके क्षय करनेके अभिलाषी नहीं हुए, उन्होंने केवल आकाशकी ओरको देखकर अत्यन्त ऊर्द्ध्व श्वास लिया ॥ ६ ॥ इतनेमें आकाशसे एक श्रेष्ठ घोड़ा पतित हुआ, और उसके साथही इस प्रकारकी आकाशवाणी हुई कि, यह बलवान् अश्व एक दिनमेंही सहस्र योजन चलेगा ॥ ७ ॥

नारद उवाच ॥ किमर्थंगालवस्यासौसाधयामाससत्तम ॥ येनासौपत्रिणातूर्णंनिजघाननृपात्मजः ॥ ४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ पुरातपस्तप्यतिगालवर्षौ
महाश्रमेस्वेसततंनिविष्टे ॥ पातालकेतुस्तपसोस्यविघ्नंकरोतिमौढ्यात्ससमाधिभंगम् ॥ ५ ॥ नचेष्यतेसौतपसोव्ययंहिशक्नोतिकर्तुंत्वथभस्मसात्तम् ॥
आकाशमीक्ष्याथसदीर्घमुष्णंमुमोचनिःश्वासमनुत्तमंहि ॥ ६ ॥ ततोंबराद्वाजिवरःपपातबभूववाणीत्वशरीरिणीच ॥ असौतुरंगोबलवान्क्रमेतत्वह्नासहस्रा
णितुयोजनानाम् ॥ ७ ॥ सतंप्रगृह्याश्ववरंतुरंगमृतध्वजंयोज्यतदात्तशस्त्रम् ॥ स्थितस्तपस्येवततोमहर्षिर्दैत्यंसमभ्येत्यनृपोबिभेद ॥ ८ ॥ नारदउवाच ॥
केनांबरतलाद्वाजीनिसृष्टोवदसुव्रत ॥ वाक्चस्यादेहिनीजातापरंकौतूहलंमम ॥९॥ पुलस्त्यउवाच ॥ विश्वावसुर्नाममहेंद्रगायनोगंधर्वराजोबलवान्यशस्वी ॥
निसृष्टवान्भूवलयेतुरंगमृतध्वजस्यैवसुतार्थमाशु॥१०॥नारदउवाच॥कोर्थोगंधर्वराजस्ययेनाप्रैषीन्महाजवम् ॥ राज्ञःकुवलयाश्वस्यकोर्थोनृपसुतस्यच ॥११॥

गालवजी उस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ ऋतध्वजको शस्त्रोंको धारण कराकर रक्षा करनेमें नियुक्त कर आप महर्षि गालव तपस्या करने लगे, और राजाने वहां विचरते २ शरके द्वारा उस सूकरको विद्ध करदिया ॥ ८ ॥ नारदजी बोले कि, हे सुव्रत ! किसने आकाशसे उस घोडेको भेजा था और किसकी वह असुरीली वाणी प्रगट हुई, इसके सुननेके निमित्त मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥९॥ पुलस्त्यजी बोले कि, विश्वावसु नामक इन्द्रके यहाँ गायक (गानकरनेवाला) बलवान् यशस्वी गंधर्वराजने अपनी कन्याकी रक्षाके निमित्त ऋतध्वजके अर्थ शीघ्रही इस अश्वको पृथ्वीपर भेजा ॥ १० ॥ नारदजी बोले कि; गंधर्वराज विश्वावसुका क्या प्रयोजन था जिससे महावेगवान् अश्वको वहां उनके पास भेजा और नृपनंदन राजा कुवलयाश्वका[1] उससे क्या अभिप्राय सिद्ध हुआ ॥ ११ ॥

---

[1] ऋतध्वजही उस अश्वके मिलनेपर कुवलयाश्व कहलाने लगे, कु पृथ्वी उसके वलय अर्थात मंडलमें विचरनेवाला अश्व है जिनका ऐसा अक्षरार्थ होता है ।

पुलस्त्यजी बोले कि, विश्वावसुकी मदालसाकी समान मदालसा नामकी कन्या[१] थी, जिस प्रकारसे मदालसा, शील, रूप, गुणशालिनी थी और त्रिलोकीके बीचमें सुभगा करके विख्यात थी उसी प्रकारसे रूपलावण्यकी खान और चंद्रमाकी कांतिकी समान हुई॥ १२॥ वह रूपवती मदालसा नंदनवनमें क्रीड़ा कररही थी, देवी रिपु पातालकेतुको देखकर उस कृशांगीको शीघ्रतासे हरण कर अपने स्थानपर ले आया, उसीके उद्धारके निमित्त यह घोड़ा भेजा गया ॥ १३ ॥ नृपनंदन देवारिको संहार कर उस वरांगनाको प्राप्त कर स्थित हुए, महेन्द्र जैसे शचीके सहित शोभायमान हुए थे उसी प्रकार यह राजकुमार भी उस मृगाक्षीके सहित विराजमान हुए थे ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि, इस प्रकारसे महाअसुर महिष और तारकके मरनेपर हिरण्याक्षके पुत्र बुद्धिमान् अंधकने फिर क्या किया था ? ॥ १५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, तारक और महिष यह दोनों संग्राममें मारे गये हैं यह देखकर दैत्यसेना विनाशक दुर्बुद्धि अंधक अत्यन्तही क्रोधित हुआ ॥ १६ ॥ और अपने थोड़ेसे परिवारके सहित परिघ हाथमें ले पातालसे आकर पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे विचरण करते हुए उसने मनोहर कंदराओंसे शोभित मंदराचलपर सखियोंमें बैठी हुई सर्वमंगला गिरिनंदिनी गौरीको देखा ॥ १८ ॥ वह उस सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिराजनंदिनीको वनमें विराजमान देखकर उसी समय कामबाणसे व्यथित होगया ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त वह मोहके वशीभूतहो कामसे अंधाहुआ मनहीमनमें कहने लगा कि, यह सर्वाङ्गसुन्दरी

पुलस्त्यउवाच ॥ विश्वावसोःशीलगुणोपपन्नाआसीत्पुरंध्रीसुभगात्रिलोके ॥ लावण्यराशिःशशिकांतितुल्यामदालसानाममदालसेव ॥ १२ ॥ तांनंदनो
देवरिपुस्तरस्वीसंक्रीडन्तींरूपवतींददर्श ॥ पातालकेतुस्तुजहारतन्वींतस्यार्थतःसोश्ववरःप्रदत्तः ॥ १३ ॥ हत्वारिंदैत्यंनृपतेस्तनूजोलब्ध्वावरोरूमपिव
स्थितोऽभूत् ॥ दृष्टोयथादेवपतिर्महेन्द्रःशच्यातथाराजसुतोमृगाक्ष्या ॥ १४ ॥ नारदउवाच ॥ एवंनिरस्तेमहिषेतारकेचमहासुरे ॥ हिरण्याक्षसुतोधीमा
न्किमाचेष्टतवैपुनः ॥ १५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तारकंनिहतंदृष्ट्वामहिषंचरणेन्धकः ॥ कोपंचक्रेसुदुर्बुद्धिर्दैत्यानांदेवसैन्यहा ॥ १६ ॥ ततःस्वल्पपरी
वारःप्रगृह्यपरिघंकरे ॥ निर्जगामाथपातालाद्विचचारचमेदिनीम् ॥ १७ ॥ ततोविचरतातेनमंदरेचारुकंदरे ॥ दृष्टागौरीचगिरिजासखीमध्यस्थिताशुभा ॥
॥ १८ ॥ ततोभूत्कामबाणार्त्तःसहसैवान्धकासुरः ॥ तांदृष्ट्वाचारुसर्वांगींगिरिराजसुतांवने ॥ १९ ॥ अथोवाचासुरोमूढोवचनंमन्मथांधकः ॥ कस्येयं
चारुसर्वांगीवनेचरतिसुंदरी ॥ २० ॥

---

[१] यहाँ मूलमें पुरन्ध्री शब्द दारा योग्य यौवनावस्थाविशिष्ट स्त्रीका बोधक होनेसे कन्या कहसक्ता है ।

ललना किसकी है और वनमें किस निमित्त विचरण कररही है ॥ २० ॥ यह यदि मेरे अंतःपुरकी स्त्री न हुई तो मेरे इस निष्फल जीवनको धारण करनेकाही फल क्या है ? ॥ २१ ॥ जो इस कृशाङ्गीके आलिङ्गनको मैंने नहीं पाया तो मेरे इस स्थिर जीवनको धिक्कार है ॥ २२ ॥ वही मेरा बंधु, वही मेरा मंत्री और वही मेरा सांपरायिक (अंतकालमें मदत देनेवाला) भ्राता है, जो इस श्यामवर्ण सुन्दर केशवाली मृगलोचनाको मेरे साथ मिलादे ॥ २३ ॥ दैत्येन्द्र अंधकके इसप्रकार कहनेपर बुद्धिमान् प्रह्लादजी कानोंमें अंगुली देकर शिरको कंपायमान करते हुए बोले ॥ २४ ॥ हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार न कहना कारण कि, यह जगत्की माता है, और साक्षात् त्रिलोकीनाथ त्रिशूलधारी शंकरकी भार्या है ॥ २५ ॥ तुम इस प्रकारकी दुर्बुद्धिके वशीभूत न होना, इससे तुम्हारे वंशका नाश होजायगा, यह तो पराई स्त्री है इस कारण रसातलमें निमग्न न होना ॥ २६ ॥ पराई स्त्रियोंका सम्पर्क जिस प्रकारसे साधुओंकी समाजमें निन्दनीय है, असाधुसमाजमेंभी वैसेही

इयंयदिभवेन्नैवममांतःपुरवासिनी ॥ तन्मदीयेनजीवेनक्रियतेनिष्फलेनकिम् ॥ २१ ॥ यदस्यास्तनुमध्यायानपरिष्वंगवानहम् ॥ अतोधिङ्ममरूपेण
किंस्थिरेणप्रयोजनम् ॥ २२ ॥ समेबंधुःससचिवःसभ्रातासांपरायिकः ॥ योमामसितकेशींतांयोजयेन्मृगलोचनाम् ॥ २३ ॥ इत्थंवदतिदैत्येंद्रेप्रह्लादो
बुद्धिसागरः ॥ पिधायकर्णौहस्ताभ्यांशिरःकंपंवचोऽब्रवीत् ॥२४॥ मामैवंवददैत्येंद्रजगतोजननीत्वियम् ॥ लोकनाथस्यभार्येयंशंकरस्यत्रिशूलिनः ॥
॥ २५ ॥ माकुरुष्वसुदुर्बुद्धिंसद्यःकुलविनाशनीम् ॥ भवतःपरदारेयंमानिमज्जरसातले ॥ २६ ॥ सत्सुकुत्सितमेवंहिअसत्स्वपिहिकुत्सितम् ॥
शत्रवस्तेप्रकुर्वंतुपरदारावगाहनम् ॥२७॥ किंनश्रुतोदैत्यनाथेहकिंनुगीतःश्लोकोगाधिनापार्थिवेन ॥ दृष्ट्वासैन्यंविप्रयातंप्रसक्तंपथ्यंतथ्यंसर्वलोकेहितंच ॥
॥२८॥ वरंप्राणास्त्याज्यानवतपरहिंसात्वभिमतावरंमौनंकार्यंनचवचनमुक्तंयदनृतम् ॥ वरंक्लीबैर्भाव्यंनचपरकलत्राभिगमनंवरंभिक्षार्थित्वंनचपरधनानां
हिहरणम् ॥ २९ ॥ सप्रह्लादवचःश्रुत्वाक्रोधांधोमदनातुरः ॥ इयंसाशत्रुजननीत्येवमुक्त्वाप्रदुद्रुवे ॥ ३० ॥

कुत्सित है, इस कारण तुम्हारे शत्रुहो उसमें प्रवृत्त हो ॥ २७ ॥ हे दैत्यपते ! राजा गाधिने इसके सम्बन्धमें जो श्लोक गान किये थे वह क्या तुमने नहीं सुने? उन्होंने अपनी सेनाको विमुख परसेनाको पीछे बढ़ी जातीहुई देखकर जो श्लोक कहे थे वह यथार्थ गुणोंसे शोभायमान हैं, उसी प्रकारसे सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी और अत्यन्त फलोंके देनेवाले हैं ॥ २८ ॥ उन्होंने कहाथा कि, अपने प्राणोंको त्याग करदे परन्तु विमुख शत्रुकी हिंसा नहीं करै, चाहैं मौनहुआ बैठा रहै पर असत्यवार्ता न कहै; चाहैं नपुंसक हुआ बैठा रहै परन्तु कभीं पराई स्त्रीमें रमण न करै, चाहैं भिक्षा मांगले परन्तु पराये धनका कभी हरण न करै ॥ २९ ॥ अंधक प्रह्लादजीके यह वचन सुनकर कामातुर और क्रोधसे अंधाहो " यह गौरी मेरे शत्रु कार्तिकेयकी माता है " यह कहकर उनके प्रति दौड़ा ॥ ३० ॥

यह देखकर अन्यान्य दैत्यभी यंत्रसे मुक्तहुए पत्थरकी समान उसके पीछे वेगसे चले, अविनाशी मूर्ति नन्दी हाथमें चक्रको लेकर उनको विद्रावित करने लगे ॥ ३१ ॥ यह, मय तारप्रभृति दैत्यगण नंदीके कुलिश (वज्र) प्राय चक्रद्वारा परास्त होकर शीघ्रही भयभीत हो दशोंदिशाओंको भाग गये ॥ ३२ ॥ अंधकासुर नंदीसे अपने असुरोंको परास्त हुआ देखकर अपने हाथमें परिघको उठाया और उसके प्रहारसे उसे पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ३३ ॥ नंदीको पतित और अंधकको आता हुआ देखकर गौरी उस दुरात्माके भयसे शतरूपा हुईं, अर्थात् सौ रूप धारण किये ॥ ३४ ॥ तब अंधकासुर देवियोंके बीचमें खड़ा होकर घूमनेलगा उस समय वनमें हथिनीकी समाजमें घूमतेहुए मतवाले हाथीकी समान उसकी शोभा हुई ॥ ३५ ॥ परन्तु वह उनके बीचमें किसीकोभी नहीं

ततोऽन्वधावन्दैतेयायंत्रमुक्ताइवोपलाः ॥ तानद्रावीद्बलान्नंदीचक्रोद्यतकरोऽव्ययः ॥३१॥ मयतारपुरोगास्तेवारिताद्रावितास्तथा ॥ कुलिशेनाहतास्तूर्णं
जग्मुर्भीतादिशोदश ॥ ३२ ॥ तानर्दितान्रणेदृष्ट्वानंदिनांधकदानवः ॥ परिघेणसमाहत्यपातयामासनंदिनम् ॥ ३३ ॥ शैलेयंपतितंदृष्ट्वाधावमानंतथां
धकम् ॥ शतरूपाभवद्गौरीभयात्तस्यदुरात्मनः ॥ ३४ ॥ ततःसदेवीगणमध्यसंस्थितःपरिभ्रमन्भातिमहासुरेंद्रः ॥ यथावनेमत्तकरीपरिभ्रमन्करेणुमध्ये
मदलोलदृष्टिः ॥ ३५ ॥ नपरिज्ञातवांस्तत्रकातुसागिरिकन्यका ॥ नात्राश्चर्यंनपश्यंतिचत्वारोऽमीसदैवहि ॥ ३६ ॥ नपश्यतीहजात्यन्धोरागांधोऽपि
नपश्यति ॥ नपश्यतिमदोन्मत्तोलोभाक्रांतोनपश्यति ॥ सोऽपश्यमानोगिरिजांपश्यन्नपितदान्धकः ॥ ३७ ॥ प्रधावन्नाददत्तासांयुवत्यइतिचिन्तयन् ॥
ततोदेव्यासदुष्टात्माशतावर्यानिराकृतः ॥ ३८ ॥ कुट्टितःप्रवरैःशस्त्रैर्निपपातमहीतले ॥ वीक्ष्यान्धकंनिपतितंशतरूपाविभावरी ॥ ३९ ॥ तस्मा
त्स्थानादपाक्रम्यमतान्तर्धानमंबिका ॥ पतितंचान्धकंदृष्ट्वादैत्यदानवयूथपाः ॥ ४० ॥ कुर्वन्तःसुमहाशब्दंप्राद्रवंतरणार्थिनः ॥ तेषामापततांशब्दं
श्रुत्वातस्थौगणेश्वरः ॥ ४१ ॥

जानसका कि, गौरी कौन हैं, इसमें कुछ आश्वर्य नहीं है कारण कि, संसारमें चारोंको नहीं दीखता ॥ ३६ ॥ प्रथम जो मनुष्य जन्मसे अंधा है वह कभी नहीं देखसकता, दूसरे रागान्ध, तीसरे मदान्ध और चौथा लोभसे अंधाभी नहीं देखसकता इसीकारणसे वह देवीको न देखता हुआ दृष्टिमान् होकरभी अंधकही रहा ॥ ३७ ॥ उन देवियोंके बीच युवती विचार शीघ्रतासे पकडनेके अर्थ दौडा, देवीने उस शतरूपसेही उस दुरात्माको निवारित किया ॥ ३८ ॥ और श्रेष्ठ अस्त्रोंके आघातसे उसे कुण्ठित (चूर २) किया, वह पीडित होकर पृथ्वीपर गिरपडा, तब शतरूपा गिरिनंदिनी अंधकको गिराहुआ देखकर ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें अन्तर्धान होगई, इसी अवसरमें अंधकको निपातित देखकर दैत्य और दानवोंके सेनापति गण ॥ ४० ॥ घोरशब्द करते हुए युद्ध करनेके निमित्त चले । गणेश्वर नन्दी उन

आते हुए दैत्योंके शब्दोंको सुनकर खडे रहे ॥ ४१ ॥ तब ऐसा बोध होताथा कि, जैसे बलवान् इन्द्र वज्रको लेकर क्रोधमें भरे हुए विराजमान हों, इसके उपरान्त गणेश्वरने मयके सहित दानव और दैत्योंको परास्त कर ॥ ४२ ॥ अम्बिकाके निकट जाकर उनका दर्शन कर पवित्रचरणोंमें प्रणाम किया तब देवी अपनी उन मूर्तियोंसे बोली कि, तुम सब अपनी इच्छानुसार जाओ ॥ ४३ ॥ और मनुष्योंसे पूजित होकर मर्त्यलोकमें विहार करती फिरो, समस्त बगीचे समस्त वनस्पति[1] और वृक्षोंमें तुम्हारा वास होगा तुम निर्भय होकर गमन करो शैलनंदिनीके इस प्रकार कहनेपर वह इनको प्रणामकर एक २ वहाँसे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ किन्नरोंसे स्तुतिकी जाकर सम्पूर्ण दिशाओंको चलीं गईं, इसीसमयमें अंधक संज्ञाको प्राप्त कर शैलनंदिनीको न देखकर मेरी सम्पूर्ण सेना परास्त हुई है यह देखकर पातालको

आदायवज्रंबलवान्मघवानिवकोपितः ॥ दानवान्समयान्वीक्ष्यपराजित्यगणेश्वरः ॥ ४२ ॥ समभ्येत्याम्बिकांदृष्ट्वाववंदेचरणौशुभौ ॥ देवीचतानिजामूर्तीस्त्वाहगच्छध्वमिच्छया ॥ ४३ ॥ विहरध्वंमहीपृष्ठेपूज्यमानानरैरिह ॥ वसतिर्भवतीनांचउद्यानेषुवनेषुच ॥ ४४ ॥ वनस्पतिषुवृक्षेषुगच्छध्वंविगतज्वराः ॥ तास्त्वेवमुक्ताःशैलेय्याप्रणिपत्यांबिकांक्रमात् ॥ ४५ ॥ दिक्षुसर्वासुजग्मुस्तास्तूयमानाश्चकिंनरैः ॥ अन्धकोपिस्मृतिंलब्ध्वाअपश्यन्नाद्रिनंदिनीम् ॥ स्वबलंनिर्जितंदृष्ट्वाततःपातालमाद्रवत् ॥ ४६ ॥ ततोदुरात्मासतदांधकोमुनेपातालमभ्येत्यदिवानभुंक्ते ॥ रात्रौनशेतेमदनेषुताडितोगौरींस्मरन्कामबलाभिपन्नः ॥४७॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेनवपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५९॥ नारदउवाच ॥ क्वगतःशंकरोह्यासीद्येनांबानंदिनासह ॥ अन्धकंयोधयामासएतन्मेवक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ यदावर्षसहस्रंतुमहामोहेस्थितोभवः ॥ तदाप्रभृतिनिस्तेजाहीनवीर्यःप्रदृश्यते ॥ २ ॥

चलागया ॥ ४६ ॥ हे मुने! दुरात्मा अंधक बाणोंके लगनेसे अत्यन्तही कातर और कामके बलसे पराभूत होगया था इसी कारण वह पातालमें जाय दिनमें भोजन न कर रात्रिमें निद्राको त्यागकर केवल गौरी (पार्वती) जीकेही ध्यानमें रत हुआ ॥ ४७ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां अंधकपराजयो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, उस समय देवाधिदेव शंकर कहां गयेथे जो अम्बिकाने स्वयं नंदीके साथ मिलकर अंधकसे युद्ध किया था सो कृपा कर आप कहिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, जिस दिनसे देवाधिदेव महादेवजी सहस्र वर्षतक महामोहमें स्थित हुए उसी समयसे निस्तेज और हीनवीर्य होगये ॥ २ ॥

---

[1] 'वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः।' ऐसा अमरकोशमें लिखा है इसका अर्थ यह है कि, पुष्प होकर जिसमें फल आवै उसे वानस्पत्य कहते हैं और विना पुष्पके जिसमें फल आवै उसे वनस्पति कहते हैं और शेष जो रहे उसे यहाँ वृक्षशब्दसे कहते हैं।

वह मतिमान् पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्थात् अनादिसिद्ध ज्ञानवान् महेश्वर स्वयं अपनेको निस्तेजित हुआ देखकर मनमें तप करनेके निमित्त विचार करते हुए ॥ ३ ॥ तब वह विभु व्यापक पुरुष शंकर देव एक प्रकारका महाव्रत अवलम्बन कर अम्बिका भवानीको धीरज दे नंदीको उनकी रक्षा करनेके निमित्त नियुक्त कर आप पृथ्वीपर विचरण करने लगे ॥ ४ ॥ और ग्रीवामें महामुद्रा अर्पण कर महाशंखके कुंडल पहन कमरमें महाशंखोंकी मेखला धारण कर ॥ ५ ॥ दाहिने हाथमें कपाल और वामहाथमें कमंडलु ले वृक्ष, अद्रि, शैल, शिखर, नदियोंके निकट जाकर एक दिनमात्र वास करने लगे ॥ ६ ॥ त्रिलोकीरूपस्थानमें विचरते हुए कभी २ मूलका आहार कभी २ जलभोजन और कभी २ वायुकोही भोजन कर क्रमानुसार उन्होंने नौ सहस्र वर्षतक व्यतीत किये ॥ ७ ॥ अनन्तर श्वासरोधके निमित्त मुखमें वीडा

स्वमात्मानंनिरीक्ष्याथनिस्तेजोंशंमहेश्वरः ॥ तपोर्थायतदाचक्रेमतिंमतिमतांवरः ॥ ३ ॥ समहाव्रतमुत्पाद्यसमाश्वस्यांबिकांविभुः ॥ शैलादिंस्थाप्यगोप्ता
रंविचचारमहीतले ॥ ४ ॥ महामुद्रार्प्पितग्रीवोमहाहिकृतकुंडलः ॥ धारयंश्चकटीदेशेमहाशंखस्यमेखलाम् ॥ ५ ॥ कपालंदक्षिणेहस्तेसव्येगृह्यकमं
डलुम् ॥ एकाहवासीवृक्षाद्रिशैलसानुनदीषुच ॥ ६ ॥ स्थानंत्रैलोक्यमास्थायमूलाहारोम्बुभोजनः ॥ वाय्वाहारस्तथातस्थौनववर्षशतंक्रमात् ॥ ७ ॥
ततोवीटांमुखेक्षिप्यनिरुच्छ्वासोभवेद्यदि ॥ विस्तृतेहिमवत्पृष्ठेरम्येसमशिलातले ॥ ८ ॥ ततोवीटांविदार्यैवकपालंपरमेष्ठिनः ॥ सार्चिष्मतीजटामध्या
न्निःक्षिताधरणीतले ॥ ९ ॥ वीटयातुपतत्याद्रिर्दारितःक्ष्मासमोभवत् ॥ यावत्तीर्थवरःपुण्यःकेदारइतिविश्रुतः ॥ १० ॥ ततोहरोवरंप्रादात्केदारे
वृषभध्वजः ॥ पुण्यवृद्धिकरंब्रह्मन्पापघ्नंमोक्षसाधनम् ॥ ११ ॥ येजलंतावकेतीर्थेपीत्वासंयमिनोनराः ॥ मधुमांसनिवृत्तास्तुब्रह्मचारिव्रतेस्थिताः ॥ १२ ॥
षण्मासाद्धारयिष्यंतिनिवृत्ताःपरपाकतः ॥ तेषांहृत्पंकजेष्वेवतल्लिंगंभविताध्रुवम् ॥ १३ ॥

(तृणपुञ्ज) निक्षेप कर उस विस्तारित हिमालयके पृष्ठभागपर रमणीक (एकसार) शिलातलके ऊपर समाधि लगाकर बैठगये ॥ ८ ॥ वही वीडा उनके कपालको विदारित कर प्रभाजालको विस्तार करता हुआ जटाबीचमें होकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ९ ॥ वीडाके गिरतेही अद्रि (हिमालय) विदारितहो पृथ्वीकी समान होगया और केदार नामसे परमपवित्र तीर्थरूपसे प्रगट हुआ ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! इसके उपरान्त वृषभध्वज हर केदारको वरदान देकर बोले कि, जो प्राणी जितेन्द्रिय, मधु, मांससे रहित, ब्रह्मचारीव्रतपरायण और दूसरेके पाकसे निवृत्त होकर अर्थात् परान्नको नहीं; ग्रहणकर तुम्हारे तीर्थमें पुण्यके बढानेवाले पापनाशक और मोक्ष देनेवाले जलको पान करके छैः मासतक प्राण धारण करेगा उसके हृदयकमलमें वह लिंग आविर्भूत होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

उस प्राणीके पापमें कभी रति (प्रीति) नहीं होगी, जो यहाँ पितरोंके निमित्त श्राद्ध करैगा वह अक्षय होगा इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ १४ ॥ इस स्थानपर स्नान दान, तपस्या, जप और होमादि जो कुछभी क्रिया कीजायगी उसको अक्षय फलकी प्राप्ति होगी, वहाँ मरनेसे उसको फिर संसारमें आना नहीं होगा ॥ १५ ॥ महादेवजीसे इस प्रकारका वर पाकर वह केदारतीर्थ सब देवताओंसे अधिक महिमाको प्राप्त करके साक्षात् उनके वचनोंके अनुसार लोकोंको पवित्र करनेलगा॥ ॥ १६ ॥ महादेवजी इस प्रकारसे केदारनाथको वर देकर शीघ्रही सर्वपापनाशिनी भानुनंदिनी (यमुनाजी) में स्नान करनेके निमित्त गये ॥ १७ ॥ वहाँ स्नान करनेके निमित्त उतरकर गहरे जलमें निमग्नहो द्रुपदा नाम्नी गायत्रीका जप करने लगे ॥ १८ ॥ हे कलिप्रिय ! भगवान् शंकरके इसप्रकार प्रवाहवती यमुनाजीके गहरे जलमें निमग्न होनेपर डेढ वर्षतक समय बिताया, परन्तु उन्मग्न न हुए ॥ १९ ॥ उसी अवसरमें सम्पूर्ण लोक और सम्पूर्ण सागर विचलित होगये, नक्षत्र और तारे इत्यादि पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २० ॥ इन्द्र इत्यादि देवता आसनसे प्रचलित होगये, परमर्षिगण लोकोंका कल्याण हो यह कहकर जप करने लगे॥ ॥ २१ ॥ देवलोकमें देवतागण क्षुभित होकर इसका कारण पूछनेके निमित्त ब्रह्माजीके निकट गये और उनसे बोले कि, किस कारण सम्पूर्णलोक क्षुभित और संशययुक्त हुए हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, मैं इस कारणको नहीं जानता, इस कारण चक्रगदाके धारण करनेवाले विष्णु भगवान्के निकट इस कारणको पूछनेके निमित्त चलो ॥ २३ ॥ पितामह ब्रह्माजीकी इसप्रकार आज्ञा पाकर इन्द्र इत्यादि देवता उनको आगे कर मुरारिके निकटको गये ॥२४॥ नारदजी बोले कि,

नचास्यपापेषुरतिर्भविष्यतिकदाचन ॥ पितृणामक्षयंश्राद्धंभविष्यतिनसंशयः ॥१४॥ स्नानदानतपांसीहहोमजप्यादिकाक्रियाः ॥ भविष्यंत्यक्षयानृणां मृतानामपुनर्भवः ॥ १५ ॥ एतद्वरंहरात्तीर्थंप्राप्यमुष्णांतिदेवताः ॥ पुनातिपुंसांकेदारस्त्रिणेत्रवचनंयथा ॥ १६ ॥ केदारायवरंदत्त्वाजगामत्वरितोहरः ॥ स्नातुंभानुसुतांदेवींकालिंदींपापनाशिनीम् ॥ १७ ॥ अवतीर्यततःस्नातुंनिमग्नश्चमहांभसि ॥ द्रुपदांनामगायत्रींजजापांतर्जलेहरः ॥ १८ ॥ निमग्नेशंकरेदेव्यांसरस्वत्यांकलिप्रिय ॥ सार्धःसंवत्सरोयातोनचोन्मज्जत्तदेश्वरः ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नंतरेब्रह्माभुवनान्यर्णवास्तथा ॥ चेलुःपेतुर्धरण्यांचनक्षत्रंतारकैः सह ॥ २० ॥ आसनेभ्यःप्रचलितादेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ स्वस्त्यस्तुलोकेभ्यइतिजपंतःपरमर्षयः ॥ २१ ॥ क्षुब्धाश्चदेवालोकेषुब्रह्माणंप्रष्टुमागताः ॥ दृष्ट्वोचुःकिमिदंलोकाःक्षुब्धाःसंशयमागताः॥ २२ ॥ तानाहपद्मसंभूतोनतद्वेद्मिचकारणम् ॥ तदागच्छतवोयुक्तंप्रष्टुंचक्रगदाधरम् ॥ २३ ॥ पितामहेनैवमुक्तादेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ पितामहंपुरस्कृत्यमुरारिसदनंगताः ॥ २४ ॥ नारदउवाच ॥ कोसौमुरारिर्देवर्षेदेवोयक्षोनुकिंनरः ॥ दैत्योवाराक्षसोवापिपार्थिवोवातदुच्यताम् ॥ २५ ॥

हे देवर्षे ! वह मुरारि कौन हैं, देवता, यक्ष, किन्नर, राक्षस दैत्य अथवा पार्थिव (राजा) हैं सो आप कहिये ॥ २५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, जो रज, सत्व, गुणमय और तमोमय जो निर्गुण सर्वगत और सर्वव्यापी हैं वही मधुसूदन मुरनामक दानवको मारनेसे मुरारि नामसे विख्यात हैं ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि, वह जो मुर नामसे विख्यात हैं वह किसके पुत्र और किस प्रकारसे संग्राममें विष्णुजीके द्वारा निहत हुआथा सो आप मेरे निकट कहिये ॥ २७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, मैं इस पुण्यदायक पापविनाशक इस विचित्र आख्यानको वर्णन करता हूं, जिसमें देवता और असुरोंका विनाश हुआ है तुम श्रवण करो ॥ २८ ॥ कश्यपके औरसपुत्र दनुके गर्भमें मुर नामके दानवने जन्म लिया, उसने सम्पूर्ण देवताओंके द्वारा दितिपुत्रोंको रणमें पराजित हुए देखा ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त उसने मृत्युके भयसे व्याकुलहो बहुत वर्षतक तपस्या कर अपराजित (सर्वनियन्ता) ब्रह्माजीकी आराधना की ॥ ३० ॥ तब ब्रह्माजी संतुष्टहो वर देनेके

पुलस्त्यउवाच॥योसौरजःसत्त्वमयोगुणवांश्चतमोमयः ॥ निर्गुणःसर्वगोव्यापीमुरारिर्मधुसूदनः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ योऽसौसुरइतिख्यातःकस्यपुत्रः
सगीयते ॥ कथंचनिहतःसंख्येविष्णुनातद्वदस्वमे ॥ २७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांकथयिष्यामिसुरासुरनिबर्हणम् ॥ विचित्रमिदमाख्यानंपुण्यदं
पापनाशनम् ॥ २८ ॥ कश्यपस्यौरसःपुत्रोमुरोनामदनूद्भवः ॥ सददर्शरणेभग्नान्दितिपुत्रान्सुरोत्तमैः ॥ २९ ॥ ततःसमरणाद्भीतस्तप्त्वावर्षगणान्बहून् ॥
आराधयामासविभुंब्रह्माणमपराजितम् ॥ ३० ॥ ततोऽस्यतुष्टोवरदःप्राहवत्सवरंवृणु ॥ सचवव्रेवरंदैत्योवरमेवंपितामहात् ॥ ३१ ॥ यंयंकरतलेनाहंस्पृशे
यंसमरेविभो ॥ ससमद्धस्तसंस्पृष्टस्त्वमरोपिम्रियेदज ॥ ३२ ॥ बाढमित्याहभगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ततोऽभ्यागान्महातेजामुरःसुरगिरिंबली ॥
॥ ३३ ॥ समेत्याह्वयतेदेवंयक्षंकिन्नरमेववा ॥ नकश्चिद्युयुधेतेनसमंदैत्येननारद ॥ ३४ ॥ ततोऽमरावतींक्रुद्धःसगत्वाशक्रमाह्वयत् ॥ नानेनसहयोद्धुंवैम
तिंचक्रेपुरंदरः ॥ ३५ ॥ ततःसकरमुद्यम्यप्रविवेशामरावतीम् ॥ प्रविशंतंनतंकश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत् ॥ ३६ ॥

निमित्त सन्नद्ध हुए, और बोले कि, हे वत्स ! वर मांगो ! तब उसने पितामहसे यह प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ कि, मैं संग्राममें अपने हाथसे जिस मनुष्यको स्पर्श करूं, हे प्रभो ! हे अज ! वह अमर होनेपरभी मेरे हाथके स्पर्शसे मृत्युको प्राप्त होजाय ॥ ३२ ॥ लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी "अच्छा यही होगा" यह कह कर चले गये, महातेजस्वी बलवान् मुर वरको पाकर देवताओंके निकट सुमेरु पर्वतपर आया ॥ ३३ ॥ और आकर देवता यक्ष किन्नरोंको युद्ध करनेके निमित्त बुलाने लगा, हे नारद ! किसीनेभी उसके साथ युद्ध नहीं किया ॥ ३४ ॥ तब उसने क्रोधितहो अमरावतीमें जाकर इन्द्रको युद्धके निमित्त बुलाया, परन्तु इन्द्रने उसके साथ युद्ध करना न चाहा ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त उसने हाथको उठाकर अमरावतीमें प्रवेश किया, प्रवेश करनेके समयमें कोईभी उसको निवारण

करनेको समर्थ न हुआ ॥ ३६ ॥ वह इन्द्रके निकट जाकर बोला कि, हे सहस्राक्ष ! मेरे साथ युद्ध करो नहीं तो स्वर्गको त्यागकर चलेजाओ ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुरके इसप्रकार कहनेपर इन्द्र स्वर्गराज्यको छोडकर पृथ्वीपर विचरण करने लगे ॥ ३८ ॥ तब मुरने इन्द्रके ऐरावत हाथी और वज्रको हरण किया, इन्द्रने पुत्र और कुटुम्ब तथा देवताओंके सहित ॥ ३९ ॥ कालिन्दी (यमुना) के दक्षिण किनारेमें नगरकी प्रतिष्ठा की, मुर स्वर्गमें रहकर महाभोग भोगने लगा ॥ ४० ॥ मय और तार इत्यादि रौद्रप्रकृति दानव मुरकी शरण होकर स्वर्गमें सुकृती (पुण्यवानों) की समान आनंद भोगने लगे ॥ ४१ ॥ एक समय महाअसुर मुर स्वर्गसे पृथ्वीपर उतरा और इकला ऐरावत हाथीपर चढ़ाहुआ सरयूनदीके किनारेपर पहुँचा ॥ ४२ ॥ वहाँ जाकर देखा कि, सूर्यवंशके वीर राजा रघु यज्ञ कररहे हैं

सगत्वाशक्रसदनंप्रोवाचेंद्रंमुरस्तदा ॥ देहियुद्धंसहस्राक्षनोचेत्स्वर्गंपरित्यज ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्तोदैत्येनब्रह्मन्हरिहयस्तदा ॥ स्वर्गराज्यंपरित्यज्य
भूचरःसमजायत ॥ ३८ ॥ ततोगजेंद्रकुलिशौहृतौशक्रस्यशत्रुणा ॥ सकलत्रोमहातेजादेवैःसहसुतेनच ॥ ३९ ॥ कालिंद्यादक्षिणेकूलेनिविवेशपुरंहरिः ॥
मुरश्चापिमहाभोगान्बुभुजेस्वर्गसंस्थितः ॥ ४० ॥ दानवाश्चापरेरौद्रामयतारपुरोगमाः ॥ मुरमासाद्यमोद्यंतेस्वर्गेसुकृतिनोयथा ॥ ४१ ॥ सकदाचिन्मही
पृष्ठंसमायातोमहासुरः ॥ एकाकीकुंजरारूढःसरयूंनिम्नगांप्रति ॥ ४२ ॥ ससरय्वास्तटेवीरंराजानंसूर्यवंशजम् ॥ ददृशेरघुनामानंदीक्षितंयज्ञकर्मणि ॥
॥ ४३ ॥ तमुपेत्याब्रवीद्दैत्योयुद्धंमेदीयतामिति ॥ नोचेन्निवर्ततांयज्ञोनेष्टव्यादेवतास्त्वया ॥ ४४ ॥ तमुपेत्यमहातेजामित्रावरुणसंभवः ॥ प्रोवाचबुद्धि
मान्ब्रह्मन्वसिष्ठस्तपतांवरः ॥ ४५ ॥ किंतेजितैर्नरैर्दैत्यअजिताननुशासय ॥ प्रहर्तुमिच्छसियदितंनिवारयचांतकम् ॥ ४६ ॥ सबलीशासनंतैवैनकरोति
महासुर ॥ तस्मिञ्जितेहिविजितंसर्वमन्यच्चभूतलम् ॥ ४७ ॥ सतद्वसिष्ठवचनंनिशम्यदनुपुंगवः ॥ जगामधर्मराजानंविजेतुंदंडपाणिनम् ॥ ४८ ॥ तमायां
तंयमःश्रुत्वामत्वावध्यंचसंयुगे ॥ ससमारुह्यमहिषंकेशवांतिकमागमत् ॥ ४९ ॥

॥ ४३ ॥ दैत्य उनके निकट जाकर बोला कि, हमसे युद्ध करो या यज्ञ करना छोड़दो देवताओंकी पूजा नहीं करसकोगे ॥ ४४ ॥ महातेजस्वी महाबुद्धिमान् तपस्वी श्रेष्ठ मित्रावरुणनंदन वसिष्ठजी उसके समीप जाकर बोले कि ॥ ४५ ॥ हे दैत्य ! मनुष्य तुमसे पराजित हुए हैं, इसकारण उनको जय करनेसे क्या सिद्ध होगा, जो अजित हैं उनसे युद्ध करो यदि युद्ध करनेकी इच्छा है तो यमराजको निरस्त करो ॥ ४६ ॥ यम अत्यन्त बलवान् हैं वह तुम्हारे शासन (आज्ञा) को पालन नहीं करेगा, उसके जय करनेसेही तुम अन्य सम्पूर्णको जीतलोगे ॥ ४७ ॥ दनुपुंगव मुर उनके वचन सुनकर दंडपाणी यमराजको जय करनेके निमित्त चला ॥ ४८ ॥ यम उसको आता हुआ सुनकर " संग्राममें यह वध नहीं होसकेगा " यह विचारकर महिषपर चढ भगवान् केशवके निकट गये ॥ ४९ ॥

उनके सन्मुख जा प्रणामकर उनसे मुरके अत्याचार कह सुनाये, वह बोले कि, तुम जाओ, इसी समय महाअसुरको हमारे निकट भेजदो ॥ ५० ॥ धर्मराज भगवान् वासुदेवके वचनके अनुसार शीघ्रता कर वहाँसे चला, इसी समयमें मुर उनकी संयमनगरीमें आया ॥ ५१ ॥ उनके आतेही यमराज उनसे बोले कि, हे मुरो[1] ! तुम क्या करना चाहतेहो सो कहो, हे दानवेश्वर ! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूंगा तुम आज्ञा करो॥५२॥ असुर बोला कि, हे यम ! तुम प्रजाओंको संयमन (नाश) मत करो नहीं तो आज मैं तुम्हारे मस्तकको छेदन कर पृथ्वीपर पातित करूंगा ॥ ५३ ॥ तब धर्मराज (यम) उनसे बोले कि, यदि तुम मेरे संयमन अर्थात् प्रजा संहारसे निरोध (रोक) करके अपनी आज्ञामें रखना चाहतेहो तो जो हरसेभी अधिक मेरा रक्षा करनेवाला है उसको संयमन (नियमन- आज्ञाकारी) करो,

समेत्यचाभिवाद्यैनंप्रोवाचमुरचेष्टितम् ॥ सचाहगच्छमामद्यप्रेषयस्वमहासुरम् ॥ ५० ॥ सवासुदेववचनंश्रुत्वाचत्वरयान्वितः ॥ एतस्मिन्नंतरेदैत्यः
संप्राप्तोनगरींमुरः ॥ ५१ ॥ तमागतंयमःप्राहकिंमुरेकर्त्तुमिच्छसि ॥ वदस्ववचनंकर्त्तात्वदीयंदानवेश्वर ॥ ५२ ॥ मुरउवाच ॥ यमप्रजासंयमनान्निवृत्ति
कर्त्तुमर्हसि ॥ नोचेत्तवाद्यच्छित्वाहंमूर्धानंपातयेभुवि ॥ ५३ ॥ तमाहधर्मराड्वाक्यंयादिसंयमसेमहान् ॥ मुरोनित्यंगोपितास्तिकरिष्येवचनंतव ॥५४॥
मुरस्तमाहभवतःकोऽधिकस्तंवदस्वमे ॥ अहमेनंपराजित्यवारयामिनसंशयः ॥ ५५ ॥ यमस्तंप्राहमेविष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः ॥ श्वेतद्वीपनिवासीयःसमां
संयमतेऽव्ययः ॥ ५६ ॥ तमाहदैत्यशार्दूलःक्कासौवसतिकीर्तय ॥ स्वयंतत्रगमिष्यामितस्यसंयमनोद्यतः ॥ ५७ ॥ तमुवाचयमोगच्छक्षीरोदंनामसा
गरम् ॥ तत्रास्तेभगवान्विष्णुर्लोकनाथोजगन्मयः ॥ ५८ ॥ मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्यप्राहगच्छामिकेशवम् ॥ किंतुत्वयानतावद्धिसंयम्याधर्ममानवाः॥५९॥
सप्राहगच्छत्वत्तोवाप्रवर्त्तिष्येजयंप्रति ॥ संयंतुवायथावापिततोयुक्तंसमाचरे ॥ ६० ॥

तब मैं नित्य तुम्हारे वचनोंको अर्थात् आज्ञाको करूंगा ॥ ५४ ॥ मुर बोला कि, तुम्हारी अपेक्षा कौन अधिक बलवान् है सो मुझसे कहो मैं उसको पराजित करके हटाऊँगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ यम उनसे बोले कि, जो श्वेतद्वीपके निवासी हैं, वही चक्रगदाधर भगवान् अविनाशी विष्णु हमारा संयमन करते हैं ॥ ५६ ॥ दैत्यशार्दूल मुर यमराजसे बोले कि,कहाँ उसका निवास है सो कहिये मैं स्वयं उसके संयममें उद्यतहो वहाँ जाऊँगा॥५७॥यमराज बोले कि,तुम क्षीरोद नामक सागरको जाओ, लोकनाथ, जगन्मय, विष्णु वहाँ विराजमान हैं ॥५८॥ मुर यह वचन सुनकर बोले कि, मैं केशवके निकटको जाता हूं हे धर्मराज ! तुम तबतक मनुष्योंको संयमन न करना ॥ ५९ ॥ तब उस यमने कहा जावो मैं जयकेलिये तुमसे प्रवृत्त हूंगा, तुम संयमनका उपाय करो हमभी जैसा उचितहो वैसा करूंगा ॥ ६० ॥

---

[1] यहां मुरो यह सम्बोधन मुरशब्दका अशुद्ध होता है तथापि भयभीतकी उक्तिमें अशुद्धि होनाभी गुणही समझा गया है अतः दोष नहीं है।

यह वचन सुनकर वह क्षीरोदसागरको चलागया जहाँ चतुर्मूर्ति नारायण शेषनागरूपी पलंगपर शयन कररहेहैं॥ ६१ ॥ नारदजी बोले कि,विष्णु एकही हैं,फिर किसकारण उनको चतुर्मूर्ति कहा,वह सर्वात्माभी(सर्वान्तरात्मा) और अव्यक्तहैं तब किसप्रकार चतूर्मुर्ति हुए सो आप कहिये ॥ ६२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हेमहामुने ! जगन्नाथ जनार्दनके सर्वज्ञ और अव्यक्त होनेपरभी जिसप्रकारसे चतुर्मूर्ति हुए थे उसको सुनिये॥ ६ ३॥ वासुदेव नामकपर पद अप्रतर्क्य,अनिर्द्दिश्य,शुक्ल,शान्तमूर्ति अव्यक्तहो द्वादशपत्र कहकर विख्यातहैं ॥ ६४ ॥ नारदजी बोले कि,शुक्ल,शान्त,अप्रतर्क्य और अनिंदित यह सब किस प्रकारसे हैं, हेमहामुने ! यह उनके द्वादशपत्रहैं?॥ ६५॥ पुलस्त्यजी बोले कि पितामहके कहेहुए इस गुह्य आख्यानको श्रवण करो सनत्कुमारजीने इसे ब्रह्माजीसे सुनकर हमसे कहा था ॥६६॥ नारदजी बोले कि, वह सनत्कुमारजी कौन हैं, ब्रह्माजीने स्वयं जिससे कहा था जिन्होंने आपके निकट कहाथा कृपा करके सो आप मुझसे कहिये ॥६७॥ पुलस्त्यजी बोले कि, धर्मकी भार्या अहिंसा थी, उसके गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न हुए हे मुनिशार्दूल ! वह सभी योगशास्त्रके विचारवान् थे॥६८॥ इनमें सबसे बड़े सनत्कुमार, दूसरे सनातन, तीसरे सनक, और चौथेका नाम सनन्दन था ॥६९॥ उस समय सनत्कुमारने सांख्यवेत्ता कपिल, वोढ़, आसुरि, और पञ्चशिख नामक श्रेष्ठ २ तपोनिधियोंको योगजिज्ञासु देखकर अपने छोटे सनातनको उन्हैं योग उपदेश करने के अर्थ आसन ग्रहण करा आप स्वयं विशेष योगजिज्ञासु हो ब्रह्माजीके निकट चले ॥७०॥ सनत्कुमारके ज्येष्ठ होनेपरभी छोटेको आसन ग्रहण देखनेसे यह व्यवहार सिद्ध हुआ कि, बड़ेसेभी विशिष्ट ज्ञानवान् छोटेको आसन दे और उन सनातनमें कपिलादिकोंको मौन गुह्य और महायोगका उपदेश दिया ॥ ७१ ॥

इत्येवमुक्त्वावचनंदुग्धाब्धिमगमन्मुरः ॥ यत्रास्तेशेषपर्यंकेचतुर्मूर्तिर्जनार्द्दनः ॥ ६१ ॥ नारदउवाच ॥ चतुर्मूर्त्तिःकथंविष्णुरेकएवनिगद्यते ॥ सर्वगत्वा
त्कथमपिअव्यक्तत्वाच्चतद्वद ॥ ६२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ अव्यक्तःसर्वगोऽपीहएकएवमहामुने ॥ चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथोयथाब्रह्मंस्तथाशृणु ॥ ६३॥ अप्रत
र्क्यमनिर्देश्यंशुक्लंशांतंपरंपदम् ॥ वासुदेवाख्यमव्यक्तंस्मृतंद्वादशपत्रकम् ॥ ६४ ॥ नारदउवाच ॥ कथंशुक्लंकथंशांतमप्रतर्क्यमनिंदितम् ॥ कान्यस्य
द्वादशोक्तानिपत्रकाणिमहामुने ॥ ६५ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुष्ववचनंगुह्यंपरमेष्ठिप्रभाषितम् ॥ श्रुतंसनत्कुमारेणतेनाख्यातंचयन्मम ॥ ६६ ॥
नारदउवाच ॥ कोऽयंसनत्कुमारेतियथोक्तंब्रह्मणःस्वयम् ॥ तवापितेनगदितंवदमामनुपूर्वशः ॥ ६७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ धर्मस्यभार्याहिंसाख्यातस्यां
पुत्रचतुष्टयम् ॥ संजातंमुनिशार्दूलयोगशास्त्रविचारकम् ॥ ६८ ॥ ज्येष्ठःसनत्कुमारोभूद्द्वितीयश्चसनातनः ॥ तृतीयःसनकोनामचतुर्थश्चसनंदनः ॥६९॥
सांख्यवेत्तारमपरंकपिलंवोढुमासुरिम् ॥ दृष्ट्वापंचशिखंश्रेष्ठंयोगयुक्तंतपोनिधिम् ॥ ७० ॥ ततस्तस्यासनंदद्याज्ज्यायानपिकनीयसे ॥ मौनंगुह्यंमहायोगं
कपिलादीनुवाचसः ॥ ७१ ॥

स्वयं सनत्कुमारजीने कमलोद्भव ब्रह्माजीके निकट जाकर योगविज्ञानको पूछा, तब प्रजापति उनसे बोले ॥ ७२ ॥ हे पुत्र ! जो मेरे वचन सुनतेहो तो उसीके अनुसार
कार्य करोगे तो मैं तुमको योगविज्ञानका उपदेश दूँगा कारण कि, तुम सांख्यविज्ञानयुक्त हो ॥ ७३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि, हे देवेश ! मैं आपका पुत्रहूँ इस कारण
आपका शिष्य हुआ, हे विभो ! हे पितामह ! शिष्य और पुत्र इन दोनोंमें कुछ भेद नहीं है॥ ७४ ॥ब्रह्माजी बोले कि, हे धर्मनंदन ! धर्म, कर्म, समायोगके स्थानमें शिष्य
और पुत्र दोनोंमें जो विशेष है वह कहता हूँ सुनो॥ ७५॥पुन्नाम नरकसे उद्धार करता है, इसीसे पुत्र नाम हुआ है, शिष्य शेषपापोंको हरण करता है इस कारण शिष्य नाम
कीर्तित हुआ, इस प्रकारसे वैदिक श्रुति प्रचलित है॥ ७६ ॥सनत्कुमारजी बोले हे देव ! पुत्र जिससे उद्धार करता है वह पुंनाम नरक कैसा है ! और पाप किसको कहते हैं

सनत्कुमारश्चाभ्येत्यब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥ अपृच्छद्योगविज्ञानंतमुवाचप्रजापतिः ॥ ७२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथयिष्यामितेसाध्यंयदिपुत्रेतिमेवचः ॥
शृणोषिकुरुषेतच्चज्ञानंसांख्ययुतोभवान् ॥ ७३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुत्रएवास्मिदेवेशयतःशिष्योस्म्यहंविभो ॥ नविशेषोऽस्तिपुत्रस्यशिष्यस्यचपि
तामह ॥७४॥ ब्रह्मोवाच ॥ विशेषःशिष्यपुत्राभ्यांविद्यतेधर्मनंदन ॥ धर्मकर्मसमायोगेतथापिगदतःशृणु ॥ ७५ ॥ पुन्नाम्नोनरकात्त्रातिपुत्रस्तेनेहगीयते॥
शेषःपापहरःशिष्यइतियंवैदिकीश्रुतिः ॥ ७६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ कोऽयंपुन्नामकोदेवयस्मात्त्रातिचपुत्रकः ॥ तस्माच्छेषंतथापापंहरेच्छिष्यश्चतद्वद
॥ ७७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतत्पुराणंपरमंमहर्षेयोगांगयुक्तंचतथासदैव ॥ तथैवचोग्रंभयहारिपुण्यंवदामितेशाम्यतियेनपापम् ॥ ७८ ॥ इतिश्रीवामनपुराणे
भैरवप्रादुर्भावेषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ परदाराभिगमनंपापिनामुपसेवनम् ॥ पारुष्यंसर्वभूतानांप्रथमंनरकंमतम् ॥ १ ॥ फलस्तेयंमहा
पापंफलहीनंतथाटनम् ॥ छेदनंवृक्षजातीनांद्वितीयंनरकंस्मृतम् ॥ २ ॥ वर्ज्यादानंतथादुष्टमवध्यवधबंधनम्॥विवाहोऽबांधवैःसार्धंतृतीयंनरकंमतम् ॥३॥

जिसको हरण करनेसे शिष्य नाम हुआ है?॥ ७७ ॥ब्रह्माजी बोले कि, हे महर्षे ! मैं तुम्हारे निकट परम प्राचीन योगांगयुक्त सर्वदा उग्रभयको दूरकरनेवाला परमपवित्र इस
आख्यानको वर्णन करूंगा, इसके श्रवण करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं॥ ७८ ॥इति श्रीवामनपुराणे भैरवप्रादुर्भावे भाषाटीकायांब्रह्मसनत्कुमारसंवादे षष्टितमोऽध्यायः॥ ६० ॥
ब्रह्माजी बोले कि, पराई स्त्रीमें गमन, पापियोंमें रहना और कठोरवचन कहना यह तीन सर्वभूतोंके प्रथम नरकहेतु पातक है ॥ १ ॥ फलकी चोरी, वृथा पर्य्यटन,
और वृक्षआदिका काटना यह दूसरे नरकहेतु पातक है ॥ २ ॥ वर्जित द्रव्यका परिग्रह (स्वीकार करना) अवध्यका वध, बंधन और बांधवोंके साथ विग्रह यह

तीसरे नरकहेतु पातक है ॥३॥ संसारकी भूति (ऐश्वर्य) को निवास करके सब प्राणियोंको भयभीत करना और अपने धर्मसे भ्रष्ट होना इसका नाम चौथा नरकहेतु पातक है ॥ ४ ॥ मारण, मित्रोंसे कुटिलता, मिथ्यासंभाषण और इकले मिठाई इत्यादि अच्छे पदार्थ भोजन इनका नाम पांचवा नरकहेतु पातक है ॥ ५ ॥ वृथा पत्रफलादिका हरण (तोडना) यमन (किसीको वृथा दिक करना) किसीके योगका नाश करना, और यानयुग्म (जोडी) हरण करना इनका नाम छठा नरकहेतुपातक है ॥ ६ ॥ मोहके वशसे राजाके भाग (हक्क) को हरण करना राजपत्नीगमन राजाके साथ अहिताचरण यह सातवां नरकहेतु पातक है ॥ ७ ॥ लुब्धता (लोभीपन) इन्द्रियोंकी चपलता, प्राप्तहुए धर्म अर्थका विनाश करना, नीचस्त्रीका लार अपने लारसे मिलाना अर्थात् उसका अधरपान करना इनका नाम आठवाँ नरकहेतु पातक है ॥ ८ ॥ ब्राह्मण वेद पढारहे हैं विना उनकी आज्ञा छिपकर वेद पढना, ब्राह्मणोंकी निन्दा करना, बांधवोंके साथ विरोध करना इनका नाम नौमाँ नरकहेतु पातक है ॥ ९ ॥ शिष्टाचारका विनाश करना, गुरु आदिक शिष्टपुरुषोंसे द्वेष, बालकोंकी हत्या, शास्त्रकी चोरी, धर्मकी चोरी, इनका नाम दशमाँ नरक है ॥ १० ॥ व्याकरण[1] आदिक वेदके छैः अंगोंको नाश अर्थात् अधिकार पायकर नहीं पढना, वाड पुण्यप्रतिषेधन सन्धि विग्रहादि छैः राजनीतिके गुणों[2]को यथावसर नहीं करने देना, इन कितनोंको साधुओंने एकादशनरक कहा है ॥ ११ ॥ सज्जनोंमें बैठकर किसीकी निन्दा करना सर्वदा चोरवृत्ति, अनाचार, असत्क्रिया, संस्कारवर्जन इनका नाम बारहवाँ नरक है ॥ १२॥ धर्म. अर्थ और कामकी हानि अर्थात् यथावसर सेवन नहीं करना अपवर्ग (मोक्ष) का अर्थात् तज्जनककर्मोंका हरण निरोध करना और संवित संवेद किसीकी एकांत वार्ताको प्रगटकरना, इनका नाम तेरहवाँ नरक है ॥ १३ ॥ धर्महीन क्षपण और बर्जन, और अग्निप्रयोग इनका नाम चौदहवाँ

भयदंसर्वसत्त्वानांभवभूतिविनाशनम् ॥भ्रंशनंनिजधर्माणांचतुर्थंनरकंस्मृतम् ॥ ४ ॥ मारणंमित्रकौटिल्यंमिथ्याभिशंसनंचयत् ॥ मिष्टैकाशनमित्युक्तंपं
चमंतुनृयातनम् ॥ ५ ॥ यात्राफलादिहरणंयमनंयोगनाशनम् ॥ यानयुग्मस्यहरणंषष्ठमुक्तंनृयातनम् ॥ ६ ॥ राजभागहरंमूढंराजजायानिषेवणम् ॥
राज्ञामहितकर्तृत्वंसप्तमंनरकंस्मृतम् ॥ ७ ॥ लुब्धत्त्वंलोलुपत्त्वंचलब्धधर्मार्थनाशनम् ॥ लालासंकीर्णमेवोक्तमष्टमंनरकंस्मृतम् ॥ ८ ॥ विप्रोक्तंब्रह्महरणं
ब्राह्मणानांविनिंदनम् ॥ विरोधंबंधुभिश्चोक्तंनवमंनरयातनम् ॥ ९ ॥ शिष्टाचारविनाशंचशिष्टद्वेषंशिशोर्वधम् ॥ शास्त्रस्तेयंधर्मस्तेयंदशमंपरिकीर्तितम् ॥
॥ १० ॥ षडंगनिधनंघोरंषाड्गुण्यप्रतिषेधनम् ॥ एकादशंतथैवोक्तंनरकंसद्भिरुत्तमम् ॥ ११ ॥ सत्सुनिंदासदाचौरमनाचारमसत्क्रिया ॥ संस्कारपरिही
नत्वमिदंद्वादशमुच्यते ॥१२॥ हानिर्धर्मार्थकामानामपवर्गस्यहारणम् ॥ संवेदःसंविदामेतत्तत्त्रयोदशमुच्यते ॥१३॥ क्षपणंधर्महीनंचयद्वर्ज्यंयच्चवाह्निदम् ॥
चतुर्दशंतथैवोक्तंनरकंतद्विगर्हितम् ॥ १४ ॥

---

[1] व्याकरण-शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष,छंद,६ यह वेदके अंग हैं । [2] संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, समाश्रय, यह छैः गुण हैं ।

नरक है, यह नरक अत्यन्त जुगुप्सित है ॥ १४ ॥ अज्ञान असूया, गुण दोष लगाना, अशौच, (शुचिसे नहीं रहना,) और असत्यवाक्य इनका नाम पंद्रहवाँ नरक है॥ १५॥ आलस्य, विशेषतः क्रोध और सबके आततायित्ववधमें तत्पर रहना और किसीके घरमें आग लगादेना इनका नाम सोलहवाँ नरक है ॥ १६ ॥ पराई स्त्रीमें वासना, शास्त्र पढ़नेमें इच्छाका न होना, और उद्धतत्व यह कितनेही नरकके कारण हैं ॥ १७ ॥ इन पापोंसे मनुष्य पुन्नामादि नरकोंसे अवश्यकरके संयुक्त होता है, अतः अच्छी सन्ततिको उत्पन्नकर उसके द्वारा जगत्पति विष्णुभगवानको संतुष्ट करै ॥ १८॥ तो वह शुभसम्मतिद्वारा उसके प्रसन्न होकर हृदयमें सम्यक् प्रकारसे वास करतेहैं, और उसके सब प्रकारसे पुन्नाम नरकका विनाश करते हैं ॥ १९ ॥ हे धर्मनंदन ! इसीकारणसे पुत्रनाम हुआहै, इसके उपरान्त शेष पापोंके

अज्ञानंचाप्यसूयत्वमशौचमशुभावहम् ॥ स्मृतंतत्पंचदशकमसत्यवचनानिह ॥ १५ ॥ आलस्यंवैषोडशकंसक्रोधंचविशेषतः ॥ सर्वस्यचाततायित्वमावासेष्वग्निदापनम् ॥ १६ ॥ इच्छाचपरदारेषुनरकायनिगद्यते ॥ ईर्ष्याभावश्चशास्त्रेषुउद्धतत्वंविगर्हितम् ॥ १७ ॥ एतैस्तुपापैःपुरुषःपुन्नामाद्यैर्नसंशयः ॥ संयुक्तःप्रीणयेद्देवंसंतत्याजगतःपतिम् ॥ १८ ॥ प्रीतःसृष्ट्यातुशुभयासमध्यास्तेतमच्युतम् ॥ पुंनामनरकंघोरंविनाशयतिसर्वतः ॥ १९ ॥ एतस्मात्कारणात्साध्यततःपुत्रेतिगद्यते ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिशेषपापस्यलक्षणम् ॥ २० ॥ देयंदेवर्षिभूतानामनुजानांपितॄनथ ॥ लिप्सापरधनेष्वेवसर्ववर्णेषुचैकता ॥ २१ ॥ ओंकारादपिनिर्वृत्तिःपापकारीस्मृतश्वसः ॥ गुरोर्वादोमहापापमगम्यागमनंतथा ॥ २२ ॥ घृतादिविक्रयोघोरश्चंडालादिपरिग्रहः ॥ स्वदोषच्छादनंपापंपरदोषप्रकाशनम् ॥ २३ ॥ मत्सरित्वंवाग्दुष्टत्वंनिष्ठुरत्वंतथापरे ॥ टोकित्वंतालवादित्वंनाम्नावाचाप्यधर्मजम् ॥ २४ ॥

लक्षणका वर्णन करूंगा ॥ २० ॥ देवता, ऋषि, भूत, मनुष्य, पितृ इनके देनेमें लालच, पराये धनमें लिप्सा, सब वर्णोंमें एकता ॥ २१ ॥ ओंकारसेभी निवृत्ति, अर्थात् अधिकार पाकर उसकाभी उच्चारण नहीं करना, तत्सहित गायत्र्यादिकमंत्रोक्तसौं कथाही क्या, ऐसे करनेवाला पापकारी कहागया है, और गुरुसे वाद करना, अगम्यागमन करना ॥ २२ ॥ घृतादिक बेचने अयोग्य वस्तुका विक्रय करना, चांडालादिका साथ करना, अपने दोषोंका छिपाना, पराये दोषोंको प्रकाश करना, ॥ २३ ॥ मत्सरित्व, (दूसरेका भला देखकर कुढ़ना,) वाग्दुष्टत्व, (खोटे वचन कहना,) निष्ठुरत्व, (निर्दयपना) जिसका नाम लेनेसे जिसके साथ बोलनेसेभी अधर्म हो वह टोकी कहलाता है, उसका होना टोकित्व, और तालवादित्व, ताली बजाकर अर्थात् वैश्यादिकके मिरासी होकर जीविका करना ॥ २४ ॥ दारुणत्व

दारुणत्व और अधर्मित्व यही सब नरकके कारण हैं; इन सम्पूर्ण पापोंमें युक्त होकर यदि ज्ञानाधिक शंकरको अशेषरूप (सब प्रकार) से संतुष्ट करसकै तो शेष सम्पूर्ण पापजीते जासकते हैं, चाहैं वह शारीरिक, वाचिक, मानसिक, उससेभी अधिक क्यों न हो ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे धर्मनंदन ! पिता माताके द्वारा, अथवा अपने आश्रित (सेवक) पुरुषद्वारा, और भाईद्वारा वर्त्तमानजन्ममें कियेहुए जो कुछ पातक हैं ॥ २७ ॥ उन सम्पूर्णपापोंका नाश होजाताहै, यही पुत्र और शिष्यका धर्म है, हे धर्मनंदन ! इसके विपरीत होनेसे विपरीत शब्दसे कहागयाहै, अर्थात् कुपुत्र और कुशिष्य कहलाताहै ॥ २८ ॥ इसीकारणसे विद्वान् मनुष्य पुत्र और शिष्यको सम्पादन करै और इसप्रकारका अर्थ अभिध्यान (ख्याल) करनेसे शिष्यकी अपेक्षा पुत्र श्रेष्ठ होताहै, शिष्य शेष पापोंसे उद्धार करता है, परन्तु पुत्र तो सबको उद्धार

दारुणत्वमधर्मित्वंनरकावहमुच्यते ॥ एतैश्चपापैःसंयुक्तःप्रीणयेद्यदिशंकरम् ॥ २५ ॥ ज्ञानाधिकमशेषेणशेषंपापंजयेत्ततः ॥ शारीरंवाचिकंयच्चमानसं
साधिकंचयत् ॥ २६ ॥ पितृमातृकृतंयच्चकृतंयच्चाश्रितैर्नरैः ॥ भ्रातृभिर्बांधवैश्चापितस्मिञ्जन्मनिधर्मज ॥ २७ ॥ तत्सर्वंविलयंयातिसधर्मःसुत
शिष्ययोः ॥ विपरीतेभवेत्साध्याविपरीतःपदक्रमः ॥ २८ ॥ तस्माच्चपुत्रशिष्यौहिविधातव्यौविपश्चिता ॥ एतदर्थमभिध्यायेच्छिष्याच्छ्रेष्ठतरःसुतः ॥
शेषांस्तारयतेशिष्यःसर्वतोपिहिपुत्रकः ॥ २९ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ पितामहवचःश्रुत्वासाध्यःप्राहतपोधनः ॥ त्रिसत्यंतवपुत्रोहंदेवयोगंवदस्वमे ॥ ३० ॥
तमुवाचमहायोगीत्वन्मातापितरौयदि ॥ दास्येतेचततोयोगंदायादोह्यसिपुत्रक ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारःप्रोवाचदायादपरिकल्पना ॥ येयंहिभवताप्रोक्तातां
मेत्वंख्यातुमर्हसि ॥३२॥ तदुक्तंसाध्यमुख्येनवाक्यंश्रुत्वापितामहः ॥ प्राहप्रहस्यभगवाञ्छृणुवत्सेतिनारद ॥ ३३ ॥ औरसःक्षेत्रजश्चैवदत्तःकृत्रिमएवच ॥
गूढोत्पन्नोपविद्धश्चदायादाबांधवास्तुषट् ॥ ३४ ॥ अमीषुषट्सुपुत्रेषुऋणपिंडधनक्रियाः ॥ गोत्रसाम्यंकुलेवृत्तिःप्रतिष्ठाशाश्वतीतथा ॥ ३५ ॥

करता है; ॥ २९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, तपोधन सनत्कुमार पितामहके वचन सुनकर बोले कि, हे देव ! मैं वारम्वार सत्यपूर्वक कहता हूं, कि, मैं आपका पुत्र हूं, इसकारण आप मुझको योगका उपदेश दीजिये ॥ ३० ॥ महायोगी पितामह उनसे बोले कि, तुम्हारे पिता माता इत्यादि यदि तुमको हमैं दे दें तो मैं योगका उपदेश दूंगा, कारण कि, तभी तुम हमारे दायाद होंगे ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि, हे भगवन् ! आपने जो दायादकी कल्पना की उसका अर्थ क्या है ? सो कहिये ॥३२॥ हे नारद ! भगवान् पितामह साध्यप्रधान सनत्कुमारके वचनको सुनकर हँसतेहुए बोले कि, हेवत्स ! सुनो ॥ ३३ ॥ औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध इन छहोंकी दायाद बांधव नामसे ख्याति है ॥ ३४ ॥ इन छहों पुत्रोंने ऋण (कर्जा) पिंड, धन, और प्रकारकी (सेवाआदिक) क्रियाएँ प्रतिष्ठित हैं

और इनमें समानगोत्रभाव, कुलवृत्तिता और सनातनी कुलकी प्रतिष्ठा यह सब बातें रहती हैं ॥ ३५ ॥ इसके अतिरिक्त कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव स्वयंदत्त, पारशव, यह छैः पुत्र कहेहैं ॥ ३६ ॥ इनमें ऋण पिंडादिकी वार्ता नहीं है, इनके गोत्र कुलका नाम मात्र है, ऐसा कुलीनोंका सम्मत है ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सनत्कुमारजी पितामह ब्रह्माजीके वचन सुनकर बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आप विशेष करके मुझसे इन पुत्रोंके नामके धारणको कहिये ॥ ३८ ॥ तब देवताओंके पति ब्रह्माजी बोले कि, हे वत्स ! मैं विशेषकरके कहताहूँ तुम श्रवण करो, जो पुत्र पिताके आत्माके प्रति विश्वकी समान स्वयं उत्पन्न होताहै उसका नाम औरस है ॥ ३९ ॥ पतिके क्लीब (नपुंसक) उन्मत्त (पागल) और जुए आदिकमें रत होने परभी उसकी आज्ञानुसार उसकी अनातुरा (उत्कटेच्छारहित) भार्या जिस पुत्रको परपुरुषसे उत्पन्न करतीहै उसका नाम क्षेत्रज है ॥ ४० ॥ माता पिताके द्वारा प्रदत्त पुत्रको दत्तक कहाहै, और मित्रका पुत्र मित्रहीकों दियाहुआ यह कृत्रिम कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ किस मनुष्यने जन्म दियाहै उसको न जाननेसे उस पुत्रको गूढ़ोत्पन्न कहतेहैं, और बाहरसे स्वयं आनीत पुत्रका नाम अपविद्ध है ॥ ४२ ॥ कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम कानीन है, गर्भसहित कन्याके विवाह होनेपर उत्पन्न हुए पुत्रको सहोढज कहते हैं, और मूल्य देकर लियेहुए पुत्रका नाम क्रीतपुत्र है ॥ ४३ ॥ जो कन्याको एकके हाथमें प्रदान करकेभी फिर दूसरे पात्रको देताहै, उसके गर्भसे उत्पन्नहुए पुत्र को

कानीनश्चसहोढश्चक्रीतःपौनर्भवस्तथा ॥ स्वयंदत्तःपारशवःषट्पुत्रास्तुप्रकीर्तिताः ॥ ३६ ॥ अमीषामृणपिंडादिकथानैवेहविद्यते ॥ नामधारकएवेहगोत्रेचकुलसंमतः ॥ ३७ ॥ तत्तस्यवचनंश्रुत्वाब्रह्मणःसनकाग्रजः ॥ उवाचैनंविशेषंहिब्रह्मन्मेख्यातुमर्हसि ॥ ३८ ॥ ततोब्रवीत्सुरपतिर्विशेषंशृणुपुत्रक ॥ औरसोयःस्वयंजातःप्रतिबिंबमिवात्मनः ॥ ३९ ॥ क्लीबोन्मत्तेव्यसनिनिपत्यौतस्याज्ञयातुयः ॥ भार्याह्यनातुरापुत्त्रंजनयेत्क्षेत्रजस्तुसः ॥ ४० ॥ मातापितृभ्यांयोदत्तःसदत्तःपरिगीयते ॥ मित्रपुत्रंमित्रदत्तंकृत्रिमंप्राहुरुत्तमाः ॥ ४१ ॥ नज्ञायतेगृहेकेनजातस्त्वितिसगूढकः ॥ बाह्यतःस्वयमानीतःसोपविद्धःप्रकीर्तितः ॥ ४२ ॥ कन्याजातस्तुकानीनःसगर्भोढःसहोढजः ॥ मूल्यैर्गृहीतःक्रीतःस्याद्द्विविधःस्यात्पुनर्भवः ॥ ४३ ॥ दत्ताप्येकस्ययाकन्याभूयोऽन्यस्यप्रदीयते ॥ तज्जातस्तनयोज्ञेयोलोकेपौनर्भवःस्मृतः ॥ ४४ ॥

---

१ यहां यह विशेष जानना कि, दत्तक तो दानाविधिसे मातापिताका दियाहुआ होताहै उसका गोत्रादि पलट जाताहै और कृत्रिम केवल वाङ्मात्रसे श्राद्धादिकार्य करनेके अर्थ पुत्र होता है उसका गोत्रादि यथापूर्वही रहताहै पलटता नहीं, वह अपना पूर्वपिताकाही पुत्र कहाताहै और उनकाभी श्राद्धादि करता है ।

पौनर्भव कहते हैं ॥ ४४ ॥ दुर्भिक्ष और व्यसन (विपत्ति) के समयमें जो मनुष्य अपनेको बेचताहै अथवा और किसीकारणोंसेभी आत्मदान करताहै उसको स्वयंदत्त कहतेहैं ॥ ४५ ॥ हे सुव्रत ! ब्राह्मण विवाहिता अथवा अविवाहिता शूद्राके गर्भसे जिस पुत्रको उत्पन्न करताहै उसका नाम पारशव है ॥ ४६ ॥ हे वत्स ! इन सब कारणोंसे तुम स्वयं आत्मदान नहीं करसकते, इस निमित्त तुम शीघ्र जाकर पितामाताको बुलालाओ ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त सनत्कुमार विभुने ब्रह्माजीके वचनानुसार अपने पितामाताका स्मरण किया, हे मुने ! स्मरण करतेही वह दोनों सबके ईश्वर ब्रह्माजीको देखनेके निमित्त वहां आये ॥ ४८ ॥ और उनको प्रणाम करके बोले कि, हे देव ! हमें क्या करना होगा सो आज्ञा दीजिये, यह कहकर वह आसनपर बैठगये, तब सनत्कुमारजी उनसे बोले ॥ ४९ ॥ कि,

दुर्भिक्षेव्यसनेचापियेनात्माविनिवेदितः ॥ सस्वयंदत्तइत्युक्तस्तथान्यःकारणांतरैः ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणस्यसुतःशूद्र्यांजायतेयस्तुसुव्रत ॥ ऊढायांचाप्यनूढायां सपारशवउच्यते ॥ ४६ ॥ एतस्मात्कारणात्पुत्रनस्वयंदातुमर्हसि ॥ स्वमात्मानंगच्छशीघ्रंपितरौसमुपाह्वय ॥ ४७ ॥ ततःसमातापितरौसस्मारवचनाद्विभोः ॥ तावाजग्मतुरीशानंद्रष्टुंवैदंपतीमुने ॥ ४८ ॥ प्रणिपत्यतुब्रह्माणमादेशोदेवदीयताम् ॥ उपविष्टौसुखासीनौसाध्योवचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ योगंजिगमिषुस्तातब्रह्माणंसमचूचुदम् ॥ मामुक्तवांस्तुपुत्रार्थेतस्मात्त्वंदातुमर्हसि ॥ ५० ॥ तावेवमुक्तौपुत्रेणयोगाचार्यंपितामहम् ॥ उक्तवंतौप्रभोयंहिआवयोस्तनयोऽस्तिच ॥ ५१ ॥ अद्यप्रभृत्ययंपुत्रस्तवब्रह्मन्भविष्यति ॥ इत्युक्त्वाजग्मतुःस्वर्गंयेनैवाभ्यागतौयथा ॥ ५२ ॥ पितामहोपितंपुत्रंसाध्यंचविनयान्वितम् ॥ सनत्कुमारंप्रोवाचयोगंद्वादशपत्रकम् ॥ ५३ ॥ शिखासंस्थस्तुओंकारोमेषोस्यशिरसिस्थितः ॥ पत्रंवैशाखमासेहिप्रथमंपरिकीर्तितम् ॥ ५४ ॥ नकारोमुखसंस्थोपिवृषस्तत्रप्रकीर्तितः ॥ ज्येष्ठमासश्वतत्पत्रंद्वितीयंपरिकीर्तितम् ॥ ५५ ॥ मोकारोभुजयोर्युग्मंमिथुनस्तत्रसंस्थितः ॥ आषाढइतिविख्यातस्तृतीयंपत्रकंस्मृतम् ॥ ५६ ॥

मैंने पितामहसे योगजाननेके निमित्त कहा था; यह मुझे अपने पुत्र होनेके लिये कहतेहैं, इसकारण आप हमें इनके हाथमें पुत्ररूपसे दान कीजिये ॥ ५० ॥ वह पुत्रके ऐसा कहनेपर पितामह ब्रह्माजीसे बोले कि, हे भगवन् ! यह सनत्कुमार इतने दिनोंसे हमारे पुत्र थे ॥ ५१ ॥ परन्तु यह आजसे आपके पुत्र हुए, यह कहकर वह जिस मार्गसे आयेथे उसी मार्गसे स्वर्गको चलेगये ॥ ५२ ॥ तब पितामह उन विनयान्वित सनत्कुमारको द्वादशपत्रके योगका उपदेश देकर बोले ॥ ५३ ॥ ॐकार शिखामें स्थित है, मेष इनके शिरोदेशमें विराजमान है, वैशाखमास इनका प्रथमपत्र है ॥ ५४ ॥ नकार मुखमें स्थित है, वृष उस वदनमंडल पर विराजमान होरहा है, ज्येष्ठमास उसका दूसरा पुत्र है ॥ ५५ ॥ मोकार दोनोंभुजाएँ हैं, मिथुन उसमें विराजमान है, आषाढ़मास विख्यात उसका तीसरा पत्र

कहकर कीर्तित हुआहै ॥ ५६ ॥ भकार नेत्र है; कर्कटक उसमें निवास करताहै, श्रावणमास उसका चौथा पत्र कहागया है ॥ ५७ ॥ गकार हृदयनामसे विख्यात है, सिंह उसमें विराजमान है, भाद्रमास उसका पांचवां पत्र कहकर परिणत हुआ है ॥ ५८ ॥ वकार कवच है, कृत्या उसमें प्रतिष्ठित है, आश्विनमास उसका छठा पत्र है ॥ ५९ ॥ तेकार मन है, तुला उसमें विराजमान है, कार्तिक नामका महीना उसका सातवाँ पत्र है ॥ ६० ॥ बकार नाभिदेश है, वृश्चिक उसमें विराजमान है, मार्गशिरा नामक मास उसका आठवाँ पत्र है ॥ ६१ ॥ सुकार जघनदेश है धनु उसमें निवासकरते हैं, पूस नामका महीना उसका नौमाँ पत्र है ॥ ६२ ॥ देकार चरण है तिमिर (अंधकार) उसमें विराजमानं है, माघनामका विख्यात महीना दशवाँ पत्र है ॥ ६३ ॥ वकार जानु हैं, कुंभ उसमें प्रतिष्ठित हैं, फाल्गुन

भकारंनेत्रयुगलंतत्रकर्कटकःस्थितः ॥ मासःश्रावणइत्युक्तश्चतुर्थंपत्रकंस्मृतम् ॥ ५७ ॥ गकारंहृदयंप्रोक्तंसिंहोवसातितत्रच ॥ मासोभाद्रपदःप्रोक्तः पंचमंपरिगीयते ॥ ५८ ॥ वकारंकवचंविद्यात्कृत्यातत्रप्रतिष्ठिता ॥ मासश्चाश्वयुजिप्रोक्तोषष्ठंतत्पत्रकंस्मृतम् ॥ ५९ ॥ तेकारंमनसिप्रोक्तंतुलातत्रचसंस्थिता ॥ मासश्चकार्तिकोनामसप्तमंपत्रकंस्मृतम् ॥ ६० ॥ वाकारंनाभिसंयुक्तंस्थितस्तत्रतुवृश्चिकः ॥ मासोमार्गशिरानामत्वष्टकंपत्रकंमुने ॥ ६१ ॥ सुकारंजघनंप्रोक्तंतत्रस्थश्चधनुर्धरः ॥ पौषोनिगदितोमासोनवमंपरिकीर्तितम् ॥ ६२ ॥ देकारश्चांघ्रियुगलेतत्रस्थस्तिमिरुच्यते ॥ मासोमाघेतिविख्यातो दशमंपत्रकंस्मृतम् ॥ ६३ ॥ वाकारोजानुयुग्मंचकुंभस्तत्रादिसंस्थितः ॥ पत्रकंफाल्गुनःप्रोक्तंतदेकादशमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ पादौयकारौमीनोऽपिसचैत्रे वसतेमुने ॥ इदंतुद्वादशंप्रोक्तंपत्रंवैकेशवस्यहि ॥ ६५ ॥ द्वादशारंतथाचक्रंषण्णाभिद्वियुतंतथा ॥ त्रिव्यूहमेकमूर्तिश्चतथोक्तःपरमेश्वरः ॥ ६६ ॥ तत्रचोक्तंतुदेवस्यरूपंद्वादशपत्रकम् ॥ यस्मिञ्ज्ञातेमुनिश्रेष्ठनभूयोमरणंलभेत् ॥ ६७ ॥ द्वितीयमुक्तंसत्त्वाद्यंचतुर्वर्णंचतुर्मुखम् ॥ चतुर्बाहुमुदारांगंश्रीवत्सधरमव्ययम् ॥ ६८ ॥ तृतीयस्तामसोनामशेषमूर्तिःसहस्रधा ॥ सहस्रवदनःश्रीमान्प्रजाप्रलयकारकः ॥ ६९ ॥

महीना उसका एकादश पत्र है ॥ ६४ ॥ यकार पादयुगल हैं, हे मुने ! मीनउसमें निवास करता है, चैत्रमास उसका बारहवाँ पत्र है ॥ ६५ ॥ इस प्रकारके बारहफलके चक्र और बारह नाभि हैं, वही परमेश्वर स्वयं त्रिव्यूह और एकमूर्ति हैं ॥ ६६ ॥ यह द्वादश पत्र उन्हीं भगवानके रूप हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके जाननेसे पुनर्वार मृत्युके मुखमें नहीं पड़ना होता ॥ ६७ ॥ उनकी दूसरी मूर्ति सत्वाद्य है, उसके चार वर्ण हैं, चार मुख और चार भुजाये हैं, और श्रीवत्स (भृगुपदलाञ्छन) से शोभायमान है, उनके सम्पूर्ण अंग उदार और किसी समयमेंभी विनाश नहीं होते ॥ ६८ ॥ तीसरी शेषमूर्ति तमोमय है, वह सहस्रधा विराजमान सहस्रवदनसे शोभाय

मान और परम श्रीमान् होकर प्रजाओंका कल्याण करते हैं ॥६९॥ चौथी राजसमूर्ति है, यह लालवर्णकी है, चार मुख हैं, दो भुजा हैं, वनमालासे शोभायमान और यही सृष्टिके कर्ता आदि पुरुष हैं ॥७०॥ हे महर्षे ! यह तीनों मूर्ति अव्यक्तसे प्रगट हुई हैं, इनसेही मरीचि इत्यादि ऋषि तथा और सहस्रों पुरुष उत्पन्न हुए हैं ॥ ७१ ॥ हे मुनिवर्य्य ! तुमसे मैंने यह अत्यन्त पुण्यका देनेवाला विष्णुचरित्र पुराणरूप वर्णन किया, यह चारों भुजाओंसे शोभायान हैं, दुरात्मा मुर कृतान्तके वचनानुसार पुनर्वार उनके निकट गया ॥७२ ॥ मधुसूदन इसे आताहुआ देखकर बोले कि, हे मुर ! तुम किसकारणसे आयेहो ? वह बोला कि, मैं आज तुम्हारे साथ युद्ध करूंगा, इसीकारणसे आयाहूं. असुरोंके मारनेवाले हरि पुनर्वार उससे बोले ॥ ७३ ॥ यदि हमारे साथ युद्धकरनेके निमित्त आये हो तो तुम्हारा हृदय किस

चतुर्थोराजसोनामरक्तवर्णश्चतुर्मुखः ॥ द्विभुजोधारयन्मालांसृष्टिकृत्त्वादिपूरुषः ॥ ७० ॥ अव्यक्तात्संभवंत्येतेत्रयोव्यक्तामहामुने ॥ अतोमरीचिप्रमुखास्तथान्येपिसहस्रशः ॥ ७१ ॥ एतत्तवोक्तंमुनिवर्यरूपंविष्णोःपुराणंमतिपुष्टिवर्धनम् ॥ चतुर्भुजंचापिमुरोदुरात्माकृतांतवाक्यात्पुनरासाद ॥ ७२ ॥ तमागतंप्राहमुनेमधुघ्नःप्रातोऽसिकेनासुरकारणेन ॥ सप्राहयोद्धुंसहवैत्वयाद्यतंप्राहभूयोऽसुरपूगहंता ॥ ७३ ॥ यदीहमांयोद्धुमुपागतोसितत्कंपतेतेहृदयंकिमर्थम् ॥ ज्वरातुरस्येवमुहुर्मुहुर्वैतन्नैवयोत्स्येसहकातरेण ॥ ७४॥ इत्येवमुक्तोमधुसूदनेनमुरस्तदास्यद्धृदयेस्वहस्तम् ॥ कथंक्वकस्येतिमुरस्तदोक्त्वानिपातयामासविपन्नबुद्धिः ॥ ७५ ॥ हरिश्चचक्रंमृदुलाघवेनमुमोचतद्धृत्कमलंचशत्रोः ॥ चिच्छेददेवास्तुगतव्यथाभवन्देवंप्रशंसंतिचपद्मनाभम् ॥७६॥ एतत्तवोक्तंमुरदैत्यनाशनंकृतंहियुक्त्याशितचक्रपाणिना ॥ अतःप्रसिद्धंसमुपाजगाममुरारिरित्येवविभुर्नृसिंहः ॥ ७७॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेमुरवधोनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततोमुरारिभुवनंसमभ्येत्यसुरास्ततः ॥ ऊचुर्वैदंनमस्कृत्यजगत्संक्षोभकारणम् ॥ १ ॥

निमित्त कंपायमान होरहा है ज्वरीमनुष्यका हृदय सदा कंपायमान होता है, तुम्हारे हृदयकीभी वही अवस्था है तुम अवश्यही कातर हुए हो, कातरके साथ हम युद्ध नहीं करेंगे ॥७४॥ मधुसूदनके इसप्रकार कहनेपर मुरने अपने हृदयपर हाथ रक्खा किसकारणसे, कहां,किसका, इसप्रकार कहकर हाथ प्रदान करतेही बुद्धिभ्रष्ट होकर पृथ्वीपर गिरा॥ ७५॥हरिने यह देखकर लीलाकरते हुए उसके हृदयकमलपर चक्र चलाया, और उसको छेदनकरके फेंकदिया, तब देवता व्यथारहित हो प्रशंसा करने लगे॥ ७६ ॥भगवान् हरिने जिसप्रकार तीक्ष्णधार युक्त चक्रके प्रहारसे मुरका नाश कराथा सो मैंने तुमसे कहा मुरका वध करनेसे वह प्रभु तभीसे नृसिंह, मुरारि नामसे प्रसिद्ध हुए ॥७७॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां मुरवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इसके उपरान्त देवताओंने मुरारिके भवनमें जाकर

नमस्कारकर जगत्के क्षोभका कारण पूँछा ॥ १ ॥ भगवान् मुरारिपुके यह वचन सुनकर बोले कि, हरके मंदिरमें चलो, वह महाज्ञानवान् हैं अवश्यही जानतेहोंगे कि, जिसकारणसे यह चराचर जगत् संक्षुभित हुआ है ॥ २ ॥ वासुदेवके इसप्रकार कहनेपर इन्द्र इत्यादि देवता इनको आगेकर मंदराचलको गये परन्तु अज्ञानताके कारण वह वहां वृषभध्वज अथवा देवी या नंदी किसीको भी नहीं देखसके ॥ ३ ॥ शूना पर्वत देखा, महाद्युति भगवान् विष्णुदेव मूढदृष्टियोंको देखकर कहने लगे कि, महादेवजी पुरोभागमें बिराजमान हैं ॥ ४ ॥ आपने उनको नहीं देखा, उन्होंने उत्तर दिया कि, हमने गिरिजापति महादेवजीको नहीं देखा है ॥ ५ ॥ जिसकारणसे हमारी दृष्टि प्रतिहत हुई है उसकारणको हम नहीं जानते, जगन्मूर्ति जनार्दन उनसे बोले कि, तुमने अपने स्वार्थमें रत हो मृडानी (पार्वती) के गर्भको नष्ट किया

तच्छ्रुत्वाभगवान्प्राहगच्छामोहरमंदिरम् ॥ सवेत्स्यतिमहाज्ञानीजगत्क्षुब्धंचराचरम् ॥ २ ॥ तथोक्तावासुदेवेनदेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ जनार्दनंपुरस्कृत्य
जग्मुर्मंदरभूधरम् ॥ नतत्रदेवंवृषभंनदेवींचननंदिनम् ॥ ३ ॥ शून्यंगिरिमपश्यंतह्यज्ञानतिमिरावृताः ॥ तान्मूढदृष्टीन्संप्रेक्ष्यदेवोविष्णुर्महाद्युतिः ॥ ४ ॥
प्रोवाचकिंनपश्यध्वंमहेशंपुरतःस्थितम् ॥ तमूचुर्नैवदेवेशंपश्यामोगिरिजापतिम् ॥ ५ ॥ नविद्मःकारणंतच्चयेनदृष्टिर्हताहिनः ॥ तानुवाचजगन्मूर्त्तिर्यूयंदे
वस्यसागसः ॥ ६ ॥ पापिष्ठागर्भहंतारोमृडान्याःस्वार्थतत्पराः ॥ तेनज्ञानंविवेकोवाहृतोदेवेनशूलिना ॥ ७ ॥ येनाग्रतःस्थितमपिपश्यंतोपिनपश्यथ ॥
तस्मात्कायविशुद्ध्यर्थंदेवदृष्ट्यर्थमादरात् ॥ ८ ॥ तप्तकृच्छ्रेणसंशुद्धाःकुरुध्वंज्ञानमीश्वरे ॥ क्षीरस्नानंप्रयुंजीतसाग्रकुंभशतंपुरा ॥ ९ ॥ दधिस्नानेचतुः
षष्टिर्द्वात्रिंशद्धविषोऽर्हणे ॥ पंचगव्यस्यशुद्धस्यकुंभाःषोडशकीर्तिताः ॥ १० ॥ मधुनोऽष्टौजलस्योक्ताःसर्वेतेद्विगुणाःसुराः ॥ ततोरोचनयादेवमष्टो
त्तरशतेनहि ॥ ११ ॥ अनुलिंपेत्कुंकुमेनचंदनेनचभक्तितः ॥ बिल्वपत्रैःसकमलैःकर्पूरागरुचंदनैः ॥ १२ ॥ मंदारैःपारिजातैश्चअतिमुक्तैस्तथार्चयेत् ॥
अगरुंसहकालेयंचंदनेनापिधूपयेत् ॥ १३ ॥

है, इसनिमित्त महापापसे ग्रस्तहो महादेवजीके निकट अपराधी हुएहो, इसीकारण भगवान् शूलपाणिने तुम्हारे ज्ञानको विनष्ट करदिया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसीकारणसे सन्मुख वे बैठेहुए महादेवजीको नहीं देखसकतेहो, इसकारण सबजने शरीरशोधन और देवदर्शन करनेके निमित्त आदरसहित ॥ ८ ॥ तप्तकृच्छ्रद्वारा पवित्र होकर महादेवमें ध्यान लगाओ, पहले एकसौ अट्ठाईस घड़े दुग्धसे शिवजीको स्नान कराओ ॥ ९ ॥ फिर चौंसठ घड़े दधि, बत्तीस घड़े घृत और शुद्ध पंचगव्यके सोलह घडेसे स्नान कराओ ॥ १० ॥ फिर मधुके आठ कलश और जलके कुंभ चार करनेसे स्नान कहे हैं, इसके उपरान्त एकसौ आठबार गोरोचनसे देवदेव महादेवका ॥ ११ ॥ अनुलेपन करै, फिर कुंकुम और चंदनसे भक्तिसहित भवानीपतिको चर्चितकर बेलपत्र, कमल, चंदन, अगुरु, कपूर ॥ १२ ॥ मंदार, (आकके फूल)

पारिजात, कल्पवृक्ष अतिमुक्तके पुष्पोंको चढाकर अगरसहित गूगल अथवा चंदनसे धूप दे ॥ १३ ॥ फिर पदक्रमकी सहायतासे ऋग्वेदमें कहेहुए शतरुद्रीयका जप करै ऐसा करनेसे भगवान् शिवजीके दर्शन करसकते हो और किसीभी उपायसे उनके दर्शन करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ १४ ॥ वासुदेवके ऐसा कहनेपर देवता उनसे बोले कि, हे मधुसूदन ! किसप्रकारसे तप्तकृच्छ्रका अनुष्ठान कियाजाता है सो आप उसका विधान कहिये । जिस तप्तकृच्छ्रके व्रत करनेसे सार्वकालिकी शरीरशुद्धि होजाती है ॥ १५ ॥ वासुदेव बोले कि, तीन दिनतक गरम जलपिये, और तीन दिन गरमदूध पीकर रहै, इसके उपरान्त तीन दिनतक गरम घृतका पान करै, फिर तीन दिनके पीछे केवल वायुको भोजन करना होताहै ॥१६॥ हे देवताओ ! बारह पल[1] जल, आठ पल दूध, छैः पल घृत, दिनदिनमें पान करै

जप्तव्यंशतरुद्रीयमृग्वेदोक्तंपदक्रमैः ॥ एवंकृतेतुदेवेशंपश्यध्वंनेतरेणहि ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वावासुदेवेनदेवाःकेशवमब्रुवन् ॥ विधानंतप्तकृच्छ्रस्यकथ्यतां
मधुसूदन ॥ यस्मिंश्चीर्णेकायशुद्धिर्भवितासार्वकालिकी ॥ १५ ॥ वासुदेव उवाच ॥ त्र्यहमुष्णाःपिबेच्चापस्त्र्यहमुष्णंपयःपिबेत् ॥ त्र्यहमुष्णंपिबेत्सर्पिर्वा
युभक्षोदिनत्रयम् ॥ १६ ॥ पलाद्द्वादशतोयस्यपलाष्टौपयसःसुराः ॥ षट्पलाःसर्पिषःप्रोक्तादिवसेदिवसेपिबेत् ॥ १७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्ते
वचनेसुराःकायविशुद्धये ॥ तप्तकृच्छ्ररहस्यंवैचक्रुःशक्रपुरोगमाः ॥ १८ ॥ ततोव्रतेसुराश्चीर्णेविमुक्ताःपापतोऽभवन् ॥ विमुक्तपापादेवेशंवासुदेवमथा
ब्रुवन् ॥ १९ ॥ क्वासौवदजगन्नाथशंभुस्तिष्ठतिकेशव ॥ यंक्षीराद्यभिषेकेणस्नापयामोविधानतः ॥ २० ॥ अथोवाचसुरान्विष्णुरेषतिष्ठतिशंकरः ॥ मद्देहे
किंनपश्यध्वंयोगंप्राप्यप्रतिष्ठितम् ॥ २१ ॥ तमूचुर्नैवपश्यामःस्वतोवैत्रिपुरांतकम् ॥ सत्यंवदसुरेशानमहेशानःक्वतिष्ठति ॥ २२ ॥ ततोऽव्ययात्मासहरिः
स्वहृत्पंकजशायिनम् ॥ दर्शयामासदेवानांमुरारिर्लिंगमैश्वरम् ॥ २३ ॥

यही शास्त्रमें लिखाहै ॥ १७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, वासुदेवके यह वचन कहनेपर देवता शरीरशुद्धिके निमित्त इन्द्रके साथ मिलकर तप्तकृच्छ्र व्रतके अनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १८ ॥ व्रतान्तमें उनके पाप नष्ट होगये, पापके नष्ट होजानेसे वह देवाधिदेव वासुदेवसे बोले ॥ १९ ॥ कि, हेजगन्नाथ ! हे केशव ! महादेवजी कहां विराजमान हैं हम उन्हें क्षीरादिसे अभिषेककर स्नानकरावैंगे ॥ २० ॥ तब विष्णु देवताओंसे बोले कि, यह महादेवजी हमारी देहमें विराजमान हैं, वह योग बलसे इसप्रकार देहमें प्रतिष्ठित हुए हैं; क्या आप नहीं देखसकतेहैं ॥ २१ ॥ उन्होंने उत्तर दिया कि, हम स्वयं त्रिपुरान्तकको नहीं देखसकते, हे सुरेशान् ! सत्य २ कहो वह महेशान कहां विराजमान हैं ? ॥ २२ ॥ तब अव्ययात्मा मुरारि हरिने अपने हृदयकमलपर शयनकरनेवाले ईश्वरलिंगका दर्शन कराया ॥ २३ ॥

---

[1] “पलं कर्षचतुष्टयम्”–चार कर्षका पल होताहै और सोलह मासेका एक कर्ष होताहै ।

देवताक्रमानुसार अत्युत्तम क्षीरादिद्वारा उस शाश्वत, अविचलित और क्षयोदयविवर्जित लिंगका दर्शन करनेलगे ॥ २४ ॥ प्रथम गोरोचन और सुगंधित चंदनसे अनुलिप्तकर पीछे बेलपत्र और कमलसे उन भगवान् लिंगरूपी हरकी पूजा की॥ २५॥ इसके पीछे श्रद्धाभक्तिसहित धूप, दीप, दिव्यऔषधी इत्यादि देकर अष्टोत्तरशतनामका जप करतेहुए प्रणाम किया ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि, देवताओंके इसप्रकार ध्यान करनेपर वह सत्व और तमोगुणसे आवृत हरिहर किसप्रकारसे परस्पर एक शरीर होगयेथे ? ॥ २७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, विभु देवताओंको चिन्तित जानकर विश्वमूर्ति हुएथे, वह मूर्ति सर्वलक्षणयुक्त सम्पूर्ण आयुधोंसे शोभायमान और क्षयोदयविवर्जित ॥ २८ ॥ और सार्द्धद्विनयन (ढाईनेत्र) कनक और सर्पके कानोंमें कुंडल शोभायमान, घूँघरवाले बाल, और जटाको धारण कियेहुए गरुड

ततोऽमराःक्रमेणैवक्षीरादिभिरनुत्तमैः ॥ स्नापयांचक्रिरेलिंगंशाश्वतंध्रुवमव्ययम् ॥ २४ ॥ आलिप्यगोरोचनयाचंदनेनसुगंधिना ॥ बिल्वपत्रांबुजैर्देवंपूज
यामासुरंजसा ॥ २५ ॥ धूपयित्वागुरुंभक्त्यानिवेद्यपरमौषधीः ॥ जप्त्वाष्टशतनामानिप्रणामंचक्रिरेततः ॥ २६ ॥ नारदउवाच ॥ इत्येवंचिंतयंतस्तेदेव
देवौहराच्युतौ ॥ कथंयोगंतमापन्नौसत्त्वेनतमसावृतौ ॥ २७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ सुराणांचिंतितंज्ञात्वाविश्वमूर्तिरभूद्विभुः ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तःसर्वायुधधरो
व्ययः ॥ २८ ॥ सार्द्धद्विनेत्रंकनकादिकुंडलंजटागुडाकेशखगर्षभध्वजम् ॥ समाधवंहारभुजंगभूषणंपीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम् ॥ २९ ॥ चक्रासिहस्तं
हलशार्ङ्गपाणिंपिनाकशूलाजगवान्वितंच ॥ कपर्दखट्वांगकपालघंटंसशंखटंकाररवंमहर्षे ॥ ३० ॥ दृष्ट्वैवदेवाहरिशंकरंतंनमोऽस्तुतेसर्वगताव्ययेति ॥
प्रोक्तप्रणामाःकमलासनाद्याश्चक्रुर्मतिंचैकतरांनियुज्य ॥ ३१ ॥ तानेकचित्तान्विज्ञायदेवान्देवपतिर्हरिः ॥ प्रगृह्याभ्यद्रवत्तूर्णंकुरुक्षेत्रंस्वमाश्रमम् ॥ ३२ ॥
ततोऽपश्यंतदेवेशंस्थाणुभूतंजलेस्थितम् ॥ दृष्ट्वानमःस्थाणवेतुप्रोक्त्वासर्वेऽप्युपाविशन् ॥ ३३ ॥

और वृषभवाहन हार और भुजंग (सर्प) इनसे शोभायमान, उनकी कमरमें पीताम्बर और गजचर्म बँधाथा ॥ २९ ॥ हाथमें चक्र, असि (तलवार) हल, शार्ङ्ग पिनाक, शूल और आजगव, कपर्द, खट्वांग, कपाल, घंटा और शंखकी ध्वनि कररहे हैं हे महर्षे ! ॥ ३० ॥ देवताओंने उन हरिहरका दर्शनकरके "हे अव्यय ! हे सर्वगत! तुमको नमस्कार है" इसप्रकार कहकर ब्रह्माजीके सहित प्रणाम किया, उस समय वह सभी एकाग्रचित्त हुए ॥ ३१ ॥ देवपति हरि उनका एकाग्रचित्त हुआ देखकर अपने साथ ले शीघ्रही अपने आश्रम कुरुक्षेत्रको ले गये ॥ ३२ ॥ तब वे सभी स्थाणुभूत विराजमान महेश्वरको देख "स्थाणुको नमस्कार है" यह कहकर बैठे॥ ३३॥

---

१ हरिहरके एकमूर्त्ति होनेसे त्रिनेत्रशिवकी अर्द्धमूर्तिके सार्द्ध (डेढ़) नेत्र और अर्द्ध विष्णुमूर्तिके एक नेत्र ऐसे ढाईनेत्र हुए ।

तब ब्रह्माजी बोले कि, हमैं वर दो, हे जगन्नाथ ! सम्पूर्ण जगत् क्षुभित होगया है, इसकारण हे अतिथिप्रिय ! उन्मग्न हूजिये, अर्थात् इस जलसे निकल कर दर्शनं दीजिये ॥ ३४ ॥ वृषभध्वजने यह मधुर वचन सुने सुनतेही वह सर्वव्यापी निरंजन हर शीघ्रतासे उठे ॥ ३५ ॥ और हँसते २ बोले कि, "देवाधिदेवको नमस्कार है" उनको आता हुआ देखकर इन्द्र इत्यादि देवताओंने विनय सहित प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ और सभी बोले कि, हे शंकर ! शीघ्रही इस महाव्रतको त्याग कीजिये. त्रिलोकी आपके तेजसे व्याकुल और क्षुभित होगई है ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि, मैंने इस महाव्रतका त्याग किया यह वचन सुनतेही इन्द्र इत्यादि देवता हर्षित होकर स्वर्गको चले गये ॥ ३८ ॥ हे महामुने ! उस समय पृथ्वी, सागर और सम्पूर्ण पर्वत कंपायमान होगये, यह देखकर महादेवजी चिन्ताकरने लगे कि, पृथ्वी किसकारणसे क्षुभित हुई है ॥३९॥ इसप्रकारकी चिन्ता करनेके पीछे वह कुरुक्षेत्रके चारों ओर फिरने लगे, जाकर देखा कि, ओघवतीनदीके किनारे तपोनिधि उशनाजी विराजमान हैं॥४०॥ यह देखकर सुरपति भव उनसे बोले कि,तुम किसकारण तपस्या करते हो, हे विप्र !शीघ्र कहो कारण कि, तुम्हारी इस तपस्यासे सम्पूर्ण जगत् क्षुभित होगया है ॥४१॥ उशनाजी बोले कि, आपकी आराधनाकी इच्छासे मैं इस कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुआहूं हे त्रिलोचन ! इसके प्रभावसे संजीवनीविद्याके जाननेकी मेरी इच्छा है ॥ ४२ ॥ महादेवजी बोले कि, हे तपोधन ! मैं तुम्हारी इस श्रेष्ठ तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट होगयाहूं, इसकारण तुम तत्वतः संजीवनी विद्याके जाननेवाले होंगे ॥ ४३ ॥ शुक्र वरको पाकर तपस्यासे निवृत्त हुये, तथापि पृथ्वी, सागर और सम्पूर्ण पर्वत क्षुभित होनेलगे ॥ ४४ ॥

ततोऽब्रवीत्सुरपतिरेहिनोदीयतांवरः ॥ क्षुब्धंजगज्जगन्नाथउन्मज्जस्वप्रियातिथे ॥ ३४ ॥ ततस्तांमधुरांवाणींशुश्राववृषभध्वजः ॥ श्रुत्वोत्तस्थौचवेगेनसर्वव्यापीनिरंजनः ॥ ३५ ॥ नमोस्तुदेवदेवेभ्यःप्रोवाचप्रहसन्हरः ॥ सचागतःसुरैःसेंद्रैःप्रणतोविनयान्वितः ॥३६॥ बमूचुर्देवताःसर्वास्त्यज्यतांशंकरद्रुतम् ॥ महाव्रतंत्रयोलोकाःक्षुब्धास्तेतेजसार्दिताः ॥ ३७ ॥ अथोवाचमहादेवोमयात्यक्तोमहाव्रतः ॥ ततःसुरादिवंजग्मुर्हृष्टाःप्रयतमानसाः ॥ ३८ ॥ ततोविकंपतेपृथ्वीसाब्धिद्वीपामहामुने ॥ ततोह्यचिंतयद्रुद्रःकिमर्थंक्षुभितामही ॥ ३९ ॥ ततःपर्यचरच्छूलीकुरुक्षेत्रंसमंततः ॥ ददर्शौघवतीतीरेउशनसंतपोनिधिम् ॥ ४० ॥ ततोब्रवीत्सुरपतिःकिमर्थंतप्यतेतपः ॥ जगत्क्षोभकरंविप्रतच्छीघ्रंकथ्यतांमम ॥ ४१ ॥ उशनाउवाच ॥ तवाराधनकामार्थंतप्यतेहिमहत्तपः ॥ तस्मात्संजीविनींविद्यांज्ञातुमिच्छेत्रिलोचन ॥ ४२ ॥ हरउवाच ॥ तपसापरितुष्टोस्मिसुतप्तेनतपोधन ॥ तस्मात्संजीविनींविद्यांभवान्ज्ञास्यतितत्त्वतः ॥ ४३ ॥ वरंलब्ध्वाततःशुक्रस्तपसःसंन्यवर्त्तत ॥ तथापिचलतेपृथ्वीसाब्धिभूभृन्नगावृता ॥ ४४ ॥

यह देखकर महादेवजी परमपवित्र सप्तसारस्वतको गये, जाकर देखा कि, मंकणकनामके महर्षि नृत्य कररहे हैं, वह बालककी समान हावभावमें भरे हुए भुजा फैलाकर बडे वेगसे इसप्रकार नृत्य करनेमें प्रवृत्त हुऐ हैं उनके वेगसे सम्पूर्ण पर्वत और पृथ्वी विचलित होनेलगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ महादेवजीने यह देखकर उनका हाथ पकड़ हँसते २ कहा, कि, हे महर्षे ! क्या विचारकर और किसकारणसे नृत्य करतेहो और किसकारणसे आपको इस प्रकार संतोष हुआ है सो कृपाकर कहिये ॥ ४७ ॥ मंकणकजी बोले कि, हे द्विजेन्द्र ! जिसकारणसे मैं आज इसप्रकारसे संतोषित हुआहूं सो आप सुनिये, शरीरशुद्धिके अर्थ तपस्या करते २ मुझे बहुत वर्ष व्यतीत होगये हैं ॥ ४८ ॥ इससमय देखताहूं कि, मेरे हाथोंमेंसे क्षतयोगसे प्राणमार्गद्वारा शाक

ततोगमन्महादेवःसप्तसारस्वतंशुचि ॥ ददर्शनृत्यमानंचऋषिंमंकणसंज्ञितम् ॥ ४५ ॥ भावेनपोप्लूयतिबालवत्सभुजौप्रसार्यैवननर्त्तवेगात् ॥ तस्यैववेगेनसमाहतातुचचालभूर्भूमिधरैःसहैव ॥ ४६ ॥ तंशंकरोऽभ्येत्यकरेनिगृह्यप्रोवाचवाक्यंप्रहसन्महर्षे ॥ किंभावितोनृत्यसिकेनहेतुनावदस्वमामद्यकिमत्रतुष्टिः ॥ ४७ ॥ सब्राह्मणःप्राहममाद्यतुष्टिर्येनेहजाताशृणुतद्द्विजेंद्र ॥ तपस्यतोमेबहवोगताहिसंवत्सराःकायविशोधनार्थम् ॥ ४८ ॥ ततोऽनुपश्यामिकरात्क्षतोत्थंनिर्गच्छतेशाकरसंममेह ॥ तेनातितुष्टोस्मिभृशंद्विजेंद्रयेनास्मिनृत्यामिसुभावितात्मा ॥ ४९ ॥ तंप्राहशंभुर्द्विजपश्यमह्यंभस्मप्रवृत्तंकरतोतिशुक्लम् ॥ संताडनादेवनचप्रहर्षोममास्तिनूनंहिभवान्प्रमत्तः ॥ ५० ॥ श्रुत्वाथवाक्यंवृषभध्वजंतंनत्वामुनिर्मंकणकोमहर्षे ॥ नृत्यंपरित्यज्यसुविस्मितोऽथववंदपादौविनयावनम्रः ॥ ५१ ॥ तमाहशंभुर्द्विजगच्छलोकंतंब्रह्मणोदुर्गमएवयश्च ॥ इदंचतीर्थंप्रवरंपृथिव्यांपृथूदकंस्यात्सुमहत्फलंहि ॥ ५२ ॥ सांनिध्यमत्रैवसुरासुराणांगंधर्वविद्याधरकिंनराणाम् ॥ सदास्तुधर्मस्यनिधानमग्र्यंसारस्वतंपापमलापहारि ॥ ५३ ॥

वृक्षका पका रस निकलने लगा है, हे द्विजेन्द्र ! इसकारण अत्यन्त संतोष उपस्थित होनेसे मैं परमभावयुक्त होकर नृत्य कररहाहूं ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले कि, हे द्विज ! देखो ताड़ना करनेसे मेरे हाथोंसे यह अत्यन्त शुक्लवर्णकी भस्म प्रगट हुई है; परन्तु इसमें हमारे हर्षका विषय कुछभी नहीं है आप अवश्यही मत वाले होगये हैं ॥ ५० ॥ हे महर्षे! मंकणकजीने महादेवजीके इन वचनोंको सुनकर नृत्यको छोड़ अत्यन्त विस्मितहो नम्रता सहित उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ तब महादेवजी उनसे बोले कि, हे द्विज! आप सर्वलोकदुर्गमब्रह्मलोकको जाओ, यह पृथूदक पृथ्वीमें विख्याततीर्थ होकर विख्यात होगा; और महाफलका देनेवाला होगा ॥ ५२ ॥ देवता, गंधर्व, विद्याधर और किन्नरगण सर्वदा यहां विराजमान रहेंगे, इसके अतिरिक्त सर्वदा यह धर्मका निधान

होगा, सर्म्पूण तीर्थोंमें अग्रणीय होगा, और सम्पूर्ण पापोंका हरण करनेवाला होगा ॥ ५३ ॥ सुप्रभा, कांचनाक्षी, सुवेणु, विमलोदका, महोदरा, ओघवती, विमला और सरस्वती ॥ ५४ ॥ यह सप्तसरस्वती यहां नित्य विराजमान रहैंगी और सभी सोमलताके पान करनेके फलकी देनेवाली और परम पुण्यदायक होगी ॥ ५५ ॥ आपभी कुरुक्षेत्रमें गरीयसी मूर्तिको स्थापितकर परमपवित्र दुर्गम ब्रह्मलोकको प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ हे तपोधन ! देवाधिदेव महादेवजीके इस प्रकार कहनेपर वशी मंकणक कुरुक्षेत्रमें मूर्तिको स्थापितकर ब्रह्मलोकको गये ॥ ५७ ॥ मंकणकजीके जातेही पृथ्वी स्थिर हुई महादेवजीभी परमपवित्र अपने स्थानको चलेगये ॥ ५८ ॥ हे द्विज ! महादेवजी जिसकारणसे उस समय तपस्या करनेको गयेथे, जिसकारणसे देवीको देखनेके निमित्त अंधक शून्य पर्वतपर गयाथा

सुप्रभाकांचनाक्षीचसुवेणुर्विमलोदका ॥ महोदराचौघवतीविशालाचसरस्वती ॥ ५४ ॥ एताःसप्तसरस्वत्योनिवासिष्यंतिनित्यशः ॥ सोमपानफलंसर्वाः प्रयच्छंतिसुपुण्यदाः ॥ ५५ ॥ भवानपिकुरुक्षेत्रेमूर्त्तिस्थाप्यगरीयसीम् ॥ गमिष्यतिमहापुण्यंब्रह्मलोकंसुदुर्गमम् ॥ ५६ ॥ इत्येवमुक्तोदेवेनशंकरेणतपोधन ॥ मूर्त्तिस्थाप्यकुरुक्षेत्रेब्रह्मलोकमगाद्वशी ॥ ५७ ॥ गतेमंकणकेपृथ्वीनिश्चलासमजायत ॥ अथागान्मंदरंशंभुर्निर्जनावसथंशुचि ॥ ५८ ॥ एवंतवोक्तंद्विजशंकरस्तुगतस्तदासीत्तपसस्तुशैले ॥ शून्येऽभ्ययाद्द्रष्टुमतीर्हिदेव्यासयोजितोयेनहिकारणेन ॥ ५९ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावोद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ नारदउवाच ॥ गतोंधकस्तुपातालेकिमचेष्टतदानवः ॥ शंकरोमंदरस्थोपियच्चकारतदुच्यताम् ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ पातालस्थोंधकोब्रह्मन्बाद्ध्यतेमदनाग्निना ॥ संतप्तविग्रहःसर्वान्दानवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ समेसुहृत्सममेबंधुःसभ्रातासपितामम ॥ यस्तामद्रिसुतांशीघ्रंममांतिकमुपानयेत् ॥ ३ ॥ एवंब्रुवतिदैत्येंद्रेअंधकेमदनातुरे ॥ मेघगंभीरनिर्घोषंप्रह्लादोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ येयंगिरिसुतावीरसामाताधर्मतस्तव ॥ पितात्रिणयनोदेवःश्रूयतामत्रकारणम् ॥ ५ ॥

सो मैंने तुम्हारे निकट कहा ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां मंकणकोपाख्यानं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

नारदजी बोले कि, अंधकने पातालमें जाकर क्या किया था और महादेवजीने मंदराचलपर विराजमान हो जो कियाथा सो कहिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अंधक पातालमें जा मदनानलमें दग्ध होनेलगा, उसका शरीर संतप्त होगया, इस अवस्थामें वह दानवोंसे बोला ॥ २ ॥ कि, जो मनुष्य उस शैलेन्द्रकुमारीको शीघ्रही मेरे स्थानपर लावेगा वही मेरा यथार्थ बंधु है, वही मेरा भ्राता, वही मेरा पिता और वही मेरा मित्र है ॥ ३ ॥ दैत्येन्द्र अंधक मदनातुर हो इस प्रकारके वचन कहने लगा, प्रह्लादजी मेघके गंभीर स्वरकी समान उससे यह वचन बोले ॥ ४ ॥ कि, हे वीर ! यह गिरिनंदिनी धर्मसे तुम्हारी माता और शिवजी

तुम्हारे पिता हैं, इसका कारण सुनिये ॥ ५ ॥ हे दानव ! तुम्हारे पिता सर्वदा धर्ममें आसक्त रहतेथे उनके कोई पुत्र नहीं हुआ, तब पूर्वकालमें उन्होंने पुत्रकी इच्छासे महादेवजीकी पूजाकी ॥ ६ ॥ महादेवजी उनकी पूजासे संतुष्ट हो बोले कि, मैं ने तुमको पुत्र दिया, देतेहुए उस पुत्रकी इच्छा करनेवाले दैत्यसे यह वचन कहे ॥ ७ ॥ हे हिरण्याक्ष ! मेरे योगमें स्थितहोनेपर गिरिपुत्रीने नर्म (क्रीडा) सहित मेरे तीनों नेत्रोंको एकसाथ बंद किया, उससे अंधकार प्रगट हुआ ॥ ८ ॥ उसी अंधकारसे यह नीलवर्ण घनस्वन (मेघ समान गंभीर शब्दवाला) भूत प्रगट हुआहै, हे दैत्य ! यह तुम्हारे योग्य पुत्र है, इसकारण इसको ग्रहण करो ॥ ९ ॥ तुम्हारा यह पुत्र जब लोकनिन्दित कार्य करने लगेगा अथवा जब यह अधम त्रिलोकीकी माताकी अभिलाषा करेगा ॥ १० ॥ या जब ब्राह्मणोंका निरादर कर उनकी हत्या करेगा तब मैं स्वयं

तवपित्रात्वपुत्रेणधर्मोनित्येनदानव ॥ आराधितोहरोदेवःपुत्रार्थायपुराकिल ॥ ६ ॥ तस्मैत्रिलोचनेनासीद्दत्तोंधोप्येवदानवः ॥ पुत्रकःपुत्रकामस्यप्रोक्त्वेत्थं वचनंविभो ॥ ७ ॥ नेत्रत्रयंहिरण्याक्षसनर्मसुतयामम ॥ पिहितंयोगसंस्थस्यततोर्ध्वमभवत्तमः ॥ ८ ॥ तस्माच्चतमसोजातोभूतोनीलघनस्वनः ॥ तदिदं गृह्यतांदैत्यतवौपयिकमात्मजम् ॥ ९ ॥ यदातुलोकविद्विष्टंकर्मचायंकरिष्यति ॥ त्रैलोक्यजननींचापित्वभिवांछिष्यतेऽधमः ॥ १० ॥ घातयिष्यतिवा विप्रंयदाप्रक्षिप्यचासुर ॥ तदास्यस्वयमेवाहंकरिष्येकायशोषणम् ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वागतःशंभुःस्वस्थानंमंदराचलम् ॥ त्वत्पितापिक्षमभ्यागात्त्वामा दायरसातलम् ॥ १२ ॥ एतेनकारणेनांबाशैलजातवदानव ॥ सर्वस्यापीहजगतोगुरुःशंभुःपिताध्रुवम् ॥ १३ ॥ भवानपितथायुक्तःशास्त्रवेत्तागुणाद्भुतः ॥ नेदृशेपापसंकल्पेमतिंकुर्याद्भवद्विधः ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यप्रभुरव्यक्तोभवःसर्वैर्नमस्कृतः ॥ अजेयस्तस्यभार्येयंनत्वमर्होऽमरार्दन ॥ १५ ॥ नचापिशक्तः संप्राप्तुंशैलराजात्मजांशुभाम् ॥ अजित्वासगणंरुद्रंसचकामोथदुर्लभः ॥ १६ ॥

इसके शरीरको नाश करूंगा ॥ ११ ॥ यह कहकर शिवजी अपने स्थान मंदराचलको चलेगये, तुम्हारे पिताभी तुम्हें लेकर रसातलमें लेआये ॥ १२ ॥ हे दानव ! इस कारणसे पार्वती तुम्हारी माताकी जगहमें हैं. सारांश यह है कि, शंभु सम्पूर्ण जगत्के गुरु और पिता हैं इसको तुम निश्चय जानो ॥ १३ ॥ तुमभी तो सम्पूर्ण शास्त्रके जाननेवाले अद्भुतगुणोंसे भूषित और सर्वदा युक्ति ज्ञानसे सुशोभित हो, इसकारण आपकी समान पुरुष कदापि ऐसे पापकार्यमें अपनी बुद्धिको नहीं लगाते ॥ १४ ॥ अव्यक्तस्वरूप महादेवजी साक्षात् त्रिलोकीके प्रभु हैं, सब लोगोंके नमस्कार करनेयोग्य और अजेय हैं, वह शैलकुमारी उनकी भार्या है, इसकारण हे अमरारि ! तुम कभीभी उनमें कामना नहीं करसकते ॥ १५ ॥ और उनके पानेकी तुममें कुछभी सामर्थ्य नहीं है कारण कि,

सहित महादेवजीको विना पराजित किये कोई भी ऐसी अभिलाषा करके सफल मनोरथ नहीं हासकता ॥ १६ ॥ जो मनुष्य भुजाओंसे समुद्रके तरनेको समर्थ हो अथवा जो सूर्यको आकाशसे पतित करनेमें समर्थ हो, या जो मेरुपर्वतको उखाड नेकी सामर्थ्य रखता हो, वह शूलपाणि महादेवजीको जीत सकेगा, अर्थात् उनको जीतना असम्भव है ॥ १७ ॥ हे महाबल ! तुम क्या इन सम्पूर्ण कार्योंके करनेमें समर्थ हो, मैं सत्यही सत्य कहताहूं कि, तुम महादेवजीके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानसकते ॥ १८ ॥ हे दैत्य ! क्या तुमने नहीं सुना है कि, दंडनामक राजा पराई स्त्रीकी इच्छाके वशसे ज्ञानहीन हो, राज्यके सहित विनष्ट होगयाथा॥ १९॥ पूर्वकालमें दंडनामका एक राजाथा, वह अपार बलवाहनोंसे युक्त था, उसने परमतेजस्वी भार्गव (शुक्राचार्य) को अपना पुरोहित किया ॥ २० ॥ इसके उपरान्त उसने भार्गवके द्वारा रक्षित होकर विविधभाँतिके यज्ञ किये थे, भार्गवके अरजा नामकी एक कन्या थी ॥ २१ ॥ शुक्र एक समय वृषपर्वाके पास गये थे, वहाँ उनसे

यस्तरेत्सागरंदोर्भ्यांपातयेद्भूविभास्करम् ॥ मेरुमुत्पाटयेद्वापिसजयेच्छूलपाणिनम् ॥ १७ ॥ उताहोस्विदिमांशक्तःक्रियांकर्तुंमहाबलः ॥ नचशक्यो
हरोज्ञातुंसत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ १८ ॥ किंत्वयानश्रुतंदैत्ययथादंडोमहीपतिः ॥ परस्त्रीकामनामूढःसराष्ट्रोनाशमाप्तवान् ॥ १९ ॥ आसीद्दंडोनामनृपः
प्रभूतबलवाहनः ॥ सचवव्रेमहातेजाःपौरोहित्यायभार्गवम् ॥ २० ॥ ईजेचविविधैर्यज्ञैर्नृपतिःशुक्रपालितः ॥ शुक्रस्यासीच्चदुहिताअरजानामनामतः ॥
॥ २१ ॥ शुक्रःकदाचिदगमद्वृषपर्वाणमासुरम् ॥ तेनार्चितश्चिरंतत्रतस्थौभार्गवसत्तमः ॥ २२ ॥ अरजाःस्वगृहेवह्निंशुश्रूषंतीमहासुर ॥ अतिष्ठतसुचार्वं
गीततोभ्यागान्नराधिपः ॥ २३ ॥ सपप्रच्छक्वशुक्रोस्तितमूचुःपरिचारिकाः ॥ गतःसभगवाञ्छुक्रोयाजनायदनोःसुतम् ॥२४॥ पप्रच्छनृपतिःकातुतिष्ठते
भार्गवाश्रमे ॥ तास्तमूचुर्गुरोःपुत्रीसंतिष्ठत्यरजानृप ॥ २५ ॥ तामाश्रमेशुक्रसुतांद्रष्टुमिक्ष्वाकुनंदनः ॥ प्रविवेशमहाबाहुर्ददर्शारजसंततः ॥ २६ ॥
तांदृष्ट्वाकामसंतप्तस्तत्क्षणादेवपार्थिवः ॥ संजातोंधकदंडश्चकृतांतबलचोदितः ॥ २७ ॥

पूजित होकर बहुत समयतक रहे ॥ २२ ॥ हे महासुर ! अतिसुन्दरांगी अरजा अपने गृहमें अग्निकी सेवा कर रहने लगी, इसी अवसरमें पृथ्वीपति दंड वहाँ जा पहुँचा ॥ २३ ॥ उन्होंने पूँछा कि, शुक्र कहां हैं, तब परिचारिकाओं (अरजाके शुश्रूषार्थ नियुक्त स्त्रियों) ने उत्तर दिया कि, भगवान् भार्गव याजनार्थ वृषपर्वा दानवके निकट गये हैं ॥ २४ ॥ राजाने पूछा कि, भार्गवके आश्रममें कौन स्त्री विराजमान है, उसने उत्तर दिया कि; राजन् ! वह गुरुजीकी कन्या अरजा रहती है ॥ २५ ॥ यह वचन सुन महाबाहु इक्ष्वाकुनंदन दंडराजा शुक्रदुहिताको देखनेके निमित्त आश्रमके भीतर गये, और जाकर अरजाको देखा ॥ २६ ॥ यह (अरजा) देखतेही उसी समय दुर्भाग्यके बलसे प्रेरित हो उसकेविषे कामके वशीभूत हो दग्ध होनेलगे ॥ २७ ॥

इसके उपरान्त महाबलवान् दंड सेवक बंधु और मित्र और शुक्रके शिष्य इन सबको वहाँसे बाहरकर आप इकलेही उसके पीछे २ जानेलगे ॥ २८ ॥
हे दानव ! उनको आताहुआ देख शुक्रनंदिनी यशस्विनी अरजा उठ खड़ीहुई और अत्यन्त हर्षित हो भ्रातृभावसे इनकी पूजा की ॥ २९ ॥ राजाने उससे कहा कि,
हे बाले ! मैं कामाग्निसे दग्ध हो रहाहूं, अपने आलिंगनरूपी जलसे उसको बुझाकर मुझे प्रसन्न करो ॥ ३० ॥ अरजाने विनीतभावसे उस असुरभावमें स्थित नरवरको
उत्तर दिया कि, हे नृपति श्रेष्ठ ! मेरे पिता बड़े क्रोधी हैं, वह देवताओंकोभी दग्ध करसकते हैं ॥ ३१ ॥ हे मूढ़बुद्धि ! तुम मेरे आश्रममें स्वयं उपस्थित हुए हो, मैं धर्मसे
तुम्हारी भगिनीहूं कारण कि, तुम मेरे पिताके शिष्य हो ॥ ३२ ॥ दंडजी बोले कि, हे भीरु ! शुक्र तो कुछकालके अनन्तर हमें दग्ध करेंगे, परन्तु हे तनुमध्यमें कामाग्नि
तो इसीसमय हमें दग्ध करडालता है ॥ ३३ ॥ अरजा बोली राजन् ! एक मुहूर्त्तठहरो, पिताजी आतेहैं उनके निकट अपनी इच्छा प्रकाश करना वह मुझे अवश्यही

विसर्जयामासतदाभृत्यान्भ्रातॄन्सुहृत्तमान् ॥ शुक्रशिष्यानपिबलीएकाकीपृष्ठआव्रजत् ॥ २८ ॥ तमागतंशुक्रसुताप्रत्युत्थाययशस्विनी ॥ पूजयामाससं
हृष्टाभ्रातृभावेनदानव ॥ २९ ॥ ततस्तामाहनृपतिर्बालेकामाग्नितापितम् ॥ मांसमाह्लादयस्वाद्यस्वपरिष्वंगवारिणा ॥ ३० ॥ सापिप्राहनरश्रेष्ठंसुविनी
तातमासुरम् ॥ पितामममहाक्रोधीत्रिदशानपिनिर्दहेत् ॥ ३१ ॥ मूढबुद्धेभवान्भ्राताममापिस्वयमागतः ॥ भगिनीधर्मतस्तेहंभवाञ्छिष्यःपितुर्मम ॥ ३२ ॥
सोब्रवीद्भीरुमांशुक्रःकालेनपरिधक्ष्यति ॥ कामाग्निर्निर्दहतिमामद्यैवतनुमध्यमे ॥ ३३ ॥ साप्राहदंडंनृपतिंमुहूर्तंपरिपालय ॥ तमेवयाचस्वगुरुंसते
दास्यत्यसंशयम् ॥ ३४ ॥ दंडोब्रवीत्सुतन्वंगिकालक्षेपोनमेक्षमः ॥ हुतावसरकर्तृत्वेविघ्नमायातिसुंदरि ॥ ३५ ॥ ततोब्रवीच्चविरजानाहंत्वांपार्थिवात्मज ॥
दातुंशक्तातथात्मानमस्वतंत्राहियोषितः ॥ ३६ ॥ किंवातेबहुनोक्तेनद्राक्कंनाशंनराधिप ॥ गच्छस्वशुक्रशापेनसभृत्यज्ञातिबांधवः ॥ ३७ ॥ ततोऽब्रवीन्नरपतिः
सुतनुशृणुचेष्टितम् ॥ चित्रांगदायायद्वृत्तंपुरादेवयुगेशुभे ॥ ३८ ॥ विश्वकर्मसुतासाध्वीनाम्नाचित्रांगदाभवत् ॥ रूपयौवनसंपन्नापद्महीनातुपद्मिनी ॥ ३९ ॥

प्रदान करेंगे, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३४ ॥ दंड बोले कि, हे कृशाङ्गी ! मुझे किंचित्भी समयके व्यतीत करनेकी सामर्थ्य नहीं है; हे सुन्दरि ! हुतावरस कर्तृत्वमें
विघ्न होतेही हैं ॥ ३५ ॥ तब अरजा बोली कि, हे पार्थिवनंदन ! स्त्रीजाति स्वाधीन नहीं है इसकारण मैं किसी प्रकारभी आत्मप्रदान नहीं करसकती ॥ ३६ ॥
तुम्हारे अब बहुत कहनेसे क्या होगा, तुम शुक्रके शापसे सेवक, ज्ञाति और बंधु बांधवोंके सहित विनष्ट न हो ॥ ३७ ॥ दंडकने यह वचन सुन उत्तर दिया कि,
हे सुतनु ! पहले परमपवित्र देवयुग (सतयुग) में चित्राङ्गदाने जिसप्रकारका व्यवहार किया था सो सुनो ॥ ३८ ॥ विश्वकर्माके चित्राङ्गदानामसे विख्यात
एक कन्या थी, जैसी साध्वी थी उसी प्रकारके रूप और यौवनसे युक्त थी, उस पद्मिनी चित्राङ्गदाने अपनी सुकुमारतासे कमलकाभी निरादर करदिया था ॥ ३९ ॥

वह निमिषमें स्नानकरनेके लिये उतरीही थी कि, इसी अवसरमें सुदेवका पुत्र पृथ्वीपति बुद्धिमान् सुरथ आपहुँचा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ चित्रांगदा सखीजनसे घिरीहुई सखियोंसे धैर्ययुक्त यह वचन बोली कि, यह नृपतिनंदन मदनके बाणसे संतापित होरहा है ॥ ४२ ॥ इसकारण-मुझे इस परमसुन्दर राजनंदनको आत्मदान करना सर्वथा उचित है, सखियोंने कहा कि, हे सुन्दरि ! तुम बाला और अप्रगल्भा हो ॥ ४३ ॥ हे अनघे ! आत्मदान करनेमें तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है. कारण कि, तुम्हारे पिता हैं वह परम धार्मिक और सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवाले हैं ॥ ४४ ॥ इसकारण स्वयं सिद्ध होकर राजाको आत्मदान करना तुम्हें कदापि उचित नहीं. सखियें इसप्रकार कहही रहीं थीं कि, इसी समयमें सत्यसम्पन्न परमपवित्रस्वभाव राजा सुरथ ॥ ४५ ॥ कामदेवसे पीड़ितहो वहाँ आ चित्रांगदासे बोले कि, हे मुग्धे ! हे मदिरेक्षणे ! तुम्हें

साकदाचिन्महारण्यंसखीभिःपरिवारिता ॥ जगामनिमिषंनामस्नातुंकमललोचना ॥ ४० ॥ सास्नातुमवतीर्णाचअथाभ्यागान्नरेश्वरः ॥ सुदेवतनयोधीमान्सुरथोनामनामतः ॥ ४१ ॥ संवृतासासखीःप्राहवचनंसत्त्वसंयुतम् ॥ असौनराधिपसुतोमदनेनकदर्थ्यते ॥ ४२ ॥ यदर्थैचक्षमंमेस्यस्वप्रदानंसुरूपिणः ॥ सख्यस्तामब्रुवन्बालाअप्रगल्भासिसुंदरि ॥ ४३ ॥ अस्वातंत्र्यंतवास्तीहप्रदानेस्वात्मनोनघे ॥ पितातवास्तिधर्मिष्ठःसर्वशास्त्रविशारदः ॥४४॥ नतेयुक्तमिहात्मानंदातुंनरपतेःस्वयम् ॥ एतस्मिन्नंतरेराजासुरथःसत्यकःशुचिः ॥ ४५ ॥ समभ्येत्याब्रवीदेनांकंदर्पशरपीडितः ॥ त्वंमुग्धेमोहयासिमांदृष्टैवमदिरेक्षणे ॥ ४६ ॥ त्वद्दृष्टिशरबाणेनस्मरेणाभ्येत्यताडितः ॥ तन्मांकुचतलेतल्पेअभिशाययितुमर्हसि ॥ ४७ ॥ नोचेत्प्रधक्ष्यतेकामोभूयोभूयोतिदर्शनात् ॥ ततःसाचारुसर्वांगीराज्ञोराजीवलोचना ॥४८॥ वार्यमाणासखीभिस्तुप्रादादात्मानमात्मना ॥ एवंपुरातयातन्व्यापरित्रातःसभूपतिः॥४९॥ तस्मात्त्वमपिसुश्रोणिमांपरित्रातुमर्हसि ॥ अरजस्काब्रवीद्दंडंतस्यायद्वृत्तमुत्तमम् ॥ ५० ॥ किंत्वयानपरिज्ञातंतस्मात्तत्कथयाम्यहम् ॥ तदातयातुतन्व्यासुरथस्यमहीपतेः ॥ ५१ ॥

देखतेही मैं मोहित होगयाहूं ॥ ४६ ॥ मदनने आकर तुम्हारी दृष्टिरूपी बाणोंसे मेरे आघात कियेहैं, इसकारण तुम मुझे अपने कुचोंके नीचे शयन कराओ ॥ ॥ ४७ ॥ नहीं तो वारम्वार तुम्हारे दर्शनके प्रभावसे काम मुझे भस्मीभूत कर डालेगा, राजाके यह वचन सुन चारुसर्वांगी राजीवलोचना चित्रांगदाने ॥ ४८ ॥ सखियोंके रोकनेपरभी आपने स्वयं अपनेको दान किया, इसप्रकारसे पहले उस कृशांगीने राजा सुरथका उद्धार कियाथा ॥ ४९ ॥ इसकारण हे सुश्रोणि ! तुमभी हमारा उद्धार करो. शुक्रनंदिनी अरजाने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! चित्रांगदाका परिणाममें जो हुआ था ॥ ५० ॥ वह क्या तुम्हें विदित नहीं है ?

मैं कहती हूं सुनो, जब उस तन्वंगी चित्रांगदाने राजा सुरथको ॥ ५१ ॥ स्वयं सिद्ध होकर आत्मदान किया तब उसके पिताने उसे इसप्रकार शाप देकर कहा कि, हे मंदचेतसे ! तुमने स्त्रीस्वभावसे धर्मको परित्याग कर अपनेको दान कियाहै इसकारणसे तुम्हारा विवाह नहीं होगा, विवाहरहित होकर तुम पतिके सुखसे वंचित रहोगी॥ ५२ ॥ ५३ ॥ और न तुम्हारे पुत्र होगा, और न पतिके साथ संयोग पाओगी, यह शापके वचन कहतेही सरस्वती उस ॥ ५४ ॥ अकृतार्थ राजाको उसीसमय तेरह योजन दूर बहाकर लेगई, राजाके बहजानेपर चित्रांगदा मोहके वशीभूत हुई॥ ५५ ॥ तब सखियेंने मिलकर चित्रांगदाके ऊपर सरस्वतीका शीतल जल छिड़का, चित्रांगदा उस अत्यन्त शीतल जलके छिड़कनेसे वह विश्वकर्मनंदिनी उत्साहके हत होनेसे मृतककी समान होगई, तब सखियें उस चित्रांगदाको मृतककी समान जानकर

आत्माप्रदत्तःस्वातंत्र्यात्ततस्तामशपात्पिता ॥ यस्माद्धर्मंपरित्यज्यस्त्रीभावान्मंदचेतसे॥ ५२ ॥ आत्माप्रदत्तस्तस्माद्धिनविवाहोभविष्यति ॥ विवाहर
हितानैवसुखंलप्स्यासिभर्तृतः ॥ ५३ ॥ नचपुत्रफलंनैवपतिनायोगमेष्यसि ॥ उत्सृष्टमात्रेशापेतुह्यपोवाहसरस्वती ॥ ५४ ॥ अकृतार्थंनरपतिंयोजनानि
त्रयोदश ॥ अपकृष्टेनरपतौसापिमोहमुपागता ॥ ५५ ॥ ततस्ताःसिषिचुःसर्वासरस्वत्याजलेनहि ॥ सासिच्यमानासुतरांशिशिरेणाथवारिणा ॥ ५६ ॥
मृतकल्पाहतोत्साहाविश्वकर्मसुताभवत् ॥ तांमृतामिवविज्ञायजग्मुःसख्यस्त्वरान्विताः ॥ ५७ ॥ आहर्त्तुमपराःकाष्ठंवह्निमानेतुमाकुलाः ॥ साचतास्व
पिसर्वासुगतासुवनमुत्तमम् ॥५८॥ संज्ञांलेभेसुचार्वंगीदिशश्चेत्यवलोक्यच ॥ अपश्यंतीनरपतिंतथास्निग्धंसखीजनम् ॥ ५९ ॥ निपपातसरस्वत्यांपयो
भिस्तरलेक्षणा ॥ तांवेगात्कांचनाक्षीतुमहानद्यांनरेश्वर ॥ ६० ॥ गोमत्यांचप्रचिक्षेपतरंगकुटिलेजले ॥ तयापितस्यास्तद्भाव्यंविदित्वाथविशांपते ॥
॥ ६१ ॥ महावनेपरिक्षिप्तासिंहव्याघ्रसमाकुले ॥ एवंतस्याःस्वयंतत्रयात्ववस्थाश्रुतामया ॥ ६२ ॥ तस्मान्नदास्याम्यात्मानंरक्षंतीशीलमुत्तमम् ॥
तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वादंडःशक्रसमोबली ॥ विहस्यत्वरजांप्राहस्वार्थमंगक्षयंकरम् ॥ ६३ ॥

शीघ्रही वहांसे गईं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उनमेंसे कोई तो काठ लानेमें लगीं, और कोई अग्नि लानेके लिये व्याकुल हुईं, जब वह सभी उत्तम वनमें गईं ॥ ५८ ॥ तभी सुचार्वंगी चित्रांगदाने चैतन्य प्राप्त की और दशों दिशाओंको देखकर जब नरपति वा परमप्यारी सखी इन किसीको न देखा ॥ ५९ ॥ तब नेत्रोंसे अश्रुजल बहाती हुई सरस्वतीके जलमें गिरी, हे नरेश्वर ! तब काञ्चनाक्षी सरस्वतीने शीघ्रतासे उसको महानदी ॥ ६० ॥ गोमतीके बीच तरंगोंसे कुटिलजलके बीचमें फेंका हे विशांपते ! उस गोमतीनेभी उसके होनहारको जानकर ॥ ६१ ॥ सिंह और व्याघ्रोंसे परिपूर्ण महावनमें उसे फेंका, इसप्रकारसे वहाँ उसकी जैसी अवस्था हुई थी वह मैंने सुनी है ॥ ६२ ॥ इस निमित्त मैं आत्मदान नहीं करूंगी, अपने सच्चरित्रोंकी सब प्रकारसे रक्षा करूंगी, इन्द्रकी समान

बलशाली दंड उसके यह वचन सुनकर हँसते २ उस अरजासे बोले ॥ ६३ ॥ हे कृशोदरि ! उस चित्राङ्गदाके, उसके पिता और राजा सुरथके परिणाममें जो हुआ था उसको मैं कहताहूं तुम सुननेके लिये सावधान हो ॥ ६४ ॥ राजाके इसप्रकार बह जानेपर चित्रांगदा महावनमें जाकर रही तब आकाशमें फिरनेवाले किसी गुह्यक (देवयोनिविशेष) ने उसे देखा ॥६५॥ तब वह गुह्यक उसे देखकर यत्नपूर्वक संभाषणके साथ बोला कि, हे सुभगे ! आओ ! मैं तुम्हैं सुरथके निकटको ले चलूं ॥ ६६ ॥ हे असितेक्षणे ! तुम अवश्यही उनके साथ मिलेगी इसकारण तुम शीघ्र भगवान् श्रीकंठके पासको चलो ॥ ६७ ॥ उस गुह्यकके ऐसा कहनेपर वह सुलोचना चित्रांगदा शीघ्रही कालिंदीके दक्षिण उत्तरमें प्रतिष्ठित भगवान् श्रीकंठके पासको गई ॥ ६८ ॥ यहां कालिन्दीके जलसे स्नानकर

दंडउवाच ॥ तस्यायदुत्तरंवृत्तंतत्पितुश्चकृशोदरि ॥ सुरथस्यतथाराज्ञस्तच्छ्रोतुंमतिमादधे ॥ ६४ ॥ यदाप्रकृष्टेनृपतौपतितासामहावनम् ॥ तथागगनसं
चारीदृष्टवान्गुह्यकोजनः ॥ ६५ ॥ ततःसोभ्येत्यतांबालांपरिभाष्यप्रयत्नतः ॥ प्राहचागच्छसुभगेनयातिसुरथंप्रति ॥ ६६ ॥ ध्रुवमेष्यसितेनत्वंसंयो
गमसितेक्षणे ॥ तस्माद्गच्छस्वशीघ्रंत्वंद्रष्टुंश्रीकंठमीश्वरम् ॥६७॥ इत्येवमुक्तासातेनगुह्यकेनसुलोचना ॥ श्रीकंठमागतातूर्णंकालिंद्यादक्षिणोत्तरम्॥६८॥
दृष्ट्वामहेशंश्रीकंठंस्नात्वारविसुताजले ॥ अतिष्ठताशिरोनम्रायावन्मध्येस्थितोरविः ॥ ६९ ॥ अथाजगामदेवस्यस्नानंकर्तुंतपोधनः ॥ शुभःपाशुपताचार्यः
सामवेदीऋतुध्वजः ॥ ७० ॥ रुदतीमिवसंस्थितांतामनंगपरिवर्जिताम् ॥ तांदृष्ट्वासमुनिर्ध्यानमगमत्केयमित्यथ ॥ ७१ ॥ अथसातमृषिंवंद्यकृतांजलिरुप
स्थिता ॥ तांप्राहपुत्रिकस्यासिसुतासुरसुतोपमा ॥ ७२ ॥ किमर्थमागतासीहनिर्मनुष्यमृगेवने ॥ ततःसाप्राहतमृषिंयाथातथ्यंकृशोदरी ॥ ७३ ॥ श्रुत्वर्षिःकोपमगमदशपच्छिल्पिनांवरम् ॥ यस्मात्स्वतनुजातेयंपरदेयापिपापिना ॥ ७४ ॥

उन महेश्वरका दर्शन किया और मध्याह्नभर शिरझुकाये वहाँ स्थितिकी ॥ ६९ ॥ इसी अवसरमें शुभलक्षणयुक्त पाशुपताचार्य सामवेदी तपोधन ऋतध्वज श्रीकंठको स्नान करानेके निमित्त वहाँ आये ॥ ७० ॥ कामसंभोग वर्जित उस चित्रांगदाको रोदन करतीहुई देखकर, ऋतध्वज, “ यह कौन है ” ? इसप्रकारकी चिन्ता करनेलगे ॥ ७१ ॥ इसके उपरान्त चित्रांगदाने हाथ जोड़ इनके निकट आ प्रणाम किया तब वह इससे बोले कि, हे वत्से ! तुम साक्षात् देवताओंकी पुत्रीकी समान किसकी कन्या हो ॥ ७२ ॥ और किसकारणसे इस मनुष्यशून्यवनमें आई हो ? उस कृशोदरी चित्रांगदाने अपना समस्त वृत्तान्त ज्योंका त्यों इन्हैं कहसुनाया ॥ ७३ ॥ ऋषि यह सुन अत्यन्त क्रोधित हुए और विश्वकर्माको शाप देकर बोले कि, जिसनिमित्त पापी विश्वकर्माने इस परदेया

(औरको देनेयोग्य) अपनी पुत्रीको ॥ ७४ ॥ पतिके साथ मिलन न कराया इसी कारणसे वह वानरकी योनिमें जायगा, यह कहकर उन महाभाग ऋतध्वजने
विधिपूर्वक पुनर्वार स्नानकर ॥ ७५ ॥ सायं संध्यावंदनादिसे निश्चित हो महादेवजीकी पूजा की. फिर यथारीतिसे देवाधिदेव शंकरकी अभ्यर्थना कर ॥ ७६ ॥ उस
पतिकी इच्छाकरनेवाली रोदन करनेमें रत सुभ्रू चित्रांगदासे बोले कि, हे सुभगे ! उत्तम सप्तगोदावरीको जाओ ॥ ७७ ॥ महाविशाल स्वरूप हाटकेश्वर महादेवजीकी उपासना
कररहो वहाँ तुम्हारे कुछ दिन ठहरनेपर हे रम्भोरु ! एकसमय कंदरमाली नामक दैत्यकी पुत्री देववती नामसे विख्यात है, वह और इसके उपरान्त अंजननामक गुह्यककी
पुत्री दमयन्ती नामसे विख्यात हो वहाँ आवेगी, और पर्जन्यकी दुहिता वेदवती नामसे प्रसिद्ध वह तपस्वीभी वहाँ आवेगी॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जब इसप्रकारसे वह

योजितानैवपतिनातस्माच्छाखामृगोऽस्तुसः ॥ इत्युक्त्वासमहाभागोभूयःस्नात्वाविधानतः ॥ ७५ ॥ उपास्यपश्चिमांसंध्यांपूजयामासशंकरम् ॥ संपूज्यदेवदेवेशं
यथोक्तविधिनाहरम् ॥ ७६ ॥ उवाचागम्यतांसुभ्रूंरुदंतींपतिलालसाम् ॥ गच्छस्वसुभगेदेशंसप्तगोदावरंशुभम् ॥ ७७ ॥ तत्रोपास्यमहादेवंमहांतं
हाटकेश्वरम् ॥ तत्रस्थितायारंभोरुख्यातादेववतीशुभा ॥ ७८ ॥ आगमिष्यतिदैत्यस्यपुत्रीकंदरमालिनः ॥ तथान्यागुह्यकसुतादमयंतीतिविश्रुता ॥
॥ ७९ ॥ अंजनस्यापितत्रापिसमेष्यतितपस्विनी ॥ तथापरावेदवतीपर्जन्यदुहिताशुभा ॥ ८० ॥ यदातिस्रःसमेष्यंतिसप्तगोदावरेजले ॥ हाटकाख्ये
महादेवेतदासंयोगमेष्यसि ॥ ८१ ॥ इत्येवमुक्तामुनिनाबालाचित्रांगदातदा ॥ सप्तगोदावरंतीर्थमगमत्त्वरिताततः ॥ ८२ ॥ संप्राप्यतत्रदेवेशंपूजयंती
त्रिलोचनम् ॥ समध्यास्तेशुचिपराफलमूलाशनाभवत् ॥८३॥ सचर्षिर्ज्ञानसंपन्नःश्रीकंठायततोऽलिखत् ॥ श्लोकंत्वेकंमहात्मानंतस्याश्चप्रियकाम्यया ॥
॥ ८४ ॥ नसोऽस्तिकश्चित्त्रिदशोऽसुरोवायक्षोथमर्त्योरजनीचरोवा ॥ इदंहिदुःखंमृगशावनेत्र्यानिमार्जयेद्यःस्वपराक्रमेण ॥ ८५ ॥ इत्येवमुक्त्वासमुनिर्जगामद्रष्टुंविभुंपुष्करनाथमीड्यम् ॥ नदींपयोष्णींमुनिवृंदवंद्यांसंचिंतयन्नेवविशालनेत्राम् ॥ ८६ ॥

तीनों सप्तगोदावरीके जलमें हाटकेश्वरमहादेवजीके समीप स्नान करनेके निमित्त एकत्रित होंगी तब तुम अपने पतिसे मिलोगी॥ ८१ ॥ मुनिके इसप्रकार कहनेपर वह बाला
चित्रांगदा शीघ्रही सप्तगोदावरीतीर्थको गई ॥ ८२ ॥ वहाँ जाय पवित्रतापूर्वक फलमूलादिका भक्षण कर देवाधिदेव महादेवजीकी पूजा करतीहुई रहनेलगीं ॥ ८३ ॥
इस ओर उन ज्ञानवान् ऋतध्वजने उसकी प्रियकामनाके वश हो श्रीकंठके उद्देश्यसे यह श्लोक बनाये, और लिखकर उनके निकट भेजदिये ॥ ८४ ॥ कि, ऐसा
कोईभी देवता, वा असुर, यक्ष मनुष्य अथवा राक्षस नहीं है जो अपने पराक्रमसे इस मृगलोचनी चित्रांमदाका दुःख दूरकरसके ॥ ८५ ॥ इसप्रकारसे श्लोकोंको

लिख सबके पूजनीय सर्वव्यापी पुष्करनाथके दर्शनके अर्थ मुनिवृन्द वंदिता पयोष्णी नदीको गये, जानेके समय विशालनयना चित्रांगदाकी चिन्ता करने लगे ॥८६॥
इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां भैरवप्रादुर्भावे दंडोपाख्याने विश्वकर्माशापदाने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ दंडकजी बोले कि, हे अरजे ! चित्रांगदाने वीर सुरथके ध्यानमें
व्याप्त हो वहां यथासुखसे निवासकर बहुत समय व्यतीत किया॥ १ ॥ विश्वकर्माजीभी मुनिसे शापित हो वानरयोनिको प्राप्तकर विधिकी इच्छासे मेरुपर्वतके शिखरसे पृथ्वीके
ऊपर गिरे ॥ २ ॥ हे सुन्दरि ! वह शलूकिनी नदीके किनारे नानालतागुल्मपरिपूर्ण घोरवनमें पर्वतश्रेष्ठपर वास करने लगे ॥ ३ ॥ हे वरारोहे ! वहां फलमूलादिको भक्षण
कर उन्होंने बहुतवर्ष व्यतीत किये ॥ ४ ॥ एक समय दैत्यशार्दूल कन्दर अपनी प्यारी कन्याको साथ लियेहुए वहां आये, उनकी पुत्री देववती नामसे स्वर्गमें विख्यात थी

इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेदंडोपाख्यानेत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ दंडउवाच ॥ चित्रांगदायास्त्वरजेतत्रसत्यायथासुखम् ॥ स्मरंत्यासुरथं
वीरंमहान्कालःसमभ्यगात् ॥ १ ॥ विश्वकर्मापिमुनिनाशप्तोवानरतांगतः ॥ न्यपतन्मेरुशिखराद्भूपृष्ठंविधिनोदितः ॥ २ ॥ वनंघोरंसुगुल्माढ्यंनंदीं
शालूकिनीमनु ॥ सत्वेवंपर्वतश्रेष्ठंसमावसातिसुंदरि ॥ ३ ॥ तत्रासतोऽस्यसुचिरंफलमूलान्यथाश्नतः ॥ कालोत्यगाद्वरारोहेबहुवर्षगणोवने ॥ ४ ॥
एकदादैत्यशार्दूलःकंदराख्यःसुतांप्रियाम् ॥ प्रतिगृह्यसमभ्यागात्ख्यातांवेदवतींदिवि ॥ ५ ॥ तांचतद्वनमायातांसमंपित्रावराननाम् ॥ ददर्शवानरश्रेष्ठः
प्रजग्राहबलात्करे ॥ ६ ॥ ततोगृहीतांकपिनासदैत्यःस्वसुतांशुभे ॥ कंदरोवीक्ष्यसंक्रुद्धःखड्गमुद्यम्यचाद्रवत् ॥ ७ ॥ तमापतंतंदैत्येंद्रंदृष्ट्वाशाखामृगो
बली ॥ तथैवसहचार्वंग्याहिमाचलमुपागमत् ॥८॥ ददर्शचमहादेवंश्रीकंठंयमुनातटे ॥ तस्याविदूरेगहनमाश्रमंऋषिवर्जितम् ॥९॥ तस्मिन्महाश्रमेपुण्ये
स्थाप्यदेववतींकपिः ॥ न्यमज्जतसकालिंद्यांपश्यतःकंदरस्यहि॥१०॥सोऽजानतमृतांपुत्रींसमंशाखामृगेणहि॥जगामचमहातेजाःपातालंनिलयंनिजम्॥११॥
सचापिवानरोदेव्याकालिंद्यावेगतोभृशम् ॥ नीतःशिवेतिव्याख्यातंदेशंस्फीतजनाश्रितम्॥ १२ ॥

॥ ५ ॥ वानरश्रेष्ठ विश्वकर्माने पिताके सहित उस वराननाको वनमें आतीहुई देखकर बलपूर्वक उसके हाथको पकड़ा ॥ ६ ॥ हे शुभे ! कंदरपुत्रीको वानरके हाथमें
पड़ीहुई देखकर अत्यन्त क्रोधित हो खड्गको निकालकर दौडे ॥ ७ ॥ महाबल शाखामृग उनको आताहुआ देखकर चार्वंगी देववतीको ले हिमाचलको गया ॥८॥
और वहां जाय यमुनाके किनारे महादेवजी श्रीकंठका दर्शन और उनसे कुछ दूर ऋषियोंसे वर्जित गहन आश्रमको देखा ॥ ९ ॥ तब वह उस पवित्र आश्रममें देव
वतीको बैठाकर कंदराके सामने कालिन्दीके जलमें मग्न हुए ॥१०॥ यह देखकर महातेजस्वी कंदरने शाखामृगके सहित दुहिता देववतीने प्राणोंको त्याग किया है, यह
जानकर अपने स्थान पातालको चलेगये ॥ ११ ॥ इसओर वह शाखामृग कालिन्दीके जलके अत्यन्त वेगमें भरनेसे शिवनामसे विख्यात वृद्ध जनोंसे आश्रित

किसीएक जनपद (देश) में गया ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त उस कपिने वहांसे शीघ्रतासे उत्तर कपिलारण्यकी ओरको जानेकी इच्छा की, जहां सुलोचना देववतीको
रख आये थे ॥ १३ ॥ इसी समय उसने देखा कि, गुह्यकश्रेष्ठ अंजन अपनी पुत्री दमयन्तीके साथ आरहा है ॥ १४ ॥ इस बालिकाको देखकर उसने विचारा
कि, यह कन्या अवश्यही वह देववती है इस निमित्त मेरा जलमज्जन परिश्रम वृथा हुआहै ॥ १५ ॥ हे सुन्दरि ! शाखामृग इसप्रकारकी चिन्ताकरके शीघ्रतासे उसकी
ओर जाने लगा, उसके भयसे वह बाला हिरण्यवतीनदीमें गिरगई ॥ १६ ॥ गुह्यकपुत्रीको नदीके जलमें गिरीहुई देखकर दुःख शोकसे युक्त हो अंजनपर्वतपर गये
॥ १७ ॥ वहां जा पवित्र हो मौनका अवलम्बन कर तपस्या करते हुए बहुतवर्ष व्यतीत किये ॥ १८ ॥ दमयन्तीभी हिरण्यवतीके वेगसे बहतीहुई साधु

ततस्तीर्त्वाथवेगेनसकापिलवनंप्रति ॥ गंतुकामोमहातेजायत्रन्यस्तासुलोचना ॥ १३ ॥ अथापश्यत्समायांतमंजनंगुह्यकोत्तमम् ॥ दमयंत्यास्समंपुत्र्या
गत्वाजिगमिषुःकपिः ॥ १४ ॥ तांदृष्ट्वामन्यतश्रीमान्सेयंदेववतीध्रुवम् ॥ तन्मेवृथाश्रमोजातोजलमज्जनसंभवः ॥ १५ ॥ इतिसंचिंतयन्नेवसमाद्रवतसुंदरि ॥
सातद्भयाच्चन्यपतन्नदींचैवहिरण्वतीम् ॥ १६ ॥ गुह्यकोवीक्ष्यतनयांपतितामापगाजले ॥ दुःखशोकसमायुक्तोजगामांजनपर्वतम् ॥ १७ ॥ तत्रासौ
तपआस्थायमौनव्रतधरःशुचिः ॥ समास्तेवैमहातेजाःसंवत्सरगणान्बहून् ॥ १८ ॥ दमयंत्यपिवेगेनहिरण्वत्यापवाहिता ॥ नीतादेशंमहापुण्यंकोसलं
साधुभिर्युतम् ॥ १९ ॥ गच्छंतीसाचरुदतीददर्शवटपादपम् ॥ प्ररोहप्रावृततनुंजटाधरमिवेश्वरम् ॥ २० ॥ तंदृष्ट्वाविपुलच्छायंविशश्रामवरानना ॥
उपविष्टाशिलापट्टेततोवाचंप्रशुश्रुवे ॥ २१ ॥ नसोस्तिपुरुषःकश्चिद्यस्तंब्रूयात्तपोधनम् ॥ यथासतनयस्तुभ्यमुद्बद्धोवटपादपे ॥ २२ ॥ साश्रुत्वातां
तदावाणींविशिष्टाक्षरसंयुताम् ॥ तिर्यगूर्ध्वमधश्चैवसमंतादवलोकयत ॥ २३ ॥ ददर्शवृक्षशिखरेशिशुंपंचाब्दकंस्थितम् ॥ पिंगलाभिर्जटाभिस्तुउद्बद्धं
यत्नतःशुभे ॥ २४ ॥

ओंसे सेवित परमपवित्र कोशलदेशमें आ पहुँची ॥ १९ ॥ जानेके समयमें रोते २ किसी वटवृक्षको देखा, उसका शरीर प्ररोह (जटा बरगद) समूहसे ढका हुआ
था, देखनेसे साक्षात् जटाधर महेश्वरका बोध होताथा ॥ २० ॥ वह वरानना उस विस्तृत छायायुक्त वटवृक्षको देखकर उसके नीचे शिलापर बैठकर विश्राम लेने
लगी कि, इसी समय उसने यह वचन सुने ॥ २१ ॥ कि, ऐसा कोईभी मनुष्य नहीं है जो कि, उन तपोधन ऋतध्वजसे जाकरकहे कि, तुम्हारा पुत्र वटवृक्ष शाखामें
बँधरहा है ॥ २२ ॥ इसप्रकार विलक्षण करुणामय अक्षरयुक्त वचनोंको सुनकर उसने इधर उधर नीचे ऊपर ओर दृष्टिको चलाकर ॥ २३ ॥ देखा कि, पांचवर्ष

की अवस्थाका एक बालक वृक्षके ऊपर बैठा हुआ है, और कोई पिंगलवर्णजटा भारद्वारा उसे यत्नसहित वहां बांधगया है ॥ २४ ॥ दमयन्ती उस विलखते हुए बँधे बालकको देखकर अत्यन्त दुःखित हो उससे बोली कि, हे पोतक ! कौन पापी तुम्हैं इसप्रकारसे बाँधगया है सो कहो ॥ २५ ॥ बालक उससे बोला कि, हेमहाभागे ! कोई दुष्ट वानर मुझे इसवृक्षकी जटासे बाँधगयाहै, मैं केवल तपोबलसेही बचरहाहूं ॥ २६ ॥ पहले मनुपुरमें देव महेश्वर प्रतिष्ठित थे, वहां हमारे पिता साक्षात् तपोराशि ऋतध्वजने वास किया ॥ २७ ॥ उन महायोगीके तपस्या करनेमें प्रवृत्त होनेपर उन महात्माके शरीरसे मैंने सर्व शास्त्रविशारद भ्रमरवृन्दसंयुक्त होकर जन्म ग्रहण किया ॥ २८ ॥ हे शुभानने ! उन्होंने मुझे जाबालि जान नमस्कार कर जो कहा था सो श्रवण करो ॥ २९ ॥ वह बोले कि, तुम पांचहजार वर्षतक बालक रहोगे, दश

तंविब्रुवंतंदृष्ट्वैवदमयंतीसुदुःखिता ॥ प्राहकेनासिबद्धस्त्वंपापिनावदपोतक ॥२५॥ सतामाहमहाभागेबद्धोऽस्मिकपिनावटे ॥ जटास्वेवंसुदुष्टेनजीवामितपसो बलात् ॥ २६ ॥ पुरामनुपुरेचैवतत्रदेवोमहेश्वरः ॥ तत्रास्तितपसोराशिःपितामऋतध्वजः ॥ २७ ॥ तस्यास्मितप्यमानस्यमहायोगान्महात्मनः ॥ जातोऽलिवृंदसंयुक्तःसर्वशास्त्रविशारदः ॥२८॥ ततोमामब्रवीत्तातोनमस्कृत्यशुभानने ॥ जाबालीतिपरिज्ञायतच्छृणुष्वशुभानने ॥ २९ ॥ पंचवर्षसहस्राणिबालएवभविष्यसि ॥ दशवर्षसहस्राणिकुमारत्वेभविष्यसि ॥ ३० ॥ विंशतिर्यौवनस्थायीस्थाविर्येद्विगुणंततः ॥ पंचवर्षशतान्बालोभोक्ष्यसेबंधनं दृढम् ॥ ३१ ॥ दशवर्षशतान्येवकौमारेकायपीडनम् ॥ यौवनेपरमान्भोगान्द्विसहस्रसमास्तथा ॥ ३२ ॥ चत्वारिंशच्छतान्येववार्धकेक्लेशमुत्तमम् ॥ आप्स्यसेभूमिशय्यायांकदन्नाशनभोजनम् ॥ ३३ ॥ इत्येवमुक्तःपित्राहंबालःपंचाब्ददेश्यकः ॥ विचरामिमहीपृष्ठंगच्छन्स्नातुंहिरण्वतीम् ॥ ३४ ॥ ततोऽपश्यंकपिवरंसोवदन्मांक्वयास्यसि ॥ इमांदेववतींगृह्यमूढन्यस्तांमहाश्रमे ॥ ३५ ॥ ततोऽसौमांसमादायविस्फुरंतंशिशुंततः ॥ वटाग्रेऽस्मिन्नुद्बद्धवंधजटाभिरपिसुंदरि ॥ ३६ ॥

हजार वर्षतक कुमार अवस्थाको भोगोगे ॥ ३० ॥ वीस सहस्र वर्षतक युवा अवस्था रहैगी और उससे दुगुनी वृद्धावस्थाको भोगोगे, उनमेंसे बालक अवस्थामें पांचसौ वर्षतक दृढ बंधनको भोगतेरहोगे ॥ ३१ ॥ पीछे दशसहस्र वर्षतक कुमार अवस्थामें देहपीडाको अनुभव करोगे, पीछे युवावस्थामें दोसहस्र वर्षतक परम भोगोंको भोगोगे ॥ ३२ ॥ बुढापेमें चार सहस्र वर्षतक अत्यन्त क्लेश प्राप्त होगा उस समय भूमिकी शय्यापर शयन और कदान्नको भोजन करोगे ॥ ३३ ॥ पिताके इसप्रकार कहनेपर मैं उस पांच वर्षके बालककी अवस्थासे पर्वतके ऊपर विचरण करताहुआ हिरण्यवतीमें स्नान करनेके निमित्त गया ॥ ३४ ॥ वहां जाय कपिश्रेष्ठको देखा, यह मुझसे बोले कि, मैं देववतीको इस महाआश्रममें रखगया था, हे मूढ ! तुम इसको लेकर कहां जातेहो ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरि ! मैं बालक उसकी बात सुनकर

कांपनेलगा, उसी अवस्थामें उसने मुझे लेकर इस वटवृक्षसे जटाके द्वारा बांधा ॥ ३६ ॥ हे भीरु ! वह दुष्टबुद्धि वानर निरवच्छिन्न लतापाशद्वारा महायंत्र निर्माणकर उसके बीचमें मुझे रखगया ॥ ३७ ॥ उसने सम्पूर्णदिशाओंमेंही लतामय यंत्र विधान किया इसकारण अन्य किसीमेंभी इस बंधनके भेद करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३८ ॥ वह कपि इस प्रकारका बंधनकर इच्छानुसार अमरपर्वतपर चलागया मैंने जो देखा था सो तुमसे कहा ॥ ३९ ॥ अब मैं पूछता हूं कि, तुम कौन और किसकी पुत्री और किसकार्यके निमित्त पतिसे रहित हो इस महावनमें आईहो सो मुझसे कहो ॥ ४० ॥ वह बोली कि, अंजननामसे विख्यात गुह्यकेन्द्र मेरे पिता हैं, मेरानाम दमयन्ती है मैं प्रम्लोचाके गर्भसे उत्पन्न हुई हूं ॥ ४१ ॥ मेरा जन्म होनेके समय महर्षिमुद्गल कहगयेथे कि, यह बाला राजमहिषी (रानी) होगी इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ उनके यह वचन कहनेके समय स्वर्गसे दुन्दुभी बजनेलगी उसीसमय शिवा (गीदड़नी) यह अशुभ शब्दभी करनेलगीं ॥ ४३ ॥ ऋषि फिर बोले कि, यह बाला महारानी होगी इसमें तो कुछभी संदेह नहीं परन्तु कन्याअवस्थामें महाघोर जीवन संशयमें पड़ेगी ॥ ४४ ॥ महर्षि मुद्गल यह वचन कहकर शीघ्रही चले गये, तब पिता मुझे लेकर हिरण्यवतीतीर्थको ले जानेके निमित्त सन्नद्ध हुए ॥ ४५ ॥ वहाँ जाकर कपि इस नदीमेंसे निकला, उसके भयसे मैं नदीमें कूदपड़ी, उसके उपरान्त उसी नदीके वेगसे इस मनुष्यरहित देशमें आई ॥ ४६ ॥ दंडकजी बोले कि, जाबालिजी उसके यह वचन सुनकर बोले कि, हे सुन्दरि ! तुम यमुनाके किनारे श्रीकंठके निकट जाओ ॥ ४७ ॥ मेरे पिता मध्याह्नके समय शिवजीकी पूजाके निमित्त वहां आतेहैं, तुम शीघ्र उनसे यह समस्त वृत्तान्त कहना तुम्हारा मंगल होगा ॥ ४८ ॥

तथाचरक्षाकपिनाकृताभीरुनिरंतरैः ॥ लतापाशैर्महायंत्रमध्यस्थादुष्टबुद्धिना ॥ ३७ ॥ अभेद्योयमनाक्रम्यउपरिष्टात्तथावधः ॥ दिशांमुखेषुसर्वेषुकृतं यंत्रंलतामयम् ॥ ३८ ॥ संयम्यमांकपिवरःप्रयातोऽमरपर्वतम् ॥ यथेच्छयामयादृष्टमेतत्तेगदितंशुभे ॥ ३९ ॥ भवतीकामहारण्येललनापतिवर्जिता ॥ समायातासुचार्वंगीकेनकार्येणमांवद ॥ ४० ॥ साब्रवीदंजनोनामगुह्यकेंद्रःपितामम ॥ दमयंतीतिमेनामप्रम्लोचागर्भसंभवा ॥ ४१ ॥ तत्रेमजातकेप्रोक्तमृषिणामुद्गलेनहि ॥ इयंनरेंद्रमहिषीभविष्यतिनसंशयः ॥ ४२ ॥ तद्वाक्यसमकालंतुन्यनदद्दिविदुंदुभिः ॥ शिवाश्चाशिवनिर्घोषास्ततोभूयोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ॥ ४३ ॥ नसंदेहोनरपतेर्महाराज्ञीभविष्यति ॥ महान्तंसंशयंघोरंकन्याभावेसमेष्यासि ॥ ४४ ॥ ततोजगामसऋषिरेवमुक्त्वावचोद्रुतम् ॥ पितामामपिचादायसमागंतुमथैच्छत ॥ ४५ ॥ तीर्थंततोहिरण्वत्यास्तीरात्कपिरथोत्पतत् ॥ तद्भयाच्चमयाह्यात्माक्षिप्तःसागरगाजले ॥ तयास्मिंदेशमानीताइमंमानुषवर्जितम् ॥ ४६ ॥ दंड उवाच ॥ श्रुत्वाजाबालिरथतद्वचनंवैतयोदितम् ॥ प्राहसुंदरिगच्छस्वश्रीकंठंयमुनातटे ॥ ४७ ॥ तत्रागच्छतिमध्याह्नेमत्पिता शिवमर्चितुम् ॥ तस्मैनिवेदयाशुत्वंततःश्रेयोऽभिलप्स्यसे ॥ ४८ ॥

दमयन्ती यह वचन सुनकर शीघ्रही अपने उद्धारके निमित्त उचित समयपर हिमालयपर्वतके यमुनाके किनारे तपोनिधि ऋतध्वजके पास पहुँची ॥ ४९ ॥ और कंद मूल फल आदिकोंको भक्षण करतीहुई अल्पसमयमेंही वह तपस्वी ऋतध्वजके प्रतिष्ठित शंकरके स्थानमें गई ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त उन सबलोकोंके नमस्कार करनेके योग्य देवेश श्रीकंठको प्रणामकर उन लिखेहुए अक्षरोंका दर्शन किया ॥ ५१ ॥ उसके अर्थको जानकर वह चारुहासिनी स्वयं दूसरा आत्मविषयक जापमाली (मुद्गल) से कथित शुभ समाचारसूचक यह श्लोक लिखती हुई ॥५२॥ महर्षि मुद्गलजी कहगये हैं कि, मैं राजपत्नी हूंगी, परंतु मेरी तो यह शोचनीय अवस्था होरहीहै कौन मेरा उद्धार करेगा ॥५३॥ शिलाके ऊपर इसप्रकार लिख वह स्नान करनेके निमित्त यमुनाजीको गई, वहां मत्त कोकिलाओंके

ततस्तुत्वरिताकालेदमयंतीतपोनिधिम् ॥ परित्राणार्थमगमद्धिमाद्रौयमुनांनदीम् ॥ ४९ ॥ सात्वदीर्घेणकालेनकंदमूलफलाशना ॥ संप्राप्ताशंकरस्थानं
यत्रागच्छतितापसः ॥ ५० ॥ ततःसादेवदेवेशंश्रीकंठंलोकवंदितम् ॥ प्रतिवंद्यततोऽपश्यदक्षराणिमहामुने ॥ ५१ ॥ तेषामर्थंहिविज्ञायसातदाचारु
हासिनी ॥ जापमाल्युदितंश्लोकमलिखच्चान्यमात्मनः ॥ ५२ ॥ मुद्गलेनास्मिगदिताराजपत्नीभविष्यति ॥ साचावस्थामिमांप्राप्ताकश्चिन्मात्रातुमीश्वरः॥
॥ ५३ ॥ इत्युल्लिख्यशिलापट्टेगतास्नातुंयमानुजाम् ॥ ददृशेचाश्रमवरंमत्तकोकिलनादितम् ॥ ५४ ॥ अतोमध्यमसावृषिर्नूनंतिष्ठतिसत्तमः ॥ इत्येवं
चिंतयन्तीसासंप्रविष्टामहाश्रमम् ॥ ५५ ॥ ततोददर्शदेवानांस्थितांदेववतींशुभाम् ॥ शुष्कास्यांचलनेत्रांतुपरिम्लानामिवाब्जिनीम् ॥ ५६ ॥ साचापतं
तींददृशेयक्षजांदैत्यनंदिनीम् ॥ केयमित्येवसंचिन्त्यसमुत्थायस्थिराभवत् ॥ ५७ ॥ ततोऽन्योन्यंसमाश्लिष्यगाढंगाढंसुहृत्तया ॥ पर्यपृच्छत्तदान्योन्यं
कथयामासतुस्ततः ॥ ५८ ॥ तेपरिज्ञाततत्त्वार्थेअन्योन्यंललनोत्तमे ॥ समासातेकथाभिस्तेनानारूपाभिरादरात् ॥५९॥ एतस्मिन्नंतरेप्राप्तःमुनिश्रीकं
ठमर्चितुम् ॥ ऋतध्वजोमुनिश्रेष्ठस्ततोऽपश्यदथाक्षरान् ॥ ६० ॥

नादसे गुंजायमान श्रेष्ठ आश्रमको देखा ॥ ५४ ॥ यह देखकर वह चिन्ता करने लगी कि, वह ऋषिसत्तम ऋतध्वज अवश्यही इस आश्रममें हैं, यह चिन्ता कर उसने उस आश्रममें प्रवेश किया ॥ ५५ ॥ वहां जाकर देखा कि, परमकल्याणी देववती यहां विराजमानहैं उनका शरीर शुष्क और दोनों नेत्र चंचल हैं, देखनेसे ऐसा बोध होता था कि, मानों कमलिनी अत्यन्त मलीनभावसे आक्रान्त हुई है ॥५६॥ इसके उपरान्त देववती उस दैत्यनंदिनीको आतीहुई देखकर " यह कौन है " इस प्रकारकी चिन्ता कर उठकर स्थिरहो बैठी ॥ ५७ ॥ इसके पीछे परस्परमें सौहार्दता (स्नेह) के प्रगट होनेसे अत्यन्त गाढ आलिंगन कर आपसमें वार्तालाप करनेलगीं ॥ ५८ ॥ इसप्रकारसे वह दोनों ललनायें परस्परके तत्व अर्थको जानकर आदरसहित अनेकप्रकारकी कथा कहनेलगीं ॥ ५९ ॥ इसी अवसरमें मुनिश्रेष्ठ

ऋतध्वज श्रीकंठकी पूजा करनेके निमित्त वहां आये और उन लिखेहुए अक्षरोंको देखा ॥ ६० ॥ उन्हैं देख पढ़कर उसके अर्थको जान एक मुहूर्त्ततक ध्यानकर
सम्पूर्ण वृत्तान्तको जानगये ॥ ६१ ॥ तब शीघ्रतासे महादेवजीकी पूजा कर शीघ्र नरपति इक्ष्वाकुके देखनेके निमित्त अयोध्याको गये ॥ ६२ ॥ वहां जा राजासे साक्षात्कार
कर उनसे बोले कि, हे नरशार्दूल ! हमारे विज्ञप्तिवचनोंको श्रवण करो ॥ ६३ ॥ कपिराजने आपके राज्यमें हमारे गुणसमूहविभूषित सर्वशास्त्रविशारद पुत्रको बांधकररखाहै ६४ ॥
आपके पुत्रके अतिरिक्त और किसीकोभी उसके छुटानेकी सामर्थ्य नहीं है, आपके पुत्रका नाम शकुनी है हे राजेन्द्र ! वही इस विषयको जानते हैं ॥ ६५ ॥ हेकृशोदरि ! मेरे
पिताने ऋषिके यह वचन सुनकर राजाने अपने प्यारे पुत्र शकुनिको बंधनसे छुडानेके निमित्त आज्ञा दी ॥ ६६ ॥ पिताकी आज्ञा लेकर मेरे महाबाहु सहोदर हँसते २

सदृष्ट्वावाचयित्वाचतदर्थमधिगम्यच ॥ मुहूर्तंध्यानमास्थायव्यजानाच्चतपोनिधिः ॥६१॥ ततःसंपूज्यदेवेशंत्वरयासऋतध्वजः ॥ अयोध्यामगमत्क्षिप्रंद्रष्टु
मिक्ष्वाकुमीश्वरम् ॥ ६२ ॥ तंदृष्ट्वानृपतिश्रेष्ठंतापसोवाक्यमब्रवीत् ॥ श्रूयतांनरशार्दूलविज्ञाप्तिर्ममपार्थिव ॥ ६३ ॥ ममपुत्रोगुणैर्युक्तःसर्वशास्त्रविशारदः ॥
उद्बद्धःकपिराजेनविषयांतेतवैवहि ॥ ६४ ॥ तंहिमोचयितुंनान्यःशक्तस्त्वत्तनयादृते ॥ शकुनिर्नामराजेन्द्रसह्यत्रविधिपारगः ॥ ६५ ॥ तन्मुनेर्वाक्यमा
कर्ण्यपितामम कृशोदरि ॥ आदिदेशप्रियंपुत्रंशकुनिंनामशांतये ॥ ६६ ॥ ततःस प्रहितःपित्राभ्रातामममहाभुजः ॥संप्राप्तोथवनोद्देशंसमंहिपरमर्षिणा ॥
॥ ६७ ॥ दृष्ट्वान्यग्रोधमत्युच्चंप्ररोहश्वेतदिङ्मुखम् ॥ ददर्शवृक्षाशिखरेउद्बद्धमृषिपुत्रकम् ॥ ६८ ॥ ततश्चललतापाशंदृष्टवान्ससमंततः ॥ दृष्ट्वासमुनि
पुत्रंतंस्वजटासंयतंवटे ॥ ६९ ॥ धनुरादायबलवानधिज्यंसचकारह ॥ लाघवादृषिपुत्रस्यसमंचिच्छेदमार्गणैः ॥ ७० ॥ कपिनायत्कृतंपूर्वंलतापाशंचतु
र्दिशम् ॥ पंचवर्षशतेकालेगतेकृत्तंतदाशरैः ॥ ७१ ॥ लताच्छन्नंततस्तूर्णमारुरोहमुनिर्वटम् ॥ प्राप्तंस्वपितरंदृष्ट्वाजाबालिःसंयतोऽपिसन् ॥ ७२ ॥
आदरातिशयान्मूर्ध्नाववंदेतुविधानतः ॥ संपरिष्वज्यसमुनिर्मूर्ध्न्याघ्रायसमंततः ॥ ७३ ॥

ऋतध्वजके साथ उस वनको गये ॥ ६७ ॥ और उस अतिऊंचे वटवृक्षको देखा, उसके चारोंओर सब दिशायें श्वेतवर्णकी होगई है, उसके शिखरपर ऋषिपुत्रको
बँधाहुआ देखा ॥ ६८ ॥ उसके चारों ओर वह चंचलता पाशभी उन्होंने देखे, उन्होंने मुनिपुत्रको वटके शिखरपर जटापाशसे बँधाहुआ देखकर ॥ ६९ ॥ धनुष
को धारण कर उसके ऊपरको उठाया, अनन्तर हाथोंकी चतुरता दिखाकर बाणोंकेद्वारा उसको छेदन करडाला ॥ ७० ॥ इसके उपरान्त कपिने जो चारोंओरसे
लताकी पाश बांधी थी, आज पांचसहस्रवर्षके बीतजानेपर बाणोंके द्वारा वहां छिन्न भिन्न होगई ॥ ७१ ॥ तब महर्षि ऋतध्वज शीघ्रही उस लता कटेहुए
वृक्षपर चढ़, जाबालिने अपने पिताको आयाहुआ देखकर संयत (बँधे) होनेपरभी ॥ ७२ ॥ आदरसहित मस्तक नवा विधिपूर्वक उन्हैं प्रणाम किया, मुनि

नेभी पुत्रको गाढ़ आलिंगन और उसका मस्तक सूँघकर ॥ ७३ ॥ खोलनेके निमित्त यत्न किया, परन्तु अत्यन्त संयत होनेसे वह न छुड़ासके, यह देखकर महा
बलवान् शकुनि अपने धनुष और बाणको रखकर ॥ ७४ ॥ जटापाशसे छुटानेके निमित्त शीघ्रही वृक्षपर चढ़े, परन्तु कपिके दृढ़तासे बांधनेके कारण छुटाने
को समर्थ न हुए ॥ ७५ ॥ जब वह जटापाशसे न खोलसके तब महर्षि ऋतध्वज के साथ उतरे ॥ ७६ ॥ और धनुषको ग्रहणकर बाणोंको निकाल उसपर अर्द्धचंद्र
की समान अग्रभागवाले दो बाण चढ़ाये, और चतुराईसे उन बाणों के द्वारा उन तीनों शाखाओंके खंड २ करडाले ॥ ७७ ॥ शाखाओंके छिन्न होतेही मस्तकपर शाखा
भारको सहनकर तपोधन जाबालि बाणोंकी सीढियोंके मार्गसे उतरे ॥ ७८ ॥ इसप्रकारसे पुत्रके छूटनेपर महर्षि ऋतध्वज नरेन्द्रनंदन धनुर्धारी शकुनि उस

उन्मोचयितुमारब्धोनशशाकसुयंत्रितः ॥ ततस्तूर्णंधनुर्न्यस्यबाणांश्चशकुनिर्बली ॥ ७४ ॥ आरुरोहवटंतूर्णंसमुन्मोचयितुंजटाः ॥ नचशक्नोतिसंयत्तंदृढं
कपिवरेणहि ॥ ७५ ॥ यदानशकितस्तेनसमंमोचयितुंजटाः ॥ तदावतीर्णःशकुनिःसहितःपरमर्षिणा ॥ ७६ ॥ जग्राहचधनुर्बाणांश्चकारशरमंडपम् ॥
लाघवादर्धचंद्राभ्यांशाखांचिच्छेदसत्रिधा॥७७॥शाखयाकृत्तयाचासौभारवाहीतपोधनः॥शरसोपानमार्गेणअवतीर्णोथपादपात्॥७८॥ तस्मिंस्तथास्वेतन
येऋतध्वजस्ततोनरेन्द्रस्यसुतेनधन्विना॥जाबालिनाभारवहेनसंयुतःसमाजगामाथनदींससूर्यजाम्॥७९॥इतिश्रीवामनपुराणेचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥
दंडक उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेबालेयक्षासुरसुतेमुने ॥ समागतेहरंद्रष्टुंतंमुनिंयोगिनांवरम् ॥ १ ॥ ददृशातेपरिम्लानंसंशुष्ककुसुमंविभुम् ॥ बहुनिर्माल्यसं
युक्तंगतेतस्मिन्नृतध्वजे ॥ २ ॥ ततस्तुवीक्ष्यदेवेशंतंउभेवरकन्यके ॥ स्नापयेतेविधानेनपूजयेतेअहर्निशम् ॥ ३ ॥ ताभ्यांस्थिताभ्यांतत्रैवऋषिरभ्या
गमद्वनम् ॥ द्रष्टुंश्रीकंठमव्यक्तंगालवोनामनामतः ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वाकन्यकायुग्मंकस्येदमितिचिंतयन् ॥ प्रविवेशमुनिःस्नात्वाकालिंद्याविमलेजले ॥ ५ ॥

भारवाही जाबालिके सहित यमुनाके निकटको गये ॥ ७९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां भैरवप्रादुर्भावे जाबालिमोचनंनाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥
दंडकजी बोले कि, हे बाले ! इसीसमय दक्षसुता और असुरदुहिता दोनों महादेव और योगियोंमें प्रथम गिनने योग्य ऋतध्वज इनको देखनेके निमित्त गये ॥ १ ॥
उन्होंने देखा कि, विभु महादेवजी अत्यन्त मलीन और उनपर चढ़े हुए फूल यहभी सूखगये हैं, और चारोंओर ढेर निर्माल्य पडीहै, ऋतध्वजके जानेसे ऐसा हुआ था
॥ २ ॥ यह देखकर वह दोनों कन्यायें विधिपूर्वक महादेवजीको स्नान कराय नित्य उनकी पूजा करनेलगीं ॥ ३ ॥ उनके वहां रहनेसे गालवनामसे विख्यात ऋषि अव्यक्त
रूप श्रीकंठको देखनेके निमित्त उस वनमें आये ॥ ४ ॥ वह दोनों कन्याओंको देखकर विचार करनेलगे कि, ये किसकी कन्या हैं, इसके उपरान्त उन्होंने पवित्र

यमुनाजीके जलमें स्नान कर वहां प्रवेश किया ॥ ५ ॥ और विधिपूर्वक श्रीकंठकी पूजा की. यह दोनों कन्यायें मधुरस्वरसे गान करने लगीं ॥ ६ ॥ महर्षि गालवजी उस गीतध्वनिको सुनकर जानगये किं, यह दोनों गंधर्वोंकी कन्या हैं इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त महर्षि गालवजी विधिपूर्वक देव ईशानका जप करनेके पीछे पूजाकर उन कन्याओंके द्वारा प्रणाम किये जाकर बैठे ॥ ८ ॥ और उनसे बोले कि, तुम दोनोंही हरिके प्रति भक्तिमती और दोनोंही कुलका भूषण हो, कौन तुम्हारे पिताहै सो कहो ॥ ९ ॥ उन शुभानना दोनों कन्याओंने अपना समस्त वृत्तान्त मुनिश्रेष्ठसे कहसुनाया, वह तपस्वियोंमें श्रेष्ठ महर्षि गालव समस्त वृत्तान्तको जान ॥ १०॥ और उनसे पूजित हो (रात्रिभर वहां ठहरकर) प्रातःकालही उठ शिव और पार्वतीसहित शिवजीकी पूजा कर ॥ ११ ॥ उनके पास

ततोनुपूजयामासश्रीकंठंगालवोमुनिः ॥ गायेतेसुस्वरंगीतंयक्षासुरसुतेततः ॥ ६ ॥ ततःसंगीतमाकर्ण्यं गालवोद्धअजानत ॥ गंधर्वकन्यके चैवसंदेहो
नात्रविद्यते ॥ ७ ॥ संपूज्यदेवमीशानंगालवस्तुविधानतः ॥ कृतजप्यःसमध्यास्ते कन्याभ्यामभिवादितः ॥ ८ ॥ ततःपप्रच्छसमुनिःकन्यकेकस्य
कथ्यताम् ॥ कुलालंकारकरणेभक्तियुक्तेभवस्यहि ॥ ९ ॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं याथातथ्यंशुभानने ॥ जातोविदितवृत्तांतोगालवस्तपतांवरः ॥ १० ॥
समुष्यतत्ररजनींताभ्यांसंपूजितोमुनिः ॥ प्रातरुत्थायगौरीशंसंपूज्यचविधानतः ॥११॥ तेउपेत्याब्रवीद्यास्येपुष्करारण्यमुत्तमम् ॥ आमंत्रयामिवांतन्व्यौ
मामनुज्ञातुमर्हथ ॥ १२ ॥ ततस्तेऊचतुर्ब्रह्मन्दुर्लभंदर्शनंतव ॥ किमर्थंपुष्करारण्येभवान्यास्यत्यथादरात् ॥ १३ ॥ तेउवाचमहातेजाअहंकारसम
न्वितः ॥ कार्तिकीपुण्यदाभाविपुष्करेष्वेवकार्तिके ॥ १४ ॥ तेऊचतुर्वयंयामोभवान्यत्रगमिष्यति ॥ नत्वयास्मविनाब्रह्मन्निहस्थातुंसमुत्सहे ॥ १५ ॥
बाढमाहमुनिश्रेष्ठस्ततोनत्वामहेश्वरम् ॥ गतेचऋषिणासार्धंपुष्करारण्यमादरात् ॥ १६ ॥ तथान्येऋषयस्तत्रसमायाताःसहस्रशः ॥ पार्थिवावाजानपदा
मुक्त्वैकंतुऋतध्वजम् ॥ १७ ॥ ततःस्नातुंचकार्तिक्यामृषयःपुष्करेष्वथ ॥ राजानश्चमहाभागानाभागेक्ष्वाकुसंयुताः ॥ १८ ॥

जाकर बोले कि, मैं परमपवित्र पुष्करतीर्थको जाऊंगा, तुमसे अनुमति लेताहूं आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १२ ॥ तब वे कन्यायें बोली कि, हे ब्रह्मन् ! आपका दर्शन पाना सहज नहीं है, किसकारणसे आप आदरसहित पुष्करतीर्थको जाते हैं ॥ १३ ॥ महातेजस्वी अहंकारी महर्षि गालवजीने उत्तर दिया कि, पुष्करहीमें कार्तिककी पूर्णमासीको पुण्य प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ वह बोलीं कि, जहां आप जाँयगे हमभी वहींको चलैंगीं, हे ब्रह्मन् ! आपके विना यहां रहनेको हमारा उत्साह नहीं होता ॥ १५ ॥ ऋषि उनके लेजानेको सम्मत हुए, वह महेश्वरको प्रणामकर उन मुनिके साथ पुष्करतीर्थको गईं ॥ १६ ॥ उससमय वहाँ सहस्रों ऋषि आये, इसके अतिरिक्त राजा और देशनिवासी सभी वहाँ आये, परन्तु ऋतध्वजही वहाँ न दीखपड़े ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त कार्तिककी पूर्णमासी आई

ऋषिगण नाभाग और इक्ष्वाकुके साथ औरभी महाभाग नरपतिगण सभी पुष्करमें स्नान करनेके निमित्त उतरे ॥ १८ ॥ गालवजीभी उन दोनों कन्याओंके साथ एक तीरके जानेयोग्य दूर स्थलमध्यमें पुष्करके जलमें स्नान करनेके निमित्त उतरे ॥ १९ ॥ उसमें निमग्न होकर देखा कि, कोई महामत्स्य जलमें शयनकर रहाहै, बहुत सारी मत्स्यकन्याएँ उसको प्रसन्न कररही हैं ॥ २० ॥ यह देखकर वह मत्स्य उनसे कहरहाहै कि, तुम एकान्तमें स्वेच्छाचारिणी हुई हो, धर्म किसको कहतेहैं सो नहीं जानती, मैं अत्यन्त दुर्विष अघोर जनापवादको सहन नहीं करसकता ॥ २१ ॥ मत्स्यकन्याओंने उत्तर दिया कि, तुम क्या नहीं देखतेहो कि, यह तपस्वी गालवजी दो कन्याओंके साथ विचरण करतेहैं ? ॥ २२ ॥ यह धर्मात्मा और तपोधन हैं; जब कि, यही यदि लोकापवादसे भय नहीं करते

गालवोपिसमंताभ्यांकन्यकाभ्यामवातरत् ॥ सस्नातुंपुष्करजलेमध्यमेधनुषांप्लुतौ ॥ १९ ॥ निमग्नश्चापिददृशेमहामत्स्यंजलेशयम् ॥ बह्वीभिर्मत्स्यकन्याभिः प्रीयमाणंमुहुर्मुहुः ॥ २० ॥ सताश्चाहविनिर्मुक्ताइमंधर्मंनजानथ ॥ जनापवादंघोरंहिनशक्तःसोढुमुल्बणम् ॥ २१ ॥ तास्ताऊचुर्महामत्स्यं किंनपश्यामगालवम् ॥ तापसंकन्यकाभ्यांवैविचरंतंयथेच्छया ॥ २२ ॥ यद्यसावपिधर्मात्मानबिभेतितपोधनः ॥ जनापवादात्तत्किंत्वंबिभेषिजलमध्यगः ॥ २३ ॥ ततश्चाप्याहसनिमिर्नैषवेत्तितपोधनः ॥ रागांधोनापिचभयंविजानातिसुबालिशः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वामत्स्यवचनंगालवोव्रीडयायुतः ॥ नोत्ततारनिमग्नोपितस्थौसविजितेंद्रियः ॥ २५ ॥ स्नात्वाद्वेतेपिरंभोरूसमुत्तीर्यतटेस्थिते ॥ प्रतीक्षंत्यौमुनिवरंतद्दर्शनसमुत्सुके ॥ २६ ॥ वृत्तातुपुष्करेयात्रागतोलोकोयथागतम् ॥ ऋषयःपार्थिवाश्चान्येनानाजानपदास्तथा ॥ २७॥ तत्रस्थितैकासुदतीविश्वकर्मतनूरुहा ॥ चित्रांगदासुचार्वंगीवीक्षंतीतनुमध्यमा ॥ २८ ॥ तेस्थितेवापिवीक्षंत्यौगालवंमुनिसत्तमम् ॥ संस्थितेनिर्जनेतीर्थेगालवोंतर्जलेतथा ॥ २९ ॥

तब तुम जलचर होकर किसकारण लोकापवादका भय करतेहो ? ॥ २३ ॥ मत्स्य बोले कि, यह तपस्वी गालवजी रागान्ध होगयेहैं और इसी निमित्त मोहसे ढकगये हैं, यह इसी कारणसे धर्मको जानकरभी लोकापवादसे नहीं डरते ॥ २४ ॥ गालवजी मत्स्यके यह वचन सुनकर लज्जित हो वहीं इन्द्रियोंको जीत जलमें मग्न होकर रहे ॥ २५ ॥ हे रम्भोरु ! वह दोनों कन्यायें स्नानकर किनारेपर आ मुनिश्रेष्ठ गालवजीके आनेकी बाट देखने लगीं ॥ २६ ॥ इस अवसरमें पुष्करयात्राके बीतनेपर सब लोग अपने २ स्थानको गये, और ऋषि, राजा, तथा जनपद (देश) वासीभी अपने २ स्थानोंको गये ॥ २७ ॥ विश्वकर्माकी पुत्री सुचार्वंगी तनुमध्यमा चित्रांगदाही केवल इकली खड़ीहुई चारोंओरको देखने लगी॥२८॥ उस समय तीर्थ एकबारही निर्जन होगया, वह दोनों कन्यायेंही मुनिश्रेष्ठ गालवजीकी

प्रतीक्षा करतीहुईं वहाँ खड़ीरही गालवजी जलमें मग्न होगये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त वेदवती नामकी गंधर्वकन्या वहाँ आई, पर्जन्य नामक गंधर्व उसके पिता थे, और घृताची उसकी गर्भधारिणी माता थी ॥ ३० ॥ यह आकर मध्यमपुष्करमें स्नानकर दोनों किनारेपर खड़ीहुईं दो कन्याओंको देखा ॥ ३१ ॥ और चित्रांगदाके समीप जाकर मधुरतासे यह वचन बोलीं कि, तुम कौन हो और किसकारणसे इस निर्जनस्थानमें खड़ी हुई हो ॥ ३२ ॥ उसने उत्तर दिया कि, हे सुन्दरि ! मुझे देवताओंके वर्द्धकी (बढ़ही) विश्वकर्माकी पुत्री चित्रांगदा जानो ॥ ३३ ॥ हे भद्रे ! मैं इस नैमिषारण्य वाहिनी धर्मजननी कांचनाक्षी नामकी परम पवित्र सरस्वतीमें स्नान करनेके निमित्त आई थी ॥ ३४ ॥ यहाँ आनेके पीछे विदर्भवंशके सुरथ नाम राजाने मुझे देखा, वह देखतेही कामसे आर्त हो मेरी शरण हुआ ॥ ३५ ॥ इसे देखकर सखियोंके निषेध (मना) करनेपरभी मैंने उसे अपना आत्मदान प्रदान किया, तब पिताने मुझे शाप दिया, उसी शापसे सुरथसे मेरा वियोग होगया ॥ ३६ ॥ हे भद्रे ! इसीकारणसे मैं मरनेके लिये सन्नद्ध हुई, परन्तु किसी गुह्यकने आकर निषेध किया, इसके उपरान्त मैं श्रीकंठके दर्शन करनेको गोदावरीके तीरपर गई ॥ ३७ ॥ वहाँसेही इस श्रेष्ठतीर्थको आई हूं वह सुरथही हमारे हृदयको आनंद देनेवाले और वही मेरे पति हैं परन्तु उनको मैंने आजतक न देखने पाया ॥ ३८ ॥ हे बाले ! तुम कौन हो, और यहाँ किसकारणसे खड़ी हो, पुष्करकी यात्राका फल बीतगया है तब फिर किसकारणसे यहाँ आना हुआ, हे भामिनि ! मेरे निकट सत्य २ अपना वृत्तान्त विस्तारसहित वर्णन करो ॥ ३९ ॥ वेदवती बोली कि, हे कृशोदरि ! मैं हतभागिनी कौन हूं और किस

ततोऽभ्यगाद्वेदवतीनाम्नागंधर्वकन्यका ॥ पर्जन्यतनयासाध्वीघृताचीगर्भसंभवा ॥ ३० ॥ कूले पुण्ये समभ्येत्य स्नात्वामध्यमपुष्करे ॥ ददर्शकन्यात्रि
तयमुभयोस्तटयोःस्थितम् ॥ ३१ ॥ चित्रांगदांसमभ्येत्यपर्यपृच्छदनिष्ठुरम् ॥ कासिकेनचकार्येणनिर्जनेस्थितवत्यसि ॥ ३२ ॥ साताम्रुवाचपुत्रींमां
विंदस्वसुरवर्धकेः ॥ चित्रांगदेतिसुश्रोणिविख्यातांविश्वकर्मणः ॥ ३३ ॥ साहमभ्यागताभद्रेस्नातुंपुण्यांसरस्वतीम् ॥ नैमिषेकांचनाक्षींतुविख्यातांधर्म
मातरम् ॥ ३४ ॥ तत्रागतासुराहाहंदृष्टावैदर्भकेणहि ॥ सुरथेनसकामार्तोमामेवशरणंगतः ॥ ३५ ॥ मयात्मातस्यदत्तश्चसखीभिर्वार्यमाणया ॥ ततःशप्ता
स्मितातेनवियुक्तास्मिचभूभुजा ॥ ३६ ॥ मर्तुंकृतमतिर्भद्रेवारितागुह्यकेनच ॥ श्रीकंठमगमंद्रष्टुंततोगोदावरीजलम् ॥ ३७ ॥ तस्मादिदंसमायातातीर्थं
प्रवरमुत्तमम् ॥ नचापिदृष्टःसुरथःसमनोह्लादनःपतिः ॥ ३८ ॥ भवतीचात्रकाबालेवृत्तेयात्राफलेधुना ॥ समागताहितच्छंसममसत्येनभामिनि ॥ ३९ ॥
साब्रवीच्छ्रूयतांयास्मिमंदभाग्याकृशोदरी ॥ यथायात्राफलेवृत्तेसमायातास्मिपुष्करम् ॥ ४० ॥

कारणसे यात्राका फल बीतजानेपर यहाँ आई हूं सो सम्पूर्ण वृत्तान्त कहतीहूं तुम श्रवण करो ॥ ४० ॥ मेरा नाम वेदवती है, मैं पर्जन्यकी औरससे घृताचीके गर्भसे उत्पन्न हुई हूं वनमें विहार कररही थी कि, इसी समयमें कोई कपि (वानर) मुझे देखकर ॥४१॥ मेरे सन्मुख आ मुझसे बोला कि, हे वेदवती ! कहां जाती हो कौन मनुष्य तुम्हें पृष्ठके आश्रममें इस मेरुपर्वतपर लाया है ॥ ४२ ॥ मैं ने कहा कि, हे कपे ! मैं वेदवती नहीं हूं वेदवती नामकी कन्या मेरुपर्वतपरही स्थिति करती है ॥ ४३ ॥ यह वचन सुन उस दुष्ट वानरने शीघ्रतासे आक्रमण किया तब मैं अंधुजीव नामक नागोत्तम (एक बड़े वृक्ष) पर चढ़गई ॥ ४४ ॥ तब उस कपिने शीघ्रतासे उसे छिन्न भिन्न करदिया, मैं ने उसकी बढ़ी शाखाको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और खड़ी रही ॥ ४५ ॥ यह देखकर कपिश्रेष्ठने सागरके जलमें उस वृक्षको फेंक दिया, मैं अत्यन्त व्याकुल होकर उस वृक्षके साथ जलमें गिरपड़ी ॥ ४६ ॥ उस समय इच्छानुसार आकाशमार्ग हो वृक्ष गिरने लगे स्थावर जंगम सम्पूर्ण प्राणियोंने उसे देखा ॥४७॥ मुझे भी उनके साथ गिरा हुआ देखकर सभी हाहाकार करने लगे और सिद्ध गंधर्व इत्यादि कहने लगे कि, हाय ? यह कैसा कष्ट है, स्वयं ब्रह्माजीने कहाथा कि,यह वेदवती महात्मा इन्द्रद्युम्नकी रानी होगी, जो इन्द्रद्युम्नका पुत्र और अत्यन्त वीर्यशाली और सहस्रों यज्ञोंको करैगा ॥ ४८ ॥४९ ॥ यह मधुर वचन सुनकर मैं मोहके वशीभूत हुई, इसकारण नहीं जानती कि, किसमनुष्यने उस वृक्षके सहस्र खंड करके फेंकदिये ॥५०॥ इसके उपरान्त बलवान् वायुके चलनेसे शीघ्रतासे मैं इस देशमें आई, हे सुन्दरि ! इसीसे तुमने आज मुझे देखाहै ॥५१॥ इस समय उठो यह दोनों कन्यायें कौन हैं ! पुष्करके उत्तर किनारेपर जो

पर्जन्यस्यघृताच्यांतुजातावेदवतीतिहि ॥ रममाणावनोद्देशेदृष्टास्मिकपिनासखि ॥४१॥ सचाभ्येत्याब्रवीन्मांतुयासिवेदवतिक्वहि॥ आनीतास्याश्रमात्के
नभूपृष्ठान्मेरुपर्वतम् ॥ ४२ ॥ ततोमयोक्तेनास्मीतिकपेवेदवतीत्यहम् ॥ नाम्नावेदवतीत्येवंमेरावपिकृताश्रया ॥ ४३ ॥ ततस्तेनातिदुष्टेनवानरेणाभिवि
द्रुता ॥ समारूढास्मिसहसाबंधुजीवंनगोत्तमम् ॥ ॥ ४४ ॥ तेनापिवृक्षस्तरसापादाक्रांतस्त्वभज्यत ॥ ततोस्यविपुलांशाखांसमालिंग्यस्थितात्वहम् ॥
॥ ४५ ॥ ततःप्लुवंगमोवृक्षंप्राक्षिपत्सागरांभसि ॥ सहतेनैववृक्षेणपतितास्म्यहमाकुला ॥ ४६ ॥ ततोऽम्बरतलाद्वृक्षंनिपतंतंयदृच्छया ॥ ददृशुःसर्व
भूतानिस्थावराणिचराणिच ॥ ४७ ॥ ततोहाहाकृतंलोकैर्मांपतंतींनिरीक्ष्यहि ॥ ऊचुश्चसिद्धगंधर्वाःकष्टंसेयंमहात्मनः ॥ ४८ ॥ इंद्रद्युम्नस्यमहिषीगादि
ताब्रह्मणास्वयम् ॥ मनोःपुत्रस्यवीरस्यसहस्रक्रतुयाजिनः ॥ ४९ ॥ तांवाणींमधुरांश्रुत्वामोहमस्म्यागतातातः ॥ नचजानेसकेनापिवृक्षश्छिन्नःसहस्रधा ॥
॥ ५० ॥ ततोस्मिवेगाद्धलिनाहृतानलसखेनहि ॥ समानीतास्म्यहमिमंत्वंदृष्टाचाद्यसुंदरि ॥ ५१ ॥ ततउत्तिष्ठगच्छावःकेउभेसंस्थितेवरे ॥
कन्यकेअनुपश्येहपुष्करस्योत्तरेतटे ॥ ५२ ॥

खड़ी हैं जाकर देखैं ॥ ५२ ॥ वरांगी चित्रांगदा उसकन्याके यह वचन सुन उस दूसरी कन्यासे साक्षात् करने तथा उसका वृत्तान्त जाननेके निमित्त व्याकुल हृदयसे वहा गईं ॥ ५३ ॥ जाकर उससे पूँछा, उन दोनोंने अपना यथार्थ वृत्तान्त उन्हैं कह सुनाया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त चारोंजनी मिल सप्तगोदावरीमें जाकर हाटकेश्वरका पूजन कर किनारेपर खड़ी हुईं ॥ ५५ ॥ इस ओर उनके निमित्त शकुनि जाबालि और ऋतध्वज इन तीनोंने बहुत वर्षतक भ्रमणकर समय व्यतीत किया ॥ ॥ ५६ ॥ बहुत कालके बीतजानेपर जाबालि निर्वेदसे देशान्तरको प्राप्तहो खिन्न हृदयसे पिताके साथ कौशलराज्यमें आये ॥ ५७ ॥ मनुके पुत्र श्रीमान् इन्द्रद्युम्न वहां निवास करतेथे, यह जानकर अर्घ्यपाद्यादि लेकर बाहर निकले ॥ ५८ ॥ जाबालि और ऋतध्वज इन दोनोंकी विधिपूर्वक पूजा और भ्रातृपुत्र धीमान् शकु

एवमुक्त्वावरांगीसातयासुतनुकन्यया ॥ जगामकन्यकेद्रष्टुंप्रष्टुंकार्यंतुकौतुकात् ॥ ५३ ॥ ततोगत्वापर्यपृच्छत्तेऊचतुरुभेअपि ॥ याथातथ्यंतयोस्ताभ्यां
स्वमात्मानंनिवेदितम् ॥ ५४ ॥ ततस्ताश्चतुरोपीहसप्तगोदावरंजलम् ॥ संप्राप्यतीरेतिष्ठंतिअर्चंत्योहाटकेश्वरम् ॥ ५५ ॥ ततोबहून्वर्षगणान्बभ्रमुस्ते
जनास्त्रयः ॥ तासामर्थायशकुनिर्जाबालिःसऋतध्वजः ॥ ५६ ॥ भारवाहीततोभिन्नोदशान्दशतिके(?)गते ॥ कालेजगामानिर्वेदात्समंपित्रानुशाकलम् ॥
॥ ५७ ॥ तस्मिन्नरपतिःश्रीमानिंद्रद्युम्नोमनोःसुतः ॥ समध्यास्तेसविज्ञायसार्घपाद्योविनिर्ययौ ॥ ५८ ॥ सम्यक्संपूजितस्तेनसजाबालिर्ऋतध्वजः ॥
सचेक्ष्वाकुसुतोधीमान्शकुनिर्भ्रातृजोऽर्चितः ॥ ५९ ॥ ततोवाक्यंमुनिःप्राहइंद्रद्युम्नमृतध्वजः ॥ राजन्नष्टासुतास्माकंदमयंतीतिविश्रुता ॥ ६० ॥ तदर्थं
चैववसुधाअस्माभिरटितानृप ॥ तस्मादुत्तिष्ठमार्गस्यसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ ६१ ॥ अथोवाचनृपोब्रह्मन्ममापिललनोत्तमा ॥ नष्टाकृतश्रमस्यापिकस्याहं
कथयामिताम् ॥ ६२ ॥ आकाशात्पर्वताकारःपतमानोनगोत्तमः ॥ सिद्धानांवाक्यमाकर्ण्यबाणैश्छिन्नःसहस्रधा ॥ ६३ ॥ तेचैवसावरारोहाविभिन्नालाघ
वान्मया ॥ नचजानामिसाकुत्रतस्माद्गच्छामिमार्गितुम् ॥ ६४ ॥

निकीभी पूजा की ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त ऋतध्वज इन्द्रद्युम्नसे यह वचन बोले कि, हे राजन् ! हमारी दमयन्ती नामकी कन्या खोई गई है ॥ ६० ॥ उसके निमित्त हमने सम्पूर्ण पृथ्वी देखडाली, इसकारण आप चलकर हमारी इस विषयमें सहायता करो ॥ ६१ ॥ राजा बोले हे ब्रह्मन् ! हमारीभी श्रेष्ठ कन्या खोई गई है, नहीं जानता कि, वह कहां गई, मैंने उसकी खोज करनेमें बहुत परिश्रम कियाथा, मैं इस अपनी विपत्तिको किससे कहूं ॥ ६२ ॥ आकाशसे पर्वताकृति एक बड़ा वृक्ष गिरा उसके साथही एक कन्याभी गिरी जाती है ऐसे सिद्धोंके वचन सुनकर मैंने तुरंत बाणोंके द्वारा उसके सहस्र खंड करडाले ॥ ६३ ॥ और हाथोंकी लघुता (सतरकी) दिखाकर उस वरारोहाको नहीं काटा केवल वृक्षहीको काटडाला, यह नहीं जानता कि, वह श्रेष्ठकन्या कहां है इसकारण उसको खोजनेके निमित्त चलूं ॥ ६४ ॥

यह कहकर राजा शीघ्रही उठे और उन दोनों ब्राह्मण तथा भाईके पुत्रको रथ दिया ॥ ६५ ॥ वह सभी शीघ्रही रथपर चढ़कर यथाक्रमसे सम्पूर्ण पृथ्वीको खोजने लगे, जाते २ बदरिकाश्रममें जाकर एक तपोनिधिका दर्शन किया ॥६६॥ उनकी देह तपोबलके द्वारा दुर्बल, दीनभावयुक्त मैलमट्टीसे सम्पूर्ण शरीर लिप्त और जटाभारसे ढका हुआथा, वह युवा निरवच्छिन्न (बराबर) श्वासोंको छोड़रहा है, इस कारण उसे अत्यन्तही श्रम उपस्थित हुआ है ॥६७॥ महाबाहु राजा इन्द्रद्युम्न उसके निकटजाकर बोले कि,हे तपस्विन्! आपकी इससमय युवा अवस्थाहै सो किसकारण ऐसी कठिन तपस्या करतेहो ॥६८॥ आपका अभिप्राय क्या है सो कहिये, तपस्वी बोले कि, आप कौन हैं, मैं शोकसे आर्त और अत्यन्त दीनतायुक्त होकर तपस्या करता हूं, आप प्रीतिके वशसे मुझसे पूछते हैं. इन्द्रद्युम्न बोले कि, मैं कौशलनगरका

इत्येवमुक्त्वासनृपःसमुत्थायत्वरान्वितः ॥ स्यंदनानिद्विजाभ्यांसभ्रातृपुत्रायचार्पयत् ॥ ६५ ॥ तेऽधिरूढरथास्तूर्णंमार्गंतेवसुधांक्रमात् ॥ बदर्याश्रम
मासाद्यददृशुस्तपसांनिधिम् ॥६६॥ तपसाकर्शितंदीनंमलपंकजटाधरम् ॥ निःश्वासायासपरमंप्रथमेवयासिस्थितम् ॥ ६७ ॥ तमुपेत्याब्रवीद्राजाइंद्रद्युम्नो
महाभुजः ॥ तपस्विन्यौवनेघोरआस्थितोऽसिसुदुश्चरम् ॥६८॥ तपःकिमर्थंतच्छंसकिमभिप्रेतमुच्यताम् ॥ सोब्रवीत्कोभवान्ब्रूहिममात्मानंसुहृत्तया ॥
॥ ६९ ॥ परिपृच्छसिशोकार्तंपरिद्यूनंतपोऽन्वितम् ॥ सप्राहराजास्मिबलीतपस्विन्शाकलेपुरे ॥ ७० ॥ मनोःपुत्रप्रियोभ्राताइक्ष्वाकोःकथितंतव ॥
सचास्मैपूर्वचरितंसर्वंकथितवान्नृपः ॥ ७१ ॥ श्रुत्वाप्रोवाचराजर्षिर्मामुंचस्वकलेवरम् ॥ आगमिष्यामितन्वंगींविचेतुंभ्रातृजोसिमे ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वासंप
रिष्वज्यनृपंधर्मैसुसंयतम् ॥ समारोप्यरथंतूर्णंतापसाभ्यांन्यवेदयत् ॥ ७३ ॥ ऋतध्वजःसपुत्रस्तुतंदृष्ट्वापृथिवीपतिम् ॥ प्रोवाचराजन्नेह्योहिकरिष्यामि
तवप्रियम् ॥ ७४ ॥ यासौचित्रांगदानामत्वयादृष्टाहिनैमिषे ॥ सप्तगोदावरेतीर्थेसामयैवविवर्जिता ॥ ७५ ॥ आगच्छचागमिष्यामोतस्मादेवहिकारणात् ॥
तत्रास्माकंसमेष्यंतिकन्यास्तिस्रस्तथापराः ॥ ७६ ॥

बलवान् राजा ॥६९॥७०॥ मनुका पुत्र और इक्ष्वाकुका भ्राताहूं, अपना परिचय यह मैंने दिया, यह वचन सुन तपस्वीने अपना पूर्ववृत्तान्त कह सुनाया ॥ ७१ ॥ तब राजर्षि इन्द्रद्युम्न बोले कि, तुम शरीरत्याग न करना, तुम हमारे भाईके पुत्रहो आओ उस तन्वङ्गीको खोज करैं ॥ ७२ ॥ यह कहकर इन्द्रद्युम्न उस धमनी सन्तत राजाको गाढ़ आलिंगन और रथपर चढ़ाकर शीघ्र उन दोनों तपस्वियोंके निकट लेगये और सब हाल कह सुनाया ॥ ७३ ॥ सपुत्र ऋतध्वज उस पृथ्वीपतिको देखकर बोले कि, हेराजन्! आओ मैं तुम्हारा प्रिय अनुष्ठान करूंगा ॥ ७४ ॥ आपने जो उस चित्रांगदाको नैमिषक्षेत्रमें देखाथा मैं उसीको सप्त गोदावरीके किनारे रख आया हूं ॥ ७५ ॥ इसकारण आओ वहाँ चलैं, उस स्थानपर हमारी और तीन कन्यायें आपको समागत होंगीं ॥ ७६ ॥

यह कहकर ऋतध्वजने सुदेव पुत्र उन राजाको आज्ञा दे शकुनिको आगेकर इन्द्रद्युम्न और पुत्रके साथ ॥ ७७ ॥ अश्वयुक्त रथपर चढकर जिस स्थानपर सप्तगोदावरीके किनारे वह तीनों कन्या थीं उसी स्थानपर जानेका उपाय किया ॥ ७८ ॥ इसी समयमें तन्वी घृताची शोकितहो अपनी पुत्रीको खोजती हुई उदयागिरिपर विचरण करने लगी ॥ ७९ ॥ मार्गमें कपिसे साक्षात् हुआ उनसे पूछा कि, हे कपे ! सत्य २ कहो कि, क्या तुमने हमारी नंदिनीको नहीं देखा ॥ ८० ॥ कपिने उनके यह वचन सुनकर उत्तर दिया कि,मैं तुमसे सत्य२कहता हूं कि, तुम्हारी नंदिनी देववतीको देखा है, सो कालिन्दीके मृगपक्षियोंसे युक्त विमल किनारेपर श्रीकंठके मंदिरके निकट बडे आश्रमके बीचमें रहती है॥ ८१ ॥ ८२ ॥घृताची वानरसे बोली कि, उसका नाम वेदवती है देववती नहीं, इस कारण आओ चलें ॥८३॥ घृताचीके यह वचन

इत्येवमुक्त्वासऋषिःसमाश्वास्यसुदेवजाम् ॥ शकुनिंपुरतःकृत्वासेंद्रद्युम्नःसपुत्रकः ॥७७॥ स्यंदनेनाश्वयुक्तेनगंतुंसमुपचक्रमे ॥ सप्तगोदावरंतीर्थंयत्रताः
कन्यकागताः ॥७८॥ एतस्मिन्नंतरेतन्वीघृताचीशोकसंयुता ॥ विचचारोदयगिरिंविचिन्वंतीसुतांनिजाम् ॥७९॥ तमाससादचकपिंपर्यपृच्छद्यथाप्सराः ॥
किंबालानत्वयादृष्टाकपेसत्यंवदस्वमे ॥८०॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वासकपिःप्राहबालिकाम् ॥ दृष्टादेववतीनामसाचन्यस्तामहाश्रमे ॥८१॥ कालिंद्याविम
लेतीरेमृगपक्षिसमन्विते ॥ श्रीकंठायतनस्याग्रेमयासत्यंतवोदितम् ॥ ८२ ॥ साप्राहवानरवरंनाम्नावेदवतीतिसा ॥ नहिदेववतीख्यातातदागच्छव्रजावहे ॥
॥ ८३ ॥ घृताच्यास्तद्वचःश्रुत्वावानरस्त्वरितक्रमः ॥ पृष्ठतोस्याःसमागच्छन्नदीमन्वेवकौशिकीम् ॥ ८४ ॥ प्राप्ताराजर्षिप्रवरास्त्रयस्तेचापिकौशिकीम् ॥
द्वितयंतापसाभ्यांचरथाःपंचाश्ववेगिभिः ॥ ८५ ॥ अवतीर्यरथेभ्यस्तेस्नातुमभ्यागमन्नदीम् ॥ घृताच्यपिनदींस्नातुंसुपुण्यामाजगामह ॥ ८६ ॥ तामन्वे
वकपिःप्रायाद्दृष्टोजाबालिनातथा ॥ दृष्ट्वैवपितरंप्राहपार्थिवंचमहाबलम्॥८७॥सएषपुनरायातिवानरस्तातवेगवान् ॥ पूर्वंजटास्वेवबलाद्येनबद्धोस्मिपादपे ॥
॥ ८८ ॥ तज्जाबालिवचःश्रुत्वाशकुनिःक्रोधसंयुतः ॥ सशरंधनुरानम्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ ८९ ॥

सुनकर वानर शीघ्रही विक्रम प्रकाश करताहुआ पीछे २ कौशिकी नदीके किनारेको जाने लगा॥८४॥उस समय वह तीनों राजर्षिश्रेष्ठ जाबालि और ऋतध्वजके साथ उसमें विराजमान थे, ऐसे विश्वयोजित पांचरथ कौशिकीके किनारेपर पहुँचे॥८५॥वह सभी रथसे उतरकर स्नान करनेके निमित्त नदीमें गये, घृताचीभी उस परमपवित्र नदीमें स्नान करनेके लिये गई ॥८६॥ कपि भी घृताचीके पीछे २ चले, जाबालिके नयन मार्गमें पडे, वह कपिको देखकर पिता और महाबलवान् राजासे बोले ॥८७॥ कि, हे तात ! वही यह वेगवान् वानर फिर आ रहा है, जिसने मुझे पहले जटापाशके द्वारा बांधाथा ॥ ८८ ॥ जाबालिके यह वचन सुनकर धनुषमें बाणोंको

चढ़ाकर यह वचन बोले ॥ ८९ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञादीजिये और कहिये तो मैं इसीसमय बाणके प्रहारसे वानरको निहत करूंगा ॥ ९० ॥ इस प्रकारके वचनोंको सुनकर सब प्राणियोंके हितैषी महर्षि शकुनिजी हेतुयुक्त वचन बोले ॥ ९१ ॥ हे तात ! किसी मनुष्यकाभी वध तथा बंधनकरना उचित नहीं है, हे राजनंदन ! वध और बंधन पहले किये हुए कर्मोंके फलसे होता है ॥९२॥ शकुनिके इसप्रकार कहनेपर ऋषि बोले कि, हे ब्रह्मन् ! तब हमैं क्या करना होगा सो आज्ञा दीजिये ॥ ९३ ॥ ऋषि इसप्रकारके वचन सुन उस वानरपतिसे बोले तुमने हमारे पुत्रको जटाके द्वारा वटके वृक्षसे बाँधा था ॥ ९४ ॥ कोई मनुष्यभी यत्नकरके उसे न छुडासके, पीछे इन नरेन्द्रने बाणोंके द्वारा उसवृक्षके तीन टुकड़े करदिये ॥ ९५ ॥ हमारा पुत्र आजतक उसकी शाखाको मस्तकपर सहन

ब्रह्मन्प्रदीयतांमह्यमाज्ञाताতवदस्वमाम् ॥ यावदेनंनिहन्म्यद्यशरेणैकेनवानरम् ॥ ९० ॥ इत्येवमुक्तेवचनेसर्वभूतहितेरतः ॥ महर्षिःशकुनिःप्राहहेतुयुक्तंव
चोमहत् ॥ ९१ ॥ नकश्चित्तातकेनापिवध्यतेबध्यतेपिवा ॥ वधबंधौपूर्वकर्मवशौनृपतिनंदन ॥ ९२ ॥ इत्येवमुक्तःशकुनिर्ऋषिर्वचनमब्रवीत् ॥ ममाज्ञादी
यतांब्रह्मन्शाधिकिंकरवाण्यहम् ॥ ९३ ॥ इत्युक्तःप्राहसमुनिस्तंवानरपतिंवचः ॥ ममपुत्रस्त्वयोद्बद्धोजटाभिर्वटपादपे ॥९४॥ नचेन्मोचयितुंवृक्षाच्छक्तु
याच्चापियत्नतः ॥ तदनेननरेन्द्रेणत्रिधाकृत्वातुशाखिनम् ॥ ९५ ॥ शाखांवहतिमत्सूनुःशिरसातांविमोचय ॥ दशवर्षशतान्यस्यशाखांवैवहतोगताः ॥
॥ ९६ ॥ नचास्तिपुरुषःकश्चिद्योह्युन्मोचयितुंक्षमः ॥ सऋषेर्वाक्यमाकर्ण्यकपिर्जाबालिनोजटाः ॥ ९७ ॥ शनैरुन्मोचयामासक्षणादुन्मोचिताश्चताः ॥
ततःप्रीतोमुनिश्रेष्ठोवरदोभूदृतध्वजः ॥ ९८ ॥ कपिंप्राहवृणीष्वत्वंवरंयन्मनसेप्सितम् ॥ ऋतध्वजवचःश्रुत्वाइमंवरमयाचत ॥ ९९॥ विश्वकर्मामहातेजाः
कपित्वेप्रतिसंस्थितः ॥ ब्रह्मन्भवान्वरंमह्यंयदिदातुंयथेच्छसि ॥ १०० ॥ तच्चदत्तोमहाघोरोममशापोनिवर्त्यताम् ॥ चित्रांगदायाःपितरंमांत्वष्टारंतपो
धनम् ॥ १०१ ॥ अभिजानीहिभवतःशापाद्वानरतांगतम् ॥ सुबहूनिचपापानिमयायानिकृतानिहि ॥ १०२ ॥

कररहा है, अब तुम उसे छुडा दो, शाखाको सहन करते हुए दश सहस्र वर्ष बीतगये हैं ॥ ९६ ॥ ऐसा कोईभी पुरुष नहीं है जो उसे छुडासके, कपिने ऋषिके यह वचन सुनकर जाबालिकी जटाभार ॥ ९७ ॥ धीरे २ छुडाई क्षणकालके बीचमेंही वह मुक्त होगये, यह देखकर मुनिश्रेष्ठ ऋतध्वज प्रसन्नहो वर देनेको सन्नद्ध होकर ॥ ९८ ॥ कपिसे बोले कि, तुम्हारी जो अभिलाषा हो वही वर मांगो; ऋतध्वजके यह वचन सुनकर कपियोनिमें पडेहुए वह महातेजस्वी विश्वकर्माजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे अभिलषित वर देनेके निमित्त सन्नद्ध हुए हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ तो मुझे जो यह भयंकर शाप दिया है वह छूट जाँय, मैं चित्रांगदाका पिता तपोधन विश्वकर्मा हूं ॥ १०१ ॥ आपहीके शापसे इस वानरयोनिको प्राप्त हुआ हूं सो आप स्मरणकरें मैंने जो बहुतसे पाप किये हैं ॥ १०२ ॥

वह केवल कपिके स्वभाववश तथा कपिचंचलताके वशसे किये थे, इसकारण वह सभी क्षय होजाँय, तब ऋतध्वज बोले कि, तुम्हारे पापोंका अंत होगा ॥ १०३ ॥ जिस समय तुम घृताचीके गर्भमें महाबलवान् पुत्र उत्पन्न करोगे, तभी सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाँयगे; यह वचन सुन कपि हर्षित हुआ ॥ १०४ ॥ हे कृशोदरि ! फिर वह शीघ्र स्नान करनेके निमित्त महानदीमें उतरा, इसके पीछे विधिपूर्वक स्नान और पितरोंका तर्पण कर ॥ १०५ ॥ हर्षितहो रथपर चढ़े घृताची भी स्वर्गसे आई, यह देखकर कपिश्रेष्ठने महावेगसे उसका पीछा किया ॥ १०६ ॥ इसके उपरान्त वह वानररूपधारी विश्वकर्मा स्वरूपिणी घृताचीको जैसे भावसहित देखा घृताचीने भी वैसेही उस शाखामृगकी ओरको देखा ॥ १०७ ॥ वह कामिनी घृताची विश्वकर्माको जानकर कामनाके परवश हुई, तब कोलाहल नामसे विख्यात

कपिचापल्यदोषेणतानिमेयांतुसंक्षयम् ॥ ऋतध्वजस्ततःप्राहशापस्यांतोभविष्यति ॥ १०३ ॥ यदाघृताच्यांतनयंजनिष्यसिमहाबलम् ॥ इत्येवमुक्तः
संहृष्टःसतथाकपिसत्तमः ॥ १०४ ॥ स्नातुंतूर्णंमहानद्यामवतीर्णःकृशोदरि ॥ ततस्तुसर्वैंक्रमशःस्नात्वाचपितृदेवताः ॥ १०५ ॥ जग्मुर्हृष्टारथेभ्यस्ते
घृताचीदिवमुत्पतत् ॥ तामन्वेवमहावेगःसकपिःप्लुवतांवरः ॥ १०६ ॥ ददृशेरूपसंपन्नांघृताचींसप्लवंगमः ॥ सापितंबलिनांश्रेष्ठंदृष्ट्वैवकपिकुंजरम् ॥
॥ १०७॥ ज्ञात्वाथविश्वकर्माणंकामयामासकामिनी ॥ ततोनुपर्वतश्रेष्ठेख्यातेकोलाहलेकपिः ॥ १०८ ॥ रमयामासतांतन्वींसाचतंवानरोत्तमम् ॥
एवंरमंतौसुचिरंप्राप्तौतौविंध्यपर्वतम् ॥ १०९ ॥ रथेषुचापितत्तीर्थंसंप्राप्तास्तेनरोत्तमाः ॥ मध्याह्नसमयेश्रांताःसप्तगोदावरंजलम् ॥ ११० ॥ प्राप्तावि
श्रामहेत्वर्थमवतेरुस्तृषार्दिताः ॥ तेषांसारथयोऽश्वाश्चस्नात्वापीतोदकाःप्लुताः ॥ १११ ॥ रमणीयेवनोद्देशेप्रचारायसमुत्सृजन् ॥ शाद्वलाढ्येषुदे
शेषुमुहूर्तादेववाजिनः ॥ ११२ ॥ तृप्ताःसमाद्रवन्सर्वेदेवालयमनुत्तमम् ॥ तुरंगखुरनिर्घोषंश्रुत्वातायोषितांवराः ॥ ११३ ॥ किमेतदितिचोक्त्वैवप्रजग्मुर्हा
टकेश्वरम् ॥ आरुह्यवलभींतास्तुसमुदैक्षंतसर्वशः ॥ ११४ ॥

पर्वतश्रेष्ठपर कपिश्रेष्ठ ॥ १०८ ॥ घृताचीके साथ बिहार करने लगे, परस्परमें बहुत कालतक बिहार कर विन्ध्याचलपर्वतपर गये ॥ १०९ ॥ इसी समयमें वह ऋतध्वजादि नरश्रेष्ठ रथपर चढ ऊपर लिखेहुए तीर्थमें मध्याह्नके समय आये, और सप्तगोदावरीके निर्मल जलको ॥ ११० ॥ प्राप्तकर विश्राम लेनेके निमित्त बैठे, सभी परिश्रम करनेसे अत्यन्त व्याकुल होगये थे, उनके सब सारथियोंने रथके घोडोंको जलपान कराकर समाधान किया ॥ १११ ॥ और रमणीक उस वनकी भूमिमें हरे २ तृणसे युक्त प्रदेशमें मुहूर्त्तमात्रके निमित्त घोडोंको चरनेके अर्थ छोडदिया ॥ ११२ ॥ इसके उपरान्त सभी तृप्तिको प्राप्तकर उस परमश्रेष्ठ देवालयकी ओरको जानेलगे वह श्रेष्ठस्त्रियें घोड़ोंके खुरोंके शब्दको सुनकर ॥ ११३ ॥ "यह क्या है" ऐसा कहकर हाटकेश्वरको गईं, वहां मंदिरके

छज्जेपर चढ़कर सब ओरको देखने लगीं ॥ ११४ ॥ तब तीर्थके जलमें स्नान कियेहुए मनुष्योंमें श्रेष्ठ इन चारोंको देखा, चित्रांगदा उनके बीचमें जटामंडलधारी सुरथको देखकर पुलकायमानहो हँसते २ सखीसे कहने लगी ॥ ११५ ॥ कि, यह जो नीलमेघकी समान कांतिवाला आजानुबाहु युवापुरुष दृष्टि आता है जिसका रूप अत्यन्त मनोहरं है, उस इसी राजनंदनकोही पहले मैंने पतिरूपसे वरण कियाथा, यही मेरे पति हैं ॥ ११६ ॥ और यह जो जाम्बूनद (सुवर्ण) की समान गौरवर्ण श्वेतवर्णके जटाभारसे शोभायमान हैं सो यह तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ऋतध्वज है इसमें कुछभी विचार नहीं ॥ ११७ ॥ तब दमयन्ती हर्षित होकर

अपश्यंस्तीर्थसलिलआप्लुतांगान्नरोत्तमान् ॥ ततश्चित्रांगदादृष्ट्वाजटामंडलधारिणम् ॥ हसंतीसुरथंप्राहसंरोहत्पुलकासखीम् ॥ ११५॥ योसौयुवानी
लघनप्रकाशःसंलक्ष्यतेदीर्घभुजःसुरूपः ॥ सएवनूनंनरदेवसूनुर्वृतोमयापूर्वपतिःपतिर्यः ॥ ११६ ॥ यश्चैषजांबूनदतुल्यवर्णःश्वेतंजटाभारमधारयिष्यत् ॥
सएषनूनंतपतांवरिष्ठऋतध्वजोनात्रविचारणास्ति ॥११७॥ ततोऽब्रवीदथोहृष्टादमयन्तीसखीजनम् ॥ एषोऽपरोऽस्यैवसुतोजाबालिर्नात्रसंशयः ॥११८॥
इत्येवमुक्त्वावचनंवलभ्याअवतीर्यच ॥ समासन्नाग्रतःशंभोर्गायंतीगीतकाञ्छुभान् ॥ ११९ ॥ ॐ नमोऽस्तुशर्व शंभो त्रिणेत्र चारुगात्र त्रैलोक्यनाथ
उमापते दक्षयज्ञविध्वंसकारक कामांगनाशन घोरपापप्रणाशन महापुरुष महोग्रमूर्ते सर्वसत्त्वक्षयंकर शुभंकर महेश्वर त्रिशूलधर स्मरारे गुहाधामन्
दिग्वासः महाचंद्रशेखर जटाधर कपालमालाविभूषितशरीर वामचक्षुःक्षुभितदेवप्रजाध्यक्ष भगाक्ष्णोःक्षयंकर भीमसेन नाथ पशुपते कामाङ्गदाहिन्
चत्वरवासिन् शिव महादेव ईशान शंकर भीम भव वृषभध्वज कटभ प्रौढमहानाट्येश्वर भूतिरत अविमुक्तक रुद्र रुद्रेश्वर स्थाणो एकलिंग कालिन्दीप्रिय
श्रीकण्ठ नीलकंठ अपराजित रिपुभयंकर संतोषपते वामदेव अघोर तत्पुरुष महाघोर अघोरमूर्ते शांत सरस्वतीकांत सहस्रमूर्ते महोद्भवविभो कालाग्ने
रुद्र रौद्र हर महीधर प्रिय सर्वतीर्थाधिवास हंस कामेश्वर केदाराधिपते परिपूर्ण मुचुकुंद मधुनिवास कृपाणपाणे भयंकर विद्याराजसोमराजकामराज
महीधरराजकन्याहृदब्जवसते समुद्रशायिन् गयामुख गोकर्ण ब्रह्मयोने सहस्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर नमस्ते ॥ एतस्मिन्नंतरेप्राप्ताः सर्वएवर्षिपा
र्थिवाः ॥ द्रष्टुंत्रैलोक्यकर्तारंत्र्यंबकंहाटकेश्वरम् ॥ १२० ॥

सखीसे बोली और यह दूसरा मनुष्य ऋतध्वजका पुत्र जाबालि है इसमें भी कुछ संदेह नहीं ॥ ११८ ॥ यह कहकर बलभी (छज्जे) से उतरकर शम्भुके सन्मुख आ मधुरस्वरसे गाना प्रारंभ किया ॥ ११९ ॥ ॐ हेशर्व ! शम्भो ! त्रिनेत्र चारुगात्र, त्रैलोक्यनाथ, और उमापते ! तुम्हैं नमस्कार है, हे दक्षयज्ञविध्वंसकारक ! हे कामांगनाशन ! हे घोरपापप्रणाशन ! हेमहापुरुष ! हे महोग्रमूर्ते ! हेसर्वसत्वक्षयकर ! शुभंकर ! त्रिशूलधर और स्मरारे हे गुह्यधामन् ! दिग्वास महाशंखशेखर जटाधर !

और कपालमालाविभूषितशरीर, हे वामचक्षु क्षुभित देव प्रजाध्यक्ष ! भगाक्षिक्षयङ्कर भीमसेननाथ, पशुपते, कामांगदाहिन, चत्वरवासिन; शिव, महादेव, ईशान, शंकर, भीम, भव, वृषध्वज और कैटभ, हे प्रौढ, महानाटयेश्वर ! हे भूमितर, आविमुक्तक, रुद्र, रुद्रेश्वर, स्थाणो, एकलिंग, कालिन्दीप्रिय, श्रीकंठ, नीलकंठ, अपराजित और रिपुभयंकर हे संतोषपते ! कालाग्ने, रुद्र, रौद्र, हर, महीधर, प्रिय, सर्वतीर्थाधिवास, हंस, कामेश्वर; केदार, अधिपते ! परिपूर्ण, मुचुकुन्द, मधुनिवास, कृपाणपाणे, भयंकर, विद्याराज, सोमराज, कामराज, महीधरराज; कन्याहृदब्जवसते ! समुद्रशायिन्, गयामुख, गोकर्ण, ब्रह्मयोने सहस्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर तुमको नमस्कार है इसीअवसरमें ऋषि और पार्थिव त्रिलोकीके कर्ता हाटकेश्वरका दर्शन करनेके निमित्त आये ॥ १२० ॥ वहाँ विधिपूर्वक स्नानकर अश्वपर चढ़कर देखा कि, वह चारु सर्वांगी कन्या हाटकेश्वरके सन्मुख खड़ीहुई श्रेष्ठगान कर रही है ॥ १२१ ॥ इसके उपरान्त सुदेवके पुत्र सुरथ विश्वकर्माकी कन्या प्रिया

समारूढाश्वसुस्नाताददृशुर्योषितःशुभाः ॥ स्थितास्तुपुरतस्तस्यगायंत्योगेयमुत्तमम् ॥ १२१ ॥ ततःसुदेवतनयोविश्वकर्मसुतांप्रियाम् ॥ दृष्ट्वाहृषित
चित्तस्तुसंरोहत्पुलकोबभौ ॥ १२२ ॥ ऋतध्वजोपितन्वंगींदृष्ट्वाचित्रांगदांस्थिताम् ॥ प्रत्यभिज्ञाययोगात्मावालांमुदितमानसः ॥ १२३ ॥ ततस्तेऽपि
समभ्येत्यदेवेशंहाटकेश्वरम् ॥ संपूजयंतरुयक्षंतेसंस्तुवंतःक्रमात्ततः ॥ १२४ ॥ चित्रांगदापितान्दृष्ट्वाऋतध्वजपुरोगमान् ॥ संमताभिःकृशांगीभिरभ्यु
त्थायाभ्यवादयत् ॥ १२५ ॥ सचताःप्रतिनंद्यैवसमंपुत्रेणतापसः ॥ समंनृपतिभिर्हृष्टःसंविवेशयथासुखम् ॥ १२६ ॥ ततःकपिवरःप्राप्तोघृताच्या
सहसुंदरि ॥ स्नात्वागोदावरीतीर्थेदिदृक्षुर्हाटकेश्वरम् ॥ १२७ ॥ ततोऽपश्यंश्चतांतन्वींघृताचींशुभदर्शनाम् ॥ सापितांमातरंदृष्ट्वाहृष्टाभूद्वरवर्णिनी ॥
॥ १२८ ॥ ततोघृताचीस्वांपुत्रींपरिष्वज्यन्यपीडयत् ॥ स्नेहात्सबाष्पनयनामुहुस्तांपरिजिघ्रती ॥ १२९ ॥

चित्रांगदाको देखकर हर्षित हुए ॥ १२२ ॥ योगात्मा ऋतध्वज भी तन्वंगी बाला चित्रांगदाको देख पहँचानकर हर्षित हुए ॥ १२३ ॥ पीछे वह सबभी वहाँ आकर यथारीतिसे भगवान् हाटकेश्वरकी विधिपूर्वक पूजाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२४ ॥ चित्रांगदाने ऋतध्वज इत्यादि इन समस्त मनुष्योंको देखकर विशेष माननीया देववती इत्यादि कृशांगी स्त्रियोंके साथ उठकर उनको प्रणाम किया ॥ १२५ ॥ और तपस्वी ऋतध्वज पुत्र और नृपतियोंके साथ मिल हर्षित हो उनमें आनंद प्रकाशकर सुखसे बैठे ॥ १२६ ॥ हे सुन्दरि ! इसीसमय गोदावरी तीर्थमें स्नानकर हाटकेश्वरका दर्शन करनेकी इच्छासे घृताचीके साथ कपिश्रेष्ठभी उस स्थानपर आये ॥ १२७ ॥ इसके उपरान्त सभी शुभदर्शना तन्वंगी घृताचीको देखकर देखतेहुए, वो वरवर्णिनी चित्रांगदा अपनी उस माताको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ १२८ ॥ इसके उपरान्त घृताची स्नेहके वशसे अपनी पुत्री चित्रांगदाको आलिंगनकर वारम्वार उसका मस्तक सूँघने लगी ॥ १२९ ॥

यह देखकर ऋतध्वज कपिसे बोले कि, तुम महात्मा गुह्यकके लानेके निमित्त अंजनपर शीघ्र आओ ॥ १३० ॥ और पातालसे भी वीर कंदरमाली और स्वर्गसे गंधर्वराज पर्जन्यको शीघ्र इसस्थानपर ले आओ ॥ १३१ ॥ मुनिके इसप्रकार कहनेपर देववती कपिसे बोली कि, हे कपिश्रेष्ठ ! तुम गालवको यहाँ ले जाओ॥ १३२ ॥ देववतीके ऐसे वचन कहनेपर अमितविक्रम कपीइन्द्र अंजनपर्वतपर जाकर अंजनको आमंत्रणकर अमरपर्वतको गये ॥ १३३ ॥ वहाँसे पर्जन्यको आमंत्रणपूर्वक उस सप्तगोदावरी तीर्थके महाश्रममें भेजकर पातालको गये ॥ १३४ ॥ वहाँ महावीर्यवान् कपि कन्दरमालीको आमंत्रण दे और पातालसे चलकर शीघ्र ही पृथ्वीकी परिक्रमा देनेमें प्रवृत्त हुए॥ १३५॥इसके उपरान्त माहिष्मती नगरीमें तपोनिधि गालवको लेकर उत्प्लवन (कूद) कर शीघ्रही उन्हें सप्तगोदावरीके जलके

ऋतध्वजस्ततःश्रीमान्कपिंवचनमब्रवीत् ॥ गच्छानेतुंगुह्यकंत्वमंजनाद्रौमहाजनम् ॥१३०॥ पातालादपिदैत्येशंवीरंकंदरमालिनम् ॥ स्वर्गाद्गंधर्वराजानं पर्जन्यंशीघ्रमानय ॥ १३१ ॥ इत्येवमुक्तेमुनिनाप्राहदेववतीकपिम् ॥ गालवंवानरश्रेष्ठइहानेतुंत्वमर्हसि ॥ १३२ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेकपींद्रोमितविक्रमः ॥ गत्वांजनंसमामंत्र्यजगामामरपर्वतम् ॥ १३३ ॥ पर्जन्यंतत्रचामंत्र्यप्रेषयित्वामहाश्रमे ॥ सप्तगोदावरींतीर्थेंपातालमगमत्कपिः ॥ १३४ ॥ तत्रामंत्र्यमहावीर्यःकपिः कंदरमालिनम् ॥ पातालादतिनिष्क्रम्यमहींपर्यचरज्जवी ॥ १३५ ॥ गालवंतपसोयोनिंदृष्ट्वामाहिष्मतीमनु ॥ समुत्पत्यानयच्छीघ्रंसप्तगोदावरीजलम् ॥ १३६ ॥ तत्रस्नात्वाविधानेनसंप्राप्तोहाटकेश्वरम् ॥ ददृशेदमयंतींतांस्थितांवेदवतीमपि ॥ १३७ ॥ तंदृष्ट्वागालवंचैवसमुत्थायाभ्यवादयत् ॥ तेचापिनृपतिश्रेष्ठास्तंसंपूज्यतपोधनम् ॥ १३८ ॥ प्रहर्षमतुलंगत्वाउपविष्टायथासुखम् ॥ तेषूपविष्टेषुतदावानरेणनिमंत्रिताः ॥ ॥ १३९ ॥ समायातामहात्मानोयक्षगंधर्वदानवाः ॥ तानागतान्समीक्ष्यैवपुत्र्यस्ताःपृथुलोचनाः ॥१४०॥ स्नेहार्द्रनयनास्तावैतदासस्वजिरेपितॄन् ॥ दमयंत्यादिकादृष्ट्वापितृयुक्तावराननाः ॥ १४१ ॥

निकट आये॥ १३६ ॥वहां विधिपूर्वक स्नानकर हाटकेश्वरमें पहुँचे और जाकर देखा कि, दमयन्ती और देववती यह दोनों वहाँ विराजमान हैं ॥ १३७ ॥ गालवजीको देखकर उठ प्रणाम किया, वह नरपतिभी तपोधन गालवजीकी विधिपूर्वक पूजाकर ॥ १३८ ॥ अत्यन्त आनंद प्रकाश करतेहुए यथासुखसे बैठे, उनके बैठनेके पीछे कपिके निमंत्रित किये हुए ॥ १३९ ॥ महानुभाव यक्ष, और दानवराज यह सभी उस स्थानपर आये, उन्हें आयाहुआ देखकर उनकी वह पृथुलोचनी कन्यायें ॥ ॥ १४० ॥ स्नेहसहित हृदयसे पिताको आलिंगन करने लगीं, दमयन्ती इत्यादिक कन्यायें अपने २ पिताओंके साथ मिलीं और उनका दर्शन किया ॥ १४१ ॥

विश्वकर्माकी पुत्री चित्रांगदाके नेत्रोंमें जल भर आया, तब ऋतध्वज उससे यह वचन बोलेकि॥ १४२॥हे पुत्रि ! तुम विषादित न होना, यह वानर तुम्हारे पिता हैं, ऋतध्वजके यह वचन सुनकर वह ललना नष्टज्ञान हुई ॥ १४३ ॥ और मनहीमनमें विचारने लगी कि, विश्वकर्मा किसप्रकारसे वानर हुए मैं सर्वथाही कुपुत्री उत्पन्न हुई हूं, इसी कारण ऐसा हुआ है । इस निमित्त मैं अपने शरीरको त्याग करूँगी ॥ १४४ ॥ ऐसी चिन्ता कर ऋतध्वजसे बोली कि, हे ब्रह्मन् ! पापके वश मेरी चेतना नष्ट होगई थी मेरा उद्धार करो ॥ १४५ ॥ मैं पितृहन्ती हूं इसी कारण मरनेकी इच्छा करती हूं, मुझे आप आज्ञा दीजिये, मुनि उस तन्वींसे बोले कि, अब विषादित न होना ॥ १४६ ॥ भावीका विनाश है नहीं इसकारण शरीर त्याग न करना, तुम्हारे पिता फिर अपने उसी विश्वकर्मारूपको प्राप्त होंगे ॥ १४७ ॥ घृता

सबाष्पनयनाजाताविश्वकर्मसुतातदा ॥ अथतामाहसमुनिःसत्यंसत्यध्वजोवचः ॥ १४२ ॥ माविषादंकृथाःपुत्रिपितायंतववानरः ॥ सातद्वचनमाकर्ण्य
व्रीडोपहतचेतना ॥ १४३ ॥ कथंतुविश्वकर्मासौवानरत्वंगतोऽधुना ॥ दुष्पुत्र्यांमयिजातायांतस्मात्त्यक्ष्येकलेवरम् ॥ १४४ ॥ इतिसंचिंत्यमनसाऋ
तध्वजमुवाचह ॥ परित्रायस्वमांब्रह्मन्पापोपहतचेतसम् ॥ १४५ ॥ पितृघ्नीमर्तुमिच्छामितदनुज्ञातुमर्हसि ॥ अथोवाचमुनिस्तन्वींमाविषादंकृथाधुना ॥
॥१४६॥ संभाव्येनविनाशोस्तितन्मात्याक्षीःकलेवरम् ॥ भविष्यतिपितातुभ्यंभूयोप्यमरवर्द्धकिः ॥१४७॥ जातेऽपत्येघृताच्यांतुनात्रकार्याविचारणा ॥
इत्येवमुक्तेवचनेमुनिनाभावितात्मना ॥ १४८ ॥ घृताचीतांसमभ्येत्यप्राहचित्रांगदांवचः ॥ परित्यजस्वशोकंत्वंमासैर्दशभिरात्मजः ॥ १४९ ॥
भविष्यतिपितुस्तुल्योमत्सकाशान्नसंशयः ॥ इत्येवमुक्तासंहृष्टाबभौचित्रांगदातदा ॥ १५० ॥ स्वंप्रत्यैक्षतचार्वंगीविवाहंपितृदर्शनम् ॥ सर्वास्ताअ
पितावंतंकालंसुतनुकन्यकाः ॥ १५१ ॥ प्रत्यैक्षंतविवाहंहितस्याएवप्रियेप्सया ॥ ततोदशसुमासेषुसमतीतेष्वथाप्सराः ॥ १५२ ॥ तस्मिन्गोदावरी
तीरेप्रसूतातनयंनलम् ॥ जातेऽपत्येकपित्वाच्चविश्वकर्माप्यमुच्यत ॥ १५३ ॥

चीके गर्भसे पुत्रके उत्पन्न होतेही ऐसा होगा इसमें किंचित्भी संदेह नहीं, भावितात्मा महर्षिके इसप्रकार कहनेपर ॥ १४८ ॥ घृताची चित्रांगदाके समीप जाकर बोली कि, तुम शोकको त्याग करो, दश महीनेके पीछे मेरे गर्भसे पिताकी समान पुत्र उत्पन्न होगा इसमें कुछभी संदेह नहीं घृताचीके ऐसा कहनेपर चित्रांगदा हर्षित हुई ॥ १४९॥१५०॥ और चार्वंगी चित्रांगदा अपने विवाह तथा पिताके यथा पूर्वरूपके दर्शनकी प्रतीक्षा करती हुई रही, यह सुतनु वह सब कन्यायेंभी उतने समय तक ॥ १५१ ॥ उसके हितकी इच्छाके वशसे उस विवाहकी प्रतीक्षा करनेलगी इसके उपरान्त दश मास व्यतीत हुए अप्सरा घृताचीने ॥ १५२ ॥ उस गोदावरीके

किनारे पुत्र नलको उत्पन्न किया. उनके उत्पन्न होतेही विश्वकर्माजी कपियोनिसे मुक्त होगये ॥ १५३ ॥ तब उन्होंने आदरके सहित अपनी प्रियपुत्री चित्रांगदाको आलिंगन किया इसके उपरान्त देववर्द्धकी (देवताओंके बडही) विश्वकर्मा प्रसन्नमन हो देवताओंके पति इन्द्रको देवता और किन्नरोंके सहित स्मरण करने लगे, उनके स्मरण करतेही देवराज देवता और अप्सराओंको साथले वहाँ आये ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ जब इन्द्र उस हाटक तीर्थमें आये और देवता, गंधर्व, अप्सरायें यह सभी आईं ॥ १५६ ॥ तब इन्द्रद्युम्न मुनिश्रेष्ठ ऋतध्वजसे बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जाबालिको कन्दरमालीकी पुत्री दिखा दीजिये ॥ १५७ ॥ और आप दैत्यनंदिनीका पाणिग्रहण कीजिये और दमयन्तीके साथ परमरूपवान शकुनिका विवाह हो, और विधिपूर्वक अग्निमें आहुतिदे इस वेदवतीको मुझे स्वामित्वमें वरण

समभ्येत्याप्रियांपुत्रींपर्यष्वजतचादरात् ॥ ततःप्रीतेनमनसासस्मारसुरवर्द्धकिः ॥ १५४ ॥ सुराणामधिपंशक्रंसहैवसुरकिन्नरैः ॥ त्वष्ट्राथसंस्मृतःप्राप्तः
शक्रोऽमरगणैर्वृतः ॥ १५५ ॥ सुरैर्महेंद्रःसंप्रातस्तत्तीर्थंहाटकाह्वयम् ॥ समायातेषुदेवेषुगंधर्वेष्वप्सरस्सुच ॥ १५६ ॥ इंद्रद्युम्नोमुनिश्रेष्ठमृतध्वजमु
वाचह ॥ जाबालेर्दीयतांब्रह्मन्सुताकंदरमालिनः ॥ १५७ ॥ गृह्णातुविधिवत्पाणिंदैतेयतनयातव ॥ दमयंतींचशकुनिःपरिणेतास्वरूपवान् ॥ १५८ ॥
ममेयंवेदवत्यस्तुहुत्वाहव्यंविधानतः ॥ बाढमित्यब्रवीत्सोपिमुनिर्मनुसुतंनृपम् ॥ १५९ ॥ ततोनुजह्रुस्तंहृष्टाविवाहविधिमुत्तमम् ॥ ऋत्विजोगालवाद्या
श्चहुत्वाहव्यंविधानतः ॥ १६० ॥ गायंतितत्रगंधर्वानृत्यंत्यप्सरसस्तथा ॥ आदौजाबालिनःपाणिर्गृहीतोदैत्यकन्यया ॥ १६१ ॥ इंद्रद्युम्नेनतदनुवेदवत्या
विधानतः ॥ ततःशकुनिनापाणिगृहीतोयक्षकन्यया ॥ १६२ ॥ चित्रांगदायाःकल्याणिसुरथःपाणिमग्रहीत् ॥ एवंक्रमाद्विवाहस्तुनिर्वृत्तस्तनुमध्यमे ॥
॥ १६३ ॥ वृत्तेमुनिर्विवाहेतुशक्रादीन्प्राहदानवान् ॥ अस्मिंस्तीर्थेभवद्भिस्तुसप्तगोदावरेसदा ॥ १६४ ॥ स्थेयंविशेषतोमासमिमंमाधवमुत्तमम् ॥
बाढमुक्त्वासुराःसर्वेजग्मुर्हृष्टादिवंक्रमात् ॥ १६५ ॥

कीजिये ऋतध्वज मनुपुत्रके प्रस्तावसे सम्मत हुए ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ तब गालवादि ऋत्विजोंने यथाविधानसे होम कर हर्षितहो विवाहकी विधि विधान की ॥ १६० ॥ गंधर्वगण गान करने और अप्सरायें नृत्य करने लगीं दैत्यकन्याने प्रथम जाबालिका पाणिग्रहण किया ॥ १६१ ॥ उसके पीछे भलीभाँतिसे इन्द्रद्युम्नके साथ वेदवती विवाही गई पीछे शकुनिने यक्षकन्याका पाणिग्रहण किया ॥ १६२ ॥ हे कल्याणि ! इसके उपरान्त चित्रांगदा सुरथके साथ विवाही गई, हे तनुमध्यमे ! इसप्रकार क्रमानुसार विवाहकार्य समाप्त हुआ ॥ १६३ ॥ विवाहके समाप्त होनेपर ऋतध्वज इन्द्रादिकसे बोले कि, आप इस सप्तगोदावरीमें ॥ १६४ ॥ विशेषकरके इस श्रेष्ठ

वैशाखके महीनेमें आवैं देवता " तथास्तु " कहकर हर्षितहो स्वर्गको चलेगये ॥ १६५ ॥ तब मुनि सपुत्र ऋतध्वजको ग्रहणकर आदरसहित गये, राजाभी अपनी २ स्त्रियोंको साथ लिये हुए अपनी नगरीको गये ॥ १६६ ॥ और सभी अत्यन्त हर्षितहो सुखानंदकोअनुभव करते हुए घरोंमें निवास करने लगे हेकल्याणी ! चित्रांगदाके इस पूर्ववृत्तान्तको वर्णन किया, इसकारण अब हे कमलकी समान नेत्रोंवाली ! हे स्त्रियोंमें श्रेष्ठभूते ! तुम मेरे साथ संभोग करो ॥ १६७ ॥ नरदेवनंदन दंड इसप्रकारके वचन कहकर उस ब्राह्मणपुत्री मृगलोचनी नितम्बिनी अरजाकी स्तुति करने लगे तब अरजा उससे मधुर वचन बोली ॥ १६८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां चित्रांगदाविवाहो नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ अरजा बोली कि, हे राजन् ! आपके अधिक कहनेसे क्या होगा, मैं किसीप्रका

मुनयोमुनिमादायसपुत्रंजग्मुरादरात् ॥ भार्याश्चादायराजानःस्वंस्वंनगरमागताः ॥ १६६ ॥ संहृष्टाःसंमुखंतस्थुर्भुंजानाविषयेंद्रियान् ॥ चित्रांगदायाः कल्याणिपूर्ववृत्तंपुराकिल ॥ तस्मात्कमलपत्राक्षिभजस्वललनोत्तमे ॥ १६७ ॥ इत्येवमुक्त्वानरदेवसूनुस्तांभूमिदेवस्यसुतांवरोरुम् ॥ स्तुवन्मृगाक्षीं मृदुनाक्रमेणसाचापिवाक्यंनृपतिंबभाषे ॥ १६८ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेपंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ अरजाउवाच ॥ नात्मानंतवदास्यामिबहुनोक्तेन किंतव ॥ रक्षंतीभवतःशापादात्मानंचमहीपते ॥ १ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ इत्थंविवदमानांतांभार्गवेंद्रसुतांबलात्॥कामोपहतचित्तात्माव्यध्वंसयतमंदधीः ॥ ॥ २ ॥ तांकृत्वाच्युतचारित्रांमदांधःपृथिवीपतिः ॥ निश्चक्रामाश्रमात्तस्माद्गतश्चनगरंनिजम् ॥ ३ ॥ सापिशुक्रप्लुतातन्वीअरजारजसाप्लुता ॥ आश्रमादथ निर्गत्यबहिस्तस्थावधोमुखी ॥ ४ ॥ चिंतयंतीस्वपितरंरुदतीचमुहुर्मुहुः ॥ महाग्रहोपरुद्धेवरोहिणीशशिनःप्रिया ॥ ५ ॥ ततोबहुतिथेकालेसमाप्ते यज्ञकर्माणि ॥ पातालादागमच्छुक्रःस्वमाश्रमपदंमुनिः ॥ ६ ॥

रसे भी आत्मदान नहीं करसकती, आत्मदानके न करनेसे मेरी और आपकी दोनोंहीकी पिताके शापसे रक्षा होगी ॥ १ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, राजा दंडकी बुद्धि नष्ट होगईथी, और आत्मा तथा चित्त कामके वशीभूत होगयाथा, इसी कारणसे भार्गवेन्द्रदुहिता अरजासे इसप्रकार झगड़ा करना प्रारंभ किया उसने बलपूर्वक उसे विध्वंस किया ॥ २ ॥ पृथ्वीपति राजा दंड मदके वशसे अंधा होगयाथा, अरजाके धर्मको भ्रष्टकर आश्रमसे निकल अपनी नगरीको गया ॥ ३ ॥ तन्वी अरजाभी शुक्र और रजसे व्याप्त होकर आश्रमसे बाहर निकलकर अधोमुखसे रहने लगी ॥ ४ ॥ और अपने पिताको स्मरणकर रुदन करना प्रारंभ किया, महा ग्रहोंसे बँधीहुई चंद्रमाकी प्रिया रोहिणीकी समान उसकी शोचनीय अवस्था हुई ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त बहुत समय बीतनेपर यज्ञके समाप्त होनेसे शुक्र पातालसे

अपने आश्रममें आये ॥ ६ ॥ आकर देखा कि, मेरी पुत्री अरजा रजस्वला होकर संध्याकी लालीसे लाल आकाशविहारी मेघमालाकी समान आश्रमके बाहर एक ओरको बैठी हुई है ॥ ७ ॥ यह देखकर पूछा कि, हे पुत्रि! किस मनुष्यने तुम्हें धर्षित किया है, कौन मनुष्य क्रोधित सर्पके साथ क्रीड़ा करनेके निमित्त उद्यत हुआ है ॥ ८ ॥ वह पाप करनेवाला अत्यन्त दुर्बुद्धि मनुष्य आज कहां गया, अथवा मैंही आज कहांको जाऊं, तुझ अत्यन्त पवित्र आचरण करनेवालीको किस पापात्माने विध्वंस किया ॥ ९ ॥ तब अरजा अपने पिताको देख वारम्वार कंपायमान होनेलगी, और रोदन करती हुई लज्जासे धीरे २ बोली ॥ १० ॥ कि, मेरे वारम्वार निवारण तथा रोदन करनेसेभी आपके शिष्य दंडने मुझ अनाथपर अत्याचार किया ॥ ११ ॥ पुत्रीके यह वचन सुनकर शुक्रके दोनों नेत्र क्रोधसे अत्यन्त लालवर्ण

आश्रमान्तेचदद्दशेसुतामेत्यरजस्वलाम् ॥ मेघलेखामिवाकाशेसंध्यारागेणसंजिताम् ॥ ७ ॥ तांदृष्ट्वापरिपप्रच्छपुत्रिकेनासिधर्षिता ॥ कःक्रीडतिसरोषेणसममाशीविषेणहि ॥ ८ ॥ क्वाद्यैवयामिक्वगतःपापकृत्ससुदुर्मतिः ॥ कस्त्वांशुद्धसमाचारांविध्वंसयतिपापकृत् ॥ ९ ॥ ततःस्वपितरंदृष्ट्वाकंपमानापुनःपुनः ॥ रुदंतीव्रीडयोपेतामंदंमंदमुवाचह ॥ १० ॥ तवशिष्येणदंडेनवार्यमाणेनचासकृत् ॥ बलादनाथारुदतीनीताहंवचनीयताम् ॥ ११ ॥ एतत्पुत्र्यावचःश्रुत्वाक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ उपस्पृश्यशुचिर्भूत्वाइदंवचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ यस्मात्तेनाविनीतेनममाज्ञाभयमुत्तमम् ॥ गौरवंचतिरस्कृत्यच्युतधर्मारजाःकृता ॥ १३ ॥ तस्मात्सराष्ट्रःसबलःसभृत्योवाहनैःसह ॥ सप्तरात्रांतराद्भस्मनग्नांदृष्ट्वाभविष्यति ॥ १४ ॥ इत्येवमुक्त्वामुनिपुंगवोसौशप्त्वासदंडंस्वसुतामुवाच ॥ त्वंपापमोक्षार्थमिहैवपुत्रितिष्ठस्वकल्याणितपश्चरंती ॥ १५ ॥ शप्त्वेत्थंभगवाञ्छुक्रोदंडमिक्ष्वाकुनंदनम् ॥ जगामसहिपातालंदानवालयमुत्तमम् ॥ १६ ॥ दंडोऽपिभस्मसाद्भूतःसराष्ट्रबलवाहनः ॥ महताबलगर्वेणसप्तरात्रांतरेतदा ॥ १७ ॥ एवंतेदंडकारण्यंपरित्यक्ष्यंतिदेवताः ॥ आलयंराक्षसानांतुकृतंदेवेनशंभुना ॥ १८ ॥

होगये, वह पवित्रहो आचमन कर यह वचन बोले ॥ १२ ॥ कि, जिस कारण उस दंडने उद्धत हो मेरी आज्ञा, भय और गुरुपनका तिरस्कार कर अरजाको धर्मभ्रष्ट किया है ॥ १३ ॥ और उसे नंगा देखा है इसी कारणसे सात रात्रियोंके बीचमें राज्य, सेना, नौकर और वाहनोंके सहित भस्मीभूत होजायगा ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ शुक्र इस प्रकार कहकर दंडको शाप दे अरजासे बोले कि, हे पुत्रि ! तुम पापमोचन करनेके निमित्त तप करनेमें प्रवृत्तहो इस स्थानमें रहो ॥ १५ ॥ भगवान् शुक्र इसप्रकारसे इक्ष्वाकुनंदन दंडको शाप देकर दानवोंके श्रेष्ठस्थान पातालको गये ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त राजा दंडने अत्यन्त बलके गर्वसे जो अत्याचार कियाथा सो सात रात्रियोंके बीचमें राष्ट्र बल और वाहनोंके साथ भस्मीभूत होगये ॥ १७ ॥ इसीकारणसे देवता दंडकारण्यको छोड़गये हैं, इसीकारणसे भगवान् शंभुने उसे राक्षसोंका स्थान

करदिया है ॥ १८ ॥ पराई स्त्रियों इसप्रकारसेही प्राकृत पुरुषोंके सुकृतको भ्रष्ट कर भस्मीभूत और अत्यन्त पराभूत किया करती हैं ॥ १९ ॥ इसकारण हे अंधक ! तुम दुष्टबुद्धि न करना, जब कि,साधारण स्त्रियें दग्ध करती हैं तब शैल कुमारीकी तो वार्ताही क्या कहैं ॥ २० ॥ हे दैत्येश ! महादेवकोभी जीतनेको देवताओं और असुरोंकीभी सामर्थ्य नहीं है, जब कि, उनका दर्शनभी नहीं किया जाता तब उनके साथ युद्ध करना किसी प्रकारसेभी संभव नहीं हो सकता ॥ २१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजीके इसप्रकार कहनेपर अंधक क्रोधित हो लाल २ नेत्रकर श्वास छोड़ते हुए महातेजस्वी प्रह्लादजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे असुर ! महादेवका कुछभी धर्म नहीं है इनकी देह भस्मसे लिप्त है, वह इकले क्या मेरे साथ युंद्ध करसकते हैं ? ॥ २३ ॥ अंधक स्वयं इन्द्रकाभी भय नहीं करता, फिर

एवंपरकलत्राणिनयंतिसुकृतादपि ॥ भस्मभूतान्प्राकृतांस्तुमहांतंचपराभवम् ॥ १९ ॥ तस्मादंधकदुर्बुद्धिर्नकार्याभवतात्वियम् ॥ प्राकृतापिदहेन्नारीकिमुताहोद्रिनंदिनी ॥ २० ॥ शंकरोपिनदैत्येशशक्योजेतुंसुरासुरैः ॥ नद्रष्टुमपिशक्योसौकिमुयोधयितुंरणे ॥ २१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तेवचनेक्रुद्धस्ताम्रेक्षणःश्वसन् ॥ वाक्यमाहमहातेजाःप्रह्लादंचांधकासुरः ॥२२॥ किंमयासौरणेयोद्धुंशक्तस्त्रिणयनोसुर ॥ एकाकीधर्मरहितोभस्मारुणितविग्रहः ॥२३॥ नांधकोबिभियादिंद्राद्वानरेभ्यःकथंचन ॥ सकथंवृषपत्राख्याद्बिभेतिपुरवीक्षणात् ॥ २४॥ तच्छ्रुत्वास्यवचोघोरंप्रह्लादःप्राहनारद ॥ सह्यंगर्ह्यंनभवताविरुद्धंधर्मतोर्थतः ॥ २५ ॥ हुताशनपतंगाभ्यांसिंहक्रोष्टुकयोरिव ॥ गजेंद्रमशकाभ्यांचरुक्मपाषाणयोरपि ॥ २६ ॥ एतेषामेवगदितंयावदंतरमंधक ॥ तावदेवांतरंनास्तिभवतोहिहरस्यच ॥ २७ ॥ वारितोऽसिमयावीरभूयोभूयश्चवार्यसे ॥ शृणुष्ववाक्यंदेवर्षेरसितस्यमहात्मनः ॥ २८ ॥ योधर्मशीलोजितमानरोषोविद्याविनीतोनपरोपतापी ॥ स्वदारतुष्टःपरदारवर्जंनतस्यलोकेभयमस्तिकिंचित् ॥ २९ ॥

मनुष्यका तो उसे किसी प्रकारसे भयही नहीं होसकता कारण वृषवाहन महादेवजीका किसप्रकारसे भय करूं ॥ २४ ॥ हे नारद ! प्रह्लादजी उसके ऐसे भयंकर वचन सुनकर बोले कि, तुमने जो कहा जैसा वह धर्मके विरुद्ध है उसी प्रकार सर्वथा अर्थके बाहर है, इसीकारणसे अत्यन्त निन्दनीय होकर कोई अंश भी सहन नहीं किया जा सकता ॥ २५ ॥ अग्नि और पतंग, सिंह और शृगाल, गजेन्द्र और मशक, स्वर्ण और पाषाण ॥ २६ ॥ इनका परस्पर जैसा अंतर है हे अंधक ! महादेव और तुममें तो उतनाभी अंतर दिखाई नहीं देता ॥ २७ ॥ इसीकारणसे हे वीर ! मैंने तुम्हें वारम्वार वारण कियाथा और करता हूं, महात्मा देवर्षि असितजीने जो कहाथा उसे श्रवण करो ॥ २८ ॥ उन्होंने कहाथा कि, जो मनुष्यने धर्मशील अभिमान और क्रोधको जीतलिया है और जो विद्या विनयसे

युक्त है तथा जो दूसरेको संताप नहीं देता, अपनी स्त्रीसेही संतुष्ट रहकर परस्त्री संगसे सर्वथा विमुख है उसे इसलोक परलोक दोनोंमें कुछभी भय नहीं है ॥ २९ ॥ और जो मनुष्य धर्मसे हीन, कलह प्रिय, सर्वदा परोपतापी श्रुतिहीन और शास्त्र वर्जित तथा जो मनुष्य पराये धन और पराई स्त्रीमें आसक्त है. और जो मनुष्य श्रवण संगमी (अपनेसे और वर्णके साथ संगम करनेवाले) हैं सो इसलोक और परलोकमें कहींभी सुखी नहीं हो सकते॥ ३० ॥इसीकारणसे सूर्यभगवान् धनान्वित हुए इसीकारणसे महर्षि वरुणजीने क्रोधको त्याग कियाथा इसीकारणसे सूर्यनंदन मनु विद्यान्वितहुए और इसीकारणसे अगस्त्यजीने अपनी स्त्रीसेही संतोषकिया ॥ ३१ ॥ यहसब महात्मा कुलक्रमोक्तिके अनुसार पापमें नहीं बँधे हैं, सर्वदाही तद्वत् पुण्यकार्य करते हैं इसी कारणसे तेजस्वी हुए हैं, इसी निमित्त शाप और वरदान देनेकी सामर्थ्य प्राप्त

योधर्महीनःकलहप्रियःसदापरोपतापीश्रुतशास्त्रवर्जितः ॥ परार्थदारेप्सुरवर्णसंगमीसुखंसंविंदेन्नपरत्रचेह ॥३०॥ धर्मान्वितोऽभूद्भगवान्प्रभाकरःसंत्यक्तरोषश्चमुनिःसवारुणिः ॥ विद्यान्वितोभून्मनुरर्कपुत्रःस्वदारसंतुष्टमनास्त्वगस्त्यः ॥ ३१ ॥ एतानिपुण्यानिकृतान्यमीभिर्नपापबद्धानिकुलक्रमोक्त्या ॥ तेजोन्विताःशापवरक्षमाश्चजातास्तुसर्वेसुरसिद्धपूज्याः ॥३२॥ अधर्मयुक्तोद्गमितोबभूवविभुश्चनित्यंकलहप्रियोभूत् ॥ परोपतापीनमुचिर्दुरात्मापरावलेपीसनकोहिराजा ॥ ३३ ॥ परार्थलिप्सुर्दितिजोहिरण्यदृङ्मूर्खश्चतस्याप्यनुजःसुदुर्मतिः ॥ सुवर्णहारीयदुरुत्तमौजाएतेविनेशुर्ह्यनयात्पुराहि ॥ ३४ ॥ तस्माद्धर्मोनसंत्याज्योधर्मोहिपरमागतिः ॥ धर्महीनानरायांतिरौरवंनरकंमहत् ॥ ३५ ॥ धर्मस्तुगदितःपुंभिस्तारणंदिविचेहच ॥ पतनायतथाधर्मइहलोकेपरत्रच ॥ ३६ ॥ त्याज्यंधर्मान्वितैर्नित्यंपरदारोपसेवनम् ॥ नयंतिपरदारास्तुनरकानेकविंशतिम् ॥ सर्वेषामेववर्णानामेषधर्मइहोच्यते ॥ ३७ ॥

की है, और इसी कारणसे देवता तथा सिद्धोंके पूजनीय हुए हैं॥ ३२ ॥उद्गमित नित्य अधर्मयुक्त हुए थे, विभु भी सर्वदा कलहमें अत्यन्त आसक्त थे, दुरात्मा नमुचिभी सर्वदा पराये सन्तापोंको नित्य दिया करते थे, राजा सनकभी अत्यन्त गर्वित थे ॥ ३३ ॥ हिरण्याक्ष भी सर्वदा पराये धनमें लोभ करतेथे उनके अनुज (हिरण्याक्ष कश्यप) भी मूर्ख और अत्यन्त दुर्मति थे, महातेजस्वी यदुभी सर्वदा सुवर्ण हरण करतेथे, इसप्रकारसे अन्यायके वशसे वह सभी विनाशको प्राप्त होगये हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण किसी प्रकारभी धर्मको त्याग न करै धर्मही परमगति है, धर्मरहित होनेसे सम्पूर्ण मनुष्य रौरव नरकको जाते हैं ॥ ३५॥ धर्मही पुरुषको स्वर्गमें भेजकर मर्त्यलोकसे उद्धार करता है, और अधर्मही उसको इस लोक और परलोकमें पतित करता है ॥ ३६ ॥ इस कारण धर्मान्वित मनुष्य सर्वदा पराई स्त्रीकी सेवा नहीं करै,

कारण कि, पराई स्त्री इक्कीस नरकोंमें डालती है, सम्पूर्ण वर्णोंका यह एकमात्र धर्म कहकर विख्यात हुआ है ॥३७॥ जो मनुष्य पराये धन और पराई स्त्रीकी कामना
करते हैं, उनको बहुत वर्षतक भयंकर रौरव नामक नरक भोगना होता है ॥३८॥ देवर्षि असितने पहले इसप्रकारसे गरुड़ और उनके कनिष्ठ भ्राता अरुण दोनोंकोही
धर्मकी व्यवस्था सुनाई थी ॥ ३९ ॥ इसी कारणसे विद्वान् मनुष्य दूरसेही पराई स्त्रीका संग छोड़ते हैं, पराई स्त्री शठ (नष्ट) बुद्धिको पराभव (क्लेश) को प्राप्त
करातीहै ॥ ४० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजीके इसप्रकार कहनेपर अंधक उनसे बोले कि, आप एकमात्र धर्मपरायण हैं, इसकारण आप धर्मका अनुष्ठान
कीजिये मैं नहीं करूंगा ॥ ४१ ॥ प्रह्लादसे इसप्रकारके वचन कहकर वह (अंधकासुर) शम्बरसे बोला कि, हे शम्बर ! तुम शैलेन्द्र मन्दरपर जाकर शंकरसे कहो

परार्थपरदारेषुयस्तुवांच्छांकरिष्यति ॥ सयातिनरकंघोरंरौरवंबहुलाःसमाः ॥ ३८ ॥ एवंपुरासुरपतेदेवर्षिरसितोव्ययः ॥ प्राहधर्मव्यवस्थानंखगेंद्रायारुणायहि ॥ ३९ ॥ तस्मात्तुदूरतोवर्जेत्परदारान्विचक्षणः ॥ नयंतिनिकृतप्रज्ञंपरदाराःपराभवम् ॥ ४० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तेवचनेप्रह्लादं
प्राहचांधकः ॥ भवान्धर्मपरस्त्वेकोनाहंधर्मंसमाचरे ॥ ४१ ॥ इत्येवमुक्त्वाप्रह्लादमंधकःप्राहशंबरम् ॥ गच्छशंबरशैलेंद्रंमंदरंवदशंकरम् ॥ ४२ ॥
भिक्षोकिमर्थंशैलेंद्रंस्वर्गतुल्यंसकंदरम् ॥ परिरक्षसिकेनाद्यकेनदत्तोवदस्वमाम् ॥ ४३ ॥ तिष्ठंतिशासनेमह्यंदेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ तत्किमर्थंनिवससे
मामनादृत्यमंदरे ॥ ४४ ॥ यदीष्टस्तवशैलेंद्रःक्रियतांवचनंमम ॥ येयंहिभवतःपत्नीसामेशीघ्रंप्रदीयताम् ॥ ४५ ॥ इत्युक्तःसतदातेनशंबरोमंदरंद्रुतम् ॥
जगामतत्रयत्रास्तेसहदेव्यापिनाकधृक् ॥ ४६ ॥ गत्वोवाचांधकचरोयाथातथ्यंदनोःसुतः ॥ तमुत्तरंहरःप्राहशृण्वत्यागिरिकन्यया ॥ ४७ ॥ ममायं
मंदरोदत्तःसहस्राक्षेणधीमता ॥ तन्नशक्तोस्मिसंत्यक्तुंविनाज्ञांवृत्रवैरिणः ॥ ४८ ॥

॥ ४२ ॥ कि, हे भिक्षो ! किसकारण स्वर्गकी समान सकन्दर (कन्दराओंसहित) मन्दरपर्वतकी रक्षा करतेहो, तुम्हें किसने इस पर्वतको रहनेके अर्थ दियाहै सो प्रगट करो
॥ ४३ ॥ इन्द्र इत्यादिदेवता सभी मेरी आज्ञाके अनुवर्ती हैं, तब तुम किसकारणसे मेरी अवज्ञा(निरादर) कर मन्दरपर वास करतेहो ॥ ४४ ॥ यदि शैलेन्द्र मन्दरपर तुम्हें
रहनाही प्रिय है तो जो मैं कहताहूं सो करो, यह जो तुम्हारी स्त्री है इसे शीघ्रही मुझे देदो ॥ ४५ ॥ शम्बर इसप्रकारकी आज्ञा ले भगवान् शिवजी जहां पार्वतीके सहित
विराजमान थे उसी मन्दरपर्वतपर शीघ्र चलागया ॥ ४६ ॥ और जाकर अंधकने जिसप्रकार कहाथा वह यथावत (वैसाही) कह सुनाया, महादेवजीने पार्वतीजीके
सामने उत्तर दिया ॥ ४७ ॥ कि, बुद्धिमान् इन्द्रने हमें यह पर्वत प्रदान कियाथा, इसकारण उनकी आज्ञाके बिना हम मन्दरपर्वतको नहीं देसकते ॥ ४८ ॥

और जो उसने यह कहा कि, पार्वतीजीको दो, उसका उत्तर यह है कि, वह अपनी इच्छानुसार गमन करैं मैं नहीं धर रखसकता ॥४९॥ हे मुनिसत्तम! तब गिरिसुता शम्बरसे बोली कि, हे वीर ! तुम जाओ, और उस पंडित अंधकसे यह मेरे वचन कहो ॥ ५० ॥ कि, मैं संग्राममें पैदल खडी हूं, तुम और महादेव यह दोनोंही प्राण रूप प्रण रखके संग्रामरूप द्यूतक्रीडामें प्रवृत्त हो, तुम दोनोंमेंसे जो जीतेगा वही मुझे पावेगा ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान् शम्बरने इसप्रकारके वचन सुन अंधकके पास आ पार्वतीजीका कहा हुआ संदेशा यथावत् कह सुनाया ॥ ५२ ॥ उसे सुन दानवपति अंधक क्रोधसे लाल २ नेत्रकर श्वासोंको छोड़ता हुआ दुर्योधन नामक सेनापतिको बुलाकर बोला ॥ ५३ ॥ कि, हे महाबाहो ! तुम जाओ इसी समय युद्धकी दुन्दुभी (नगाडे) की दुःशीला स्त्रीकी समान विस्तब्ध (निर्दय) हो ताडना करो ॥

यच्चाब्रवीद्दीयतांमेगिरिपुत्रीतिदानवः ॥ तदेषायातुस्वंकामंनाहंधारयितुंक्षमः ॥ ४९ ॥ ततोऽब्रवीद्गिरिसुताशंबरंमुनिसत्तम ॥ ब्रूहिगत्वांधकंवीरममवाक्यं
विपश्चितम् ॥ ५० ॥ अहंपदातिःसंग्रामेभवानीशस्तदाहिनौ ॥ प्राणदूतंपरिस्तीर्ययोजेष्यतिसलप्स्यते ॥५१॥ इत्येवमुक्तोमतिमान्शंबरोधकमागमत् ॥
समागम्याब्रवीद्वाक्यंसर्वंगौर्याचभाषितम् ॥५२॥ तच्छ्रुत्वादानवपतिःक्रोधदीप्तेक्षणःश्वसन् ॥ समाहूयाब्रवीद्वाक्यंदुर्योधनमिदंवचः ॥ ५३ ॥ गच्छशीघ्रं
महाबाहोभेरींसान्नाहिकींदृढाम् ॥ ताडयस्वाद्यविश्रब्धंदुःशीलामिवयोषितम् ॥ ५४ ॥ समादिष्टोंधकेनाथभेरींदुर्योधनोबलात् ॥ ताडयामासवेगेनयथा
प्राणेनभूयसा ॥५५॥ सातांडिताबलवताभेरीदुर्योधनेनहि ॥ सस्वानभैरवाकारंरौरवंरासभीयथा ॥५६॥ तथातंस्वरमाकर्ण्यसर्वएवमहासुराः ॥समायाताः
सभांतूर्णंकिमेतदितिवादिनः ॥ ५७ ॥ याथातथ्यंचतान्सर्वानाहसेनापतिर्बली ॥ तेचापिबलिनांश्रेष्ठाःसन्नद्धायुद्धकांक्षिणः ॥५८॥ सहांधकानिर्ययुस्ते
गजैरुष्ट्रैर्हयैरथैः ॥ अंधकोरथमास्थायपंचनल्वंप्रमाणतः ॥ ५९ ॥

॥ ५४ ॥ दुर्योधनने अंधककी आज्ञा पाकर बलपूर्वक बडेवेगसे प्राणोंको दृढरूपसे भरके भेरी (नगाडे) को ताडित किया ॥५५॥ बलवान् दुर्योधनके द्वारा ताडित हो वह भेरी (नगाडा) रासभीकी समान भैरवाकारसे वारम्वार शब्द करने लगी॥५६॥सम्पूर्ण महाअसुर उस शब्दको सुनकर “किस कारण भेरी बजरहीहै” ऐसा कहते २ शीघ्रही सभास्थलमें आये ॥ ५७ ॥ बलवान् सेनापति दुर्योधनने उन्हें समस्त वृत्तान्त यथावत् कह सुनाया, तब वह महाबलवान् बलिश्रेष्ठ महाअसुर युद्धकी इच्छाके वशसे और युद्धसन्नाह हो ॥ ५८ ॥ अंधकके साथ गजेन्द्र, अश्व और ऊंद, तथा रथपर चढकर निकले अंधक स्वयं पंचनल्व[१] प्रमाण रथपर चढ़कर ॥ ५९ ॥

---

[१] नल्वः किष्कचतुःशतम् । चारसौ हाथ परिमित दंडको नल्व कहते हैं ।

और महादेवके जीतनेकी बुद्धि करके चला, उस समय जंभ, कुजंभ, तुंड, तुहंड शम्बर बलि॥ ६० ॥बाण, कार्तस्वरहस्ती, सूर्यशत्रु, महोदर, अयःशंकु, शिबि, शाल्व,
वृषपर्वा, विरोचन ॥ ६१ ॥ हयग्रीव, कालनेमि, संह्राद, कालनाशन, शरभ, संबल वीर्यवान्, वृत्र॥ ६२ ॥दुर्योधन, पाक-विपाक,काल और शम्बर औरभी महाबलवान्
महावीर्य असंख्य दानव विविध प्रकारके आयुधोंको धारणकर युद्ध करनेकी इच्छासे जाने लगे ॥ ६३ ॥ दुरात्मा दनु दैत्यपति अंधक दुर्बुद्धिके वशसे बँधगयाथा, इसी
कारणसे महादेवजीके साथ युद्धकी इच्छासे मंदराचलपर गया॥ ६४ ॥इति श्रीवामनपुराणे भैरवप्रादुर्भावे भाषाटीकायां अंधकसेनानिर्वाणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६ ॥
पुलस्त्यजी बोले कि, महादेवजीभी संग्रामको शीघ्र होनहार देखकर नन्दीको बुलाकर बोले कि, जो तुम्हारी आज्ञामें चलनेवाले हैं उन सबको बुलाओ ॥ १ ॥

त्र्यंबकंसपराजेतुंकृतबुद्धिर्विनिर्ययौ ॥ जंभःकुजंभोहुंडश्चतुहुंडःशंबरोबलिः ॥ ६० ॥ बाणःकार्तस्वरोहस्तीसूर्यशत्रुर्महोदरः ॥ अयःशंकुःशिबिःशाल्वो
वृषपर्वाविरोचनः ॥ ६१ ॥ हयग्रीवःकालनेमिःसंह्रादःकालनाशनः ॥ सरभश्चैवसबलोबलोवृत्रश्चवीर्यवान् ॥ ६२ ॥ दुर्योधनश्चपाकश्चविपाकःकालशं
बरौ ॥ एतेचान्येचबहवोमहावीर्यामहाबलाः ॥ प्रजग्मुरुत्सुकायोद्धुंनानायुधधरारणे ॥ ६३ ॥ इत्थंदुरात्मादनुदैत्यपालस्तदांधकोयोद्धुमनाहरेण ॥
महाचलंमंदरमभ्युपेयिवान्सकालपाशावशितोहिमंदधीः ॥ ६४॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेअंधकसैन्यनिर्गमनंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥
पुलस्त्यउवाच ॥ हरोपिसमरासन्नःसमाहूयाथनंदिनम् ॥ प्राहमंत्रयशैलाद्यान्येस्थितास्तवशासने ॥ १ ॥ ततोमहेशवचनान्नंदीतूर्णतरंगतः ॥ उपस्पृ
श्यजलंश्रीमान्सस्मारगणनायकान् ॥ २ ॥ नंदिनासंस्मृताःसर्वेगणनाथाःसहस्रशः ॥ समुत्पत्यत्वरायुक्ताःप्रणतास्त्रिदशेश्वरम् ॥ ३ ॥ आगतां
श्चगणान्नंदीकृतांजलिपुटोव्ययः ॥ सर्वान्निवेदयामासशंकरायमहात्मने ॥ ४ ॥ नंदिरुवाच ॥ येनतान्पश्यसेशंभोत्रिनेत्रान्जटिलाञ्छुचीन् ॥ एतेरुद्राइ
तिख्याताःकोट्यस्त्वेकादशैवतु ॥ ५ ॥ वानरास्यान्पश्यसेयान्शार्दूलसमविक्रमान् ॥ एतेषांद्वारपालाश्चसज्जमानायशोधनाः ॥ ६ ॥

महादेवजीकी आज्ञानुसार नन्दी अत्यन्त शीघ्र जाकर जलको ले आचमन कर गणनायकोंको स्मरण करने लगे ॥ २ ॥ नन्दीके स्मरण करतेही हज़ारों गणोंने
अतिशीघ्र उपस्थित होकर त्रिदिवेश्वर महादेवजीको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ तब नन्दीने हाथ जोडकर महात्मा शंकरसे उनके आनेका वृत्तान्त कहसुनाया ॥ ४ ॥
और कहनेलगे कि, हे शम्भो ! आप जो यह जटाजूटमंडित शुचिस्वभाव तीननेत्रवाले गणोंको दखतेहैं वह रुद्रनामसे विख्यात हैं, इनकी संख्या ग्यारहकरोड हैं
॥ ५ ॥ यह जो शार्दूलकी समान विक्रमयुक्त वानरके सदृश मुखवाले जिन गणोंको देखते हैं यह इनके द्वारपाल हैं, यह सभी यशोधन और सभी सज्जित

होकर स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥ यह जो षट्मुखशिखिध्वज (मोरवाहनवाले) शक्ति हाथमें लिये कुमारोंको देखतेहो यह स्कंदनामसे विख्यात हैं, इनकी संख्या छासठकरोड़ है ॥ ७ ॥ शाखनामसे विख्यात छैः मुखवाले सम्पूर्ण गणोंकी संख्या छासठ करोड़ है, हे शंकर ! विशाख और नैगमेय नामके समस्तगण छासठ करोड़ कहकर विख्यात हैं ॥ ८ ॥ हे शंभो ! इन प्रमथश्रेष्ठगणोंकी संख्या सातकोटिसहस्र है, हे देवेश ! इनमें एक २ के प्रति उतनीही संख्या मातृका है ॥ ९ ॥ ये शूलपाणि, त्रिनेत्र, शरीरपर भस्म मलेहुए सब गणेश्वर शैवनामसे विख्यात हैं ॥ १० ॥ हे विभो ! इनका नाम पाशुपतगण हैं, इनमें भस्मही प्रहरण और इनकी संख्या नहीं है, यह सहायताके अर्थ आयेहैं ॥ ११ ॥ यह कालवदन पिनाकधारी अन्यान्य रुद्र आपके प्रति भक्तिमान् होकर आयेहैं ॥ १२ ॥ यह महाव्रतीनामक सम्पूर्णगण युद्धके

षण्मुखान्पश्यसेयांश्वशक्तिपाणीञ्छिखिध्वजान् ॥ षट्चषष्टिस्तथाकोट्यःस्कंदनाम्नःकुमारकान् ॥७॥ एतावत्यस्तथाकोट्यःशाखनाम्नःषडाननाः ॥
विशालास्तावदेवोक्तानैगमेयाश्वशंकर ॥ ८ ॥ सप्तकोटिशतंशंभोअमीवैप्रमथोत्तमाः ॥ एकैकंप्रतिदेवेशतावत्योह्यपिमातरः ॥ ९ ॥ भस्मारुणितदेहांश्च
त्रिनेत्राःशूलपाणयः ॥ एतेशैवाइतिप्रोक्तास्तत्रचोक्तागणेश्वराः ॥ १० ॥ तथापाशुपताश्वान्येभस्मप्रहरणाविभो ॥ एतेगणास्त्वसंख्याताःसाहाय्यार्थं
समागताः ॥ ११ ॥ पिनाकधारिणोरौद्रागणाःकालमुखाःपरे ॥ तवभक्ताःसमायाताजटामंडलिनोऽधुना ॥ १२ ॥ खट्वांगयोधिनोवीरारक्तचंदनभूषिताः ॥
इमेप्राप्तागणायोद्धुंमहाव्रतिनउत्तमाः ॥ १३ ॥ दिग्वाससोमौलिनश्चघंटाप्रहरणाःपरे ॥ निराश्रयानामगणाःसमायाताश्वहेविभो ॥ १४ ॥ सार्धद्विनेत्राः
पद्माक्षाःश्रीवत्सांकितवक्षसः ॥ समायाताःखगारूढावृषभध्वजिनोऽव्ययाः ॥ १५ ॥ महापाशुपतानामचक्रशूलधरास्तथा ॥ भैरवोविष्णुनासार्द्धमभे
देनार्चितोहियैः ॥ १६ ॥ इमेमृगेंद्रवदनाःशूलबाणधनुर्धराः ॥ गणास्त्वद्रोमसंभूतावीरभद्रपुरोगमाः ॥ १७ ॥ एतेचान्येचबहवःशतशोऽथसहस्रशः ॥
साहाय्यार्थंतवायातायथाप्रीत्यादिशस्वतान् ॥ १८ ॥

निमित्त उपस्थित हुएहैं, यह खट्वांगयोधा वीर और लालचंदनसे भूषित हैं ॥ १३ ॥ हे विभो ! यह निराश्रयनामक सम्पूर्णगण आयेहैं, यह दिगम्बर मौलाधारी घंटाही इनका प्रहरण है ॥ १४ ॥ वृषभध्वजी नामक सम्पूर्णगण आयेहैं, यह सभी ढाईनेत्र और पद्माक्ष हैं, सभी श्रीवत्ससे शोभायमान वक्षस्थलसे शोभित और सभी खगारूढ़ हैं इनका विनाश नहीं है ॥ १५ ॥ यह महापाशुपत नामक सम्पूर्णगण चक्र और शूल हाथमें ले उपस्थित हुए हैं, इन्होंने विष्णुजीके साथ अभेदबुद्धिसे भैरवजीकी आराधना की है ॥ १६ ॥ आपके रोमसे प्रगट हुए वीरभद्र इत्यादि यह सम्पूर्णगण आयेहैं, यह सभी सिंहकी समान मुखवाले और सभी शूल, बाण और धनुषधारी हैं ॥ १७ ॥ इनके अतिरिक्त सहस २ गणभी आपकी सहायताके अर्थ आये हैं, आप प्रसन्न होकर इनको आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥

नन्दीके इसप्रकार परिचय देनेपर सम्पूर्ण गण सन्मुख आकर वृषकेतन को प्रणाम करनेलगे उन्होंने सत्कारकर उन सबको सावधानकर बैठाया ॥ १९ ॥ इनमें से वह महापाशुपत नामक गणोंको देख और उठकर उनके अध्यक्षोंको गाढ़रूपसे आलिंगन करने लगे, उन्होंने शिवजीको प्रणाम किया ॥ २० ॥ इस अद्भुत चरित्रको देखकर सम्पूर्ण गणेश्वर अत्यन्त विस्मित हो चिन्ता करने लगे कि, इसप्रकारसे आलिंगनकर अत्यन्त आदर दिखानेका कारण क्या है? ॥ २१ ॥ योगीश्रेष्ठ गणनायक नन्दी उनको विस्मिताक्ष देखकर हँसकर देवाधिदेव शूलपाणिसे बोले ॥ २२ ॥ कि, हे देवाधिदेव देवेश्वर ! आपके महापाशुपत गणोंके आलिंगन करनेसे अन्यान्यगण यह सभी विस्मित होगये हैं ॥ २३ ॥ इसकारण हे महादेव ! महापाशुपतोंके त्रिलोकीकी समृद्धिसाधक ज्ञानरूप विवेकको इच्छानुसार कहनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २४ ॥ प्रमथाधिपति नंदीके यह वचन सुन

ततोभ्येत्यगणाःसर्वैंप्रणेमुर्वृषकेतनम् ॥ सत्कारेणैवचगणान्समाश्वास्योपवेशयत् ॥ १९ ॥ महापाशुपतान्दृष्ट्वासमुत्थाप्यमहेश्वरः ॥ संपर्यष्वजताध्यक्षांस्तेप्रणेमुर्महेश्वरम् ॥ २० ॥ ततस्तदद्भुततमंदृष्ट्वासर्वेंगणेश्वराः ॥ सुविस्मितास्तदाह्यासन्किमिदंचिंतयंस्त्विति ॥ २१ ॥ विस्मिताक्षान्गणान्दृष्ट्वाशैलादियोगिनांवरः ॥ प्राहप्रहस्यदेवेशंशूलपाणिंगणाधिपम् ॥ २२ ॥ विस्मिताहिगणादेवसर्वएवमहेश्वर ॥ महापाशुपतानांयद्दत्तमालिंगनंयतः ॥ २३ ॥ जातंतेषांमहादेवस्फुटंत्रैलोक्यबृंहकम् ॥ रूपंज्ञानंविवेकंचतद्वदस्वेच्छयाविभो ॥ २४ ॥ प्रमथाधिपतेर्वाक्यंविदित्वाभूतभावनः ॥ बभाषेतान्गणान्सर्वान्भावाभावविचारिणः ॥ २५ ॥ रुद्रउवाच ॥ भवद्भिर्भक्तिसंयुक्तैर्हरोभावेनपूजितः ॥ अहंकारविमूढैश्चनिंदद्भिर्वैष्णवंपदम् ॥ २६ ॥ तेनज्ञानेनभवतांसादृश्यंहिनिवारितम् ॥ योहंसभगवान्विष्णुर्यश्चासौसोहमव्ययः ॥ २७ ॥ नावाभ्यांवैविशेषोस्तिएकामूर्तिर्द्विधास्थिता ॥ तदमीभिर्नरव्याघ्रैर्भक्तिभावयुतैर्गणाः ॥ २८ ॥ यथाहंवैपरिज्ञातोनभवद्भिस्तथाहरिः ॥ यथाविनिंदितोह्यस्माद्भवद्भिर्मूढबुद्धिभिः ॥ २९ ॥ तेनज्ञानंहिवोनष्टंनातस्त्वालिंगितोमया ॥ इत्येवमुक्तेवचनेगणाःप्रोचुर्महेश्वरम् ॥ ३० ॥

कर भूतभावनभव भावाभावके विचारनेमें समर्थ सम्पूर्णगणों से कहनेलगे ॥ २५ ॥ तुम अहंकारसे ज्ञानहीन हो, इसकारण वैष्णवपदकी निन्दामें प्रवृत्त और भक्तियुक्त होकर भावमें भर हरकी पूजा करते हो ॥ २६ ॥ मैंही वह भगवान् विष्णु और वह भगवान् विष्णुही मैं हूं इसप्रकार हमारी परस्परमें जो सादृश्यता है सो इसप्रकारसे अज्ञानप्रयुक्त तुम उसे निरूपण नहीं कर सकते ॥२७॥ हमारेबीचमें कुछ भी विशेषता नहीं है एक मूर्तिही दो हुए हैं, यह पाशुपत नामक गण स्वभावसेही भक्तिभावयुक्त है, यह इसीप्रकार सादृश्यताके अनुसारसे ॥२८॥ मुझे और भगवान् विष्णुको जिसप्रकार अभेदसे पृथुक् २ जानते हैं तुम उस प्रकारसे नहीं, तुम मूढ़बुद्धि हो इसीकारणसे विष्णुकी निन्दा करते हो ॥ २९ ॥ और इसीकारणसे तुम्हारा ज्ञान नष्ट होगया है, क्या कहूं इसीकारणसे मैंने तुम्हें आलिंगन नहीं किया, इस

प्रकारके वचन सुन सम्पूर्ण गण महेश्वरसे बोले ॥ ३० ॥ आप किसप्रकार हरिके संग एक हुए हैं, देखो आप ज्ञानके बलसे परमपवित्र स्वभाव हो, निर्मल स्फटिक सदृशशान्त शुक्ल और निरंजन प्रकृति(दोषरहित स्वभाव)हो परन्तु विष्णु तो अंजनकी समानहै, इसप्रकार दोनोंकी एकता किसप्रकारसे होसकती है? जीमूतवाहन महादेवजी उनके यह वचन सुन ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हँसते२ मेघकीसमान गंभीर वचन बोले कि, सुनो मैं कहताहूँ इसके सुननेसे अपने यशकी वृद्धि होतीहै ॥ ३३ ॥ तुमभी कभी महाज्ञानके अयोग्य पात्र नहीं हो, अपवादके भयसेही तुम्हारे निकट यह गुप्त वृत्तान्त प्रगट करताहूँ ॥ ३४ ॥ तुम्हारे मनमें चिरकालसेही यह जागरित हुआहै, मैं प्रीतिके वशसे कहताहूँ तुम यत्नसहित इसप्रकार एक देहका होना श्रवण करो ॥ ३५ ॥ दूध अथवा घृतादि द्वारा या श्रेष्ठ चंदनसे अत्यन्त यत्नके साथ स्नान करनेसे उसप्रकार प्रसन्न नहीं

कथंभवान्सहैक्यंहिसंस्थितोज्ञाननिर्मलः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशःशांतःशुक्लोनिरंजनः ॥ ३१ ॥ सचाप्यंजनसंकाशःकथंतेनेहयुज्यते ॥ तेषांवचनमर्थाढ्यं श्रुत्वाजीमूतकेतनः ॥ ३२ ॥ विहस्यमेघगंभीरंगणानेवमुवाचह ॥ श्रूयतांसर्वमाख्यास्येस्वयशोवर्द्धनंवचः ॥ ३३ ॥ नत्वयोग्याश्चयूयंहिमहाज्ञानस्यकर्हिचित् ॥ अपवादभयाद्गुह्यंभवतांहिप्रकाश्यते ॥ ३४ ॥ प्रीत्यैवमपिवैतेनयन्मेचेतसिनित्यशः ॥ एकरूपश्चैकदेहंकुरुध्वंयत्रचाश्रिताः ॥ ३५ ॥ पयसाहविराद्यैश्चस्नापयेत्तत्प्रयत्नतः ॥ चंदनादिभिरेवाग्र्यैर्नमेप्रीतिःप्रजायते ॥ ३६ ॥ यत्नात्क्रकचमादायछिंदध्वंममविग्रहम् ॥ तथापिदृश्यते विष्णुर्ममदेहेसनातनः ॥ ३७ ॥ एकाहारोभवेद्यस्तुविष्णुभक्तश्चयोभवेत् ॥ उभौतौसदृशौलोकेनात्रकार्याविचारणा ॥ ३८ ॥ नायंवदिष्यतेलोकोभेदं चैवकदाचन ॥ अतोर्थंनक्षिपाम्यद्यभवतोनरकेद्भुते ॥ ३९ ॥ यन्निंदध्वंजगन्नाथंपुष्कराक्षंचमन्मथम् ॥ सदैवभगवान्सर्वःसर्वव्यापीगणेश्वरः ॥ ४० ॥ नतस्यसदृशोलोकेविद्यतेसचराचरे ॥ श्वेतमूर्तिःसभगवान्पीतोरक्तोजगत्पतिः ॥ ४१ ॥ तस्मात्परतरंलोकेनान्यत्सत्यंहिविद्यते ॥ सात्त्विकंराजसं चैवतामसंमिश्रकंतथा ॥ ४२ ॥

होता ॥ ३६ ॥ जैसा कि, यत्नके साथ क्रकच (आरा) को लेकर मेरी देहको छेदन करो तब उन सनातन विष्णु भगवान्को देखसकताहै ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य एकाहारी और जो मनुष्य विष्णुके प्रति भक्तिमान् है वह दोनोंही समान हैं, इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ३८ ॥ लोकमें कभी उनमें प्रभेददृष्टि नहीं कियाजाता, इसी कारणसे आज तुमको महानरकमें नहीं डाला ॥ ३९ ॥ जिसकारणसे तुम जगन्नाथ पद्मपलाशलोचन विष्णुभगवान्की निन्दा करतेहो, वह भगवान् सर्वदाही सर्व स्वरूप हैं, सर्वव्यापी और सबगणोंके ईश्वर हैं ॥ ४० ॥ इस चराचर लोकमें कोईभी उनकी समान नहीं; यह भगवान् जैसे श्वेतमूर्ति हैं उसी प्रकारसे पीत और रक्तवर्ण हैं, और वही जगत्के पति हैं ॥ ४१ ॥ उनकी अपेक्षा कोईभी संसारमें श्रेष्ठ वा सत्य नहीं है. सात्विक, राजस, तामस और मिश्रक ॥ ४२ ॥

यह सभी मूर्तिको वह भगवान् धारण करते हैं वही सर्वपूज्य और सदाशिव हैं, नन्दी इत्यादि प्रमथश्रेष्ठगण महादेवजीके यह वचन सुनकर ॥ ४३ ॥ उनके वचनोंका उत्तर देते हुए बोले कि, हे भगवन् ! सदाशिवका विशेषण कहिये, प्रमथगणोंके यह वचन सुनकर सुरेश्वर ॥ ४४ ॥ पशुपति उन निरंजनने शैवमूर्तिको दिखाया, इन ईश्वर स्वरूपके सहस्रवदन सहस्रचरण और सहस्रबाहु ॥ ४५ ॥ उनके हाथमें दंड, वह सब लोकोंमें व्याप्त हैं वह अत्यन्त दुष्प्रेक्षणीय हैं, उसी दंडके बीचमें देवताओंका सम्पूर्ण प्रहरण (अस्त्र शस्त्र) लक्षित होता है ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त शंकरके कहेहुए गणोंने फिर एकमुखमूर्तिका दर्शन किया, सहस्र रुद्र और विष्णुके चिह्न उसमें विभूषित थे ॥ ४७ ॥ उनका आधा शरीर तो वैष्णव और आधा हरका था, इसी कारणसे वह खगध्वज और वृषारूढ फिर वृषध्वज और खगारूढ़थे ॥ ४८ ॥ वह

सएवधत्तेभगवान्सर्वपूज्यःसदाशिवः ॥ शंकरस्यवचःश्रुत्वाशैलाद्याःप्रमथोत्तमाः ॥ ४३ ॥ प्रत्यूचुर्भगवन्ब्रूहिसदाशिवविशेषणम् ॥ तेषांतद्भाषितंश्रुत्वा
प्रमथानांसुरेश्वरः ॥ ४४ ॥ दर्शयामासतद्रूपंसचशैवंनिरंजनम् ॥ सहस्रवक्त्रचरणंसहस्रभुजमैश्वरम् ॥ ४५ ॥ दंडपाणिंसुदुर्दृश्यंलोकैर्व्याप्तंसमंततः ॥
दंडसंस्थानिदृश्यंतेदेवप्रहरणानिच ॥ ४६ ॥ ततस्त्वेकमखंभूयोददृशुःशंकरंगणाः ॥ रौद्रैश्चवैष्णवैश्चैवधृतंचिह्नैःसहस्रशः ॥ ४७ ॥ अर्द्धेनवैष्णववपुरर्द्धे
नहरविग्रहः ॥ खगध्वजंवृषारूढंखगारूढंवृषाध्वजम् ॥ ४८ ॥ यथायथात्रिणयनोरूपंधत्तेगुणाग्रणीः ॥ तथातथाचजायंतेमहापाशुपतागणाः ॥ ४९ ॥
ततोभवच्चैकरूपीशंकरोबहुरूपवान् ॥ क्षणाच्छ्वेतःक्षणाद्रक्तःपीतोनीलःक्षणादपि ॥ ५० ॥ मिश्रकोवर्णहीनश्चमहापाशुपतस्तथा ॥ क्षणाद्भवतिरुद्रेंद्रः
क्षणाच्छंभुःप्रभाकरः ॥ ५१ ॥ क्षणार्द्धाच्छंकरोविष्णुःक्षणाच्छर्वःपितामहः ॥ ततस्तदद्भुततमंदृष्ट्वाशैवादयोगणाः ॥ ५२ ॥ अथाजानंतचैक्येनब्रह्मवि
ष्णिवद्रभास्करम् ॥ यदात्वभेदेनाजानन्देवदेवंसनातनम् ॥ ५३ ॥ तदानिर्धूतपापास्तेसमजायंतपार्षदाः ॥ तेष्वेवंधूतपापेषुअभिन्नेषुहरीश्वरः ॥ ५४ ॥

गुणोंकरके अग्रणीय त्रिनयन उस समय जिस २ रूपको धारण करनेलगे उसी उस मूर्तिमें महापाशुपत गणोंने अपना अवतरण (रूपधारण) करना प्रारंभ किया ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त पशुपति फिर एकरूप और बहुतसे रूप हुए और क्षणमें श्वेत, क्षणमें लाल, क्षणमें पीले, नीले, ॥ ५० ॥ क्षणमें मिश्रक, क्षणमें वर्णहीन और क्षणमें महापाशुपतरूपसे विराजमान होनेलगे, क्षणमें रुद्र, क्षणमें शम्भू क्षणमें प्रभाकर ॥ ५१ ॥ और आधे क्षणमें शंकर और आधे क्षणमें विष्णु और क्षणार्द्धमें पितामह ब्रह्माजीका रूप धारण किया, शैवादिगणसमूह इस अत्यन्त आश्चर्यजनक चरित्रको देखकर ॥ ५२ ॥ स्पष्टही समझगये कि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और प्रभाकर यह एकही हैं, इसप्रकारसे जब देवाधिदेव सनातन विष्णुको अभेदावस्थासे जानगये ॥ ५३ ॥ तब वह सम्पूर्ण पार्षद सभी पापसे निर्मुक्त

होगये, उनके इसप्रकारसे अभेदबुद्धिके उदय होतेही पापविमुक्त होगये, हरिरूपी ईश्वर ॥ ५४ ॥ शंभु प्रसन्नचित्त हुए और हर्षितहो बोले कि, तुम सभी सुव्रत हो, तुम्हारे जो इसप्रकारका अभेदज्ञान उत्पन्न हुआ है, इससे मैंने अत्यन्त संतोष प्राप्त किया है ॥ ५५ ॥ इस समय अत्यन्त वरको प्राप्त करो, तुम्हारी इच्छानुसार मैं तुम्हैं वर दूंगा. वह बोले कि, हे भगवन् महेश्वर ! हमें यह वर दीजिये, भिन्नदृष्टिके वशवर्ती होनेसे हमारे जो पाप संचित हुए हैं वह सब नष्ट होजाँय ॥ ५६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, अव्यक्तस्वरूप महादेवजीने "यही होगा" ऐसा कहकर गाढ़ आलिंगन किया ॥ ५७ ॥ तब सम्पूर्ण गणपति प्रणतार्तिविनाशन महादेवजीके साथ मेघके गंभीरशब्दकी समान घोड़ोंके जुतेहुए रथपर चढकर मंदराचलको चलेगये ॥ ५८ ॥ मेघसदृश कांतिवाले प्रमथगणोंसे चारों ओर घिरेहुए महेश्वरके

प्रीतात्माविबभौशंभुःप्रीत्यायुक्तोब्रवीद्वचः ॥ परितुष्टोस्मिसर्वेषांज्ञानेनानेनसुव्रताः ॥ ५५ ॥ वृणुध्वंवरमानंत्यंदास्येवोमनसेप्सितम् ॥ ऊचुस्तेदेहिभगवन्वरमस्माकमीश्वर ॥ भिन्नदृष्ट्यामहत्पापंयदात्तंतत्प्रयातुनः ॥ ५६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ बाढमित्यब्रवीच्छर्वश्चक्रेनिर्धूतकल्मषान् ॥ संपर्यष्वजताव्यक्तस्तान्सर्वान्गणयूथपान् ॥ ५७ ॥ इतिविभुनाप्रणतार्तिहरेणगणपतयःसहयोपिषमेघरथेनश्रुतिगदितान्न (?) गमेनविबुधावतंसेनगिरिमवेत्य ॥ ५८ ॥ आच्छादितोगिरिवरःप्रमथैर्घनाभैराभातिशुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः ॥ नीलाजिनातततनुःशरदभ्रवर्णोयद्वद्विभातिबलवान्वृषभोहरस्य ॥ ५९ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेसदाशिवदर्शनंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेप्राप्तःसमंदैत्यैस्तथांधकः ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठं प्रमथाश्रितकंदरम् ॥ १ ॥ प्रमथादानवान्दृष्ट्वाचक्रुःकिलकिलाध्वनिम् ॥ प्रमथाश्चापिसंरब्धाजघ्नुस्तूर्याण्यनेकशः ॥ २ ॥ सचावृणोन्महानादोरोदसीप्रलयोपमः ॥ शुश्राववायुमार्गस्थोविघ्ननाथोविनायकः ॥ ३ ॥ समभ्ययात्समंक्रुद्धःप्रमथैरभिसंवृतः ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंददृशेपितरंतथा ॥ ४ ॥

चरणारविन्दसे युक्त शुक्लदेह यह मन्दरभूधर नीलमृगचर्मसे आवृतदेह शरदभ्रवर्ण बलवान् हर वृषभकी समान अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां सदाशिवदर्शनंनाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इसीअवसरमें अंधकासुर दैत्योंको साथ ले पर्वतश्रेष्ठ मंदराचलपर आये, प्रमथगणोंने जिनकी कंदराका आश्रय किया था ॥ १ ॥ दानवोंका दल प्रमथोंको देखकर किलकिलाशब्द करनेलगा, तब वह प्रमथगण अत्यन्त क्रोधित हो दानवोंको अतिशीघ्रतासे काट २ करके फेंकने लगे ॥ २ ॥ दानवोंका यह प्रलयकालके समान भयंकर नाद स्वर्ग और पृथ्वीमें व्याप्त होगया, विघ्ननाथ विनायकने वायुमार्गमें रहकर उसे सुना ॥ ३ ॥ तब वह क्रोधित हो और अपने प्रमथगणोंको साथ ले शीघ्रतासे मंदरश्रेष्ठ मंदराचलपर आकर पिताके साथ मिले ॥ ४ ॥

और भक्तिसहित महेश्वरको प्रणामकर बोले किं, हे जगन्नाथ ! किसकारणसे बैठेहो अब आप संग्राममें उत्सुकहो उठिये ॥ ५ ॥ विश्वेश्वरके वचन कहनेके पीछे महेश्वर पार्वतीसे बोले कि, मैं स्वयं अंधकको वध करनेके निमित्त चलूंगा ॥ ६ ॥ तुम शान्त होकर स्थित हूजिये, गिरिनंदिनी उन्हें वारम्वार आलिंगन करके प्रीतिभरी दृष्टिसे देख उनसे बोलीं कि, अंधकके संहार करनेके निमित्त जाओ ॥ ७ ॥ यह कहकर पार्वतीजीने अमरगुरु महादेवजीकी गोरोचनान्वितचन्दनसे चरणोंकी पूजाकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ८ ॥ तब महादेवजी पार्वतीजीकी सखी, मालिनी, जया, विजया, जयन्ती और अपराजिता इनसे बोले ॥ ९ ॥ कि, तुम सावधान होकर सुरक्षित गृहमें स्थित हो और अप्रमादसे गिरिपुत्रीकी रक्षा करो ॥ १० ॥ सबसे इसप्रकार कहकर वृषभपर चढ़ हर्षित हो गृहसे निकले, सम्पूर्ण गण उनके पीछे २ चले

प्रणिपत्यतथाभक्त्यावाक्यमाहमहेश्वरम् ॥ किंतिष्ठसिजगन्नाथसमुत्तिष्ठरणोत्सुक ॥ ५ ॥ ततोविश्वेश्वरवचोजगन्नाथोम्बिकांप्रति ॥ प्राहयामोंधकंहंतुंस्व
यमेवाप्रमत्तया ॥ ६ ॥ ततोगिरिसुतादेवंसमालिंग्यपुनःपुनः ॥ हरंनिरीक्ष्यसस्नेहंप्राहगच्छतथांधकम् ॥ ७ ॥ ततोमरगुरोर्गौरीचंदनंरोचनोज्ज्वलम् ॥
प्रतिवंद्यसुसंप्रीतापादावेवत्ववंदत ॥ ८ ॥ ततोहरःप्राहवचोवयस्यांमालिनीमिति ॥ जयांचविजयांचैवजयंतींचापराजिताम् ॥ ९ ॥ युष्माभिरप्रमत्ताभिः
स्थेयंगेहेसुरक्षिते ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनगिरिपुत्रीप्रमादतः ॥ १० ॥ इतिसंदिश्यताःसर्वाःसमारुह्यवृषंप्रभुः ॥ निर्जगामगृहाद्धृष्टोजग्मुस्तेपृष्ठतोगणाः ॥
॥ ११ ॥ अगच्छंस्तस्यभवनादीश्वरस्यगणाधिपाः ॥ समायाताःपरीवार्यजयशब्दांश्चचक्रिरे ॥ १२ ॥ रणाय निर्गच्छतिलोकपाले महेश्वरेशूलधरे
महर्षे ॥ शुभानिसौम्यानि सुमंगलानिचिह्नानि शंसंतिजयंहितस्य ॥ १३ ॥ शिवास्थितावामतरेचभागेप्रायात्तथाग्रेसुरसंनदंती ॥ क्रव्यादसंघाश्चतथा
मिषैषिणःप्रयांतिहृष्टास्तृषितासृगर्थे ॥ १४ ॥ दक्षिणांगंनखांतंवैसमकंपतशूलिना ॥ शकुनिश्चापिहारीतोमौनीयातिपराङ्मुखः ॥ १५ ॥

॥ ११ ॥ यह देखकर गणपति इत्यादिक सभी महेश्वरके स्थानसे चले । और जयशब्दको उच्चारण करतेहुए महादेवजीको बीचमें कर मंदराचलपर्वतपर गये ॥ १२ ॥ हे महेश्वरि ! लोकपाल महेश्वरका शूल धारणकर युद्धके अर्थ चलते समय शुभ और सौम्य और सुमंगल चिह्न यह सब उनके जयकी सूचना देनेलगे ॥ १३ ॥ शिवा (शृगाली) वामभागका आश्रय कर मधुर स्वरसे शब्द करतीहुई चलीं: मांसलोभी क्रव्यादगण तृषित होकर रुधिरको पान करनेकी इच्छासे हर्षित हो चलने लगे ॥ १४ ॥ महादेवजीका दहिना अंग नखपर्यन्त स्पन्दित होगया, अर्थात् फड़कनेलगा, और हारीतनामके पक्षी मौनी और पीछेको जानेलगे ॥ १५ ॥

भूतभव्य भवस्वरूप सर्वव्यापी महादेवजी इस निमित्तको देखकर नन्दीसे बोले॥ १६॥ कि, हे नन्दिन् ! आज जय होगी, किसी प्रकारभी पराजय नहीं होगी. हे गणेश्वर !
कल्याणके देनेवाले लक्षण प्रगट होरहे हैं ॥ १७ ॥ शिवजीके यह वचन सुनकर नन्दी बोले कि, हे देव ! आप सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतैंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥
॥ १८ ॥ यह वचन सुनकर नंदीने रुद्रगणोंको महापाशुपतगणोंके साथ मिलकर युद्ध करनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ १९ ॥ वह शीघ्रतासे आकर विविध प्रकारके
अस्त्रोंको धारण कर वज्र जैसे वृक्षोंको काटता है उसीप्रकारसे दानवोंका विनाश करने लगे ॥ २० ॥ उन दैत्य और दानवोंने बलवान् प्रमथगणोंके द्वारा भेदित

निमित्तमीदृशंदृष्ट्वाभूतभव्यभवोविभुः ॥ शैलादिंप्राहवचनंसस्मितंशशिशेखरः ॥१६॥ शशिशेखरउवाच ॥ नंदिञ्जयोभाव्यतेद्य न कथंचित्पराजयः ॥
निमित्तानीह दृश्यंते संभूतानिगणेश्वर ॥ १७॥ तच्छंभुवचनंश्रुत्वाशैलादिःप्राहशंकरम् ॥ संदेहःकोमहादेवजयत्वंशात्रवान्बहून् ॥ १८॥ इत्येव
मुक्त्वावचनंनंदीरुद्रगणांस्तथा ॥ समादिदेशयुद्धायमहापाशुपतैःसह ॥ १९॥ तेभ्येत्यदानवबलंविनिघ्नंतश्ववेगिनः ॥ नानाशस्त्रधरावीरावृक्षानशनयो
यथा ॥ २० ॥ तेभिद्यमानाबलिभिःप्रमथैर्दैत्यदानवाः ॥ प्रवृत्ताःप्रमथान्हंतुंकूटमुद्गरपाणयः ॥ २१ ॥ ततोंबरतलेदेवाःसेंद्रविष्णुपितामहाः ॥ ससूर्या
भिपुरोगाश्वसमायातादिदृक्षवः ॥ २२ ॥ ततोम्बरतलेघोषःसस्वनःसमजायत ॥ गीतवाद्यादिसंमिश्रोदुंदुभीनांकलिप्रियः ॥ २३ ॥ ततःपश्यत्सुदेवे
षुमहापाशुपतादयः ॥ गणास्तद्दानवंसैन्यंनिघ्नंतिस्मसुकोपिताः ॥ २४ ॥ चतुरंगंबलंदृष्ट्वावध्यमानंगणेश्वरैः ॥ क्रोधान्वितस्तुदंडस्तुवेगेनाभिससारह ॥
॥ २५ ॥ आदायपरिघंघोरंपट्टोद्धद्धमयस्मयम् ॥ राजतेतस्यहस्तस्थमिंद्रध्वजमिवोद्धृतम् ॥ २६ ॥

होकर कूट मुद्गर हाथमें ले उनको निहत करना प्रारंभ किया ॥ २१ ॥ इतनेमें अमरगण इस युद्धको देखनेके निमित्त इन्द्र, विष्णु, पितामह और भास्करके साथ
मिलकर आकाशमें आये ॥ २२ ॥ हे कलिप्रिय ! (नारद) तब उस आकाशमार्गमें गीत और बाजोंके शब्दसे मिलकर दुन्दुभि (नगाड़ा) बजने लगा ॥ २३ ॥
देवतागण इसप्रकारसे देखने लगे, महापाशुपत इत्यादि सम्पूर्णगण अत्यन्त क्रोधित हो दानवोंकी सेनाका संहार करनेलगे ॥ २४ ॥ गणेश्वर दैत्यों
की चतुरंगिनी सेनाका संहार कररहे हैं, यह देखकर दंडनामक दानव क्रोधित होकर चला ॥ २५ ॥ उसके हाथमें पट्टोद्धद्ध लोहेका भयंकर परिघ

था, उस समय उसके हाथमें स्थित वह परिघ उदित इन्द्रध्वजाकी समान अत्यन्त शोभायमान हुआ ॥ २६ ॥ दंड इस परिघको घुमाकर रुद्रादि स्कंद तक सम्पूर्ण गणोंको निहत करनेलगा उसके भयसे सरणस्थलसे भग्न होगया ॥ २७ ॥ गणनायक विनायक अपने रणको भंग हुआ देखकर शीघ्रतासे दनुपुंगव

तंभ्रामयानोबलवान्निजघानरणेगणान् ॥ रुद्रादीन्स्कंदपर्यंतांस्तेऽभंजंतभयातुराः ॥ २७ ॥ तच्चभग्नंबलंदृष्ट्वागणनाथोविनायकम् ॥ समाद्रवतवेगेनतुहुं डंदनुपुंगवम् ॥ २८ ॥ आपतंतंगणपतिंदृष्ट्वादैत्योदुरात्मवान् ॥ परिघंपातयामासकुंभमध्येमहाबलः ॥ २९ ॥ विनायकस्यमिषतःपरिघंवज्रभूषणम् ॥ शतधान्वगमद्ब्रह्मन्मेरोःकूटमिवाशनिः ॥ ३० ॥

तुहुण्डको आक्रमण करनेके निमित्त उद्यत हुए ॥ २८ ॥ दुरात्मा दैत्यने गणपतिको आताहुआ देखकर अत्यन्त बलके साथ घुमाकर उनके कुंभ (मस्तक) में उस परिघको पटका ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! वज्र जिसप्रकारसे पर्वतके शृंगको चूर्ण २ करता है उसीप्रकारसे विनायकके कुंभमें पतित होकर उस वज्रभूषण परिघके

---

१ चतुरस्रं ध्वजाकारं राजद्वारे प्रतिष्ठितम् । आहुः शक्रध्वजं नाम पौरलोकसुखावहम् ॥ और कालिकापुराणमें इसके नियम आदि इस प्रकारसे लिखे हैं कि, वर्षाऋतुमें सूर्यके सिंहराशिपर आनेसे (अर्थात् भादोंके महीनेमें) श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशीके दिन राज्यके विघ्न दूर करनेके अर्थ राजपुरोहित अनेकप्रकारके बाजे गाजेके साथ इन्द्रध्वजाके निमित्त श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त एक अर्जुन अश्वकर्ण, प्रियक, धवक, गूलर, देवदारु, शाल वा तालके वृक्षको रात्रिके समय आमंत्रण करके दूसरे दिन अपराह्णके समयमें उस वृक्षको छेदन (काट) कर जलमें डाले । फिर उस वृक्षकी इन्द्रध्वजा बनानेके लिये उसको नगरके द्वारपर लावै, पश्चात् भादोंकी शुक्लाष्टमीके दिन उस मुनिर्मित ध्वजाको वेदीपर स्थापित करै । बाईस हाथकी ध्वजा अधम है, बत्तीस हाथकी ध्वजा मध्यम, बयालीस हाथकी ध्वजा उत्तम और बावन हाथकी ध्वजाको शास्त्रकारोंने सर्वोत्तम कहा है, [अतएव अपनी शक्तिके अनुसार ध्वजा बनावै] पश्चात देवराज इन्द्रके सम्बन्धमें पञ्चकुमारीकी कल्पना करके शालमयी सम्पूर्ण इन्द्रमातृकाओंको निर्माण करै ध्वजाके पादपरिमाणमें इन्द्रकुमारिकाको निर्माण करके उसके ऊर्द्धभागमें इन्द्रमातृकाको निर्माण करै । इसके अतिरिक्त दो हाथका यंत्र बनावै और एकादशीके दिन ध्वजाको इस यंत्रमें स्थापितकर द्वादशीको विस्तारपूर्वक इन्द्रमंडल बनाय उसके बीचमें प्रथम विष्णुका पश्चात् इन्द्रका पूजन करै । स्वर्ण, काष्ठ, तैजस वा मृत्तिका द्वारा इन्द्रकी एक मूर्ति निर्माण करै पीछे शुभमुहूर्तमें राजा इन्द्रका सिंहासन उठावै और सेनासहित अनेक प्रकारके माङ्गलिक बाजोंका शब्द सुनता हुआ अपने पुरोहितके साथ ध्वजामंडपमें जाय ध्वजाको अनेक भूषणोंसे भूषितकर उठावै और उसके मूलदेशमें इन्द्रकी प्रतिमाको स्थापित कर पुरोहितके द्वारा इन्द्रका और इन्द्रध्वजाका पूजन. हवन आदि करै पीछे ब्राह्मणोंको भोजन करावै इसप्रकारसे सात दिन उत्सव करै । भरणीनक्षत्रके अन्तिम (चतुर्थ) चरणमें रात्रिके समय सब प्राणियोंके शयन करनेपर राजपुरोहित ध्वजाको विसर्जन करै । राजा विसर्जनके समय ध्वजाका दर्शन न करै. दर्शन करलेनेसे राजाकी छैः महीनेमें मृत्यु होजाती है । और विसर्जनके समय ध्वजाके भंग होजानेसेभी राजाकी मृत्यु होती है । राजा इस उत्सवके करनेसे अपने जीवनतक अतुल साम्राज्यको भोगकर अन्तसमय इन्द्रपुरीमें वास करता है ।

सहस्रों खंड होगये ॥ ३० ॥ परिघको व्यर्थ हुए तथा सन्मुख आते हुए पार्षद (गणेश) को देखकर दानव तुहुण्डने बलपूर्वक उनको अपनी भुजारूपी पाशसे बाँधा ॥ ३१ ॥ लम्बोदर गणेशजीने उस (महोदर[1]) के मस्तकमें मुद्गरका आघात किया, और परश्वध (फरसे) से दैत्येन्द्र तुहुण्डके ऊपर प्रहार किया ॥ ३२॥ उस आघातसे उस (तुहुण्ड) के शिरके दो टुकड़े होगये और वह काष्ठकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा, परन्तु तो भी उसने उन बँधीहुई भुजाको न छोड़ा, हे नारद ! विनायकजी छूटनेके निमित्त यत्न करनेलगे, परन्तु तोभी कृतकार्य न हुए ॥ ३३॥ कुंडोदर नामक गणेश्वरने महादेवजीके विनायकको बाहुपाशमें बँधाहुआ देखकर शीघ्रही मूसल ले दैत्यकी भुजामें खूब आघात किया ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त कलशध्वज गणेश्वरने प्रशास्त्रका प्रयोगकर राहुका हृदय विदीर्ण करडाला,तुहुण्डके मृतक और राहुके

परिघंविफलंदृष्ट्वासमायातंचपार्षदम् ॥ बबंधबाहुपाशेनबलादाकृष्यदानवः ॥ ३१ ॥ तंजघानाथशिरसिमुद्गरेणमहोदरम् ॥ परश्वधेनदैत्येंद्रंगणेशोहिमहोदरः ॥ ३२ ॥ काष्ठवत्सद्विधाभूतोनिपपातधरातले ॥ तथापिनात्यजद्बाहुंबलवान्दानवेश्वरः ॥ मोक्षार्थमकरोद्यत्नंनशशाकमहोदरः ॥ ३३ ॥ विनायकंसंयतमीक्ष्यबाहुनाकुंडोदरोनामगणेश्वरोथ ॥ प्रगृह्यतूर्णंमुशलंमहात्माबाहुंसमंतात्सजघानतस्य ॥ ३४ ॥ ततोगणेशःकलशध्वजस्तुप्रासेनराहुंहृदयेबिभेद ॥ हतेतुहुंडेविमुखेतुराहौगणेश्वराःक्रोधविषंमुमुक्षवः ॥३५ ॥ पंचैककालानलसन्निकाशाविशंतिसेनांदनुपुंगवानाम् ॥ तांवध्यमानांस्वचमूंसमीक्ष्यबलिर्बलीमारुतवेगतुल्यः ॥ ३६ ॥ गदांसमाविध्यजघानमूर्ध्निविनायकंकुंभकटेकरेच ॥ कुंडोदरंभग्नकरंमहोदरंशीर्णशिरस्कन्नमहाकपालम् ॥ ३७ ॥ कुंभध्वजंघूर्णितसंधिबंधंघटोदरंचोरुविपन्नसंधिम् ॥ गणाधिपांस्तान्विमुखांस्तुदृष्ट्वाबलान्वितोवीरतरःसुरेंद्रः ॥ ३८ ॥ समेत्यधावंस्त्वरितोनिहंतुंगणेश्वरान्स्कंदविशाखमुख्यान् ॥ तमापतंतंभगवान्समीक्ष्यमहेश्वरःश्रेष्ठतमंगणानाम् ॥ ३९ ॥

पराङ्मुख होनेसे गणेश्वरके गण क्रोधसे विष छोड़नेके निमित्त उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ कालाग्निसदृश पांचजन गणेश्वरने दनुश्रेष्ठोंकी सेनामें प्रवेशकर संहार करडाली, अपनी सेना वध्यमान होरही है यह देखकर महाबलवान् बलिने वायुकी समान वेगसे ॥ ३६ ॥ गदाको लेकर विनायकके कुंभ (मस्तक) और शुण्डमें प्रहार किया, कुंडोदरके हाथ कटगये, महोदरजीका मस्तक चूर्ण होगया और महाकपाल (खोपड़ा) फटगया ॥ ३७ ॥ कुंभध्वजकी संधिबन्ध चूर्ण २ होगये, घटोदरकी ऊरु सन्धियें छिन्न भिन्न होगईं, उस समय गणाधिपतिको विमुख देखकर वीरवर बलान्वित सुरेन्द्र दुरात्मा दैत्य गणपतिको ॥ ३८ ॥ स्कंद और विशाख इत्यादि

---

[1] राहुकाही नाम महोदर है।

अन्यान्य गणेश्वरोंका संहार करनेके निमित्त शीघ्रतासे चले, भगवान् महेश्वर उनको आताहुआ देखकर ॥ ३९ ॥ सबगणोंमें श्रेष्ठ नन्दीको बुलाकर बोले कि, हेवीर ! जाकर युद्धमें दैत्यका संहार करो, नन्दीने वृषभध्वजकी आज्ञा पाय चक्रको ग्रहण कर ॥ ४० ॥ बलीके सन्मुख होकर उसके मस्तकपर आघात किया, वह मोहित (बेहोश) हो पृथ्वीपर जापड़ा । बलवान् कुजंभने भ्राताके पुत्र बलिको मोहित देखकर मूसल ग्रहणकर ॥ ४१ ॥ उसे घुमाकर क्रोधितहो नन्दीके ऊपर शीघ्रतासे छोड़ा, भगवान् नंदीने उस मूसलको आता हुआ देखकर अपने हाथोंसे उसे शीघ्रतासे पकड़॥ ४२ ॥ उसी संग्रामके बीच कुजंभके ऊपर प्रहार किया, वह उसी समय प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, नंदी मूसलके आघातसे कुजंभको मृतक देख, फिर और सहस्रों दैत्योंके ऊपर वज्रका आघात करनेलगे॥ ४३ ॥ वह

शैलादिमामंत्र्यतदाबभाषेत्वंगच्छदैत्यंजहिवीरयुद्धे ॥ इत्येवमुक्तोवृषभध्वजेनचक्रंसमादायशिलादसूनुः ॥ ४० ॥ बलिंसमभ्येत्यजघानमूर्ध्निसंमोहितश्चावनिमाससाद ॥ संमोहितंभ्रातृसुतंविदित्वाबलीकुजंभंमुसलंप्रगृह्य ॥ ४१ ॥ संभ्रामयन्घूर्णतरंसवेगात्ससर्जनंदिंप्रतिजातकोपः ॥ तमापतंतंमुसलंप्रगृह्यकरेणतूर्णंभगवान्सनंदी ॥ ४२ ॥ जघानतेनैवकुजंभमाहवेसप्राणहीनोनिपपातभूम्याम् ॥ हत्वाकुजंभंमुसलेननंदीवज्रेणनंदीशतशोजघान ॥ ४३ ॥ तेवध्यमानागणनायकेनदुर्योधनंवैशरणंप्रपन्नाः ॥ दुर्योधनःप्रेक्ष्यगणाधिपेनवज्रप्रहारैर्निहतान्दितीशान् ॥ ४४ ॥ पाशंसमाविध्यतडित्प्रकाशंनंदिंप्रचिक्षेपहतोस्त्वितिब्रुवन् ॥ तमापतंतंकुलिशेननंदीबिभेदगुह्यंपिशुनोयथानरः ॥४५॥ तंपाशमालक्ष्यतदातुकृत्तंसंवर्त्यमुष्टिंगणमाससाद ॥ ततोस्यवज्रीकुलिशेनतूर्णंशिरोच्छिनत्तालफलप्रकाशम् ॥ ४६ ॥ हतोऽथभूमौनिपपातवेगाद्दैत्याश्चभीताविगतादिशोदश ॥ ततोहतंस्वंतनयंनिरीक्ष्यहस्तीतदानंदिनमाजगाम ॥ ४७ ॥ प्रगृह्यबाणाशनिमुग्रवेगंबिभेदबाणैर्यमदंडकल्पैः ॥ गणान्सनंदीन्वृषभध्वजांस्तान्धाराभिरवांबुधरास्तुशैलम् ॥ ४८ ॥

पीड़ित होकर सेनापति दुर्योधनकी शरण हुए, उन्होंने नन्दीके द्वारा वज्रके प्रहारसे दितीश्वरोंको परास्त देखकर ॥ ४४ ॥ पाशको घुमाकर "नंदी तुम मारे गये ?" यह कहकर शीघ्रतासे उनके ऊपरको छोड़ी, पिशुनस्वभाव मनुष्य जैसे रहस्य भेद करते हैं नंदीनेभी उसीप्रकार उसके आतेही वज्रसे उसके खंड २ करके फेंकदिये ॥ ४५ ॥ पाशको कटा हुआ देखकर दुर्योधनने मुष्टिको ग्रहणकर नन्दीके ऊपर उसका प्रहार किया, वज्रधारी नंदीने वज्रके प्रयोगसे शीघ्रही उसका तालफलके समान मस्तक काट डाला ॥ ४६ ॥ तब वह मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, उसे देख दैत्य भयभीतहो दशोंदिशाओंको भागगये, हस्ती नामक असुरने अपने पुत्रको मृतक देखकर उसी समय नन्दीके ऊपर आक्रमण किया ॥ ४७ ॥ और बड़े वेगसे धनुष लेकर यमदंडकी समान बाणोंसे उन्हें विदीर्ण करनेलगा, मेघ जिसप्रकार

जलधारको वर्षाकर पर्वतोंको आच्छन्न करते हैं उसीप्रकारसे नन्दीके सहित वृषभध्वजकोभी बाणोंकी वर्षासे छा दिया ॥४८॥ विनायक इत्यादि महाबलवान् वीर्यवान् सम्पूर्ण गण असुरके बाणोंके जालसे आच्छादित होकर सिंहसे डरे हुए बैलकी समान भयसे व्याकुलहो शीघ्रतासे भागनेलगे ॥ ४९ ॥ कार्त्तिकने उसे देख सुशाणित शक्तिको धारणकर शीघ्रतासे आकर उससे शत्रुके हृदयको विदारित किया ॥ ५० ॥ हस्ती शक्तिकेद्वारा विदीर्ण होकर समरभूमिमें अपनी सेनाके बीचमें जाकर गिरा ॥ ५१ ॥ उस समय गणेश्वर आदि अरातियोंको समरसे विमुख देखकर अत्यन्त क्रोधितहो नंदीको आगेकर दानवोंका संहार करनेके निमित्त सन्नद्ध हुए ॥ ५२ ॥ वे दैत्यादि प्रमथोंके द्वारा वध्यमानहो फिर युद्धमें प्रवृत्त हुए और बलशाली प्रमथोंका सामना किया ॥ ५३ ॥ उनको निवृत्त (लौटता)

तेछाद्यमानादनुबाणजालैर्विनायकाद्याबलिनोपिवीराः ॥ सिंहप्रणुन्नावृषभायथैवभयातुराद्दुद्रुविरेसमंतात् ॥ ४९ ॥ परस्परान्प्रेक्ष्यगणान्कुमारःशक्तिनिशातामथधारयित्वा ॥ तूर्णंसमभ्येत्यरिपुंगवेषुप्रगृह्यशक्तिंहृदयंबिभेद ॥ ५० ॥ शक्तिनिर्भिन्नहृदयोहस्तीभूम्यांपपातह ॥ समरेचापिपृतनामध्येसौदनुपुंगवः ॥ ५१ ॥ तमरातिगणंदृष्ट्वाभग्नंक्रुद्धागणेश्वराः ॥ पुरतोनंदिनंकृत्वाजिघांसंतश्चदानवान् ॥ ५२ ॥ तेवध्यमानाःप्रमथैर्दैत्याश्चापिपराङ्मुखाः ॥ भूयोनिवृत्ताबलिनःकुर्वंतश्चपुरोगणान् ॥ ५३ ॥ तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैवक्रोधदीप्तेक्षणःश्वसन् ॥ नंदिषेणोव्याघ्रमुखोनिवृत्तश्चापिवेगवान् ॥ ५४ ॥ तस्मिन्निवृत्तेगणपेपट्टिशाग्रकरेतदा ॥ कांतस्वरोनिववृतेगदामादायनारद ॥ ५५ ॥ तमापतंतंज्वलनप्रकाशंगणःसमीक्ष्यैवमहासुरेन्द्रम् ॥ तंपट्टिशंभ्राम्यजघान मूर्ध्निकांतस्वरंविस्वरमुन्नदंतम् ॥ ५६ ॥ तस्मिन्हतेभ्रातरिमातुलेयेपाशंसमाविध्यतुरंगकध्वजः ॥ बबंधवीरंसहपट्टिशेनगणेश्वरंचाप्यथनंदिषेणम् ॥ ॥ ५७ ॥ नंदिषेणं तथाबद्धंसमीक्ष्यबलिनांवरः ॥ विशाखःकुपितोभ्येत्यशक्तिपाणिरुपस्थितः ॥ ५८ ॥ तंदृष्ट्वाबलिनांश्रेष्ठःपाशपाणिरयःशिराः ॥ संयोधयामासबलिंविशाखंकुक्कुटध्वजम् ॥ ५९ ॥

हुआ देखकर वेगवान् व्याघ्रवदन् नन्दिषेणनामक गणपति क्रोधसे लाल नेत्रकर दीर्घश्वास छोड़तेहुए सेनाके सन्मुख लौटे ॥ ५४ ॥ उन गणपतिको पट्टिश हाथमें लिये निवृत्त होनेपर कान्तस्वर नामक असुरभी गदा हाथमें ले निवृत्त हुए ॥ ५५ ॥ उस प्रदीप्तमान महासुरेन्द्रको आताहुआ देखकर गणपतिने पट्टिशको घुमाकर उसके मस्तकपर आघात किया वह आर्त्तस्वरसे चीत्कार शब्द कर उठा ॥ ५६ ॥ उस मातुलेयभ्राताके निहत होतेही तुरङ्गकध्वज नामक असुरने पाशको घुमाकर पट्टिशके सहित उन गणेश्वर नंदिषेणको बाँधलिया ॥ ५७ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ विशाख नंदिषेणको बँधताहुआ देखकर क्रोधित हो शक्तिको हाथमें ले वहाँ उपस्थित हुए ॥५८॥ उन्हें देखकर बलवानोंमें प्रथम गिननेयोग्य अयःशिरा नामकअसुर पाश हाथमें ले बलवान् कुक्कुटध्वज विशाखके साथ युद्ध करनेलगे॥५९॥

विशाखको अयःशिराके द्वारा सन्निरुद्ध देखकर गणेश्वर शाख और नैगमेय शीघ्रही शत्रुके ऊपरको दौड़े ॥ ६० ॥ एक ओर नैगमेय और दूसरी ओर शाख विशाखकी प्रियकामनासे उस अयःशिराके ऊपर शक्तिका प्रहारकर उसे भग्नकर दिया ॥ ६१ ॥ अयःशिरा उन तीन शंकरके सूत्रोंसे पीड़ित हो संग्रामको छोड़कर शीघ्रही शम्बरके निकट जाकर बोले कि, हमारे गणेश्वरोंको बचाओ ॥ ६२ ॥ इस ओर कार्तिकसहित शंकर चारों आत्मजोंने शक्तिकी सहायतासे अयःशिराके फेंकेहुए पाशको काट शीघ्र अपने स्थानको चलेगये जैसे कि, कोई आकाशसे पृथ्वीपर चलाजाय ऐसे ॥ ६३ ॥ पाशके कटजानेसे शम्बर कातर नेत्रोंसे देखताहुआ संग्रामसे भागगया तब कुमार दैत्योंकी सेनाको मर्दनकरनेको प्रवृत्त हुए ॥ ६४ ॥ हे महर्षे ! शम्भुके पुत्र और सम्पूर्णगणों ने इसप्रकार संहार करना प्रारंभ किया, वह दानवोंकी सेना भयसे आर्त्त और विवर्णस्वरूप होकर महाभयसे: व्याकुल हो शुक्रकी शरणागत हुई ॥ ६५ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां दैत्यपराजयोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, प्रमथगणोंमें कुजंभको यमराजके स्थानका अतिथि किया और सम्पूर्ण सेनाका नाश करदिया, तब अंधकासुर भयभीत हो निजगुरुवर्य शुक्राचार्यके निकट जाकर विनयपूर्वक कहनेलगा ॥ १ ॥ कि, हे भगवन् ! विप्रर्षे ! हम सब आपहीका आश्रय कर देवता गंधर्व किन्नरोंको तथा अन्यान्य शत्रुसमूहको बाधितकरते आयेहैं ॥ २ ॥ परन्तु भगवन् ! अब देखिये कि,हमारी सुरक्षिता सेनाको अत्यन्त दुर्बल यह प्रमथगणभी अनाथा स्त्रियोंकी समान संहार करतेहैं ॥ ३ ॥ हे भार्गव ! कुजंभ इत्यादि मेरे भ्राता मारेगयेहैं कुरुक्षेत्रके फलकी समान प्रमथोंकी संख्या नहीं है॥ ४॥

विशाखंसन्निरुद्धंवैरणेदृष्ट्वागणोत्तमाः ॥ शाखश्चनैगमेयश्चतूर्णंदुद्रुवतूरिपुम् ॥ ६० ॥ एकतोनैगमेयेनभग्नःशक्त्यात्वयःशिराः ॥ एकतश्चैवशाखेनविशाखप्रियकाम्यया ॥ ६१ ॥ सत्रिभिःशंकरसुतैःपीड्यमानोजहौरणम् ॥ सम्प्राप्यशंबरंतूर्णंरक्षमांहिगणेश्वरात् ॥ ६२ ॥ पाशंशक्त्यासमाहत्यचतुर्भिःशंकरात्मजैः ॥ जगामनिलयंतूर्णमाकाशादिवभूतलम् ॥ ६३ ॥ पाशेनिकृत्तेयातेचशंबरःकातरेक्षणः ॥ दिशोथभेजेदेवर्षेकुमारःसैन्यमर्दयत् ॥ ६४ ॥ सावध्यमानापृतनामहर्षेसदानवाशर्वसुतैर्गणैश्च ॥ विवर्णरूपाभयविह्वलांगीजगामशुक्रंशरणंभयार्ता ॥ ६५ ॥ इति श्रीवामनपुराणेदैत्यपराजयोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःकुजंभेचयमालयंगतेहतेचसैन्येप्रमथैर्महारथः ॥ त्रस्तोऽन्धकोभ्येत्यगुरुंचशुक्रमिदंवचःसानुमयस्तदाब्रवीत् ॥ १ ॥ भगवंस्त्वांसमाश्रित्यवयंबाधामदैवतेः ॥ अथान्यानपिविप्रर्षेगंधर्वसुरकिन्नरान् ॥ २ ॥ तदिमांपश्यभगवन्ममगुप्तांवरूथिनीम् ॥ अनाथेवयथानारीप्रमथैरपिकाल्यते ॥ ३ ॥ कुजंभाद्याश्चनिहताभ्रातरोममभार्गव ॥ असंख्यातास्तेप्रमथाःकुरुक्षेत्रफलंयथा ॥ ४ ॥

इसकारण जिसप्रकार शत्रुओंको सरलतासे हम युद्धमें जीतसकैं ऐसा उपाय आप बतादीजिये ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे देवर्षे ! परमगुरु शुक्र दानवेश्वर
अंधकके यह वचन सुन उसको सावधान और हर्षित करतेहुए बोले कि, मैं उस तीर्थमें जाऊँगा जहाँ जाकर तुम्हारा प्रियकार्य करूँगा ॥ ६ ॥ उन्होंने यह वचन
कहकर फिर विविधविधिके अनुसार पवित्र हो संजीवनीविद्याको आवर्तित किया ॥ ७ ॥ उस संजीवनीविद्याके आवर्तित होनेसे प्रमथोंने युद्धमें जिन असुरोंको
संहार कियाथा वह सभी जीवित होगये ॥ ८ ॥ इसप्रकारसे कुजम्भादि असुरोंने उठकर युद्धके निमित्त सन्नद्ध हो संग्रामभूमिमें उपस्थित होनेपर नंदी महादेवजीसे
बोले ॥ ९ ॥ कि, प्रमथगणों ने यथाशक्ति संग्राममें जिन दानवोंका संहार कियाथा भार्गवने संजीवनी विद्याके बलसे फिर उनको जीवित किया है ॥ १० ॥

तस्मात्कुरुष्वचतथायथानज्ञायतेपरैः ॥ जयेमचपरान्युद्धेतथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शुक्रोंधकवचःश्रुत्वासांत्वयन्परमोगुरुः ॥ वचनं
प्राहदेवर्षेहर्षयन्दानवेश्वरम् ॥ तद्धितीर्थंगमिष्यामिकरिष्यामितवप्रियम् ॥ ६ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंविद्यांसंजीवनींकविः ॥ आवर्तयामासतदाविधानेनशु
चिव्रतः ॥ ७ ॥ तस्यामावर्तमानायांविद्यायामसुरेश्वराः ॥ येहताःप्रमथैर्युद्धेतेचसर्वेसमुत्थिताः ॥ ८ ॥ कुजंभादिषुदैत्येषुभूयएवोत्थितेष्वथ ॥ योद्धुं
समागतेष्वेवनंदीशंकरमब्रवीत् ॥ ९ ॥ येहताःप्रमथैर्दैत्यायथाशक्त्यारणाजिरे ॥ तेसमुज्जीविताभूयोभार्गवेणाथविद्यया ॥ १० ॥ तदिदंयन्महादे
वमहत्कर्मकृतंरणे ॥ नजातंस्वल्पमेवेशशुक्रविद्याबलाश्रयात् ॥११॥ इत्येवमुक्तेवचनेनंदिनंकुलनंदिनम् ॥ प्रत्युवाचप्रभुःप्रीत्यास्वार्थसाधनमुत्तमम् ॥
॥ १२ ॥ गच्छशुक्रंगणपतेममान्तिकमुपानय ॥ अहंतंसंयमिष्यामियथायोगंसमेत्यहि ॥ १३ ॥ इत्येवमुक्तोरुद्रेणनंदीगणपतिस्ततः ॥ समाजगाममदै
त्यानांचमूंशुक्रजिघृक्षया ॥ १४ ॥ तंददर्शासुरश्रेष्ठोबलवांस्तुभयंकरः ॥ सरुरोधतदामार्गंसिंहस्येवपशुर्वने ॥ १५ ॥ समुपेत्याहनन्नन्दीचक्रेणाशनिते
जसा ॥ संपपाताथनिःसंज्ञोययौनंदीततस्त्वरन् ॥ १६ ॥

इसकारण हे महादेव ! संग्राममें जो महाकार्य सिद्ध हुआथा शुक्रकी विद्याके बलसे वह स्वल्प होगयाहै ॥ ११ ॥ कुलनन्दि नन्दीके इसप्रकार कहनेपर महा
देवजी उनसे प्रसन्नहो स्वार्थसाधकश्रेष्ठ वचन बोले ॥ १२ ॥ कि, हे गणपते ! तुम जाकर शीघ्र हमारे निकट शुक्रको लेआओ मैं अपने उपायकोंकी सम्मतिसे
उसे पकड़कर संयमित (बाँध) कर रक्खूँगा ॥ १३ ॥ रुद्रके इसप्रकार कहनेपर गणेश्वर नन्दीने शुक्रको ग्रहण करनेकी अभिलाषासे दैत्योंकी सेनाके बीचमें गये
॥ १४ ॥ इसअवसरमें भयंकर नामक बलवान् असुरश्रेष्ठने उनको आतेहुए देखा, पशु जिसप्रकारसे वनके बीचमें सिंहको घेरता है उस प्रकारसे उनके मार्गको रोका
॥ १५ ॥ नन्दीने उसके पास जा वज्रकी समान तेज चक्रद्वारा उसे आहत किया, उसके लगतेही वह संज्ञाहीन होकर पतित हुए, तब नन्दी शीघ्रतासे जानेलगे ॥ १६ ॥

यह देखकर कुजंभ, जम्भ, बल, वृत्र और राक्षसगण सभी संग्रामके बीच शार्दूलके समान पराक्रम रखनेवाले (बहादुर) नन्दीके ऊपर स्वयं धावमानहुए ॥ १७ ॥ वैसेही औरभी मय, ह्राद इत्यादि अन्यान्य दानवेन्द्रभी संग्राममें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र लेकर उनके ऊपरको दौड़े ॥ १८ ॥ तब ब्रह्मादिक देवगणने प्रमथगणोंके अधीश्वर नन्दीको महाबलवान् दैत्योंसे वध्यमान देखतेहुए ॥ १९ ॥ उन्हें इस अवस्थामें देखकर ब्रह्माजी इन्द्रादिक देवताओंसे बोले कि, तुम सब इस सुअवसरमें देवाधिदेव महादेवजीकी सहायता करो ॥ २० ॥ पितामह (ब्रह्माजी) के यह वचन सुनकर इन्द्रादिक देवता आकाशमार्गहो शिवजीकी सेनाके बीचमें बड़े वेगसे उतरे ॥ २१ ॥ प्रमथोंके सेनाके बीचमें प्रवेश करते हुए उन देवताओंके वेग ऐसे शोभितहुए जैसे कि, समुद्रके बीचमें आतीहुई नदियोंका वेग शोभित होताहै ॥

ततःकुजंभोजंभश्चबलोवृत्रश्चराक्षसाः ॥ स्वयंचरणशार्दूलानंदिनंसमुपाद्रवन् ॥ १७ ॥ तथान्येदानवश्रेष्ठामयह्लादपुरोगमाः ॥ नानाप्रहरणायुद्धेगणनाथमभिद्रवन् ॥ १८ ॥ ततोगणानामधिपंकुध्यमानंमहाबलैः ॥ समपश्यंतदेवास्तंपितामहपुरोगमाः ॥ १९ ॥ तंदृष्ट्वाभगवान्प्राहदेवाञ्छक्रपुरोगमान् ॥ साहाय्यंक्रियतांशंभोरेतदंतरमुत्तमम् ॥ २० ॥ पितामहोक्तंवचनंश्रुत्वादेवाःसवासवाः ॥ समापतंतवेगेनशिवसैन्यमथांबरात् ॥ २१ ॥ तेषामापततां वेगःप्रमथानांबलेवभौ ॥ आपगानांमहावेगःपतंतीनांमहार्णवे ॥ २२ ॥ ततोहलहलाशब्दःसमजायतचोभयोः ॥ बलयोर्घोरसंकाशोसुरप्रमथयोरथ ॥ ॥ २३ ॥ तदन्तरमुपागम्यनंदीसंगृह्यवेगवान् ॥ तंभार्गवंसमाक्रामात्सिंहोवनमृगंयथा ॥ २४ ॥ तमादायहराभ्याशमागमद्गणनायकः ॥ निपात्यरक्षिणः सर्वानथशुक्रंन्यवेदयत् ॥ २५ ॥ तमानीतंकविंशर्वःप्राक्षिपद्वदनेप्रभुः ॥ भार्गवंव्यापृतंतुंडेददृशुस्तेसुरारयः ॥ २६ ॥ सशंभुनाकविश्रेष्ठोग्रस्तो जठरमास्थितः ॥ तुष्टावभगवंतंतंवाग्भिर्भार्गवआदरात् ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ तब प्रमथ और असुर दोनोंपक्षकी सेनाके बीचमें घोर कुलाहलका शब्द होनेलगा ॥ २३ ॥ नन्दीने उस अवसरको पाकर शीघ्रतासे आकर सिंह जिसप्रकारसे वनके मृगोंको पकड़ताहै उसी प्रकारसे भार्गव (शुक्राचार्य) को आक्रमण (कैद) करलिया ॥ २४ ॥ गणनायक नन्दी शुक्राचार्यके रक्षकोंको मारकर उन्हें पकड़ेहुए महादेवजीके पासको ले आये और भलीभाँतिसे वहाँ उन्हें बैठाया ॥ २५ ॥ शिवजीमहाराज पकड़कर मँगायेहुए शुक्राचार्यको योगबलसे अपने मुखमें डालकर निगलगये, उस समय सभी वह सुरारिगण भार्गव (शुक्राचार्य) को शिवजीके मुखमें प्रवेशके समय बाहर निकलनेके अर्थ व्यापृत (छटपटाते) हुए देखने लगे ॥ २६ ॥ भगवान् शिवजीको कविवर शुक्रके ग्रास करतेही वह उन भगवान् शिवजीके उदरमें स्थितहो आदरसहित इसप्रकारके वचनोंसे स्तुति करने ॥ २७ ॥

तुम सबके वरदाता गुणशाली हरहो तुमको नमस्कारहै तुम शंकर महेश्वर और विश्वेश्वरहो तुमको वारम्वार नमस्कारहै ॥ २८ ॥ हे लोकनाथ ! तुम सबके जीवन और सबके नाथहो तुमको नमस्कारहै, हे वृषाकपे ! हेमदनदहन ! हेकालशत्रो ! हेवामदेव ! तुमको नमस्कारहै ॥ २९ ॥ हेसदागते ! तुम सविताहो, तुम विश्वस्वरूपहो, तुम वामनहो, तुम महादेवहो, तुम ईश्वरहो, मैं तुम्ह वारम्वार नमस्कार करताहूँ ॥३०॥ हेत्रिनेत्र ! हेहर ! हेभव ! हेशंकर ! हे उमापते ! हेजीमूतकेतो ! हे गुहाश्मशाननिरत, हे भूतिविलेपन ! हे शूलपाणे ! हे पशुपते ! गोपते ! तत्पुरुष और सत्तम ! तुमको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं, कविवर शुक्रके भक्ति सहित इसप्रकार स्तुति करनेपर महादेवजी प्रसन्नहो उनसे बोले कि, तुम वरमाँगो, शुक्रजी बोले कि, हेभगवन् ! मुझे आप यह वर दीजिये कि, मैं इसी समय आपके

शुक्रउवाच ॥ वरदायनमस्तुभ्यंहरायगुणशालिने ॥ शंकरायमहेशायविश्वेशायनमोनमः ॥ २८॥ जीवनायनमस्तुभ्यंलोकनाथवृषाकपे ॥ मदनाग्ने
कालशत्रोवामदेवायतेनमः ॥ २९ ॥ सवित्रेविश्वरूपायवामनायसदागते ॥ महादेवायशर्वायईश्वरायनमोनमः ॥ ३० ॥ त्रिनयन हर भव शंकर उमापते
जीमूतकेतो गुहाश्मशाननिरत भूतिविलेपन शूलपाणे पशुपते गोपते तत्पुरुष सत्तम नमो नमस्ते ॥ इत्थंस्तुतःकविवरेणहरोऽथभक्त्याप्रीतोवरंवरयभार्ग
वइत्युवाच ॥ तंप्राहदेहिभगवंस्तुवरंममाद्ययद्वैतवैवजठरान्ममनिर्गमोस्तु ॥ ३१ ॥ ततोहरोक्षीणितदानिरुध्यप्राहद्विजेंद्रंकिलनिर्गमस्व ॥ इत्युक्तमात्रो
विभुनाचचारदेवोदरेभार्गवपुंगवस्तु ॥ ३२ ॥ परिक्रमन्ददर्शासौशङ्करोदरकोटरे ॥ भुवनार्णवपातालान्स्थितान्स्थावरजंगमैः ॥ ३३ ॥ आदित्यवसुरुद्रां
श्वविश्वेदेवगणांस्तथा ॥ यक्षान्किंपुरुषांश्चैवगंधर्वाप्सरसांगणान् ॥ ३४ ॥ मुनीन्मनुजसाध्यांश्चपशुकीटपिपीलिकाः ॥ सरीसृपान्वृक्षगुल्मफलमूलौषधा
निच ॥ ३५ ॥ जलस्थांश्चस्थलस्थांश्चानिमेषान्निमिषानपि ॥ अव्यक्तांश्चैवव्यक्तांश्चद्विपदोथचतुष्पदः ॥ ३६ ॥ सदृष्ट्वाकौतुकाविष्टःपरिबभ्रामभार्गवः ॥
तत्रास्यतोभार्गवस्यादिव्यःसंवत्सरोगतः ॥ ३७ ॥

उदरसे बाहर होजाऊँ ॥ ३१ ॥ तब महादेवजी तीनों नेत्रको बंदकर जितेन्द्रभार्गवसे बोले कि, तुम निकल जाओ, विभु महादेवजीके इसप्रकार कहनेपरभी श्रेष्ठ शुक्र शिवजीकी मायासे दिदृक्षाकुल अपूर्वचरित्र देखनेकी इच्छाके वश हो उनके उदरहीमें विचरण करनेलगे ॥ ३२ ॥ उस उदररूपी कोठरीमें जाय इधर उधर घूम कर देखा कि, स्थावर और जंगमके साथ सम्पूर्ण संसार समुद्र और पाताल यह सब इसमें प्रतिष्ठित है ॥ ३३ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, यक्ष, किन्नर गंधर्व और अप्सरायें यह सब एकत्रित हो वहाँ विराजमान हैं ॥ ३४ ॥ इसके अतिरिक्त वह मुनि मनुष्य, साध्य, पशु, कीड़े और चैंटी, वृक्ष, लता आदि, सर्प, फल, मूल, औषधि ॥ ३५ ॥ अनिमेष (पलक जिनके नहीं गिरते ऐसे) मत्स्यादिक और निमिष (पलक जिनके गिरते हैं ऐसे) कच्छपादिक जलचरएवं स्थलचर यहदेखकर वह आश्चर्यित हो इधरउधर

भ्रमण करनेलगे, वहाँ रहकर उन्हें दिव्यसम्वत्सर देवताओंके एकवर्ष समय अर्थात् मनुष्यके ३६०वर्ष व्यतीत होगये॥ ३६ ॥ ३७॥ परन्तु तोभी वह उनकें अंतको न पासके इसके पीछे परिश्रम करनेसे थकित हो बैठगये, वह अपनेको परिश्रयसे थकित देखकर न निकलसके, तब ध्यानमें भक्तिसहित महादेवजीके निकट आ विनीतवचन बोले ॥ ३८ ॥ कि, हे विश्वरूप ! और महारूप ! हे विरूपाक्ष ! और स्वरूपधृक् हे सहस्राक्ष महादेव मैं तुम्हारी शरणागत हूँ ॥ ३९ ॥ तुम शंकर, तुम शर्व, तुम शम्भु, तुम सहस्रनेत्र, तुम सहस्रपाद, तुम भुजंगभूषण हो, तुम्हारे गहन उदरमें मैं सम्पूर्ण संसारका दर्शन करके भ्रान्तचित्त हो तुम्हारी शरणागत हुआहूं ॥ ४० ॥ शुक्रके ऐसा कहनेपर महात्मा महादेवजी हँसते २ बोले कि, हे भार्गववंशचंद्र ! अब तुम हमारे पुत्र हुए हो, मेरे शिश्नसे निकलो ॥ ४१ ॥ आजसे सम्पूर्ण चराचर तुम्हारी शुक्र

नचैवांतमसौलेभेततःश्रांतोऽभवत्कविः ॥ सश्रांतंवीक्ष्यचात्मानंनचलेभेऽथनिर्गमम् ॥ भक्तिनम्रोमहादेवंततस्तत्समुपागमत् ॥ ३८ ॥ शुक्रउवाच ॥
विश्वरूपमहारूपविश्वरूपाक्षरूपधृक् ॥ सहस्राक्षमहादेवत्वामहंशरणंगतः ॥ ३९ ॥ नमोस्तुतेशंकरशर्वशंभोसहस्रनेत्रांघ्रिभुजंगभूषण ॥ दृष्ट्वैवसर्वंभुवनं
तवोदरेभ्रांतोभवंत्वांशरणंप्रपन्नः ॥ ४० ॥ इत्येवमुक्तेवचनेमहात्माशंभुर्वचःप्राहतदाविहस्य ॥ निर्गच्छपुत्रोसिममाधुनात्वंशिश्नेनभोभार्गववंशचंद्र ॥
॥ ४१ ॥ नाम्नातुशुक्रेतिचराचरास्त्वांस्तोष्यंतिनैवात्रविचारणास्यात् ॥ इत्येवमुक्त्वाभगवान्मुमोचशिश्नेनशुक्रःसचनिर्जगाम ॥ ४२ ॥ विनिर्गतो
भार्गववंशचंद्रःशुक्रत्वमासाद्यमहानुभावः ॥ प्रणम्यशंभुंसजगामतूर्णंमहासुराणांबलमुत्तमौजाः ॥ ४३ ॥ भार्गवेपुनरायातेदानवामुदिताभवन् ॥ पुनर्यु
द्धायविदधुर्मतिंसहगणेश्वरैः ॥ ४४ ॥ गणेश्वरास्तानसुरान्सहामरगणैरथ ॥ युयुधुःसंकुलंयुद्धंसर्वएवजयेप्सवः ॥ ४५ ॥ ततोसुरगणानांचयुध्यतांद्वंद्वयुद्ध
वत् ॥ द्वंद्वयुद्धंसमभवद्धोररूपंतपोधन ॥ ४६ ॥ अंधकोनंदिनंयुद्धेशंकुकर्णंत्वयःशिराः ॥ कुंभध्वजंबलिर्धीमान्नंदिषेणंविरोचनः ॥ ४७ ॥

कहकर स्तुति करेंगे, इसमें कुछ विचार नहीं. भगवान् भवने यह कहकर उनको मोचन (मुक्त) किया, वह शिश्नयोगसे बाहर हुए ॥ ४२ ॥ वह महानुभाव भार्गववंशचंद्र, शुक्रत्वको प्राप्त हो निकलकर महादेवजीको प्रणाम कर शीघ्रही महासुरगणोंकी सेनाके बीचमें गये ॥ ४३ ॥ भार्गवको फिर लौटआताहुआ देख कर सम्पूर्ण दानव प्रसन्नहुए, और गणोंके साथ फिर दूसरीबार युद्ध करनेका संकल्प किया ॥ ४४ ॥ गणेश्वरभी देवताओंको साथ ले सब असुरोंसे भयंकर युद्ध करनेलगे, सभी अपनी २ जयकी इच्छा रखने लगे ॥ ४५ ॥ तब असुर भयंकर द्वन्द्वयुद्धकी समान युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए. हे तपोधन ! तब अत्यन्त भयंकर रूपसे द्वन्द्वयुद्धहोनेलगा ॥ ४६ ॥ इसमें अंधकतो नन्दीके साथ, अयःशिरा शंकु कर्णके साथ, बुद्धिमान् बलि विरोचन नन्दिषेणके साथ ॥ ४७ ॥

अश्वग्रीव विशाखके साथ, शाखा वृत्रके साथ, नैगमेय बाणके साथ और राक्षसपुंगव बल ॥४८॥ परश्वधयोधी महावीर्य विनायकके साथ संग्राममें युद्ध करनेलगे, उस समय दानव और राक्षस यह सभी अत्यन्त क्रोधित होकर प्रमथगणोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४९ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! सम्यक् प्रकारसे युद्धकरनेवाले अंधकासुरके छहसौ तो दायाद (अपने कुटुम्बके) थे, औरकी तो कथाही क्या है ॥ ५० ॥ शतक्रतुके हाथमें वज्र था, और वे उन असुरोंके समाधीत (परिचित) थे वे दानवश्रेष्ठभी तुहुंडभी उनके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ५१ ॥ तब हस्ती कुंडोदरके और ह्राद घटोदरके साथ युद्ध करनेलगा, हे महर्षे ! इसप्रकारसे उन बलिश्रेष्ठ दानवोंने प्रमथगणोंके साथ युद्ध प्रारंभ किया, उनकी संख्या छैःशत है॥५२॥उस समय गणोत्कट साक्षात् वज्रपाणीकी समान आकर खड़े हुए उनको ॥ ५३ ॥ जम्भ नामक

अश्वग्रीवोविशाखंचशाखोवृत्रमयोधयत् ॥ बाणंतथानैगमेयोबलराक्षसपुंगवः ॥ ४८ ॥ विनायकंमहावीर्यंपरश्वधधरंरणे ॥ संक्रुद्धाराक्षसश्रेष्ठादानवाः
प्रमथानथ ॥ ४९ ॥ संयोधयंतोब्रह्मर्षेदायादानांशतानिषट् ॥ ५० ॥ शतक्रतुंसमाधीतंवज्रपाणिमवस्थितम् ॥ तंचापिदानवश्रेष्ठस्तुहुंडःसमयोधयत् ॥
॥ ५१ ॥ हस्तीचकुंडजठरंह्लादोवीरंघटोदरम् ॥ एतेहिबलिनांश्रेष्ठादानवाःप्रमथानथ ॥ संयोधयंतोब्रह्मर्षेदैतेयानांशतानिषट् ॥ ५२ ॥ गणोत्कटं
समायांतंवज्रपाणिमिवस्थितम् ॥ वारयामासबलवाञ्जंभोनाममहासुरः ॥ ५३ ॥ शंभुर्नामासुरपतिःसब्रह्माणमयोधयत् ॥ ५४ ॥ मायामयःकुजंभश्च
विष्णुंदैत्याधिपस्त्वयात् ॥ वैवस्वतंरणेसोल्कोवरुणंत्रिशिरास्तथा ॥ ५५ ॥ द्विमूर्धापवनंसोमंसहमित्रंविरूपधृक् ॥ एकहक्सरणेरौद्रःकालनेमिर्महा
सुरः ॥ ५६ ॥ एकादशैवरुद्रांस्तुयच्चैकोपिरणोत्कटः ॥ योधयामासतेजस्वीविद्युन्मालीमहासुरः ॥ ५७ ॥ द्वावश्विनौचनरकोभास्करानवशंबरः ॥
साध्यान्मरुद्गणांश्चैवनिवातकवचादयः ॥ ५८ ॥ एवंद्वंद्वसहस्राणिप्रमथानांचदानवैः ॥ संजातानांसुराब्दानांषट्छ्तानिमहामुने ॥ ५९ ॥ यदायोद्धुं
नशक्तास्तेदानवैरमरादयः ॥ मुखंव्यादायवेगेनग्रसंतेक्रमशोमरान् ॥ ६० ॥

महाबलवान् असुरने उन्हें रोका अर्थात् उनसे द्वन्द्वयुद्ध करनेलगा॥ ५४ ॥मायावी कुजम्भनामक दैत्यपति षिष्णुके साथ मिला,तब सोल्कनामक दैत्य और यमकी त्रिशिरा और वरुणकी ॥ ५५ ॥ द्विमूर्धा पवनसे चंद्र और सूर्य विरूपधरसे एकाक्षरुद्र महाअसुर कालनेमिसे युद्ध करनेलगे ॥ ५६ ॥ विद्युन्माली नामक रणोत्कट महाअसुर इकलाही ग्यारह रुद्रोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त नरक नामक असुर और दोनों अश्विनीकुमार, बारह आदित्य और शम्बर, साध्यगणोंके साथ मरुद्गण और निवातकवचादि असुरोंने परस्परमें युद्ध करना प्रारंभ किया ॥ ५८ ॥ हे महामुने ! इसप्रकारसे सहस्र २ प्रमथ और दानवोंने छैः हजार वर्ष घोर द्वन्द्व युद्धमें व्यतीत किये ॥ ५९ ॥ देवता दानवोंके साथ अधिक युद्ध न करसके, तब दानव मुख फैलाकर क्रमशः देवताओंको शीघ्रतासे ग्रास करने लगे ॥ ६० ॥

तब जो सेना प्रमथ और देवताओंसे भरी हुई थी वह उन्हें एक बारही छोड़देनेसे शूनी हुई थी ॥ ६१ ॥ वशीरुद्र मंदराचलके शिखर शूने हुए, तथा प्रमथ और अमरोंको दानवोंसे ग्रसित हुए देखकर क्रोधित हो जृम्भा (जम्भाई) रूपी अम्बिका भवानीकी सृष्टि की ॥ ६२ ॥ जंभाईके द्वारा आकर्षण किये जाकर सम्पूर्ण दानव आलस्यी और मंदभाषी होगये, और शस्त्रोंको त्यागकर मुहँको फैलाकर जंभाईयें लेने लगे ॥ ६३ ॥ उनके जंभाई लेनेसे गणेश्वर और अमर व्याकुल होकर उन दैत्योंकी देहसे शीघ्रही बाहर निकलने लगे ॥ ६४ ॥ दैत्यही स्वभावसे मेघकी समान प्रभायुक्त थे पद्मकी समान नेत्रवाले देवताओंने उनके देहसे निकलकर मेघमें स्थित बिजलीके ढेरकी समान शोभा विस्तार की ॥ ६५ ॥ हे तपोधन ! महानुभाव ! देवता निकलकर अत्यन्तही क्रोधित हो फिर युद्ध करनेमें

ततोऽभवच्चतत्सैन्यंशून्यंप्रमथदैवतैः ॥ आवृतंवर्जितंसर्वैःप्रमथैरमरैरपि ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वाशून्यंगिरिप्रस्थंग्रस्तांश्चप्रमथामरान् ॥ क्रोधादुत्पादयामासरुद्रो
जृंभांविकांवशी ॥ ६२ ॥ तयाकृष्टादनुसुताअलसामंदभाषिणः ॥ वदनंविकृतंकृत्वामुक्तशस्त्राविजृंभिरे ॥ ६३ ॥ विजृंभमाणेषुतदादानवेषुगणेश्वराः ॥
सुराश्चनिर्ययुस्तूर्णंदैत्यदेहेभ्यआकुलाः ॥ ६४ ॥ मेघप्रभेभ्योदेहेभ्योनिर्गच्छंतोमरोत्तमाः ॥ शोभंतेपद्मपत्राक्षामेघेभ्यइवविद्युतः ॥ ६५ ॥ ततोमरगणाः
सर्वैनिर्गताश्चतपोधन ॥ अयुध्यंतमहात्मानोभूयएवाभिकोपिताः ॥ ६६ ॥ ततोदेववरैःसर्वैदानवाःशर्वपालितैः ॥ पराजीयंतसंग्रामैर्भूयोभूयस्त्वहर्निशम् ॥
॥ ६७ ॥ तत्रत्रिणेत्रःस्वांसंध्यांसप्ताष्टशतिकेगते ॥ कालेह्युपासततदासोष्टादशभुजोव्ययः ॥६८॥ संस्पृश्यापःसरस्वत्याःस्नात्वाचविधिनाहरः॥कृतार्थो
भक्तिमान्मूर्ध्निपुष्पांजलिमथाक्षिपत् ॥ ६९ ॥ ततोननामशिरसाततश्चक्रेप्रदक्षिणम् ॥ हिरण्यगर्भेत्यादित्यमुपतस्थेजजापह ॥७०॥ द्रष्ट्रेनमोनमस्तेस्तु
सम्यगुच्चार्यशूलधृक् ॥ ननर्तभावगंभीरोदोर्दण्डंभ्रामयन्बली॥७१॥परिनृत्यतिदेवेशेगणाश्चैवसुरास्तथा॥नृत्यंतिभावयुक्तास्तुहरस्यानुविधायिनः॥७२॥

प्रवृत्त हुए ॥ ६६ ॥ दानव शम्भुसे पालित देवताओंके द्वारा संग्राममें वारम्वार अहर्निश पराजयको पानेलगे ॥ ६७ ॥ इसप्रकार सताशी सौ वर्ष व्यतीत हुए अविनाशी महादेवजी अठारह भुजा धारणकर अपनी सायंसन्ध्यावंदनामें प्रवृत्त हुए ॥ ६८ ॥ उन्होंने विधिपूर्वक सरस्वतीके जलको स्पर्श और उसमें स्नान कर कृतार्थ और भक्तिमान् हो मस्तकपर अंजली चढ़ाई ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त मस्तकद्वारा प्रणामकर और परिक्रमा करनेके पीछे हिरण्यगर्भ इत्यादि मंत्रोंके उच्चारणके साथ उनकी उपासना कर अंतमें जप करनेलगे ॥ ७० ॥ इसके उपरान्त हे द्रष्टास्वरूप ! तुमको वारम्वार नमस्कार करताहूँ भलीभाँतिसे इसप्रकार उच्चारणकर भावमें भर गंभीर हो बलसहित बाहुदंडको घुमाते हुए तांडव नृत्य करनेलगे ॥ ७१ ॥ वह तांडवमें प्रवृत्त हुए, सम्पूर्ण प्रमथगण और असुरगण

भावयुक्त हो उनके नृत्यके अनुसार नृत्य करनेलगे ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त भगवान् शम्भुने सायंसंध्यावंदन और इच्छानुसार नृत्यकर दानवोंके साथ पुनर्वार युद्ध करनेका संकल्प किया ॥ ७३ ॥ तब महाबलवान् देवता और गणोंने सभी महादेवजीकी भुजाओंके बलसे रक्षित और भयसे रहित हो सब दानवोंकोही जय किया ॥ ७४ ॥ "अपनी सेना पराजित हुई है" यह देखकर और महादेवजीको जीतनेकी सामर्थ्य नहीं है ऐसा विचार अंधक सुन्दको बुलाकर यह वचन बोला ॥ ७५ ॥ कि, हेवीर सुन्द ! तुम हमारे भ्राताहो, और सब प्रकारसे तुम्हें हमारा विश्वास है, इस कारण जो मैं तुमसे कहताहूँ उसे सुनकर उचित कार्य करो ॥ ७६ ॥ महात्मा महादेवजी किसी और कारणसे अत्यन्तही युद्धमें दक्ष हैं, इस कारण उनको जीतनेकी सामर्थ्य नहीं है, परन्तु इस ओर शैलेन्द्रकुमारी पद्मलोचनी मेरे हृदयमें वस गई है ॥७७ ॥ इसकारण हेदानव ! उठो, जहाँ वह चारुहासिनी गिरिनंदिनी विराजमान हैं उस स्थानपर जाय मैं महादेवजीका रूप धारण कर उन्हें मोहित करेंगे ॥ ७८ ॥ तुम महादेवजीके अनुचर गणेश्वर नन्दीका रूप धारण करो, तब उस स्थानपर जाय उनसे भोगकर प्रमथ और देवताओंको पराजित करेंगे ॥ ७९ ॥ इसप्रकारके वचन सुन सुन्दने इसपर सम्मतहो नंदीका रूप धारण किया और अंधकनेभी महादेवजीकी मूर्ति धारण की ॥ ८० ॥ इस प्रकारसे सेनापति सुन्द और असुरपति अंधकक्रमिक नंदी और रुद्ररूप धारणकर मंदराचलपर्वतपर गये ॥ ८१ ॥ इसप्रकार असुरश्रेष्ठ अंधकने नंदीरूपधारी सुन्दके हाथको पकड़कर निःशंकित हृदयसे हरके मंदिरमें प्रवेश किया ॥८२॥ प्रमथगणोंके बाणोंके आघातसे अंधककी छवि जर्ज्जरित (टूटी फटी) होगई थी, उनसे

संध्यामुपास्यदेवेशः परिनृत्ययथेच्छया ॥ युद्धायदानवैःसार्धमतिंभूयःसमादधे ॥ ७३ ॥ ततःसुरगणैःसर्वैस्त्रिणेत्रभुजपालितैः ॥ दानवानिर्जिताःसर्वैर्बलिभिर्भयवर्जितैः ॥ ७४ ॥ स्वबलंनिर्जितंदृष्ट्वामत्वाजेयंचशंकरम् ॥ अंधकःसुंदमाहूयवचनंचेदमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ सुंदभ्रातासिमेवीरविश्वास्यःसर्ववस्तुषु ॥ तत्त्वांवदामियद्वाक्यंतच्छ्रुत्वाकुरुयत्क्षमम् ॥ ७६ ॥ दुर्जयोसौरणपटुर्महात्माकारणांतरैः ॥ ममास्तिचापिहृदयेपद्माक्षीशैलनंदिनी ॥ ७७ ॥ तदुत्तिष्ठस्वगच्छावोयत्रास्तेचारुहासिनी ॥ तत्रैनांमोहयिष्यामिशंभुरूपेणदानव ॥ ७८ ॥ भवान्भवस्यानुचरोभवनंदीगणेश्वरः ॥ ततोगत्वाथभुक्त्वातांजेष्यामिप्रमथान्सुरान् ॥ ७९ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेबाढंसुंदोऽभ्यभाषत ॥ समजायतशैलादिरंधकःशंकरोप्यभूत् ॥ ८० ॥ नंदिरुद्रौततोभूत्वामहासुरचमूपती ॥ संप्राप्तौमंदरगिरिंप्रहारैःकृतविग्रहौ ॥ ८१ ॥ नंदिनोहस्तमालंब्यह्यंधकोहरमंदिरम् ॥ विवेशनिर्विशंकेनचित्तेनासुरसत्तमः ॥ ८२ ॥ ततोगिरिसुतादूरादायांतंवीक्ष्यचांधकम् ॥ महेश्वरवपुश्छन्नंप्रहारैर्जर्जरच्छविम् ॥ ८३ ॥

छल करके महादेवजीके शरीरसे इसप्रकार प्रवेश किया, गिरिनंदिनीने इसे आता हुआ दूरसेही देखा ॥ ८३ ॥ इसके उपरान्त सुन्दने नंदीके रूपको धारणकर उस स्थानमें प्रवेश किया, गिरिपुत्री देखकर अपनी सखी मालिनी जया और विजया इनको बुलाकर बोलीं ॥ ८४ ॥ कि, देखो ! अत्यन्त भयंकर शत्रुओं ने हमारे निमित्त महादेवजीका रूप धारण किया है इसकारण शीघ्र उठो ॥ ८५ ॥ पुराना धृत, चीर (वस्त्रखंड) दधि, लवण यह लादो, मैं स्वयंही महादेवजीका व्रणभंग करूंगी ॥ ८६ ॥ तुम शीघ्रही यत्नपूर्वक मेरे स्वामीके व्रणके विनाश करनेमें प्रवृत्तहो यह कहकर उन्होंने सिंहासनसे उठ ॥ ८७ ॥ और भक्तिसहित वृषध्वजका ध्यानकर उनके सन्मुख जाकर यत्नसहित आरेके द्वारा उसके कृत्रिम चिह्नको वारम्वार छेदनकरा ॥ ८८ ॥ इसके अन्वेषण (खोज) करते २ तब देखा कि, वह दोनों जने एक

सुंदंशैलादिरूपस्थमवष्टभ्याविशत्ततः ॥ तंदृष्ट्वामालिनींप्राहयशस्यांविजयांजयाम् ॥ ८४ ॥ जयेपश्यस्वदेवस्यमदर्थेविग्रहंकृतम् ॥ शत्रुभिर्दारुणतरैस्तदुत्तिष्ठस्वसत्वरम् ॥ ८५ ॥ घृतमानयपौराणंचीरंचलवणंदधि ॥ व्रणभंगंकरिष्यामिस्वयमेवपिनाकिनः ॥ ८६ ॥ कुरुष्वशीघ्रमस्यत्वंभर्तुर्व्रणविनाशनम् ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंसमुत्थायवरासनात् ॥ ८७ ॥ अभ्युद्ययौतदाभक्त्यामन्यमानावृषध्वजम् ॥ शरपत्रेणतच्छित्वाभूयश्चिह्नानियत्नतः ॥ ॥ ८८ ॥ अन्वियेषतदापश्यत्तावुभौपार्श्वतःस्थितौ ॥ साज्ञात्वादानवंरौद्रंमायाच्छादितविग्रहम् ॥ ८९ ॥ अपयानंतदाचक्रेगिरिराजसुतामुने ॥ देव्याश्चिंतितमाज्ञायसुंदंत्यक्त्वांधकोसुरः ॥ ९० ॥ समाद्रवतवेगेनहरकांतांविभावरीम् ॥ समाद्रवतदैतेयोयेनमार्गेणसागता ॥ ९१ ॥ कुर्वतीचतिरस्कारंपादप्लुतिनिराकुला ॥ तमापतंतंदृष्ट्वैवगिरिजाप्राद्रवद्भयात् ॥ ९२ ॥ गृहंत्यक्त्वाह्युपवनंसखीभिःसहितातदा ॥ तत्राप्यनुजगामासौमदांधोमुनिपुंगव ॥ ॥ ९३ ॥ तथापिनशशापैनंतपसोगोपनाययत् ॥ तद्भयादाविशद्गौरीश्वेतार्ककुसुमंशुचि ॥ ९४ ॥ विजयाद्यामहागुल्मंसंप्रयातालयंमुने ॥ नष्टायामथपार्वत्यांभूयोहैरण्यलोचनिः ॥ ९५ ॥

कोनेमें दुपके खड़े हुए हैं, वह उन मायाच्छादित शरीरवारी भयंकर दानवोंको जानकर ॥ ८९ ॥ उसी समय गिरिवरनंदिनी पार्वती उस स्थानसे निकिलीं, हे मुने ! अंधकासुरने देवीके अभिप्रायको जानकर सुन्दको छोड़कर ॥ ९० ॥ शीघ्रतासे उनका पीछा कर वह जिसमार्गसे जातीं यहभी उसी मार्गसे जानेलगा ॥ ९१ ॥ देवी चिन्तारहितहो पादप्रक्षेप कर चलीं, जब अंधकको वेगसे आता हुआ देखा तब भयसे आर्तसीहो शीघ्रतासे चलीं ॥ ९२ ॥ वह सखियोंके साथ गृहको त्यागकर उपवन (बाग) में गईं, हेमुनिपुंगव ! अंधक मदसे अंधाहो उस स्थानपरभी उनके पीछे २ गया ॥ ९३ ॥ परन्तु तोभी उन्होंने तपकी रक्षाके निमित्त उसे शाप नहीं दिया, उसके भयसे योगके बलसे परमपवित्र श्वेतार्कके फूलके बीचमें प्रवेश किया ॥ ९४ ॥ यह देखकर विजयादि सखियें

सभी महागुल्म (लतासमूह) में लीन हो (छिप) गईं, पार्वतीजीके अन्तर्ध्यान होनेपर हिरण्याक्षसुत ॥ ९५ ॥ सुन्दके हाथको पकड़कर फिर अपनी सेनामें आया, हेमुनिसत्तम ! अंधकके पुनर्वार अपनी सेनामें आनेपर ॥ ९६ ॥ प्रमथ और असुर घोर युद्ध करनेलगे, तब देवताश्रेष्ठ विष्णु भगवानने चक्र और गदाको धारण कर ॥ ९७ ॥ महादेवजीकी प्रियकामनाके वशहो असुरोंकी सेनाको संहारकरनेलगे, प्रधान २ दानवों ने उनके शार्ंगधनुषसे निकले हुए बाणोंके जालसे दानवेन्द्रोंको भलीप्रकारसे घेरलिया ॥ अर्थात् शरपंचसे बद्ध करडाला ॥ ९८ ॥ उन्हों ने सत्तासी हजार पैंसठ असुरोंके बीच सूर्यकी किरणोंसे मेघकी समान किसीको तो गदाके आघातसे और किसीको चक्रके प्रहारसे आघातकर निहत किया॥ ९९ ॥और अन्यान्य असुरोंके बीचमें किसीको खड्गके प्रहारसे छिन्न भिन्न और किसीको दृष्टिके द्वारा भस्म करदिया, और किसीको हलसे आकर्षण कर और अन्यान्य दैत्योंको मूसलसे चूर्ण २ कर दिया॥ १०० ॥उस समय गरुड़जी अपने पक्षतुंड (बीच) में वक्षस्थलके आघातसे दैत्योंको दलन करनेलगे, सबके विधाता आदि पुरुष ब्रह्माजीके ॥ १०१ ॥ विपुल पद्म भ्रामित और जलद्वारा अभिषिक्त करनेपर वह उन सर्वतीर्थमय ब्रह्मजलके स्पर्शसे ॥ १०२ ॥ प्रमथगण और अमरगण नवीन शरीरको धारण कर सैकड़ोंगण अधिक होगये दानव उस पापहारी जलके स्पर्शसेही ॥ १०३ ॥ कुलिशस्पर्शसे पर्वतकी समान वाहनोंके साथ नाश पानेलगे, ब्रह्मा और हरि यह दोनोंही महाअसुरोंको संग्राममें संहार कररहे हैं यह देखकर ॥ १०४ ॥

सुंदंहस्तेसमादायस्वसैन्यंपुनरागमत् ॥ अंधकेपुनरायातेस्वबलंमुनिसत्तम ॥ ९६ ॥ प्रावर्ततमहायुद्धंप्रमथासुरयोरथ ॥ ततोरणेसुरश्रेष्ठोविष्णुश्चक्रगदाधरः ॥ ९७ ॥ निजघानासुरबलंशंकरप्रियकाम्यया ॥ शार्ङ्गचापच्युतैर्बाणैःसंस्यूतादानवर्षभाः ॥ ९८ ॥ पंचषट्सप्तचाष्टौवाब्रभ्रपादैर्घनाइव ॥ गदयाकांश्चिदवधीच्चक्रेणान्याञ्जनार्दनः ॥ ९९ ॥ खड्गेनचचकर्तान्यान्दृष्ट्याचान्यान्भस्मसात्कृतान् ॥ हलेनाकृष्यचैवान्यान्मुसलेनाप्यचूर्णयत् ॥ १०० ॥ गरुडः पक्षपाताभ्यांतुंडेनाप्युरसाहनत् ॥ सचादिपुरुषोधातापुराणःप्रपितामहः ॥ १०१ ॥ भ्रामयन्विपुलंपद्ममभ्यर्षिंचतवारिणा ॥ संस्पृष्टाब्रह्मतोयेनसर्वतीर्थमयेनहि ॥ १०२ ॥ गणामरगणाश्चासन्नवागणशताधिकाः ॥ दानवास्तेचतोयेनसंस्पृष्टाश्चाघहारिणा ॥ १०३ ॥ सवाहनालयंजग्मुःकुलिशेनेवपर्वताः ॥ दृष्ट्वाब्रह्महरीयुद्धेघातयंतौमहासुरान् ॥ १०४ ॥

---

१ इससंख्याको अनन्त संख्यामें तात्पर्य है, अथवा ५ । ६ । ७ । ८ । इसप्रकार पृथक् २ वार अस्त्राघातसे निहत होतेगये, ऐसा अर्थ विदित होताहै ।

२ मेघ जैसे सूर्यकी किरणोंसे जल लेकर निरन्तर जलवर्षण करता है वैसेही शार्ंगसे बाण मोक्षण कर तथा अन्यान्य अस्त्रोंका प्रयोग कर दानवोंका दलन किया ।

इन्द्र युद्धके निमित्त दृढ़प्रतिज्ञहो क्षीघ्रतासे चले, दानवसत्तम बलवान् "बल" उनको आता हुआ देखकर ॥ १०५ ॥ गदापाणि जनार्दन और विमानविहारी ब्रह्माजी दोनोंको यथाक्रमसे प्रणाम कर बलवान् दानवपति बलदेव और दानवोंको अजेय मुष्टिको उठाकर युद्धके लिये चले ॥ १०६ ॥ त्रिदशेश्वर इन्द्रने उन्हें आताहुआ देखकर अपने बलके अनुसार हजारों भुजाओंसे वज्र घुमाकर उस बलासुरके मस्तकपर मारा ॥ १०७ ॥ हेमुने ! वह प्रधान अस्त्र अत्यन्त दृढ़ होनेपरभी सहस्र २ खंड २ होगया, हे महर्षे ! तब दैत्यपति बलकेभी डरकर संग्रामसे भागनेपर सुराट् इन्द्रभी भयभीत हो संग्रामसे पराङ्मुख हुए ॥ १०८ ॥ कि, तुम चराचरके राजा हो, राजधर्ममें भागनेकी बात नहीं है इसकारण स्थित हो ॥ १०९ ॥ हे महर्षे ! सहस्राक्ष जम्भके वचन सुनकर भयभीत हो शीघ्रही विष्णुभगवान्की शरण

शतक्रतुश्चसंप्राप्तोयुद्धायकृतनिश्चयः ॥ तमापतंतंसंप्रेक्ष्यबलोदानवसत्तमः ॥ १०५ ॥ नत्वादेवंगदापाणिंविमानस्थंचपद्मजम् ॥ क्रमेणचाद्रवद्योद्धुंमुष्टिमुद्यम्यनारदः ॥ बालवान्दानवपतिरजेयोदेवदानवैः ॥ १०६ ॥ तमापतंतंत्रिदशेश्वरस्तुदोष्णांसहस्रेणयथाबलेन ॥ वज्रंपरिभ्राम्यबलस्यमूर्ध्नितन्निपातयामाससुरेश्वरस्तु ॥ १०७ ॥ बाढंसचास्त्रप्रवरोपिवज्रोजगामतूर्णंहिसहस्रधामुने ॥ बलोद्रवद्देवपतिश्चभीतःपराङ्मुखोभूत्सुरराण्महर्षे ॥ १०८ ॥ तंचापिजंभोविमुखंनिरीक्ष्यभूतावृतोवाक्यमुवाचचेदम् ॥ तिष्ठस्वराजासिचराचरस्यनराजधर्मेंगदितंपलायनम् ॥ १०९ ॥ सहस्राक्षोजंभवाक्यंनिशम्यभीतस्तूर्णंविष्णुमागान्महर्षे ॥ उपेत्याथश्रूयतांवाक्यमीशत्वं वैनाथोभूतभव्यस्यविष्णो ॥ ११० ॥ जंभस्तर्जयतेत्यर्थंमांनिरायुधमादिशन् ॥ आयुधंदेहिभगवंस्त्वामहंशरणंगतः ॥ १११ ॥ तमुवाचहरिःशक्रंत्यक्त्वावज्रंव्रजाधुना ॥ प्रार्थयस्वायुधंवह्निंसतेदास्यत्यसंशयम् ॥ ११२ ॥ जनार्दनवचःश्रुत्वाशक्रस्त्वमितविक्रमः ॥ शरणंपावकमगादिदंचोवाचनारद ॥ ११३ ॥ शक्रउवाच ॥ निघ्नतोमेबलंवज्रःकृशानोशतधागतः ॥ एषचाहूयतेजंभस्तस्माद्देह्यायुधंमम ॥ ११४ ॥

हुवा, और सन्मुख जाकर बोला कि, हे ईश ! आप भूत और भविष्यत्के नाथ हैं मेरे वचन सुनो ॥ ११० ॥ जम्भने मुझे निरस्त्र देखकर जम्भासुरकी भर्त्सना कीहै, इसकारण हे भगवन् ! मुझे आयुध दीजिये मैं आपकी शरण आयाहूँ ॥ १११ ॥ भगवान् नारायणजी उनसे बोले कि; हे इन्द्र ! तुम अब वज्रको त्यागकर अग्निके निकट अस्त्रकी प्रार्थना करो, वह तुम्हें अस्त्र देंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ११२ ॥ हे नारद ! अमितविक्रम इन्द्र जनार्दनके वचन सुनकर अग्निकी शरणमें जाकर बोले कि ॥ ११३ ॥ हे कृशानो ! मेरा वज्र शत्रुके मारते समय प्रहारके वेगसे शतखंड होगयाहै, इस ओर जंभ युद्धके निमित्त बुलारहाहै, इस कारण मुझे आयुध दीजिये ॥ ११४ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि, भगवान् अग्नि उनसे बोले कि, हे वासव ! मैं आपके ऊपर प्रसन्न हुआहूँ कारण कि, आप अभिमानको त्यागकर मेरी शरणमें आयेहैं ॥ ११५॥ इसप्रकार कहकर वह अपने असाधारण प्रभावके बलसे अपनी शक्तिसे शक्तिको निकालकर इन्द्रको दे रोचमान (प्रकाशमान) हो स्वर्गको गये ॥ ॥ ११६ ॥ अरिमर्दन इन्द्र उस शतघंटायुक्त दारुण शक्तिको लेकर जंभके विनाश करनेकी अभिलाषासे चले ॥ ११७ ॥ इसप्रकारसे वह शक्तिके सहित सेनाके सहित क्रोधित हो सन्मुख हुए, जम्भने इन्हें देख ऐरावतपर मुष्टीका आघात किया ॥ ११८ ॥ जंभके मुष्टिके प्रहारसे ऐरावतका कुंभ भग्न होगया, इन्द्रका ऐरावत हाथी वज्रसे कटेहुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ११९ ॥ गजेन्द्रको गिरते देखतेही इन्द्र शीघ्रतासे उसपरसे कूद मंदराचलको त्यागकर पृथ्वीका आश्रय लेने लगे ॥ १२० ॥ उन्हें गिरते हुए देख सिद्ध और चारणगण यह वारम्वार निवारण करके बाले कि, आप पृथ्वीपर क्यों गिरे जाते हैं धैर्य धारण कर ठहरिये ॥ ॥ १२१ ॥ योगराज इन्द्र उनके यह वचन सुनकर क्षणकालको स्थित हो बोले कि, मैं गिरतीहुई दशामें किसप्रकार शत्रुओंके साथ युद्ध करूँ ॥ १२२ ॥ देवता और गंधर्वोंने उत्तर दिया कि, हे ईश्वर ! आप विषादित न हो मैं रथ देताहूं आप उसपर चढ़कर युद्ध कीजिये ॥ १२३ ॥ यह कहकर विश्वावसु इत्यादि गंधर्वादिने स्वस्तिक (सर्वतो भद्र) विशाल रथ इन्द्रके निकटको भेजा, यह रथ वानरध्वजसे युक्त संहित (शिक्षित) अश्वोंसे योजित; निर्मल सुवर्णसे बनाहुआ और किंकिणी (क्षुद्रघंटिका) जालसे विभूषित था ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ इन्द्र उस सारथीहीन रथको आताहुआ देखकर बोले कि, मैं कैसे

पुलस्त्यउवाच ॥ तमाहभगवान्वह्निःप्रीतोस्मितववासव ॥ यस्तुदर्पपरीहृत्यमामेवशरणंगतः ॥११५॥ इत्युच्चार्यस्वशक्त्यासशक्तिंनिष्क्राम्यभावतः ॥ प्रादादिंद्रायभगवान्रोचमानोदिवंगतः ॥ ११६ ॥ तामादायतदाशक्तिंशतघंटांसुदारुणाम् ॥ प्रत्युद्ययौतदाजंभंहंतुकामोरिमर्दनः ॥ ११७ ॥ तयाभिसहितःशक्रःसहसैन्यैरभिद्रुतः ॥ क्रोधंचक्रेतदाजंभोनिजघानगजाधिपम् ॥ ११८ ॥ जंभमुष्टिनिपातेनभग्नकुंभकटोगजः ॥ निपपातयथाशैलःशक्रवज्रहतःपुरा ॥ ११९ ॥ पतमानंगजेंद्रंतुशक्रश्चाप्लुत्यवेगवान् ॥ त्यक्त्वैवमंदरगिरिंप्रयातोवसुधातले ॥ १२० ॥ तंपतंतंहरिंसिद्धाश्चारणाश्चतदाब्रुवन् ॥ मामाशक्रपतस्वाद्यभूतलेतिष्ठवासव ॥ १२१ ॥ सतेषांवचनंश्रुत्वायोगीतस्थौक्षणंतदा ॥ प्राहचैतान्कथंयोत्स्येपतन्वैशत्रुभिःसह ॥ १२२ ॥ तमूचुर्देवगंधर्वामाविषादंव्रजेश्वर ॥ युध्यस्वत्वंसमारुह्यप्रेषयामोजगद्रथम् ॥ १२३ ॥ इत्येवमुक्त्वाविपुलंरथंस्वस्तिकलक्षणम् ॥ वानरध्वजसंयुक्तंसंहतैर्हरिभिर्युतम् ॥ १२४ ॥ शुद्धजांबूनदमयंकिंकिणीजालमंडितम् ॥ शक्रायप्रेषयामासुर्विश्वावसुपुरोगमाः ॥ १२५ ॥ तमागतमुदीक्ष्याथहीनंसारथिनाहरिः ॥ प्राहयोत्स्येकथंयुद्धेसंयमिष्येकथंहयान् ॥ १२६ ॥

तो युद्ध करूँगा और कैसे घोड़ोंको रोकूँगा ॥ १२६ ॥ यदि कोई इस अवसरमें मेरा सारथी हो तब तो मैं शत्रुओंको निर्मूल करसकताहूं नहीं तो किसीप्रकारभी
नहीं करसकता ॥ १२७ ॥ गंधर्व बोले कि, हमारा सारथी नहीं है, इसकारण अपनेही आप घोड़ोंको रोको ॥ १२८ ॥ उनके यह वचन सुनकर भगवान् इन्द्र
अत्युत्तम रथको त्यागकर परिभ्रष्ट हो रसातलमें पतित हुए ॥ १२९ ॥ उनका मस्तक चलायमान होतेही केश खुलगये और सम्पूर्ण आयुध भ्रष्ट होगये, ऐसी अव
स्थामें सहस्राक्ष इन्द्रको पतित होते हुए देखकर पृथ्वी कंपायमान होनेलगी॥ १३० ॥पृथ्वीके कंपायमान होनेपर शमीक ऋषिके समीपचारिणी तपस्वीनी (भार्या) स्त्री
अपने स्वामीसे बोलीं कि, हे प्रभो ! हमारे इस बालकको यथासुखसे बाहर ले जाओ ॥ १३१ ॥ ब्राह्मण स्त्रीके वचन सुन पूछने लगे कि, किसकारणसे बाहर

यदिकश्चिच्चसारथ्यंकरिष्यतिममाधुना ॥ ततोहंघातयेशत्रून्नान्यथेतिकथंचन॥१२७॥ततोब्रुवंस्तेगंधर्वानास्माकंसारथिर्विभो ॥ विद्यतेस्वयमेवाश्वान्स्वयं
संयंतुमर्हसि ॥ १२८ ॥ इत्येवमुक्तेभगवांस्त्यक्त्वास्यंदनमुत्तमम् ॥ क्ष्मातलंनिपपातैवपरिभ्रष्टःसुरेश्वरः ॥ १२९ ॥ चलन्मौलिंमुक्तकचंपरिभ्रष्टयुधा
स्पदम् ॥ तंपतंतंसहस्राक्षंदृष्ट्वाभूःसमकंपत ॥ १३० ॥ पृथिव्यांकंपमानायांशमीकर्षैस्तपस्विनी ॥ भार्याब्रवीत्प्रभोबालंबहिःकुरुयथासुखम् ॥१३१॥
सतुभार्यावचःश्रुत्वाकिमर्थमितिचाब्रवीत् ॥ साचाहश्रूयतांनाथदैवज्ञपरिभाषितम् ॥ १३२ ॥ यदेयंकम्पतेभूमिस्तदाप्राक्षिप्यतेबहिः ॥ यद्बाह्यतोमुनिश्रे
ष्ठतद्भवेद्द्विगुणोमुने ॥ १३३ ॥ एतद्वाक्यंतदाश्रुत्वाबालमादायपुत्रकम् ॥ निराशंकोबहिःशीघ्रंप्राक्षिपत्क्ष्मातलेद्विजः ॥ १३४ ॥ भूयोगोयुगलार्थायप्र
विष्टोभार्ययाद्विजः ॥ निवारितोयदायासीत्तवहानिर्भविष्यति ॥ १३५ ॥ इत्येवमुक्तेदेवर्षिर्बहिर्निर्गम्यवेगवान् ॥ ददर्शबालद्वितयंसमरूपमवस्थितम् ॥
॥ १३६ ॥ तंदृष्ट्वादेवतापूज्यंभार्यांचाद्भुतदर्शनाम् ॥ प्राहतत्त्वांनविंदामियत्पृच्छामिवदस्वतत् ॥ ३३७ ॥

ले जानेको कहती हो ? भार्या बोली कि, हे नाथ ! सुनो दैवज्ञों ने कहा है॥ १३२ ॥ कि, पृथ्वीके कंपायमान होनेपर उस समय जो वस्तु घरसे बारह की जाती है,
हे मुनिश्रेष्ठ ! वह दुगुनी होजाती है ॥ १३३ ॥ यह वचन सुन ब्राह्मण उसीसमय बालक पुत्रको लेकर निःशंकचित्तसे शीघ्र बाहर ले जाकर पृथ्वीपर रख आये ॥
॥ १३४ ॥ फिर वह गौओंकोभी बाहरकर अधिक लालचसे दुगुनी करनेके निमित्त घरमें गये तब भार्या उनको निवारणकर बोली कि, गौओंके बाहर करनेसे आपकी
हानि होगी ॥ १३५ ॥ स्त्रीके यह कहनेपर उस ब्राह्मणने शीघ्रतासे बाहर जाकर देखा कि, परस्पर समानरूप दो बालक उस स्थानपर बैठेहुए हैं १३६ ॥ देवता
ओंकी समान पूजनीय उन दोनों बालकोंको देखकर अद्भुतदर्शना भार्यासे बोले कि, मैं इसका तत्त्व नहीं जाना बतादो तुमसे पूछताहूँ इसकारण तुम कहो॥ १३७ ॥

यह दूसरा बालक कैसे गुणोंसे युक्त होगा, गालवने जो इसके गुण और कर्म तुमसे कहाथा सो तुम इस समय हमारे निकट वर्णन करो ॥ १३८ ॥ स्त्री बोली कि, आज मैं नहीं कहूँगी फिर किसी समय कहूँगी. ब्राह्मणने उत्तर दिया कि, आजही कहना होगा, नहीं तो मैं भोजन नहीं करूँगा ॥ १३९ ॥ भार्या बोली कि, हे ब्रह्मन् ! श्रवण करो आप कातर होकर जो पूछते हैं सो कहती हूँ यह बालक इन्द्रका सारथी होगा ॥ १४० ॥ ब्राह्मणीके इसप्रकार कहनेपर वह अत्यन्तही मुग्धस्वभाव रथविशारद बालक इन्द्रकी सहायता करनेके निमित्त गया ॥ १४१ ॥ विश्वावसु इत्यादिक गंधर्वोंने यह इन्द्रका सारथी होगा, यह जानकर जानेके समय उस बालकको अपने तेजकेद्वारा बढ़ाया ॥ १४२ ॥ यह बालक गंधर्वके तेजसे युक्तहो इन्द्रके निकट जाकर बोला कि, हे देवेश ! आओ मैं आपका प्रियसारथी हूँगा ॥ १४३ ॥ इन्द्र यह वचन सुनकर उनसे बोले कि, हे बालक ! तुम किसके पुत्र हो ! और बालक होकर किसप्रकारसे घोड़ोंको संयत करोगे ? यह मुझे संदेह होता है ॥ १४४ ॥ बालक बोला कि, मैं शमीक ऋषिपुत्र पृथ्वीसे उत्पन्न हुआहूँ, और गंधर्वोंके तेजसे बढ़ाहूँ और घोड़ोंके चलानेमें विशेष चतुरहूँ यह आप जानिये ॥१४५ ॥ योगीश्रेष्ठ भगवान् इन्द्र यह वचन सुनकर आकाशमें शोभायमान हुए वह ब्राह्मण बालक मातलीनामसे विख्यात हुआ ॥ १४६ ॥ इसके उपरान्त त्रिदशपुंगव देवश्रेष्ठ वासव उस श्रेष्ठरथपर चढ़े और शमीकऋषिके पुत्र मातलीने घोड़ोंकी राशको ग्रहण किया ॥१४७ ॥ इसके पीछे इन्द्रने मंदराचलपर्वत पर शत्रुओंकी सेनाके बीचमें प्रवेश किया; प्रवेश करतेही सुविशाल और सुप्रसिद्ध धनुषको देखा ॥ १४८ ॥ यह शरसहित रक्त, असित और अरुण इत्यादि पांच

बालस्यास्यद्वितीयस्यकेभविष्यद्गुणाःकिल ॥ गालवेनतुयच्चोक्तंकर्मतत्कथयाधुना ॥ १३८ ॥ साब्रवीन्नाद्यवक्ष्येवैवादिष्यामिपुनःप्रभो ॥ सोब्रवीद्वदचाद्यै
वनोचेन्नाश्नामिभोजनम् ॥ १३९ ॥ साप्राहश्रूयतांब्रह्मन्वादिष्येवचनंहितम् ॥ कातरेणाद्ययत्पृष्टंभाव्यंकारयितुंकिल ॥ १४० ॥ इत्युक्तवतिवाक्ये
चबालएवत्वचेतनः ॥ हरेर्जगामसाहाय्यंकर्तुंरथविशारदः ॥ १४१ ॥ तंव्रजंतंहिगंधर्वाविश्वावसुपुरोगमाः ॥ ज्ञात्वेंद्रस्यैवसाहाय्यंतेजसासमवर्धयन् ॥
॥ १४२ ॥ गंधर्वतेजसायुक्तःशिशुःशक्रंसमेत्यहि ॥ प्रोवाचाभ्येहिदेवेशप्रियोयंताभवामिते ॥ १४३ ॥ तच्छ्रुत्वाचहरिःप्राहकस्यपुत्रोसिबालक ॥ त्वंयं
तासिकथंचाश्वान्संशयः प्रतिभातिमे ॥ १४४ ॥ सोऽरौच्छमीकपुत्रंमांक्ष्माभवंविद्धिवासव ॥ गंधर्वतेजसायुक्तंवाजियानविशारदम् ॥ १४५ ॥
तच्छ्रुत्वाभगवाञ्छक्रःखेबभौयोगिनांवरः ॥ सचापिविप्रतनयोमातलिर्नामविश्रुतः ॥ १४६ ॥ ततोधिरूढःसुरथंशक्रस्त्रिदशपुंगवः ॥ रश्मीन्शमीकतनयो
मातलिःप्रगृहीतवान् ॥ १४७ ॥ ततोमंदरमागम्यविवेशरिपुवाहिनीम् ॥ प्रविश्यददृशेश्रीमान्कथितंकार्मुकंमहत् ॥ १४८ ॥ सशरंपंचवर्णंतत्सितरक्ता
सितारुणम् ॥ पांडुच्छायंसुरश्रेष्ठस्तज्जग्राहसमार्गणम् ॥ १४९ ॥

वर्णयुक्त उसकी कांति पांडुवर्णसे रंजित थी, उन्होंने उस बाणसहित शरासन (धनुष) को ग्रहणकर ॥ १४९ ॥ मनहीमनमें रजः सत्त्व तमोमय देवताओंको प्रणाम कर गुण (प्रत्यञ्चा) योजनाके साथ धनुषपर बाणोंको चढ़ाया ॥ १५० ॥ तब उससे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके नामांकित मोरके परसे युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण अनन्त बाण निकलकर दानवोंके दलको दलन करनेलगे ॥ १५१ ॥ हे नारद ! उन बाणोंके जालसे उन्हों ने दिशा विदिशा आकाश और पृथ्वी और शत्रुके पक्षको एकबारही छादिया ॥ १५२ ॥ और समस्त हाथियोंको विद्धकर रथियोंको पृथ्वीपर निपातित करनेलगे और महावतको पृथ्वीमें गिराकर जम्भको बाणवृष्टिद्वारा आतुर करदिया॥ १५३ ॥ वह इन्द्रके बाणोंके द्वारा ताड़ित होकर पैदल भागकर पृथ्वीपर पतित हुए. क्षणकालके बीचमेंही रणस्थानमें उस विशालसेनामें जो २ प्रधान थे वे

ततस्तुमनसादेवान्त्रजःसत्त्वतमोमयान् ॥ नमस्कृत्यशरंचापेसाधिज्येविनियोजयत् ॥ १५० ॥ ततोनिश्चेरुरत्युग्रंशराबर्हिणवाससः ॥ ब्रह्मेशविष्णुना
मांकाःसूदयंतोऽसुरान्रणे ॥ १५१ ॥ आकाशंविदिशःपृथ्वींदिशश्चसशरोत्करैः ॥ सहस्राक्षोऽरिपक्षांश्चछादयामासनारद ॥ १५२ ॥ गजोविद्धोहयो
भिन्नःपृथिव्यांपतितोरथी ॥ महामात्रोधरांप्राप्तोजंभश्चापिशरातुरः ॥ १५३ ॥ पदातिःपतितोभूमौशक्रमार्गणताडितः ॥ हतप्रधानंभूयिष्ठंबलंतच्चाभव
द्रणे ॥ १५४ ॥ तंशक्रबाणाभिहतंदुरासदंसैन्यंसमालक्ष्यतदाकुजंभः ॥ जंभासुरश्चापिसुरेशमव्ययंप्रजग्मतुर्गृह्यगदेसुघोरे ॥ १५५ ॥ तावापतंतौ
भगवान्निरीक्ष्यसुदर्शनेनारिविनाशनेन ॥ विष्णुःकुजंभंनिजघानवेगात्सस्यंदनाद्गांन्यपतद्गतासुः ॥ १५६ ॥ तस्मिन्हतेभ्रातरिमाधवेनजंभस्ततःक्रो
धवशंजगाम ॥ क्रोधान्वितःशक्रमुपाद्रवद्रणेसिंहंयथैणोहिविपन्नबुद्धिः ॥ १५७ ॥ तमापतंतंप्रसमीक्ष्यशक्रस्त्यक्त्वैवचापंसशरंमहात्मा ॥ जग्राहश
क्तियमदंडकल्पांपश्चात्ततोजंभवधेससर्ज ॥ १५८ ॥

सभी प्रायः हत होंगये ॥ १५४ ॥ दुरासद दैत्योंकी सेना इन्द्रके बाणोंसे पीडित हुईहै यह देखकर जम्भ और कुजंभ यह दोनों अत्यन्त भयंकर गदाको लेकर उन अविनाशी देवराज (इन्द्र) के ऊपर दौड़े ॥ १५५ ॥ भगवान् जनार्दनने उन दोनोंको आतेहुए देखकर शत्रुविनाशन सुदर्शनसे उनके ऊपर आघात किया, कुजंभ निष्प्राण होकर शीघ्रही रथसे पृथ्वीपर पतित हुआ ॥ १५६ ॥ जनार्दनके द्वारा भ्राताके निहतहोनेपर जम्भ अत्यन्त क्रोधित हुए क्रोधके वशीभूतहोनेके कारण हतबुद्धि हो मृग जैसे सिंहके प्रति दौड़ता है उसीप्रकारसे इन्द्रके ऊपर चढ़के गया ॥ १५७ ॥ महात्मा इन्द्रने उसको आयाहुआ देखकर बाण और धनुषको त्यागकर

---

१ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ।

यमदंडकी समान शक्तिको ले जम्भके वध करनेके निमित्त छोडी ॥ १५८ ॥ वह घंटेके स्वरसे युक्त शक्ति आरही है, यह देखकर उसने उसके ऊपरको प्रहार किया, परन्तु यह शक्ति गदाको भस्म करतीहुई जम्भके हृदयको विदीर्ण करडाला ॥ १५९ ॥ शक्तिके आघातसे हृदय विदीर्ण होगया, सुरारि जंभ एक प्राणही निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिरपडा । जम्भने संज्ञाहीन हो पृथ्वीका आश्रय किया, यह देखकर दैत्यगण भयभीत होकर युद्धसे विमुख हुए ॥ १६० ॥ जम्भ मृतक हुए और दैत्योंकीसेना युद्धभूमिसे भागगई, यह देख सम्पूर्ण गण राजा इन्द्रकी पूजाकर उनके बलवीर्यकी प्रशंसा करनेलगे तब देवराज महादेवजीके समीप जाकर खडेहुए ॥ १६१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां जम्भकुजम्भवधो नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, दैत्योंकी सेनाके रणभूमिसे भागजानेपर सुरराज इन्द्र असुरेन्द्र अंधकसे बोले कि, सम्पूर्ण महाअसुर चलेगयेहैं, आओ आज दोनोंजने हरके पर्वत मंदरका आश्रय कर युद्ध करैं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! (नारद !) अंधकने उत्तर दिया कि, तुमने सर्वथा समीचीन (ठीक) वचन कहेहैं, मैं स्वयं कुलधर्मकी रक्षा करताहूँ इसकारण संग्रामसे कभी नहीं विमुख हूँगा ॥ २ ॥ हे द्विजशार्दूल ! तुम हमारे दुर्द्धर्षवीर्यको देखो, मैं इन्द्र और महेश्वरके सहित सकल देवता दानव और गंधर्वोंको जीतसकताहूँ ॥ ३ ॥ हिरण्याक्षका पुत्र अंधक इस प्रकारके वचन कह अत्यन्त क्रोधित हो सारथीको भलीभाँतिसे आशा भरोसा दे मधुर वचन बोला ॥ ४ ॥ कि, हे महाबलवान् सारथि ! तुम महादेवजीके पासको मेरा रथ लेचलो मैं बाणोंकी वर्षासे प्रमथ और वाहनोंका विनाश करूँगा ॥ ५ ॥ अंधकके यह वचन सुनकर सारथिने कृष्णवर्ण महाकाय घोडोंको अतिशीघ्र महादेवजीकी ओरको चलाया ॥ ६ ॥

शक्तिंचघंटांस्वरसस्वनां वैदृष्ट्वापतंतींगदयाजघान ॥ गदांचकृत्वासहसैवभस्मसाद्बिभेदजंभंहृदयेचतूर्णम् ॥ १६९ ॥ शक्त्यासभिन्नोहृदयेसुरारिःपंपात
भूम्यांविगतासुरेव ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञं दैत्यास्तुभीताविमुखाबभूवुः ॥ १६० ॥ जंभेहतेदैत्यबलेचभग्नेगणास्तुहृष्टाहरिमर्चयन्तः ॥ वीर्यं
प्रशंसंतिशतक्रतोश्चसगोत्रभिच्छर्वमुपेत्यतस्थौ ॥ १६१ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेजंभकुजंभवधोनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥
पुलस्त्यउवाच ॥ ॥ तस्मिंस्तदादैत्यबलेचभग्नेशक्रोब्रवीदंधकमासुरेंद्रम् ॥ एह्येहिवीराद्यगतामहासुरायोत्स्यामभूयोहरमेत्यशैलम् ॥ १ ॥ तमुवाचां
धकोब्रह्मन्सम्यक्चभवतोदितम् ॥ रणान्नैवापयास्यामिकुलंव्यपदिशन्स्वयम् ॥ २ ॥ पश्यत्वंद्विजशार्दूलममवीर्यंसुदुर्धरम् ॥ देवदानवगंधर्वाञ्जेष्येसे
न्द्रमहेश्वरान् ॥ ३ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंहिरण्याक्षसुतोंधकः ॥ समाश्वास्याब्रवीत्क्रुद्धःसारथिंमधुराक्षरम् ॥ ४ ॥ सारथेवाहयरथंहराभ्याशंमहाबल ॥
यावन्निहन्मिबाणौघैःप्रमथानथवाहिनीम् ॥ ५ ॥ इत्यंधकवचःश्रुत्वासारथिस्तुरगांस्तदा ॥ कृष्णवर्णान्महाकायान्प्रेषयामासतंमुने ॥ ६ ॥

वे घोडे यत्नसे शिवके प्रति चलानेपरभी बीच २ में घुटनेसे रुक २ कर अत्यन्त कष्टसे रथको चलाने लगे ॥ ७ ॥ घोडे दैत्यको वहन करते हुए वायुके समान शीघ्रवेगवाले होनेपरभी कुछ अधिक वर्ष[1] समयमें उस सेनामें पहुँचे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त दैत्यपति अंधक बालचंद्रके समान (अर्द्धचंद्राकार) दृढ़ धनुषको खैंचकर बाणके द्वारा इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु और महेश्वरपर आघात करने लगे ॥ ९ ॥ त्रिलोकीके रक्षाकर्ता चक्रपाणि जनार्दन बाणोंसे सेनाको आच्छादित देखकर देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ कि, हेदेवताओ ! तुम किसकारणसे बैठेहो, इसप्रकारसे निहत होना किसी प्रकारसेभी शुभदायक नहीं देखाजाता, इसकारण

तेयत्नतोपितुरगाःप्रेर्यमाणाहरंप्रति ॥ जघनेष्ववसीदंतःकृच्छ्रेणोहुश्वतंरथम् ॥ ७ ॥ वहंतस्तुरगादैत्यंप्राप्ताःप्रमथवाहिनीम् ॥ संवत्सरेणसाग्रेणवायुवे
गसमाअपि ॥ ८ ॥ ततःकार्मुकमानम्यबालेंदुसदृशंदृढम् ॥ नाराचैःसूदयामाससेंद्रोपेंद्रमहेश्वरान् ॥ ९ ॥ बाणैश्छादितमीक्ष्यैवबलंत्रैलोक्यरक्षिता ॥
सुरान्प्रोवाचभगवांश्चक्रपाणिर्जनार्दनः ॥१०॥ विष्णुरुवाच ॥ किंतिष्ठध्वंसुरश्रेष्ठाहतेनानेनशोभनम् ॥ तस्माद्यत्ताभवंत्वद्यत्वरिताविजयेप्सवः ॥ ११ ॥
शास्यंतामस्यतुरगाससमंरथकुटुंबिना ॥ भज्यतांस्यंदनश्चायंविरथःक्रियतांरिपुः ॥ १२ ॥ विरथंतुकृतंपश्चाद्देनंधक्ष्यतिशंकरः ॥ नोपेक्ष्यःशत्रुरुद्रिक्तोदे
वाचार्येणधीमता ॥ १३ ॥ इत्येवमुक्ताःप्रमथावासुदेवेनसामराः ॥ चक्रुर्वेगंसहेन्द्रेणसमंचक्रधरेणच ॥ १४ ॥ तुरगाणांसहस्रंतुमेघाभानांजनार्दनः ॥
निमिषांतरमात्रेणगदयासव्यपोथयत् ॥ १५ ॥

विजयकी इच्छाके वशहो शीघ्रताके साथ शत्रुके जीतनेका यत्न करो ॥ ११ ॥ अंधकके सारथीके सहित अश्वोंको नाशकर रथको भग्न करदो, और इस प्रबल शत्रु अंधकको रथहीन करो ॥ १२ ॥ इसके रथहीन होतेही फिर महादेवजी इसको दग्ध करेंगे, बुद्धिमान् देवाचार्यने कहाथा कि, उद्रिक्त[2] (बहतेहुए) शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥ अमरगणोंके सहित प्रमथगण वासुदेवके द्वारा इसप्रकार कहेजाकर वह महेन्द्र और चक्रधरविष्णुको साथ लियेहुए शत्रुओंका संहार करनेलगे ॥ १४ ॥ तब भगवान् जनार्दनने पलकमात्रसेही गदाके आघातसे मेघके समान वर्णवाले हजार घोडोंका विनाश किया ॥ १५ ॥

---

[1] दीर्घक्षत्र यज्ञको "वार्षसहस्रिक्" करके वेदमें लिखाहै. उसका अर्थ यह हुआ कि, वह यज्ञसहस्रवर्षमें कियाजाता है, वहाँपर वर्षशब्दका अर्थ दिनही निश्चित किया गयाहै, इसीप्रकार यहाँपर भी कुछ अधिक एकदिनही अभिमेतहै,पर्वतप्रदेशमें विशेषकर दैववश हतबल उन रुक २ चलते हुएका उतने समय वहांतक पहुँचने लगजाना सम्भावितभी होता है ।

[2] उत्तिष्ठमानस्तुपरोनोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता । समौहि शिष्टैराम्नातौ वत्स्यंन्तावामयः सच ॥

स्कन्द (कार्त्तिकेय) ने शक्तिके प्रहारसे अंधकके सारथीका हृदय विदीर्णकर अंधकके विशाल रथपरसे गिरादिया, वह निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिरपडा ॥ १६ ॥ हे तपो
धन ! विनायक इत्यादि प्रमथगणोंने वासुदेव और देवताओंके साथ मिलकर ध्वज और अक्ष (धुरे) के सहित रथको चूर्णकर फेंकदिया ॥ १७ ॥ अंधक महाते
जस्वी महाबलवान् उससमय रथहीन और धनुषरहित हो गदाको ले देवताओंके सन्मुख हुआ ॥ १८ ॥ तब वह दैत्येन्द्र अंधक आठ पांव आगे बढकर मेघगंभीर
स्वरसे महादेवजीसे हेतुयुक्त वचन बोला ॥ १९ ॥ हे विष्णो ! तुम सेनाके साथ स्थितहो, मैं इससमय सब प्रकारसे सहायहीन हूँ, परन्तु तोभी तुमको पराजय करूँगा
आजमेरा पराक्रम देखो ॥ २० ॥ महादेवजीने उसके यह वचन सुन इन्द्र और ब्रह्माजीके सहित सकलदेवता और गणको अन्तर्हित किया ॥ २१ ॥ वह प्रमथ और अमरादिको

समहास्यंदनात्स्कंदःप्रगृह्यरथसारथिम् ॥ शक्त्याबिभेदहृदयेगतासुर्व्यसृजद्भुवि ॥१६॥ विनायकाद्याःप्रमथाःसमंशक्रेणदैवतैः ॥ सध्वजाक्षंरथंतूर्णमभं
जंततपोधनाः ॥१७॥ सहसासमहातेजाविरथस्त्यक्तकार्मुकः ॥ गदामादायबलवानभिदुद्रावदेवताः ॥ १८ ॥ ततःसोऽष्टौक्रमान्गत्वामेघगंभीरयागिरा ॥
उवाचवाक्यंदैत्येंद्रो महादेवंसहेतुमत् ॥ १९ ॥ भिक्षोभवान्सहानीकस्त्वसहायोस्मिसांप्रतम् ॥ तथापित्वांविजेष्यामिपश्यमेद्यपराक्रमम् ॥ २० ॥
तद्वाक्यंशंकरःश्रुत्वा सेंद्रान्सुरगणान्गणान् ॥ ब्रह्मणासहितान्सर्वान्स्वशरीरेन्यवेशयत् ॥ २१ ॥ शरीरस्थांस्तान्प्रमथान्कृत्वादेवांश्चशंकरः ॥ प्राहएह्ये
हिदुष्टात्मन्नहमेकोऽपिसंस्थितः ॥ २२ ॥ तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्यंसर्वामरगणक्षयम् ॥ दैत्यःशंकरमभ्यागाद्गदामादायवेगवान् ॥२३ ॥ तमापतंतंभगवान्दृष्ट्वा
त्यक्त्वावृषोत्तमम् ॥ शूलपाणिर्गिरिप्रस्थेपदातिःप्रत्यतिष्ठत ॥ २४ ॥ वेगेनैवापतंतंचबिभेदोरसिभैरवः ॥ दारुणंसुमहद्युद्धंकृत्वात्रैलोक्यभीषणः ॥२५॥
दंष्ट्राकरालंरविकोटिसन्निभंमृगारिचर्माभिवृतंजटाधरम् ॥ भुजंगहारंमलपंकधारिणंशार्दूलबाहुंशिखिलोचनंहरम् ॥ २६ ॥ एतादृशेनरूपेणभगवान्भूत
भावनः ॥ बिभेदशत्रूञ्छूलेनशुभदःशाश्वतःशिवः ॥२७॥

शरीरमें स्थितकर वारम्वार अंधकसे कहनेलगे कि, हे दुरात्मन् ! आओ मैं इकलाही खड़ाहूँ ॥ २२ ॥ दैत्य इस अत्यन्त आश्चर्यकारी सकल अमरारिगणका
एकवारही क्षय होताहुआ देखकर गदाको ग्रहणकर शीघ्रतासे शिवजीके सन्मुख हुआ ॥ २३ ॥ भगवान् भव उसे पैदल आताहुआ देखकर वृषभसे उतरकर
शूलको हाथमें ले पर्वतके शिखरपर खड़ेहुए ॥ २४ ॥ त्रिलोकीको भय देनेवाला भैरवजी महाराजने दारुण युद्ध कर शीघ्रतासे आतेहुए अंधकके वक्षस्थलको विदीर्ण
करडाला ॥ २५ ॥ उस समय दंष्ट्राकराल (डाढ़को निकालकर मुखको फैलानेके समय भयंकर) करोड़सूर्य की प्रभासे युक्त व्याघ्रके चर्मको ओढ़े हुए जटाजूटमंडित
सर्पोंके हारसे भूषित, मलपंकयुक्त व्याघ्रकी समान बाहुयुक्त और अग्निके समान नेत्रयुक्त ॥ २६ ॥ वह भगवान् भूतभावन शुभदायक सनातन पुरुष शिव इसप्रकारके

रूपको धारणकर शूलके प्रहारसे शत्रुओंको छिन्न भिन्न करनेलगे ॥ २७ ॥ हेमहामुने ! वक्षःस्थल भैरवजीके शूलके द्वारा विदारित होनेपरभी साहसकर शूल सहित भैरवको उठा अतिशीघ्रतासे एककोशतक विहार करनेलगा ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् शिवजीने किसीतरहसे अपनेको स्तम्भितकर शूलका प्रहारकर शीघ्रही उस गदापाणि शत्रुको पटकदिया ॥ २९ ॥ तब दैत्यपति अंधक महादेवजीके मस्तकमें गदाप्रहारकर दोनों हाथोंसे उनके शूलको पकड़कर उड़ा ॥ ३० ॥ सत्वगुणके आधार, महायोगी प्रजापति महादेवजी उस आघातसे किंचित्भी विचलित न हुए, वह पहलेहीकी समान स्थित रहे, उनके मस्तकमें गदाके प्रहारसे घाव होगया, इसकारण उससे रुधिरकी धारायें पृथ्वीपर निकलने लगीं ॥ ३१ ॥ इसमें पूर्वदिशाकी ओर स्थित धारासे अग्निके समान पद्ममालासे विभूषित विद्येराजनामसे

सशूलंभैरवंगृह्यभिन्नेप्युरसिदानवः ॥ विजहारातिवेगेनक्रोशमात्रंमहामुने ॥ २८ ॥ ततःकथंचिद्भगवान्संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ तूर्णमुत्पाटयामासशूले नसगदंरिपुम् ॥ २९ ॥ दैत्याधिपस्तुसगदांहरमूर्ध्निन्यपातयत् ॥ कराभ्यांगृह्यशूलंचसमुत्पत्याथदानवः ॥ ३० ॥ संस्थितश्चमहायोगीसत्त्वाधारः प्रजापतिः ॥ गदापातक्षताद्भूरिमूर्ध्नोऽस्यासृगथापतत् ॥ ३१ ॥ पूर्वधारासमुद्भूतोभैरवोग्निसमप्रभः ॥ विद्याराजेतिविख्यातःपद्ममालाविभूषितः ॥ ३२ ॥ अन्यस्माद्रुधिराज्जातोभैरवःशूलभूषितः ॥ रुद्रनाम्नातुविख्यातःसर्वलोकैस्तुपूजितः ॥ ३३ ॥ अन्यरक्तात्समुद्भूतंभैरवाणांचतुष्टयम् ॥ चंडाद्येककपाल्यं तंख्यातंभुवियथाबुधैः ॥ ३४ ॥ भूमिस्थाद्रुधिराज्जातोभैरवःशूलभूषितः ॥ ख्यातोललितराजेतिशोभांजनसमप्रभः ॥ ३५ ॥ एवंहिसप्तरूपोऽसौकथ्यते भैरवोमुने ॥ विघ्नराजोऽष्टमःप्रोक्तोभैरवाष्टकमुच्यते ॥ ३६ ॥ एवंमहात्मनादैत्यःशूलप्रोतोमहासुरः ॥ छत्रवद्धारितोब्रह्मन्निंद्रायुधसमप्रभः ॥ ३७ ॥ तदस्रमुल्बणंब्रह्मञ्छूलभेदादवापतत् ॥ येनाकंठंमहादेवोमग्नोसौसप्तमूर्तिमान् ॥ ३८ ॥

विख्यात भैरव उत्पन्न हुए ॥ ३२ ॥ दूसरी धारासे रुद्रनामसे विख्यात सब लोकोंसे पूजनीय शूलपाणी भैरवने जन्म लिया ॥ ३३ ॥ फिर अन्यान्य रुधिरकी धाराओंसे चार भैरव प्रगट हुए, उनका नाम विद्वानोंकी समाजमें चंड और एकपाली नामसे विख्यात हुआ ॥ ३४ ॥ पृथ्वीपर स्थित रुधिरसे शोभांजन (साहिंजना) की प्रभायुक्त शूलभूषित भैरव प्रगटहुए उनका राज ललितराज था ॥ ३५ ॥ हे मुने ! इसप्रकारसे सातप्रकारके भैरव कहेगये हैं, आठवें भैरवका नाम विघ्नराज है सबको मिलाकर भैरवाष्टक कहागयाहै ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकारसे महात्मा महादेवजीने महाअसुर अंधकको शूलसे विद्धकर छत्रीकी समान धारण कर लिया, उस समय इन्द्रायुधकी समान उस शूलविद्ध अंधककी शोभा हुई ॥ ३७ ॥ उस समय शूलके भेदसे जो रुधिर निकला था

उससे पूर्वोक्त सप्तभैरवमूर्ति महादेवजीका कंठतक नग्न होगया ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त परिश्रमसे शिवजीके मस्तकमेंसे बहुत पसीना निकलने लगा, उस ललाटपट्टसे अंधकके रुधिरसे परिप्लुता एक कन्याने जन्म लिया ॥ ३९ ॥ हे विप्र ! उसके विनाश करनेमें तथा शूल विद्ध करके छत्रकी समान धारण करनेसे जो श्रम हुआ उससे बहतेहुए पसीनेके जो कुछ बिन्दु पृथ्वीपर गिरे थे उससे अंगारेके ढेरकी समान एक बालकने जन्म लिया ॥ ४० ॥ यह बालक प्यासा होकर अंधकके रुधिरको पान करनेलगा, उस समय उस घावसे प्रगट हुई वह कन्याभी शीघ्रतासे उसके रुधिरको चाटने लगी ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त सबके वरदाता देवाधिदेव शंकर उस बालसूर्यके समान प्रभावशालिनी कन्यासे कल्याण करनेके अर्थ यह उदार वचन बोले ॥ ४२ ॥ कि, हे शुभंकरि ! महर्षि देवता, पितृ, यक्ष, विद्याधर, गंधर्व और मनुष्य यह सभी तुम्हारी पूजा करैंगे ॥ ४३ ॥ वह सभी बलि (नैवेद्य) और बहुतसे पुष्पादिकको प्रदान कर तुम्हैं संतोषित करैंगे; जिसकारणसे तुम रुधिरसे चर्चित हुईहो इसीकारणसे तुम्हारा नाम चर्चिका होगा ॥ ४४ ॥ वरदाता महादेवजीके इसप्रकार कहनेपर सुन्दरी चर्चिका विंध्याचलवासिनी दुर्गाके निकट अनुगमन करने लगी कुछ दिनके उपरान्त पुनर्वार उठकर पृथ्वीके चारोंओर विचरण करते हिंगुलके पर्वतपर गई ॥ ४५ ॥ चर्चिकाके जानेपर वरदाता महादेवजी कुज (पृथ्वीसे उत्पन्न उस बालक को) सबसे उत्तम वर देकर बोले कि, तुम ग्रहोंके अधिपति होकर संसारका शुभाशुभ विधान करो, अन्यग्रहोंसे कभी तुम्हैं विपत्ति उपस्थित नहीं होगी ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त भैरवरूपधारी भगवान् देवाधिदेव महादेवजीने दिव्य हजारवर्षतक अपने नेत्र रूपी अग्नि और सूर्यके द्वारा अंधकके रुधिरसहित (मज्जा) चर्बीको शुष्ककर उसके शरीरमें त्वचा और केवल अस्थिमात्र शेष रक्खीं ॥ ४७ ॥

ततःस्वेदोभवद्भूरिनिःश्रमाच्छंकरस्यतु ॥ ललाटफलकात्तस्माज्जाताकन्यासृगाप्लुता ॥ ३९ ॥ यद्भूम्यांन्यपतद्विप्रस्वेदबिंदुर्विनाशनात् ॥ तस्मादंगारपुं
जाभोबालकःसमजायत ॥ ४० ॥ सचापितृषितोत्यर्थंपपौरुधिरमांधकम् ॥ कन्याचोत्क्षतसंजाताह्यसृक्चावलिहद्द्रुतम् ॥ ४१ ॥ ततस्तामाहदेवेशो
बालार्कसदृशप्रभः ॥ शंकरोवरदोलोकेश्रेयोर्थंहिवचोमहत् ॥ ४२ ॥ त्वांपूजयिष्यंतिसुरामहर्षिपितरस्तथा ॥ यक्षविद्याधराश्चैवमानवाश्चशुभंकरि ॥४३॥
त्वांस्तोष्यंतिनसंदेहोबलिपुष्योत्करोत्करैः ॥ चर्च्चिकेतिशुभंनामयस्माद्रुधिरचर्चिता ॥ ४४ ॥ इत्येवमुक्त्वावरदेनचर्चिकाभूयोऽनुयातागिरिर्विंध्यवा
सिनीम् ॥ महींसमंताद्विचचारसुंदरीस्थानंगताहिंगुलकाद्रिमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ तस्यांगतायांवरदःकुजस्यप्रादाद्वरंसर्ववरोत्तमंयत् ॥ ग्रहाधिपत्यंजगतः
शुभाशुभंभविष्यतेतेव्यसनंग्रहांतरैः॥४६॥हरोंधकंवर्षसहस्रमात्रंदिव्यंस्वनेत्रार्कहुताशनेन॥चकारतंशुष्कबलंत्वशोणितंत्वगस्थिशेषंभगवान्सभैरवः॥४७॥

शिवजीसे प्रगटहुई अग्निके स्पर्शसे असुरेन्द्र अंधकके सम्पूर्ण पाप नष्ट होगये तब वह प्रजाओंके इश्वर बहुरूपधारी चराचर जगत्‌के नाथ ॥४८॥ सर्वेश्वर (सबलोकों के नियामक) भुवनेश्वर अविनाशी त्रिलोकीके पति सबके वरदाता वरेण्य देवता इत्यादि सबके नमस्कारणीय और स्तुति करनेयोग्य और सबके आदि महादेवजीको जानकर इन वचनोंसे स्तुति करने लगा ॥ ४९ ॥ कि, तुम भैरव और भीममूर्ति हो, तुम त्रिलोकीके रक्षक और तुम शुक्लवर्णहो, तुम त्रिशूलको धारण करतेहो तुमको नमस्कारहै, तुम कपालपाणिहो तुम वासुकिरूप हारसे सुशोभितहो, तुम त्रिणेत्रहो तुमको नमस्कार है, मेरी बुद्धि नष्ट होगईथी मेरी रक्षा करो ॥ ५० ॥ तुम सबके ईश्वरहो, तुम विश्वमूर्तिहो, देवता सभी तुम्हारे पादपीठकी वंदना करतेहैं तुम्हारी जयहो, तुम त्रिलोकीकी माता और पितरहो तुम वृषांकहो,

तत्राग्निनाशंभुसमुद्भवेनसमुक्तपापोऽसुरराड्बभूव ॥ ततःप्रजानांबहुरूपमीशंनाथंहिसर्वस्यचराचरस्य ॥ ४८ ॥ ज्ञात्वाथसर्वेश्वरमीशमव्ययंत्रैलोक्यनाथं वरदंवरेण्यम् ॥ सर्वैःसुराद्यैर्नतमीड्यमाद्यंततोंधकःस्तोत्रमिदंचकार ॥ ४९ ॥ अंधकउवाच ॥ नमोस्तुतेभैरवभीममूर्तेत्रैलोक्यगोप्त्रेसितशूलपाणे ॥ कपालपाणेभुजगेशहारात्रिणेत्रमांपाहिविपन्नबुद्धिम् ॥ ५० ॥ जयस्वसर्वेश्वरविश्वमूर्तेसुरासुरैर्वंदितपादपीठ ॥ त्रैलोक्यमातर्गुरवेवृषांकभीतःशरण्यंशरणागतोस्मि ॥ ५१ ॥ त्वांनाथदेवाःशिवमीरयंतिसिद्धाहरंस्थाणुमहर्षयश्च ॥ भीमंचयक्षामनुजामहेश्वरंभूतानिभूताधिपमुच्चरंति ॥ ५२ ॥ निशाचरास्तूग्रमुपाचरंतिभवेतिपुण्याःपितरोनमस्ते ॥ दासोस्मितुभ्यंहरपाहिमह्यंपापक्षयंमेकुरुलोकनाथ ॥ ५३ ॥ भवांस्त्रिदेवस्त्रियुगस्त्रिधर्मात्रिपुष्करश्चासिविभोत्रिणेत्र ॥ त्रय्यारुणिस्त्वंश्रुतिरव्ययात्मापुनीहिमांत्वांशरणंगतोस्मि ॥ ५४ ॥

तुम सबके शरणदाताहो इसीकारणसे मैं भयभीत होकर तुम्हारी शरणमें आया ॥ ५१ ॥ हे नाथ ! देवता तुमको शिवनामसे पुकारतेहैं, महर्षियोंने तुम्हें स्थाणु कहा है, यक्षोंने तुम्हें भीमनामसे पुकारा है मनुष्य महेश्वरनामसे और भूतगण भूताधिपति नामसे कीर्तन करतेहैं ॥ ५२ ॥ और निशाचर तुम्हारी उग्रनामसे सेवा करते हैं अत्यन्त पवित्र पितृगण तुम्हें भवशब्दसे विख्यात करतेहैं तुमको नमस्कार है. हेहर ! मैं तुम्हारा दासहूं, मेरी रक्षाकरो, हे लोकनाथ ! मेरे पापोंका नाश करो ॥ ५३ ॥ हे विभो ! तुम त्रिदेव[1] और त्रियुग[2] हो तुम त्रिधर्मा[3] और त्रिपुष्कर[4]हो, तुम त्रिणेत्र[5] हो तुम त्रय्यारुणि और श्रुति (वेद) स्वरूप हो, तुम अव्ययात्मा (अविनाशी)

---

[1] ब्रह्मा-विष्णु-शिवस्वरूपहो । [2] सत्ययुग-द्वापर और त्रेतायुग-त्र्यात्मकहो । [3] ध्यान-धारणा-और समाधि (अथवा) त्रिवर्ग (धर्म-काम और अर्थ) स्वरूप हो ।

[4] नाभिस्थ-हृदयस्थ और ब्रह्मरन्ध्रस्थ-तीन पुष्कर (कमल) विष्णु-ब्रह्मा, और शिवात्मक आपका निवासस्थान है । [5] चंद्र, सूर्य और अग्नि यह तीन आपके नेत्रस्थानीय हैं ।

हो मैं तुम्हारी शरण हुआ मेरी रक्षा करो ॥ ५४ ॥ हे शम्भो ! तुम तृणा[1]चिकेत और त्रि[2]पदप्रतिष्ठ हो, तुम षडंगवित् और स्त्रीविषय[3]में लोभरहितहो तुम त्रिलोकीके नाथ हो मुझे पवित्र करो मैं तुम्हारा दासहूं सब प्रकारसे भयभीत हो तुम्हारी शरण हुआ हूँ मेरी रक्षा करो॥५५॥ हे महाशंकर ! हे महाभूपते ! हे गिरीश ! कामरूपी शत्रुने मेरे मनको जीत अपने वशमें करलिया मैं तुम्हारे निकट अपराधी हुआहूँ इसकारणसे मस्तक नवाकर मैं प्रणामकर तुम्हें प्रसन्न करताहूँ ॥ ५६ ॥ मैं पाप स्वरूप हूं, पापकर्म करनेवाला पापात्मा और पापसंभव हूँ तुम सब पापोंको विनाश करते हो इसकारण हे देवदेवेश ! मेरा उद्धार करो॥५७॥ हे नाथ ! मेरा कुछ अपराध नहीं, जो कुछ मैं ने किया वो परवशहो किया, अब आप प्रसन्न हूजिये, हे ईश्वर ! आपने इसप्रकारके पापचारी मुझेकोभी अपने हाथसे स्पर्श किया है, अतः

त्रिणाचिकेतास्त्रिपदप्रातिष्ठःषडंगवित्स्त्रीविषयेष्वलुब्धः ॥ त्रैलोक्यनाथोसिपुनीहिशंभोदासोस्मिभीतःशरणागतस्ते ॥ ५५ ॥ कृतोमहाशंकरतेऽपराधो मयामहाभूतपतेगिरीश ॥ कामारिणानिर्जितमानसेनप्रसादयेत्वांशिरसानतोस्मि ॥ ५६ ॥ पापोहंपापकर्माहंपापात्मापापसंभवः ॥ त्राहिमां देवदेवेशसर्वपापहरोभव॥ ५७॥ममनैवापराधोस्तित्वयाचैताहशोऽप्यहम् ॥ स्पृष्टःपापसमाचारोमांप्रसन्नोभवेश्वर ॥ ५८ ॥ त्वंकर्त्ताचैवधाताचजयत्वंचमहाजय ॥ त्वंमंगलयस्त्वमोंकारस्त्वमीशानोव्ययोध्रुवः ॥ ५९ ॥ त्वंब्रह्मासृष्टिकृन्नाथस्त्वंविष्णुस्त्वंमहेश्वरः ॥ त्वमिंद्रस्त्वंवषट्कारोधर्मस्त्वंतुषितोत्तमः ॥ ६० ॥ सूक्ष्मस्त्वंव्यक्तरूपस्त्वंत्वमव्यक्तश्चधीवरः ॥ त्वयासर्वमिदंव्याप्तंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ६१ ॥ त्वमादिरंतोमध्यंचत्वमेवचसहस्रपात् ॥ विजयस्त्वं सहस्राक्षोचित्तपाख्योमहाभुजः ॥ ६२ ॥ अनंतःसर्वगोव्यापीहंसःपुण्याधिकोच्युतः॥ गीर्वाणपतिरव्यग्रोरुद्रःपशुपतिःशिवः ॥ ६३ ॥

मैं सर्वथा धन्य हुआ ॥ ५८ ॥ तुम कर्ता और धाताहो तुम जय और महाजयहो, तुम मंगलहो, तुम ॐकारहो, तुम ईशान और अव्यय और शिवस्वरूपहो ॥५९॥ तुम सृष्टिके कर्ता ब्रह्माहो, तुम सबके रक्षाकर्ता विष्णुहो, तुम महेश्वरहो, तुम इन्द्रहो, तुम वषट्कारहो, तुम धर्म, तुम तुषितोसमहो ॥ ६० ॥ तुम सूक्ष्म स्वरूप हो, तुम व्यक्तस्वरूपहो, तुम अव्यक्तस्वरूपहो तुम धावरहो, तुम स्थावर जंगम सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हो ॥ ६१ ॥ तुम आदिहो, तुम अन्तहो, तुम मध्यहो, तुम सहस्रपादहो, तुम विजयहो, तुम सहस्राक्ष, तुम विरूपाक्ष तुम महाभुज हो ॥ ६२ ॥ तुम अनन्त, तुम सर्वज्ञ तुम सर्वव्यापी, तुम हंस, तुम पुण्याधिक,

---

[1] नाचिकेताके द्वारा प्रभासक्षेत्रमें मूर्तित्रयरूपसे स्थापित होकर विराजमान हो । [2] आपने त्रिलोकीमें वामनरूपको धारणकर अपने चरणकी प्रतिष्ठा की है ।

[3] शब्द–स्पर्श–रूप रस और गंध यह पांच विषय शब्दसे कहे गये हैं ।

तुम अच्युत, तुम गीर्वाणपति, तुम अव्यग्र, तुम रुद्र, तुम पशुपति, तुम शिवहो, ॥ ६३ ॥ तुम त्रिवेद्य[१], तुम जितक्रोध, तुम जितारांति[२], तुम जितेन्द्रिय, तुम जयस्वरूप तुम शूलपाणिहो, मैं तुम्हारी शरणागतहूँ मेरी रक्षा करो ॥ ६४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! दैत्यपतिके इसप्रकार स्तुतिकरनेपर पशुपति प्रसन्न हुए, इसके उपरान्त पिंगलाक्ष महेश्वर हिरण्याक्ष असुरसे बोले ॥ ६५ ॥ कि, हे दानवपति अंधक ! मैं प्रसन्न और संतुष्ट हुआहूँ, तुम्हारा मंगलहो, इस समय जो तुम्हारी अभिलाषा हो वही वर मांगो मैं दूंगा ॥ ६६ ॥ अंधक बोले कि, अम्बिका मेरी माता हैं आप मेरे पिताहैं, इसमें माता मेरी अधिक माननीयहैं, उनके चरणोंकी वंदना करताहूँ ॥ ६७ ॥ हे ईशान ! जो आप वर देतेहो तो मेरे शारीरिक और मानसिक पाप दूर होजाय ॥ ६८ ॥ हे महेश्वर ! मेरे दानवभावका छुटकारा होजाँय और

त्रैविद्यस्त्वंजितक्रोधोजितारातिर्जितेंद्रियः ॥ जयश्चशूलपाणिस्त्वंपाहिमांशरणागतम् ॥६४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्थंमहेश्वरोब्रह्मन्स्तुतोदैत्याधिपेनतु ॥
प्रीतियुक्तःपिंगलाक्षोहैरण्याक्षमुवाचह ॥ ६५ ॥ प्रीतोस्मिदानवपतेपरितुष्टोस्मिचांधक ॥ वरंवरयभद्रंतेयमिच्छसिददामितम् ॥ ६६ ॥ अंधकउवाच ॥
अंबिकाजननीमह्यंभवान्वैत्र्यंबकःपिता ॥ वंदामिचरणौमातुर्माननीयौममाधिकम् ॥ ६७ ॥ वरदोहियदीशानस्तद्यातुविपुलंमम ॥ शारीरंमानसंवापि
दुष्कृतंदुर्विचिंतितम् ॥ ६८ ॥ तथामेदानवोभावोव्यपयातुमहेश्वर ॥ स्थिरातुतवभक्तिश्चवरमेतंप्रयच्छमे ॥ ६९ ॥ महादेव उवाच ॥ एवंभवतुदैत्येंद्रपापं
तेयातुसंक्षयम् ॥ मुक्तोसिदैत्यभावाच्चभृंगीगणपतिर्भव ॥७०॥ इत्येवमुक्त्वावरदोमुदाग्रादवतार्यतम् ॥ निर्माजर्यित्वाहस्तेनकृत्वानिर्व्रणमंधकम् ॥७१॥
ततश्चदेवतादेहाद्ब्रह्मादीनांजुहावसः ॥ तेनिश्चेरुर्महात्मानोनमस्यंतस्त्रिलोचनम् ॥ ७२ ॥ गणान्सनंदीनाहूयसांनिवेश्यतथाग्रतः ॥ भृंगिणंदर्शयामासब्रुवन्ने
षोंधकेतिहि ॥ ७३ ॥ तंदृष्ट्वादानवपतिंसंशुष्कपिशितंरिपुम् ॥ गणाधिपत्यमापन्नंप्रशशंसुर्वृषध्वजम् ॥ ७४ ॥

जिससे मेरी आपके प्रति अचलभक्तिहो ऐसा वर दीजिये ॥ ६९ ॥ महादेवजी बोले कि, हेदैत्येन्द्र ! आपने जो कहा वही होगा, तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजायँगे, तुम दैत्यभावसे मुक्त होंगे, और तुम मेरे गणोंके अधिपति भृंगी होंगे॥ ७० ॥ यह कहकर वरद महादेवजीने हर्षितहो अंधकको शूलके अग्रभाग तथा हाथोंसे स्पर्शकर उसे घावोंसे रहित किया ॥ ७१ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्मादि देवताओंको देहके बीचमेंसे बुलाया, वह सब निकले और इनकी स्तुति करनेलगे ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त नन्दीके सहित सम्पूर्ण गणोंको बुलाकर और सन्मुख खडेहुए भृङ्गीको बुलाकर बोले कि, यह वह अंधक है ॥ ७३ ॥ दानवपतिका मांस सूख गयाथा,

---

[१] त्रयी (तीनवेद) ऋक्-यजु-साम इन विद्याके जाननेवाले । [२] जीताहै शत्रुको जिन्होंने ऐसे ।

और इसने गणाधिपतित्वको प्राप्त किया है, इन्हैं देखकर सब वृषभध्वजकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त भगवान् भवने देवताओंको गाढरूपसे आलिंगन किया और बोले कि, तुम अपने २ स्थानोंमें जाकर, कायिक, वाचिक, मानसिक, तीनों प्रकारके सुखोंको भोग करो ॥ ७५ ॥ सहस्राक्ष मलयपर्वतको जाँय, वहाँ अपने कार्यको सिद्धकर पीछे स्वर्गमें जाँय ॥ ७६ ॥ यह कहकर उन्होंने देवताओंसे संभाषण और पितामह ब्रह्माजीको नमस्कार कर जनार्दनको आलिंगन कर बिदा किया ॥ ७७ ॥ तब देवराज इन्द्र मलयपर्वतपर जाकर अपने कार्यको साधनकर स्वर्गको चलेगये इन्द्र इत्यादि देवताओंके चलेजाने पर भगवान् शंकरने सुखासीनहो ॥ ७८ ॥ निजदेह मध्यमार्गविनिर्गत सम्पूर्ण गणोंको वह बिदा दी, तब वह उनसे साक्षात् कर अपने अपने वाहनोंपर चढे ॥ ७९ ॥

ततस्तान्प्राहभगवान्संपरिष्वज्यदेवताः ॥ गच्छध्वंस्वानिधिष्ण्यानिभुंजीध्वंत्रिविधंसुखम् ॥ ७५ ॥ सहस्राक्षोपिसंयातुपर्वतंमलयंशुभम् ॥ तत्रस्वकार्यं कृत्वैवपश्चाद्यातुत्रिविष्टपम् ॥ ७६ ॥ इत्येवमुक्त्वात्रिदशान्समाभाष्यव्यसर्जयत् ॥ पितामहंनमस्कृत्यपरिष्वज्यजनार्दनम् ॥ ७७ ॥ हिंद्रोमलयं गत्वाकृत्वाकार्यंदिवंगतः ॥ गतेषुशक्रप्राग्र्येषुभगवान्सास्थितःशिवः ॥ ७८ ॥ विसर्जयामासगणान्तनुमध्यपथाद्धरः ॥ गणाश्चशंकरंदृष्ट्वास्वंस्वंवाहनमास्थिताः ॥ ७९ ॥ जग्मुस्तेशुभलोकांश्चस्वस्वस्थानेषुनारद ॥ यत्रकामदुघागावःसर्वकामफलद्रुमाः ॥८०॥ नद्यस्त्वमृतवाहिन्योह्रदाःपायसकर्दमाः ॥ स्वांस्वांगतिंप्रयातेषुप्रमथेषुमहेश्वरः ॥ ८१ ॥ समादायांधकंहस्तेनंदीशैलंसमागमत् ॥ द्वाभ्यांवर्षसहस्राभ्यांपुनरायाद्धरोगृहम् ॥ ८२ ॥ ददर्शेचगिरेः पुत्रींश्वेतार्ककुसुमस्थिताम् ॥ समायातंनिरीक्ष्यैवसर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ८३ ॥ त्यक्त्वार्ककुसुमंतूर्णंसखीस्ताःसमुपाह्वयत् ॥ समाहूताश्चदेव्याभाजयाद्यास्तूर्णमागमन् ॥ ८४ ॥ याभिःपरिवृतातस्थौहरदर्शनलालसा ॥ ततस्त्रिणेत्रोगिरिजांदृष्ट्वाह्यंधकदानवम् ॥ ८५

सम्पूर्ण शुभलोकोंमें अधिष्ठित हो अपने २ स्थानोंको गये, जिन लोकोंमें समस्त गौवें काम दोहन करती हैं वृक्ष सबप्रकारके फल उत्पन्न करते हैं ॥ ८० ॥ नदियें अमृत रूपी जलको बहातीहैं, ह्रद सब पायस (खीर) रूपी कर्दम (कीचड) से पूर्ण हैं, प्रमथभी सब प्रकारसे अपनी २ गतिको प्राप्त हुए तब महेश्वर ॥ ८१ ॥ नन्दी अंधकके हाथको पकडकर शैलमें गये दोहजार वर्षके पीछे फिर अपने श्रेष्ठ गृहमें आये ॥८२॥ आकर देखा कि, पर्वतनंदिनी सफेद आकके फूलोंके बीचमें वास कर रहीहै, सब लक्षणयुक्त महादेवजी आयेहैं यह देखकर ॥ ८३ ॥ उन्होंने शीघ्रही आकके फूलको त्यागकर अपनी उन सखियोंको बुलाया, देवीके द्वारा बुलाई जाकर जयादि वयस्या सखियें शीघ्रतासे वहाँ आईं ॥ ८४ ॥ देवी उनके साथ मिलकर हरके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खडी होगई, इसके उपरान्त महादेवजीने गिरिनंदिनीको

देखकर अंधक दानवको ॥ ८५ ॥ और नंदीको देखा, पश्चात गिरिजाको प्रीतिमें भर आलिंगन किया और देवीसे बोले कि, हेदेवि ! इस अंधकको मैंने तुम्हारा दास
कियाहै ॥ ८६ ॥ हे चारुहासिनि ! अब यह अंधक तुम्हारा पुत्र हुआ है, इसकी ओरको देखो, यह कहकर अंधकसे बोले कि, हे पुत्र ! शीघ्र आओ ॥ ८७ ॥
और माता पार्वतीको शरण जाओ वेही तुम्हारा कल्याण करेगी. ऐसे कहेहुए उन ॥८८॥ दोनोंने आकर देवीके चरणोंमें प्रणाम किया, हेमहामुने ! अंधक उस समय
भक्तियुक्त होकर गौरीकी ॥८९॥ परमपवित्र श्रुतिसम्मत सर्वपापविनाशकारी स्तुतिकरने लगा, ॐभवानीको नमस्कारहै, तुम भूतभव्य प्रियाहो, तुम लोकधात्री, तुम
जनयित्रीहो तुम स्कन्दजननी; महादेवगेहिनी, स्यन्दिनी और चेतनारूपिणीहो, तुम त्रैलोक्यप्रसविनी, धरित्री, देवता और माताहो, तुम श्रुति, स्मृति, तुम्हीं दया, तुम्हीं

नंदिनंचतथाहर्षादालिंगच्चगिरेःसुताम् ॥ अथोवाचैषदासस्तेकृतोदेविमयांधकः ॥ ८६ ॥ पश्यत्वंप्रतियातंहिस्वसुतंचारुहासिनि ॥ इत्युच्चार्याहांधकंवै
पुत्रएह्येहिसत्वरम् ॥ ८७ ॥ व्रजस्वशरणंमातुरेषाश्रेयस्करीतव ॥ इत्युक्तोविभुनानंदीअंधकश्चगणेश्वरः ॥८८॥ समागम्यांबिकापादौववंदतुरुभावपि ॥
अंधकोपितदागौरींभक्तिनम्रोमहामुने ॥ ८९ ॥ स्तुतिंचक्रेमहापुण्यांपापघ्नींश्रुतिसंमताम् ॥ अंधक उवाच ॥ ॐनमस्तेऽस्तुभवानीं भूतभव्यप्रियांलो
कधात्रीं जनयित्रीं स्कंदमातरं महादेवप्रियां स्यंदिनीं चेतनां त्रैलोक्यमातरं धरित्रीं देवतां मातरं श्रुतिंस्मृतिं दयां लज्जां कामसूं प्रीतिं सदापावनीं
दैत्यसैन्यक्षयकरीं महामायां सुमायां वैजयंतीं शुभां कालरात्रिं गोविंदजननीं शैलराजपुत्रीं सर्वदेवार्चितां सर्वभूतार्चितां विद्यां सरस्वतीं त्रिणयनमहिषीं
नमस्यामि मृडाणीं शरण्यां शरणमुपयातोहंनमोनमस्ते ॥ ॥ इत्थं स्तुतासांधकेनपरितुष्टाविभावरी ॥ प्राहपुत्रप्रसन्नास्मिवृणुष्ववरमुत्तमम् ॥ ९० ॥
भृंगिरुवाच ॥ पापंप्रशममायातुत्रिविधंममपार्वति ॥ तथेश्वरेचसततंभक्तिरस्तुममांबिके ॥ ९१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ बाढमित्यब्रवीद्गौरीहिरण्याक्षसुतं
ततः ॥ ममाग्रेपूजयन्शर्वंगणानामधिपोभव ॥ ९२ ॥

लज्जा तुम्हीं कामजननी और प्रीतिस्वरूपिणीहो, तुम सदा पावनी और दैत्यसेनाक्षयकारिणी तुम माया, तुम वैजयन्ती और शुभस्वरूपा, तुम कालरात्रि
गोविन्दकी प्रसवकरनेवाली और शैलराजकी पुत्रीहो, तुम सर्वदेवार्च्चिता और सर्वभूतपूजिता हो, तुम विद्या और सरस्वती हो, तुम त्रिनयनमहिषीहो
तुम्हैं मैं नमस्कार करताहूं, तुम्हीं मृड़ानी संबकी रक्षाकरनेवाली हो मैंने तुम्हारी शरण ली, तुमको वारम्वार नमस्कार करताहूं अंधककी इसप्रकार
स्तुति करनेपर भवानी संतुष्ट हो बोली कि, हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हुई हूं श्रेष्ठवरको ग्रहण करो ॥ ९० ॥ भृंगी बोले कि, हे पार्वती ! तीनों

प्रकारके पाप नष्ट होजाय भगवान् शिवजीके प्रति मेरी अचलभक्ति रहै पुलस्त्यजी बोले कि, गौरी हिरण्याक्षके पुत्र अंधकसे बोली कि, यही होगा, और फिर बोली कि, मेरे सन्मुख महादेवजीकी पूजा कर तुम सबगणोंके अधिपति हो ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तब महेश्वरने अविरूप दृष्टिसे देखकर अपनी शक्तिकी सहायतासे अंधकके शरीरमें भयंकर भैरवका स्वरूप भृंगिरूपसे परिणत किया ॥ ९३ ॥ हे महर्षे ! तुम्हारे निकट मैं ने यह हरकीर्तिवर्धन पवित्र आख्यान वर्णन किया, यह पुण्यका देनेवाला और कल्याणकारी है, आयु; आरोग्य, धनकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणोंकी समाजमें विधिपूर्वक कीर्तन करै ॥ ९४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भैरवप्रादुर्भावे भाषाटीकायां अंधकवरप्रदानंनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ नारदजी बोले कि,हे द्विजसत्तम ! महेन्द्रने मलयपर्वतपर अपना क्या कार्य कियाथा

वपुर्दधानस्यतथाचतस्यमहेश्वरेणाप्यविरूपदृष्ट्या ॥ कृत्वैवमुच्चैर्भयदंतुभैरवंभृंगित्वमीशेनकृतास्वशक्त्या ॥ ९३ ॥ एतत्तवोक्तंहरकीर्तिवर्धनंपुण्यंपवित्रं शुभदंमहर्षे ॥ संकीर्तनीयंद्विजसत्तमेषुधर्मायुरारोग्यधनैषिणासदा ॥९४॥ इतिश्रीवामनपुराणेभैरवप्रादुर्भावेअंधकवरप्रदानंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥ ॥ नारदउवाच ॥ ॥ मलयेपिमहेन्द्रेणयत्कृतंद्विजसत्तम ॥ निष्पादितंस्वकंकार्यंतन्मेत्वंख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांयन्महेंद्रेणमलयेपर्वतेमुने ॥ कृतंलोकहितेकार्यमात्मनश्चतथाहितम् ॥ २ ॥ अघासुरस्यवचनान्मयतारपुरोगमाः ॥ तेनिर्जिताःसुरगणैःपातालगमनोत्सुकाः ॥ ३ ॥ ददृशुर्मलयंविप्रसिद्धैःसेवितकंदरम् ॥ लताविमानसंछन्नंमत्तसत्त्वसमाकुलम् ॥ ४ ॥ चंदनैरुरगाक्रांतैःसुशीतैरतिसेवितम् ॥ माधवीकुसुमामोदसुगंधितमहागिरिम् ॥ ५ ॥ तंदृष्ट्वाशीतलच्छायंश्रांताव्यायामकर्शिताः ॥ मयतारपुरोगास्तेनिवासंसमरोचयन् ॥ ६ ॥ तेषुतत्रनिविष्टेषुघ्राणतृप्तिप्रदोनिलः ॥ विवातिशीतःशनकैर्दक्षिणोगंधसंयुतः ॥ ७ ॥ तत्रैवचरतिंचक्रुःसर्वएवमहासुराः ॥ कुर्वतोलोकपूज्यानांविद्वेषंसर्ववासससाम् ॥ ८ ॥

सो कृपाकर कहिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हेमुने ! इन्द्रने मलयपर्वतपर जाकर अपना और लोकोंका हितकारी जो कार्य कियाथा उसको कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ मय तार इत्यादि असुरोंने देवताओंके द्वारा विनिर्जित और अघासुरके वचनके अनुसार पातालमें जानेको उत्कंठित हो ॥ ३ ॥ मलयपर्वतको देखा, इस पर्वतकी कन्दराओंमें सिद्धगण निवास करतेहैं, उसके चारों ओर लता छाईहुई हैं, मतवाले सम्पूर्ण प्राणी उसके चारोंओर रहतेहैं, वह सर्पयुक्त सुशीतल चन्दनसे सर्वदाही सुगन्धितहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ परिश्रान्त मय तार इत्यादिक दैत्य शीतल छायायुक्त उस मलयाचल पर्वतको देखकर उसस्थानपर निवास करनेकी इच्छा करते हुए ॥ ६ ॥ उनके उस स्थानमें बैठनेपर सुगन्धि, सुशीतल, घ्राणतृप्तिदायक मलयपर्वतकी वायु धीरे २ बहने लगी ॥ ७ ॥ मय इत्यादि वह महाअसुर

लोकपूज्य मनुष्योंका द्वेष करते हुए उसीपर्वतपर निवास करनेको अनुरक्तहुए ॥८॥ महादेवजीने यह चरित्र देखकर इन्द्रको मलयांगिरिपर भेजा उन्हों ने जानेके समय मार्गमें गोमाताको देखा ॥ ९ ॥ उन्होंने गोमाताकी प्रदक्षिणा कर और परमसुन्दर मलयपर्वतको देखकर देखा कि, सम्पूर्ण दानव भोगवान् और इसीकारणसे अत्यन्त हर्षित होगयेहैं ॥ १० ॥ यह देखकर बलनिषूदन इन्द्रने उनको युद्धके निमित्त बुलाया, वहभी अव्यग्र हो बाणोंको छोड़तेहुए आये ॥ ११ ॥ मेघ जिसप्रकारसे पर्वतको जलकी धारासे ढक देताहै. उसीप्रकारसे अद्भुतदर्शन इन्द्रने रथमें बैठेहुए बाणोंकी वर्षासे पर्वतको ढकदिया ॥ १२ ॥ उन मय इत्यादि असुरोंको बाणोंसे आच्छादित कर कङ्कपत्र युक्त बाणोंकी सहायतासे पाकनामक दानवको आहत किया ॥ १३ ॥ इसप्रकार बाणोंके द्वारा दृढ़रूपसे पाकके शासन करनेसे

तान्ज्ञात्वाशंकरःशक्रंमलयंप्रैषयत्तदा ॥ सचापिदद्दशेगच्छन्पाथिगोमातरंहरिः ॥ ९ ॥ तस्याःप्रदक्षिणांकृत्वादृष्ट्वाशैलंचसुप्रभम् ॥ ददृशेदानवान्सर्वान्संदृष्टान्भोगसंयुतान् ॥ १० ॥ अथाजुहावबलहासर्वानेवमहासुरान् ॥ तेचाप्याययुरव्यग्राःकिरंतश्चशरोत्करान् ॥ ११ ॥ तानागतान्बाणजालैरथस्थोद्भुतदर्शनः ॥ छादयामासविप्रर्षेगिरिंदृष्ट्वायथाघनः ॥ १२ ॥ ततोबाणैरवच्छाद्यमयादीन्दानवान्हरिः ॥ पाकंजघानतीक्ष्णाग्रैर्मार्गणैःकंकवाससैः ॥ १३ ॥ तत्रनामविभुर्लेभेशासनाच्चशरैर्दृढम् ॥ पाकशासनइत्येवंसर्वामरपतिर्विभुः ॥ १४ ॥ तथान्यंपुरनामानंबाणासुरशतंशरैः ॥ सुपुंखैर्दारयामासततोभूत्सपुरंदरः ॥ १५ ॥ हत्वेत्थंसमरेजैषीद्गोत्रभिद्दानवंबलम् ॥ तच्चापिविजितंब्रह्मन्रसातलमुपागमत् ॥ १६ ॥ एतदर्थंसहस्राक्षःप्रेषितोमलयाचलम् ॥ त्र्यंबकेणमुनिश्रेष्ठकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७॥ नारदउवाच ॥ किमर्थंदैवतपतिर्गोत्रभित्कथ्यतेहरिः ॥ अयंमेसंशयोब्रह्मन्हृदिसंपरिवर्तते ॥१८॥ पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांगोत्रभिच्छक्रःकीर्तितोहियथामया ॥ हतेहिरण्यकशिपौयच्चकारारिमर्दनः ॥ १९ ॥

उन सर्व देवाधिपति इन्द्रका नाम पाकशासन हुआ ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त फलक लगेहुए बाणोंके जालसे पुरनामक अन्यान्य असुरोंको विदारितकर पुरन्दर नामसे विख्यात हुए ॥ १५ ॥ उन गोत्रभित् देवराज इन्द्रने इसप्रकारसे असुरोंको निहतकर दानवोंके दलको जय किया तो वह (दानव) परास्त होकर रसातलको चलेगये ॥ १६ ॥ इसीकारणसे इन्द्रको महादेवजीने मलयाचलपर भेजाथा, हेमुनिश्रेष्ठ ! अब क्या सुननेकी इच्छा करतेहो सो कहो ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि, किसकारण आपने देवगणेश्वर इन्द्रको गोत्रभित् कहाथा, हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदयमें यह सन्देह वर्तमान है ॥ १८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, मैंने जिसकारणसे इन्द्रको गोत्रभित् कहाहै वह सुनो, हिरण्यकश्यपके नष्ट होनेपर अरिमर्दन इन्द्रने जो कियाथा वहभी कहताहूं ॥ १९ ॥

हे नारद ! पुत्रके नष्ट होनेपर दितिने कश्यपजीसे कहा कि, हेविभो ! तुम हमारे नाथहो. तुम मुझे इन्द्रहन्ता पुत्र प्रदान करो॥ २०॥ कश्यपजी उससे बोले कि, हे असित लोचने ! तुम यदि पवित्र आचारसे दशहजार वर्षतक रहोगी, तो त्रिलोकीके नायक शत्रुविनाशी पुत्रके उत्पन्न करनेमें समर्थ होगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ भर्ताके इसप्रकार कहनेपर दितिने नियमका अवलम्बन किया, तब कश्यपजी गर्भाधानकर तपके अर्थ उदयाचलपर गये ॥ २३ ॥ उनके चलेजानेपर सुरश्रेष्ठ इन्द्रभी शीघ्र उस आश्रममें आकर दितिसे बोले ॥ २४ ॥ कि, आप यदि आज्ञा दें तो मैं आपकी शुश्रूषा (सेवा) करूँ, दिति होनहार कर्मके वशहो उसपर सम्मत हुई ॥ २५ ॥ तब इन्द्र कार्यके निमित्त और सर्पकी समान छिद्रान्वेषी होकर विनयसहित उनके हवन आदिके लिये काष्ठ आदिक लादेतेथे ॥ २६ ॥ दश हजार वर्षके बीतनेपर वह तपस्विनी

दितिर्विनष्टपुत्रातुंकश्यपप्राहनारद ॥ विभोनाथोसिमेदेहिशक्रहंतारमात्मजम् ॥ २० ॥ कश्यपस्तामुवाचाथयदित्वमसितेक्षणे ॥ शौचाचारसमायुक्ता स्थास्यसेदशतीर्दश ॥ २१ ॥ संवत्सराणांदिव्यानांततस्त्रैलोक्यनायकम् ॥ जनयिष्यसितंपुत्रंशत्रुघ्नंनान्यथाप्रिये ॥ २२॥ इत्येवमुक्तासाभर्त्रादिति र्नियममास्थिता ॥ गर्भाधानमृषिःकृत्वाजगामोदयपर्वतम् ॥ २३॥ गतेतस्मिन्सुरश्रेष्ठःसहस्राक्षोऽपिसत्वरम् ॥ तमाश्रममुपागम्यादितिंवचनमब्रवीत् ॥ ॥ २४ ॥ करिष्याम्यनुशुश्रूषांभवत्यायदिमन्यसे ॥ बाढमित्यब्रवीत्सापिभाविकर्मप्रचोदिता ॥ २५॥ समिदाहरणादीनितस्याश्चक्रेपुरंदरः ॥ विनीतात्माचकार्यार्थीछिद्रान्वेषीभुजंगवत् ॥ २६॥ एकदासातपोयुक्ताशोकेमहतिसंस्थिता ॥ दशवर्षशतांतेतुशिरःस्नातातपस्विनी ॥२७॥ जानुभ्यामुपरिस्थाप्यमुक्तकेशीनिजंशिरः॥सुष्वापकेशप्रांतेषुसंश्लिष्टचरणाभवत् ॥ २८॥ तमंतरमसौज्ञात्वादेवश्चापिसहस्रदृक् ॥ विवेशमातुरुदरेनासारंध्रेणनारद॥ ॥ २९ ॥ प्रविश्यजठरेवृद्धोदैत्यमातुःपुरंदरः ॥ ददर्शोर्ध्वमुखंबालंकटिन्यस्तकरंमहत् ॥ ३० ॥ तथैवास्येथददृशेमांसपेशींचवासवः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाकराभ्यांजगृहेसताम् ॥ ३१॥ ततःकोपसमाध्मातोमांसपेशींशतक्रतुः ॥ कराभ्यांमर्दयामासततःसाकठिनाभवत् ॥ ३२ ॥

तपोयुक्ता अत्यन्त शोकित दिति एकसमय शिरसे स्नानकरती हुई ॥ २७ ॥ और बालोंको खोलकर अपने माथेको दो घुटनोंपर रखके केशोंमें चरण संश्लेष (सम्मेलन) पूर्वक शयन किया ॥ २८ ॥ हे नारद ! देवराज इन्द्र इस छिद्रको जानकर नासिकाके छिद्रोंके द्वारा माताके गर्भमें प्रवेश करगये ॥ २९ ॥ दैत्यजननीके उदरमें प्रवेशकरके देखा कि, एक बालक कमरको हाथोंसे पकड़ेहुए ऊपरको मुख किये बैठाहै ॥ ३० ॥ उसका शरीर मांसपेशी (मांसकीझिल्ली) से बँधरहाहै, उसने दोनों अपनी भुजाओंसे उस शुद्ध स्फटिकयुक्त मांसपेशीको पकड़ा है ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने क्रोधसे प्रज्वलितहो उसको दोनों हाथोंसे दिया,

तब वह कठिन होगया ॥ ३२ ॥ उसके पीछे आधा ऊपरको और आधा नीचेको बढ़नेसे इन्द्रका वज्र उसमांसपेशीसे शतपर्वा (१०० धारवाला) होकर प्रकट हुआ ॥ ३३ ॥ हेब्रह्मन् ! इन्द्रने उल्लिखित शतपर्व वज्रसे दितिके गर्भके सात टुकडे करदिये, तब वह गर्भमें स्थित बालक आर्तस्वर रोनेलगा ॥ ३४ ॥ तब वह जागगई और यहकार्य इन्द्रका जाना. उस रोते हुए बालकका शब्द अदितिनेभी सुना ॥ ३५ ॥ तब इन्द्रने उसबालकसे कहा रेमुढ़ ! घर्घरस्वरसे मत रोदनकर. यह कहकर उन्हों ने उन सातखंडोंके प्रत्येक खंडके सात २ खंड कर दिये अर्थात् सात खंडके उञ्चास (४९) खंड करदिये ॥ ३६ ॥ वह ४९ मरुत्[1]नामसे इन्द्रके सेवक देवगणरूपसे प्रगट हुए और इन्द्रके विविधप्रकारके सुखोपचारसे पुरस्कृत हो चलनेलगे ॥ ३७॥

ऊर्ध्वेंनार्धंचववृधेत्वधोर्धंववृधेतथा ॥ शतपर्वासकुलिशःसंजातोमांसपेशितः ॥ ३३ ॥ तेनाधिगर्भंदितिजंवज्रेणशतपर्वणा ॥ चिच्छेदसप्तधाब्रह्मन्सचारोदीत्सुविस्तरम् ॥ ३४ ॥ ततोप्यबुध्यतदितिरज्ञासीच्छक्रचेष्टितम् ॥ शुश्रावबाचंपुत्रस्यरुदतोबालकस्यहि ॥ ३५ ॥ शक्रोपिप्राहमामूढरोदीस्त्वंचातिघर्घरम् ॥ इत्येवमुक्त्वाचैकैकंभूयश्चिच्छेदसप्तधा ॥ ३६ ॥ तेजातामरुतोनामदेवभृत्याःशतक्रतोः ॥ नानासुखोपचारेणचलंतेतेपुरस्कृताः ॥ ३७ ॥ ततः सकुलिशःशक्रोनिर्गम्यजठरात्ततः ॥ दितिंकृतांजलिपुटःप्राहभीतस्तुशापतः ॥ ३८ ॥ ममनैवापराधोयमयमासीदरिर्मम ॥ अतोहतोमयादेवितन्मेनक्रोद्धुमर्हसि ॥ ३९ ॥ दितिरुवाच ॥ नतवात्रापराधोस्तिमन्येदिष्टमिदंपुरा ॥ संपूर्णेत्वपिकालेवैयोसौवधमुपागतः ॥ ४० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा तान्बालान्परिसान्त्व्यदितिंत्वरन् ॥ देवराजःसहैनांस्तुप्रेषयामासभामिनी ॥ ४१ ॥ एवंपुरास्वानपिसोदरान्सगर्भास्थितान्पातितवान्भयार्तः ॥ विभेदवज्रेणततःसगोत्रभित्ख्यातोमहर्षेभगवान्महेंद्रः ॥ ४२ ॥ इति श्रीवामनपुराणेशक्रचरितेमरुदुत्पत्तिर्नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इसीसमयमें इन्द्र वज्रहाथमें ले माताके उदरसे बाहर हो शापके भयसे भयभीत हो हाथ जोड़कर दितिसे बोले ॥ ३८ ॥ कि, मेरा अपराध नहीं है, यह बालक मेरा शत्रु था. हे देवि ! इसीकारणसे मैंने इसका संहार किया. अतएव मेरे ऊपर क्रोध न करना ॥ ३९ ॥ दितिने कहा कि, इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है, ऐसा बोध होता है कि, पहलेहींसे ऐसा दैवगतिसे होनहार था, इसीकारण जैसे काल पूर्ण हुआ है वैसेही यह बालक नष्ट होगया ॥ ४० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, भामिनी दितिने इसप्रकार कहकर उन बालकोंको सावधानकर देवराज इन्द्रके साथ भेजदिया ॥ ४१ ॥ इन्द्रने पहले भयभीत हो गर्भमें स्थित अपने सहोदरोंको भी वज्रके प्रहारसे छेदन कियाथा इसीकारणसे इन्द्रका नाम गोत्रभित् हुआ है ॥ ४२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां मरुदुत्पत्तिनाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

---

[1] इसके कहनेसे मरुत इस नामका निर्वचन किया मारुद् मारुव् ऐसी निरुक्ति–होती है।

नारदजी बोले कि, आपने जो दितिजोत्तम मरुद्गणोंकी कथा कही यह कौन थे और पहले मन्वन्तरोंमें मरुत् पदमें स्थित कौन थे सो आप कृपाकरके कहिये ॥ १ ॥ हे सत्तम ! पहले मन्वन्तरके बीतनेपर किसने मरुत् पदका आश्रय किया था वहभी मेरे निकट कहिये ॥२॥ पुलस्त्यजी बोले कि, स्वायम्भुव मन्वन्तरसे आरम्भ करके वर्तमान मन्वन्तरतक पहले मरुद्गणोंकी उत्पत्तिको कहताहूं सुनो ॥ ३ ॥ स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नामक पुत्र थे उनके पुत्रका नाम सवन था, वह त्रिलोकीमें विख्यात हुए ॥ ४ ॥ हे देवर्षे ! पुत्र नहीं हुआ था. उस अवस्थामेंही वह परलोकवासी हुए उनके परलोक जानेपर उनकी स्त्री सुदेवा शोकसे व्याकुल हो रोने लगी ॥ ५ ॥ उनको दग्ध नहीं करनेदिया और पतिको आलिंगन कर स्थित होगई और वारम्वार नाथशब्द उच्चारण करती हुई अनाथके

॥नारदउवाच ॥ येह्यमीभवताप्रोक्तामरुतोदितिजोत्तमाः ॥ तेकेचपूर्वमासन्वैमरुन्मार्गेषुकथ्यताम्॥१॥पूर्वमन्वंतरेचैवसमतीतेषुसत्तम ॥ केत्वासन्वायुमार्गस्थास्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांपूर्वमरुतामुत्पत्तिंकथयामिते ॥ स्वायंभुवंसमारभ्ययावन्मन्वन्तरंत्विदम् ॥ ३ ॥ स्वायंभुवस्यपुत्रोभून्मनुर्नामप्रियव्रतः ॥ तस्यासीत्सवनोनामपुत्रस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥४॥ सचानपत्योदेवर्षेनृपःप्रेतगतिंगतः ॥ ततोऽरुदत्तस्यपत्नीसुवेदाशोकविह्वला ॥५॥ नददातितथादग्धुंसमालिंग्यास्थितापतिम् ॥ नाथनाथेतिबहुशोविलपंतीत्वनाथवत् ॥ ६ ॥ ततोन्तरिक्षादशरीरिणीवाक्प्रोवाचमाराजपत्नीहरौत्सीः ॥ यदस्तितेसत्यमनुत्तमंतत्तदाव्रजत्वंपतिनासहाग्निम् ॥ ७ ॥ सातांवाणीमंतरिक्षान्निशम्यप्राहक्लांताराजपत्नीसुवेदा ॥ शोचाम्येनंपार्थिवंपुत्रहीनंनैवात्मानंमंदभाग्यंविहंग ॥ ८ ॥ सोथाब्रवीन्मारुदस्वेतिबालेपुत्रास्तेवैभूमिपालस्यसप्त ॥ भविष्यंतिवह्निमारोहशीघ्रंसत्यंप्रोक्तंश्रद्दधस्वत्वमद्य ॥ ९ ॥ इत्येवमुक्ताखचरेणबालाचितांसमारोप्यपतिंवराहम् ॥ हुताशमासाद्यपतिव्रतासासंचिंतयंतीज्वलनंप्रपन्ना ॥ १० ॥ ततोमुहूर्तान्नृपतिःश्रियायुतःसमुत्थितोऽसौसहितस्तुभार्यया ॥ खमुत्पपाताथसकामचारीसमंमाहिष्याचसुनाभपुत्र्या ॥ ११ ॥

समान विलाप करने लगी ॥ ६ ॥ उस समय आकाशवाणी हुई कि, हे राजपत्नी ! रोओमत, तुमने जो सर्वतोभावसे सत्य कियाथा उसीके अनुसार पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करो ॥ ७ ॥ उस आकाशवाणीको सुनकर राजपत्नी सुदेवा बोली कि, हेविहंग ! यह राजा निःसन्तान है इसकारण शोक करतीहूं, नहीं तो अपना भाग्य मन्द होनेपरभी शोक नहीं करती ॥ ८ ॥ आकाशवाणीने कहा कि, 'रोओ मत' तुम्हारे गर्भसे राजाके सात पुत्र होंगे. तुम शीघ्रही अग्निपर चढ़ाओ मैं सत्य कहताहूं. मेरे वचनोंपर श्रद्धा करो ॥ ९ ॥ खेचर (आकाशचारी) के ऐसा कहनेपर बाला सुदेवाने स्वामीको चितापर रक्खा और उसमें आग लगाकर स्वयं उसकी शरणागतहो चिन्ताकरने लगी ॥ १० ॥ एक मुहूर्त्तमात्रमेंही राजा श्रीमान् होकर उठे और सुदेवाके साथ आकाशमें गये और उन वसुनामकी पुत्री रानीके

साथ इच्छानुसार विचरण करने लगे ॥ ११ ॥ महिषीके रजस्वला होनेपर बलवीर्ययुक्त परम गौरववान् सब पुत्र उत्पन्न हुए, वह सभी बुद्धिवान् महात्मा और राजा हुएथे ॥ १२ ॥ राजा दिव्ययोगके प्रभावसे आकाशमें अपनी प्रिया सुदेवाके साथ पांचदिनतक रहे, इसके उपरान्त छठे दिनके उपस्थित होनेपर उनकी ऋतु व्यर्थ नहो इसप्रकारकी चिन्ताकर कामचारी हो भार्याके साथ विहार करने लगे,तब आकाशसे उनका वीर्य स्खलित हुआ ॥ १३ ॥ हे तपोधन ! शुक्रके पतित होनेके पीछे वह स्त्रीके सहित दिव्यगतिको प्राप्तकर ब्रह्मलोकको गई । उनके सम्पूर्ण पुत्र कृतास्त्र वीर्यवान् और सत्यवादी होकर वास करने लगे ॥ १४ ॥ उस मेघवर्ण शुक्रके आकाशसे पतित होनेपर देहधारिणी नलिनीने उसे ग्रहण किया, चित्रा, विशाला, हरिता, अलिनीला, इन सब मुनियोंकी स्त्रियोंने इच्छानुसार उसे देखा

तस्यापरेपार्थिवपुंगवस्यजातारजःस्थांमहिषींतुगच्छतः ॥ श्रेष्ठास्तुपुत्राबलवीर्ययुक्ताःख्यातामहांतोभुविभूमिपालाः ॥ १२ ॥ सदिव्ययोगात्प्रतिसंस्थितोंबरेभार्यासहायोदिवसांश्चपंच ॥ ततस्तुषष्ठेऽहनिपार्थिवेनऋतुर्नवंध्योद्यभवेद्विचिंत्य ॥ ररामतन्व्यासहकामचारीततोंबरात्प्राच्यवतास्यशुक्रम् ॥ १३ ॥ शुक्रोत्सर्गावसानेतुनृपतिर्भार्ययासह ॥ जगामदिव्ययागत्याब्रह्मलोकंतपोधन ॥ पुत्रास्तस्यावसञ्छूराःकृतास्त्राःसत्यवादिनः ॥ १४ ॥ तदंबरात्प्रचलितमभ्रवर्णंशुक्रंसमादानलिनीचपुष्यती ॥ चित्राविशालाहरितालिनीलाःपत्न्योमुनीनांददृशुर्यथेच्छया ॥१५॥ तद्दृष्ट्वापुष्करेन्यस्तंप्रत्यूचुर्नतपोधनान् ॥ मन्यमानास्तदमृतंसदायौवनलिप्सया ॥ १६ ॥ ततःस्नात्वातुविधिवत्संपूज्यचनिजान्पतीन् ॥ पतिभिःसमनुज्ञाताःपपुःपुष्करसंज्ञितम् ॥१७॥ तच्छुक्रंपार्थिवेंद्रस्यमन्यमानास्तदामृतम् ॥ पीतमात्रेणशुक्रेणपार्थिवेंद्रोद्भवेनताः ॥ १८ ॥ ब्रह्मतेजोविहीनास्ताजाताःपत्न्यस्तपस्विनाम् ॥ ततस्तुतत्यजुःसर्वेसदोषास्तेस्वपत्नयः ॥ १९ ॥ सुषुवुःसप्ततनयान्रुदतोभैरवंमुने ॥ तेषांरुदितशब्देनसर्वमापूरितंजगत् ॥२०॥ अथाजगामभगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ समभ्येत्याब्रवीद्बालान्मारुदध्वंमहाबलाः ॥ २१ ॥ मरुतोनामभवतांभविष्यतिवियत्स्थिरम् ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशोब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥

॥ १५ ॥ पुष्कर (कमल) के बीचमें स्थित उस शुक्रको देखकर उन्होंने ऋषियोंसे कुछभी न कहा उसे अमृत जानकर स्थिरयौवना होनेकी इच्छासे ॥ १६ ॥ विधानपूर्वक स्नानकर और अपने २ पतियोंकी पूजाकर, उनकी आज्ञाले उस पुष्करमें स्थित शुक्रको पान किया ॥ १७ ॥ उन्होंने राजाके शुक्रको अमृत जानकर जैसेही पान किया कि, वैसेही ॥ १८ ॥ उसी समय सभी ब्रह्मतेजहीन होगईं इस प्रकारसे वह कलंकिनी हो अपने २ पतियोंसे छोडी गई ॥ १९ ॥ हे मुने ! इसके उपरान्त उन्होंने सात पुत्र उत्पन्न किये वह भैरवस्वरसे रोनेलगे.; उनके रोनेके शब्दसे सम्पूर्ण संसार परिपूर्ण होगया ॥ २० ॥ तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी आये, और आकर उन बालकोंसे बोले कि, रोदन नकरना, तुम सभी महाबलवान् ॥ २१ ॥ मरुत्नामसे विख्यात और स्थिर

अवस्थाको प्राप्त होंगे, देवताओंके ईश्वर लोकपितामह ब्रह्माजीने इसप्रकारके वचन कह ॥ २२ ॥ उनको अपने साथ ले आकाशविहारी मरुत् पदपर नियुक्त किया, वही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें आद्य (प्रथम) मरुत् हुए ॥ २३ ॥ हे नारद ! स्वारोचिष मन्वन्तरमें मरुतोंका वृत्तान्त कीर्तन करूंगा, तुम श्रवणकरो ! स्वारोचिषके पुत्र श्रीमान् ऋतध्वज थे ॥ २४ ॥ उनके सात पुत्र हुए वह सभी इन्द्रके समान पराक्रमवाले थे वह सब तपस्या करनेके निमित्त महामेरुपर्वतपर गये ॥ २५ ॥ उस स्थानपर इन्द्रके पद प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्माजीकी आराधनामें प्रवृत्त हुए, यह देखकर विपश्चित् नामसे विख्यात इन्द्र भयभीतहो ॥ २६ ॥ अप्सराओंमें मुख्य पूतनासे बोले कि, हे विलासिनि पूतने ! तुम महामेरुपर्वतपर जाओ ॥ २७ ॥ उस स्थानपर ऋतध्वजके पुत्र कठोर तपस्या कररहेहैं, हे सुन्दरि ! जिससे उनकी तपस्यामें विघ्नहो ॥ २८ ॥ तुम वही उपाय करना वह जिसप्रकारसे सिद्ध न होसकैं, रूपशालिनी पूतना इन्द्रकी आज्ञानुसार ॥ २९ ॥ शीघ्रही नरेन्द्रनंदनोंके तपकरनेके स्थानमें गई, आश्रमसे कुछदूर जो मन्दजलवाहिनी नदी थी ॥ ३० ॥ यह सब सहोदर साथ मिलकर उसमें स्नान करनेके निमित्त आये, यह देखकर चार्वंगी पूतनाभी उस महानदीमें स्नानकरनेके निमित्त उतरी ॥ ३१ ॥ नृपनंदन उसे स्नान करती देखकर क्षुभित होगये उनका वीर्य स्खलित हुआ ग्राहोंमें प्रधान महाशंखकी प्यारी जलचारिणी शंखिनीने उसे पान किया इस चरित्रसे सब राजकुमार तपसे भ्रष्ट होकर पिताके राज्यमें आये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अप्सरा पूतनाने इन्द्रके पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त यथावत् कह सुनाया, इस ओर बहुत समयके बीतनेपर वह शंखरूपिणी ग्राही ॥ ३४ ॥ किसी मत्स्यजीवी धीवरके महाजालमें फँसगई,

तानादायवियच्चारीमारुतानादिदेशह ॥ तेत्वासन्मरुतस्त्वाद्येमनोःस्वायंभुवेंतरे ॥ २३ ॥ स्वारोचिषेतुमरुतोवक्ष्यामिशृणुनारद ॥ स्वारोचिषस्यपुत्रस्तु श्रीमान्नाम्नाऋतध्वजः ॥ २४ ॥ तस्यपुत्राबभूवुश्चसप्तादित्यपराक्रमाः ॥ तपोर्थंतेगताःशैलंमहामेरुंनरेश्वराः ॥ २५ ॥ आराधयंतोब्रह्माणंपदमैंद्रंयथेप्सवः ॥ ततोविपश्चिन्नामाथसहस्राक्षोभयातुरः ॥ २६ ॥ पूतनांसोप्सरोमुख्यांप्राहनारदवाक्यावित् ॥ गच्छस्वपूतनेशैलंमहामेरुंविलासिनि ॥ २७ ॥ तप्यंतीतत्रहितपऋतध्वजसुतामहत् ॥ यथाहितपसोविघ्नंतेषांभवतिसुंदरि ॥२८॥ तथाकुरुष्वमातेषांसिद्धिर्भवतुसुंदरि ॥ इत्येवमुक्ताशक्रेणपूतनारूपशालिनी ॥२९॥ तत्राजगामत्वरितायत्रतैस्तप्यतेतपः ॥ आश्रमस्याविदूरेतुनदीमंदोदवाहिनी ॥३० ॥ तस्यांस्नातुंसमायाताःसर्वएवसहोदराः ॥ सातुस्नातुंसुचार्वंगीत्ववतीर्णामहानदीम् ॥३१॥ ददृशुस्तेनृपाःस्नातांततश्चुक्षुभिरेमुने ॥ ततोह्यभ्यद्रवच्छुक्रंतत्पपौजलचारिणी॥३२॥ शंखिनीग्राहमुख्यस्यमहाशंखस्यवल्लभा ॥ तेऽतिविभ्रष्टतपसोजग्मूराज्यंचपैतृकम् ॥ ३३ ॥ साचाप्सराःशक्रमेत्ययाथातथ्यंन्यवेदयत् ॥ ततोबहुतिथेकालेसाग्राहीशंखरूपिणी ॥ ॥ ३४ ॥ समुद्धृतामहाजालैर्मत्स्यबंधनजालिना ॥ सतांदृष्ट्वामहाशंखींस्थलस्थांमत्स्यजीवनः ॥ ३५ ॥

मत्स्यजीवियोंने जालको स्थलमें रखनेपर उस शंखीको देखा देखकर ॥ ३५ ॥ ऋतध्वजके पुत्रोंको निवेदन किया, योगियोंके आचरित योगमार्गमें स्थित महात्मा राजकुमार वहां जा ॥ ३६ ॥ उस शंखिनीको अपने स्थानपर लेआये और पुरवापी (नगरकीबावड़ी) में छोड़दिया, इसके उपरान्त शंखिनीने यथाक्रमसे सातपुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥ पुत्रोंके उत्पन्न होतेही वह मोक्षमार्गको प्राप्तहुई, तब वह सब बालक मातापिताहीन होकर जलमें विचरण करने लगे ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त दूधके अर्थ रोदन करना प्रारंभ किया, ब्रह्माजी उस स्थानपर आकर बोले कि, हेवत्सो ! रोदन न करो, सावधान होकर स्थित रहो ॥ ३९ ॥ तुम वायुस्कन्द विहारी देवता होंगे यह कहकर उन्हें अपने स्वाथ ले ॥ ४० ॥ मरुन्मार्गमें रखकर आप अपने स्थानको चलेगये, इस प्रकारसे ब्रह्माजीने स्वारोचिष मन्वन्तरके समय

निवेदयामासतदाऋतध्वजसुतेषुवै ॥ तथाभ्येत्यमहात्मानोयोगिनांयोगधारिणः ॥ ३६ ॥ नीत्वासुमंदिरंसर्वेपुरवाप्यांसमुत्सृजन् ॥ ततःक्रमाच्छंखिनी
सासुषुवेसप्तवैशिशून् ॥ ३७ ॥ जातमात्रेषुपुत्रेषुमोक्षमार्गमगाच्चसा ॥ अमातृपितृकाबालाजलमध्येविचारिणः ॥ ३८ ॥ स्तन्यार्थिनोवैरुरुदुरथाभ्यागा
त्पितामहः ॥ मारुदध्वमितीत्याहस्वस्थास्तिष्ठतपुत्रकाः ॥ ३९ ॥ यूयंदेवाभविष्यध्वंवायुस्कंधविचारिणः ॥ इत्येवमुक्त्वाव्यादायसर्वांस्तान्दैवतंप्रति ॥
॥ ४० ॥ नियुज्यचमरुन्मार्गेविराजोभवनंगतः ॥ एवमाश्वास्यमरुतोमनोःस्वारोचिषेंतरे ॥ ४१ ॥ उत्तमेमरुतोयेचतांश्छृणुष्वतपोधन ॥ उत्तमस्यान्वये
यस्तुराजासीन्निषधाधिपः ॥ ४२ ॥ वपुष्मानितिविख्यातोवपुषाभास्करोपमः ॥ तस्यपुत्रोगुणश्रेष्ठोज्योतिष्मान्धार्मिकोऽभवत् ॥ ४३ ॥ सपुत्रार्थी
तपस्तेपेनदींमंदाकिनीमनु ॥ तस्यभार्याचसुश्रोणीदेवाचार्यसुतातथा ॥ ४४ ॥ तपश्चरणयुक्तस्यबभूवपरिचारिका ॥ सानयत्फलपुष्पंचसमित्कुशजला
दितत् ॥ ४५ ॥ चकारपद्मपत्राक्षीसम्यक्चातिथिपूजनम् ॥ पतिंशुश्रूषमाणासाकृशाधमनिसंतता ॥ ४६ ॥ तेजोयुक्तासुचार्वंगीदृष्टासप्तर्षिभिर्वने ॥
तांतथाचारुसर्वांगींदृष्ट्वाथतपसाकृशाम् ॥ ४७ ॥

इन सब मरुतोंको सावधान कियाथा ॥ ४१ ॥ हे तपोधन ! उत्तरनामक मन्वन्तरके समयमें जो मरुतपदपर स्थित हुए थे उनका नाम श्रवण करो उत्तम मनुके वंशमें नैषधेशके राजा ॥ ४२ ॥ वपुष्मान् थे, उनका शरीर सूर्यके समान था उनके पुत्रका नाम ज्योतिष्मान्‌था वह गुणोंसे श्रेष्ठ और धार्मिक थे ॥ ४३ ॥ उन्होंने पुत्रके अर्थ मन्दाकिनीके किनारे तपस्या की उनकी सहधर्मिणी सुश्रोणी देवाचार्य (बृहस्पति) वंदनी ॥ ४४ ॥ तपस्या करनेके समयमें उनकी परिचारिका हुई, फिर समित, कुश, फल, पुष्प और जलादिकको लाने लगी ॥ ४५ ॥ वह पद्मपलाश लोचना सबप्रकारसे अतिथियोंकी सेवामें नियुक्त हुई पतिकी शूश्रूषा करनेके समय ऐसी दुर्बल हुई कि, उसके सब शिरायें दीखने लगीं ॥ ४६ ॥ सप्तऋषियोंने वनके बीच उस तपस्विनी सर्वांगसुन्दरी भामिनीको देखा उसे

चारुसर्वांगी और तपस्यासे दुर्बल देखकर॥ ४७॥ यह स्त्री पुरुष दोनों किसकारणसे तपस्या कर रहे हैं यह पूँछा उन्होंने उत्तर दिया कि, हम पुत्रके निमित्त तपस्या करते हैं ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह वचन सुनकर सप्त महर्षि उन्हें वर देकर बोले कि, जाओ तुम्हारे सात पुत्र होंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ४९॥ महर्षियोंके प्रस्तावसे वह सभी गुणवान् होंगे महर्षि यह कहकर चलेगये ॥ ५० ॥ वह राजर्षि भार्याके साथ अपनी नगरीको गये, इसके बहुत कालके पीछे उनकी प्रिया रानी ॥ ५१ ॥ उनके संसर्गसे गर्भवती हुई, स्त्रीके गर्भवती होनेपर राजा परलोकवासी हुए ॥ ५२ ॥ पतिव्रता रानीने सती होनेके अर्थ स्वामीकी चितापर चढ़नेकी अभिलाषा की, मंत्रियोंने निवारण किया, परन्तु वह किसीप्रकारभी निवृत्त न हुई ॥ ५३ ॥ स्वामीकी चिताको बनाकर उसपर पतिको रख स्वयं उसमें

पप्रच्छुस्तपसोहेतुंतस्यास्तद्भर्तुरेवच ॥ साब्रवीत्तनयार्थायआवाभ्यांतपसःक्रिया ॥ ४८ ॥ तेचास्यैवरदाब्रह्मञ्जाताःसप्तमहर्षयः ॥ व्रजध्वंतनयाःसप्तभ
विष्यंतिनसंशयः ॥ ४९ ॥ युवयोर्गुणसंयुक्तामहर्षीणांप्रसादतः ॥ इत्येवमुक्त्वाजग्मुस्तेसर्वएवमहर्षयः ॥ ५०॥ सचापिराजर्षिरगात्सभार्योनगरंनिजम् ॥
ततोबहुतिथेकालेसाराज्ञोमहिषीप्रिया ॥ ५१ ॥ अवापगर्भंतन्वंगीतस्मान्नृपतिसत्तमात् ॥ गुर्विण्यामथभार्यायांसममारनराधिपः ॥ ५२ ॥ साचाप्यारो
ढुमिच्छंतीभर्तारंवैपतिव्रता ॥ निवारितातदामात्यैर्नतथापिप्रतिष्ठति ॥ ५३ ॥ समारोप्याथभर्तारंचितायामारुहच्चसा ॥ ततोऽग्निमध्यात्सलिलमाममेवा
पतन्मुने ॥५४॥ तदंभसासुशीतेनसंसिक्तंसप्तधाभवत् ॥ तेजायंताथमरुतऔत्तमस्यांतरेमनोः ॥५५॥ तामसस्यांतरेयेचमरुतोऽथाभवन्पुरा ॥ तानहंकीर्त
यिष्यामिगीतवाद्यकलिप्रिय ॥ ५६॥ तामसस्यमनोःपुत्रोदंतध्वजइतिश्रुतः ॥ सपुत्रार्थीजुहावाग्नौस्वमांसंरुधिरंतथा ॥५७॥ अस्थीनिरोमकेशांश्चस्नायु
मज्जायकृद्धनम्॥शुक्रंचचित्रकोराजासुतार्थीचेतिनःश्रुतम् ॥५८॥ सप्तस्वेवार्चिषुततःशुक्रपातादनंतरम्॥माप्रक्षिपस्वेत्यभवच्छब्दःसोऽपिमृतोनृपः॥५९॥

चढ़गई, हे मुने ! स्थित उनके गर्भमेंसे आम (अपरिपक्क + कच्चा) जल निकला ॥ ५४ ॥ उस शीतलजलके स्पर्श से वह उनके गर्भस्थ जीव सप्तधा विमुक्त होगया वही उत्तरमन्वन्तरमें मरुत् हुए ॥ ५५ ॥ हे गीतवाद्यकलिप्रिय ! जो तामस नाम मन्वन्तरमें हुए थे, उनका वृत्तान्त कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ ५६ ॥ तामस मनुके पुत्र दन्तध्वजनामसे विख्यात हुए वह पुत्रार्थी हो अग्निमें अपने मांस और रुधिरकी आहुति देनेलगे ॥५७॥ मैंने सुना है कि, उन्होंने क्रम २ से अपनी अस्थि, रोम, स्नायु, मज्जा, यकृत् और शुक्र सभीकी आहुति दी ॥ ५८ ॥ अग्निके सात प्रकारके अर्चि[1] (ज्वाला) में शुक्रपात होनेसे इसप्रकारका शब्द हुआ कि,

---

[1] हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता ये सात अग्निकी सात्विकी जिह्वाहैं ।

तुम शुक्र प्रक्षिप्त न करना । राजा उसी समय मरगये ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त अग्निसे वह परमतेजस्वी बालक सप्तधा प्रगट होकर ऊँचे स्वरसे रोदन करनेलगे ॥ ॥ ६० ॥ भगवान् पद्मयोनि ब्रह्माजी उसके रोदनके शब्दको सुनकर शीघ्र आये, और विचारकर फिर उनको मरुत् नामक देवगण करदिये ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मन् ! वही तामसमन्वन्तरमें मरुत् हुएथे. हे तपोधन ! अब रैवतमन्वन्तरमें स्थित मरुद्गणोंका वृत्तान्त सुनिये ॥ ६२ ॥ रैवतमनुके वंशमें शत्रुके विजय करनेसे रिपुजित् नामसे विख्यात महाबलवान् धनवान् राजा थे उनके संतान नहीं थी ॥ ६३ ॥ तपस्यासे तेजोनिधि भगवान् सूर्यकी आराधना करकै सुरति नामकी कन्याको प्राप्त कर उसे ले अपने स्थानको गये ॥ ६४ ॥ हेभगवन् ! पिताके गृहमें रहनेके समय यह कन्या पिताहीन होगई, इसकारण दुःखसे उसका शरीर व्याप्त होगया,

ततस्तस्माद्धुतवहात्सप्तधातेजसायुताः ॥ शिशवःसमजायंततेऽरुदन्भैरवंमुने ॥ ६० ॥ तेषांतुध्वनिमाकर्ण्यभगवान्पद्मसंभवः ॥ समागम्यविचार्याथसंचक्रेमरुतःसुरान् ॥ ६१ ॥ तेत्वासन्मरुतोब्रह्मंस्तामसेदेवतागणाः ॥ येऽभवन्रैवतेतांश्चशृणुचत्वंतपोधन ॥ ६२ ॥ रैवतस्यान्ववायेतुयआसीद्रिपुजिद्धनी ॥ रिपुजिन्नामतःख्यातोनतस्यासीत्सुतःकिल ॥६३॥ ससमाराध्यतपसाभास्करंतेजसांनिधिम् ॥ अवापकन्यांसुरतिंतांप्रगृह्यगृहंययौ ॥६४॥ तस्यांपितृगृहे ब्रह्मन्वसंत्यसपितामृतः ॥ सापिदुःखपरीतांगीस्वांतनुंत्यक्तुमुद्यता ॥६५॥ ततस्तांवारयामासुर्ऋषयःसप्तनारद ॥ तस्यामासक्तचित्तास्तुसर्वएवतपोधनाः ॥ ६६ ॥ अपारयंतीतद्दुःखंप्रज्वाल्याग्निंविवेशह ॥ तेचापश्यंतऋषयस्तच्चित्ताभावितास्तथा ॥ ६७॥ तामृतामृषयोदृष्ट्वाकष्टंकष्टेतिवादिनः ॥ प्रजग्मुर्ज्वलनाच्चाथसप्ताजायंतदारकाः ॥६८॥ तेचमात्राविनाभूतारुरुदुस्तान्पितामहः ॥ निवारयित्वाकृतवाँल्लोकनाथोमरुद्गणान् ॥६९॥ रैवतस्यांतरेजातामरुतोऽमीतपोधन ॥ शृणुत्वंकीर्तयिष्यामिचाक्षुषस्यांतरेमनोः ॥७०॥आसीन्मंकिरितिख्यातस्तपस्वीसत्यवाक्छुचिः ॥सप्तसारस्वतेतीर्थेसोऽतप्यतमहत्तपः ॥७१॥

उसने अपने शरीर त्यागनेकी अभिलाषा की ॥ ६५ ॥ हेनारद ! सप्तऋषि उसके ऊपर आसक्त हुएथे इसीकारण सब तपोधनोंने उसे निवारण किया ॥६६॥ परन्तु उस कन्याने दुःखके वेगको धारण करनेमें असमर्थहो अग्निको प्रज्वलित कर उसमें प्रवेश किया ऋषियोंने उसमें अपना चित्त और भावनाको लगाकर यह चरित्र देखा ॥ ६७ ॥ उसे मृतक हुआ देखकर वह वारम्वार "हाय कैसा कष्टहै !" इसप्रकारके वचन कहतेहुए चलेगये, उस अग्निसे सात बालक उत्पन्न हुए ॥ ६८ ॥ माताके न होनेपर वह बालक रोदन करनेलगे, लोकनाथ पितामह ब्रह्माजीने उनको निवारण कर उन्हें मरुद्गणोंका पद दिया॥ ६९ ॥ हे तपोधन ! वही रैवतनामक मन्वन्तरमें मरुत् हुएथे. अब चाक्षुषमन्वन्तरमें स्थित मरुद्गणोंकी कथा कहताहूँ श्रवण करो ॥ ७० ॥ मंकिनामसे विख्यात एक तपस्वीथे वह सत्यवादी

और शौचयुक्तथे उन्हों ने सप्तसारस्वततीर्थमें कठोर तपस्या की ॥ ७१ ॥ हे मुने ! देवताओं ने उनके तपमें विघ्न करनेकी इच्छासे तुषिता नामक अप्स
राको भेजा, भामिनी तुषिताने नदीके किनारे जाकर अपने हावभावसे उनको क्षोभ उत्पन्न किया ॥ ७२ ॥ तब सप्तसारस्वतमें उनका शुक्र गिरकर
भ्रष्ट हुआ, इस कारण मंकणकमुनि उसे शत्रु जान शाप देकर बोले ॥ ७३ ॥ कि, हेमूढ़े ! जाओ इसपापका दारुण फल भोगोगी, यज्ञकर्मके उपस्थित होनेपर
तुम्हारा विनाश होगा ॥ ७४ ॥ श्रीमान् मंकि इसप्रकारसे उसे शाप दे अपने आश्रमको आये, इसके उपरान्त सप्तसारस्वतमेंसे सप्तमरुत् उत्पन्न हुए ॥ ७५ ॥ हेमहर्षे !
पहले सर्वजगद्व्यापी मरुद्गण इसप्रकारसे उत्पन्न हुएथे सो मैं ने तुम्हारे निकट कहा, मरुतोंकी जन्मकथा सुनकर सम्पूर्ण पापविनाश और परमधर्मका उदय होताहै ॥ ७६ ॥

विघ्नार्थंतस्यतुषितांदेवाःसंप्रैषयन्मुने ॥ साचाभ्येत्यनदीतीरेक्षोभयामासभामिनी ॥ ७२ ॥ ततोऽस्यप्राच्यवच्छुक्रंसप्तसारस्वतेजले ॥ तांचैवाप्यशपन्मूढां
मुनिर्मंकणकोरिपुम् ॥ ७३ ॥ गच्छवैवेत्सिमूढेत्वंपापस्यास्यमहत्फलम् ॥ विध्वंसस्तेहिभवितासंप्राप्तेयज्ञकर्मणि ॥ ७४ ॥ एवंशप्त्वाऋषिःश्रीमाञ्जगामा
थस्वमाश्रमम् ॥ सरस्वतीभ्यःसप्तभ्यःसप्तवैमरुतोऽभवन् ॥ ७५ ॥ एतत्तवोक्तामरुतोहिपूर्वंजाताजगद्व्याप्तिकरामहर्षे ॥ येषांश्रुतेजन्मनिपातहानिर्भ
वेच्चधर्माभ्युदयोमहांश्च ॥ ७६ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेमरुदुत्पत्तिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एतदर्थंबलिर्दैत्यःकृतोराजाक
लिप्रियः ॥ मंत्रप्रदाताप्रह्लादःशुक्रश्चासीत्पुरोहितः ॥ १ ॥ ज्ञात्वाभिषिक्तंदैतेयंविरोचनसुतंबलिम् ॥ दिदृक्षवःसमायाताअमराःसर्वएवहि ॥ २ ॥
तानागतान्निरीक्ष्यैवपूजयित्वायथाक्रमम् ॥ पप्रच्छकुलजान्सर्वान्किंनुश्रेयस्करंमम ॥ ३ ॥ ततस्तेप्रोचुरेवैनंशृणुचासुरसुंदर ॥ यत्तेश्रेयस्करंकर्मयदस्मा
कंहितंतथा ॥ ४ ॥ पितामहस्तथैवासीद्बलीदानवपालकः ॥ हिरण्यकशिपुर्वीरःसशक्रोऽभूज्जगत्त्रये ॥ ५ ॥ तमागत्यसुरश्रेष्ठोविष्णुःसिंहवपुर्धरः ॥ प्रत्यक्षं
दानवेंद्राणांनखैर्विशकलीकृतः ॥ ६ ॥

इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां मरुदुत्पत्तिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हेकलिप्रिय ! इसीकारणसे बलिको राजा कियाथा,
प्रह्लादजी उसके मंत्रदाता और शुक्राचार्य यह उनके पुरोहित थे ॥ १ ॥ विरोचनके पुत्र बलि राजा हुएहैं यह जानकर देवता सभी देखनेके निमित्त आये ॥ २ ॥
बलिने उन्हें आता हुआ देखकर यथाक्रमसे पूजाकर सम्पूर्ण कुटुम्बियों से पूँछा कि, क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा सो कहिये ॥ ३ ॥ वह उनसे बोले कि, हे असुर
सुन्दर ! जिसके करनेसे तुम्हारा कल्याण और हम सबका उपकार होगा सो कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ तुम्हारे पितामह अत्यन्तही बलवान् और दानवोंके
परिपालक वीर हिरण्यकशिपु त्रिलोकीके इन्द्र हुए थे ॥ ५ ॥ सुरश्रेष्ठ विष्णुने आकर सिंहका रूप धारणकर दानवेन्द्रोंके सन्मुख उन्हें नखोंके प्रहारसे विदीर्ण किया ॥ ६ ॥

हेमहाबाहो ! महात्मा त्रिलोचन त्रिशूलधारी शंकरने हमारे निमित्त उन्हैं राज्यसे भ्रष्ट किया था ॥ ७ ॥ तुम्हारे पितृव्य (चचा) जंभासुर इन्द्रके हाथसे मारेगये, भगवान् विष्णुने तुम्हारे सामनेही कुजंभको पशुकी समान संहार किया था ॥ ८ ॥तुम्हारे भ्राता सुदर्शन, शंख और पाक यहभी महेन्द्रके द्वारा निहत हुए हैं तुम्हारे पिता विरोचनकाभी निधनवृत्तान्त कहताहूँ श्रवण करो ॥ ९ ॥ इन्द्रने अपने गोत्र (ज्ञाति महत्का) क्षय किया है, यह सुनकर विरोचन सम्पूर्ण महासुरोंके साथ उद्योग करनेलगे ॥ १० ॥ तब कोई रथपर कोई घोड़ेपर और कोई पैदलही देवताओंके साथ युद्ध करनेके निमित्त गये ॥ ११ ॥ भयंकर नामक बलवान् सेनापति हमारे सबके आगे २ जानेलगे, सेनाके बीचमें बड़े २ बलवान् असुर रक्षार्थ नियुक्त हुए कालनेमि सेनाके पीछे २ रक्षा करते चले ॥ १२ ॥ प्रख्यात

अवकृष्टश्चराज्यात्सत्र्यंबकेणमहात्मना ॥ अस्मदर्थैमहाबाहोशंकरेणत्रिशूलिना ॥ ७ ॥ तथातवपितान्योपिजंभःशक्रेणघातितः ॥ कुजंभोविष्णुनाचापि प्रत्यक्षंपशुवद्धतः ॥ ८ ॥ शंखःपाकोमहेंद्रेणभ्रातातवसुदर्शनः ॥ विरोचनस्तवपितानिहतःकथयामिते ॥ ९ ॥ श्रुत्वागोत्रक्षयंब्रह्मन्कृतंशक्रेणदानवः ॥ उद्योगंकारयामाससहसर्वैर्महासुरैः ॥ १० ॥ रथैरन्येगजैरन्येवाजिभिश्चापरेसुराः ॥ पदातयस्तथाप्यन्येजग्मुर्युद्धायदेवताः ॥ ११ ॥ ममाग्रेयातिबलवान्सेनानाथोभयंकरः ॥ सैन्यस्यमध्येबलिनःकालनेमिश्चपृष्ठतः ॥ १२ ॥ वामपार्श्वमवष्टभ्यशाल्वःप्रथितविक्रमः ॥ प्रयातिदक्षिणंघोरंतारकाख्योभयंकरः ॥ १३ ॥ दानवानांसहस्राणिप्रयुतान्यर्बुदानिच ॥ संप्रयातानियुद्धायदेवैःसहकलिप्रियः ॥ १४ ॥ श्रुत्वासुराणामुद्योगंशक्रःसुरपतिःसुरान् ॥ उवाचयोगंदैत्यानांयोद्धुंस्वबलसंयुताः ॥१५॥ इत्येवमुक्त्वावचनंसुरराट्स्यंदनंबली ॥ समारुरोहभगवान्यतमातलिवाजिनम् ॥१६॥ समारूढेसहस्राक्षे स्यंदनं देवतागताः ॥ स्वंस्वंवाहनमारुह्यनिश्चेरुर्युद्धकांक्षिणः ॥ १७ ॥ आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविश्वेऽश्विनौतथा ॥ विद्याधरागुह्यकाश्चयक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १८ ॥ राजर्षयस्तथासिद्धानानाभूताश्चसंघशः ॥ गजानन्येरथानन्येहयानन्येसमारुहन् ॥ १९ ॥

पराक्रम शाल्व बाँई ओर, उग्रप्रकृति तारक दक्षिण ओर रक्षा करते जानेलगे ॥ १३ ॥ इसप्रकारसे सहस्र २ प्रयुत और अर्बुद २ दानव देवताओंके साथ युद्ध करनेके निमित्त चले ॥ १४ ॥ इन्द्र असुरोंके उद्योगको सुन देवताओंसे बोले कि, तुमभी अपनी सेनाके साथ युद्धके निमित्त उद्योग करो ॥ ॥ १५ ॥ महाबलवान् भगवान् सुरपति इन्द्रने इसप्रकारके वचन कहकर रथपर चढ़ सारथी मातलिको घोड़ोंके चलानेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥ उनके रथपर बैठनेपर देवताभी अपने २ वाहनोंपर चढ़कर युद्धकी इच्छासे चले ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण आदित्य और वसु, सम्पूर्ण रुद्र और साध्य, सम्पूर्ण विश्वेदेवगण और दोनों अश्विनीकुमार, तथा विद्याधर, गुह्यक, यक्ष, राक्षस, पन्नग ॥ १८ ॥ राजर्षि, सिद्ध और विविधभाँतिके भूतगण कोई रथपर, कोई हाथीपर, कोई घोड़ोंपर ॥ १९ ॥

और कोई विहंगमवाही शुभ्र विमानपर चढ़कर जहाँ दैत्योंकी सेना खड़ी थी उसी स्थानपर गये ॥ २० ॥ इसी अवसरमें बुद्धिमान् वैनतेय आये, विष्णु उनकी पीठ पर चढ़कर आये ॥ २१ ॥ सहस्राक्ष इन्द्रने उन त्रिलोकीके पति अव्ययस्वरूप विष्णुको आया देखकर शिर झुकाकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ प्रणाम किया ॥ ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त कार्त्तिकेय देवताओंकी सेनाके आगे हुए, विष्णुभगवान् गदाको ले जघनदेशकी ओर सहस्रलोचनने मध्य भागकी ओर ॥ २३ ॥ जयन्त बाँई ओरकी ओर बलवान् वरुण दक्षिण ओरकी रक्षा करनेमें नियुक्त हुए ॥ २४ ॥ इसप्रकारसे देवताओंकी यशस्विनी सेनाने स्कन्द, इन्द्र और विष्णुके बीचसे सुरक्षित हो हाथमें विविधप्रकारके अस्त्र शस्त्र ले सुमेरुपर्वतके ऊपर सम्पूर्ण शत्रुओंकी सेनापर आक्रमण किया ॥ २५ ॥ तब समशिलाके नीचे शोभायमान

विमानानिचशुभ्राणिपक्षिवाह्यानिनारद ॥ समारुह्याद्रवन्सर्वेयतोदैत्यबलंस्थितम् ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरेधीमान्वैनतेयःसमागतः ॥ तस्मिन्विष्णुःसुरश्रेष्ठस्त्वधिरूढःसमभ्यगात् ॥ २१ ॥ तमागतंसहस्राक्षस्त्रैलोक्यपतिमव्ययम् ॥ ववंदमूर्ध्नावनतःसहसर्वैःसुरोत्तमैः ॥ २२ ॥ ततोऽग्रेदेवसैन्यस्यकार्तिकेयोगदाधरः ॥ पालयञ्जघनंविष्णुर्यातिमध्यंसहस्रदृक् ॥ २३ ॥ वामंपार्श्वमवष्टभ्यजयंतोवर्ततेमुने ॥ दक्षिणंवरुणःपार्श्वमवष्टभ्यागमद्बली ॥ २४ ॥ ततोऽमराणांपृतनायशस्विनीस्कंदेंद्रविष्णूरुणसूर्यपालिता ॥ नानास्त्रशस्त्रोद्यतदोःसमूहासमाससादारिबलंमहीध्रे ॥ २५ ॥ उदयाद्रितटेरम्येशुभेसमशिलातले ॥ निर्वृक्षेपक्षिरहितेजातोदेवासुरोरणः ॥ २६ ॥ सन्निधानात्तयोरौद्रःसेनयोरभवन्मुने ॥ महीध्रेशांतरजसितद्दानवबलंमहत् ॥२७ ॥ अभ्यद्रवंतसहसासमंस्कंदेनदेवताः ॥ निजघ्नुर्दानवान्देवाःकुमारभुजपालिताः ॥ २८ ॥ देवान्निजघ्नुर्दितिजामयगुप्ताःप्रहारिणः ॥ महीधरोत्तमेपूर्वेयथावानरहस्तिनोः ॥ २९ ॥ रणरेणूरथोद्धूतःपिंगलोरणमूर्धनि ॥ संध्यानुरक्तःसदृशोमेघःखेसुरतापस ॥ ३० ॥ तदासीत्तुमुलंयुद्धंनप्राज्ञायतकिंचन ॥ श्रूयंतेतत्वनिशंशब्दाश्छिंधिभिंधीतिवादिनाम् ॥ ३१ ॥

अत्यन्त सुन्दर और रमणीक वृक्ष और पक्षियोंसे विरहित उदयाचलके किनारे देवता और असुरोंका युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ २६ ॥ परस्परमें दोनोंकी सेना निकट थी; इसकारण वह युद्ध अत्यन्त भयंकर होगया, विपुल बलवान् दानवों ने धूलीरहित पर्वतप्रदेशका आश्रय कियाथा ॥ २७ ॥ देवता कार्त्तिकेयके साथ सहसा उसके सन्मुखको दौड़े, और कार्त्तिकेयकी भुजाओंके बलसे रक्षित हो दानवोंका वध करनेलगे ॥ २८ ॥ तब मयके द्वारा रक्षित दानव प्रहारपर प्रहारकर देवताओंका संहार करनेमें प्रवृत्त हुए, पर्वतकी पीठपर वानर और हाथियोंमें जिसप्रकार युद्ध हुआ था ॥ २९ ॥ हे सुरर्षे ! इसी अवसरमें रथके वेगसे उड़ी हुई पीले वर्णकी धूलिसे आकाश संध्यामेघकी समान शोभायमान हुआ ॥ ३० ॥ युद्ध धीरे २ भयंकर होगया और कुछभी नहीं जानाजाता था; केवल छेदन करो, भेदन करो, इसप्रकारके वचन और योधाओंके

शब्द सुनाई आनेलगे ॥ ३१ ॥ इसप्रकारसे देवताओंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ, रुधिरप्रवाह प्रगट होकर सम्पूर्ण रणकी धूलिमें जा मिली ॥ ३२ ॥ धूरिके बन्द होतेही देवता बुद्धिमान् कार्तिकेयसे मिलकर विशाल दानवोंकी सेनापर आक्रमण करनेलगे ॥ ३३ ॥ कार्तिकेयके बाहुसे रक्षित देवता दानवोंका विनाश करनेलगे और उधरसे बड़े प्रहार करनेवाले दैत्य भयके द्वारा सुरक्षित हो देवताओंका विनाश करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३४ ॥ हे नारद ! उस समय वह अमृतरसके पान करनेसे रहित होगयेथे इसी कारणसे दानव उनकी सेनाको जीतनेलगे ॥ ३५ ॥ वह विनिर्जित होगये हैं यह देखकर शत्रुनिषूदन मधुसूदन शार्ंगधनुषको उठाकर दानवोंका संहार करनेलगे ॥ ३६ ॥ विष्णु और गरुड़ इन दोनोंके द्वारा पीड़ित होकर सम्पूर्ण दानवों ने महाअसुर कालनेमिकी शरण ली ॥ ३७ ॥ कालनेमि

ततोविशसनोरौद्रोदैत्यानांदैवतैःसह ॥ जातोरुधिरनिष्पंदोरजसःशमनात्मकः ॥ ३२ ॥ शांतेरजसिदेवौघास्तद्दानवबलंमहत् ॥ अभ्यद्रवन्नसहितासमं स्कंदेनधीमता ॥ ३३ ॥ निजघ्नुर्दानवान्देवाःकुमारभुजपालिताः ॥ देवान्निजघ्नुर्दैत्याश्चभयगुप्ताःप्रहारिणः ॥ ३४ ॥ ततोऽमृतरसास्वादाद्विनाभूताःसुरोत्तमाः ॥ निर्जिताःसमरेदैत्यैःसमंसैन्येननारद ॥ ३५ ॥ विनिर्जितान्सुरान्दृष्ट्वावैनतेयध्वजोऽरिहा ॥ शार्ङ्गमुद्यम्यबाणौघैर्निजघानततस्ततः ॥ ३६ ॥ विष्णुनाहन्यमानास्तेदानवागरुडोप्यथ ॥ दैतेयाःशरणंजग्मुःकालनेमिंमहासुरम् ॥ ३७ ॥ तेभ्यःसचाभयंदत्त्वाप्रययौयत्रमाधवः ॥ विवृद्धिमगमद्ब्रह्मन्यथाव्याधिरुपेक्षितः ॥ ३८ ॥ यंयंकरेणस्पृशतिदेवंयक्षंसकिन्नरम् ॥ तंतमादायचिक्षेपविस्तृतेवदनेबली ॥ ३९ ॥ संरंभाद्दानवेंद्रोऽन्यमृदतादितिजैःसंयुगे देवसैन्यंसेंद्रंसार्कंसचंद्रंकरचरणनखैरस्त्रहीनोऽपिवेगात् ॥ चक्रेवैश्वानराभैस्त्ववनिगगनयोस्तिर्यगूर्ध्वंसमंताद्व्याप्तंकल्पांतवह्नेर्जगदखिलमिदंरूपमासीद्दिधक्षोः ॥ ४० ॥ तंदृष्ट्वावर्धमानंरिपुमतिबलिनं देवगंधर्वमुख्याःसिद्धाःसाध्याश्चमुख्याभवतरलदृशःप्राद्रवन्दिक्षुसर्वे ॥ पोप्लूयं तेचदैत्याहरिममरगणैरर्चितंचारुमौलिन्नानाशस्त्रास्त्रपातैर्विगलितयशसंचक्रुरुत्सिक्तदर्पाः ॥ ४१ ॥

उनको अभय देकर विष्णुभगवान्के सन्मुख आया, हे ब्रह्मन् ! कालनेमि उपेक्षित व्याधिकी समान अत्यन्त बढ़गया ॥ ३८ ॥ वह अपने हाथसे देवता, यक्ष और किन्नर जिसकोभी स्पर्श करता उसीको पकड़ अपने फैलायेहुए मुखमें डाललेता ॥ ३९ ॥ वह दैत्येन्द्र कालनेमि अस्त्रहीन होनेपरभी दितिजोंके साथ केवल हाथ पैर और नखोंके प्रहारसे इन्द्र, चंद्र, सूर्यसमेत देवताओंकी सम्पूर्ण सेनाको संग्राममें विद्रावित करनेलगा, उसी समय उसने अखिलसंसारको दग्ध करनेकी इच्छासे पृथ्वी और आकाश इन दोनों में तिर्य्यक् (इधर उधर) ऊर्द्ध्व (ऊपर) और समन्तात् (चारों ओरको) व्याप्तकर प्रलयकालकी अग्निका रूप धारण किया ॥ ४० ॥ उस अत्यन्त बलशाली शत्रुको बढ़ताहुआ देखकर देवता और गंधर्व इत्यादि सिद्ध, साध्य और अन्यान्य प्रधान २ देवता सभी भयके मारे चंचल दृष्टि हो दशों दिशाओंके

ओरको भागनेलगे, दैत्य यह देख अत्यन्त गर्वित हुए और देवताओंको बाँधकर भगवान् नारायणके सामने शीघ्रतासे जाकर उन्होंने विविधप्रकारके अस्त्रशस्त्रोंके प्रयोगसे उनका यश नष्ट करदिया ॥ ४१ ॥ यम और बलि इत्यादि और कालनेमि सब प्रधान २ दानवबलने इसप्रकारसे आक्रमण किया है, यह देखकर भगवान् विष्णु लाल २ नेत्र करके हृदयभेदी वज्रकल्प नाराचनामक फलके लगेहुए सम्पूर्ण बाणोंको अपने शार्ङ्गधनुषपर चढ़ाकर छोड़नेलगे; उन बाणोंकी वर्षा से घोड़े हाथी और रथके साथ वह सम्पूर्ण शत्रुदल इसप्रकारसे छागया कि, जैसे मेघ पर्वतको ढकलेतेहैं, और अपने देखनेसेही उनको निर्वीर्य करडाला ॥ ४२ ॥ हरिके हाथसे छोड़ेहुए कालदंडकी समान अर्द्धचंद्राकार बाण परम्परासे आच्छादित हो, वह बलि, मय इत्यादि अत्यन्त भयभीत हो शीघ्रही इन्द्रका मथन (विदारण) करनेवाले दानवेन्द्रने कालनेमिको आगे किया, वह कालनेमि देवताओंकी सेनाका बल अपार देखकर लोकनाथ केशवके निकट गया ॥ ४३ ॥ उन्होंने पर्वतके शृङ्गकी समान

तानित्थंप्रेक्ष्यदैत्यान्मयबलिप्रमुखान्कालनेमिप्रधानान्बाणैराकृष्यशार्ङ्गंत्त्वनवरतमुरोभेदिभिर्वज्रकल्पैः ॥ कोपादारक्तदृष्टिःसरथगजहयान्दृष्टिनिर्धूतवीर्यैर्नाराचाख्यैःसुपुंखैर्जलदइवागीरिंछादयामासविष्णुः ॥ ४२ ॥ तेबाणैश्छाद्यमानाहरिकरमुचितैःकालदंडप्रकाशैर्नाराचैरर्धचंद्रैर्बलिमयपुरगाभीतभीतास्त्वरंतः ॥ प्रारंभेदानवेंद्रंशतमखमथनंप्रेंखयन्कालनेमिंसप्रायाद्देवसैन्यप्रभुममितबलंकेशवंलोकनाथम् ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वातंशतशीर्षमुद्यतगदंशैलेंद्रशृंगाकृतिंविष्णुःशार्ङ्गमपास्यसत्वरमथोजग्राहचक्रंकरे ॥ देवेनैवसमेत्यदैत्यविटपप्रच्छेदनंमालिनंप्रोवाचाथविहस्यतंचसुचिरंमेघस्वनोदानवः ॥ ४४ ॥ अयंसदनपुत्रजिद्दनुजसैन्यवित्रासकृद्रिपुःपरमकोपनोममविघातकृत्त्वायुधी ॥ हिरण्यनयनांतकोविविधपुष्पपूजारतिःक्वयातिममगोचरेनिपतितःखलोऽसदृशः॥४५॥यद्येषसंप्रतिममाहवमभ्युपैतिनूनंनयातिनिलयंनिजमंबुजाक्षः॥ मन्मुष्टिपिष्टशिथिलांगमुपांतभस्मसंद्रक्ष्यतेसुरजनोभयकातराक्षः ॥४६॥

सौ मस्तकवाला कालनेमिको गदा हाथमें ले आक्रमण करतेहुए देखकर शार्ङ्गधनुषको धर शीघ्रतासे चक्रको ग्रहण किया, यह देखकर कालनेमि ऊँचे स्वरसे बहुत कालतक हँसता रहा, फिर मेघकी समान गंभीरशब्दसे उन दैत्यवृक्षच्छेदी वनमाली (विष्णु) से बोला ॥ ४४ ॥ कि, यह वही दानवोंका जीतनेवाला दानवसेनामें त्रास उत्पन्न करानेवाला, परमक्रोधितस्वभाव हमारे युद्धमें विघ्नकर्ता हिरण्याक्षके अंतक और विविधप्रकारके पुष्पोंकी पूजामें रति (प्रीति) दिखानेहारे शत्रु विष्णु हैं, इसके समान खल दूसरा नहीं है जब कि, यह शत्रु मेरे सन्मुख पड़ाहै तब अब बचकर यह कहाँ जायगा ॥ ४५ ॥ यह अम्बुजलोचन जनार्दन यदि भयसे संग्राम छोड़ अपने गृहको न जाकर मेरे साथ युद्ध करेगा तो सम्पूर्ण देवता भयभीतनेत्रोंसे इसको मेरे मुष्टिकके प्रहारसे चुरकुट शिथिल देह हो भस्मसात् होते देखेंगे॥ ४६ ॥

कालनेमिने अधरोंको फड़काय मधुसूदनसे इसप्रकार कह अत्यन्त क्रोधित हो इन्द्र जिसप्रकारसे पर्वतपर वज्राघात करताहै उसीप्रकारसे गरुड़के ऊपर गदाका आघात किया ॥ ४७ ॥ भगवान् विष्णुने दानवके बाँहसे छूटकर भयंकर गदाको आती हुई देख पहले कियेहुए कर्म जिसप्रकार दुर्गतियुक्त मनुष्योंके मनोरथोंको भग्न करतेहैं उसीप्रकारसे चक्रके प्रहारसे उसे छेदन कर उसकेभी मनोरथोंको विफल करडाला ॥ ४८ ॥ उन्होंने दानवेश्वरकी दारुणगदाको काटडाला, और उसीसमय शीघ्रतासे उठ उसकी दोनों भुजा काटलीं॥ ४९॥ प्रभु विष्णुके द्वारा दोनों भुजाओंके कटनेपर कालनेमि दग्ध हुए पर्वतकी समान प्रतीत होनेलगा ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त माधवने चक्रसे उनके मस्तकको काटकर पके तालफलकी समान पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ५१ ॥ कालनेमि भुजाहीन और शिररहित होकर वनमें तालफलकी समान

इत्येवमुक्त्वामधुसूदनंवैसकालनेमिःस्फुरिताधरोष्ठः ॥ गदांखगेंद्रोपरिजातरोषोमुमोचशैलेकुलिशंयथेंद्रः ॥ ४७ ॥ तामापतंतींप्रसमीक्ष्यविष्णुर्घोरांगदांदानवबाहुमुक्ताम् ॥ चक्रेणचिच्छेदसुदुर्गतस्यमनोरथंपूर्वकृतंहिकर्म ॥ ४८ ॥ गदांछित्वातदाविष्णुर्दानवस्यसुदारुणाम् ॥ समुपेत्यभुजौपीनौसंप्रचिच्छेदवेगवान् ॥ ४९ ॥ भुजाभ्यामथकृत्ताभ्यांविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कालनेमिस्तथाभातिदग्धःशैलइवापरः ॥ ५० ॥ ततोस्यमाधवःकोपाच्छिरश्चक्रेणभूतले ॥ छित्त्वानिपातयामासपक्वंतालफलंयथा ॥ ५१ ॥ तथाविबाहुर्विशिरामुंडतालोयथावने ॥ तस्थौमेरुरिवाकंप्यःकबंधःक्ष्माधरेश्वरः ॥ ॥ ५२ ॥ तंवैनतेयोप्युरसाखगेंद्रोनिपातयामाससमुनेधरण्याम् ॥ यथांबराद्राहुशिरःप्रणष्टंधन्यंमहेंद्रःकुलिशेनभूम्याम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्हतेदानवसैन्यपालेसंसाध्यमानास्त्रिदशैश्चदैत्याः ॥ विमुक्तशस्त्रालकवर्मवस्त्राःसंप्राद्रवन्बाणमृतेसुरेंद्राः ॥ ५४ ॥ इति श्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेकालनेमिवधोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ संनिवृत्तबलेबाणेदानवाःसत्वरंपुनः ॥ प्रयातादेवतासेनांसशस्त्रायुधलालसाः ॥ १ ॥

शोभा धारणकर उस कबन्धअवस्थामेंभी अविचलभावसे मेरुपर्वतकी समान खडारहा ॥ ५२ ॥ हे मुने ! तब गरुड़जीने अपने वक्षःस्थलका आघातकर उसे पृथ्वीपर पटकदिया. तब ऐसा बोध होताथा कि, मानो इन्द्रने वज्रके प्रहारसे राहुके मस्तकको छेदन कर पृथ्वीपर गिरादिया हो ॥ ५३ ॥ दानवसैन्य निहन्ता कालनेमिको निहतकर त्रिदशगण असुरोंका दलन करने लगे, उन सभी असुरोंके अस्त्र शस्त्र अलक, (केश) वर्म, कवच और वस्त्र इत्यादिक खुलगये इस अवस्थामें वह रण छोड़कर भागगये, केवल बाणासुर संग्राममें खड़ारहा ॥ ५४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां कालनेमिवधोनाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, बाणासुरके अपने बलसहित संग्राममें स्थित रहनेपर दानव फिर युद्धकरनेकी इच्छासे शस्त्र ले लेकर देवताओंकी ओरको चले ॥ १ ॥

अमिततेजस्वी विष्णु बलिके पुत्र बाणको अजेय जानकर देवताओंको बुलाकर उनसे बोले कि, तुम विगतज्वर (निर्भय) होकर युद्ध करो ॥ २ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता विष्णुकी आज्ञानुसार दानवोंके साथ युद्ध करनेलगे, इसी अवसरमें विष्णु अन्तर्धान होगये ॥ ३ ॥ शुक्राचार्य माधवको अन्तरर्धान हुए जानकर बलिसे बोले कि, हे बले ! गोविन्दने देवताओंको त्याग किया है तुम अब उन्हैं जीतो ॥४॥ जनार्दनके चले जानेपर बलि पुरोहितजीके वचनके अनुसार गदाको ले देवताओंकी सेनाकी ओरको चले ॥५॥ यह देखकर बाणासुर अपनी सहस्रभुजाओंसे विविधप्रकारके आयुधोंको ग्रहणकर देवताओंकी सेनाके सन्मुख जाकर उनमें से हजार २ को एक २ बारमें निहत करने लगा ॥ ६ ॥ तब मय मायाका आश्रय कर विविधभाँतिकी मूर्तिको धारणकर देवताओंकी सेनाके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ७ ॥ विद्युज्जिह्वपर भद्र, वृषपर्वा, असितेक्षण, विपाक, विक्षर यहभी सेनासहित देवताओंपर प्रहार करनेलगे ॥ ८ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता दैत्योंसे पीडित हो जनार्दनके पास गये और युद्धसे विमुख होकर बैठे ॥ ९ ॥ बलि और बाण इत्यादि दैत्योंने त्रिलोकीके जयकी इच्छासे उन रणसे भागे हुए देवताओंका पीछा किया ॥ १० ॥ इन्द्रसहित सब देवता दैत्योंसे पीडित और भयभीत हो स्वर्गको छोडकर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे जब वह ब्रह्मलोकको चलेगये तब राजा बलि पुत्र सेवक और मित्रोंके साथ स्वर्गभोग करनेलगे ॥ १२ ॥ इनमेंसे बलि तो स्वयं इन्द्र हुए, उनके पुत्र बाणने यमका अधिकार ग्रहण किया, मय वरुण हुए, राहु चंद्रमाका कार्य करनेलगे, ह्राद नामके महाअसुर ॥ १३ ॥ स्वर्भानु (सूर्य) हुए, शुक्रने बृहस्पतिका

विष्णुरप्यमितौजास्तंज्ञात्वाज्ञेयंबलेःसुतम् ॥ प्राहामंत्र्यसुरान्सर्वान्युध्यध्वंविगतज्वराः ॥ २ ॥ विष्णुनाथसमादिष्टादेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ युयुधुर्दानवैः
सार्धंविष्णुस्त्वंतरधीयत ॥ ३ ॥ माधवंगतमाज्ञायशुक्रोबलिमुवाचह ॥ गोविंदेनसुरास्त्यक्तास्त्वंजयस्वाधुनाबले ॥ ४ ॥ सपुरोहितवाक्येनप्रीतोयाते
तेजनार्दने ॥ गदामादायतेजस्वीदेवसैन्यमभिद्रुतः ॥ ५ ॥ बाणोबाहुसहस्रेणगृह्यप्रहरणान्यथ ॥ देवसैन्यमभिद्रुत्यनिजघानसहस्रशः ॥ ६ ॥ मयोपिमाया
मास्थायतैस्तैरूपांतरैर्मुने ॥ योधयामासबलवानमराणांवरूथिनीम् ॥७॥ विद्युज्जिह्वःपरोभद्रोवृषपर्वासितेक्षणः ॥ विपाकोविक्षरःसैन्यंतेपिदेवानुपाद्रवन् ॥
॥ ८ ॥ तेहन्यमानादितिजैर्देवाःशक्रपुरोगमाः ॥ गतेजनार्दनेदेवेप्रायशोविमुखाभवन् ॥ ९ ॥ तान्प्रभग्नान्सुरगणान्बलिबाणपुरोगमाः ॥ पृष्ठतस्त्वद्रव
न्सर्वेत्रैलोक्यविजिगीषवः ॥ १० ॥ संसाध्यमानादैतेयैर्देवाःसेंद्राभयातुराः ॥ त्रिविष्टपंपरित्यज्यब्रह्मलोकमुपागताः ॥ ११ ॥ ब्रह्मलोकंगतेष्वित्थंसेंद्रे
ष्वपिसुरेषुवै ॥ स्वर्गभोक्ताबलिर्जातःसभृत्यसुतबांधवैः ॥ १२ ॥ शक्रोभूद्बलवान्ब्रह्मन्बलिर्बाणोयमोभवत् ॥ वरुणोभून्मयःसोमोराहुर्ह्रादोमहासुरः ॥
॥ १३ ॥ स्वर्भानुरभवत्सूर्यःशुक्रश्चासीद्बृहस्पतिः ॥ येन्येप्यधिकृतादेवास्तेषुजाताःसुरारयः ॥ १४ ॥

पद ग्रहण किया और अन्यान्य असुर अन्य देवताओंके कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १४ ॥ पांचवें कलियुगकी आदिमें और द्वापरयुगके अति दारुण अन्तमें देवता और दैत्योंसे युद्ध हुआ था, जिसमें बलिने इन्द्रपदका अधिकार किया ॥ १५ ॥ सप्तपाताल और भूर्भुवः स्वः नामसे विख्यात सम्पूर्ण लोक इनके वशी भूत हुए, इसप्रकारसे बलि दशलोकोंके अधिपति होकर ॥ १६ ॥ दुर्लभ भोगोंको भोगता हुआ स्वर्गमें निवास करनेलगा, विश्वावसु इत्यादि गंधर्व वहाँ उसकी सेवामें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥ तिलोत्तमादि अप्सरायें नृत्य करनेलगीं, यक्ष और विद्याधर इत्यादि बाजे बजानेलगे ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! दैत्येश्वर बलिने इसप्रकारसे स्वर्गीय भोगोंको भोगते समय पितामह प्रह्लादको मनहीमनमें स्मरण किया ॥ १९ पौत्रके स्मरण करतेही महाभागवत प्रह्लादजी शीघ्रही पातालसे स्वर्गमें आये ॥ २० ॥

पंचमस्यकलेरादौद्वापरांतेसुदारुणे ॥ देवासुरोभूत्संग्रामोयत्रशक्रोप्यभूद्बलिः ॥ १५ ॥ पातालास्तस्यसप्तासन्वशेलोकत्रयंतथा ॥ भूर्भुवःस्वःप
रिख्यातंदशलोकाधिपोबलिः ॥ १६ ॥ स्वर्गेस्वयंनिवसतिभुंजन्भोगान्सुदुर्लभान् ॥ तत्रोपासंतगंधर्वाविश्वावसुपुरोगमाः ॥ १७ ॥ तिलोत्तमाद्याह्यप्सरसो
नृत्यंतिसुरतापसाः ॥ वादयंतिचवाद्यानियक्षविद्याधरादयः ॥ १८ ॥ त्रैविष्टपानसौभोगंभुंजन्दैत्येश्वरोबलिः ॥ सस्मारमनसाब्रह्मन्प्रह्लादंसपितामहम् ॥
॥ १९ ॥ संस्मृतश्चसपौत्रेणमहाभागवतोऽसुरः ॥ समभ्यागात्त्वरायुक्तःपातालात्स्वर्गमव्ययम् ॥ २० ॥ तमागतंसमीक्ष्यैवत्यक्त्वा
सिंहासनंबलिः ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाववंदेचरणावुभौ ॥ २१ ॥ पादयोःपतितंवीरंप्रह्लादस्त्वरितोबलिम् ॥ समुत्थाप्यपरिष्वज्यावेशपरमासने ॥
॥ २२ ॥ तंबलिःप्राहभोतातत्वत्प्रसादात्सुरामया ॥ निर्जिताःशक्रराज्यंचहृतंवीर्यंबलान्मया ॥ २३ ॥ तदिदंतातमद्वीर्यविर्जितसुरोत्तमम् ॥
त्रैलोक्यराज्यंभुंक्ष्वत्वंमयिभृत्येपुरःस्थिते ॥ २४ ॥ ऐरावतःपुण्ययुतोभविष्यामियथान्वहम् ॥ त्वदंघ्रिपूजाभिरतस्त्वदुच्छिष्टान्नभोजनः ॥ २५ ॥
नसपालयतेराज्यंधृतिर्भवतिसत्तम ॥ नयोनुतिष्ठतिगुरून्शुश्रूषांकुरुतेनयः ॥ २६ ॥

उनको आयेहुए देख बलिने उसीसमय सिंहासनको छोड़कर हाथ जोड़ उनके चरणोंकी वंदना की ॥ २१ ॥ प्रह्लादजी चरणोंमें पड़ेहुए वीर बलिको शीघ्रतासे उठाकर आलिंगन कर फिर परमासनपर बैठे ॥ २२ ॥ बलि उनसे बोले कि, हे तात ! मैं ने आपके प्रसादसे देवताओंको परास्त कर बलकरके इन्द्रका राज्य हरण और उनके वीर्यको शुष्क किया है ॥ २३ ॥ हे पितः ! इसप्रकारसे सुरोत्तम इन्द्र मेरे वीर्यसे निर्बल होगये हैं, आप इस समय उनके इस त्रिलोकीके राज्यको ग्रहण कीजिये, मैं आपके निकट रहकर सेवकका कार्य करूंगा ॥ २४ ॥ जैसे पुण्ययुक्त ऐरावत है मैंभी उसीप्रकार आपके चरणोंकी सेवामें रहकर आपके उच्छिष्ट अन्नको भोजन करूंगा ॥ २५ ॥ हे सत्तम ! जो गुरुकी आज्ञामें नहीं चलता आर उनकी सेवा नही करता वह कभी राज्यपालनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २६ ॥

हे द्विजोत्तम ! बलिके कहेहुए इन वचनोंको सुनकर प्रह्लादजी धर्मअर्थको विचारकर यह वचन बोले ॥ २७ ॥ कि, मैंने पहलेअकंटक राज्य कियाथा, सबका अंतःकरणतक शासन कियाथा, सुहृदोंकी पूजा कीथी, इच्छानुसार दान किया था, सबमें मित्रता उत्पन्न की थी, हे बले ! इन सम्पूर्ण कार्योंको करके अब योगसाधन में प्रवृत्त हुआहूँ ॥ २८ ॥ हे वत्स ! तथापि तुम्हारे दियेहुए राज्यको विधिपूर्वक ग्रहणकर पुनर्वार यह मैंने तुम्हेंही दिया; इसप्रकारसे तुम सर्वदा गुरुसेवामें रत रहो ॥ ॥ २९ ॥ यह कहकर उन्होंने बलिका दहिना हाथ पकड़कर उसे उसी समय सिंहासनपर बैठाया ॥ ३० ॥ बलि महेन्द्रके सर्वरत्नमय शुभसिंहासनपर बैठकर साक्षात् इन्द्रकी समान शोभायमान हुए ॥ ३१ ॥ इसप्रकारसे विराजमान होकर हाथ जोड़ मेघकी समान गंभीर वचन प्रह्लादजीसे बोले ॥ ३२ ॥ कि, हे तात !

ततस्तदुक्तंबलिनावाक्यंश्रुत्वाद्विजोत्तम ॥ प्रह्लादोवचनंप्राहधर्मकामार्थसाधनम् ॥ २७ ॥ मयाकृतंराज्यमकंटकंपुराप्रशासितांतःसुहृदोनुपूजिताः ॥
दत्तंयथेष्टंजनितास्तथात्मजाःस्थितोबलेसंप्रतियोगसाधकः ॥ २८ ॥ गृहीतंपुत्रविधिवन्मयाभूयोर्पितंतव ॥ एवंभवगुरूणांत्वंसदाशुश्रूषणेरतः ॥
॥ २९ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंकरेत्वादायदक्षिणे ॥ शाक्रेसिंहासनेब्रह्मन्बलिंतूर्णमवेशयत् ॥ ३० ॥ सोपविष्टोमहेन्द्रस्यसर्वरत्नमयेशुभे ॥ सिंहासने
दैत्यपतिःशुशुभेमघवानिव ॥ ३१ ॥ तत्रोपविष्टश्चैवासौकृतांजलिपुटोबलिः ॥ प्रह्लादंप्राहवचनंमेघगंभीरयागिरा ॥ ३२ ॥ यन्मयाताततर्कव्यंत्रैलोक्यं
परिरक्षता ॥ धर्मार्थकाममोक्षेभ्यस्तदादिशतुनोभवान् ॥ ३३ ॥ तद्वाक्यसमकालंचशुक्रःप्रह्लादमब्रवीत् ॥ यद्युक्तंतन्महाबाहोवदस्वास्योत्तरंवचः ॥
॥ ३४ ॥ वचनंबलिशुक्राभ्यांश्रुत्वाभागवतोऽसुरः ॥ प्राहधर्मार्थसंयुक्तंप्रह्लादोवाक्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ यदायतिक्षमंराजन्वित्तंत्रिभुवनस्यच ॥ अविरो
धेनधर्मस्यअर्थस्योपार्जनंचतत् ॥ ३६ ॥ सर्वसत्त्वानुगमनंत्रिवर्गस्यफलंचयत् ॥ परत्रेहचयच्छ्रेयःपुत्रतत्कर्मचाचर ॥३७॥ यथाश्लाघ्यंप्रयास्यद्ययथा
कीर्तिर्भवेत्तव ॥ यथानायशसेयोगस्तथाकुरुमहाद्युते ॥ ३८ ॥

त्रिलोकीकी रक्षामें प्रवृत्त होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष उनके बीचमें जो मुझे करना होगा सो आप उपदेश कीजिये ॥ ३३ ॥ उनके यह वचन सुनकर शुक्राचार्य प्रह्लादजीसे बोले कि, हे महाबाहो ! जो युक्तियुक्त हो उसीके अनुसार इसको कहिये ॥ ३४ ॥ बलि और शुक्राचार्य इन दोनोंके वचन सुनकर भगवद्भक्तियुक्त प्रह्लादजी धर्म अर्थयुक्त यह श्रेष्ठ वचन बोले ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! जो त्रिलोकीके धन परिणामतक योग्य हो उसीको धर्मके अविरोधसे संग्रह करना इसीका नाम अर्थका उपार्जन है ॥ ३६ ॥ सब प्राणियोंके जो अनुकूल हो, जो त्रिवर्गों (धर्मार्थकामों) को जो देवै, और जो इसलोक और परलोकमें कल्याण साधन करै ऐसे कार्योंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त हो ॥ ३७ ॥ आप जिससे सबके श्लाघनीय होसको, जिससे कीर्ति संग्रह हो और जिससे कलंक स्पर्श न करै उसीके

अनुसार आचरण करो ॥ ३८ ॥ हे महाद्युते ! महापुरुषलोक इसी निमित्तसे समृद्धिकी कामना करतेहैं कि, हमारे गृहमें कुलीन व्यसननिमग्न, अपने ज्ञातियोंसे बहिष्कृत सखा वृद्ध ज्ञाति, गुणवान्, ब्राह्मण, कीर्ति, और प्रताप यह सब परम संतुष्ट (चिरस्थायी) होकर निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसकारण हे पुत्र ! तुम जैसे सत्कुलमें उत्पन्न हुएहो, और राज्यपदपर प्रतिष्ठित हुएहो इसकारण जिससे इन सबका तुम्हारे गृहमें वास होसकै हे अमलसत्त्व ! तुम उसी प्रकारका उपाय करो, ऐसा होनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति होगी ॥ ४१ ॥ पृथ्वीके सर्वदा ब्राह्मणों सेभूषित, क्षत्रियोंसे अन्वित; वैश्योंसे अध्युषित और शुश्रूषणशक्ति शूद्रके उद्भावित होनेसे नरेन्द्र समृद्धि प्राप्त करतेहैं ॥ ४२ ॥ इसकारणसे वेदशास्त्रसम्पन्न बडे २ ब्राह्मणलोक नानाप्रकारके यज्ञका अनुष्ठान तुमसे करवावै और स्वयं उसका अनुष्ठान करैं,

एतदर्थंश्रियंदीप्तांकांक्षंतेपुरुषोत्तमाः ॥ येनैतेचगृहेस्माकंनिवसंतिसुनिर्वृता ॥ ३९ ॥ कुलजोव्यसनेमग्नः सखाज्ञातिबहिष्कृतः ॥ वृद्धोज्ञातिर्गुणीवि
प्रःकीर्तिश्चयशसासह ॥ ४० ॥ तस्माद्यथैतेनिवसंतिपुत्रंराज्यस्थितस्येहकुलोद्भवस्य ॥ तथायतस्वामलसत्त्वचेष्टयथायशस्वीभवितासिलोके ॥ ४१ ॥
भूम्यांसदाब्राह्मणभूषितायांक्षत्रान्वितायांदृढवापितायाम् ॥ शुश्रूषणासक्तिसमुद्भवायामृद्धिंप्रयांतीहनराधिपेन्द्राः ॥ ४२ ॥ तस्माद्द्विजाग्र्याःश्रुतिशास्त्र
युक्तानराधिपास्तेप्रतियाजयंतु ॥ यजंतुदिव्यैःक्रतुभिर्द्विजेंद्रायज्ञाग्निधूमेननृपस्यशांतिः ॥ ४३ ॥ तपोध्ययनसंपन्नायजनेध्यापनेरताः ॥ संतुविप्राः
क्षत्रपूज्यास्त्वत्तोनुज्ञामवाप्यहि ॥ ४४ ॥ स्वाध्याययज्ञनिरतादातारःशस्त्रजीविनः ॥ क्षत्रियाःसंतुदैत्येंद्रप्रजापालनधर्मिणः ॥ ४५ ॥ यज्ञाध्ययनसं
पन्नादातारःकृषिकारिणः ॥ पाशुपाल्यंप्रकुर्वाणावैश्याविपणिजीविनः ॥ ४६॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशांसदाशुश्रूषणेरताः ॥ शूद्राःसंतुसुरश्रेष्ठतवाज्ञाकारिणः
सदा ॥ ४७ ॥ यदावर्णाःस्वधर्मस्थाभवंतिदितिजेश्वराः॥धर्मवृद्धिस्तदास्याद्वैधर्मवृद्धौनृपादयः ॥ ४८ ॥ तस्माद्वर्णाःस्वधर्मस्थास्त्वयाकार्याःसदाबले ॥
तद्वृद्धौभवतोवृद्धिस्तद्धानौहानिरुच्यते ॥ ४९ ॥

ऐसा करो. कारण कि, यज्ञके धूमहीसे राजाकी शान्ति होती है ॥ ४३ ॥ तपस्या और वेदाध्ययनमें आसक्त, याजन और अध्यापनमें अनुरक्त क्षत्रियों से पूज्य ब्राह्मण जिसप्रकार तुम्हारी अनुज्ञा (अनुमति) के अनुसारी हों ॥ ४४ ॥ तुम्हारे अधिकारमें क्षत्रिय जैसे स्वाध्याय और यज्ञमें निरत दाता और शस्त्रजीवी होकर प्रजापालनधर्मका अनुवर्तन करैं ॥ ४५ ॥ सब वैश्य जिसप्रकार यज्ञ अध्ययनयुक्त, दाता, कृषिकार, विपणजीवी और पशुओं के पालन करनेमें नियुक्त हो ॥ ४६ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! शूद्रभी जिसप्रकार क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा कर सर्वदा तुम्हारी आज्ञामें चलैं ॥ ४७ ॥ हे दितिजेश्वर ! सम्पूर्ण वर्णोंके अपने २ धर्मके अनुसारी होनेपर धर्मकी वृद्धि होती है, और धर्मकी वृद्धिसे राजाकी समृद्धि होती है ॥ ४८ ॥ इसकारण हे बले ! तुम सब वर्णोंको अपने २ धर्मपर स्थित

रक्खो, उनकी समृद्धिसेही तुम्हारी वृद्धि और उनकी हानिसेही तुम्हारी हानि होगी ॥ ४९ ॥ हे नराधिपेन्द्र ! महात्मा बलि यह वचन सुनकर कुछ देरतक चुप रहकर
बोले कि, आप जो आज्ञा करते हैं ऐसाही होगा॥५०॥इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे प्रह्लादवाक्ये भाषाटीकायां बलिराज्यंप्राप्तिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥
पुलस्त्यजी बोले कि, हे तपोधन ! देवताओंके ब्रह्मलोक चलेजानेपर बलि सर्वदा धर्मान्वितहो त्रिलोकीका पालन करनेलगे ॥ १ ॥ कलियुग, सतयुगकी समान
उस समय सम्पूर्ण संसारमें धर्म देखकर अपने स्वभावके निवारण होनेके कारण ब्रह्माजीकी शरण गया ॥ २ ॥ उसने जाकर देखा कि, ब्रह्माजी इन्द्रसहित देव
ताओंके बीचमें बैठे हुए अपनी कांतिसे देवता और असुरोंके सहित अपने निवास स्थान (ब्रह्मलोक) को प्रकाशमान कर रहे हैं॥ ३॥ कलि सबके ईश्वर ब्रह्माजीको

इत्थंवचःश्राव्यनराधिपेंद्रोबलिर्महात्मासबभूवतूष्णीम् ॥ ततोयदाज्ञापयसेकरिष्येइत्थंबलिःप्राहवचोमहर्षे ॥ ५० ॥ इति श्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततोगतेषुदेवेषुब्रह्मलोकंतपोधन ॥ त्रैलोक्यंपालयामासबलिर्धर्मान्वितःसदा ॥ १ ॥
कलिस्तदाधंर्मयुतंजगद्दृष्ट्वाकृतेयथा ॥ ब्रह्माणंशरणंभेजेस्वभावस्यनिषेधनात् ॥ २ ॥ गत्वासदद्दशेदेवंसेंद्रैर्देवैःसमन्वितम् ॥ स्वदीप्त्याद्योतयंतंचस्वदे
शंससुरासुरम् ॥ ३ ॥ प्रणिपत्यतमाहार्थकलिर्ब्रह्माणमीश्वरम् ॥ ममस्वभावोबलिनानाशितोदेवसत्तम ॥ ४ ॥ तंप्राहभगवान्ब्रह्मास्वभावंजगतोऽपिहि ॥
नकेवलंहिभवतोहृतस्तेनबलीयसा ॥५ ॥ पश्यस्युत्तिष्ठदेवेंद्रंवरुणंसहमारुतम् ॥ भास्करोपिहिदीनत्वंप्रयातोहिबलाद्बलेः॥६॥नतस्यकश्चित्त्रैलोक्येप्रति
षेद्धास्तिकर्मणः ॥ ऋतेसहस्राशिरसंहरिंदशशतांघ्रिकम् ॥७॥ सभूमिंचतथानाकंराज्यंलक्ष्मींयशोबलम् ॥ समाहरिष्यतिबलिःकर्तासौधर्मगोचरम् ॥८॥
इत्येवमुक्तोदेवेनब्रह्मणाकलिरव्ययः ॥ दीनान्दृष्ट्वासशक्रादीन्बिभीतकवनंगतः ॥ ९ ॥ कृतंप्रावर्ततदाकलिर्नासीज्जगत्त्रये ॥ धर्मोभवच्चतुष्पाद
श्चातुर्वर्ण्येपिनारद ॥ १० ॥

प्रणामकर बोला कि, हे द्विजसत्तम ! राजा बलिने मेरा स्वभाव विनष्ट करदिया है ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, बलवान् बलिने केवल तुम्हाराही स्वभाव नहीं
उसने सम्पूर्ण जगतका स्वभाव हरण किया है॥५॥उठकर देखो कि, इन्द्र वरुण और मरुद्गणोंकी कैसी शोचनीय अवस्था होगई है, सूर्य बलिकेहीबलसे हीनकांति
होगये हैं ॥ ६ ॥ त्रिलोकीमें ऐसा कोई नहीं है जो बलिके कार्यको निवारण करसके, केवल एकमात्र सहस्र शिर हजार चरण भगवान् विष्णुही उसका दमन करनेमें
समर्थ हैं॥७॥एक बलिही धर्मके अनुष्ठानमें प्रयुक्त हैं.स्वर्ग,मर्त्य, राज्य, लक्ष्मी, यश और बल यह सभी उसने अपने अधिकारमें किये हैं॥८॥भगवान्ब्रह्माजीके इसप्रकार
कहनेपर कलि इन्द्रादि देवताओंको क्षीणप्रभा देखकर विभीतक (बहड़ोंके) वनको चला गया ॥ ९ ॥ तब सतयुगका प्रादुर्भाव हुआ, कलि फिर त्रिलोकीमें न रहा,

हे नारद ! चारों वर्णोंमेंही चार चरण धर्म प्रवर्तित हुआ ॥ १० ॥ तपस्या, अहिंसा, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दया, दान, कृतज्ञता, शुश्रूषा, यज्ञकर्म ॥ ११ ॥ यह सभी सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होगये. हे ब्रह्मन् ! इसप्रकारसे बलवान् बलिने कृतयुगको संतुष्ट किया ॥ १२ ॥ सब वर्णही अपने २ धर्ममें स्थित हुये, ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्यादिक संम्पूर्ण आश्रमोंको यथावत् ग्रहण किया, क्षत्रिय हर्षित होकर सर्वदाही प्रजापालनधर्ममें प्रवृत्त हुये ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण संसारमें धर्मोत्तर होकर स्थिति की, उस समय त्रिलोकीकी लक्ष्मी राजा बलिके निकट गई ॥ १४ ॥ बलि इन्द्रकी लक्ष्मीको आती हुई देखकर बोले कि, तुम कौनहो और किसकारण आईहो सो मेरे निकट कहो ॥ १५ ॥ कमलकी मालासे विभूषित लक्ष्मीजी उनके यह वचन सुनकर बोलीं कि, हे बले ! जिस कारण बलपूर्वक तुम्हारे निकट आई

तपोऽहिंसाचसत्यंचशौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ दयादानंत्वानृशंस्यंशुश्रूषायज्ञकर्मच ॥ ११ ॥ जगंत्येतानिसर्वाणिपरिव्याप्यस्थितानिहि ॥ बलाद्विचलितो
ब्रह्मंस्तुष्टोपिहिकृतःकृतः ॥ १२ ॥ स्वधर्मस्थायिनोवर्णाआश्रमांश्चाविशन्द्विजाः ॥ प्रजापालनधर्मस्थाःसदैवमनुजर्षभाः ॥ १३ ॥ धर्मोत्तरेवर्तमाने
ब्रह्मन्नस्मिञ्जगत्त्रये ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीरगमत्तदानींदानवेश्वरम् ॥ १४ ॥ तमागतांनिरीक्ष्यैवसहस्राक्षश्रियंबलिः॥पप्रच्छकासिमांब्रूहिकेनाप्यर्थेनचागता ॥
॥ १५ ॥ सातद्वचनमाकर्ण्यतदाश्रीःपद्ममालिनी ॥ बलेशृणुचयस्मात्त्वामायातामहिषीबलात् ॥ १६ ॥ अप्रतर्क्यबलोदेवोयोसौचक्रगदाधरः ॥
तेनत्यक्तस्तुमघवांस्ततोहंत्वामिहागता ॥ १७ ॥ सनिर्ममेयुवत्यस्तुचतस्रोरूपसंयुताः ॥ श्वेतांबरधराचैवश्वेतस्रगनुलेपना ॥ १८ ॥ श्वेतवृंदारकारूढा
सत्त्वाढ्याश्वेतविग्रहा ॥ रक्तांबरधराचान्यारक्तस्रगनुलेपना ॥ १९ ॥ रक्तवाजिसमारूढारक्तांगीराजसीहिसा ॥ पीतांबरापीतवर्णापीतस्रगनुलेपना ॥
॥ २० ॥ सौवर्णस्यंदनारूढातामसंगुणमाश्रिता ॥ नीलांबरानीलमाल्यानीलगंधालिसप्रभा ॥ २१ ॥

हूँ और जिसकी रानी हूँ सो श्रवण करो ॥ १६ ॥ जिसका बल तर्कमें आता न हो उन्हीं भगवान् चक्रगदाधर विष्णुने देवराजको त्याग किया है इसी कारणसे तुम्हारे निकट आई हूँ ॥ १७ ॥ उन्होंने चार युवतियोंकी सृष्टि की वह सभी रूपशालिनीथी, इनमेंसे कोई तो श्वेत वस्त्र और श्वेत माला पहरे और श्वेत अनुलेपनसे विभूषित ॥ १८ ॥ श्वेत हाथीपर चढीहुई श्वेत शरीरयुक्त और सत्व गुणसे अधिष्ठितथी, कोई लाल वस्त्र और लाल माला पहरे और रक्तचंदनसे उपलक्षित ॥ १९ ॥ रक्तवर्णके घोडेपर चढ़ी हुई रक्तांगी राजसगुणोंसे संयुक्त थी, कोई पीले वस्त्रसे विमंडित और पीले वर्णोंसे अलंकृत पीतमाला और पीले अनुलेपनसे उपलक्षितथी ॥ २० ॥ सुवर्णवर्णके रथपर चढ़ी हुई और तामस गुणोंसे समाश्रितथी कोई तो नीले वस्त्र और नीली माला और नीले चंदनसे

शोभायमान भौंरेकी समान कान्तियुक्ता ॥ २१ ॥ नीलवृषभपर अधिष्ठिता और त्रिगुणोंसे विभूषिता थी, इनमें जो कन्या श्वेताम्बरधारिणी सत्त्वगुणवती
हाथीपर चढ़ी हुई थी ॥ २२ ॥ उसने ब्रह्मा, चंद्र और चंद्रके अनुवर्तियों (बबूले आदिकों) का आश्रय किया, और जो स्त्री लाल वर्णकी लाल
वस्त्र पहरे लाल घोड़ेपर चढ़ी और रजोगुणसे युक्त थी ॥ २३ ॥ उसको देवराज मनु और मनुके पुत्रके हाथमें सौंप दी, फिर जो स्त्री पीताम्बर पहरें सुभगा रथपर चढ़ी
हुई सुवर्णवर्णकीथी ॥ २४ ॥ उसे इन्द्रराजगण और वैश्यजातिके हाथमें प्रदान किया, और नीले वस्त्र पहरे हुए, भौंरेके समान वर्णवाली वृषपर चढ़ी
चौथी कन्याने ॥ २५ ॥ दानव नैर्ऋत, शूद्र, और विद्याधर इनका आश्रय किया, उसमेंसे श्वेतरूपकन्याको ब्राह्मणादिकने सरस्वती नामसे पुकारा ॥ २६ ॥ और

नीलंवृषंसमारूढात्रिगुणासाप्रकीर्तिता ॥ यासाश्वेतांबराश्वेतासत्त्वाढ्याकुंजरस्थिता ॥ २२ ॥ साब्रह्माणंसमायाताचन्द्रचंद्रानुगानपि ॥ यासारक्तारक्त
वासावाजिस्थारजसान्विता ॥ २३ ॥ तांप्रादाद्देवराजायमनवेतत्सुतायच ॥ पीतांबरायासुभगारथस्थाकनकप्रभा ॥ २४ ॥ प्रजापतिभ्यस्तांप्रादाच्छक्रायच
विशत्सुच ॥ नीलवस्त्रालिसदृशायाचतुर्थीवृषास्थिता ॥ २५ ॥ सादानवान्नैर्ऋतांश्चशूद्रान्विद्याधरानपि ॥ विप्राद्याःश्वेतरूपांतांकथयंतिसरस्वतीम् ॥
॥ २६ ॥ स्तुवंतिब्रह्मणासार्धमखेमंत्रादिभिःसदा ॥ क्षत्रियारक्तवर्णांतांजयश्रींचशशंसिरे ॥ २७ ॥ साचंद्रेणसुरश्रेष्ठमनुनाचयशस्विनी ॥ वैश्यास्तां
पीतवसनांकनकांगींसदैवहि ॥ २८ ॥ स्तुवंतिलक्ष्मीमित्येवप्रजापालास्तथैवहि ॥ शूद्रास्तांनीलवर्णांगींस्तुवंतिहिसुभक्तितः ॥ २९ ॥ प्रियदेवीति
नाम्नातांसदैत्यैराक्षसैस्तथा ॥ एवंविभक्तास्तानार्यस्तेनदेवेनचक्रिणा ॥ ३० ॥ एतासांचस्वरूपस्थास्तिष्ठंतिनिधयोऽव्ययाः ॥ इतिहासपुराणानिवेदाः
सांगास्तथोक्तयः ॥ ३१ ॥ चतुःषष्टिकलाश्वेतामहापद्मोनिधिःस्थितः ॥ रत्नानिस्वर्णरजतंगजाश्वरथभूषणम् ॥ ३२ ॥ शस्त्रास्त्रादिकवस्तूनिरक्तापद्मो
निधिःस्मृतः ॥ गोमहिष्यःखरोष्ट्राश्वसुवर्णांबरभूमयः ॥ ३३ ॥

ब्रह्माजीके सहित यज्ञमें मंत्रादिद्वारा उसकी सर्वदा स्तुति की, क्षत्रियोंने लाल वर्णकी कन्याको श्रीनामसे निर्देश किया ॥ २७ ॥ हे नारद ! वह यशस्विनी
मनु और चंद्रमाके साथ मिली हुई है, वैश्य और प्रजापालन करनेवाले राजा पीत वसनधारी कनकाङ्गीको सर्वदा लक्ष्मी कहकर उल्लेख और उनकी सर्वदा स्तुति
करते हैं. शूद्र, राक्षस और दैत्यभी प्रियदेवी इस नामसे स्तुति करते हैं, भगवान् चक्रीने इसप्रकारसे उन चारों स्त्रियोंको विभक्त किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥
इतिहास, पुराण, साङ्ग वेद और सभी प्रकारके उक्ति और नानाविधि अव्यय (अविनाशी) रूपसे इनके स्वरूपमें प्रतिष्ठित हुए हैं ॥ ३१ ॥ इनमें श्वेता जो है
उसके स्वरूपमें चौंसठ कला और महापद्मनामक निधि, रत्न, सुवर्ण, रजत, गज, अश्व, रथ, भूषण सभी स्थित हैं ॥ ३२ ॥ और शस्त्र अस्त्रादिक वस्तुएँ और पद्म

नामक निधि गो, महिषी और खर (गधा) ऊँट, सुवर्ण, वस्त्र और पृथ्वी इन सभीने रक्तवर्णका आश्रय किया ॥ ३३ ॥ औषधी और सम्पूर्ण पशु और महानील नामक निधि यह सम्पूर्ण वस्तुएँ पीतवर्णमें प्रतिष्ठित हैं, और सब जातियोंमें एक प्रतिष्ठित जाती यही है ॥ ३४ ॥ इसके अतिरिक्त अन्यान्य वस्तुओंकी संहारकारिणी शंखनिधिरूपा नीलवर्णा हैं, हे दानव ! यह सब कन्यायें जिसका आश्रय करती हैं उसके स्वभावादि इसप्रकार होजाते हैं सो कहती हूँ श्रवण करो ॥ ३५ ॥ महापद्माश्रित सम्पूर्ण लोक सत्य और शौचाभियुक्त और बलवान् और उत्सवमें संसक्त होते हैं ॥ ३६ ॥ पद्माश्रित मनुष्यमात्रही, यज्वा, सुभग, दर्पित, मालाधारी बहुत दक्षिणाके दाता और सर्वसुख सामान्ययुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥ महानीलाश्रित सम्पूर्णलोक कुछ २ सत्य और अनृत (मिथ्या) से संयुक्त दाता, शरण्य, दानशील और उचित अनुचित दोनों प्रकारके कार्यमें होते हैं ॥ ३८ ॥ हे बले ! शंखाश्रित मनुष्य नास्तिक शौचरहित कृपण, भोगवर्जित और चोरी मिथ्यामें आसक्त होते हैं ॥ ३९ ॥ हे दानव ! मैंने तुम्हारे निकट इनके तत्त्वनिर्णयको कीर्तन किया ॥ ४० ॥ मैं वह रागिणी नामकी जयश्री हूँ, तुम्हारे निकट आईहूँ, हे दानवपते ! मेरी साधुसम्मता प्रतिज्ञा यह है कि, ॥ ४१ ॥ मैं शौर्यांशपुरुषका आश्रय करती हूँ, क्लीबके संसर्गमें कभी नहीं जाती, त्रिलोकीमें तुम्हारी समान बलवान् कोई दूसरा नहीं है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! तुम अत्यन्त बलशालीहो, इसीकारण मुझे अक्षय प्रीति विधान की है, देखो ! तुमने युद्धमें विक्रम प्रकाश करके देवराजको परास्त किया है ॥ ४३ ॥ इसीकारण हे दानव ! तुम्हारे ऊपर मेरी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न होती है अधिक क्या कहूँ तुम सबसे अधिक बलवान्हो, और

औषध्यःपशवःपीतामहानीलोनिधिःस्थितः ॥ सर्वासामपिजातीनांजातिरेकाप्रतिष्ठिता ॥ ३४ ॥ अन्येषामपिसंहर्त्रीनीलाशंखोनिधिःस्थितः ॥ एता
भिश्चस्थितानांचयानिरूपाणिदानव ॥ भवंतिपुरुषाणांवैतन्निबोधवदामिते ॥ ३५ ॥ सत्यशौचाभिसंयुक्ताबलदानोत्सवेरताः ॥ भवंतिदानवपते
महापद्माश्रितानराः ॥ ३६ ॥ यज्विनोसुभगादृप्तामालिनोबहुदक्षिणाः ॥ सर्वसामान्यसुखिनोनराःपद्माश्रिताःस्थिताः ॥ ३७ ॥ सत्यानृतसमायु
क्तादानाशरणयज्विनः ॥ न्यायान्यायव्ययोपेतामहानीलाश्रितानराः ॥ ३८ ॥ नास्तिकाःशौचरहिताःकृपणाभोगवर्जिताः ॥ स्तेयानृतकथायुक्तान
राःशंखाश्रिताबले ॥ ३९ ॥ इत्येवंकथितस्तुभ्यमासांदानवनिर्णयः ॥ ४० ॥ अहंसारागिणीनामजयश्रीस्त्वामुपागता ॥ ममास्तिदानवपतेप्रतिज्ञासाधु
संमता ॥ ४१ ॥ समाश्रयामिशौर्यांशंनचक्लीबंकथंचन ॥ नचास्तितवतुल्योन्यस्त्रैलोक्येपिबलान्वितः ॥ ४२ ॥ त्वयाबलवताराजन्प्रीतिर्मेजनि
ताध्रुवा ॥ यत्त्वयायुधिविक्रम्यदेवराजोविनिर्जितः ॥ ४३ ॥ अतोमेपरमप्रीतिर्जातादानवशाश्वती ॥ दृष्ट्वातेपरमंसत्त्वंसर्वेभ्योपिबलाधिकम् ॥ ४४ ॥

परम सत्यवादीहो, मैं तुम्हारेमें बँधगईहूँ ॥ ४४ ॥ तुम शौर्य, मानी और वीरहो इसी कारण मैं स्वयं आई हूँ, अथवा हे दानवश्रेष्ठ ! तुमने हिरण्यकशिपुके कुलमें जन्म लिया है, और असुरोंके राजा हुए हो, तुम्हारे पक्षमें ऐसे कर्मानुष्ठानमें कुछ विस्मयका विषय नहीं है, हे राजन् ! तुम अपने प्रपितामह (दादा) दैत्येन्द्र प्रह्लाद जीसेभी बढकर प्रतापी हुएहो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इसीकारणसे तुमने पहले इन्द्रके वशमें गये हुए त्रिलोकीके राज्यको जय करलिया है, दानवेन्द्र बलीसे इस प्रकार कहकर जगन्मयी ॥ ४७ ॥ चंद्रवदना जयश्रीने उनके शरीरमें प्रवेशकर उन्हैं विशेष प्रकाशमान किया, उनके प्रवेश करनेंपर विधवा स्त्रियोंकी समान॥ ४८ ॥ श्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, गति, क्षमा, भूति, विद्या, नीति, दया,मति, इन सबने राजा बलिका आश्रय किया ॥ ४९ ॥ हे द्विज ! इसके अतिरिक्त श्रुति स्मृति, बल,

शौंडीर्यमानिनंवीरंततोहंस्वयमागता ॥ नाश्चर्यंदानवश्रेष्ठहिरण्यकशिपोःकुले ॥४५॥ प्रसूतस्यासुरेंद्रस्यतवकर्मयदीदृशम् ॥ विशेषितस्त्वयाराजन्दैतेयः प्रपितामहः ॥ ४६ ॥ विजितंचक्रमाद्येनत्रैलोक्यंवैपरैर्हृतम् ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंदानवेंद्रंजगन्मयी ॥ ४७ ॥ जयश्रीश्चन्द्रवदनाप्रविष्टाद्योतयच्छुभा ॥ तस्यांचैवप्रविष्टायांविधवाइवयोषितः ॥ ४८ ॥ समाश्रयंतिबलिनंह्रीःकीर्तिर्द्युतिरेवच ॥ प्रभागतिःक्षमाभूतिर्विद्यानीतिर्दयामतिः ॥ ४९ ॥ श्रुतिः स्मृतिर्बलंकीर्तिर्धृतिःशांतिःक्रियाद्विज ॥ पुष्टिस्तुष्टिस्तथाचान्यास्तत्त्वश्रियमवस्थिता ॥ सर्वाबलिंसमाश्रित्यविश्राम्यंतियथासुखम् ॥ ५० ॥ एवंगुणो भूद्दनुपुंगवोसौबलिर्महात्माशुभबुद्धिरात्मवान् ॥ यज्वातपस्वीमृदुरेवसत्यवाग्दाताविभर्तास्वजनान्तसुगोप्ता ॥ ५१ ॥ त्रिविष्टपंशासतिदानवेन्द्रेनासीत्क्षुधार्तोमलिनोनदीनः ॥ सदोज्ज्वलोधर्मरतोथदांतःकामोपभोगीमनुजोऽपिजातः ॥ ५२ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ गतेत्रैलोक्यराज्येतुदानवेषुपुरंदरः ॥ जगामब्रह्मसदनंसहदेवैःशचीपतिः ॥ १ ॥ तत्रापश्यत्तुदेवेशंब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥ ऋषिभिः सार्धमासीनंपितरंस्वंचकश्यपम् ॥ २ ॥

कीर्ति, शान्ति, धृति, क्रिया, पुष्टि, तुष्टि और अन्यान्यभी उन सत्त्व श्रीसम्पन्न बलिका आश्रय कर यथासुखसे निवास करनेलगे ॥ ५० ॥ तब महात्मा शुद्ध बुद्धियुक्त आत्मवान्, यागशील, तपस्वी, मृदुस्वभाव, सत्यवादी, दाता, सबके भरण कर्ता, स्वजनगणोंके रक्षयिता, बलि विविधप्रकारके गुणोंसे युक्त थे ॥ ५१ ॥ उनके स्वर्गराज्य करनेमें प्रवृत्त होनेपर कोई क्षुधासे व्याकुल नहीं रहता, कोई मलीन न रहा, कोई दीनभाव नहीं रहा, मनुष्यभी सर्वदा उज्ज्वलभावयुक्त, धर्मरत, जितेन्द्रिय और कामोपभोगयुक्त होगये ॥ ५२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां बलिराज्यं नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, त्रिलोकीका राज्य दानवोंके हाथमें आनेपर शचीपति पुरन्दर देवताओंके साथ ब्रह्माजीके निकट गये ॥ १ ॥ उस स्थानपर जाकर देखा कि,

देवताओंके ईश्वर कमलयोनि ब्रह्माजी और अपने पिता कश्यप अनन्य ऋषियोंके साथ बैठे हुए हैं ॥ २ ॥ यह देखकर इन्द्रने देवताओंके साथ शिर नवां ब्रह्माजी और कश्यपादि ऋषियोंको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त देवताओंके साथ मिलकर देवताओंके साथ पितामहसे बोले कि, हे पितामह ! बलिने बलवान् होकर हमारा राज्य छीनलिया है ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने उत्तर दिया कि, हे इन्द्र ! तुम अपने किये हुए कर्मोंके फलोंको भोगते हो, तब इन्द्रने पूछा कि, मैंने क्या कुकर्म कियाथा ? ॥ ५ ॥ तब कश्यपजीभी बोले कि, हे देवेश ! तुमने गर्भकी हत्या की है, जिस निमित्त तुमने बलके गर्वसे दितिके उदरमें प्रविष्ट हो उसके गर्भको बहुधा छेदन किया है ॥ ६ ॥ इन्द्र पितासे बोले कि, हे विभो ! माताके दोषसेही केवल गर्भ बहुधा छिन्न हुआ है. कारण कि, वह उससमय अशौचा (शुचि रहिता) थी ॥ ७ ॥ कश्यपजी बोले कि, यद्यपि माताहीका दोष है परन्तु वह (गर्भ) दासभावको जानेपरभी तुम्हारे वज्रसे दासभूत गर्भ छेदनको प्राप्त हुआ है ॥ ८ ॥ इन्द्र पिताके यह वचन सुनकर पितामहसे बोले कि, हे प्रभो ! मेरे इस पापका प्रायश्चित्त क्या होगा सो आप आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ तब ब्रह्माजी, वसिष्ठजी और कश्यपजी यह सब मिलकर सम्पूर्ण जगत्के और विशेषकरके इन्द्रके उपकारार्थ बोले ॥ १० ॥ कि, तुम शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले पुरुषोत्तम माधवकी शरण जाओ, वही तुम्हें उपाय बतावेंगे ॥ ११ ॥ सहस्राक्ष इन्द्र गुरुओंके वचन सुनकर बोले कि, अल्पकालमेंही किसीप्रकार अभ्युदय दृष्टि आता है या नहीं ॥ १२ ॥ इसप्रकारके वचन कहकर वह स्वयं ब्रह्मा, मरीचिके पुत्र कश्यप और मित्रावरुणनंदन वसिष्ठजी इनके साथ शीघ्र

ततोननामशिरसाशक्रःसुरगणैःसह ॥ ब्रह्माणंकश्यपंचैवतांस्तुसर्वांस्तपोधनान् ॥ ३ ॥ प्रोवाचेंद्रःसुरैःसार्धंदेवनाथंपितामहम् ॥ पितामहहृतंराज्यं
बलिनाबलिनामम ॥ ४ ॥ ब्रह्माप्रोवाचशक्रैतद्भुज्यतेहिकृतंफलम् ॥ शक्रःपृच्छतिभोब्रूहिकिंमयादुष्कृतंकृतम् ॥ ५ ॥ कश्यपोप्याहदेवेशभ्रूणहत्या
कृतात्वया ॥ त्वयागर्भोदित्युदरात्कृत्तोहिबहुधाबलात् ॥ ६ ॥ पितरंप्राहदेवेंद्रःसमातुर्दोषतोविभो ॥ तन्नूनंप्राप्तवान्गर्भोयदशौचाहिसाभवत् ॥ ७ ॥
ततोब्रवीत्कश्यपस्तुमातुर्दोषःसदासताम् ॥ गतस्ततापिनिहतोदासोपिकुलिशेनते ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वाकश्यपवचःप्राहशक्रःपितामहम् ॥ विनाशंपाप्मनो
ब्रूहिप्रायश्चितंप्रभोमम ॥ ९ ॥ ब्रह्माप्रोवाचदेवेशंवसिष्ठःकश्यपस्तथा ॥ सर्वस्यजगतश्चापिशक्रस्यापिविशेषतः ॥ १० ॥ शंखचक्रगदापाणिर्माधवः
पुरुषोत्तमः ॥ तंप्रपद्यस्वशरणंसतेसर्वंविधास्यति ॥ ११ ॥ सहस्राक्षोपिवचनंगुरूणांसंनिशम्यवै ॥ प्रोवाचस्वल्पकालेनकश्चिद्दृष्टोमहोदयः ॥ १२ ॥
इत्येवमुक्तःसुरराड्विरिंचिनामरीचिपुत्रेणचकश्यपेन ॥ तथैवमित्रावरुणात्मजेनवेगान्महीपृष्ठमवाप्यतस्थौ ॥ १३ ॥

ब्रह्मलोकसे उतरकर मर्त्यलोकमें आ खड़े हुए ॥ १३ ॥ उसके उपरान्त कालंजरके उत्तरमें और हिमाद्रिके दक्षिणमें, कुशस्थलके पूर्वमें और वसुपुरके पश्चिममें
सुप्रसिद्ध पुण्यभूमिमें यथाक्रमसे स्थिति किये ॥ १४ ॥ पहले गय नामक राजाने जिस स्थानमें जाकर सैकडों उत्तम दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ कियेथे, फिर उसी
स्थानपर पूर्वकालमें सहस्र २ मनुष्य मेघयज्ञकोभी अनुष्ठानकी सहायतासे असुरगणोंके द्वारा दुर्जय होगये ॥ १५॥ जो महामेधनामसे विख्यात हुआ, जिसके करनेमें
अव्यक्तमूर्ति भगवान् मुरारि सुन्दरमूर्तिको धारण कर गदा हाथमें ले द्वाररक्षक हुएथे, इसीकारण गदाधर नामसे विख्यात हुएहैं ॥ १६ ॥ श्रुतिशास्त्रविवर्जित ब्राह्मणभी
जहाँ निवास करनेसे पितामहकी समान होजातेहैं, जिस स्थानपर भक्तिसहित अनन्यभावचित्तसे एक बारभी केवल पितरोंकी पूजा करके लोकमें भगवान्के प्रसादसे

कालंजरस्योत्तरतःसुपुण्यस्तथाहिमाद्रेरपिदक्षिणस्थः ॥ कुशस्थलात्पूर्वतएवविश्रुतोवसोःपुरात्पश्चिमतोवतस्थे ॥१४॥ पूर्वंगयेनक्षितिपेनयत्रइष्टोश्वमेधः
शतशःसुदक्षिणः ॥ मुनुष्यमेधोपिसहस्रकृत्वस्तथापुरादुर्जयनःसुरारिभिः ॥ १५ ॥ ख्यातोमहामेधइतिप्रसिद्धोयथास्यचक्रेभगवान्मुरारिः ॥ द्वाःस्थत्व
मव्यक्ततनुःसुमूर्तिःख्यातिंजगामाथगदाधरेति॥१६॥यस्मिन्द्विजेंद्राःश्रुतिशास्त्रवर्जिताःसमत्वमायांतिपितामहेन ॥ यस्मिन्भक्त्यापूजयन्येपितॄन्स्वान्सो
नन्यभावेनसकृत्तुचेतसा ॥ फलंमहामेधमखस्यमानवादधत्यनंतंभगवत्प्रसादात् ॥ १७ ॥ महानदीयत्रसुरर्षिकन्याजलापदेशाद्धिमशैलमेत्य ॥ चक्रे
जगत्पापविमुक्तमग्र्याःसंदर्शनप्राशनमज्जनेन ॥ १८ ॥ तत्रशक्रःसमभ्येत्यमहानद्यास्तटेद्भुते ॥ आराधनायदेवस्यकृत्वाश्रममवास्थितः ॥ १९ ॥ प्रातः
स्नायीत्वधःशायीएकेभुक्ताप्ययाचितः ॥ तपस्तेपेसहस्राक्षःस्तुवन्देवंगदाधरम् ॥ २० ॥ तस्यैवंतप्यतःसम्यक्जितसर्वेन्द्रियस्यतु ॥ कामक्रोधविही
नस्यसाग्रःसंवत्सरोगतः ॥२१॥ ततोगदाधरःप्रीतोवासवंप्राहनारद ॥ गच्छप्रीतोस्मिभवतोमुक्तपापोसिसांप्रतम् ॥ २२ ॥ निजंराज्यंचदेवेशप्राप्स्यसेन
चिरादिव ॥ यतिष्यामितथाशक्रभाविश्रेयोयथातव ॥ २३ ॥

महामेधके अनन्त फलको प्राप्त होतेहैं ॥ १७ ॥ जहाँ सुरर्षि कन्या महानदी (फल्गु) जलके अपदेश (वहाने कपट) से हिमालयपर्वतसे आई है उसका दर्शन, प्राशन
और मज्जनके द्वारा जगत्के पाप नष्ट होजातेहैं ॥१८॥ इन्द्र उसके अद्भुत किनारेपर जाकर भगवान् जनार्दनकी आराधनाके अर्थ आश्रम निर्माण कर स्थित हुए ॥
॥ १९ ॥ प्रातःकालही स्नान कर भूमिमें शयन, एकवार भोजन सोभी याचनारहित करतेहुए, तप करनेमें प्रवृत्त हो भगवान् गदाधरकी स्तुति करनेलगे ॥ २० ॥
इसप्रकार सब विधिसे इन्द्रियोंको जीतकर कामक्रोधको छोड तप करतेहुए हजार वर्ष व्यतीत होगये ॥ २१ ॥ तब गदाधर प्रसन्न हो उनसे बोले कि, मैं तुमपर
प्रसन्न हुआहूँ, इसकारण तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट होगये, अब तुम यथास्थानको जाओ ॥ २२ ॥ हे देवराज! शीघ्रही अपने राज्यको प्राप्त करोगे, भविष्यत्में जिससे

तुम्हारा कल्याण हो अब वही यत्न होगा ॥ २३ ॥ यह कहकर भगवान् गदाधरने मनोहरामें स्नान कराय उन्हें बिदा किया, उनके स्नान करनेपर उन दानवेन्द्रके पापोंसे अनेकपुरुष प्रगट होकर उनसे कहनेलगे कि, हमें क्या करना होगा सो आज्ञा दीजिये ॥ २४ ॥ इन्द्र उन भयंकर कर्मकारी पुलिन्द नामसे विख्यात मनुष्योंसे बोले कि, तुम हमारे पापसे उत्पन्न हुएहो, इस हिमालय और कालंजर दोनों पर्वतोंके बीचमें निवास करो तुम्हारा नाम पुलिन्द होगा ॥ २५ ॥ सुरपति पुलिन्दोंसे इसप्रकार कह पापसे मुक्तहो माताके परमपूज्य आश्रममें आये, अमर सिद्ध और यक्ष, यह उनकी पूजा करनेलगे ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त देवराज अदितिको देखकर मस्तक नवाय हाथ जोड विनयसहित उनके समीप गये और उनके कमलकोशसदृश चरणोंमें प्रणाम कर अपने नामको निवेदन किया ॥

इत्येवमुक्तेनगदाधरेणविसर्जितःस्नातिमनोहरायाम् ॥ स्नातस्यदेवस्यतदैनसोनरास्तंप्रोचुरस्माननुशासयस्व ॥ २४ ॥ प्रोवाचतान्भीषणकर्मकारान्नाम्नापुलिंदान्ममपापसंभवाः ॥ वसध्वमेवांतरमद्रिमुख्ययोर्हिमाद्रिकालंजरयोःपुलिंदाः ॥ २५ ॥ इत्येवमुक्त्वासुरराट्पुलिंदान्विमुक्तपापोऽमरसिद्धयक्षैः ॥ संपूज्यमानोनुजगामचाश्रमंमातुस्तदाधर्मनिवासमीड्यम् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वादितिंमूर्ध्निकृतांजलिस्तुविनम्रमौलिःसमुपाजगाम ॥ प्रणम्यपादौकमलोदराभौ निवेदयामासतदातदात्मनः ॥ २७ ॥ पप्रच्छसाकारणमीश्वरंतमाघ्रायचालिंग्यमुदासुदृष्ट्या ॥ वक्ष्येसुराणांसबलेःपराजयंतदात्मनोदेवगणैश्चसार्द्धम् ॥ ॥ २८ ॥ श्रुत्वैवसाशोकपरिप्लुतांगीज्ञात्वाजितंदैत्यसुतैःसुतंतम् ॥ दुःखान्वितादेवमनाद्यमीड्यंजगामविष्णुंशरणंवरेण्यम् ॥ २९ ॥ नारदउवाच ॥ कस्मिन्जनित्रीसुरसत्तमानांस्थानेहृषीकेशमनंतमाद्यम् ॥ चराचरस्यप्रभवंप्रमाणमाराधयामासमुनेवदस्व ॥ ३० ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ सुरारणिःशक्रमवेक्ष्यदीनंपराजितंदानवनायकेन ॥ सितेऽथपक्षेमकरर्क्षगेऽर्केघृतार्चिषस्यादथसप्तमेऽहनि ॥ ३१ ॥

॥ २७ ॥ अदितिने सब लोगोंके निहन्ता इन्द्रको प्रसन्नदृष्टिसे देख मस्तक सूँघ आलिंगन कर आनेका कारण पूँछा. देवराज बोले कि, बलिने सम्पूर्ण देवताओंके सहित मुझे पराजित किया है ॥ २८ ॥ अदितिने उनके यह वचन सुनकर दितिसुतके द्वारा अपने पुत्रकी पराजय जान शोकसे व्याकुल और दुःखित हो उन अनादि, ईड्य, वरणीय, भगवान् विष्णुकी शरण ग्रहण की ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि, हे मुने ! देवताओंकी माता अदितिने किस स्थानमें रहकर चराचरके प्रभु और प्रमाणस्वरूप अनन्तादि हृषीकेश (विष्णु) की आराधना कीथी सो कहिये ॥ ३० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, सुरारणि (देवतारूप अग्निके उत्पत्तिस्थान) अदिति दानवोंके नायक बलिसे इन्द्रको पराजित और क्षीणप्रभाव देखकर माघशुक्लासप्तमीमें सूर्यकी मकरराशिमें स्थित

होनेसे सातवें दिन ॥ ३१ ॥ त्रिदशाधिपति भास्करको पूर्वदिशामें उदयलिये हुए देखकर भोजनको छोड़ और वाक्यसंयम (मिथ्या और अपयशका नहीं बोलने) के साथ एकाग्रचित्तसे इन वचनोंकरके वह (भास्कर मंडलमें स्थित[1] विष्णुभगवान्) की उपासना (स्तुति) करनेलगीं ॥ ३२ ॥ कि, हे दिव्यकमलकोशविकासिन् ! तुम्हारी जय हो, हे संहाररूपी तरु वृक्षके कुठार ! कुल्हाडी (छेदनकर्ता) तुम्हारी जय हो ! हे पापरूप इन्धन (लकडी) की अग्नि ! तुम्हारी जयहो, हे पापौघविनाशिन् ! तुमको वारम्वार नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे भास्कर ! तुम्हैं नमस्कार है, हे दिव्यमूर्त्तें ! हे त्रैलोक्यलक्ष्मीपते ! तुम्हैं नमस्कार है, तुम सम्पूर्ण चराचरके कारण और नाथहो हे विश्वमूर्तें ! मेरी रक्षा करो ॥ ३४ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम जगन्मय और सबके रक्षाकर्ता हो, मेरा पुत्र इन्द्र अपने राज्यसे भ्रष्ट और पराभवको

दृष्ट्वैवदेवंत्रिदशाधिपंतंमहोदयेशक्रादिशाधिरूढम् ॥ निराशनासंयतवाक्सुचित्तातदोपतस्थेशरणंसुरेंद्रम् ॥ ३२ ॥ अदितिरुवाच ॥ जयस्वदिव्यांबुजकोशचौरजयस्वसंसारतरोःकुठार ॥ जयस्वपापेंधनजातवेदअघौघसंरोधनमोनमस्ते ॥ ३३ ॥ नमोस्तुतेभास्करदिव्यमूर्तेंत्रैलोक्यलक्ष्मीपतयेनमस्ते ॥ त्वंकारणंसर्वचराचरस्यनाथोसिमांपालयविश्वमूर्तें ॥ ३४ ॥ त्वयाजगन्नाथजगन्मयेननाथेनशक्रोनिजराज्यहानिम् ॥ अवाप्तवान्शक्रपराभवंचततोभवंतंशरणंप्रपन्ना ॥ ३५ ॥ इत्येवमुक्त्वासुरपूजितेनआलिप्यरक्तेनहिचंदनेन ॥ संपूजयित्वाकरवीरपुष्पैःसधूपदीपैःखलुदिव्यभोज्यैः ॥ ३६ ॥ नैवेद्यकंचैवाज्ययुतंमहार्हमन्नंह्युपेंद्रस्यहितायदेवी ॥ स्तवेनपुण्येनचसंस्तुवंतीस्थितानिराहारमथोपवासम् ॥ ३७ ॥ ततोद्वितीयेन्हिकृतप्रणामास्नात्वाविधानेनचपूजयित्वा ॥ दत्त्वाद्विजेभ्यःकनकंतिलाज्यंततोग्रतःसाप्रयताबभूव ॥ ३८ ॥ ततःप्रीतोभवद्भानुर्घृतार्चिःसूर्यमंडलात् ॥ विनिःसृत्याग्रतःस्थित्वाइदंवचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ व्रतेनानेनसुप्रीतस्तवाहंदक्षनंदिनि ॥ प्राप्स्यसेदुर्लभंकामंमत्प्रसादान्नसंशयः ॥ ४० ॥

प्राप्त हुआहै इसी कारणसे मैं तुम्हारी शरण हुई हूं॥ ३५॥ यह कहकर उन्होंने सुरपूजित (देवताओं सेभी प्रशंसित) लालचंदनसे उनको चर्चितकर धूप दीपसहित कनेरके फूलोंसे पूजाकर इन्द्रके हितके निमित्त, दिव्यभोज्य और आज्य (घृत) महार्ह अन्नको निवेदन किया.इसके उपरान्त परमपवित्र स्तुतिकर निराहार हो उपवास कररहीं ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ दूसरा दिन आनेपर यथाविधिसे स्नान और पूजाकर प्रणाम करनेके पीछे ब्राह्मणोंको सुवर्ण तिल और आज्य (घृत) प्रदानकर निश्चिन्त होकर रही॥ ३८॥ तब घृतार्चिष भानु प्रसन्न हो सूर्यमंडलसे आकर सन्मुख उपस्थित हो दितिसे बोले ॥ ३९ ॥ कि,हे दक्षनंदिनी तुम्हारे इस व्रतसे मैं परम प्रसन्न हुआहूं,इसकारण मेरे प्रसादसे

---

१ ध्येयः सदा सवितृमंडलमध्यवर्त्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः । केयूरवान्मकरकुंडलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ॥ १ ॥

दुर्लभ कामकी प्राप्ति होगी इसमें कुछ संदेह नहीं॥ ४० ॥ हे देवि! मैं तुम्हारे उदरमें प्रगट होकर तुम्हारे पुत्रको राज्य दे और दानवोंका दलन करूँगा ॥ ४१ ॥ देवमाता अदिति वासुदेवके यह वचन सुनकर वारम्वार वेपमाना होकर बोलीं॥ ४२ ॥ कि,तुमको धारण करनेकी किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है, इस कारण मैं किसप्रकारसे तुमको कोखमें रक्खूंगी, देखो! तुम्हारे उदरमें सम्पूर्ण जगत् वास करता है ॥ ४३ ॥ इसप्रकारसे तुमने त्रिलोकीको धारण किया है, इसकारण कौन मनुष्य तुमको धारण करनेमें समर्थ होगा, अधिक क्या कहूं, सम्पूर्ण पर्वतोंके साथ सातों समुद्र तुम्हारी कोखमें वास करते हैं ॥ ४४ ॥ इसकारण हे जनार्दन! जिसप्रकार देवपति इन्द्र फिर अपने राज्यपर स्थित हो और मुझे कष्ट न हो उसी प्रकारका उपाय कीजिये ॥ ४५ ॥ विष्णु बोले कि, हे महाभागे! यद्यपि यह सत्य है कि, सम्पूर्ण सुरासुर मिलकर

राज्यंत्वत्तनयानांवैदास्येदेविसुराराणि ॥ दानवान्ध्वंसयिष्यामिःसंभूयैवोदरेतव ॥ ४१ ॥ तद्वाक्यंवासुदेवस्यश्रुत्वाब्रह्मन्सुराराणिः ॥ प्रोवाचजगतांयोनिंवेपमानापुनःपुनः ॥ ४२ ॥ कथंत्वामुदरेणाहंवोढुंशक्ष्यामिदुर्धरम् ॥ यस्योदरेजगत्सर्वंवसेत्स्थावरजंगमम् ॥ ४३ ॥ कस्त्वांधारयितुंनाथशक्तस्त्रैलोक्यधार्यसि ॥ यस्यसप्तार्णवाःकुक्षौनिवसंतिसहाद्रिभिः ॥ ४४ ॥ तस्माद्यथासुरपतिःशक्रःस्यात्सुरराडिह ॥ यथावृथानमेक्लेशस्तथाकुरुजनार्दन ॥ ॥ ४५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ सत्यमेतन्महाभागेदुर्धरोस्मिसुरासुरैः ॥ तथापिसंभविष्याम्यहंदेव्युदरेतव ॥ ४६ ॥ आत्मानंभुवनंशैलांस्त्वांचदेविसकश्यपाम् ॥ धारयिष्यामियोगेनमाविषादंकृथावृथा ॥ ४७ ॥ तवोदरेह्यहंदाक्षेसंभविष्यामिवैयदा ॥ तदानिस्तेजसोदैत्याःसंभविष्यंत्यसंशयम् ॥ ४८ ॥ इत्येवमुक्त्वाभगवान्सदेवस्तस्याश्चभूयोरिगणप्रमर्दी ॥ स्वतेजसांगेषुविवेशदेव्यास्तदोदरेशक्रहितायविप्राम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेदितिवरप्रदानंनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ देवमातुःस्थितेदेवेउदरेवामनाकृतौ ॥ निस्तेजसोऽसुराजातायथोक्ताविश्वयोनिना ॥ १ ॥ निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वाप्रह्लादंदानवेश्वरम् ॥ बलिर्दानवशार्दूलंत्विदंवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

भी हमें धारण नहीं करसकते परन्तु तोभी मैं तुम्हारे उदरमें जन्म लेकर ॥ ४६ ॥ और योगबलसे अपनेको और त्रिलोकीको और सब पर्वतोंको तुमको और कश्यपको धारण करूंगा, तुम विषादित न हो ॥ ४७ ॥ मैं तुम्हारे उदरमें अवतार लेकर सब दैत्योंको निस्तेजित करूंगा इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ हे विप्र! यह कहकर शत्रुओंके निहन्ता भगवान् जनार्दनने इन्द्रके हितसाधन करनेके निमित्त अदितिके उदरमें अपने तेजकी सहायतासे प्रवेश किया ॥ ४९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां अदितिवरप्रदानं नामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, भगवान् जर्नादन वामनरूपसे देवजननी अदितिके उदरमें अवतार ले उनसे ब्रह्माजीने जिसप्रकार कहाथा उसीके अनुसार दैत्य तेजहीन होगये ॥ १ ॥ असुरोंको तेजहीन देखकर बलि दानवशार्दूल प्रह्लादजीसे यह वचन बोले ॥ २ ॥

कि, हे तात ! दैत्य किसकारणसे तेजहीन होगये हैं सो आप कहिये, आप परमज्ञानी और शुभाशुभके जाननेवाले हैं ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, पोतेके यह
वचन सुनकर प्रह्लादजी मुहूर्त्तकालतक ध्यानकर विचारने लगे कि, दैत्य किसकारणसे तेजहीन होगये हैं ॥ ४ ॥ वह इसप्रकार ध्यानके बलसे जानगये कि, वासुदेवसेही
दैत्योंको यह विषम भय उपस्थित हुआ है, तब चिन्ता करनेलगे कि, योगात्मा वासुदेव किसस्थानमें विराजमान हैं ॥ ५ ॥ हे नारद ! वह नाभिमें अधोदिक्से सप्त
पाताल और नाभिकी ऊर्द्ध्व ओरको भूरादि सम्पूर्ण लोककी यथाक्रमसे चिन्ताकर ॥ ६ ॥ उस पंकजाकृति भूमि, इसमें पंकजाकृति सात कुंभ समृद्धियुक्त शैलेन्द्र मेरुपर्वतको
देखा ॥ ७ ॥ उसके ऊपर महापुरी समस्त और अष्टलोकपति उसके ऊपर ब्रह्माजीकी वैराजपुरी ॥ ८ ॥ उसके अधोभागमें अदितिका परमपवित्र मृग पक्षि

बलिरुवाच ॥ तातनिस्तेजसोदैत्याःकेनजातास्तुहेतुना ॥ कथ्यतांपरमज्ञोसिशुभाशुभविशारद ॥ ३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ तत्पौत्रवचनंश्रुत्वामुहूर्तं
ध्यानमास्थितः ॥ किमर्थंतेजसोहानिरितिकस्मादतीववा ॥४॥ सज्ञात्वावासुदेवोत्थंभयंदैत्येष्वनुत्तमम् ॥ चिंतयामासयोगात्माक्वविष्णुःसांप्रतंस्थितः ॥
॥५ ॥ अधोनाभेःसपातालान्सप्तसंचिंत्यनारदः ॥ नाभेरुपरिभूरादींल्लोकांश्चक्रमशोवशी ॥ ६ ॥ भूमिंतांपंकजाकारांतन्मध्येपंकजाकृतिम् ॥ मेरुंददर्श
शैलेन्द्रंशातकुंभंमहर्धिमत् ॥ ७ ॥ तस्योपरिमहापुर्यस्त्वष्टौलोकपतींस्तथा ॥ तेषामुपरिवैराजंददृशेब्रह्मणःपुरम् ॥ ८ ॥ तदधस्तान्महापुण्यमाश्र
मंसुरपूजितम् ॥ देवमातुःसददृशेमृगपक्षिगणावृतम् ॥ ९ ॥ तांदृष्ट्वादेवजननींसर्वतेजोधिकांमुने ॥ विवेशदानवपतिरन्वेष्टुंमधुसूदनम् ॥ १० ॥
सदृष्ट्वाजगन्नाथंमाधवंवामनाकृतिम् ॥ सर्वभूतवरेण्यंतंदेवमातुरथोदरे ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वापुंडरीकाक्षंशंखचक्रविनाकृतम् ॥ सुरासुरगणैःसर्वैःसर्वतोव्याप्त
विग्रहम् ॥ १२ ॥ ततस्तेनैवयोगेनदृष्ट्वावामनतांगतम् ॥ दैत्यतेजोहरंविष्णुंप्रकृतिस्थोभवत्ततः ॥ १३ ॥ अथोवाचमहाबुद्धिर्विरोचनसुतंबलिम् ॥
प्रह्लादोमधुरंवाक्यंप्रणम्यमधुसूदनम् ॥ १४ ॥

योंसे सेवित सुरपूजित आश्रमको देखा ॥ ९ ॥ हे मुने ! वह सर्वतेजोधिका देवजननी अदितिको वहाँ देखकर मधुसूदनके ढूँढ़नेके निमित्त प्रवेश किया ॥ १० ॥
और जाकर देखा कि, वह सर्वभूतादिसेवित वनमें जगन्नाथ माधव वामनाकृतिको धारण कर देवमाता अदितिके उदरमें विराजमान हैं ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण सुरासुर
सर्वतोभावसे उनके शरीरमें विराजमान हैं, उनके हाथमें शंख, चक्र नहीं हैं इस अवस्थामें उन्हें देखा ॥ १२ ॥ इसप्रकार योगबलसे प्रह्लादजी दैत्यतेजोहारी
वामनाकृति विष्णुभगवान्‌को देखकर स्थित हुए ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त परमधी शक्तियुक्त प्रह्लादजी मधुसूदनको प्रणामकर बलिसे मधुर वचन कहनेलगे ॥ १४ ॥

कि, हे दैत्येन्द्र ! जिसकारणसे तुम्हें भय उपस्थित और जिसकारण सब दैत्य तेजहीन होगये हैं, वह मैं सम्पूर्ण कहता हूँ तुम श्रवण करो ॥ १५ ॥ तुमने इन्द्र, रुद्र, सूर्य और अग्निसहित देवताओंको जीता है, इसकारण वह त्रिदशेश्वर उन हरिकी शरण हुए हैं ॥ १६ ॥ जगद्गुरु जनार्दन उन इन्द्रादि देवताओंको अभयदान देकर अदितिके उदरमें आये हैं ॥ १७ ॥ हे बले ! उन्होंनेही तुम्हारे सबके तेजको हरण किया है, ऐसा प्रगट होता है कि, अंधकार कभी सूर्योदयको सहन नहीं करसकता ॥ १८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, बलि प्रह्लादजीके यह वचन सुनकर भावीवश क्रोधके वशीभूतहो अधरोंको कम्पायमान करतेहुए प्रह्लादजीसे बोले ॥ १९ ॥ कि, हे तात ! यह हरि कौन हैं, जिससे हमें भय उपस्थित हुआ है, देखो ! हमारे आधीन सैकडों दैत्य ऐसे हैं जो वासुदेवकी अपेक्षा अधिक बलवान्

प्रह्लादउवाच ॥ श्रूयतांसर्वमाख्यास्येयतोवोभयमागतम् ॥ येननिस्तेजसोदैत्याजातादैत्येंद्रहेतुना॥१५॥भवतानिर्जितादेवाःसेंद्ररुद्रार्कपावकाः ॥ प्रयाताः
शरणंदेवंहरिंत्रिभुवनेश्वरम् ॥ १६ ॥ सतेषामभयंदत्त्वाशक्रादीनांजगद्गुरुः ॥ अवतीर्णोमहाबाहुरुषित्वाजठरेहरिः ॥ १७ ॥ हृतानिवस्तेनबलेतेजांसीति
मतिर्मम ॥ नालंतमोविषहितुंशक्तंसूर्योदयंबले ॥१८॥ पुलस्त्यउवाच ॥ प्रह्लादवचनंश्रुत्वाक्रोधेनस्फुरिताधरः ॥ प्रह्लादमाहचबलिर्भाविकर्मप्रचोदितः ॥
॥ १९ ॥ बलिरुवाच ॥ तातकोयंहरिर्नामयतोनोभयमागतम् ॥ संतिमेशतशोदैत्यावासुदेवबलाधिकाः ॥२०॥ सहस्रशोजितायैस्तुसेंद्ररुद्राग्निमारुताः ॥
निर्जित्यत्याजिताःस्वर्गंभग्नदर्पारणाजिरे ॥ २१ ॥ येनसूर्यरथाद्वेगाच्चक्रंकृष्टंमहाजवम् ॥ सविप्रचित्तिर्बलवान्ममसैन्यपुरस्सरः ॥ २२ ॥ अयःशंकुः
शिविःशंकुरसिलोमाविरूपधृक् ॥ त्रिशिरामकराक्षश्चवृषपर्वासितेक्षणः ॥ २३ ॥ एतेचान्येचबलिनोनानाशस्त्रविशारदाः ॥ येषामेकैकशोविष्णुःकलां
नार्हतिषोडशीम् ॥ २४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ पुत्रस्यैतद्वचःश्रुत्वाप्रह्लादःक्रोधमूर्छितः ॥ धिग्धिगित्याहसबलिंवैकुंठाक्षेपवादिनम् ॥ २५ ॥

हैं ॥ २० ॥ उन्होंने सहस्र २ बार इन्द्र, रुद्र, अग्नि और मरुत्के साथ देवताओंको जय किया है और रणांगणमें बलको चूर्ण कर उनको स्वर्गसे भगाया है ॥ २१ ॥ जिस विप्रचित्तिने शीघ्रतासे सूर्यके रथसे महाजवयुक्त चक्र निकाललियाथा, वह हमारी सेनामें प्रथम गिनने योग्य है ॥ २२ ॥ इसके अतिरिक्त अयःशंकु, शिवि, शंकु, असिलोमा, विरूपाक्ष, त्रिशिरा; मकराक्ष, वृषपर्वा, असिताक्ष ॥ २३ ॥ वह अन्यान्य सभी दैत्य अत्यन्त बलशाली हैं, और सभी विविधप्रकारके शस्त्रोंमें विशारद हैं, विष्णु तो इन एक २ जनेकी सोलहवीं कलाके तुलनाके योग्यभी नहीं हैं ॥ २४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजी पोतेके यह वचन सुन क्रोधसे मूर्छित हो उस विष्णुनिंदकको वारम्वार धिक्कार देते हुए यह वचन बोले ॥ २५ ॥

कि, तुम अत्यन्त मूर्ख और दुर्बुद्धि और पापाचारी हो तुम्हैं धिक्कार है, तुम हरिकी निन्दा करतेहो तुम्हारी जीभ क्यों न कटपड़ी ॥२६॥ रे दुर्बुद्धे ! तुम शोचनीय
और साधुओंमें निन्दनीयहो, जिसकारण तुम लोकपति विष्णुकी निन्दा करतेहो ॥ २७ ॥ तुम्हारे पिताभी शोचनीय हैं, इसमें कुछभी संदेह नहीं कारण कि, तुम
उन देवावमानकारी कर्कशस्वभावके पुत्रहो ॥ २८ ॥ तुम जानो हो और यह महाअसुरभी जानते हैं कि, उन जनार्दनके अतिरिक्त और कोईभी हमारा प्रिय नहीं है
॥ २९ ॥ तुम भगवान् जनार्दनको हमारा प्रिय जानकरभी किसप्रकारसे उनकी निन्दा करतेहो, अधिक क्या कहूँ वह सम्पूर्ण ईश्वरोंकेभी ईश्वर और स्वयंप्रका
शमें चैतन्यस्वरूप हैं ॥ ३० ॥ गुरु स्वभावसेही पूजनीय हैं, फिर उसमें तुम्हारे पिता तुम्हारे गुरु हैं, मैं फिर तुम्हारे पिताका गुरु हूँ अधिक कहाँतक कहूँ वह हमारे

धिक्त्वांपापसमाचारदुष्टबुद्धेसुबालिश ॥ हरिंनिंदयतोजिह्वाकथंनपतितातव ॥ २६ ॥ शोच्यस्त्वमसिदुर्बुद्धेर्निंदनीयश्चसाधुभिः ॥ यत्रैलोक्यगुरुंवि
ष्णुमभिनिंदसिदुर्मते ॥ २७ ॥ शोच्यश्चापिनसंदेहोयेनजातःपितातव ॥ यस्यत्वंकर्कशःपुत्रोजातोदेवावमानकृत् ॥२८॥ भवान्किलविजानातितथाचामी
महासुराः॥यथानान्यःप्रियःकश्चिन्ममतस्माज्जनार्दनात् ॥२९॥ जानन्नपिप्रियतरंममदेवंजनार्दनम्॥सर्वेश्वरेश्वरंदेवंकथंनिंदितवानसि ॥३०॥ गुरुःपूज्यस्त
त्रपितापूज्यस्तस्याप्यहंगुरुः ॥ ममापिपूज्योभगवान्गुरुर्लोकगुरुर्हरिः ॥ ३१ ॥ गुरोर्गुरुगुरुंमूढपूज्यंपूज्यतमस्यच ॥पूज्यंनिंदसियत्पापकथंनपतितोस्यधः
॥३२॥ शोचनीयादुराचारादानवामीकृतास्त्वया॥येषांत्वंकर्कशोराजावासुदेवविनिंदकः ॥३३॥ यस्मात्पूज्योर्चनीयश्चभवतानिंदितोहरिः ॥ तस्मात्पाप
समाचारराज्यनाशमवाप्नुहि ॥ ३४ ॥ यथानान्यत्प्रियतरंविद्यतेममकेशवात् ॥ मनसाकर्मणावाचाराज्यभ्रष्टस्तथापत ॥ ३५ ॥ यथानतस्मादपरंव्यति
रिक्तंहिविद्यते ॥ चतुर्दशसुलोकेषुराज्यभ्रष्टस्तथापत ॥ ३६ ॥ सर्वेषामपिभूतानांनान्यल्लोकेपरायणम् ॥ यथातथानुपश्येयंभवंतंराज्यविच्युतम् ॥३७॥

तुम्हारे और सभी लोकोंके गुरु हैं इसकारण तुम्हैं उनकी पूजा कर्तव्य है ॥ ३१ ॥ हे मूढ़ ! तुम उन गुरुके गुरु पूजनीय गुरु और पूज्योंकेभी पूज्य उन वासुदेवकी
निन्दा करतेहो, इसकारण किसनिमित्त अधःपतित नहीं होते ॥ ३२ ॥ तुमने इन दानवोंको अपने दुराचरणसे ऐसी शोचनीय अवस्थामें डाला है, कारण
कि, तुम उनमें कर्कशस्वभाव और वासुदेवके निन्दक राजा हुएहो ॥ ३३ ॥ जिसकारण तुम पूज्य और अर्चनीय वासुदेवकी निन्दा करतेहो. इसी कारणसे रे पापस
माचार ! तुम्हारा राज्य नष्ट होजायगा ॥ ३४ ॥ वासुदेवकी अपेक्षा और कोई मन वचन कर्मके द्वारा मेरा प्रिय नहीं है इसकारण तुम राज्यसे भ्रष्ट और पतितहो ॥
॥ ३५ ॥ चौदह भुवनोंमें कोईभी उन वासुदेवके अतिरिक्त नहीं है इसी कारणसे तुम राज्यसे भ्रष्ट और पतितहो ॥ ३६ ॥ वासुदेवके अतिरिक्त और कोईभी

सम्पूर्ण प्राणियोंमें परायण नहीं है इसी कारणसे तुम्हैं राज्यसे भ्रष्ट हुआ देखूँगा ॥ ३७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजीके इसप्रकार कहनेपर बलि शीघ्रतासे उसी समय आसनसे उतर हाथ जोड़ ॥ ३८ ॥ इनको प्रणाम कर बोले कि, हे गुरो ! प्रसन्न हो कारण कि, गुरु अपराध किये हुए बालकोंको क्षमा करते हैं ॥ ३९ ॥ हे दानवेश्वर ! आपने शाप दिया यह अच्छाही किया मैं शत्रुओंसे भय नहीं करता, राज्यविनाशकीभी मुझे कुछ चिन्ता नहीं है॥ ४० ॥ हे विभो ! इसीकारण मैं किसी प्रकारसेभी दुःखी नहीं होता, केवल आपका अपराध किया है, इससेही मैं अत्यन्त दुःखी होता हूँ ॥ ४१ ॥ हे तात ! मैं बालकहूँ, मैं नीच हूँ और मैं अत्यन्त दुर्बुद्धि हूँ कारण कि, आपका अपराध किया है मुझे क्षमा कीजिये, बालकोंके अपराध करनेपर फिर जब वह दीनभावयुक्त होते हैं,

पुलस्त्यउवाच ॥ एवमुच्चरितेवाक्येबलिःसत्वरितस्तदा ॥ अवतीर्यासनाद्ब्रह्मन्कृतांजलिपुटोबलिः ॥ ३८ ॥ शिरसाप्रणिपत्याहप्रसादंकुरुमेगुरो ॥ कृता
पराधानपिहिक्षमंतेगुरवःशिशून् ॥ ३९ ॥ तत्साधुयदहंशप्तोभवतादानवेश्वर ॥ नबिभेमिपरेभ्योऽहंनचराज्पपरिक्षयात् ॥ ४० ॥ नैवदुःखंममविभोयदहं
राज्यविच्युतः ॥ दुःखंकृतापराधत्वाद्भवतोमेमहत्तमम् ॥ ४१ ॥ क्षमस्वतत्तातकृतापराधंबालोस्मिनीचोस्मिसुदुर्मतिश्च ॥ कृतेपिदोषेगुरवःशिशूनांक्षाम्यं
तिदैन्यंसमुपागतानाम् ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तेवचनेमहात्माविमुक्तमोहोहरिपादभक्तः ॥ चिरंविचिंत्याद्भुतमेतदित्थमुवाचपुत्रंमधुरंवचो
ऽथ ॥ ४३ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ मोहेनमेऽधुनाज्ञानंविवेकश्चतिरस्कृतः॥ येनसर्वगतंविष्णुंजानंस्त्वांशप्तवानहम् ॥ ४४ ॥ तन्नूनमविवेकोयंभवंतंयेनदानव ॥
ममापिसमहाबाहोविवेकप्रतिषेधकः ॥ ४५ ॥ तस्माद्राज्यंप्रतिविभोनज्वरंकर्त्तुमर्हसि ॥ अवश्यंभाविनोह्यर्थानाविनश्यंतिकर्हिचित् ॥ ४६ ॥
पुंत्रमित्रकलत्रार्थैराज्यभोगधनायच ॥ आगमेनिर्गमेप्राज्ञोनविषादंसमाचरेत् ॥ ४७ ॥ यथायथासमायांतिपूर्वकर्मविधानतः ॥ सुखदुःखानि
दैत्येंद्रनरस्तानिसहेत्तथा ॥ ४८ ॥

तब गुरु उनको क्षमा करते हैं ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, बलिके इसप्रकार कहनेपर हरिचरणानुरागी मोहविमुक्त महात्मा प्रह्लादजी बहुत कालतक चिन्ता कर परम विस्मययुक्त मधुर वचन पोतेसे बोले ॥ ४३ ॥ कि, मोहप्रयुक्त हमारा ज्ञान और विवेक तिरस्कृत होगयाथा इसकारण विष्णुको सर्वगत जानकरभी तुम्हैं शाप दियाथा ॥ ४४ ॥ हे दानव ! तुम्हैं जो मोहके बलसे अज्ञान उपस्थित कराया है हे महाबाहो ! मेराभी विवेक (ज्ञान) का वही प्रतिषेध किया जिससे तुम्हैं शाप दिया है ॥ ४५ ॥ इसकारण राज्यभ्रष्ट होगे, यह कहनेसे किसी प्रकारभी संतप्त न होना, देखो जो अवश्य होनहार है वह किसीप्रकारसेभी नहीं रुकता॥ ४६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य पुत्र, मित्र, कलत्र, वित्त, राजत्व और भोग्य विषय इन सबके आगम निर्गममें किसी प्रकारभी दुःखी नहीं होते ॥ ४७ ॥ हे दैत्येन्द्र ! पूर्व किये

हुए कर्मानुसारसे सुख और दुःख जैसे २ होनहार होते हैं मनुष्य उनको यथारीतिसे सहन करते हैं ॥ ४८ ॥ वशी मनुष्य आपत्तिको आता हुआ देखकर विषादित नहीं होते, फिर बड़ी सम्पत्तिके प्राप्त होनेपर हर्षको प्रकाश नहीं करते ॥ ४९ ॥ पुरुषोत्तम मनुष्य धनके नाश होनेपर जिसप्रकार मोहके वशी भूत नहीं होते, धनके आगमनमेंभी उसी प्रकारसे हर्षको प्रकाश नहीं करते ॥ ५० ॥ हे दैत्येन्द्र ! यह सब जानकर तुम विषाद न करना.देखो तुम विद्वान् हो, विद्वान् कभी हताश नहीं होते ॥ ५१ ॥ हे महाबाहो ! मैं तुम्हारी तथा अन्य सभी मनुष्योंको अन्यप्रकारका सारगर्भ हितकारी उपदेश करता हूं श्रवण करो और सुनकर उसीके अनुसार कार्य करो ॥ ५२ ॥ सबके शरणदाता उन्हीं वासुदेव भगवान्की शरण जाओ वही तुम्हारा इस आपत्ति और भयसे उद्धार करैंगे ॥ ५३ ॥ वह सबके दुःख

आपदामागमंदृष्ट्वानविषण्णोभवेद्वशी ॥ संपदंचसुविस्तीर्णांप्राप्यनोधृतिमान्भवेत् ॥ ४९ ॥ धनक्षयेनमुह्यंतिनहृष्यंतिधनागमे ॥ धीराःकार्येषुचतदाभवं
तिपुरुषोत्तमाः ॥ ५० ॥ एवंविदित्वादैत्येंद्रनविषादंकथंचन ॥ कर्तुमर्हसिविद्वंस्त्वंपंडितोनावसीदति ॥ ५१ ॥ तथान्यच्चमहाबाहोहितंशृणुमहार्थकम् ॥
भवतोऽथतथान्येषांश्रुत्वातच्चसमाचर ॥ ५२ ॥ शरण्यंशरणंगच्छतमेतंपुरुषोत्तमम् ॥ सतेत्राताभयादस्माद्दानवप्रभविष्यति ॥ ५३ ॥ येसंश्रयंति
हरिमीशमनादिमध्यंविष्णुंचराचरगुरुंहरिमीशितारम् ॥ संसारगर्तपतितस्यकरावलंबंनूनंनतेभुविनराज्वरिणोभवंति ॥ ५४ ॥ तन्मनादानवश्रे
ष्ठतद्भक्तश्चभवाधुना ॥ सएषभवतःश्रेयोविधास्यतिजनार्दनः ॥ ५५ ॥ अहंचपापोपशमार्थमीशमाराधयामीहचतीर्थयात्राम् ॥ विमुक्तपापश्चतदाभ
विष्येवदाच्युतोलोकपतिर्नृसिंहः ॥ ५६ ॥

दूर करनेवाले हैं, सबलोकोंके नियन्ता (शासन करनेवाले) हैं, उनका आदि नहीं, मध्य नहीं, और अन्त नहीं है, वही सर्वत्र व्याप्त हैं, वही चराचरके गुरु और ईश्वर हैं और वही संसाररूपी गर्त्त (गड्ढे) में पतित हुए मनुष्योंका हस्तावलम्बन (हाथके सहारे देनेहारे) स्वरूप हैं उनका आश्रय करनेसे किसीप्रकारसेभी संतापमें नहीं पड़ना होता है ॥ ५४ ॥ इसकारण हे दानवश्रेष्ठ ! अब तुम उनमेंही अपने मनको लगाओ, उनमें भक्ति करो, वही भगवान् जनार्दन तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ ५५ ॥ मैंभी पापकी शांतिके निमित्त उन सर्वनियन्ता भगवान्की आराधना और तीर्थयात्रा करूँगा । ऐसा होनेसे ही मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाँयगे. कारण कि, जिसप्रकार वह अच्युत लोकपति नृसिंह हैं उसी कारणसे वह अवश्य पूजनीय हैं ॥ ५६ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि, महात्मा प्रह्लादजी इसप्रकार पौत्रको सावधानकर योगाधिपति विष्णुका स्मरण और सम्पूर्ण दानव सेनापतियोंको बुलाकर तीर्थयात्रा करनेके निमित्त गये ॥ ५७ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां बलिशिक्षादानं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ नारदजी बोले कि, हे विप्रेन्द्र ! प्रह्लादजी कौन २ से तीर्थोंको गयेथे उनकी तीर्थयात्रा सबप्रकारसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, श्रवण करो. मैं प्रह्लादजीकी पापप्रपंकप्रणाशिनी सर्वपातकसंहारिणी तीर्थयात्रा कहताहूँ ॥ २ ॥ वह कनकाचलेन्द्र मेरुपर्वतको छोड़कर देवताओंसे सेवित पृथ्वीमें विख्यात कल्याणकारी मानसतीर्थको गये, पहले भगवान्ने मत्स्यरूपको धारणकर जहाँ वास कियाथा ॥ ३ ॥ उन्होंने उस तीर्थमें स्नान कर पितर और देवताओंका तर्पण कर श्रुति (वेद मंत्रों) से जगन्नाथ अच्युतकी विशेष पूजा की ॥ ४ ॥ फिर उपवास कर देवता, ऋषि, पितर और मानवोंकी पूजा कर कौशिकीमें पापनाशी कच्छपजीका दर्शन करनेके निमित्त आये ॥ ५ ॥ उस महानदीमें स्नान और जगत्पति जनार्दनकी पूजा कर पवित्र हो उपवास करनेके पीछे ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त कूर्मशरीरधारी जगन्नाथको नमस्कार कर हयग्रीव जनार्दनका दर्शन करनेके निमित्त कृष्णाको गये, वहाँ जाकर देवह्रदमें स्नान कर पितरोंका तर्पण कर ॥ ७ ॥ हयशीर्षकी पूजा करके हस्तिनापुरमें आये, वहाँ भगवान् चक्रपाणि जगन्नाथ गोविन्दकी ॥ ८ ॥ स्नान करनेके पीछे पूजा कर यमुनानदीको गये, वहाँ अभिषेक

पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमाश्वास्यबलिंमहात्मासंस्मृत्ययोगाधिपतिंचविष्णुम् ॥ आमंत्र्यसर्वान्दनुसैन्यपालाञ्जगामकर्तुंशुभतीर्थयात्राम् ॥ ५७ ॥
इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेबलिशिक्षादानंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ नारदउवाच ॥ कानितीर्थानिविप्रेंद्रप्रह्लादोनुजगामह ॥ प्रह्लादतीर्थ
यात्रांमेसम्यगाख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुत्वंकथयिष्यामिपापपंकप्रणाशिनीम् ॥ प्रह्लादतीर्थयात्रांतेसर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ २ ॥ संत्य
ज्यमेरुंकनकाचलेंद्रंतीर्थंजगामामरसंघजुष्टम् ॥ ख्यातंपृथिव्यांशुभदंहिमानसंयत्रस्थितोमत्स्यवपुःपुरेशः ॥३॥ तस्मिंस्तीर्थवरेस्नात्वासंतर्प्यपितृदेवताः ॥
संपूज्यचजगन्नाथमच्युतंश्रुतिभिर्युतम् ॥ ४ ॥ उपोष्यभूयःसंपूज्यदेवर्षिपितृमानवान् ॥ जगामकच्छपंद्रष्टुंकौशिक्यांपापनाशनम् ॥ ५ ॥ तस्यां
स्नात्वामहानद्यांसंपूज्यचजगत्पतिम् ॥ समुपोष्यशुचिर्भूत्वादत्त्वाविप्रेषुदक्षिणाम् ॥ ६ ॥ नमस्कृत्यजगन्नाथमथकूर्मवपुर्धरम् ॥ ततोजगामकृष्णायांद्रष्टुं
वाजिमुखंप्रभुम् ॥ तत्रदेवह्रदेस्नात्वातर्पयित्त्वापितॄन्सुरान् ॥ ७ ॥ संपूज्यहयशीर्षंचजगामगजसाह्वयम् ॥ तत्रदेवंजगन्नाथंगोविंदंचक्रपाणिनम् ॥ ८ ॥
स्नात्वासंपूज्यविधिवज्जगामयमुनांनदीम् ॥ तस्यांस्नातःशुचिर्भूत्वासंतर्प्यर्षिसुरान्पितॄन् ॥ ददर्शदेवदेवेशंलोकनाथंत्रिविक्रमम् ॥ ९ ॥

कर पवित्र हो ऋषि देवता और पितरोंको तर्पण कर देवाधिदेव लोकनाथ त्रिविक्रमका दर्शन किया ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि, सबके नियन्ता जगत्के स्वामी विष्णुने बलिकी वंचना करनेके निमित्त त्रैलोक्याक्रमण शरीर धारण किया ॥ १० ॥ तब वह पूर्वकालमें किसप्रकार त्रिविक्रम हुयेथे, उन्होंने किसका बंधन कियाथा ? सो कृपाकर कहिये ॥ ११ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, जिनको यह त्रिविक्रम कहते हैं और जिस समय उन्होंने प्रगट होकर जिसकी वंचना कीथी सो मैं कहता हूँ श्रवण करो ॥ १२ ॥ कश्यपके औरस पुत्र धुन्धु नामसे विख्यात थे, दनुके गर्भमें उनका जन्म हुआ और उनके बल वीर्य तथा पराक्रमकी सीमा नहीं थी ॥ १३ ॥ उस धुन्धुने तपस्या कर ब्रह्माजीकी अभ्यर्चनापूर्वक उनसे इस वरकी प्रार्थना की कि, मैं जिससे इन्द्र इत्यादि देवताओंसे अवध्य होजाऊँ ॥ १४ ॥ हे

नारदउवाच ॥ सांप्रतंभगवान्विष्णुस्त्रैलोक्याक्रमणंवपुः ॥ करिष्यतिजगत्स्वामीबलिबंधनमीश्वरः ॥ १० ॥ तत्कथंपूर्वकालेपिविभुरासीत्त्रिविक्रमः ॥
कस्यवाबंधनंविष्णुःकृतवांस्तच्चमेवद ॥ ११ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांकथयिष्यामियोऽयंप्रोक्तस्त्रिविक्रमः ॥ यस्मिन्कालेबभूवाथयंचवंचितवानसौ ॥
॥ १२ ॥ आसीद्धुंधुरितिख्यातःकश्यपस्यौरसःसुतः ॥ दनोर्गर्भसमुद्भूतोमहाबलपराक्रमः ॥ १३ ॥ ससमाराध्यचतदाब्रह्माणंतपसासुरः॥ अवध्यत्वंसुरैः
सेंद्रैःप्रार्थयन्सतुनारद ॥ १४ ॥ तस्यतंचवरंप्रादात्तपसापंकजोद्भवः ॥ परितुष्टःसचबलीनिर्जगामात्रिविष्टपम् ॥ १५ ॥ चतुर्थस्यकलेरादौजित्वादेवान्स
वासवान् ॥ धुंधुःशक्रत्वमकरोद्धिरण्यकशिपौसति ॥ १६॥ तस्मिन्कालेसबलवान्हिरण्यकशिपुस्ततः ॥ चचारमंदरगिरौदैत्योधुंधुसमाश्रितः ॥ १७ ॥
ततोऽसुरायथाकामंविचरंतित्रिविष्टपे ॥ त्रिदशाब्रह्मलोकेचसंस्थितादुःखसंयुताः ॥ १८ ॥ ततोऽमरान्ब्रह्मसदोनिवासिनःश्रुत्वाथधुंधुर्दितिजानुवाच ॥
व्रजामदैत्यावयमग्रजस्यसदोविजेतुंत्रिदशान्सशक्रान् ॥ १९ ॥ तेधुंधुवाक्यंतुनिशम्यदैत्याःप्रोचुर्ननोविद्यतिलोकपाल ॥ गतिर्ययायामपितामहाजिरंसुदु
र्गमोयंपरतोहिमार्गः ॥ २० ॥

नारद ! कमलयोनि ब्रह्माजीने उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो उसी प्रकारका वर दिया फिर वह स्वर्गको गया ॥ १५ ॥ और चौथे कलिके प्रारंभमें इन्द्रादि देवताओंको परास्त कर इन्द्रत्व करनेलगा उस समय हिरण्यकशिपु विद्यमान थे ॥ १६ ॥ वह उससमय धुन्धुका आश्रय कर मंदराचलपर्वतपर विचरण करनेलगे ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त अन्यान्य असुरोंनेभी स्वर्गमें विचरण करना प्रारंभ किया, तब देवता अत्यन्त दुःखित हो ब्रह्मलोकमें वास करनेलगे ॥ १८ ॥ देवता ब्रह्माजीके निकट वास करते हैं यह सुनकर धुन्धु असुरोंसे बोला कि, हे दैत्यो ! मैं इन्द्र इत्यादि देवताओंको जीतनेके निमित्त ब्रह्मलोकमें जाऊँगा तुमभी मेरे साथ चलो ॥ १९ ॥ धुन्धुके यह वचन सुन दैत्य बोले कि, हे लोकपाल ! जिससे पितामह ब्रह्माजीके निकट नमन करसकैं हममें ऐसी गति नहीं हैं, उस स्थानपर जानेका मार्ग अत्यन्त

कठिन है ॥ २० ॥ यहाँसे अनेक सहस्र योजन महर्लोक प्रतिष्ठित है, जो ऋषियोंसे सेवित है. उन सब ऋषियोंके कटाक्षसेही सम्पूर्ण दैत्य दग्ध होजायँगे ॥ २१ ॥ फिर इससे ऊपर एक करोड़के व्यवधानमें जन नामका लोक है, जहाँ गोमातायें वास करती हैं, हे महासुरेन्द्र ! हमारे बीचमें ऐसा कोईभी दैत्य नहीं है जो उनका विनाश करसकै ॥ २२ ॥ इसके पीछे तीस करोड़ योजनके बीचमें सहस्र सूर्यके समान प्रकाशमान सत्यलोक है, जिन्होंने तुम्हें वर दियाथा वही भगवान् उस स्थानपर वास करते हैं ॥ २३ ॥ जब कि, उच्चारण किये वेदको सुनकर सुरादि प्रफुल्ल और असुर उनके समधर्मी पुरुष संकुचित होते हैं ॥ २४ ॥ इसी कारणसे कहता हूँ कि, आप इसप्रकारकी बुद्धि न करैं, हे धुन्धो ! वैराजके लोकमें जानेकी मनुष्योंमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २५ ॥ धुन्धु उनके यह वचन सुनकर बोला कि, मैं

इतःसहस्रैर्बहुयोजनाख्यैर्लोकोमहर्नाममहर्षिजुष्टः ॥ येषांहिदृष्ट्यार्पणचोदितेनदह्यांतिदैत्याःसहसेक्षितेन ॥ २१ ॥ ततोऽपरोयोजनकोटिरेकोलोकोजनोनामवसंतियत्र ॥ गोमातरोस्मासुविनाशकारीयासांनकोपीहमहासुरेंद्रः ॥ २२ ॥ ततोऽपरोयोजनकोटिभिस्तुत्रिंशद्भिरादित्यसहस्रदीप्तः ॥ सत्याभिधानोभगवन्निवासोवरप्रदोभूद्भवतोहियोसौ ॥ २३ ॥ यस्यवेदध्वनिंश्रुत्वाविकसंतिसुरादयः ॥ संकोचमसुरायांतियेचतेषांसधर्मिणः ॥ २४ ॥ तस्मान्मात्वंमहाबाहोमतिमेतांसमादधः ॥ वैराज्यभुवनंधुंधोदुरारोहंसदानृभिः ॥ २५ ॥ तेषांवचनमाकर्ण्यधुंधुःप्रोवाचदानवान् ॥ गंतुकामःससदनंब्रह्मणोजेतुमीश्वरम् ॥ २६ ॥ कथंतुकर्मणाकेनगम्यतेदानवर्षभाः ॥ कथंतत्रसहस्राक्षःसंप्राप्तःसहदैवतैः ॥ २७ ॥ तेधुंधुनादानवेंद्राःपृष्टाःप्रोचुर्वचोऽधिपम् ॥ नवयंविद्मतत्कर्मशुक्रस्तद्वेत्त्यसंशयम् ॥ २८ ॥ दैत्यानांतुवचःश्रुत्वाधुंधुर्दैत्यपुरोहितम् ॥ पप्रच्छशुक्रंकिंकर्मकृत्वाब्रह्मसदोगतिः ॥ २९ ॥ ततोऽस्मैकथयामासदैत्याचार्यःकलिप्रियः ॥ शक्रस्यचरितंश्रीमान्पुरावृत्ररिपोःकिल ॥ ३० ॥ सहस्राक्षःशतंचैकंयज्ञानामयजत्पुरा ॥ दैत्येंद्रवाजिमेधानांतेनब्रह्मसदोगतिः ॥ ३१ ॥ तद्वाक्यंदानवपतिःश्रुत्वाशुक्रस्यवीर्यवान् ॥ यष्टुंगोमेधयज्ञानांचकारमतिमुत्तमाम् ॥ अथामंत्र्यासुरगुरुंदानवांश्चाप्यनुत्तमान् ॥३२॥

ब्रह्माजीके निकट जाकर उनको जीतनेका अभिलाषी हुआ हूँ ॥ २६ ॥ हे दानवेन्द्रो ! क्या कार्य करनेसे किसप्रकार वहाँ जासकते हैं और इन्द्रने किस उपायसे देवताओंके साथ वहाँ गमन किया ॥ २७ ॥ धुन्धुके इसप्रकार पूछनेपर दानवोंने उत्तर दिया कि, हम यह नहीं जानते, शुक्राचार्य जानते होंगे, इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ २८ ॥ दैत्योंके यह वचन सुन उनके अधिपति धुन्धु अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे बोले कि, किसकार्यके करनेसे ब्रह्माजीके निकट जासकताहूँ ॥ २९ ॥ तब श्रीमान् दैत्याचार्य शुक्राचार्य वृत्रनिहन्ता देवराजके पूर्व चारित्रोंको वर्णनकर बोले ॥ ३० ॥ कि, सहस्राक्ष इन्द्रने पहले एकसौ अश्वमेध यज्ञ कियेथे, हे दैत्येन्द्र ! उसीसे ब्रह्माजीके निकट पहुँचे थे ॥ ३१ ॥ दानवपति धुन्धु शुक्राचार्यके यह वचनसुन अश्वमेध यज्ञ

करनेकी अभिलाषासे अपने गुरु और दानवोंसे सम्मति ले ॥ ३२ ॥ बोला कि, मैं विशेषप्रकारसे दक्षिणा देकर अश्वमेधयज्ञमें सबको यजन करूँगा इसकारण सभी आओ, पृथ्वीपर राजाओंको ॥ ३३ ॥ जीतकर यथा कामगुणयुक्त अश्वमेधको करूँगा, उसके निमित्त निधियोंके देवता और गुह्यकोंको बुलाकर आज्ञा दो ॥ ३४ ॥ और प्रधान २ ब्राह्मणोंको आमंत्रण करो, देविकाके किनारे वह परमपवित्र सरिद्वरा सब सिद्धिकी देनेवाली कहकर विख्यात है, प्राचीन स्थानका आश्रयकर वहाँ अनेक अश्वमेध यज्ञ करैंगे ॥ ३५ ॥ असुरोंके याजक शुक्राचार्यने सुरारि धुन्धुके यह वचन सुन हर्ष प्रकाशकर सब निधियोंके ईश्वरको आज्ञा दी ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त धुन्धु पापनाशन प्राचीन देविकातीर्थमें भार्गवश्रेष्ठ शुक्राचार्यके द्वारा अश्वमेधयज्ञके अर्थ दीक्षित हुआ ॥ ३७ ॥ भार्गववंशके ब्राह्मण और

प्रोवाचयक्ष्येहंयज्ञैरश्वमेधैःसुदक्षिणैः ॥ तदागच्छध्वमवनींगच्छामोवसुधाधिपान् ॥ २३ ॥ विजित्यहयमेधान्वैयथाकामगुणान्वितान् ॥ आहूयतंचनिधयस्त्वाज्ञाप्यंतांचगुह्यकाः ॥ ३४ ॥ आमंत्र्यतांद्विजश्रेष्ठाःप्रयामोदेविकातटम् ॥ साहिपुण्यासरिच्छ्रेष्ठासर्वसिद्धिकरीस्मृता ॥ स्थानंप्राचीनमासाद्यवाजिमेधान्यजामहे ॥ २५ ॥ इत्थंसुरारेर्वचनंनिशम्यासुरयाजकाः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोनिधीशंसंदिदेशसः ॥ २६ ॥ ततोधुंधुर्देविकायांप्राचीनेपापनाशने ॥ भार्गवेन्द्रेणशुक्रेणवाजिमेधायदीक्षितः ॥ २७ ॥ सदस्याऋत्विजश्चापितत्रासन्भार्गवाद्विजाः ॥ शुक्रस्यानुमतेब्रह्मन्शुक्रशिष्याश्चपंडिताः ॥ ३८ ॥ यज्ञभागभुजस्तत्रस्वर्भानुप्रमुखामुने ॥ कृताश्चासुरनाथेनशुक्रस्यानुमतेऽसुराः ॥ ३९ ॥ ततःप्रवृत्तोयज्ञस्तुसमुत्सृष्टस्तथाहयः ॥ हयस्यानुययौश्रीमानसिलोमामहासुरः ॥ ४० ॥ ततोऽग्निधूमेनमहीसशैलाव्याप्तादिशोवैविदिशश्चपूर्णाः ॥ तेनोग्रगंधेनदिवःस्पृशेनमरुद्ववौब्रह्मलोकेमहर्षे ॥ ४१ ॥ तंगंधमाघ्रायसुराविषण्णांजानंतधुंधुंहयमेधदीक्षितम् ॥ ततःशरण्यंशरणंजनार्दनंजग्मुःसशक्राजगतःपरायणम् ॥ ४२ ॥ प्रणम्यवरदंदेवंपद्मनाभंजनार्दनम् ॥ प्रोचुःसर्वेसुरगणाःभयगद्गदयागिरा ॥ ४३ ॥

शुक्राचार्यके शिष्य और अन्यान्य पंडितोंने उनकी आज्ञासे यज्ञमें सादस्य और ऋत्विज पदको ग्रहण किया ॥ ३८ ॥ हेमुने ! स्वर्भानु राहु इत्यादि असुरोंको शुक्राचार्यकी आज्ञानुसार धुन्धुने अपने यज्ञका भागी किया ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त यज्ञके प्रवृत्त होनेपर श्यामकर्ण अश्व छोडा गया, महासुर श्रीमान् असिलोमा रक्षार्थ अश्वके पीछे चले ॥ ४० ॥ इस यज्ञकी अग्निका धुआँ पर्वत पृथ्वीमें व्याप्त सब दिशा विदिशाओंमें पूर्ण होगया, हे ब्रह्मन् ! मरुत् वही स्वर्गस्पर्शी उग्र सुगंधि ब्रह्मलोकमें वहन करनेलगी ॥ ४१ ॥ देवता उस गंधको सूँघकर धुन्धु अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित हुआ है, यह जानकर अत्यन्त खेदित हुए और इन्द्रके साथ सम्पूर्ण लोकोंके शरणदाता सम्पूर्ण जगत्के परायण (परमगति) भगवान् जनार्दनकी शरण गये ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त वहाँ वरद भगवान् पद्मनाभको

प्रणाम कर भयसे गद्गद हो यह वचन बोले ॥ ४३ ॥ कि, हे भगवन् ! हेदेवेश ! हे चराचरपरायण ! हे आर्तिविनाशन ! देवताओंके निवेदनको श्रवण करो ॥ ॥ ४४ ॥ धुन्धुनामक महाबलवान् महाअसुरने बलसे गर्वित हो देवताओंका पराजय कर त्रिलोकीको हरण करलिया है ॥ ४५ ॥ पिनाकधारी शिवजीके अतिरिक्त देवताओंका उद्धारकर्ता और कोईभी नहीं है, इसीकारणसे धुन्धु उपेक्षितव्याधिकी समान प्रबल होगयाहै ॥ ४६ ॥ अब वह ब्रह्मलोकवासी देवताओंको जय करनेके निमित्त उद्यत हुआहै, इसीकारणसे शुक्राचार्यकी आज्ञानुसार अश्वमेधयज्ञकी दीक्षा ग्रहण कर ॥ ४७ ॥ और सौ अश्वमेध यज्ञ करके ब्रह्मलोकपर चढ़ाई कर त्रिदशगणोंको परास्त करनेकी इच्छा की है ॥ ४८ ॥ इसकारण हे जगद्गुरो ! अब समयको न बिताकर जिससे यज्ञविध्वंस हो जाय वही

भगवन्देवदेवेशचराचरपरायण ॥ विज्ञप्तिःश्रूयतांविष्णोसुराणामार्तिनाशन ॥ ४४ ॥ धुंधुर्नामासुरपतिर्बलवान्बलसंवृतः ॥ सर्वान्सुरान्विनिर्जित्यत्रैलोक्यमहरद्बलिः ॥ ४५ ॥ ऋतेपिनाकिनंदेवंत्रातानान्योनविद्यते ॥ अतोसौवृद्धिमगमद्यथाव्याधिरुपेक्षितः ॥४६॥ सांप्रतंब्रह्मलोकस्थानपिजेतुंसमुद्यतः ॥ शुक्रस्यमतमादायसोऽश्वमेधायदीक्षितः ॥ ४७ ॥ शतंक्रतूनामिष्ट्वासौब्रह्मलोकंमहासुरः ॥ आरोढुमिच्छतिवशीविजेतुंत्रिदशानपि ॥ ४८ ॥ तस्मादकालहीनंतुचिंतयस्वजगद्गुरो ॥ उपायंमखविध्वंसेयेनस्यामसुनिर्वृताः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वासुराणांवचनंभगवान्मधुसूदनः ॥ दत्त्वाभयंमहाबाहुःप्रेषयामाससांप्रतम् ॥ विसृज्यचतदासर्वांस्त्यक्त्वाजेयंमहासुरम् ॥ ५० ॥ बंधनायमतिंचक्रेधुंधोर्धर्मध्वजस्यवै ॥ ततःकृत्वासभगवान्वामनरूपमीश्वरः ॥ ५१ ॥ देहंत्यक्त्वानिरालंबंकाष्ठवद्देविकाजले ॥ क्षणान्मज्जंस्तथोन्मज्जन्मुक्तकेशोयदृच्छया ॥ ५२ ॥ दृष्टोथदैत्यपतिनादैतेयैश्चतथर्षिभिः ॥ ततःकर्मपरित्यज्ययाज्ञियंब्राह्मणोत्तमाः ॥ ५३ ॥ समुत्तारयितुंविप्रमाद्रवंतसमाकुलाः ॥ सदस्यायजमानश्चऋत्विजोऽथमहौजसः ॥ ५४ ॥ निमज्जमानमुज्जह्रुस्तेचतेवामनंद्विजम् ॥ समुत्तार्यप्रसन्नास्तेपप्रच्छुःसर्वएवहि ॥ किमर्थंपतितोऽसीहकेनाक्षिप्तोसिवावद ॥ ५५ ॥

उपाय विचारिये, ऐसा होनेसे हमलोक निर्वृत्त स्वस्थ होंगे ॥ ४९ ॥ भगवान् मधुसूदनने देवताओंके यह वचन सुनकर विधिपूर्वक अभयदे अपने २ स्थानोंको भेज दिया ॥ ५० ॥ उनको बिदा दे धर्मध्वज धुन्धुको जीतनेकी सामर्थ्य नहीं है यह विचार कर उसके बंधन करनेका संकल्प किया, इसीकारणसे वह वामनरूप धारण कर ॥ ५१ ॥ देविकाके जलमें काष्ठकी समान निरवलम्बदेहको छोडकर खुलेहुए बालोंसे उपलक्षित सार कभी डूबते और कभी उछलतेथे ॥ ५२ ॥ दैत्यपति धुन्धु और दानवों तथा ऋषियोंने यह चरित्र देखा, तब उसी समय सम्पूर्ण ब्राह्मण यज्ञकार्यको त्यागकर ॥ ५३ ॥ व्याकुल हो उस ब्राह्मणके उद्धार करनेके अर्थ दौडे, तब सदस्य, यजमान और ऋत्विक् इन सभी महातेजस्वियोंने मिलकर ॥ ५४ ॥ डूबतेहुए उस वामनरूपी ब्राह्मणका उद्धार किया, (अर्थात् जलसे बाहर निकाला)

और उद्धार कर प्रसन्नहो सभी उनसे पूछनेलगे कि, तुम किसकारणसे इसमें गिरेथे, या किसने तुम्हें डालाथा सो कहो ॥ ५५ ॥ उनके यह वचन सुन वारम्वार कम्पायमानहो वह सबसे बोले कि, मैं जिसकारणसे निमग्न हुआथा सो कहताहूँ श्रवण करो ॥५६॥ प्रभासनामसे विख्यात गुणवान् ब्राह्मण थे वह सर्व शास्त्रों में विशारद थे उन बुद्धिमान्ने वरुणगोत्रमें जन्म लियाथा ॥ ५७ ॥ उनके दो पुत्रथे, यह दोनोंही मंदबुद्धि और अत्यन्त दुःखित थे, मैं उन दोनोंके बीचमें छोटाहूँ ॥ ५८ ॥ मेरे बड़े भ्राताका नाम नेत्रभास, और पिताने कौतुकके वशसे मेरा नाम गतिभास रक्खाथा ॥ ५९ ॥ मेरे पिताके निवासस्थान परमशोभायमान और रमणीक तथा त्रिविष्टप (स्वर्ग) के गुणों से युक्त और साक्षात् स्वर्गकी समान था ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त बहुतसमय बीतनेपर मेरे पिताकी मृत्यु होगई, हम दोनोंजने

तेषामाकर्ण्यवचनंकंपमानोमुहुर्मुहुः ॥ प्राहधुंधुपुरोगांस्ताञ्छ्रूयतामत्रकारणम् ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणोगुणवानासीत्प्रभासइतिविश्रुतः ॥ सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञो गोत्रेणापितुवारुणः ॥ ५७ ॥ तस्यपुत्रद्वयंजातंमंदप्रज्ञंसुदुःखितम् ॥ तत्रज्येष्ठोममभ्राताकनीयानपरस्त्वहम् ॥ ५८ ॥ नेत्रभासइतिख्यातोऽज्येष्ठोभ्राता ममाभवत् ॥ ममनामपिताचक्रेगतिभासेतिकौतुकात् ॥ ५९ ॥ रम्यश्चावसथश्चापिशुभआसीत्पितुर्मम ॥ त्रैविष्टपगुणैर्युक्तःस्वर्गवासोपमःशुभः ॥६० ॥ ततःकालेनमहताआवयोःसपितामृतः ॥ तस्यौर्ध्वदेहिकंकृत्वागृहमावांसमागतौ ॥ ६१ ॥ ततोमयोक्तःसभ्राताविभजामगृहंवयम् ॥ तेनोक्तोनैवभवतोविद्यतेभागइत्यहम् ॥ ६२ ॥ कुब्जवामनखञ्जानांक्लीबानांश्वित्रिणामपि ॥ उन्मत्तानांतथांधानांधनभागोनविद्यते ॥ ६३ ॥ प्रियंवाक्यंगृहेवासोभोजनाच्छादनादिकम् ॥ एतावद्दीयतेतेभ्योनार्थभागहराहिते ॥ ६४ ॥ एवमुक्तोमयासोथकिमर्थंपैतृकाद्धहात् ॥ धनार्धभागमर्हामिनाहंन्यायेनकेनवै ॥ ॥ ६५ ॥ इत्युक्तोबलवान्भ्राताकेशान्जग्राहमेऽसुर ॥ समुत्क्षिप्याक्षिपन्नद्यांनजानेह्यवतारणम् ॥ ६६ ॥

उनकी अन्त्येष्टि (श्राद्ध) क्रिया कर गृहको आये ॥ ६१ ॥ और मैं ने भ्रातासे कहा कि, मेरा घर बाँटदो, उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि, तुम्हारा हिस्सा नहीं है ॥ ६२ ॥ कारण कि, कुब्ज (कुबड़ा) वामन, (बौना) खंज (लँगडा) क्लीब (नपुंसक) शिवत्री (कुष्ठी) उन्मत्त, (पागल) अंध, (नेत्ररहित अंधा) यह धनका भाग नहीं पाते ॥ ६३ ॥ केवल उन्हें गृहमें वास, प्रियवचन और भोजन आच्छादनादिही दियाजाता है, इसके अतिरिक्त हिस्सा लेनेका अधिकार उन्हें नहीं है ॥ ६४ ॥ मैं उनके यह वचन सुनकर बोला कि, किसकारण और किस शास्त्रके अनुसारसे मैं अपने पिताके धनका आधा भाग नहीं पाऊँगा ॥ ६५ ॥ हे असुर ! यह कहतेही बलवान् ज्येष्ठभ्राताने मेरे बाल पकड़ और ऊपरको उठाकर मुझे नदीमें फेंकदिया मुझसे पैरना आता नहीं था ॥ ६६ ॥

मुझे इस नदीमें पौढ़तेहुए एक वर्ष समय बीतगया परन्तु मैं मरा नहीं आज आपने मुझे जीवदान दिया॥ ६७॥ आप कौनहैं जो स्नेहमय बांधवकी समान यहाँ आये और आप सभोंके बीचमें यह साक्षात् इन्द्रकी समान जो पुरुष दृष्टि आता है यह कौनहै ॥ ६८॥ हे तपोधनो ! आप यथावत् यह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन कीजिये, आप सब महर्षिकी समान बोध होतेहैं. जो कि, हमारे प्रति करुणाप्रकाश कीहै ॥ ६९ ॥ द्विजसत्तम भार्गवोंने वामनके यह वचन सुनकर बोले कि हे ब्रह्मन् ! हम भार्गववंशके बढ़ानेवाले ब्राह्मणहैं ॥ ७० ॥ और यह महातेजस्वी धुन्धुनामसे विख्यात महाअसुर है. यह दाता, भोक्ता, भर्त्ता और यज्ञकर्ममें दीक्षित हुएहैं ॥ ७१ ॥ भार्गववंशीय वह सम्पूर्ण ब्राह्मण भगवान् वामनसे इसप्रकार कह उस वामनके हितकारी वचन दैत्यपति धुन्धुसे बोले ॥ ७२॥ कि, हे दैत्येन्द्र ! इस वामनको सर्वोपकरणयुक्त परमश्रीयुक्त

ममास्यांनिम्नगायांतुमध्येनप्लवतोगतः ॥ कालःसंवत्सराख्यस्तुयुष्माभिरमृतोधृतः ॥ ६७ ॥ केभवंतोत्रसंप्राप्ताःसस्नेहाबांधवाइव ॥ कोयंशक्रप्रतीकाशो युष्मन्मध्येप्रदृश्यते ॥ ६८ ॥ तन्मेसर्वंसमाख्यातयाथातथ्यंतपोधनाः ॥ महर्षिसदृशायूयंसानुकंपाश्चमांदृशे ॥ ६९ ॥ तद्वामनवचःश्रुत्वाभार्गवाद्विजसत्तमाः ॥ प्रोचुर्वयंद्विजाब्रह्मन्भार्गवावंशवर्धनाः ॥ ७० ॥ असावपिमहातेजाधुंधुर्नाममहासुरः ॥ दाताभोक्ताचभर्ताचदीक्षितोयज्ञकर्माणि ॥ ७१ ॥ इत्थेवमुक्त्वादेवेशंवामनंभार्गवास्ततः ॥ प्रोचुर्दैत्यपतिंसर्वेवामनार्थकरंवचः ॥७२ ॥ दीयतामस्यदैत्येंद्रसर्वोपस्करसंयुतम् ॥ श्रीमदावसथंदास्योरत्नानिविविधानिच ॥ ७३ ॥ इतिद्विजानांवचनंश्रुत्वादैत्यपतिस्ततः ॥ प्राहद्विजेंद्रतेदाद्मियत्त्वमिच्छसिवैधनम् ॥ ७४ ॥ दासीर्गृहंहिरण्यंचवाजिनःस्यंदनान्गजान् ॥ गोभूमिराज्यवस्त्रादिस्वेच्छयाचैववैप्रभो ॥ ७५ ॥ तद्वाक्यंदानवपतेःश्रुत्वादेवोथवामनः ॥ प्राहासुरपतिंधुंधुंस्वार्थसिद्धिकरंवचः ॥ ७६ ॥ सोदरेणापिहिभ्रात्राह्रियंतेयस्यसंपदः ॥ किंतस्यनार्थैराजेंद्रदीयतेचार्थएवहि ॥ ७७ ॥ दासीर्दासांश्चभृत्यांश्चगृहंरत्नंपरिच्छदान् ॥ समर्थेभ्योद्विजेंद्रेभ्यःप्रयच्छस्वमहाभुज ॥ ७८ ॥

आवसथ (वासस्थान) और सम्पूर्ण दासी तथा विविधप्रकारके रत्न दान कीजिये ॥ ७३ ॥ दैत्यपति धुन्धु ब्राह्मणोंके यह वचन सुन भगवान् वामनसे बोले कि, हे द्विजेन्द्र ! आप जो धनकी इच्छा करतेहैं तो वह मैं आपको दूँगा ॥ ७४ ॥ दासी गृह, सुवर्ण, अश्व, स्यन्दन (रथ) और हाथी, गौ, पृथ्वी, राज्य और वस्त्रादि इच्छानुसार दान करूँगा ॥ ७५ ॥ भगवान् वामन दानवपतिके यह वचन सुन उस असुरपति धुन्धुसे स्वार्थसिद्धिके निमित्त यह वचन बोले ॥ ७६ ॥ कि, सहोदर भाईने जिसकी सम्पत्तिको हरण कर लियाहै हेराजन् ! उसे फिर अर्थका प्रयोजन क्या है, मुझे धन देनेसे क्या होगा ॥ ७७ ॥ इसकारण हे महाबाहो ! यह सब शक्तियुक्त द्विजेन्द्रकोही दास, दासी, सेवक, गृह, रत्न और सब सामान दान कीजिये ॥ ७८ ॥

मेरे योग्य देखकर मुझे तीन पैर पृथ्वी दान कीजिये, हेराजेन्द्र ! मैं आपसे केवल यही प्रार्थना करताहूँ ॥ ७९ ॥ दैत्यपति धुन्धु ऋत्विजोंके सहित महात्मा वामनके यह वचन सुन ऊँचेस्वरसे हँसे, उन्होंने जब और कुछ न लिया तब तीन पैर पृथ्वी दानकी ॥ ८० ॥ महासुरेन्द्र धुन्धुने तीन चरण पृथ्वी दान की है यह देखकर अनन्तशक्ति भगवान् वामनजीने चंद्रमाके समान त्रिलोकीको लाँघनार्थ त्रिविक्रममूर्ति धारण की ॥ ८१ ॥ धारण कर पहले चरणसे तो दैत्योंका संहार और ऋषियोंको प्रणाम कर, सागर, पर्वत, रत्नाकर (समुद्र) और नगरसमेत सम्पूर्ण पृथ्वीको व्याप्तकर हरण करलिया ॥ ८२ ॥ इसके उपरान्त सब लोकोंके ईश्वर उन वामनजीने देवताओंके हितकी इच्छासे इसप्रकार दूसरे चरणसे शीघ्रतासे स्वर्ग, मर्त्य और चंद्र सूर्य नक्षत्रमंडित देवनिलय

ममप्रमाणमालोक्यमामकंचपदत्रयम् ॥ स्वंप्रयच्छस्वदैत्येंद्रएतदेवार्थयेह्यहम् ॥ ७९ ॥ इत्येवमुक्तंवचनंमहात्मनाविहस्यदैत्याधिपतिःसऋत्विजः ॥
प्रादाच्चविप्रायपदत्रयंवशीयदासनान्यत्प्रगृहीतवान्पुनः ॥ ८० ॥ क्रमत्रयंतावदवेक्ष्यदत्तंमहासुरेंद्रेणविभुर्यथाशशी ॥ चक्रेततोलंघयितुंत्रिलोकींत्रिविक्रमं
रूपमनंतशक्तिः ॥ ८१ ॥ कृत्वाचरूपंदितिजांश्चहत्वाप्रणम्यचर्षींश्चसचक्रमेण ॥ महींमहीध्रैःसहितांसहार्णवांजहाररत्नाकरपत्तनैर्युताम् ॥ ८२ ॥ भुवं
सनाकांत्रिदशाधिवासंसोमार्कऋक्षैरभिमंडितंनभः ॥ देवोद्वितीयेनजहारवेगात्क्रमेणदेवप्रियमीप्सुरीश्वरः ॥ ८३ ॥ क्रमंतृतीयंनयदास्यपूरितंतदातिको
पाद्दनुपुंगवस्य ॥ पपातपृष्ठेभगवांस्त्रिविक्रमोमेरुप्रमाणेनतुविग्रहेण ॥ ८४ ॥ पततावासुदेवेनदानवोपरिनारद ॥ त्रिंशद्योजनसाहस्रीभूमिर्गर्तेदृढीकृता ॥
॥ ८५ ॥ ततोदैत्यंसमुत्पाट्यतस्यांप्रक्षिप्यवेगतः ॥ ववर्षसिकतावृष्ट्यातंचगर्तमपूरयत् ॥ ८६ ॥ ततःस्वर्गंसहस्राक्षोवासुदेवप्रसादतः ॥ सुराश्चसर्वे
त्रैलोक्यमवापुर्निरुपद्रवाः ॥ ८७ ॥ भगवानपिदैत्येंद्रंप्रक्षिप्यसिकतार्णवे ॥ कालिंद्यारूपमाधायतत्रैवांतरधीयत ॥ ८८ ॥

आकाशको हरण किया ॥ ८३ ॥ जब उनका तीसरा चरण पूर्ण न हुआ तब अत्यन्त क्रोधित हो वह भगवान् त्रिविक्रम दनुपुंगव धुन्धुकी पीठपर मेरुपर्वतकी समान शरीरसे पतित हुए ॥ ८४ ॥ हे नारद ! भगवान् वासुदेवके दानवके ऊपर पतित होतेही तीस योजन पृथ्वी नीचेको धुसगई ॥ ८५ ॥ इसके उपरान्त दैत्यको शीघ्रतासे उठा उस गड्ढेमें डालदिया फिर धूलिकी वृष्टिके द्वारा उस गड्ढेको भरदिया ॥ ८६ ॥ तब इन्द्रने वासुदेवजीके प्रसादसे स्वर्गको और देवताओंने उपद्रवरहित हो त्रिलोकीको प्राप्त किया ॥ ८७ ॥ इसके उपरान्त भगवान्भी दैत्यपतिको बालुसागरमें प्रक्षिप्त कर और कालिन्दीका रूप धारण कर उस स्थानमें अंतर्धान होगये ॥ ८८ ॥

इसप्रकारसे भगवान् विष्णु तुम्हारे पहले धुन्धुका विनाश करनेके निमित्त वामन और त्रिविक्रम हुएथे ॥ ८९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषानुवादे धुन्धुपराजयो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजीने कालिन्दीके जलमें स्नान और त्रिविक्रमकी पूजा कर एक रात्रि उपवास रहकर लिंगभेदपर्वतपर गये ॥ १ ॥ वहाँ विधिपूर्वक स्नान कर भक्तिसहित शिवजीकी पूजा की और एक रात्रि बीतने पीछे केदार तीर्थको गये ॥ २ ॥ वहाँ जा यथाविधिसे स्नान और जगत्पतिकी आराधना कर सात दिनतक निवास किया और फिर कुब्जाम्रको गये ॥ ३ ॥ महाबाहु प्रह्लादजी वहाँ जा उपवासी जितेन्द्रिय हो वासुदेवकी आराधना कर बदरिकाश्रमको गये ॥ ४ ॥ वहाँ नारायणके संतोष विधानके निमित्त भक्तिसहित पूजा कर सरस्वतीके जलमें स्नान किया और फिर वराहतीर्थमें आये, यहाँ गरुड़वाहन (विष्णु) का दर्शन और परमभक्तिसहित पूजा कर ॥ ५ ॥ भद्रकर्णमें जाय शशिशेखर (शिव) की अभ्यर्चना की, उस दिन वहां वासकर प्रातः पुनः जितेन्द्रिय हो, विपाशाकीओरको जा वहाँ स्नान कर द्विजप्रिय देवादिदेव भगवान्‌की आराधना कर इरावतीको गये, और वहाँ महेश्वर जगन्नाथका दर्शन किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उन सनातन पुरुष जगदीशकी पूजा करनेके पीछे परमरूप और दुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥ ॥ ८ ॥ भृगु कुष्ठरोगसे अभिभूत हो जिन शाश्वतस्वरूप जगत्प्रभुकी आराधना करके अतुल आरोग्य और अक्षय सन्ततिको प्राप्त हुए थे ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि,

एवंपुराविष्णुरभूच्चवामनोधुंधुंविजेतुंचत्रिविक्रमोऽभूत् ॥ यस्मिन्सदैत्येंद्रसुतोजगाममहाश्रमेपुण्ययुतेमहर्षे ॥ ८९ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेधुंधुपराजयोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ कालिंदीसलिलेस्नात्वापूजयित्वात्रिविक्रमम् ॥ उपोष्यरजनीमेकांलिंगभेदंगिरिंययौ ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाचविधिवच्छिवंसंपूज्यभक्तितः ॥ उपोष्यरजनीमेकांतीर्थंकेदारमाव्रजेत् ॥२॥ तस्मिंस्नात्वाचविधिवत्समाराध्यजगत्पतिम् ॥ उषित्वावासरान्सप्तकुब्जाम्रंप्रजगामह ॥ ३ ॥ तत्रगत्वामहाबाहुरुपवासीजितेंद्रियः ॥ हृषीकेशंसमभ्यर्च्यययौबदरिकाश्रमम् ॥४॥ संतोष्यनारायणमर्च्यभक्त्यास्नात्वाथविद्वान्ससरस्वतीजले ॥ वाराहतीर्थंगरुडासनंसदृष्ट्वासमभ्यर्च्यसुभक्तिमांश्च ॥ ५ ॥ भद्रकर्णेततोगत्वायजच्चशशिशेखरम् ॥ ततःसंपूज्यचवशीविपाशामभितोययौ ॥६॥ तस्यांस्नात्वासमभ्यर्च्यदेवदेवंद्विजप्रियम् ॥ इरावत्यांजगन्नाथंददर्शपरमेश्वरम् ॥ ७ ॥ समाराध्यद्विजश्रेष्ठशाश्वतंजगतःप्रभुम् ॥ समवापपरंरूपमैश्वर्यंचसुदुर्लभम् ॥८॥ कुष्ठरोगाभिभूतश्चयंसमाराध्यवैभृगुः ॥ आरोग्यमतुलंप्रापसंतानमपिचाक्षयम् ॥९॥नारदउवाच ॥ कथंपुरूरवाविष्णुमाराध्यद्विजसत्तम ॥ विरूपत्वंसमुत्सृज्यरूपंप्रापश्रियासह ॥ १० ॥

हे द्विजसत्तम ! पुरूरवा किसप्रकारसे भगवान् विष्णुकी आराधना कर अतुल आरोग्य और परम सुन्दरमूर्तिको प्राप्त हुएथे ? ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे तपोधन ! पहले त्रेतायुगकी आदिमें जो हुआथा वह महापापोंका नाश करनेवाला वृत्तान्त कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ ११ ॥ मद्रदेश नामसे विख्यात ब्राह्मणोंसे संस्कृत एक देश था उसका स्थानीय नगरीमें नाम शाकल था ॥ १२ ॥ वहाँ सधर्म नामका बनिया निवास करताथा, वह बनिया दूकानसेही अपना जीवन निर्वाह करताथा, धनवान् गुणवान् योगी और नानाप्रकारके शास्त्रोंका जाननेवाला था ॥ १३ ॥ वह किसीसमय बहुतसारे साथियोंको साथ ले विविधप्रकारकी विक्रयवस्तुको ग्रहण कर अपने देशसे सौराष्ट्रके जानेके निमित्त सन्नद्ध हुआ ॥ १४ ॥ हे कलिप्रिय ! जानेकेसमय मरुभूमिमें पहुँचनेपर मार्गमें रात्रि होगई. वहां चोरों ने कठिन आक्रमण किया ॥ १५ ॥ इस बनियेका सर्वस्व (सब धन) चलागया तब वह जितेन्द्रिय बनिया अत्यन्त दुःखित हो इकलाही उन्मत्तकी समान उस मरुभूमिमें विचरण करनेलगा ॥

पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांकथयिष्यामिमहापापप्रणाशनम् ॥ पूर्वंत्रेतायुगस्यादौयथावृत्तंतपोधन ॥ ११ ॥ मद्रदेशइतिख्यातोदेशोब्राह्मणसत्कृतः ॥
शाकलंनामनगरंख्यातंस्थानीयमुत्तमम् ॥ १२ ॥ तस्मिन्विपणिवृत्तिस्थःसधर्माख्योऽभवद्वणिक् ॥ धनाढ्योगुणवान्भोगीनानाशास्त्रविशारदः ॥ १३ ॥
सकदाचिन्निजाद्राष्ट्रात्सौराष्ट्रंगंतुमुद्यतः ॥ सार्थेनमहतायुक्तोनानाविपणिपण्यवान् ॥ १४ ॥ गच्छतःपथितस्याथमरुभूमौकलिप्रिय ॥ चौराणामभवद्रात्रा
ववस्कंदोहिदुःसहः ॥१५॥ ततःसह्रतसर्वस्वोवणिग्दुःखपरिप्लुतः ॥ असाहायोमरौतस्मिंश्चचारोन्मत्तवद्वशी ॥१६॥ चरतातदरण्यंवैदुःखाक्रांतेननारद ॥
आत्मनैवशमीवृक्षोमहानासादितःशुभः ॥ १७ ॥ तंमृगैःपक्षिभिश्चैवहीनंदृष्ट्वाशमीतरुम् ॥ क्षांतःक्षुत्तृट्परीतात्मातस्यपार्श्वमुपाविशत् ॥ १८ ॥ सुप्तश्चा
पिसुविश्रांतोमध्याह्नेपुनरुत्थितः ॥ समपश्यद्थायातंप्रेतंप्रेतशतैर्वृतम् ॥ १९ ॥ उह्यमानंतथान्येनप्रेतेनप्रेतनायकम् ॥ श्रांतैःपुरोहिधावद्भिःप्रेतैर्वैरूक्ष
विग्रहैः ॥ २० ॥ अथाजगामप्रेतोसौपर्यटित्वाधरामिमाम् ॥ उपागम्यशमीमूलेवणिक्पुत्रंददर्शसः ॥ २१ ॥

॥ १६ ॥ हे नारद ! उस दुःखसे दुःखित हो वनमें विचरण कररहाथा कि, इसी समयमें आपसे आपही एक विशाल शमीका वृक्ष उसे प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ वहां मृग और पक्षियोंका पता नहीं था, बनिया परिश्रम करनेसे व्याकुल और क्षुधासे पीड़ित होगयाथा, ऐसे समयमें शमीके वृक्षको देखकर वह उसके नीचे जाबैठा ॥ ॥ १८ ॥ कुछ देर विश्राम करने से उसका सम्पूर्ण परिश्रम दूर होगया, फिर, मध्याह्न समयमें पुनर्वार उठकर देखा कि, एक प्रेत आरहा है ॥ ॥ १९ ॥ हजार २ प्रेत उसके चारों ओर आरहे हैं, अन्यान्य प्रेतभी उसी प्रेतनायकको वहन करतेहैं, और रूखी देह है, अन्यान्य प्रेतभी उसके आगे २ दौड़रहेहैं, वह अत्यन्तही परिश्रमसे व्याकुल होगये हैं ॥ २० ॥ वह प्रेतपति सम्पूर्ण पृथ्वीमें भ्रमणकर उस स्थानपर आये,

और शमीकी जड़में वणिक्पुत्रको देखा ॥ २१ ॥ और स्वागतवादके साथ उन्हें अभिवादन और संभाषण कर शमीवृक्षकी छायामें सुखसे बैठ
शान्तिको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त वणिक्से पूछा कि, हे सखे ! तुम कहांसे आयेहो तुम्हारा वासस्थान कहां है सो कहो ॥ २३ ॥ और किसप्रकार
मृगपक्षियोंसे शून्य इस महावनमें आयेहो सो विस्तारसहित वर्णन करो तुम्हारा मंगल हो ॥ २४ ॥ प्रेतनायकके इसप्रकार पूछनेपर वणिक्ने संक्षेपसे अपने देश
और धनके नाश होनेका वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्रेतपाल यह वृत्तान्त सुनकर उसके दुःखसे दुःखी हो अपने बंधुकी समान उससे बोले ॥ २६ ॥
कि, हे सुव्रत ! जो होना था सो होगया, अब शोक करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, यदि तुम्हारा भाग्य बलवान् है तो फिर धन प्राप्त होजायगा ॥ २७ ॥ भाग्यके

स्वागतेनाभिवाद्यैनंसमाभाष्यपरस्परम् ॥ सुखोपविष्टइछायायांहृष्टःकुशलमाप्तवान् ॥ २२ ॥ प्रेताधिपतिनापृष्टःसचतेनवणिक्सखे ॥ कुतआगम्यते
ब्रूहिक्ववासोवाभविष्यति ॥ २३ ॥ कथंचेदंमहारण्यंमृगपक्षिविवर्जितम् ॥ समापन्नोसिभद्रंतेसर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवंप्रेताधिपतिनावणिक्पृष्टः
समासतः ॥ सर्वमाख्यातवान्ब्रह्मन्स्वदेशधनविच्युतिम् ॥२५॥ तस्यश्रुत्वासवृत्तान्तंतस्यदुःखेनदुःखितः ॥ वणिक्पुत्रंततःप्राहप्रेतपालःस्वबंधुवत् ॥२६॥
एवंगतेऽपिमाशोकंकर्तुमर्हसिसुव्रत ॥ भूयोऽप्यर्थाभविष्यंतियदिभाग्यबलंतव ॥ २७ ॥ भाग्यक्षयेऽर्थाःक्षीयंतेभवंत्यभ्युदयेपुनः ॥ क्षीणस्यास्यशरी
रस्यचिंतयानोदयोभवेत् ॥ २८ ॥ इत्युच्चार्यसमाहूयस्वान्भृत्यान्वाक्यमब्रवीत् ॥ अद्यातिथिरयंपूज्यःसहजोदेशजोमम ॥ २९ ॥ अस्मिन्दृष्टेवणिक्पुत्रे
दृष्टाःस्वजनबांधवाः ॥ अस्मिन्समागतेप्रेताःप्रीतिर्जातामम्मातुला ॥ ३० ॥ एवंहिवदतस्तस्यमृत्पात्रंसुदृढंनवम् ॥ दध्योदनेनसंपूर्णमाजगामयथेप्सितम् ॥
॥ ३१ ॥ तथानवाचसुदृढासंपूर्णापरमांभसा ॥ वारिधानीचसंप्राप्ताप्रेतानामग्रतःस्थिता ॥ ३२ ॥ तामागतांससलिलांसान्नांवीक्ष्यमहामतिः ॥ प्राहो
त्तिष्ठवणिक्पुत्रत्वमाह्निकमुपाचर ॥ ३३ ॥

क्षयसेही धनकाभी क्षय होताहै और फिर उसके उदय होतेही वह संचय होजाता है, इसकारण इस क्षीणदेहमें चिन्ताकरनेसे किसी प्रकारकी इष्टसिद्धि संभव नहीं
॥ २८ ॥ प्रेतपति इसप्रकारके वचन कह फिर अपने सेवकोंको बुलाकर बोले कि, यह अतिथि हमारे भाई और हमारे देशका है, आज इनका सत्कार करना होगा ॥
॥ २९ ॥ हे प्रेतो ! आज इनके साथ साक्षात् होनेसे मानो हमारे बंधु बांधव मिलगये, इनके आनेसे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है ॥ ३० ॥ प्रेतपति इसप्रकार कह
रहेथे कि, इसीसमयमें दध्योदन (दही और भात) से परिपूर्ण अत्यन्त दृढ़ अभिनव मृत्पात्र (मिट्टीके बर्त्तन) इच्छानुसार वहाँ उपस्थित होगया ॥ ३१ ॥ साथही
साथ निर्मलजलसे पूर्ण दृढ़ नवीन, जलपात्रभी प्रेतोंके आगे उपस्थित हुआ ॥ ३२ ॥ महाबुद्धिमान् अन्न प्रेत और जलसे पूर्ण विविधप्रकारके पात्रोंको

उपस्थित देखकर बोले कि, हे वणिक्पुत्र उठो अपने आह्निक (स्नानसंध्यादि पूर्वक भोजन) करो ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त दोनों जनों ने उठकर जलपात्रस्थ जलसे विधिपूर्वक अपना २ आह्निक कर्म किया ॥३४॥ इसके उपरान्त प्रेतपतिने वणिक्पुत्रको इच्छानुसार दहीभात खिलाकर शेष बचे अन्नको सब प्रेतोंको बाँटदिया ॥ ३५ ॥ सबके इच्छानुसार भोजनकर जलपीनेपर प्रेतपतिने स्वयं उत्कृष्ट अन्नका भोजन किया ॥ ३६ ॥ वह भोजनकर तृप्त हुए, तब वह अवशिष्ट जलसहित जलपात्र और दध्योधन यह दोनोंही वणिक्पुत्रके सामने धर अन्तर्धान होगये ॥ ३७ ॥ मतिमान् वणिक्नंदन इस अद्भुत चरित्रको देखकर आश्चर्यमें हो प्रेतपतिसे बोले ॥ ३८ ॥ कि, हे साधो ! इस निर्जन वनमें किसप्रकारसे अन्न उत्पन्न हुआ है और किसप्रकारसे निर्मल जलसे पूर्ण जलपात्र आया ॥ ३९ ॥ तुम्हारे सेवक किसकारणसे तुम्हारी अपेक्षा कृष्ण वर्ण हैं, और तुम्हीं किसकारण तेजस्वी पुष्ट देह और देखनेमें अत्यन्त सुन्दर हुएहो ? ॥ ४० और शुक्लवस्त्रोंको धारणकर बहुतोंका पालन करतेहो, तुम कौन हो, और यह शमीवृक्षभी कौन हैं सो आप विशेषतासे वर्णन कीजिये ॥ ॥ ४१ ॥ प्रेतपति, वणिक्पुत्रके यह वचन सुनकर पूर्ववृत्तान्त आद्योपान्त यथावत् वर्णन करनेलगे ॥ ४२ ॥ मैं पहले नगरीमें प्रधान शाकलमें वास करताथा, मेरा नाम सोमशर्मा था, बहुलाके गर्भमें मेरा जन्म हुआहै ॥ ४३ ॥ एक महाधनवान् श्रीमान् मनुष्य वणिक् मेरा पड़ोसी था, उसका नाम सोमश्रवा था, वह अत्यन्तही यशस्वी और विष्णुभक्त था ॥ ४४ ॥ मैं जैसा कृष्ण और मूढात्मा था उसीप्रकार दुर्मतिभी था, इसी प्रकार धन रहनेपर न कभी ब्राह्मणोंको दान किया और न कभी

ततस्तुवारिधान्यास्तौसलिलेनविधानतः ॥ कृताह्निकावुभौजातौवणिक्प्रेतप्रभुस्तथा ॥ ३४ ॥ ततोवणिक्सुतायासौदध्योदनमथेच्छया ॥ दत्त्वातेभ्य
श्चसर्वेभ्यःशेषमन्नमधात्ततः ॥ ३५ ॥ भुक्तवत्सुचसर्वेषुकामतोंभसिसेविते ॥ अनंतरंसबुभुजेप्रेतपालोवराशनम् ॥ ३६ ॥ तृप्तेप्रेतेप्रकामंतुवारिधान्योद
नंतथा ॥ अन्तर्धानमगाद्द्रष्टुन्वणिक्पुत्रस्यपश्यतः ॥ ३७ ॥ ततस्तदद्भुततमंदृष्ट्वासमतिमान्वणिक् ॥ पप्रच्छतंप्रेतपालंकौतूहलमनावशी ॥ ३८ ॥
अरण्येनिर्जनेसाधोकुतोऽन्नस्यसमुद्भवः ॥ कुतश्चवारिधानीयंसंपूर्णापरमांभसा ॥ ३९ ॥ तथापितवयेभृत्यास्त्वत्तस्तेवर्णतःकृशाः ॥ भवानपिचतेजस्वी
किंचित्पुष्टवपुःशुभः ॥ ४० ॥ शुक्लवस्त्रपरीधानोबहूनांपरिपालकः ॥ सर्वमेतन्ममाचक्ष्वकोभवान्काशमीत्वियम् ॥ ॥ ४१ ॥ इत्थंवणिग्वचःश्रुत्वाततो
सौप्रेतनायकः ॥ शशंससर्वमस्याथयथावृत्तंपुरातनम् ॥ ४२ ॥ अहमासंपुराविप्रशाकलेनगरोत्तमे ॥ सोमशर्मेतिविख्यातोबहुलागर्भसंभवः ॥ ४३ ॥
ममास्तिचवणिक्श्रीमान्प्रातिवेश्योमहाधनः ॥ सतुसोमश्रवानामविष्णुभक्तोमहायशाः ॥ ४४ ॥ सोऽहंकदर्योमूढात्माधनेऽपिसातिदुर्मतिः ॥ नददामि
द्विजातिभ्योनवाश्राम्यन्नमुत्तमम् ॥ ४५ ॥

अपने आपभी अच्छा अन्न भक्षण किया ॥ ४५ ॥ प्रमाद (भूल) के वश हो जो कभी किसी दिन दही दूध और घृतयुक्त अन्नको भोजन करता तो रात्रिमें सोते
समय स्वप्नमें भयंकर तीन पुरुष मुझे लाठी लेकर मारने लगतेथे ॥ ४६ ॥ और प्रातःकालही मृत्युकी समान विषूचिका (हैजा) होजाती थी, भाइयोंमेंसे कोईभी
मेरे निकट नहीं रहता था ॥ ४७ ॥ इस प्रकारसे किसी प्रकारसे प्राणोंको धारण कियाथा, मैं ऐसा पापी और अत्यन्त दयाशून्य होकर वास करताथा ॥ ४८ ॥
बेर, तिल, पिण्याक (स्नेहरहित तिलके चूर्ण) तुष (भुस्सीसे मिलाहुआ अन्न) और शाकादि अन्नको भक्षण कर समयको व्यतीत करताथा, इससे मेरी आत्मा
धीरे २ क्षय होनेलगी ॥ ४९ ॥ इसप्रकारका व्यवहार उसनगरमें करते हुए मुझे बहुत समय व्यतीत होगया, भादोंके महीनेमें श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी आई ॥

प्रमादाद्यदिभुंजेहंदधिक्षीरघृतान्वितम् ॥ ततोरात्रौत्रिभिर्घोरैस्ताडयमानश्चयष्टिभिः ॥ ४६ ॥ प्रातर्भवतिमेघोरामृत्युतुल्याविषूचिका ॥ नचकश्चिन्ममाभ्याशे
तत्रातिष्ठतिबांधवः ॥ ४७ ॥ कथंकथमपिप्राणामयावैसंप्रधारिताः ॥ एवमेतादृशःपापीनिवसाम्यतिनिर्घृणः ॥४८ ॥ सौवीरतिलपिण्याकतुषशाकादिभोजनैः
॥ क्षपयामिकदन्नाद्यैरात्मानंकालयापनैः ॥४९॥ एवंतत्रसतोमित्रमहान्कालोभ्यगादथ ॥ श्रवणद्वादशीनाममासिभाद्रपदेभवत् ॥५०॥ ततोनागरिको
लोकोगतःस्नातुंहिसंगमम् ॥ इरावत्यानड्वलायाब्रह्मक्षत्रपुरस्सरः॥५१॥प्रातिवेश्यप्रसंगेनतत्राप्यनुगतोस्म्यहम् ॥ कृतोपवासःशुचिमानेकादश्यां
यतव्रतः ॥ ५२ ॥ ततःसंगमतोयेनवारिधानींदृढांनवाम् ॥ संपूर्णांवस्तुसंवीतांछत्रोपानत्सुसंयुताम् ॥५३॥ मृत्पात्रमतिमृष्टस्यपूर्णंदध्योदनस्यवै ॥ प्रदत्तं
ब्राह्मणायोच्चैःशुचयेजातिकर्मणा ॥ ५४ ॥ तदेवजीवितादत्तंमयादानंवणिक्सुत ॥ वर्षाणांसप्ततीनांवैनान्यद्दत्तंहिकिंचन ॥ ५५ ॥ मृतःप्रेतत्वमापन्नोदत्त्वाप्रेतान्नमेवहि
॥ अमीचादत्तदानास्तुमद्दत्तान्नोपजीविनः ॥ ५६ ॥ एतत्तेकारणंप्रोक्तंयत्तदन्नंपयोंभसा ॥ दत्तंतदिदमायातिमध्याह्नेपिदिनेदिने ॥ ५७ ॥

॥ ५० ॥ तब ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादिक नगरवासी सम्पूर्ण लोक इरावती और नड्वला इन दोनों नदियोंके संगममें स्नान करनेके निमित्त गये ॥ ५१ ॥ पड़ोसमें रहनेके
कारण सबके साथ मैंभी उनके पीछे २ गया, एकादशीमें उपवास कर पवित्र और यतव्रतहो ॥ ५२ ॥ प्रातः संगमके जलसे अभिनव दृढ़ जलपूर्णपात्रको वस्त्रसे
आच्छादित कर और पादुका छत्र और उपानत् (जूता) इन पदार्थोंको एकत्र कर ॥ ५३ ॥ अत्यन्त मधुर दहीभातसे पूर्ण मृत्पात्रको विशुद्ध जाति कर्मश्रेष्ठ ब्राह्मणको
दिया ॥ ५४ ॥ हे वणिक्नंदन ! मैं ने जीवितदशामें सतहत्तरवर्षके बीचमें केवल यही दान कियाथा, इसके अतिरिक्त और कभी कुछ नहींकिया ॥ ५५ ॥
प्रेतोन्न दान करनेसे मरकर प्रेत हुआ, इसने कभी दान नहीं किया, इसीकारणसे हमारा अन्नोपजीवी हुआ है ॥ ५६ ॥ जिस कारणसे प्रतिदिन मध्याह्नके समय

दधिजलसहित अन्न उपस्थित होताहै सो तुमसे कहा ॥ ५७ ॥ मैं जबतक भोजन नहीं करता तबतक यह अन्न क्षयको प्राप्त नहीं होता, मेरे भोजन पान करतेही यह सब अन्न जल अन्तर्धान होजाताहै ॥ ५८ ॥ मैं ने जो छत्री प्रदान कीथी उसीके प्रभावसे यह शमीका वृक्ष उत्पन्न हुआहै, जूते (जोड़े) के दान करनेसे यह सब प्रेत हमारे वाहन हुएहैं ॥ ५९ ॥ इसप्रकारसे प्रेतत्वको प्राप्त हुआहूँ सो मैं ने तुम्हारे निकट कहा, श्रवणद्वादशी तिथि जिसप्रकारसे परमपवित्र है उसी प्रकारसे पुण्यवर्द्धक है ॥ ६० ॥ प्रेतके इसप्रकार कहनेपर वणिक्पुत्र बोला कि, हे तात ! मुझे जो करना चाहिये वही आप आज्ञा दीजिये ॥ ६१ ॥ हे नारद ! वणिक्पुत्रके यह वचन सुन प्रेतपालने स्वार्थसिद्धिके निमित्त उत्तर दिया ॥ ६२ ॥ हे महामुने ! मेरे हितके निमित्त तुम्हें जो करना चाहिये, जिसके करनेसे हमारा तुम्हारा दोनोंका मंगल होगा उसीको सब प्रकारसे कहताहूँ ॥६३॥ गयातीर्थमें स्नानकर पवित्र हो अग्निमें आहुति दे मेरा नाम लेकर पिंडदान करो ॥६४ ॥ हे सखे ! वहाँ पिंडप्रदान करनेसे मैं प्रेतभावसे मुक्त होकर सर्वदाताओंके सालोक्यताको प्राप्त हूँगा ॥ ६५ ॥ भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि बुध और श्रवणसे संयुक्त होनेपर परमकल्याण करतीहै ॥ ६६ ॥ अनुजोंके सहित प्रेतराज वणिक्से यह कथा कहकर चुप हुए और वणिक्नेभी सोच विचारकर मनमें निश्चय किया कि, इसने ठीक कहाहै ॥ ६७ ॥ प्रेतराज उसे सम्मत हुए देखकर अपने प्रेतके कंधेपर उसे चढ़ाकर मरुदेशसे बाहर करादिया तब वह वणिक् शूरसेन नामक रमणीकदेशमें पहुँचा ॥ ६८ ॥ और अपने कर्म धर्म योगकी सहायतासे बहुत प्रकारसे थोड़े बहुत धनका उपार्जन कर अत्युत्तम गयाके तीर्थमें पहुँचा ॥ ६९ ॥

यावन्नाहंचभुंजेन्नंनतावत्क्षयमेतिच ॥ मयिभुक्तेचपीतेचसर्वमंतर्हितंभवेत् ॥ ५८ ॥ आतपत्रप्रदानाच्चसोयंजातःशमीतरुः ॥ उपानद्युगुलेदत्तेप्रेतोमेवाहनं भवेत् ॥ ५९ ॥ इदंतवोक्तंसर्वंचयथाकीनाशतात्मनः ॥ श्रवणद्वादशीपुण्यातथोक्तंपुण्यवर्धनम् ॥ ६० ॥ इत्येवमुक्तेवचनेवणिक्पुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ यन्मयातातकर्त्तव्यंतदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६१ ॥ ततस्यवचनंश्रुत्वावणिक्पुत्रस्यनारद ॥ प्रेतपालोवचःप्राहस्वार्थसिद्धिकरंततः ॥ ६२ ॥ यत्त्वयातातकर्तव्यंमद्धितार्थंमहामते ॥ कथयिष्यामिसम्यक्तेतवश्रेयस्करंमम ॥ ६३ ॥ गयातीर्थेतुजुहुयात्स्नात्वाशौचसमन्वितः ॥ ममनामसमुद्दिश्यपिंडनिर्वपणंकुरु ॥ ॥ ६४ ॥ तत्रपिंडप्रदानेनप्रेतभावादहंसखे ॥ मुक्तस्तुसर्वदातॄणांयास्यामिसहलोकताम् ॥ ६५ ॥ तिथिर्याद्वादशीपुण्यामासिप्रौष्ठपदेसिता ॥ बुधश्रवणसंयुक्तासातिश्रेयस्करीस्मृता ॥६६॥ इत्येवमुक्त्वावणिजंप्रेतराजोनुगैःसह ॥ सचमेनेयथान्यायंसम्यगाख्यातवाञ्छुचिः ॥ ६७ ॥ प्रेतस्कंधेसमारोप्यत्याजितोमरुमंडलम् ॥ रम्येथशूरसेनाख्येदेशेप्राप्तःसवैवणिक् ॥ ६८ ॥ स्वकर्मधर्मयोगेनधनमुच्चावचंबहु ॥ उपार्जयित्वाप्रययौगयातीर्थमनुत्तमम् ॥ ६९ ॥

वहाँ जा प्रेतोंके निमित्त पिंडदान कर पहले अपने बंधु और पितरोंको इसके पीछे ॥ ७० ॥ अपना तिलविना उत्तम कर्मसे श्राद्ध सम्पादन करके और अन्यान्य गोत्रजों
कोभी पिंड अर्पण किया ॥ ७१ ॥ इसप्रकारसे पांच पिंडके देनेपर वह सभी द्विजन्मायें हो प्रेतत्त्वसे मुक्त होगये ॥ ७२ ॥ तब वणिक्पुत्र अपने गृहमें आया और जब
भाद्रशुक्ला श्रवणनक्षत्रयुक्ता द्वादशी प्राप्त हुई तब उसव्रतका यथाविधिसे पालन कर कुछ दिनके उपरान्त मृत्युको प्राप्त हो ॥ ७३ ॥ गंधर्वलोकको गया और वहाँ बहुत समय
तक दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हो सब पृथ्वीका राजा हुआ ॥ ७४ ॥ और अपने धर्मकर्मोकी वृत्तिके अनुसार और श्रवणद्वादशीमें
रत हो कालधर्मको प्राप्तकर गुह्यकोंके स्थानका आश्रय किया ॥ ७५ ॥ वहाँ बहुतकालतक निवासकर इच्छानुसार सम्पूर्ण भोगों को भोगकर मृत्युलोकको

पिंडनिर्वपणंतत्रप्रेतानामनुपूर्वकम् ॥ चकाराथस्वबंधूनांपितॄणांतदनंतरम् ॥ ७० ॥ आत्मनश्चसमाबुद्धिर्महच्छ्राद्धंतिलैर्विना ॥ पिंडनिर्वपणंचक्रेतथान्यान
पिगोत्रजान् ॥ ७१ ॥ एवंप्रदत्तेष्वथचपंचपिंडेषुभावतः ॥ विमुक्तास्तेद्विजाःप्राप्यब्रह्मलोकंततोगताः ॥ ७२ ॥ सचापिहिवणिक्पुत्रोनिजमालयमाव्रजत् ॥
श्रवणद्वादशींकृत्वाकालधर्ममुपेयिवान् ॥ ७३ ॥ गंधर्वलोकेसुचिरंभोगान्भुक्त्वासुदुर्लभान् ॥ जन्ममानुष्यमासाद्यसचाभूत्सकलेविराट् ॥ ७४ ॥ स्वधर्म
कर्मवृत्तिस्थःश्रवणद्वादशीरतः ॥ कालधर्ममवाप्यासौगुह्यकावासमाश्रयत् ॥ ७५ ॥ तत्रोष्यसुचिरंकालंभोगान्भुक्त्वाचकामतः ॥ मर्त्यलोकमनुप्राप्यरा
जन्यतनयोऽभवत् ॥ ७६ ॥ तत्रापिक्षत्रवृत्तिस्थोदानभोगरतोवशी ॥ गोग्रहेऽरिगणंजित्वाकालधर्ममुपेयिवान् ॥ शक्रलोकमवाप्याथदेवैःसर्वैःसुपू
जितः ॥ ७७ ॥ पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टःशाकलेसोभवद्द्विजः ॥ ततोविकटरूपोसौसर्वशास्त्रस्यपारगः ॥ ७८ ॥ विवाहयन्द्विजसुतांरूपेणानुपमांद्विज ॥
साचमेनेचभर्तारंसुशीलमपिभामिनी ॥ ७९ ॥ विरूपमितिमन्वानस्ततःसोभूत्सुदुःखितः ॥ ततोनिर्वेदसंयुक्तोगत्वाश्रमपदंमहत् ॥ ८० ॥ इरावत्यास्तटे
श्रीमान्रूपधारिणमासदत् ॥ तमाराध्यजगन्नाथंनक्षत्रपुरुषेणहि ॥ ८१ ॥

प्राप्तकर क्षत्रियपुत्ररूपसे उत्पन्न हुए ॥ ७६ ॥ और अपनी वृत्तिके अनुसार दान भोगमें रत हो गोगृहनिमित्तकयुद्धमें शत्रुओंको जीतकर मृत्युको प्राप्त हो इन्द्र
लोकको गये, वहाँ देवताओंसे भलीभाँति पूजित हो ॥ ७७ ॥ और पुण्यके क्षय होनेसे वहाँसे परिभ्रष्ट हो शाकलदेशमें ब्राह्मणोंके वंशमें जन्म ग्रहणकर विकटरूप
और सर्वशास्त्रविशारद हो ॥ ७८ ॥ रूपमें अनुपमा ब्राह्मणकी कन्याका पाणिग्रहण किया । स्वामीके सबप्रकारसे शीलवान् होनेपरभी ॥ ७९ ॥ उसकी विकटमू
र्तिको देखकर स्त्रीका पतिसे प्रेम न हुआ, इसकारण ब्राह्मण अत्यन्त दुःखित हुए, और पश्चात्तापयुक्त हो परमपवित्र आश्रमको गये ॥ ८० ॥ यह
आश्रम अत्यन्त सुन्दर और इरावतीके किनारे प्रतिष्ठित था, वहाँ जाकर नक्षत्रपुरुषव्रतके अनुष्ठानके साथ देवाधिदेव जगन्नाथकी आराधना कर ॥ ८१ ॥

उसीजन्ममें स्त्रीकी समान परमसौन्दर्ययुक्त हो भार्याके प्यारे और भोगवान् होगये ॥ ८२ ॥ फिर इसके उपरान्त पूर्वजन्मके अभ्यासके वशसे श्रवणद्वादशीमें भक्तिमान् हुए ॥ ८३ ॥ पहले वह कुरूपयुक्त द्विजपुंगव भगवान् शिवजीके प्रसादसे इसप्रकार कामदेवके रूपके समान रूपको प्राप्त हुये और मरणान्तर दूसरे जन्ममें पुरूरवा राजा हुएथे ॥ ८४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां पुरूरवोपाख्यानं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ नारदजी बोले कि, हे द्विजश्रेष्ठ ! पुरूरवाने जिसप्रकारसे नक्षत्रपुरुषव्रतके अनुष्ठानके साथ श्रीपतिकी आराधना कीथी सो कहिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, नक्षत्रपुरुषके व्रतको वर्णन करताहूँ तुम श्रवण करो. भगवान्के जो जो नक्षत्राङ्ग प्रसिद्ध हैं वहभी कहताहूँ ॥ २ ॥ नक्षत्रमूर्तिधारी विष्णुभगवान्के मूलनक्षत्र चरणयुगल हैं, अर्थात् चरणस्थानमें प्रतिष्ठित हैं, रोहिणी

सरूपतामवाप्यायंतस्मिन्नेवचजन्मनि ॥ ततःप्रियोभूद्भार्यायाभोगवांश्चाभवद्वशी ॥ ८२ ॥ श्रवणद्वादशीभक्तःपूर्वाभ्यासादजायत ॥ ८३ ॥ एवंपुरासौद्विजपुंगवस्तुकुरूपरूपोभगवत्प्रसादात् ॥ अनंगरूपप्रतिमोबभूवमृतश्चराजासपुरूरवाभूत् ॥ ८४ ॥ इति श्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेप्रह्लादतीर्थयात्रायां पुरूरवसउपाख्यानंनामनवसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ पुरूरवाद्विजश्रेष्ठयथादेवंश्रियःपतिम् ॥ नक्षत्रपुरुषाख्येनआराधयततद्वद ॥ ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ श्रूयतांकथयिष्यामिनक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥ नक्षत्रांगानिदेवस्ययानियानीहनारद ॥ २ ॥ मूलर्क्षंचरणौविष्णोर्जंघेद्वेरोहिणीस्थिते ॥ कबंधिनीतथाश्विन्यौसंस्थितेरूपधारिणः ॥ ३ ॥ आषाढेचतथैवस्फिग्गुह्यस्थंफाल्गुनीद्वयम् ॥ कटिस्थाःकृत्तिकाश्चैववासुदेवस्यसंस्थिताः ॥ ४ ॥ ऊरुसंस्थाचानुराधाधनिष्ठापृष्ठसंस्थिता ॥ विशाखाभुजयोर्हस्तःकरद्वयमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ पुनर्वसुरथोगुल्फौनखेसार्पंतथोच्यते ॥ ज्येष्ठाग्रीवास्थितातस्यश्रवणंकर्णयोःस्थितम् ॥ ६ ॥ ओष्ठसंस्थस्तथापुष्यस्वातिर्दन्तेषुकीर्तिताः ॥ हनौपुनर्वसुश्चोक्तोनासामैत्रमुदाहृतम् ॥ ७ ॥

नक्षत्र उनके जानुयुगल (तिली) का आश्रय कर स्थितहैं, अश्विनीयुग्मक उनके कबन्धिनी (सम्पूर्ण शरीरके अस्थिभाग) में स्थितहैं ॥ ३ ॥ दोनों (पूर्वा—उत्तरा) आषाढ उनके स्फिक् हैं, दोनों (पूर्वा—उत्तरा) फाल्गुनी उनके गुह्य (गुदा) स्थानमें हैं, छैः कृत्तिकाएँ उनकी कटि (कमर) देशमें स्थितहैं ॥ ४ ॥ अनुराधा उनके ऊरु (जंघा) स्थानमें स्थितहै, धनिष्ठा पृष्ठ (पीठ) देशमें, विशाखा, दोनों भुजा हैं, हस्त उनके दोनों कर (हाथ) हैं ॥ ५ ॥ पुनर्वसु दोनों गुल्फ (कुल्हा) देशमें है, सार्प (आश्लेषा) नख (नाखून) देशमें है, ज्येष्ठा ग्रीवा (गला) देशमें है, श्रवण कर्णदेशमें है ॥ ६ ॥ पुष्य होठदेशमें है स्वाती दन्तदेशमें है,

प्राजापत्यंनेत्रयुग्मेरूपधारिप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥ शिरोरुहास्तथैवैंद्रंनक्षत्रांगमिदंहरेः ॥ विधानंसंप्रवक्ष्यामियथान्यायेननारद ॥ ९ ॥ संपूजितोहरिर्धीमा
न्विदधातियथेप्सितम् ॥ चैत्रमासेसिताष्टम्यांयदामूलगतःशशी ॥ १० ॥ तदातुभगवत्पादौपूजयेच्चविधानतः ॥ नक्षत्रपुरुषेदद्याद्विप्रेंद्रायचभोजनम् ॥
॥ ११ ॥ जानुनीरोहिणीयोगेपूजयेदथभक्तितः ॥ दोहदंवैहविष्यान्नंपूर्वंचद्विजभोजनम् ॥ १२ ॥ आषाढाभ्यांतथाद्वाभ्यांस्फिग्रूपंपूजयेद्बुधः ॥ सलिलं
शिशिरंतत्रदोहदेचप्रकीर्तितम् ॥ १३ ॥ फाल्गुनीद्वितयेगुह्यंपूजनीयंविचक्षणैः ॥ दोहदंचपयोगव्यंदेयंचद्विजभोजनम् ॥ १४॥ कृत्तिकासुकटिःपूज्यासो
पवासैर्जितेंद्रियैः ॥ दोहदंचविभोर्देयंसुगंधंकुसुमोदकम् ॥ १५ ॥ पार्श्वौभाद्रपदायुग्मेपूजयित्वाविधानतः ॥ गुडंशालेयकंदद्याद्दोहदंदेवप्रीतिदम् ॥ १६॥
द्वेकुक्षीरेवतीयोगेदोहदेमुद्गमोदकः ॥ अनुराधासुवक्षोथषष्टिकान्नंचदोहदे ॥ १७॥

पुनर्वसु हनु (ठोड़ी) देशमें हैं, अनुराधा उनकी नासा (नाक) देशमें है ॥ ७ ॥ प्राजापत्य[1] (मृगशिरा) यह नेत्रदेशमें है ॥ ८ ॥ और ऐन्द्र (ज्येष्ठा) नक्षत्र उनके केशभागका आश्रय कर स्थित करते हैं. इसी कारणसे भगवान्के नाम नक्षत्रांग हैं। हे नारद ! अब विधिविधानसे नक्षत्रपुरुषके व्रतका विधान वर्णन करता हूं, तुम श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे मतिमन् ! भलीभाँतिसे पूजा करनेपर भगवान् नारायण यथाभिलषित वर देते हैं, चैत्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीमें मूलनक्षत्रमें चंद्रमा हो ॥ १० ॥ तब भलीभाँतिसे भगवान्के दोनों चरणोंकी पूजा और नक्षत्रपुरुषके उद्देशसे ब्राह्मणोंको भोजन दान करै ॥ ११ ॥ रोहिणीनक्षत्रके संयोगमें भक्तिसहित दोनों जंघाओंकी पूजा करै और प्रथम हविष्यान्नरूप दोहद[2] (देवप्रीतिदायक नैवेद्य) उन (विष्णु) को निवेदन करके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजनके अर्थ प्रदान करै ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त दोनों आषाढ़ (पूर्वा–उत्तरा) के संयोगमें स्फिग्रूपकी पूजा कर दोहदसे शीतलजल प्रदान करै ॥ ॥ १३ ॥ विचक्षण मनुष्य दोनों फाल्गुनी (पूर्वा–उत्तर) में गुह्यकी पूजा कर ब्राह्मणोंके भोजनके अर्थ दोहदमें गोदूध प्रदान करै ॥ १४ ॥ उपवासी और जितेन्द्रिय होकर कृत्तिकामें विभु भगवान् विष्णुके कटिदेशकी पूजाकर सुगंधितफूलोंसे जलरूपी दोहद प्रदान करै ॥ १५ ॥ दोनों (पूर्वा–उत्तरा) भाद्रपदा नक्षत्रमें भलीभाँतिसे पार्श्वदेशकी पूजा कर मूँगके लड्डूका दोहद प्रदानकरै ॥ १६ ॥ अनुराधाके नक्षत्रयोगमें वक्षस्थलकी पूजा करै और साँठीके चावल दोहद प्रदान कर ॥ १७ ॥

---

[1] नासत्यान्तकवह्निधातृशशभृत् (चन्द्र) इत्यादि अश्विन्यादिक देवता मुहूर्त्तचिन्तामणिमें कहेगये हैं ॥ यहाँ प्रजापतिसंज्ञा राजाकी है, राजाका नाम चन्द्रमाका है "राजा समुद्रनवनीततमोनुदोमा ग्लौरिन्दुरेणतिलको हरिरोहिणीशौ" इसप्रकार हारावलीकोशमें लिखा है।

[2] "दोहदं दौर्हृदं श्रद्धा लालसश्च समं स्मृतम्" ऐसा हलायुधकोशमें लिखा है।

इसप्रकार धनिष्ठानक्षत्रमें पूजाकर शालिभक्त (अच्छेचावलकाभात) का दोहद प्रदान करै और नक्षत्र भुजाओंकी पूजाकर परमान्न (खीर) का दोहद प्रदान करै॥ १८॥ हस्तनक्षत्रमें दोनों हस्तोंकी पूजा कर यावक (जौकी लपसी दूधमें बनाकर) का दोहद दे, पुनर्वसुनक्षत्रमें दोनों हाथोंके अंगुलियोंकी पूजा कर पटोल (परवलकी तरकारी) को दोहदमें देवै॥ १९॥ आश्लेषानक्षत्रमें नखपंक्तियोंकी पूजाकर तित्तिरामिष तीतरके मांसका दोहद देवै, ज्येष्ठानक्षत्रमें ग्रीवाकी पूजा कर तिलके मोदक (लड्डू) के दोहद देवै ॥ २० ॥ श्रवणनक्षत्रमें श्रवण (कान) की पूजाकर दधिभक्त (दही भातका) दोहद दे वै, पुष्यनक्षत्रमें मुखमंडलकी पूजाकर घृतमिश्रित पायस (खीर) का दोहद देवै ॥ २१ ॥ स्वातिनक्षत्रके योगमें दन्तपंक्तिकी पूजाकर तिलचूर्णमिश्रित आटेकी पूरीका केशवकी प्रीतिके निमित्त दोहद अर्पणकर पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजनके अर्थ देवै ॥ २२ ॥ शतभिषानक्षत्रके योगमें भलीभाँतिसे हनु (ठोड़ी) की पूजा कर प्रियंगु (कँगनीका भात) का मधुहन्ता विष्णुभगवान्को दोहदरूपसे अर्पण करै ॥ २३ ॥ मघानक्षत्रमें नासिकाकी पूजा कर मधुर और आज्यका दोहद देवै, मृगशिरानक्षत्रमें दोनों नेत्रोंकी पूजा कर मृगके मांसको दोहदरूपसे अर्पण करै ॥२४ ॥ चित्रानक्षत्रके योगमें ललाटकी पूजा कर उत्तम भोजनरूपी दोहद अर्पण करै, भरणीनक्षत्रमें शिरोदेशकी पूजा कर सुन्दर खाद्य वस्तुको दोहदरूपसे अर्पण करै ॥२५॥ विद्वान् पुरुष आर्द्रानक्षत्रके योगमें केशोंकी पूजा कर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करावै और दोहदमें अदरख प्रदान करै ॥ २६॥ इस प्रकारसे इन सब नक्षत्रोंके योगमें जगत्पतिकी पूजा करनी होगी, पूजा करके वेदपारग (सम्पूर्णवेदके ज्ञाता) ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे ॥२७॥ श्वेतवर्ण छत्री, उपानयुगल

धनिष्ठायांतथापूज्यःशालिभक्तंचदोहदे ॥ भुजयुग्मंविशाखासुदोहदेपरमौदनम् ॥ १८ ॥ हस्तेहस्तौतथापूज्यौयावकंदोहदेस्मृतम् ॥ पुनर्वस्वंगुलीयुग्मं
पटोलस्तत्रदोहदे ॥ १९ ॥ नखाश्लेषासुसंपूज्यादोहदेतित्तिरामिषम् ॥ ज्येष्ठायांपूजयेद्ग्रीवांदोहदेतिलमोदकः ॥ २० ॥ श्रवणेश्रवणौपूज्यौदधिभक्तंचदो
हदे ॥ पुष्येमुखंतुसंपूज्यंदोहदेघृतपायसम् ॥ २१ ॥ स्वातियोगेचदशनादोहदेतिलशष्कुली ॥ दातव्यंकेशवप्रीत्यैब्राह्मणस्यचभोजनम् ॥ २२ ॥
हनूशतभिषायोगेपूजयेच्चप्रयत्नतः ॥ प्रियंगुभक्तंदेयंचदोहदेमधुघातिनि ॥ २३॥ मघासुनासिकापूज्यामधुराज्यंचदोहदे ॥ मृगोत्तमांगेनयनेमृगमांसंचदो
हदे ॥ २४ ॥ चित्रायोगेललाटंचदोहदेचारुभोजनम् ॥ भरणीषुशिरःपूज्यंचारुभक्ष्यंचदोहदे ॥ २५ ॥ संपूजनीयाविद्वद्भिरार्द्रायोगेशिरोरुहाः ॥ विप्रां
श्चभोजयेद्भक्त्यादोहदेचगुडार्द्रकम् ॥ २६ ॥ नक्षत्रयोगेष्वेतेषुसंपूज्यजगतःपतिम् ॥ पूजितेदक्षिणांदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २७॥ छत्रोपानद्वस्त्रयुगंसप्त
धान्यंसकांचनम् ॥ घृतपात्रंचगांदोग्ध्रींब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् ॥ २८ ॥

(जूतोंका जोड़ा) सप्तधान्य, कांचन, घृतपात्र, दोग्ध्री गौ (दुधारगाय) इन सबको ब्राह्मणोंको अर्पण करै ॥ २८ ॥ प्रत्येक नक्षत्रके योगमेंही ब्राह्मणोंकी पूजा और नक्षत्रवित् ब्राह्मणोंको पृथक् २ दक्षिणा दान करै ॥ २९ ॥ यह नक्षत्रपुरुष नामक व्रत सम्पूर्णव्रतोंमें प्रधान है, भृगुने पहले इस सर्वपापविनाशनव्रतका अनुष्ठान किया था॥ ३०॥ हे देवर्षे ! भगवान्के अंग (हाथ पाँव इत्यादिक) उपांग (अंगुली इत्यादिक) सभीकी पूजा करनी कर्तव्य है, ऐसा होनेसे व्रती पुरुषके अंगोपांगादिक सभी सुरूप होजाते हैं॥ ३१ ॥तब भगवान् सात जन्मके किये कलिके संगसे आगत और माता पिताके दोषसे समुत्पन्न सम्पूर्ण पातकोंको विनाश करते हैं ॥ ३२ ॥ तब सबप्रकारसे कल्याण होता है, शरीर सर्वदा स्वस्थ रहता है, मनमें अत्यन्त प्रीति उत्पन्न होती है, और शोभनरूप लाभ होता है ॥ ३३ ॥ तब वचन मधुर होते हैं, कांति बढ़ती है, और अन्यान्य अभिवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है॥ ३४ ॥ हे नारद! इन सब क्षत्रोंके योगमें यथाक्रमसे उपवास कर महाभागा अरुन्धतीने परमप्रसिद्धि प्राप्त कीथी ॥३५॥ अदितिने पुत्रार्थी होकर नक्षत्रांग जनार्दनकी पूजा कर उन्हीं गोविन्दको रैवतकल्पमें पुत्ररूपसे प्राप्त किया॥ ३६॥ रम्भा नक्षत्रांग जनार्दनकी पूजा कर रूपको, तिलोत्तमा वाङ्माधुर्य और चंद्रमाके समान श्रेष्ठकांति और पुरूरवाने राज्यप्राप्त किया था॥ ३७॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकारसे जिन्होंने नक्षत्रांग रूपधारी जनार्दनकी भलीभाँतिसे पूजा की, उन सभी मनुष्योंने अपनी २ कामना पूर्ण की है॥ ३८॥ नक्षत्रपुरुषव्रतको विधिपूर्वक करनेपर इसप्रकार कल्याण, पवित्रता साधन और आरोग्यता प्राप्त करताहै अब परमपवित्र तीर्थयात्राका वृत्तान्त वर्णन कीजिये॥ ३९॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां प्रह्लादतीर्थयात्रायां नक्षत्रपुरुषोनामाशीतितमोऽध्यायः॥८०॥

प्रतिनक्षत्रयोगेनपूजनीयाद्विजातयः ॥ नक्षत्रज्ञायविप्रायपृथग्दद्याच्चदक्षिणाम् ॥ २९ ॥ नक्षत्रपुरुषाख्यंहिव्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥ पूर्वंकृतंहिभृगुणासर्वपातक
नाशनम् ॥ ३० ॥ अंगोपांगानिदेवर्षेपूजनीयानिवैप्रभोः ॥ सुरूपाण्यभिजायंतेप्रत्यंगांगानिचैवहि ॥ ३१ ॥ सप्तजन्मकृतंपापंकलिसंगागतंचयत् ॥ पितृ
मातृसमुत्थंचतत्सर्वंहंतिकेशवः ॥ ३२ ॥ सर्वाणिभद्राण्याप्नोतिशरीरारोग्यमुत्तमम् ॥ अनंतांमनसःप्रीतिंरूपंचातीवशोभनम् ॥३३॥ वाङ्माधुर्यंतथाकां
तिंयच्चान्यदभिवांछितम् ॥ ददातिनक्षत्रपुमान्पूजितस्तुजनार्दनः ॥ ३४॥ उपोष्यसम्यग्गतेषुक्रमेणर्क्षेषुनारद ॥ अरुंधतीमहाभागाख्यातिमग्र्यांजगामह ॥
॥ ३५ ॥ अदितिस्तनयार्थायनक्षत्रांगंजनार्दनम् ॥ पूजयित्वातुगोविंदंरैवतेपुत्रमाप्तवान् ॥ ३६ ॥ रंभारूपंतथालेभेवाङ्माधुर्यंतिलोत्तमा ॥ कांतिंश
शिवदग्र्यांचराज्यंराजापुरूरवाः ॥ ३७ ॥ एवंविधानतोब्रह्मन्नक्षत्रांगोजनार्दनः ॥ पूजितोरूपधारीयैस्तैः प्राप्तातुस्वकामिता ॥ ३८ ॥ एवंपवित्रं
चशुभप्रदायियशस्यमारोग्यकरंतुपुंसाम् ॥ नक्षत्रपुंसःपरमंविधानंशृणुष्वपुण्यामिहतीर्थयात्राम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेप्रह्लादतीर्थ
यात्रायांनक्षत्रपुरुषोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजीने परमपवित्र ऋषिकन्या इरावतीमें जाकर स्नानकर चैत्रमासकी अष्टमीको भगवान् जनार्दनकी आराधना की ॥ १ ॥ वहाँ पवित्रहो पुण्यप्रद नक्षत्रव्रतका अनुष्ठान करनेके पीछे कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ और इरावतमंत्रोंका उच्चारण करते हुए सुदर्शन चक्रतीर्थको उपामंत्रण (आवाहन) कर वेदोक्त विधानसे स्नान किया ॥ ३ ॥ उसस्थानपर एकरात्रितक निवास कर भक्तिसहित कुरुध्वजकी पूजा करतेहुए पवित्र हो पुरुष केसरी (नृसिंह) के दर्शनके निमित्त गये ॥ ४ ॥ वहाँ देविकामें स्नान कर नृसिंहका पूजन किया और एक रात्रितक निवास कर फिर गोकर्णको गये ॥ ५ ॥ वहाँ जा स्नान कर प्रमथ प्राचीनमें विश्वसृष्ट ईश्वरकी पूजा कर पीछे प्राचीनसे कामेश्वरके दर्शनके निमित्त गये ॥ ६ ॥ वहाँ जाकर महाजलमें स्नान कर शंकरका दर्शन और उनकी पूजा कर पुंडरीकके दर्शनके अर्थ गये ॥ ७ ॥ वहाँ जा उस महाजलमें स्नान किया और देवता व पितरोंको तर्पण कर पुंडरीककी पूजा करी और तीन दिन तक निवास किया ॥ ८ ॥ पीछे विशाखाके यूपमें भगवान् अजितका दर्शन और उसके पीछे कृष्णातीर्थमें स्नान कर तीन दिनतक वहाँ रहे ॥ ९ ॥ इसके पीछे हंसपदपर भगवान् हंसका दर्शन और उनकी पूजाकर अखंडस्वरूप अच्युतके दर्शनके अर्थ पयोष्णीमें आये ॥ १० ॥ पयोष्णीके जलसे स्नानकर अखंडस्वरूप अच्युतकी पूजा की और फिर कुमारिलके दर्शनके निमित्त वितस्ताको गये ॥ ११ ॥ वहाँ जा स्नानकर देवताओंके ईश्वर कुमारिलकी पूजाकर वालखिल्य नामक महर्षियोंकी आराधना की और फिर पापनाशी अयुततीर्थको गये ॥ १२ ॥ जहाँ देवी सुरभीने देवताओंका प्रियकार्य सम्पादनकर जगत्के हितसाधनकी इच्छासे

पुलस्त्यउवाच ॥ इरावतीमनुप्राप्यपुण्यांतामृषिकन्यकाम् ॥ स्नात्वासंपूजयामासचैत्राष्टम्यांजनार्दनम् ॥१॥ नक्षत्रपुरुषंकृत्वाव्रतंपुण्यप्रदंशुचि ॥ जगाम सकुरुक्षेत्रंप्रह्लादोदानवेश्वरः ॥ २ ॥ ऐरावतेनमंत्रेणचक्रतीर्थंसुदर्शनम् ॥ उपामंत्र्यततःसस्नौवेदोक्तविधिनामुने ॥ ३ ॥ उपोष्यक्षणदांभक्त्यापूजयित्वाकुरुध्वजम् ॥ कृतशौचस्तुतंद्रष्टुंययौपुरुषकेसरी ॥ ४ ॥ स्नात्वातुदेविकायांतुनृसिंहंप्रतिपूज्यच ॥ उपोष्यरजनीमेकांगोकर्णंदानवोययौ ॥५॥ तस्मिन्स्नात्वाथप्राचीनेपूज्येशंविश्वकारकम् ॥ प्राचीनेचापरेदैत्योद्रष्टुंकामेश्वरंययौ ॥ ६ ॥ तत्रस्नात्वाचदृष्ट्वाचपूजयित्वाचशंकरम् ॥ द्रष्टुंययौचप्रह्लादःपुंडरीकंमहांभसि ॥ ७ ॥ महांभसिततःस्नात्वासंतर्प्यपितृदेवताः ॥ पुंडरीकंचसंपूज्यउपोष्यदिवसत्रयम् ॥ ८ ॥ विशाखयूपेतदनुदृष्ट्वादेवंतथाजितम् ॥ स्नात्वातथाकृष्णतीर्थेत्रिरात्रंन्यवसद्भुवि ॥ ९ ॥ ततोहंसपदेहंसंदृष्ट्वासंपूज्यचेश्वरम् ॥ जगामासौपयोष्ण्यांतुअखंडंद्रष्टुमच्युतम् ॥ १० ॥ स्नात्वापयोष्णीसलिलेपूज्याखंडंजगत्पतिम् ॥ द्रष्टुंजगाममतिमान्वितस्तायांकुमारिलम् ॥११॥ तत्रस्नात्वार्च्यदेवेशंवालखिल्यैर्मरीचिभिः ॥ आराध्यमानोप्ययुतंह्रतंपापप्रणाशनम् ॥ ॥ १२ ॥ यत्रसासुरभीदेवीस्वसुतांकपिलांशुभाम् ॥ देवप्रियार्थमसृजद्धितार्थंजगतस्तथा ॥ १३ ॥

अपनी पुत्री कल्याणी कपिलाकी सृष्टि की थी ॥ १३ ॥ उसी देवह्रदमें स्नानकर भक्तिसहित शम्भुकी पूजाकर और विधिपूर्वक ब्रह्माजीको प्राप्त हो अर्थात् उनका पूजनकर मणिमान् तीर्थको गये ॥१४॥ वहाँ बुद्धिमान् प्रह्लादजीने प्रजापतिके कल्पित मणिमान् नामक श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर स्नानकिया और देवेश शम्भु तथा प्रजापतिके दर्शन किये ॥१५॥ हे तपोधन ! विधिपूर्वक उन देवताओंकी पूजाकर छः रात्रितक वहाँ रहकर फिर मधुनंदिनीको गये ॥१६॥ और वहाँके मधुजलमें स्नान कर चक्रधारी शिव और त्रिशूलधारी गोविन्द (विष्णु) का दर्शन किया ॥ १७ ॥ नारदजी बोले कि, भगवान् शंभुने किसकारण सुदर्शन चक्र धारण किया और फिर वासुदेवही किसकारणसे शूलधारी हुए सो वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इस प्राचीन कथाको मैं वर्णन करताहूँ तुम श्रवण करो ! स्वयं

तत्रदेवह्रदेस्नात्वाशंभुंसंपूज्यभक्तितः ॥ विधिवच्चविधिंप्राप्यमणिमंतततोययौ ॥ १४ ॥ तत्रतीर्थवरेस्नात्वाप्राजापत्येमहामतिः ॥ ददर्शशंभुंब्रह्माणंदेवेशं
चप्रजापतिम् ॥ १५ ॥ विधानतस्तुतान्देवान्पूजयित्वातपोधन ॥ षड्रात्रंतत्रचास्थित्वाजगाममधुनंदिनीम् ॥ १६ ॥ मधुसलिलेस्नात्वाचदेवंचक्रधरंहरम् ॥
शूलबाहुंचगोविंदंददर्शदनुपुंगवः ॥ १७ ॥ नारदउवाच ॥ किमर्थंभगवान्शंभुर्दधारार्थसुदर्शनम् ॥ शूलंतथावासुदेवोममैतद्ब्रूहिपृच्छतः ॥१८॥ पुलस्त्य
उवाच ॥ श्रूयतांकथयिष्यामिकथामेतांपुरातनीम् ॥ कथयामासतांविष्णुर्भविष्याम्यवनौसुराः ॥ १९ ॥ जलोद्भवोनाममहासुरेंद्रोघोरंसतस्त्वातपउग्र
वीर्यः ॥ आराधयामासविरंचिमारात्सतस्यतुष्टोवरदोबभूव ॥२०॥ देवासुराणामजयोमहाहवेनिजैश्चशस्त्रैरमरैरवध्यः ॥ अनन्यलंघ्यैर्नतुब्रह्मणःपुरानयांति
शापैःशममेषशत्रुः ॥ २१ ॥ एवंप्रभावोदनुपुंगवोसौदेवान्महर्षीन्नृपतीन्समग्रान् ॥ प्रबाधमानोविचचारभूम्यांसर्वाःक्रियाःप्राक्षिपदुग्रमूर्तिः ॥ २२ ॥
ततोऽमराभूमितटेनिषण्णाजग्मुःशरण्यंहरिमीशितारम् ॥ तैश्चापिसार्धंभगवाञ्जगामहिमालयंयत्रहरस्त्रिणेत्रः॥ २३ ॥

भगवान् विष्णुने पहले इसका वर्णन कियाथा ॥ १९ ॥ जलोद्भव नामसे विख्यात अत्यन्त उत्कट वीर्ययुक्त महासुरेन्द्र था। उसने महाघोर कठिन तपस्याकर ब्रह्माजीको संतुष्ट किया, तब ब्रह्माजीने उसे यह वर दिया ॥ २० ॥ कि, देवताओंके साथ महायुद्धमें तुम्हारी जय होगी और देवताभी अपने २ अस्त्रोंसे तुम्हारा वध नहीं करसकैंगे इसप्रकारसे जलोद्भव ब्रह्माजीसे वर ले अनन्यलंघ्य ब्रह्माजीके शापके प्रभावसेभी किसीप्रकार यह शत्रु शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २१ ॥ इसप्रकारका प्रभावशाली वह दानव (जलोद्भव) सम्पूर्ण देवता और महर्षि तथा राजाओंको बाधित करता हुआ, पृथ्वीमें विचरण करते हुए उसने उग्रमूर्ति समस्त धर्म्य क्रियाकलापको प्रक्षिप्त (निरस्त-निवारण) किया ॥ २२ ॥ यह देखकर देवता पृथ्वीके किनारे आ अत्यन्त दुःखित हो सबके ईश्वर

विष्णु भगवान्‌की शरण गये, वह उन्हें अपने साथ ले जिस स्थानपर त्रिलोचन शिवजी विराजमान थे उसी हिमालयपर्वतको गये ॥ २३ ॥ वहाँ जा देवता और ऋषियोंके हितकारी कार्यका विचार कर शत्रुओंके संहार करनेके निमित्त संकल्प किया, फिर हरि और हर यह दोनों अस्त्रोंको त्यागकर विचरण करनेलगे और उग्रकार्यको साधनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २४ ॥ वह दोनोंही देवताओंके ईश्वर थे. फिर भयंकररूप शत्रुभी उनको नहीं जीतसकते, वह मारनेकी इच्छा कर आरहे हैं, यह विचार कर असुरपति जलोद्भव विशालजलमें प्रवेश करगया ॥ २५ ॥ हे द्विज ! उस त्रिदेवेन्द्रशत्रुने मत्स्यपूर्ण विशालानदीके बीच प्रवेश किया है, यह जानकर वह दोनोंजने किनारेपरही रहे और उसी समय प्रच्छन्न मूर्ति होगये ॥ २६ ॥ तब असुरने स्वर्गकी ओर मुखकर दृष्टि चलाकर देखा,

संमंत्र्यदेवर्षिहितंचकार्यंमतिंचकृत्वानिधनायशत्रोः ॥ निरायुधौतावपिपर्यटंतौदेवाधिपौचक्रतुरुग्रकर्म ॥ २४ ॥ ततश्चासौदानवौविष्णुशर्वौसमायातौहं
तुकामौसुरेशौ ॥ मत्वाजेयौशत्रुभिर्घोररूपैर्भयात्तोयेनिम्नगायांविवेश ॥ २५ ॥ ज्ञात्वाप्रविष्टंत्रिदिवेन्द्रशत्रुंनदींविशालांद्विजमत्स्यपूर्णाम् ॥ तीरंसमा
श्रित्यास्थितौहिदेवौप्रच्छन्नमूर्तीसहसाबभूवतुः ॥ २६ ॥ दिवंसमीक्षन्सहसाकातराक्षोदुर्गंहिमाद्रिंसहसाविवेश ॥ महीध्रशृंगोपरिविष्णुशंभूबंभ्रम्यमाणंस्व
रिपुंचमत्वा ॥ २७ ॥ वेगादुभौदुद्रुवतुःसशस्त्रौविष्णुस्त्रिशूलीगिरिशश्चचक्री ॥ ताभ्यांसदृष्टस्त्रिदशोत्तमाभ्यांचक्रेणशूलेनविभिन्नदेहः ॥ २८ ॥ पपातशै
लात्तपनीयवर्णोयथांतरिक्षाद्धिमनुष्यताराः ॥ एवंत्रिशूलंचदधारविष्णुश्चक्रंत्रिणेत्रोऽप्यरिसूदनार्थम् ॥ २९ ॥ यत्राप्यसौशूलभवाभिघाताद्धरांपपाता
थधराचलेंद्रात् ॥ जलोद्भवश्चापिजलंविमुच्यज्ञात्वागतौशंकरवासुदेवौ ॥ ३० ॥ तत्राप्यतीर्थंत्रिदशाधिपाभ्यामुपोषितंदैत्यपतिःस्वशुद्धये ॥ उपोष्यभ
त्त्याहिमवंतमागाद्द्रष्टुंगिरीशंशिवविष्णुमार्गम् ॥ ३१ ॥

और कातर हो उसी समय दुर्गम हिमाद्रिको चलागया,यह देख उन दोनोंने विचारा कि, शत्रु हिमालयके ऊपर भागमें शीघ्रतासे जा रहा है, यह विचार कर ॥ २७ ॥ विष्णुने त्रिशूल और महादेवने चक्र धारणकर महावेगसे उसका पीछा किया, फिर वहाँ उसे देख चक्र और शूलसे उसकी देहको छिन्न भिन्न करदिया ॥ २८ ॥ तब वह पर्वतपरसे गिरपड़ा, उसका वर्ण सुवर्णकी समान था, इसकारण गिरनेके समय ऐसा बोध होता था कि, मानों मनुष्यरूपी तारा आकाशसे पृथ्वीपर गिराहो ॥ इसप्रकारसे शत्रुके संहारके निमित्त विष्णुने त्रिशूल और हरने वहाँ चक्र धारण किया था ॥ २९ ॥ शंकर और वासुदेव यह दोनोंही वहाँ आये हैं, यह जानकर जहाँसे जलोद्भवने जलको छोड़ धराधरेन्द्र हिमालयपर जा त्रिशूल और चक्रके आघातसे वहाँ से पृथ्वीपर गिरा, प्रह्लादजी भी आत्मशुद्धिकी इच्छासे त्रिदशाधिप उन हरिसे

उपोषित उस तीर्थको गये और भक्तिसहित उस स्थानपर निवासकर पीछे शंकर और वासुदेवके दर्शनके निमित्त हिमालयको चले गये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और विधिपूर्वक उनकी पूजा कर ब्राह्मणोंको दानकर वितस्ता और हिमालय इन दोनोंके भृगुतुंडको गये ॥ ३२ ॥ जहाँ भगवान् देववर महादेवजीने विष्णुको श्रेष्ठ आयुध सुदर्शन चक्र प्रदान किया था जिसके द्वारा यह स्वयं शत्रुका संहार करतेथे ॥ ३३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां प्रह्लादतीर्थयात्रायांजलोद्भववधोनामएकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ नारदजी बोले कि, हे भगवन् ! त्रिलोचनने किसकारणसे लोकपति वासुदेवको लोकपूजित चक्रप्रदान कियाथा ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, सावधान होकर चक्रप्रदानसम्बन्धिनी, शिवमाहात्म्यवर्द्धिनी इस प्राचीन कथाको श्रवण करो ॥ २ ॥ वीतमन्यु नामके वेदवेदांगपारग गृहाश्रमी महाभाग एक ब्राह्मण थे ॥ ३ ॥ उनकी

तंसमभ्यर्च्यविधिवद्दत्त्वादानंद्विजातिषु ॥ वितस्ताहिमवत्योश्चभृगुतुंगंजगामसः ॥ ३२ ॥ यत्रेश्वरोदेववरस्यविष्णोःप्रादाद्रथांगंप्रवरायुधंवै ॥ चिच्छेदयेनारिबलंचशंकरोविज्ञायमानोस्त्रबलंमहात्मा ॥ ३३ ॥ इति श्रीवामनपुराणेप्रह्लादतीर्थयात्रायांजलोद्भववधोनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ नारदउवाच ॥ भगवँल्लोकनाथायविष्णवेविषमेक्षणः ॥ किमर्थमायुधंचक्रंदत्तवाँल्लोकपूजितम् ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वाकथामेतांपुरातनीम् ॥ चक्रप्रदानसंबद्धांशिवमाहात्म्यवर्धिनीम् ॥ २ ॥ आसीद्द्विजातिप्रवरोवेदवेदांगपारगः ॥ गृहाश्रमीमहाभागोवीतमन्युरितिस्मृतः ॥ ३ ॥ तस्यात्रेयीमहाभागाभार्यासीच्छीलसंमता ॥ पतिव्रतापतिप्राणाधर्मशीलेतिविश्रुता ॥ ४ ॥ मुनेस्तस्यानपत्यस्यऋतुकालाभिगामिनः ॥ संबभूवसुतःश्रीमानुपमन्युरितिश्रुतः ॥ ५ ॥ तंमातामुनिशार्दूलंशालिपिष्टरसेनवै ॥ पोषयामासददतीक्षीरमेतद्धिदुर्गता ॥ ६ ॥ सोजानानोस्यक्षीरस्यस्वादुतांपयइत्यथ ॥ संभावनामप्यकरोच्छालिपिष्टरसेपिहि ॥ ७ ॥ सत्वेकदासमंपित्राकुत्रचिद्द्विजवेश्मनि ॥ क्षीरौदनंचबुभुजेश्रद्धयाप्राणिपुष्टिदम् ॥ ८ ॥ सलब्ध्वानुपमंस्वादुक्षीरंचऋषिपुत्रकः ॥ मात्रादत्तंद्वितीयेह्निनादत्तोपिष्टकारितम् ॥ ९ ॥

भार्या महाभागा आत्रेयीने शीलवती पतिव्रता, पतिगतजीविता और धर्मसमन्विता कहकर कीर्ति प्राप्त की थी ॥ ४ ॥ ब्राह्मणके पुत्र नहीं था, इसीकारण ऋतुके समयमें गमन करनेसे उपमन्युनामसे विख्यात श्रीमान् पुत्रका जन्म हुआ ॥ ५ ॥ हे मुनिशार्दूल ! उसकी माता अत्यन्त दरिद्री थी, इसीकारण दूध कहकर शालिपिष्टरस (चावल पीसकर पानीमें घोलकर) प्रदान कर पुत्रका पालन करनेलगी ॥ ६ ॥ उपमन्युने क्षीरका स्वाद कभी जाना नहीं था, इसकारण दूध जानकरही उस शालिपिष्टरससे अत्यन्त प्रीति करता था ॥ ७ ॥ एक समय उसने पिताके सहित किसी ब्राह्मणीके घरमें प्राणियोंकी पुष्टिका देनेवाला क्षीरोदन (दूधभात) श्रद्धासहित भोजन किया ॥ ८ ॥ फिर उस अनुपम स्वादयुक्त क्षीरको पान कर दूसरे दिन माताके दिये हुए पिष्टरसको ग्रहण न किया ॥ ९ ॥

और बालकके स्वभावसे जलार्थी चातककी समान रुदन करनेलगा, यह देखकर माता गद्गद वचन हो उससे बोली ॥ १० ॥ कि, जो उमापति और पशुपति हैं, जो शूलधारी और विरूपाक्ष हैं, उन शंकरके विनाप्रसन्नहुए क्षीरभोजनकी संभावना कहाँ है ? ॥ ११ ॥ इसकारण हे वत्स ! यदि सर्वदा पुष्टिकारक क्षीरके भोजन करनेकी इच्छा है तो देवगणाधिपति विरूपाक्ष त्रिशूलधारी (शिव) की आराधना करो ॥ १२ ॥ वह सबप्रकारसे तुम्हारा कल्याण करैंगे, वह सम्पूर्ण जगतको व्याप्त करतेहैं, उनके संतुष्ट होतेही क्षीरभोजनकी तो बात क्या कहूँ बरन् अमृततकभी पान करनेको मिलैगा॥ १३ ॥उपमन्युने माताके यह वचन सुनकर बोला कि, तुमने जिसकी पूजा करनेको कहा वह विरूपाक्ष कौन हैं? ॥ १४ ॥धर्मशीला आत्रेयीने धर्मयुक्त वचनसे उत्तर दिया ॥ १५॥ कि, यह वह विरूपाक्ष हैं, मैं तुमसे कहती

रुरोदचतथाबाल्यात्पाथोर्थैचातकोयथा ॥ मातारुदंतंतंप्राहबाष्पगद्गदयागिरा ॥ १० ॥ उमापतौपशुपतौशूलधारिणिशंकरे ॥ अप्रसन्नेविरूपाक्षेकुतः
क्षीरेणभोजनम् ॥ ११ ॥ यदीच्छसिपयोभोक्तुंसद्यःपुष्टिकरंसुत ॥ तमाराधयदेवेशंविरूपाक्षंत्रिशूलिनम्॥ १२ ॥तस्मिंस्तुष्टेजगद्धाम्निसर्वकल्याणदायिनि ॥
प्राप्यतेमृतपायित्वंकिंपुनःक्षीरभोजनम् ॥ १३ ॥ समातुर्वचनंश्रुत्वावीतमन्युस्ततोब्रवीत् ॥ कोऽयंविरूपाक्षइतित्वयाराध्यस्तुकीर्तितः ॥ १४ ॥ ततः
सुतंधर्मशीलाधर्माढ्यंवाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥ योयंविरूपाक्षइतिश्रूयतांकथयामितम् ॥ आसीन्महासुरपतिःश्रीदामइतिविश्रुतः ॥ १६ ॥ येनाभ्रम्य
जगत्सर्वंश्रीदाम्नाविष्णुवत्पुरा ॥ १७ ॥ निःश्रीकास्तुत्रयोलोकाःकृतास्तेनदुरात्मना ॥ श्रीवत्संवासुदेवस्यहर्तुमिच्छन्महासुरः ॥ १८ ॥ तस्यदुष्टंसभग
वानभिप्रायंजनार्दनः ॥ ज्ञात्वातस्यवधाकांक्षीमहेश्वरमुपागमत् ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नंतरेशंभुर्योगमूर्तिंधरोव्ययः ॥ तस्थौहिमाचलप्रस्थमाश्रित्यश्लक्ष्णभू
षितम् ॥ २० ॥ अथाभ्येत्यजगन्नाथःसहस्रशिरसंविभुम् ॥ आराधयामासहरिःस्वयमात्मानमात्मना ॥ २१ ॥ आसीद्वर्षसहस्रंतुपादांगुष्ठेनताद्गिरा ॥
गृणन्सनातनंब्रह्मयोगिध्येयमलक्षणम् ॥ २२ ॥ ततःप्रीतःप्रभुःप्रादाद्विष्णवेपरमंपदम् ॥ प्रत्यक्षतेजसायुक्तंदिव्यंचक्रंसुदर्शनम् ॥ २३ ॥

हूँ श्रवण करो, श्रीदाम नामसे विख्यात एक बड़ा भारी असुर था ॥ १६ ॥ इस दुरात्मा दानवने विष्णुकी समान सम्पूर्ण जगत्में भ्रमण कर संपूर्ण लोकोंको श्रीहीन करदिया ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त वह महाअसुर वासुदेवके श्रीवत्सको हरण करनेमें अभिलाषी हुआ ॥ १८ ॥ भगवान् उस दुष्टके अभिप्रायको जानकर उसके विनाश करनेकी इच्छासे महादेवजीके पासको गये ॥ १९ ॥ उससमय अविनाशी शंभुने योगमूर्ति धारण कर हिमालयके श्लक्ष्ण (चिकना) भूषित (सुन्दर) देशका आश्रय किया था ॥ २० ॥ जगन्नाथ विष्णुजी उनके निकट जाकर उन सहस्रशिरा सर्वव्यापी आत्मस्वरूप महादेवजीकी स्वयं आराधनामें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥ पैरके अँगूठेका अवलम्बन कर उस पर्वतपर योगियोंके ध्येय लक्षणहीन सनातन ब्रह्मका जप करतेहुए सहस्र वर्ष व्यतीत किये ॥ २२ ॥ तब प्रभु महादेवजीने प्रसन्न

हो विष्णुको परमपद और तेजयुक्त दिव्य सुदर्शनचक्र प्रदान किया ॥ २३ ॥ सर्व भूतमय प्रभु शंकर महादेवजी देवाधिदेव वासुदेवको वह कालचक्रकी समान चक्र देकर बोले ॥ २४ ॥ कि, हे देवेश! यह श्रेष्ठ आयुध सम्पूर्ण आयुधोंका विनाशक है, इसका नाम सुदर्शन है यह बारह धार और छः नाभि (मध्यस्थ छिद्रों) से युक्त है, वेगमें तो गरुड़की समान है ॥ २५ ॥ इसके आरामें यह देवतागण मास और मेषादि राशियें निवास करती हैं, वैसेही छः ऋतुभी शिष्टोंकी रक्षाके अर्थ इसके नाभिप्रदेशमें निवास करती हैं ॥ २६ ॥ अग्नि, सोम (चंद्रमा) मित्र (सूर्य) वरुण शचीपति (इन्द्र) विश्वेदेव और प्रजापति सब ॥ २७ ॥ बलवान् वायु देवता, वैद्य अश्विनीकुमार धन्वन्तरी, तपस्य और तप चैत्रसे लेकर फाल्गुनतक सम्पूर्ण बारह महीनेभी इसमें निवास

तदत्त्वादेवदेवायसर्वभूतमयः प्रभुः॥ कालचक्रनिभंचक्रंशंकरोविष्णुमब्रवीत् ॥ २४ ॥ वरायुधंहिदेवेशसर्वायुधनिबर्हणम् ॥ सुदर्शनंद्वादशारंषण्णाभिद्विजवज्जवे ॥२५॥ आरासंस्थास्त्वमीतत्रदेवामासाश्चराशयः ॥ शिष्टानांरक्षणार्थायसंस्थिताऋतवश्चषट् ॥२६॥ अग्निःसोमस्तथामित्रोवरुणश्चशचीपतिः॥ इंद्राग्नीवाप्यथोविश्वेप्रजापतयएवतु ॥ २७ ॥ वायुश्चबलवान्देववैद्यौधन्वंतरिस्तथा ॥ तपस्यश्चतपश्चोग्रोद्वादशेतिप्रतिष्ठिताः ॥ २८॥ चैत्राद्याःफाल्गुनांताश्चमासास्तत्रप्रतिष्ठिताः ॥ २९ ॥ तदेनदादायविभोरथायुधंशत्रूंसुराणांजहिमाविशंकिथाः ॥ अमोघएषोऽमरराजपूजितोधृतोमयामंत्रगतस्तपोबलात्॥ ॥३०॥इत्युक्तःशंभुनाविष्णुस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ कथंशंभोविजानीयाममोघंमोघमेवच ॥ २१ ॥ यथामोघंविभोचक्रंसर्वत्राप्रतिमंततः ॥ जिज्ञासार्थंतवैवेहप्रेक्षिष्यामिप्रतीच्छमे ॥ ३२॥ तद्वाक्यंवासुदेवस्यनिशम्याहपिनाकधृक् ॥ यद्येवंप्रक्षिपस्वेतिनिर्विशंकेनचेतसा ॥ ३३ ॥ तन्महेशानवचनंश्रुत्वाविष्णुःसुदर्शनम् ॥ मुमोचतेजोजिज्ञासुःशंकरंप्रतिवेगवान् ॥ ३४ ॥ मुरारिकरविभ्रष्टंचक्रमभ्येत्यशूलिनम् ॥ त्रिधाचकारविश्वेशंयज्ञेशंयज्ञयाजकम् ॥ ३५ ॥

करते हैं ॥२८ ॥ २९ ॥ तुम इस रथांग (चक्र) रूपी आयुधको लेकर निःशंकित चित्तसे देवताओंके शत्रुओंका संहार करो, यह किसी समयमें भी व्यर्थ नहीं होगा, अमरराज इसकी पूजा करेंगे, मैंने तपोबलसे इस मंत्रगत अस्त्रको धारण किया था ॥ ३० ॥ शंभुके यह वचन कहनेपर विष्णु भगवान्ने उत्तर दिया कि हे शंकर ! यह अस्त्र अव्यर्थ है या व्यर्थ है यह मैं किसप्रकार जानूं ॥ ३१ ॥ हे विभो ! यह चक्र सर्वत्र अप्रतिहत अमोघ है या नहीं इसे जाननेके निमित्त आपहीके ऊपर छोडूंगा आप प्रतिग्रह कीजिये ॥ ३२ ॥ पिनाकधारी वासुदेवके यह वचन सुनकर बोले कि, यदि यही आपकी इच्छा है तो निःशंकाचित्तसे प्रहार कीजिये ॥ ३३ ॥ महेश्वरके यह वचन सुनकर विष्णुने तेजके जाननेकी इच्छासे उनके ऊपर बडेवेगसे सुदर्शन चक्र छोड़ा ॥ ३४ ॥ मुरारीके हाथसे

छूटेहुए चक्रने शूलधारीके ऊपर जाकर उन यज्ञयाजक पशुपतिके तीन खंड करदिये ॥ ३५ ॥ महाबाहु हरि महादेवजीको उसी समय त्रिधाभूत (तीनटुकड़े) हुए देखकर लज्जासे व्याप्तशरीर हो उनके चरणोंमें गिरे ॥ ३६ ॥ श्रीमान् पशुपति दामोदरको अपने चरणोंमें गिरा हुआ देखकर प्रसन्न हो वारंवार "उठो, उठो" इस प्रकार कहने लगे ॥ ३७ ॥ कि, हे महाभाग ! ब्रह्मस्वरूप मेरा यह विकार प्राकृतिक भया है, मेरा वास्तविक स्वभाव (शरीर) छिन्न नहीं हुआ है, वह तो अच्छेद्य और अदाह्य है ॥ ३८ ॥ इस कारण हे केशव ! तुमने जो चक्रके प्रहारसे इस अंगको काटकर त्रिधा विभक्त किया है, यह सभी परमपवित्रताके देनेवाले होंगे, इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ३९ ॥ इससे प्रथम खंड हिरण्याक्ष, द्वितीय खंड सुवर्णाक्ष और तृतीय खंड विरूपाक्षरूपसे प्रगट

हरंहरिस्त्रिधाभूतंदृष्ट्वातूर्णंमहाभुजः ॥ व्रीडोपप्लुतदेहस्तुप्रणिपाततपरोऽभवत् ॥ ३६ ॥ पादप्रणामनिरतंवीक्ष्यदामोदरंततः ॥ प्राहप्रीतमनाःश्रीमानुत्तिष्ठेतिपुनःपुनः ॥ ३७ ॥ प्राकृतोयंमहाभागविकारोब्रह्मणोमम ॥ निकृत्तोनस्वभावोमेअच्छेद्योऽदाह्यएवहि ॥ ३८ ॥ तदेतानीहचक्रेणत्रीण्यंगानीहकेशव ॥ कृत्तानितानिपुण्यानिभविष्यंतिनसंशयः ॥ ३९ ॥ हिरण्याक्षस्ततोह्येषसुवर्णाक्षस्तथापरः ॥ तृतीयोविश्वरूपाक्षस्त्रयोमेपुण्यदानृणाम् ॥ ४० ॥ उत्तिष्ठगच्छचविभोनिहंतुंचममाहितम् ॥ श्रीदामानंहतंज्ञात्वानंदयिष्यंतिदेवताः ॥ ४१ ॥ इत्येवमुक्तोभगवान्हरेणगरुडध्वजः ॥ गत्वासुरागिरिप्रस्थंश्रीदामानंददर्शह ॥ ४२ ॥ तंदृष्ट्वादेवदर्पघ्नंदैत्यंदेववरोहरिः ॥ मुमोचचक्रंवेगाढ्यंहतोसीतिब्रुवन्विभुः ॥४३॥ ततस्तुतेनाप्रतिपौरुषेणचक्रेणदैत्यस्यशिरोनिकृत्तम्॥ संछिन्नशीर्षोनिपपातशैलाद्वज्राहतंशैलशिरोयथैव ॥ ४४ ॥ तस्मिन्हतेदेवरिपौसुरारिरीशंसमाराध्यविरूपनेत्रम् ॥ लब्ध्वाचचक्रंप्रवरंमहायुधंजगामदेवोनिलयंतपोनिधिम् ॥ ४५ ॥ सोयंपुत्रविरूपाक्षोदेवदेवोमहेश्वरः ॥ तमाराधयचेतसाधोक्षीरेणेच्छसिभोजनम् ॥ ४६ ॥

होकर आराधक मनुष्योंको पुण्यप्रदान करेंगे ॥ ४० ॥ हे विभो ! अब उठकर मेरे शत्रु श्रीदामाका संहार करनेके निमित्त जाओ, देवता उसे मृत जानकर प्रसन्न होंगे ॥ ४१ ॥ महादेवजीके इसप्रकार कहनेपर भगवान् गरुड़ध्वजने पर्वतपर जाकर श्रीदामाको देखा ॥ ४२ ॥ देववर सर्वव्यापी हरिने उस देवदर्पघ्न दैत्यको देखकर "हतोऽसि" तुम मारेगये इसप्रकारके वचन कह उसपर सुदर्शन चक्रका प्रयोग किया ॥ ४३ ॥ तब उस अप्रतिम पौरुषचक्रने दैत्यका मस्तक काटडाला, मस्तकके छिन्न होतेही वह वज्रसे कटेहुए पर्वतकी समान पृथ्वीपरसे नीचे गिरा ॥ ४४ ॥ देवताओंके शत्रु श्रीदामाके निहत होनेपर भगवान् मुरारि विरूपाक्ष महादेवजीकी आराधनासे उस महाआयुधश्रेष्ठ चक्रको प्राप्तकर अपने स्थानको गये ॥ ४५ ॥ हे वत्स ! देवदेव महेश्वर विरूपाक्ष विविध प्रभावयुक्त हैं,

यदि क्षीरभोजन करनेकी इच्छा है तौ उनकी आराधना करो ॥ ४६ ॥ माताके यह वचन सुनकर उपमन्युने विरूपाक्षकी आराधना कर क्षीरभोजनको प्राप्त किया ॥ ४७ ॥ मुरारिका यह वृत्तान्त तुम्हारे निकट वर्णन किया, यह परमपवित्र और पापरूप वृक्षका कुठार (कुल्हाडी) स्वरूप है, महा असुर प्रह्लादजी परमपुण्यप्राप्तिकी इच्छासे उसी तीर्थको गये ॥ ४८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां श्रीदामचरितं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि, प्रह्लादजी उस तीर्थमें स्नान और देव त्रिलोचनका दर्शन और सुवर्णाक्षकी पूजाकर पीछे नैमिष तीर्थको गये ॥ १ ॥ वहां शुभदायिनी गोमती और कांचनाक्षी इन दोनोंके बीचमें तीस हजार पापहारी तीर्थ हैं ॥ २ ॥ वहां जा स्नानकर देवताओंके ईश्वर अच्युत (विष्णु) की अर्चना और नैमिषारण्य वासियोंकी यथाविधिसे पूजाकर ॥ ३ ॥ देवाधिदेव महादेवजीकी आराधनाकर गोपतिके दर्शन करनेके निमित्त गयाक्षेत्रको गये ॥ ४ ॥ उस स्थानपर जा तड़ागमें स्नान और उसकी प्रदक्षिणाकर उसमें पितरोंके निमित्त पुण्यप्रद पिंडको अर्पण किया॥ ५ ॥ इसके उपरान्त उदपान तीर्थमें स्नान और पितरोंको तर्पणकर गदापाणि वासुदेव और गोपति महादेवजी इन दोनोंकी पूजाकर ॥ ६ ॥ इन्द्रतीर्थको गये, वहां जा स्नानकर पितर और देवताओंकी आराधनाकर महानदीके जलमें स्नान किया और फिर सरयूको गये ॥ ७ ॥ उसमें स्नानकर गोप्रतार कुशेशयकी पूजाकर एक रात्रितक निवासकर विनयनम्र हो वहांसे चले ॥ ८ ॥ रजस्तीर्थ में स्नान और पितरोंकी पूजाकर पिंड दिया, फिर पुरुषोत्तम अजितके दर्शनके अर्थ गये ॥ ९ ॥ परमपवित्रहो उस परमअक्षयस्वरूप पुंडरीकाक्षका दर्शन कर छैः रात्रितक उस स्थानपर

तन्मातुर्वचनंश्रुत्वावीतमन्युःसुतोबली ॥ तमाराध्यविरूपाक्षंप्राप्स्येक्षीरेणभोजनम् ॥ ४७ ॥ एतत्त्वयोक्तंपरमंपवित्रंसंछेदनंपापतरोर्मुरारेः ॥ तीर्थंचतत्रैवमहासुरोवैसमाससादाथसुपुण्यहेतोः ॥ ४८ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेश्रीदामचरितंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थवरेस्नात्वादृष्ट्वादेवंत्रिलोचनम् ॥ पूजयित्वासुवर्णाक्षंनैमिषंप्राययौततः ॥ १ ॥ तत्रतीर्थसहस्राणित्रिंशत्पापहराणिच ॥ गोमत्याःकांचनाक्ष्याश्चशुभदायाश्चमध्यतः ॥ २ ॥ तेषुस्नात्वार्च्यदेवेशंपीतवाससमच्युतम् ॥ ऋषीनपिचसंपूज्यनैमिषारण्यवासिनः ॥३॥ देवदेवंतथेशानंसंपूज्यविधिनाततः ॥ गयायांगोपतिंद्रष्टुंजगामसमहासुरः ॥ ४ ॥ स्नात्वाब्रह्मतडागेतुकृत्वाचास्यप्रदक्षिणाम् ॥ पिंडनिर्वपणंपुण्यंपितॄणांसचकारह ॥ ५ ॥ उदपानेतथास्नात्वातत्राभ्यर्च्यपितॄन्वशी ॥ गदापाणिंसमभ्यर्च्यगोपतिंचापिशंकरम् ॥ ६ ॥ इन्द्रतीर्थेतथास्नात्वासंतर्प्यपितृदेवताः ॥ महानदीजलेस्नात्वासरयूंचजगामसः ॥ ७ ॥ तस्यांस्नात्वासमभ्यर्च्यगोप्रतारंकुशेशयम् ॥ उपोष्यरजनीमेकांविनयावनतोययौ ॥ ८ ॥ स्नात्वाचार्च्यरजस्तीर्थेदत्त्वापिण्डंपितॄंस्तथा ॥ दर्शनार्थंययौश्रीमानजितंपुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥ तंदृष्ट्वापुंडरीकाक्षमक्षरंपरमंशुचिः ॥ षड्रात्रंसमुपोष्यैवमहेंद्रेदक्षिणंययौ ॥ १० ॥

निवास किया और फिर महेन्द्रके दक्षिणमें गये ॥ १० ॥ वहां अर्द्धनारीश्वर देवश्रेष्ठ हरका दर्शनकर और पितरोंके सहित महेन्द्रकी पूजा की; फिर उत्तरको गये ॥ ॥ ११ ॥ उस स्थानपर देवाधिदेव शंभु और गोपालका दर्शनकर सोमतीर्थमें स्नान किया पीछे सह्यनामक महापर्वतको गये ॥ १२ ॥ वहां महोदकीमें स्नान और भक्तिसहित वैकुंठकी पूजाकर देवता और पितृगणोंको तर्पणकर पारियात्र पर्वतको गये ॥ १३ ॥ वहां लाङ्गलिनीमें स्नान कर अपराजितकी पूजा की, फिर कशेरु देशको आये, यहां विरूपाक्षका दर्शनकर ॥ १४ ॥ जहां देवश्रेष्ठ योगवेत्ता शंभुने प्रमथगणोंसे पूजित हो अपना विश्वरूप उन्हें दिखाया था ॥ १५ ॥ उसी स्थानमें मंकुणिकाके जलसे स्नान और महादेवजीकी अभ्यर्चना करनेके पीछे सर्वदा सौगन्धयुक्त मलयाचल पर्वतको गये ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त वहां महाह्रदमें स्नानकर शंकरकी

तत्रदेववरंशुभ्रमर्धनारीधरंहरम् ॥ दृष्ट्वाचसंपूज्यपितॄन्महेंद्रेचोत्तरंगतः ॥ ११ ॥ तत्रदेववरंशंभुंगोपालंसोमपीडितम् ॥ दृष्ट्वास्नात्वासोमतीर्थेसह्याचलमुपा
गतः ॥ १२ ॥ तत्रस्नात्वामहोदक्यांवैकुंठंचार्च्यभक्तितः ॥ सुरान्पितॄंश्चसंतर्प्यपारियात्रंगिरिंगतः ॥ १३ ॥ तत्रस्नात्वालांगलिन्यांपूजयित्वापराजितम् ॥
कशेरुदेशंचाभ्येत्यविश्वरूपंददर्शसः ॥ १४ ॥ यत्रदेववरःशंभुर्गणानांतुसुपूजितः ॥ विश्वरूपमथात्मानंदर्शयामासयोगवित् ॥ १५ ॥ तत्रमंकुणिकातोये
स्नात्वाभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ जगामनित्यसौगंधंप्रह्लादोमलयाचलम् ॥ १६ ॥ महाह्रदेततःस्नात्वापूजयित्वाचशंकरम् ॥ ततोजगामयोगात्माद्रष्टुंविंध्येसदा
शिवम् ॥ १७ ॥ ततोविपाशासलिलेस्नात्वाभ्यर्च्यसदाशिवम् ॥ त्रिरात्रंसमुपोष्याथअवंतींनगरींययौ ॥१८॥ तत्राक्षिप्राजलेस्नात्वाविष्णुंसंपूज्यभक्तितः ॥
श्मशानस्थंजगामाथमहाकालवपुर्धरम् ॥ १९ ॥ तस्मिन्ससर्वभूतानांतेनरूपेणशंकरः॥ तामसंरूपमास्थायसंहारंकुरुतेवशी ॥२०॥ तत्रस्थेनसुरेशेनश्वेत
किर्नामभूपतिः ॥ रक्षितस्त्वंतकंदग्ध्वासर्वभूतापहारिणम् ॥ २१ ॥ तत्रातिहृष्टोवसतिनित्यंवैसर्वदाभवः ॥ वृतःप्रमथकोटीभिस्त्रिदशार्चितविग्रहः ॥२२॥
तंदृष्ट्वाथमहाकालंकालकालांतकांतकम् ॥ यमसंयमनंमृत्योर्मृत्युंचित्रविचित्रकम् ॥ २३ ॥

पूजा की और पीछे वह योगात्मा प्रह्लादजी सदाशिवके दर्शनकी इच्छासे विंध्याचल पर्वतको गये ॥ १७ ॥ फिर विपाशाके जलसे स्नान और सदाशिवकी पूजा कर तीन रात्रितक रहकर फिर अवन्ती नगरीको गये ॥ १८ ॥ इस स्थानपर क्षिप्राके जलसे स्नान कर भक्तिसहित भगवान् वासुदेवकी पूजा की फिर श्मशानवासी महाकाल विग्रहधारी महादेवजीके दर्शनके निमित्त गये ॥ १९ ॥ उस स्थानपर महादेवजी तामसमूर्तिका आश्रय कर सर्वभूतोंका संहार करते हैं ॥ २० ॥ और उस स्थानमें रहकर सुरेश्वर महादेवजी सर्वभूतसंहर्ता अन्तकको दग्धकर महाराज श्वेतकिकी रक्षा की थी ॥ २१ ॥ वह भव (महादेवजी) करोड़ प्रमथ गणोंसे वेष्टितहो अत्यन्त संतुष्ट हो सर्वदा वहाँ वास करते हैं, देवतागण उनके विग्रह (मूर्ति) की पूजा किया करते हैं ॥ २२ ॥ वह महाकाल महादेवजी कालकेभी कालहैं,

अन्तकके भी अन्तक हैं, यमके भी यम ओर मृत्युके भी मृत्यु और नानामूर्तिधारी हैं, जो भूतोंके नाथ जगत्के पति और श्मशानवासी हैं, उनका दर्शन और पूजाकर प्रह्लादजीने निषधदेशकी ओर प्रस्थान किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँ जाकर भगवान् महेश्वर (अमरनाथ) का दर्शन और भक्तिसहित उनकी पूजा कर महोदय[1]पर्वके होनेपर हयग्रीवको देखा ॥ २५ ॥ फिर अश्वतीर्थमें स्थान कर हयग्रीवका दर्शन और उन विभु श्रीधरकी आराधना कर पंचाल (पंजाब) देशको गये ॥ २६ ॥ वहाँ वह जितेंद्रिय प्रह्लादजी अर्थपतिके पुत्र ईश्वरके गुणोंसे युक्त पांचालिकका दर्शन कर पवित्र प्रयागराजको गये ॥ २७ ॥ यमुनाजीके तटवर्ती प्रयागराज अत्यन्तही शुभदायक तीर्थ है इसीकारणसे त्रिलोकीमें विख्यात है, वहाँ वटेश्वर रुद्र और योगशायी माधवका दर्शन कर ॥ २८ ॥ उन भक्तिसे

श्मशाननिलयंशंभुंभूतनाथंजगत्पतिम् ॥ पूजयित्वाशूलधरंजगामानिषधान्प्रति ॥ २४ ॥ तत्रामरेश्वरंदेवंदृष्ट्वासंपूज्यभक्तितः ॥ महोदयंसमभ्येत्यहयग्रीवं ददर्शसः ॥ २५ ॥ अश्वतीर्थेततःस्नात्वादृष्ट्वाचतुरगाननम् ॥ श्रीधरंचविभुंपूज्यपांचालविषयंययौ ॥ २६ ॥ तत्रेश्वरगुणैर्युक्तंपुत्रमर्थपतेरथ ॥ पांचालिकं वशीदृष्ट्वाप्रयागंप्रयतोययौ ॥ २७ ॥ प्रयागेशुभदेतीर्थेयामुनेलोकविश्रुते ॥ दृष्ट्वावटेश्वरंरुद्रंमाधवंयोगशायिनम् ॥ २८ ॥ द्वावेवभक्तिसंपूज्यौपूजयित्वामहासुरः ॥ माघमासमथोपोष्यततोवाराणसींगतः ॥ २९ ॥ समासाद्यचतांपुण्यांतीर्थेषुचपृथक्पृथक् ॥ सर्वपापहराह्येषास्नात्वार्च्यपितृदेवताः ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणीकृत्यपुरींसंपूज्यामुक्तकेशवौ ॥ लोलंदिवाकरंदृष्ट्वाततोमधुवनंययौ ॥ ३१ ॥ तत्रस्वायंभुवंदेवंददर्शासुरसत्तमः ॥ तमभ्यर्च्यमहातेजाःपुष्करारण्यमागमत् ॥ तेषुत्रिष्वपितीर्थेषुस्नात्वार्च्यपितृदेवताः ॥ ३२ ॥

पूजा करनेयोग्य दोनों देवताओंकी पूजाकर फिर माघमहीनेके बीतनेपर वाराणसीको गये ॥ २९ ॥ उस सर्वपापकी हरणकरनेवाली परमपवित्र वाराणसीमें जाकर वहाँके पृथक् २ सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान और देवता पितरोंकी पूजा कर ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण पुरीकी प्रदक्षिणा की, फिर अविमुक्तेश्वर और आदिकेशव इन दोनोंकी पूजाकर लोलका दर्शन कर मधुवन (मथुरा) को गये ॥ ३१ ॥ उस स्थानपर असुरश्रेष्ठ प्रह्लादजी देवाधिदेव स्वायंभुवका दर्शन कर उनकी पूजाकी, फिर पुष्कर तीर्थको गये, वहाँके उन (प्रसिद्ध) तीनों तीर्थोंमें स्नानकर पितर और देवताओंका पूजन किया ॥ ३२ ॥

---

[1] “अमार्कपातश्रवणेकिंश्चदूनं महोदयः” ऐसे स्मृतिके वचनसे पर्वविशेषका नाम “महोदय” है।

महर्षि अगस्त्यजीने यह परमपवित्र प्राचीन आख्यान वर्णन किया था, इसके श्रवण, मनन और कीर्तन करनेसे मनुष्य धन्य और यशस्वी होकर सर्व पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ३३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां प्रह्लादतीर्थयात्रा नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे मुने ! (नारद !) इस ओर दानवेश्वर प्रह्लादजीके तीर्थयात्राको चलेजानेपर विरोचनके पुत्र बलि कुरुक्षेत्रका दर्शन करनेके निमित्त गये ॥ १ ॥ उस परमधर्मयुक्त तीर्थमें भृगुपुत्र ब्राह्मणपुंगव शुक्राचार्यने ब्राह्मणोंका आमंत्रण (आवाहन) किया ॥ २ ॥ भृगुपुत्रके द्वारा आमंत्रित हो और उन्होंने आमंत्रित किया है यह सुनकर गौतम, अत्रि, कौशिक, अंगिराके वंशसंभव तत्त्वके जाननेवाले सब ब्राह्मण कुरुक्षेत्रको जानेके अर्थ ॥ ३ ॥ अपनी २ दिशासे उत्तर दिशाके अभिमुख, शतद्रु नदीके किनारे होकर प्रस्थान किया उस शतद्रुनदीके

एतत्पवित्रंपरमंपुराणंप्रोक्तंत्वगस्त्येनमहर्षिणाच ॥ धन्यंयशस्यंबहुपापनाशनंसंकीर्तनाच्छ्रवणात्संस्मृतेश्च ॥ ३३ ॥ इति श्रीवामनपुराणे प्रह्लादतीर्थयात्रानामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥
पुलस्त्यउवाच ॥ गतेचतीर्थयात्रायांप्रह्लादेदानवेश्वरे ॥ कुरुक्षेत्रंसमभ्यागाद्द्रष्टुंवैरोचनोमुने ॥ १ ॥ तस्मिन्महाधर्मयुतेतीर्थेब्राह्मणपुंगवः ॥ शुक्रोद्विजातिप्रवरानामंत्रयतभार्गवः ॥ २ ॥ भृगुणामंत्र्यमाणास्तेश्रुत्वात्रेयसगौतमाः ॥ कौशिकांगिरसश्चैवतत्त्वज्ञाः
कुरुजांगलम् ॥ ३ ॥ उत्तराशांप्रजग्मुस्तेनदीमनुशतद्रवीम् ॥ शातद्रवेजलेस्नात्वाविवासंप्रययुस्ततः ॥ ४ ॥ विज्ञायतत्रास्यरतिंस्नात्वाचर्च्यपितृदेवताः ॥
ततोपिकिरणांपुण्यांदिनेशकिरणच्युताम् ॥ ५ ॥ तस्यांस्नात्वाचदेवर्षेसर्वएवमहर्षयः ॥ सुपुण्योदांवेगवतींस्नात्वाजग्मुरथेश्वरीम् ॥ ६ ॥
देविकायाजलेस्नात्वापयोष्णायांचतापसाः ॥ अवतीर्णामुनेस्नातुंमाधवाद्यासुभानवीम् ॥ ७ ॥ ततोनिमग्नाददृशुःप्रतिबिंबमथात्मनः ॥ अंतर्जलेद्विजश्रेष्ठमहदाश्चर्यकारकम् ॥ ८ ॥
उन्मज्जंतश्चददृशुःपुनर्विस्मितमानसाः ॥ ततःस्नात्वासमुत्तीर्णाऋषयःसर्वएवहि ॥ ९ ॥ पुष्कराक्षमयोगंधिंब्रह्माणं
चाप्यपूजयन् ॥ ततोभूयःसरस्वत्यास्तीर्थेत्रैलोक्यविश्रुते ॥ १० ॥

जलमें स्नानकर पीछे विवासाको गये ॥ ४ ॥ वहाँ (उस तीर्थमें) उन शुक्राचार्यजीको प्रीतिविशेष जानकर सभी उसमें स्नान और पितर और देवताओंकी अभ्यर्चना कर दिनकर (सूर्य) की किरणसे निकली हुई परमपवित्र किरणानदीको गये ॥ ५ ॥ हे देवर्षे ! उसके जलमें स्नानकर फिर परमपवित्र पुण्यदायिनी वेगवतीके जलमें स्नानकर ईश्वरीको गये ॥ ६ ॥ हे मुने ! इसके उपरान्त मगधादिक सभी ब्राह्मण देविका और पयोष्णीके जलमें स्नानकर सुभानवीमें स्नान करनेके निमित्त उतरे ॥ ७ ॥ उसमें निमग्न हो (डूबकर) जलके भीतर अपने २ प्रतिबिम्ब (परछांही) का दर्शन कर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ८ ॥ पीछे उन्मग्न होकर उसीके अनुसार दर्शन किया, इसकारण उसका अंतःकरण अत्यन्तही विस्मित हुआ ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त सभी स्नान करनेके निमित्त उतरे और

पुष्करलोचन ब्रह्माजीकी पूजा और पुनर्वार त्रैलोक्यविश्रुत सारस्वत तीर्थोंसे प्रतिष्ठित ॥ १० ॥ कोटितीर्थमें वृषध्वज रुद्रकोटिका दर्शन किया. उस समय नैमिष, मागध, सिन्धु ॥ ११ ॥ धर्मारण्य, पुष्कर, दंडकारण्य, चम्पा, तारकच्छ, और देविकातीर्थ यह सब स्थलनिवासी ॥ १२ ॥ द्विजाति शंकरके दर्शनके अर्थ गये, उनकी संख्या एक कोटि थी, वह सभी तपःसिद्ध और सभी हरके दर्शनके निमित्त उत्कंठित हुए थे ॥ १३ ॥ इसकारण "मैं आगे मैं आगे" महादेवजीका दर्शन करूंगा यह कहकर परस्परमें झगड़ा करने लगे, उन दग्धकिल्विष महर्षियोंको व्याकुल देखकर ॥ १४ ॥ उनके ऊपर करुणाप्रकाश करनेके अर्थ भगवान् भव (शिव) कोटिमूर्ति हुए, यह देखकर उन्होंने प्रसन्न होकर महादेवजीकी ॥ १५ ॥ पूजाकर पृथक् २ सब तीर्थोंको स्था

कोटितीर्थेरुद्रकोटिंददर्शवृषभध्वजम् ॥ नैमिषेयाद्विजवरामागधेयाःससैंधवाः ॥ ११ ॥ धर्मारण्याःपुष्करेयादंडकारण्यकास्तथा ॥ चांपेयास्तारकच्छे
यादेविकातीर्थकाश्चये ॥ १२॥ तेतत्रशंकरंद्रष्टुंसमायाताद्विजातयः ॥ कोटिसंख्यास्तपःसिद्धाहरदर्शनलालसाः ॥ १३ ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमित्येवंवादिनो
मुने ॥ तानाकुलान्हरोदृष्ट्वामहर्षीन्दग्धकिल्बिषान् ॥ १४ ॥ तेषामेवानुकंपार्थंकोटिमूर्तिरभूच्छिवः ॥ ततस्तेमुनयःप्रीताःसर्वेएवमहेश्वरम् ॥ १५ ॥
संपूजयंतस्तेतस्थुस्तीर्थेकृत्वापृथक्पृथक् ॥ इत्येवंरुद्रकोटीभिर्नामशंभोरजायत ॥ १६ ॥ तंददर्शमहातेजाःप्रह्लादोभक्तिमान्वशी ॥ कोटितीर्थेततः
स्नात्वातर्पयित्वावसून्पितॄन् ॥ रुद्रकोटिंसमभ्यर्च्यजगामकुरुजांगलम् ॥ १७॥ ततोदेववरंस्थाणुंशंकरंपार्वतीप्रियम् ॥ सरस्वतीजलेमग्नंददर्शसुरपू
जितम् ॥ १८ ॥ सारस्वतेंभसिस्नात्वास्थाणुंसंपूज्यभक्तितः ॥ स्नात्वादशाश्वमेधेचसंपूज्यचसुरान्पितॄन् ॥ १९॥ सहस्रलिंगंसंपूज्यस्नात्वातस्मिन्ह्रदे
शुचिः ॥ अभिवाद्यगुरुंशुक्रंसोमतीर्थंजगामह ॥ २० ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यपितॄन्सोमंसंपूज्यभक्तितः ॥ क्षीरिकावासमभ्येत्यस्नानंचक्रेमहामतिः ॥२१॥
प्रदक्षिणीकृत्यतरुंवरुणंचार्च्यबुद्धिमान् ॥ भूयःकुरुध्वजंदृष्ट्वापद्माक्षींनगरींततः ॥ २२ ॥

पित किया, इसप्रकारसे महादेवजीका नाम रुद्रकोटि हुआ है ॥ १६ ॥ महातेजस्वी जितेन्द्रिय प्रह्लादजीभी वहां उपस्थितथे, भक्तिमान् हो उनका दर्शन, कोटितीर्थमें स्नान वसु और पितरोंको तर्पण और रुद्रकोटिकी पूजा कर कुरुजांगलमें आये ॥ १७ ॥ वहां सुरपूजित सरस्वतीके जलमें निमग्न हुए, पार्वतीजीके प्रिय देववर स्थाणुमूर्ति शंकरका दर्शन किया ॥ १८ ॥ उस सारस्वत जलमें स्नानकरनेके पीछे भक्तिसहित उस स्थाणुजीकी पूजाकर दशाश्वमेधको चलेगये, वहां स्नान कर देवता और पितरोंकी पूजा की ॥ १९ ॥ फिर सहस्रलिंगकी अर्चना कर शुद्धहो गुरु शुक्राचार्यको प्रणामकर फिर सोमतीर्थको गये॥ २० ॥ वहां जा स्नान कर देवता और पितरोंकी भक्तिसहित पूजाकर क्षीरकावासमें जाकर उन महाबुद्धिमान् प्रह्लादजीने वहां स्नान किया ॥ २१ ॥ और उस क्षीरकावृक्षकी प्रदक्षिणाकर वरुणकी

तत्रार्च्यमित्रावरुणौभास्करौलोकपूजितौ ॥ कुमारधारामभ्येत्यददर्शस्वामिनंवशी ॥ २३ ॥ स्नात्वाकपिलधारायांसंतर्प्यर्षिन्पितॄन्सुरान् ॥ दृष्ट्वास्कंदं
समभ्यर्च्यनर्मदायांजगामह ॥ २४ ॥ तस्यांस्नात्वासमभ्यर्च्यवासुदेवंश्रियःपतिम् ॥ जगामभूधरंद्रष्टुंवाराहंचक्रधारिणम् ॥ २५ ॥ स्नात्वाकोकामुखे
तीर्थेसंपूज्यधरणीधरम् ॥ त्रिसौवर्णमहादेवंमधुदेशंजगामह ॥ २६ ॥ तत्रनारीह्रदेस्नात्वापूजयित्वाचशंकरम् ॥ कालंजरंसमभ्येत्यनीलकंठंददर्शच ॥
॥ २७ ॥ नीलतीर्थजलेस्नात्वापूजयित्वाततःशिवम् ॥ जगामसागरानूपेप्रभासेद्रष्टुमीश्वरम् ॥ २८ ॥ स्नात्वाचसंगमेनद्याःसरस्वत्यार्णवस्यच ॥ सोमे
श्वरंलोकपतिंसददर्शकपर्दिनम् ॥ २९ ॥ योदक्षशापनिर्दग्धःक्षयीताराधिपःशशी ॥ आप्यायितःशंकरेणविष्णुनासकपर्दिना ॥ ३० ॥ तावार्च्य
देवप्रवरौसजगाममहालयम् ॥ तत्ररुद्रंसमभ्यर्च्यप्रजगामोत्तरान्कुरून्॥ ३१ ॥ पद्मनाभंसतत्रार्च्यसप्तगोदावरंययौ ॥ तत्रस्नात्वार्च्यदेवेशंभीमंत्रैलोक्यवं
दितम् ॥ ३२ ॥ गत्वादारुवनेश्रीमाञ्छ्रीलिंगंप्रददर्शह ॥ तमार्च्यब्राह्मणींगत्वास्नात्वार्च्यत्रिदशेश्वरम् ॥ ३३ ॥ प्लक्षावतरणंगत्वाश्रीनिवासमपूजयत् ॥
ततश्चकुंडिनंगत्वासंपूज्यप्राणतृप्तिदम् ॥ ३४ ॥

पूजा की, फिर पुनर्वार कुरुध्वजका दर्शन करनेके पीछे पद्माक्षी नगरीको गये ॥ २२ ॥ वहां जितेन्द्रिय प्रह्लादजी लोकपूजित मित्रावरुण और भास्करकी पूजा कर कुमारधारको गये और जाकर स्वामी कार्तिकेयका दर्शन किया ॥२३॥ फिर कपिलधारामें स्नान किया और देवता पितर तथा ऋषियोंका तर्पणकर स्कन्दका दर्शन और उनका पूजनकर नर्मदाको गये ॥ २४ ॥ वहां जा स्नानकर श्रीपति वासुदेवकी पूजाकर चक्रधारी भूधर वाराहके दर्शनके निमित्त गये ॥ २५ ॥ वहां कोकामुख तीर्थमें स्नान और धरणीधर (वराहजी) तथा त्रिसौवर्ण महादेवजीकी पूजाकर मधुदेशको गये ॥ २६ ॥ वहां नारीह्रदमें स्नानकर शंकरकी पूजाकी, फिर कालंजर देशमें जाकर नीलकंठका दर्शन किया ॥२७॥ वहां नीलतीर्थके जलसे स्नानकर महादेवजीकी पूजा करी और समुद्रके निकट प्रभासतीर्थमें ईश्वर (शिवजी) का दर्शन करनेके निमित्त गये ॥ २८ ॥ वहां सरस्वती सागरके संगममें स्नानकर सोमेश्वर लोकपति कपर्दीका दर्शन किया ॥ २९ ॥ जब तारानाथ चंद्रमा दक्षके शापसे निर्दग्धहो क्षयरोगसे दग्ध हुए तब जिन्होंने कपर्दी (शिव) सहित विष्णुने उन्हैं आप्यायित (क्षयरोगसे मुक्त) किया था ॥३०॥ देवश्रेष्ठ महादेवजी और वासुदेवजी इन दोनोंहीकी पूजाकर वह हिमालयको गये, वहां भगवान् रुद्रकी पूजाकर उत्तरकुरुको गये ॥ ३१ ॥ वहां वह पद्मनाभ विष्णुजीकी उपासना करनेके पीछे सप्तगोदावरीको गये, वहां स्नानकर त्रिलोकीके वंदना करने योग्य देव गणेश्वर भीमकी पूजाकर ॥ ३२ ॥ पीछे दारुवनमें जाकर श्रीलिंगका दर्शन किया, उनकी पूजाकर ब्रह्माणीमें जाकर स्नान किया और त्रिदशेश्वरकी पूजा कर ॥ ३३ ॥ प्लक्षावतरणको गये और श्रीनिवासकी पूजा की. इसके उपरान्त

कुंडिननगरमें जाकर प्राणोंकी तृप्तिका देनेवाला ॥ ३४ ॥ चतुर्बाहु शूर्पारककी उपासना करनेलगे और यथाविधिसे उनकी पूजा की, पश्चात् मगधारण्यमें जाकर वहां विश्वेश्वर वसुधाधिपका दर्शन किया उनका पूजनकर प्रजासुखनामक स्थानको गये, पीछे महीतीर्थमें स्नानकर वासुदेवको प्रणाम कर ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ शोण नामक तीर्थको गये, वहाँ रुक्मधर्मा ईश्वरकी पूजा की, पश्चात् महाकोशीमें जाकर जगन्नाथ हंसाख्य महादेवजीकी भक्तिसहित पूजाकर पवित्र सैन्धवारण्यको गये, वहाँ भगवान् हरिका दर्शन और उनका पूजन किया पीछे कनखलको गये॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दानव प्रह्लादजी वहाँ प्रतिष्ठित भद्रकालीश्वर वीरभद्र तथा मेरु स्थानस्थित धनाधिप (कुबेर) की उपासना करनेके पीछे गिरिवज्रको गये ॥ ३९ ॥ इस स्थानपर लोकनाथ महेश्वर पशुपतिकी यथाविधिसे पूजाकर कामरूपको गये॥

शूर्पारकंचतुर्बाहुंपूजयित्वाविधानतः ॥ मागधारण्यमासाद्यददर्शवसुधाधिपम् ॥ ३५॥ तमर्चयित्वाविश्वेशंसजगामप्रजासुखम् ॥ महीतीर्थेततःस्नात्वावासुदेवंप्रणम्यच ॥ ३६ ॥ शोणंसंप्राप्यसंपूज्यरुक्मधर्माणमीश्वरम् ॥ महाकोश्यांमहादेवंहंसाख्यंभक्तिमानथ ॥ ३७ ॥ पूजयित्वाजगन्नाथंसैंधवारण्यमुत्तमम् ॥ तंदृष्ट्वार्च्यहरिंचासौतीर्थंकनखलंययौ ॥३८॥ तत्रार्च्यभद्रकालीशंवीरभद्रंचदानवः ॥ धनाधिपंचमेर्वेकययावथगिरिव्रजम् ॥ ३९ ॥ तत्रदेवंपशुपतिंलोकनाथंमहेश्वरम् ॥ संपूजयित्वाविधिवत्कामरूपंजगामह ॥ ४० ॥ शशिप्रभंदेववरंत्रिणेत्रंसंपूजयित्वासाहितंमृडाण्या ॥ जगामतीर्थंप्रवरंमहाख्यंतस्मिन्महादेवमपूजयच्च ॥ ४१ ॥ ततस्त्रिकूटंगिरिमद्रिपुत्रंजगामद्रष्टुंसहचक्रपाणिम् ॥ तमार्च्यभक्त्यातुगजेंद्रमोक्षणंजजापजाप्यंपरमंपवित्रम् ॥ ४२ ॥ ततोषदैत्येश्वरसूनुरादरान्मासत्रयंमूलफलांबुभक्षी ॥ निवेद्यविप्रप्रवरेषुकांचनंजगामघोरंसहिदंडकंवनम् ॥ ४३ ॥ तत्रदिव्यंमहाशाखंवनस्पतिवपुर्धरम् ॥ ददर्शपुंडरीकाक्षंमहास्वापदवारणम् ॥ ४४ ॥ तस्याधस्थंत्रिरात्रंसमहाभागवतोसुरः ॥ स्थितःस्थण्डिलशायीचपठन्सारस्वतंस्तवम् ॥ ४५ ॥

॥ ४० ॥ वहाँ मृड़ानी (गौरी) के साथ विराजमान शशिप्रभ देववर त्रिनयन शंकरकी आराधना कर तीर्थश्रेष्ठमहातीर्थमें जाकर महादेवजीकी पूजा की ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त चक्रपाणीके दर्शनके निमित्त त्रिकूटपर्वतपर जाकर भक्तिसहित उनकी पूजाकर परमपवित्र और सर्वथा पूजनीय गजेन्द्रमोक्षणका जप करनेलगे ॥ ॥ ४२ ॥ वह दैत्यपतिनंदन प्रह्लादजी उस स्थानपर फल मूल और जलको भक्षण कर आदरसहित तीन मासतक निवास कर ब्राह्मणोंको कांचन (सुवर्ण) निवेदनकर भयंकर दंडकारण्यको गये ॥ ४३ ॥ वहाँ पुंडरीकाक्ष विशालशाखायुक्त वनस्पति (वृक्ष) शरीरको धारणकर विराजमान हैं उनका दर्शन कर ॥ ४४ ॥ वह महाभागवत महाअसुर प्रह्लादजी उस वनस्पतिके बीचमें तीनराततक निवासकर और स्थंडिलमें शयनकर सारस्वतस्तुतिका पाठ करनेलगे ॥ ४५ ॥

यहाँसे विद्वान् प्रह्लादजी सब पापप्रणाशन नामक तीर्थश्रेष्ठमें सर्वपापहर हरिका दर्शन करनेके निमित्त गये ॥ ४६ ॥ और उनके निकट पापमोचक दोस्तुति गानकरने लगे, जो पहले भगवान् जनार्दनने सूकरमूर्तिको धारणकर पाठ कियाथा ॥ ४७ ॥ यहाँसे दैत्येन्द्र प्रह्लादजी फलदायक संग्रामतीर्थको गये, यहाँ विष्णुभगवान् स्थावर स्तंभसमूहमें विराजमान हैं ॥ ४८ ॥ इसप्रकारसे सर्वगत विष्णु यहाँ विराजमान रहतेहैं, यह विचारकर बलवान् प्रह्लादजी उसमें अनुरागबद्ध हुए और वहाँ रहकर भगवान्के चरणोंकी वंदना करनेलगे ॥ ४९ ॥ प्रह्लादजीकी तीर्थयात्रा मैंने तुम्हारे निकट वर्णन की यह जैसी अत्यन्त पवित्र है उसीप्रकारसे सकलमुनिगण इसकी सेवा करते हैं; इसके कीर्तन और श्रवण करनेसे सम्पूर्ण मनुष्योंके पाप मुक्त होजातेहैं॥ ५० ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां प्रह्लादतीर्थयात्रावर्णनंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ नारदजी बोले कि, भगवद्भक्त प्रह्लादजीने जो चार स्तोत्रोंका जप किया था और जिसका जप करना सर्वथा कर्तव्य है सो आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे तपोधन ! श्रवण करो मैं इन सब जपकरनेयोग्य स्तोत्रोंका वर्णन करूंगा. इनका श्रवण, मनन और कीर्तन करनेसे दुःस्वप्नका नाश होताहै ॥ २ ॥ पहले गजेन्द्रमोक्षको श्रवण करो; पीछे पापनाशक दूसरी सरस्वतीकी स्तुतिको श्रवण करना ॥ ३ ॥ त्रिकूट नामक सर्वरत्नमय श्रीमान् पर्वत है, यह पर्वत भास्करकी द्युतिसे सुमेरुका पुत्र है ॥ ४ ॥ समुद्रकी तरंगें उसके ऊपर शीतलतासे वहन करतीहैं; देवता ऋषि यह उसकी सेवा करतेहैं, यह सागरको भेदकर उठाहै ॥ ५ ॥ यह श्रीमान् पर्वत अप्सराओंसे सेवित और प्रस्रवण (झरने) की परम्परासे पूर्ण है, इसके अतिरिक्त गंधर्व, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ६ ॥

तस्मात्तीर्थवरंविद्वान्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ जगामदानवोद्रष्टुंसर्वपापहरंहरिम् ॥ ४६ ॥ तस्याग्रतोजगादासौस्तवौपापप्रमोचनौ ॥ यौपुराभगवान्प्राहक्रोडरूपीजनार्द्दनः ॥ ४७ ॥ तस्मादथागाद्दैत्येंद्रःशालग्राममहाफलम् ॥ यत्रसंनिहितोविष्णुःस्तंभेषुस्थावरेषुच ॥ ४८ ॥ तत्रसर्वगतंविष्णुंमत्वाचक्रेरतिंबली ॥ पूजयन्भगवत्पादौमहाभागवतोमुने ॥ ४९ ॥ इयंतवोक्तामुनिसंघजुष्टाप्रह्लादतीर्थानुगतिःसुपुण्या ॥ यत्कीर्तनाच्छ्रवणात्स्पर्शनाच्चविमुक्तपापामनुजाभवंति ॥ ५० ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेप्रह्लादतीर्थयात्रानामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ नारदउवाच ॥ याञ्जप्यान्भगवद्भक्त्याप्रह्लादोदानवोजपत् ॥ गजेंद्रमोक्षणादींस्त्वंचतुरस्तान्वदस्वमे ॥ १ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुष्वकथयिष्यामिजप्यानेतांस्तपोधन ॥ दुःस्वप्ननाशोभवतियैरुक्तैःसंस्मृतैःश्रुतैः ॥ २ ॥ गजेंद्रमोक्षणंत्वादौशृणुत्वंतदनंतरम् ॥ सारस्वतौततःपुण्यौपापप्रशमनौस्तवौ ॥ ३ ॥ सर्वरत्नमयःश्रीमांस्त्रिकूटोनामपर्वतः ॥ सुतःपर्वतराजस्यसुमेरोर्भास्करद्युतेः ॥ ४ ॥ क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः ॥ उत्थितःसागरंभित्त्वादेवर्षिगणसेवितः ॥ ५ ॥ अप्सरोभिःपरिवृतःश्रीमान्प्रस्रवणाकुलः ॥ गंधर्वैःकिन्नरैर्यक्षैःसिद्धचारणगुह्यकैः ॥ ६ ॥

विद्याधर और संयत (नियमसहित) तपस्वी और वृक (भेड़िये) गजेन्द्र इत्यादिके युक्त होनेसे उसकी परमशोभा उत्पन्न होरही है॥ ७॥ नागकेशर, कनेर, बेल, आमले,
पाटल, आम, नील, कदम्ब, चंदन, अगर, चम्पक ॥ ८ ॥ शाल, ताल, तमाल, सरल, अर्जुन, पर्पट और अन्यान्य विविध प्रकारके वृक्षोंके संसर्गसे वह अत्यन्तही
विराजमान है ॥ ९ ॥ नानाप्रकारके गैरिकादि धातुओंसे विभूषित चारों ओर झरनोंके जलसे व्याप्त विस्तीर्ण शिखर भाग और पत्थरोंसे परिपूर्ण तीन शृङ्गोंसे
शोभायमान है ॥ १० ॥ मृग, शाखामृग, (बन्दर) सिंह और सदा मदमातंग सब उसमें विचरण और जीवञ्जीवक संपूर्ण चरनेवाले प्राणी और चकोर, मोर इत्या
दिक उसके ऊपर शब्द कररहे थे ॥ ११ ॥ उसके एकशृंगके ऊपर तो सूर्यभगवान् विराजमान थे, यह शृंग विविधप्रकारके फूलोंसे आच्छादित और विविधभाँतिकी

विद्याधरैःसपत्नीकैःसंयतैश्चतपस्विभिः ॥ वृकद्वीपगजेंद्रैश्चधृतगात्रोविराजते ॥ ७ ॥ पुन्नागैःकर्णिकारैश्चबिल्वामलकपाटलैः ॥ चूतनीपकदंबैश्चचंदनाग
रुचंपकैः ॥ ८ ॥ शालैस्तालैस्तमालैश्चसरलार्जुनपर्पटैः ॥ तथान्यैर्विविधैर्वृक्षैःसर्वतःसमलंकृतः ॥ ९ ॥ नानाधात्वंकितैःशृंगैःप्रस्रवद्भिःसमंततः ॥ शो
भितोरुचिरप्रस्थैस्त्रिभिर्विस्तीर्णसानुभिः ॥ १० ॥ मृगैःशाखामृगैःसिंहैर्मातंगैश्चसदामदैः ॥ जीवंजीवकसंघुष्टैश्चकोरशिखिनादितैः ॥ ११ ॥ तस्यै
कंकांचनंशृंगंसेवतेयद्दिवाकरः ॥ नानापुण्यसमाकीर्णनानागंधादिवासितम् ॥ १२ ॥ द्वितीयंराजतंशृंगंसेवतेयन्निशाकरः ॥ पांडुरांबुदसंकाशंतथार
त्नचयोपमम् ॥ १३ ॥वज्रेंद्रनीलवैडूर्यैतेजोभिर्भासयन्दिशः ॥ तृतीयंब्रह्मसदनंप्रहृष्टंशृंगमुत्तमम् ॥ १४ ॥ नतत्कृतघ्नाःपश्यंतिनृशंसानैवराक्षसाः ॥
नातप्ततपसोलोकेयेचपापकृतोजनाः ॥ १५ ॥ तस्यसानुमतःपृष्ठेसरःकांचनपंकजम् ॥ कारंडवसमाकीर्णराजहंसोपशोभितम् ॥ १६ ॥ कुमुदो
त्पलकह्लारैःपुंडरीकैश्चशोभितम् ॥ कमलैःशतपत्रैश्चकांचनैःसमलंकृतम् ॥ १७ ॥

गंधादिसे शोभायमान था ॥ १२ ॥ उसका दूसरा शृंग रजतमय है, चंद्रमा उसमें विराजमान हैं, वह सिंह पांडुवर्ण मेघकी समान प्रकाशमान रत्नोंके समूहकी
समान चमकीला है ॥ १३ ॥ और वज्र इन्द्रनील और वैदूर्य इन सबके तेजसे दशों दिशायें प्रकाशमान कररहाहै, वह शृंग प्रकृष्ट हर्षमय तीसरा ब्रह्मभवनके
तुल्य है ॥ १४ ॥ कृतघ्नी मनुष्य उसे नहीं देखसकते, नृशंसी मनुष्यभी उसके देखनेमें समर्थ नहीं होते, राक्षसोंकोभी उसके दर्शन करनेकी सामर्थ्य नहीं है.
जो पापी हैं, जिन्होंने तपस्या नहीं की है वेभी इसे नहीं देखसकते ॥ १५ ॥ उस पर्वतकी पीठपर सुवर्णके कमलसे विभूषित एक सरोवर है, वह कारण्डव
(पक्षीविशेष) और राजहंसोंसे शोभायमान है ॥ १६ ॥ बबूले उत्पल (नील कमल) कह्लार (रक्तकमल) और पुण्डरीक (श्वेतकमल) इन सबसे

अलंकृत कनकमयकमल (सहस्रपत्र)और शतपत्रोंसे शोभायमान ॥ १७ ॥ मरकतमणितुल्यकांति, पत्रों और सुवर्णसदृश फूलोंसे तथा नानाप्रकारकी
बेलैं और बाँसके परस्परसे युक्त ॥ १८ ॥ उस सरोवरमें दुष्टात्मा महाबलवान् कोई ग्राह जलके भीतर निवास करता था, गजेन्द्र उसे किसीप्रकारभी न पकड़
सका ॥ १९ ॥ किसीसमय दन्तोज्वलशरीरयुक्त मदस्रावी गजयूथपति स्नान और जलपान करनेके अभिलषित हो पादचारी पर्वतकी समान ॥ २० ॥ और
साक्षात् ऐरावतकी समान ऊँचा महासुगंधसे सम्पूर्ण पर्वतको सुगंधित कर अंजनकी समान वर्ण शरीरके मदसे उन्मत्त हो नेत्रोंको घुमाता हुआ ॥ २१ ॥
प्यासके वशसे उस सरोवरके जलमें उतरा और यूथोंके बीचमें स्थित हो शीघ्रतासे पद्मके बीचमें विहार करनेलगा ॥ २२ ॥ उस अव्यक्तमूर्ति भयंकर

पत्रैर्मरकतप्रख्यैःपुष्पैःकांचनसन्निभैः ॥ गुल्मैःकीचकरेणूनांसमंतात्परिवेष्टितम् ॥ १८॥ तस्मिन्सरसिदुष्टात्मानिगूढोंतर्जलेशयः ॥ आसीद्ग्राहोगजेंद्राणां
दुराधर्षोमहाबलः ॥ १९ ॥ अथदंतोज्ज्वलवपुःकदाचिद्गजयूथपः ॥ मदस्रावीजलाकांक्षीपादचारीवपर्वतः ॥ २० ॥ वासयन्मदगंधेनगिरिमैरावतोपमः ॥
सगजोञ्जनसंकाशोमदाघूर्णितलोचनः ॥ २१ ॥ तृषितःस्नातुकामोऽसाववतीर्णश्चतज्जलम् ॥ सलीलःपंकजवनेयूथमध्यगतस्त्वरन् ॥ २२॥ गृहीतस्तेनरौ
द्रेणग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना ॥ पश्यंतीनांकरेणूनांक्रोशंतीनांचदारुणम् ॥ २३ ॥ ह्रियतेपंकजवनेग्राहेणातिबलीयसा ॥ गजआकर्षतेतीरंग्राहआकर्षतेजलम् ॥
॥ २४ ॥ तयोर्दिव्यंमहायुद्धंजातंवर्षसहस्रकम् ॥ वारुणैःसंयुतःपाशैर्निष्प्रयत्नगतिःकृतः ॥ २५ ॥ वेष्टयमानःसुघोरैस्तुपाशैर्नागोदृढैस्तथा ॥ विस्फूर्य
चयथाशक्तिविक्रोशंश्चमहारवान् ॥ २६ ॥ व्यथितःसन्निरुच्छ्वासोगृहीतोघोरकर्मणा ॥ परमामापदंप्राप्यमनसाचिंतयद्धरिम् ॥ २७ ॥ सतुनागवरः
श्रीमान्नारायणपरायणः ॥ तमेवशरणंदेवंगतःसर्वात्मनातदा ॥ २८ ॥

ग्राहने उस अवस्थामें उसे पकड़ा, सब हथिनियें यह चरित्र देखकर दारुणस्वरसे चीत्कारशब्द कर उठीं ॥ २३ ॥ अत्यन्त बलवान् ग्राह उसे कीचड़मेंको ले जानेलगा
वह गज तो उसे किनारेकी ओर खैंचता और ग्राह उसे अपनी ओर जलके बीचको ले जानेलगा ॥ २४ ॥ इसप्रकारसे दोनोंने भयंकर युद्ध करके हजार वर्ष व्यतीत
किये, तब ग्राहने गजको वरुणपाशमें बाँधकर निष्प्रयत्न गति करदी ॥ २५ ॥ गजपति अत्यन्त भयंकर और अत्यन्त दुर्भेद्य पाशसे बँधकर यथाशक्ति फुंकारें
छोड़ता हुआ महास्वरसे चीत्कार करनेलगा ॥ २६ ॥ घोरकर्मके वशसे गृहीत और व्याकुल होकर क्रमसे उद्योगशून्य होगया और जिसका अंत नहीं है,
इतना खेदित हो मनहीमनमें नारायणका स्मरण करनेलगा ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त वह श्रीमान् नागश्रेष्ठ नारायणकी शरण हो अंतःकरणसे उसीसमय उसने

उस भगवान्‌की शरण ली ॥ २८ ॥ जन्मजन्मान्तरोंके किये सुकर्मके अभ्यासवशसे भगवान् गरुड़ध्वजमें उसकी भक्तिका आविर्भाव हुआ, उसी भक्तिके वशसे
अंतःकरण अत्यन्त शुद्ध होगया, वह एकात्माभी अनुगृहीतात्मा होकर ॥ २९ ॥ आद्यदेव महादेव केशवकी उसने पूजाकी, उन्मथित अमृतफेनकी समान प्रतिभा
युक्त शंखचक्रयुक्त गदाधारी ॥ ३० ॥ और हजार २ शुभनामसे अलंकृत और सर्वव्यापी आदिदेव, अज, विभु इन नामोंसे अभिहित भगवान्‌के उद्देशसे वह
गजपति शूँड़के आगे कांचन कमलको ग्रहणकर भगवान्‌की पूजा कर आपत्तिसे छूटनेकी इच्छासे इन वचनसे स्तुति करनेलगे ॥ ३१ ॥ तुम मूलप्रकृति, तुम
अजित हो, तुम विराट्स्वरूपहो, तुम्हैं नमस्कार है. तुम्हारा आश्रय नहीं, स्पृहा नहीं तुम स्वप्रकाशहो तुमको वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ३२ ॥ तुम सबकी आदि

एकात्मानुगृहीतात्माविशुद्धेनान्तरात्मना॥ जन्मजन्मांतराभ्यासाद्भक्तिमान्गरुडध्वजे॥ २९ ॥ आद्यंदेवंमहादेवंपूजयामासकेशवम् ॥ मथितामृतफेनाभं
शंखचक्रगदाधरम् ॥ ३० ॥ सहस्रशुभनामानमादिदेवमजंविभुम् ॥ प्रगृह्यपुष्कराग्रेणकांचनंकमलोद्भवम् ॥ आपद्विमोक्षमन्विच्छन्गजःस्तोत्रमुदीरयत्॥
॥ ३१ ॥ गजेंद्रउवाच ॥ ॐनमोमूलप्रकृतयेअजितायमहात्मने ॥ अनाश्रितायदेवायनिःस्पृहायनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ नमआद्यायवामायआर्षायादिप्रव
र्तिने ॥ अनंतरायचैकायअव्यक्तायनमोनमः ॥ ३३ ॥ नमोगुह्यायगूढायगुणायगुणवर्तिने ॥ अतर्क्यायाप्रमेयायअतुलायनमोनमः ॥ ३४ ॥ नमः
शिवायशांतायनिश्चिंतराययशस्विने ॥ सनातनायपूर्वायपुराणायनमोनमः ॥ ३५ ॥ नमोस्तुतस्मैदेवायनिर्गुणायगुणात्मने ॥ नमोजगत्प्रतिष्ठायगो
विंदायनमोनमः ॥ ३६ ॥ नमोस्तुपद्मनाभायसांख्ययोगोद्भवायच ॥ विश्वेश्वरायदेवायशिवायहरयेनमः ॥३७॥ नमोस्तुतस्मैदेवायनिर्गुणायगुणात्मने ॥
नारायणायविश्वायदेवायपरमात्मने ॥ ३८ ॥

तुम वामनस्वरूप, तुम ऋषियोंके परमसहायक, तुम आदिप्रवर्तीहो तुमको नमस्कार है, तुम्हारा अन्त नहीं और किसी प्रकारका प्रकाश नहीं, तुम अद्वितीयस्वरूपहो
तुमको नमस्कार करताहूं ॥ ३३ ॥ तुम गुह्य और गूढ़स्वरूप हो तुम गुण और गुणवर्ती हो तुम तर्कके अतीतहो, इसके बहिर्भूत और तुलनाके विषय नहीं हो तुमको
वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ३४ ॥ तुम शिवस्वरूप और शान्तस्वरूपहो तुम चिन्ताके अतीत और परमकीर्तिमान्‌हो तुमको नमस्कार है, तुम सनातन और
पुराणस्वरूपहो तुमको नमस्कार है नमस्कार हैं ॥ ३५ ॥ तुम निर्गुण और गुणात्माहो तुमको नमस्कार है तुम जगत्‌के पालकहो और गोविन्दहो तुमको नमस्कारहै
नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ तुम पद्मनाभ और सांख्ययोगके उद्भावकहो, तुम विश्वेश्वरहो तुम शिवस्वरूप हरिहो तुम्हैं नमस्कार है ॥ ३७ ॥ तुम विश्वरूपहो, तुम परमात्मा

भगवान् नारायणहो तुमको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ तुम कारण वामनस्वरूपहो, तुम अमितविक्रमहो तुम नारायणहो तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ तुम शार्ङ्गचक्रगदाधर तुम पुरुषोत्तमहो तुमको नमस्कार है. तुम गुह्य, वेदनिलय, तुम वासुकि, तुम नृसिंह, तुम दैत्यनिषूदनहो, तुम चतुर्भुजहो, ब्रह्मा, इन्द्र, मुनि, चारण यह तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हीं देवताओंके अग्रणीय तुम सबके अच्युतस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ४० ॥ तुम शेषफणाके मध्यमें शयन करतेहो, तुम सबके परमप्रीतिपात्रहो, तुम गोक्षीरकी समान कांतिमान्हो, तोतेके समान वर्ण और नीले मेघोपमहो, तुम पीताम्बर मधुकैटभनिषूदन, विष्पाद्य, चारुमुकट और अक्षरस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ चतुर्मुखतुम्हारी नाभिकमलमें विराजमान है, क्षीरसमुद्र तुम्हारे स्थान है, तुम नानाप्रकार के विचित्र कांचनसे युक्तहो, तुम सबके ईश्वर और सबके

नमोनमःकारणवामनायनारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधरायनमोस्तुतस्मैपुरुषोत्तमाय ॥ ३९ ॥ गुह्यायवेदनिलयायमहोरगायसिंहाय दैत्यनिधनायचतुर्भुजाय ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुतायदेवोत्तमायसकलायनमोऽच्युताय ॥ ४० ॥ नागेंद्रभोगशयनायचसुप्रियायगोक्षीरहेमशुकनीलघनोपमाय ॥ पीतांबरायमधुकैटभनाशनायविश्वाद्यचारुमुकुटायनमोऽक्षराय ॥ ४१ ॥ नाभिप्रजातकमलस्थर्खायसुक्षीचतुरोदकार्णवनिकेतयशोधराय ॥ नानाविचित्रकनकांगदभूषणायसर्वेश्वरायवरदायनमोवराय ॥ ४२ ॥ भक्तिप्रियायवरदीप्तसुदर्शनायदेवेंद्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय ॥ फुल्लारविंदविमलायतलोचनाययोगेश्वरायवरदायनमोवराय ॥ ४३ ॥ ब्रह्मायनायत्रिदशायनायलोकायनायात्महितायनाय ॥ नारायणायात्मविकाशनायमहावराहायनमःसुरोऽसि ॥ ४४ ॥ कूटस्थमव्यक्तमचिंत्यरूपंनारायणंकारणमादिदेवम् ॥ युगांतशेषंपुरुषंपुरातनंतंदेवदेवंशरणंप्रपद्ये ॥ ४५ ॥ योगेश्वरंचारुविचित्रमौलिमज्ञेयमग्र्यंप्रकृतेःपरस्थम् ॥ क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवंवरेण्यंतंवासुदेवंशरणंप्रपद्ये ॥ ४६ ॥

वरदाता और वरस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ तुम भक्तिप्रिय, तुम सुदर्शनचक्रके प्रभावसे अत्यन्तही दीप्तिमान्हो, तुम देवेन्द्रके विघ्ननाश करनेके निमित्त सर्वदाही पौरुषप्रदान करतेहो, तुम्हारे नेत्र प्रफुल्ल पद्मकी समान विमल और बडे हैं, तुम योगके प्रतिष्ठाता (स्थित रखनेहारे) वरद और वरस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ तुम ब्रह्मके आश्रय, देवताओंके आश्रय, सबलोकोंके आश्रय, और आत्महितके आश्रयहो तुमको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ तुम कूटस्थ, तुम अव्यक्त, तुम अचिन्त्यरूप, तुम नारायण, तुम कारणरूपी और आदिदेवहो, तुम युगान्तशेष, पुराणपुरुषहो, तुम देवाधिदेवहो, मैंने तुम्हारी शरण ली ॥ ४५ ॥ तुम योगेश्वर और चारु विचित्र मौलियुक्तहो, तुम अज्ञेय और अनादिस्वरूपहो, और प्रकृतिके अतीतहो, तुम क्षेत्रज्ञ और आत्मभूतहो, तुम वरेण्यस्वरूप वासुदेवहो, मैंने

तुम्हारी शरण ग्रहण की ॥ ४६ ॥ तुम चिन्ताके अतीत, दृष्टिके अतीत, मनुष्योंके अतीत, विनाशके अतीत, ब्राह्मण तुमको नित्य ब्रह्ममय कहते हैं, तुम अविनाशी स्वरूप और पुरुषस्वरूपहो, देवता तुम्हारे प्राकृतस्वरूपको जाननेमें समर्थ नहीं हैं मैंने तुम्हारी शरण ली ॥ ४७ ॥ जिसको सर्वदा और अक्षर ब्रह्म कहा है, जिसके श्रवण करनेसे मृत्युके मुखमें जाना नहीं होता, जो सबके ईश्वर हैं, और परमआश्रय हैं उन अत्युत्तम गुणयुक्त सर्वथा आप्तकाम शाश्वतस्वरूप विष्णुकी मैंने शरण ली ॥ ४८ ॥ जो कार्य, क्रिया और कारणस्वरूप हैं, जिनका परिमाण निश्चय नहीं है, जो हिरण्यनाभ और वरपद्मनाभ हैं जो महाबलदेव निधि और सुरेश्वर हैं, उन विश्वव्यापी जनार्दनकी मैंने शरण ग्रहण की ॥ ४९ ॥ जिनके सम्पूर्ण गात्रोंमें किरीट, केयूर महामूल्य निष्क और श्रेष्ठ मणियें शोभायमान हैं, जो पीताम्बरधारी और जिनका शरीर कांचनभक्तियुक्त है, उन वनमालाविभूषित केशवकी मैंने शरण ली ॥ ५० ॥ जो ॐकार योनि और वेदविद्वर्णोंके

अदृश्यमव्यक्तमचिंत्यमव्ययंब्रह्मर्षयोब्रह्ममयंसनातनम् ॥ वदंतियंवैपुरुषंसनातनंतंदेवगुह्यंशरणंप्रपद्ये ॥ ४७ ॥ यदक्षरंब्रह्मवदंतिसर्वगंनिशम्ययंमृत्युमु
खात्प्रमुच्यते ॥ तमीश्वरंतृप्तमनुत्तमैर्गुणैःपरायणंविष्णुमुपैमिशाश्वतम्॥४८॥कार्यंक्रियाकारणमप्रमेयंहिरण्यनाभंवरपद्मनाभम्॥ महाबलंदेवनिधिंसुरेशं
व्रजामिविष्णुंशरणंजनार्दनम् ॥४९॥ किरीटकेयूरमहार्हनिष्कैर्मण्युत्तमालंकृतसर्वगात्रम् ॥ पीतांबरंकांचनभक्तिचित्रंमालाधरंकेशवमभ्युपैमि ॥ ५० ॥
तारोद्भवंवेदविदांवरिष्ठंयोगात्मनांसांख्यविदांवरिष्ठम् ॥ आदित्यरुद्राश्विवसुप्रभावंप्रभुंप्रपद्येऽच्युतमादिभूतम्॥५१॥श्रीवत्सांकंमहादेवंदेवगुह्यंमनोरमम् ॥
प्रपद्येसूक्ष्ममतुलंवरेण्यमभयप्रदम् ॥ ५२ ॥ प्रभवंसर्वभूतानांनिर्गुणंपरमेश्वरम् ॥ प्रपद्येमुक्तसंगानांयतीनांपरमांगतिम् ॥ ५३ ॥ भगवन्तंगुणाध्यक्षमक्षरं
पुष्करेक्षणम् ॥ शरण्यंशरणंभक्त्याप्रपद्येभक्तवत्सलम् ॥५४॥ त्रिविक्रमंत्रिलोकेशंसर्वेषांप्रपितामहम् ॥ योगात्मानंमहात्मानंप्रपद्येऽहंजनार्दनम् ॥५५॥

अग्रणीय, जो योगात्मा और सांख्योंमें विशारद हैं, जो आदित्य, रुद्र, अश्वी और वासुदेव प्रभावयुक्त हैं, जो सबके प्रभु और आदिभूत हैं, उन्हीं अच्युतकी मैंने शरण ली ॥ ५१ ॥ जो श्रीवत्साङ्क और महादेव हैं, जो देव, गुह्य और सबके मनोहारी हैं, जो सूक्ष्मस्वरूप और अनुपमस्वरूप हैं, उन अभयप्रदाता नारायणकी मैंने शरण ली ॥ ५२ ॥ जो सर्वभूतोंके सृष्टिकर्ता गुणातीत परमेश्वरस्वरूप हैं, विमुक्तके संगमें यतियोंकी परमगति हैं, उन विष्णुभगवान्की मैंने शरण ली ॥ ५३ ॥ जो गुणाध्यक्ष अक्षरस्वरूप और पुष्करेक्षण हैं, जो सबके रक्षाकर्ता और आश्रयदाता तथा भक्तवत्सल हैं, उन्हीं भगवान्की मैंने शरण ली ॥ ५४ ॥ जो त्रिविक्रम और त्रिलोकीके ईश्वरहैं, जो सबके प्रपितामह हैं, उन्हीं योगात्मा और महात्मा जनार्दनकी मैंने शरण ली ॥ ५५ ॥

जो आदिदेव और सबके कल्याणके उद्भवक्षेत्र हैं उनका जन्म नहीं और विनाश नहीं, जो ब्राह्मणोंके प्रिय और व्यक्ताव्यक्तस्वरूप हैं, वही परमाणुस्व
रूप हैं उन्हीं नारायणकी मैंने शरण ली ॥ ५६ ॥ तुम हरहो, तुमको नमस्कार है, तुम देवदेवेशहो तुम्हारी मैंने शरण ली ॥ ५७ ॥ तुम एक और लोक तत्वस्व
रूपहो, परेसे परे परमात्मा, तुम सहस्रशिरा और विराट्रूपी अनन्तहो तुमको नमस्कार है ॥ ५८ ॥ वेदके जाननेवाले ऋषि तुम्हींको सब लोकोंका साक्षात्
परम ब्रह्मादिके परमआश्रय कहकर निर्देश करते हैं, इसकारण तुम्हीं हमारी उपस्थित विपत्तिमें एकमात्र रक्षाकर्त्ताहो ॥ ५९ ॥ हे पुंडरीकाक्ष ! तुम भक्तोंको
अभय देतेहो तुमको नमस्कार करताहूं, तुम अब्रह्मण्यस्वरूपहो तुमको नमस्कार है, मैं तुम्हारी शरण आयाहूं तुम मेरी रक्षा करो ॥ ६० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, शंख

आदिदेवमजंशंभुंव्यक्ताव्यक्तंसनातनम् ॥ नारायणमणीयांसंप्रपद्येब्राह्मणप्रियम् ॥ ५६ ॥ नमोहरायदेवायनमःसर्वमहायच ॥ प्रपद्येदेवदेवेशमणीयांसं
तनोःसदा ॥ ५७ ॥ एकायलोकतत्त्वायपरतःपरमात्मने ॥ नमःसहस्रशिरसेअनंतायमहात्मने ॥ ५८ ॥ त्वमेवशरणंदेवमृषयोवेदपारगाः ॥ कीर्तयंति
चयंसर्वेंब्रह्मादीनांपरायणम् ॥ ५९ ॥ नमस्तेपुण्डरीकाक्षभक्तानामभयप्रद ॥ अब्रह्मण्यनमस्तेऽस्तुत्राहिमांशरणागतम् ॥ ६० ॥ पुलस्त्यउवाच ॥
भक्तितस्यानुसंचिंत्यनागस्यामोघसंभवः ॥ प्रीतिमानभवद्विष्णुःशंखचक्रगदाधरः ॥ ६१ ॥ सान्निध्यंकल्पयामासतस्मिन्सरसिकेशवः ॥ गरुडस्थोजग
त्स्वामीलोकाधारस्तपोधनः ॥ ६२ ॥ ग्राहग्रस्तंगजेंद्रंतंतंचग्राहंजलाशयात् ॥ उज्जहाराप्रमेयात्मातरसामधुसूदनः ॥ ६३ ॥ जलस्थंदारयामास
ग्राहंचक्रेणमाधवः ॥ मोक्षयामासनागेंद्रंपाशेभ्यःशरणागतम् ॥ ६४ ॥ एवंहिदेवशापेनहूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥ ग्राहत्वमगमत्कृष्णान्मोक्षंप्राप्यदिवं
गतः ॥ ६५ ॥ गजोपिविष्णुनापृष्टोजातोदिव्यवपुःपुमान् ॥ पापाद्विमुक्तौयुगपद्गजगंधर्वसत्तमौ ॥ ६६ ॥ प्रीतिमान्पुंडरीकाक्षःशरणागतवत्सलः ॥
अभवत्त्वथदेवेशस्ताभ्यांचैवप्रपूजितः ॥ ६७ ॥

चक्र गदाधारी अमोघसंभव विष्णुभगवान् गजराजकी भक्ति जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ इसके उपरान्त वह लोकाधार जगत्के स्वामी गरुड़पर चढ़
कर उस सरोवरके निकट पहुँचगये ॥ ६२ ॥ इसके उपरान्त उन अमेयात्मा मधुसूदनने ग्राहसे ग्रस्त हुए गजेन्द्र और ग्राह इन दोनोंको शीघ्रतासे सरोवरमेंसे
निकाला ॥ ६३ ॥ फिर माधव विष्णुभगवान्ने अपने चक्रके प्रहारसे जलमें स्थित ग्राहको विदारित करदिया और शरणमें आये हुए गजेन्द्रको उस पाशबंधनसे
मुक्त किया ॥ ६४ ॥ गन्धर्वसत्तम हूहू देवशापसे इसप्रकार ग्राह हुएथे. भगवान् वासुदेवके प्रसादसे मोक्षको प्राप्त कर स्वर्गको गये ॥ ६५ ॥ गजेन्द्रने विष्णुके
द्वारा संस्पृष्ट होकर दिव्यदेहपुरुषकी मूर्ति धारणकी, इसप्रकारसे गज और ग्राह यह दोनों एकबारही शापसे मुक्त हुए ॥ ६६ ॥ यह देख शरणागत भक्तवत्सल

भगवान् मधुसूदन प्रसन्नहो उन दोनोंसे पूजित हुए, अर्थात् उन दोनोंने विष्णुभगवान्‌की पूजा करी ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त वह योगी नारायण शरणमें आये गजेन्द्रसे यह मधुर वचन बोले ॥ ६८ ॥ कि, जो मनुष्य मुझे तुम्हैं और इस सरोवरमें मृतक हुए ग्राहके वृत्तान्तको और इस त्रिकूटका स्मरण करेगा ॥ ६९ ॥ अथवा जो शुद्धदेह और स्थिरबुद्धि हो, अश्वत्थ, गंगा, सूर्य और नैमिषारण्य इन सबका स्मरण करेगा ॥ ७० ॥ और भक्तिपूर्वक शुचिव्रतहो इसका कीर्तन और श्रवण करेगा उसके दुःस्वम नाश हो जायँगे, और सुस्वमोंकी प्राप्ति होगी ॥ ७१ ॥ जो प्रातःकालही उठकर मात्स्य, कौर्म वाराह, वामन, तार्क्ष्य, नारसिंह और नागेन्द्र, सृष्टि और प्रलयके करनेवाले ॥ ७२ ॥ इन सबका प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य स्मरण

इदंचभगवान्योगीगजेंद्रंशरणागतम् ॥ प्रोवाचमुनिशार्दूलमधुरंमधुसूदनः ॥ ६८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योमांत्वांचसरश्चेदंग्राहस्यचविदारणम् ॥ गुल्मकीचकरेणूनांरूपंमेरुसुतस्यच ॥६९॥ अश्वत्थंभास्करंगंगांनैमिषारण्यमेवच ॥ संस्मरिष्यंतिमनुजाःप्रयाताःस्थिरबुद्धयः॥७०॥ कीर्तयिष्यंतिभक्त्याचश्रोष्यंतिचशुचिव्रताः ॥ दुःस्वप्नोनश्यतेतेषांसुस्वप्नश्चभविष्यति ॥७१ ॥ मात्स्यंकौर्मंचवाराहंवामनंताक्ष्यंमेवच ॥ नारसिंहंचनागेंद्रंसृष्टिप्रलयकारकम् ॥ ॥ ७२ ॥ एतानिप्रातरुत्थायसंस्मरिष्यंतियेनराः ॥ सर्वपापैःप्रमुच्यंतेपुण्याँल्लोकानवाप्नुयुः ॥ ७३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशोगजेंद्रंगरुडध्वजः ॥ स्पर्शयामासहस्तेनगजंगंधर्वमेवच ॥७४॥ ततोदिव्यवपुर्भूत्वागजेंद्रोमधुसूदनम् ॥ जगामविष्णुंशरणंनारायणपरायणः ॥७५ ॥ ततोनारायणःश्रीमान्मोक्षयित्वागजोत्तमम् ॥ पापंबंधाच्चशापाच्चग्राहंचाद्भुतकर्मकृत् ॥ ७६ ॥ ऋषिभिःस्तूयमानश्चदेवगुह्यपरायणैः ॥ ततःसभगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिःप्रभुः ॥ ७७ ॥ गजेंद्रमोक्षणंदृष्ट्वादेवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ववंदिरेमहात्मानंप्रभुंनारायणंहरिम् ॥ ७८ ॥ महर्षयश्चारणाश्चदृष्ट्वागजविमोक्षणम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनाःसंस्तुवंतिजनार्दनम् ॥ ७९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्माचक्रपाणेर्विचेष्टितम् ॥ गजेंद्रमोक्षणंदृष्ट्वाइदंवचनमब्रवीत् ॥ ८० ॥

करेगा, वह सब पापोंसे छूटकर पुण्यलोकको प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, गरुडध्वज हृषीकेशने गजेन्द्रसे इसप्रकार कहकर अपने हाथोंसे गजेन्द्र और ग्राहरूपी गंधर्व इन दोनोंको स्पर्श किया ॥ ७४ ॥ तब नारायणपरायण गजेन्द्र दिव्यमूर्ति धारणकर मधुसूदन विष्णुकी शरण हुआ ॥ ७५ ॥ अद्भुतकर्मा श्रीमान् नारायणने इसप्रकारसे गजोत्तमको बंधनसे मुक्तकर ग्राहकोभी शापसे उद्धार किया ॥ ७६ ॥ देवगुह्यकपरायण ऋषि उनकी स्तुति करनेलगे, वह भगवान् दुर्ज्ञेयगति सबके नियन्ता हैं ॥ ७७ ॥ इन्द्र इत्यादि देवताओंने गजेन्द्रको मुक्त हुआ देखकर प्रभुवर महात्मा हरिको प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ महर्षि चारणगणभी इस कृत्यको देखकर अत्यन्त विस्मितहो प्रफुल्लित नेत्रोंसे उनकी स्तुति करनेलगे ॥ ७९ ॥ प्रजापति ब्रह्माजी चक्रपाणिके इस गजेन्द्रकी मोक्षरूप कृत्यको देखकर

बोले कि, ॥ ८० ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इनका स्मरण करैगा, वह परम सिद्ध हो जायगा और दुःस्वप्नभी उसके दूर हो जाँयगे ॥ ८१ ॥ हे तपोधन !
इन कहे हुए गजेन्द्रमोक्षणको कथन करने और सुननेसे मनुष्योंके समस्त पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ८२ ॥ मुरारिका यह परमपवित्र चरित्र सर्वदा पुण्यका देनेवाला
है, इस चरित्रके कीर्तन करनेसे गजेन्द्रकी समान प्रवल पापबंधन नष्टहोजाते हैं ॥ ८३ ॥ जो अज, वरेण्य और वर पद्मनाभ, जो नारायण, ब्रह्मनिधि और सुरेश्वर हैं
जो देवगुह्य और पुराण पुरुष हैं, उन्हीं लोकपतिश्रीपतिकी मैं वंदना करताहूं ॥ ८४ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषानुवादे गजेन्द्रमोक्षणं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥
पुलस्त्यजी बोले कि, एक क्षत्रिय महाअधमथा वह स्वभावसेही घृणा (दया) शून्य और दूसरोंको पीड़ा देनेमें सर्वदाही उत्सुक रहताथा, यह क्षुद्रप्रकृति और क्रूर था,

यइदंशृणुयान्नित्यंप्रातरुत्थायमानवः ॥ प्राप्नुयात्परमांसिद्धिंदुःस्वप्नश्चविनश्यति ॥८१॥ गजेंद्रमोक्षणंपुसांसर्वपापप्रणाशनम् ॥ कथितेनस्मृतेनाथश्रुते
नचतपोधन ॥ ८२ ॥ एतत्पवित्रंपरमंसुपुण्यंसंकीर्तनीयंचरितंमुरारेः ॥ यस्मिन्किलोक्तेबहुपापबंधनाल्लभेतमोक्षंद्विरदोनुयद्वत् ॥ ८३ ॥ अजंवरेण्यं
वरपद्मनाभंनारायणंब्रह्मनिधिंसुरेशम् ॥ तंदेवगुह्यंपुरुषंपुराणंवंदाम्यहंलोकपतिंवरेण्यम् ॥ ८४ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेगजेंद्रमोक्षणं
नामपंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ कश्चिदासीद्द्विजद्रोग्धापिशुनःक्षत्रियाधमः ॥ परपीडारुचिःक्षुद्रःस्वभावादेवनिर्घृणः ॥ १ ॥
नोपासिताःसदातेनपितृदेवद्विजातयः ॥ सत्वायुषिपरिक्षीणेजज्ञेघोरनिशाचरः ॥ २ ॥ तेनासौकर्मदोषेणस्वेनपापकृतांवरः ॥ क्रूरैश्चक्रेतदावृत्तिंराक्षसत्वा
द्विशेषतः ॥ ३ ॥ तस्यपापरतस्यैवंजग्मुर्वर्षशतानितु ॥ तेनैवकर्मदोषेणनान्यावृत्तिररोचत ॥ ४ ॥ यंयंपश्यतिसत्त्वंसतंतमादायराक्षसः ॥ चखादरौ
द्रकर्मासौबाहुगोचरमागतम् ॥ ५ ॥ एवंतस्यातिदुष्टस्यकुर्वतःप्राणिनांवधम् ॥ जगामसुमहान्कालःपरिणामंतथावयः ॥ ६ ॥ सकदाचित्तपस्यंतंददर्श
सरितस्तटे ॥ महाभागह्यूर्ध्वभुजंयथावत्संजितेंद्रियम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मणोंसे विद्रोह करताथा ॥ १ ॥ उसने कभी पितृ, देवता और ब्राह्मणोंकी उपासना (पूजा) नहीं की, उसी कारणसे आयुके क्षय होनेपर घोर निशाचर होकर जन्म
लिया ॥ २ ॥ यह पाप करनेवालोंमें अग्रणीय था, अपने कर्मोंके दोषसेही राक्षस होकर क्रूरबुद्धि हुआ, इसप्रकार पापमें रतहो हजार वर्ष व्यतीत होगये, इसप्रकार
कर्मके दोषसेही अन्यवृत्तिमें इनकी रुचि नहीं थी ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह जिस प्राणीको अपनी भुजाके निकट आया देखता था उसी समय उसे पकड़कर भक्षण कर जाता
था ॥ ५ ॥ इसप्रकारसे रौद्रकर्मा अत्यन्त दुष्टप्रकृति इसने राक्षस होकर बहुत समय व्यतीत किया, फिर साथही साथ इनकी अवस्थाभी शेष होनेपर आगई ॥
॥ ६ ॥ इसने एक समय नदीके किनारेपर जाकर देखा कि, कोई तपोनिधि महाभाग ब्राह्मण ऊपरको भुजा उठाये जितेन्द्रिय होकर तपस्या कर रहे हैं ॥ ७ ॥

वह योगाचार्य, पवित्र, दक्ष, और वासुदेवमें परायण हैं, उससमय वह इन वचनोंसे अपनी रक्षा विधान कर रहे थे ॥ ८ ॥ कि, विष्णुभगवान् चक्रको धारण कर
मेरे प्राची ओरमें स्थितहो मेरी रक्षा करैं, विष्णु गदाको धारण कर दक्षिण ओरमें विराजमान हों, विष्णु शार्ङ्गधनुषको धारण कर मेरे प्रतीची ओरमें स्थित रहैं,
विष्णु खड्गको ग्रहण कर मेरे उत्तर ओरमें स्थित हों ॥ ९ ॥ हृषीकेश मेरी अग्नि आदि रविकोणकी, जनार्दन उनके सब छिद्रोंकी, सूकररूप हरि भूमिमें और
नरसिंह मेरे आकाश भागमें रक्षा करते विराजमान रहैं ॥ १० ॥ यह छुरेकी समान धारवाला अमल सुदर्शनचक्र भ्रमण कर रहा है, इसका दुष्प्रेक्ष्य (देखनेके
अयोग्य) यह अंशुमाला (किरणसमूह) प्रेत और निशाचरोंका संहार करता है ॥ ११ ॥ उनकी यह गदा सहस्र किरणोंकरके युक्त ऊर्द्ध्वमुख होकर विराज

अनयारक्षयाब्रह्मन्कृतरक्षंतपोनिधिम् ॥ योगाचार्यंशुचिंदक्षंवासुदेवपरायणम् ॥ ८ ॥ विष्णुःप्राच्यांस्थितश्चक्रीविष्णुर्दक्षिणतोगदी ॥ प्रतीच्यांशार्ङ्गधृ
ग्विष्णुर्विष्णुःखड्गीममोत्तरे ॥ ९ ॥ हृषीकेशोविकोणेषुतच्छिद्रेषुजनार्दनः ॥ क्रोडरूपीहरिर्भूमौनरसिंहोऽम्बरेमम ॥ १० ॥ क्षुरान्तममलंचक्रंभ्रमत्ये
तत्सुदर्शनम् ॥ तस्यांशुमालादुष्प्रेक्ष्याहंतिप्रेतनिशाचरान् ॥ ११ ॥ गदाचेयंसहस्रार्चिरूर्ध्वंहंतुवृकांस्तथा ॥ रक्षोभूतपिशाचानांडाकिनीनांचशा
तनी ॥ १२ ॥ शार्ङ्गविस्फूर्जितंचैववासुदेवस्यमद्रिपून् ॥ तिर्यङ्मनुष्यकूष्मांडप्रेतादीन्हंत्वशेषतः ॥ १३ ॥ खड्गाधारोजलज्योत्स्नानिर्धूतायेममा
हिताः ॥ तेयांतुसौम्यांतांसद्योगरुडेनेवपन्नगाः ॥ १४ ॥ येकूष्मांडास्तथादैत्यायक्षायेचनिशाचराः ॥ प्रेताविनायकाःक्रूरामनुष्याजृंभकाःखगाः ॥
॥ १५ ॥ सिंहादयोयेपशवोदंदशूकाश्चपन्नगाः ॥ सर्वेभवंतुतेसौम्याविष्णुशंखरवाहताः ॥ १६ ॥ चित्तवृत्तिहरायेचयेजनाःस्मृतिहारकाः ॥ बलौजसां
चहर्तारश्छायाविभ्रंशकाश्चये ॥ १७ ॥

मान है, यह मेरेको क्लेशप्रद वृक (भेड़िये) समूहका विनाश करे और राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी इनको विनाश करने वाली हैं ॥ १२ ॥
उनकी यह परम तेजोराशि शार्ङ्गधनुष तिर्यक् (व्याघ्रादिक) मनुष्य कूष्मांड और प्रेतादि मेरे शत्रुओंका संहार करे ॥ १३ ॥ जो मेरे अहितकारी हैं वे
विष्णु भगवान्के इस खड्गधारके उज्ज्वल तेजसेही निरस्त हो गरुड़के दर्शनसे सर्पोंकी समान शोभायमान हों ॥ १४ ॥ इसके अतिरिक्त कूष्मांड, दैत्य, यक्ष
प्रेतविनायक, क्रूरमनुष्य, जृम्भिक, खग ॥ १५ ॥ सिंहादिक पशु (चतुष्पद जन्तु) दंदशूक (बुरे काटनेवाले) सर्पादिक यह सभी विष्णु भगवान्के शंखके
शब्दसेही निरस्त होकर मेरे अर्थ सौम्य मूर्तिको धारण करे ॥ १६ ॥ जो चित्तकी वृत्तिको हरण करते हैं जो स्मरणशक्तिको हरण करते हैं, जो तेज और

बलको हरण करते हैं जो छायाको हरण करते हैं ॥ १७ ॥ जो उपभोगको हरण करते हैं, अथवा जो सम्पूर्ण लक्षणोंको हरण करते हैं, वह सम्पूर्ण कूष्मांडगण विष्णुके चक्रके वेगसे हत होकर विनष्ट होजायँ ॥ १८ ॥ देवाधिदेव वासुदेवके नामको कीर्तन करनेसे हमारा बुद्धिस्वास्थ्य, मनःस्वास्थ्य और इन्द्रियस्वास्थ्य बना रहै ॥ १९ ॥ जनार्दन हरि मेरे पीछे सन्मुखमें, दक्षिणमें उत्तरमें और त्रिकोणमें विराजमान हो, वह सबके पूजनीय और नियन्ता हैं, उनका अंत नहीं, भ्रंश नहीं, वही सबके प्राणपति होते हैं ॥ २० ॥ वही परब्रह्म और वही जगत्स्वरूप हैं उस सत्यके वशसे उनके नामसंकीर्तनके प्रभावसे मेरा अशुभ क्षयको प्राप्त हो ॥ २१ ॥ वह तपोनिधि ब्राह्मण इस प्रकारसे आत्मरक्षाके अर्थ विष्णुपंजरका विधानकर स्थित हुए, राक्षस उनके सन्मुखको गया ॥ २२ ॥ परन्तु द्विजेन्द्रकी कीहुई उस

येचोपभोगहर्तारोयेचलक्षणनाशकाः ॥ कूष्मांडास्तेप्रणश्यंतुविष्णुचक्ररयाहताः ॥ १८ ॥ बुद्धिस्वास्थ्यंमनःस्वास्थ्यंस्वास्थ्यमैंद्रियकंतथा ॥ ममास्तुवासुदेवस्यदेवदेवस्यकीर्तनात् ॥ १९ ॥ पृष्ठेपुरस्तादथदक्षिणोत्तरेतथैवकोणेस्तुजनार्दनोहरिः ॥ तमीड्यमीशानमनंतमच्युतंजनार्दनंप्राणपतिंनसीदति ॥ २० ॥ यथापरंब्रह्महरिस्तथापरंजगत्स्वरूपंचसएवकेशवः ॥ ऋतेनतेनाच्युतनामकीर्तनात्प्रणाशमेतत्रिविधंममाशुभम् ॥ २१ ॥ इत्येवंचात्मरक्षार्थंकृत्वावैविष्णुपंजरम् ॥ संस्थितोसावपिबलीराक्षसःसमुपाद्रवत् ॥ २२ ॥ ततोद्विजानियुक्तयारक्षयारजनीचरः ॥ निर्धूतवेगःसहसातस्थौमासचतुष्टयम् ॥ २३ ॥ यावद्द्विजस्यदेवर्षेसमाप्तिर्वैसमाधितः ॥ ततोजप्यावसानेऽसौतंददर्शनिशाचरम् ॥ २४ ॥ दीनंहतबलोत्साहंकांदिशीकंहतौजसम् ॥ तंदृष्ट्वाकृपयाविष्टःसमाश्वास्यनिशाचरम् ॥ २५ ॥ पप्रच्छागमनेहेतुंसमाचष्टेयथागतम् ॥ स्वभावमात्मनोद्रष्टुंरक्षयातेजसोहतिम् ॥ २६ ॥ कथयित्वाचतद्रक्षःकारणंविधिवत्ततः ॥ प्रसीदेत्यब्रवीद्विप्रंनिर्विण्णःस्वेनकर्मणा ॥ २७ ॥ बहूनिपापानिमयाकृतानितथाचसंतोबहवोमयाहताः ॥ २८ ॥

विधिसे रक्षाके प्रभावसे उसी समय उसका वेग बंद होगया, हे देवर्षे ! (नारद !) जबतक उस ब्राह्मणकी समाधि समाप्त न हुई तबतक वह निशाचर इसी अवस्थामें चार महीनेतक खड़ा रहा, जपके सम्पूर्ण होनेपर उस ब्राह्मणने देखा कि, निशाचर ॥ २३ ॥ २४ ॥ तेजहीन, उत्साहहीन, बलहीन और अत्यन्त क्षीण होकर कान्दिशीक (किधर भागकर जाऊँ ऐसे विचार करता) हुआ खडा हुआ है, यह देखकर उन्होंने कृपाकर विशेषप्रकारसे धीरज दे ॥ २५ ॥ आनेका कारण पूछा, उसने ज्योंका त्यों कह सुनाया वह ऋषियोंको जिसप्रकारके स्वभावसे देखनेके निमित्त आया था उसी प्रकार रक्षाके बलसे उसका तेज नष्ट होगया है ॥ २६ ॥ वह समस्त वृत्तान्त वर्णन कर कहनेलगा कि, हे ब्रह्मन् ! प्रसन्न हो अपने कर्मोंके बलसेही मुझे यह वेदना उपस्थित हुई है ॥ २७ ॥ मैंने अनेक पाप

किये थे, अनेक साधुओंके प्राणोंकी हत्या की थी ॥ २८ ॥ अनेक स्त्रियोंकोने मैं स्वामी और पुत्रोंसे विहीन किया था, और निरपराधी बहुतसे प्राणियोंका विनाश किया था ॥ २९ ॥ अब आपके प्रसादसे उन सब पापोंसे मुक्त होनेकी अभिलाषा करता हूँ आप उन पापोंके नाश करनेके निमित्त मेरे अधर्मोंका एक बारही विनाश कीजिये ॥ ॥ ३० ॥ जिससे इन पापोंका नाश होजाय ऐसाही उपदेश देकर उसके अनुसार करनेकी आज्ञा दो ॥ ३१ ॥ द्विजश्रेष्ठ राक्षसके यह वचन सुनकर धर्म अर्थ युक्त सुप्रयोजित वचन बोले कि, हे निशाचर ! तुम क्रूरस्वभाव और असत् प्रकृतिहो, इस कारण सहसा धर्ममार्गके जाननेकी तुम्हारी ऐसी इच्छा हुई ॥ ३२ ॥ राक्षसने उत्तर दिया कि, मैं आज आपके निकट आया था, आपकी कीहुई इस रक्षाके बलसे मैं परास्त होगया हूं, हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार आपके संसर्गसेही मुझे ऐसा पवित्र वैराग्य उत्पन्न हुआ है ॥ ३३ ॥ इस रक्षाका स्वरूप क्या है और आश्रय कौन है, वह मैं नहीं जानता, जिसके संसर्गकी प्राप्तिसे मुझे ऐसी वेदना उपस्थित हुई ॥ ३४ ॥ इसकारण हे धर्मज्ञ ! आप मेरे ऊपर कृपा कर मुझपर दया करिये. हे आर्य ! जिससे मेरे पाप दूर होजाँय आपको वही करना होगा ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे महाभाग ! मुनि इसप्रकारके वचन सुन बहुतकालतक विचार कर राक्षससे यह वचन बोले ॥ ३६ ॥ तुमने अपने कर्मके वशसे व्यथित होकर उपदेशके अर्थ मुंझसे जो कहा है वह सर्वथा युक्तिसंगत है कारण कि, जब पापकी निवृत्ति होती है तभी लोकोंका उपकार होता है ॥ ३७ ॥ परन्तु मैं राक्षसोंको धर्मका उपदेश नहीं करता, इसकारण हे सौम्य ! तुम अपने वचनोंमें रतहो अन्यान्य ब्राह्मणोंसे पूँछो ॥ ३८ ॥ यह कहकर वह चलेगये, राक्षस चिन्ता करनेलगा

कृताःस्त्रियोमयाबह्व्योविधवाःपुत्रवर्जिताः ॥ अनागसांचसत्त्वानामनेकानांक्षयःकृतः ॥ २९ ॥ तस्मात्पापादहंमोक्षमिच्छामित्वत्प्रसादतः ॥ तत्पापप्रशमायालंकुरुमेधर्मनाशनम् ॥ ३० ॥ पापस्यास्यक्षयकरमुपदेशंप्रयच्छमे ॥ वचनंप्राहधर्मार्थहेतुमच्चस्वभाषितम् ॥ ३१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वानिशाटस्यद्विजोत्तमाः ॥ कथंक्रूरस्वभावस्यासतस्तवनिशाचर ॥ सहसैवसमायाताजिज्ञासाधर्मवर्त्मनि ॥ ३२ ॥ राक्षसउवाच ॥ त्वांवैसमागतोस्म्यद्याक्षिप्तोऽहंरक्षयाबलात् ॥ तवसंसर्गतोब्रह्मन्जातोनिर्वेदउत्तमः ॥ ३३ ॥ कासारक्षानतांवेद्मिवेद्मिनास्याःपरायणम् ॥ यस्याःसंसर्गमासाद्यानिर्वेदंप्रापितोवरम् ॥ ॥ ३४ ॥ त्वंकृपांकुरुधर्मज्ञमय्यनुक्रोशमावह ॥ यथापापापनोदोमेभवत्यार्यतथाकुरु ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तःसमुनिस्तदातेनचराक्षसम् ॥ प्रत्युवाचमहाभागविमृश्यसुचिरंबहु ॥ ३६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ यन्मामाहोपदेशार्थंनिर्विण्णःस्वेनकर्मणा ॥ युक्तमेतद्धिपापानांनिवृत्तिरुपकारिका ॥ ३७ ॥ करिष्येयातुधानानांनत्वहंधर्मदेशनम् ॥ तान्संपृच्छद्विजान्सौम्ययेवैप्रवचनेरताः ॥ ३८ ॥ एवमुक्त्वाययौविप्रांश्चिन्तामापचराक्षसः ॥ कथंपापापनोदःस्यादितिचिंताकुलेंद्रियः ॥ ३९ ॥

कि, किसप्रकारसे मेरे पापोंका नाश होगा, इसप्रकारका विचार करते हुए उसकी इन्द्रियें व्याकुल होगईं ॥ ३९ ॥ तब वह अत्यन्त क्षुधासे व्याकुल होनेपरभी पहलेकी समान प्राणियोंका भक्षण करनेमें प्रवृत्त न हुआ छैः दिनके पीछे एक जन्तुको भक्षण करने लगा ॥ ४० ॥ वह एक समय क्षुधासे व्याकुलहो वनमें फिर रहाथा इसी समयमें देखा कि, कोई फलाहारी ब्रह्मचारी आ रहा है ॥ ४१ ॥ राक्षसने उसी समय उस मुनिको ग्रहण किया, तब वह जीवनकी आशाको जलाञ्जलि दे उस राक्षससे शान्तिपूर्वक यह वचन बोले ॥ ४२ ॥ कि, हे अनघ ! तुम्हारा मंगलहो, तुमने जिस कार्यके निमित्त हमें पकड़ा है, सो अपना अभिप्राय कहो, मैं स्वयं उपस्थित हुआ हूं, मुझे क्या करना होगा सो आज्ञा दीजिये ॥४३॥ राक्षस बोला कि, तुम छः दिनके पीछे हमारे आहाररूपसे उपस्थित हुएहो, मैंभी

नचखादससत्त्वानिक्षुधासंबाधितोऽपिसन् ॥ षष्ठेषष्ठेतदाकालेजंतुमेकमभक्षयत् ॥ ४० ॥ सकदाचित्क्षुधाविष्टःपर्यटन्विपुलेवने ॥ ददर्शाथफलाहारमागतं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४१ ॥ गृहीतोरक्षसातेनसतदामुनिदारकः ॥ निराशोजीवितेप्राहसामपूर्वंनिशाचरम् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ भोऽनघब्रूहितत्कार्यंगृहीतोयेनहेतुना ॥ तदेवंब्रूहिभद्रंतेस्वयमस्म्यनुशाधिमाम् ॥ ४३ ॥ राक्षसउवाच ॥ षष्ठेकालेत्वमाहारःक्षुधितस्यसमागतः ॥ निष्ठुरस्यातिपापस्यनिर्घृणस्यद्विजद्रुहः ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यद्यवश्यंत्वयाचाहंभक्षितव्योनिशाचर ॥ आयास्यामितवाद्यैवनिवेद्यगरवेफलम् ॥ ४५ ॥ गुर्वर्थमेतदागत्ययत्फलग्रहणंकृतम् ॥ ममात्रनिष्ठांप्राप्तस्यफलानिविनिवेदितुम् ॥ ४६ ॥ सत्वंमुहूर्तमात्रंमामत्रैवमनुपालय ॥ निवेद्यगुरवेयावदिहागच्छाम्यहंफलम् ॥ ४७ ॥ राक्षसउवाच ॥ षष्ठेकालेनमेब्रह्मन्कश्चिद्ग्रहणमागतः ॥ प्रतिमुच्येतदेवोऽपिइतिमेपापजीविका ॥ ४८ ॥ एकएवात्रमोक्षस्यतवहेतुःशृणुष्वतम् ॥ मुंचाम्यहमसंदिग्धंयदितत्कुरुतेभवान् ॥४९॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गुरोर्यन्नविरुद्धंस्याद्यन्नधर्मोपरोधकम् ॥ तत्करिष्याम्यहंरक्षोयन्नव्रतहरंमम ॥५०॥

अत्यन्तही क्षुधासे व्याकुल होरहा हूं, मैं दयाहीन, घृणाहीन, पापात्मा और ब्राह्मणद्रोही हूं ॥४४॥ ब्राह्मण बोले कि, हे निशाचर ! यदि अवश्यही मुझे भक्षण करोगे तो मैं गुरुदेवको यह फल दे आऊँ, इतनी देर ठहर जाओ, आजही मैं लौट आऊँगा ॥ ४५ ॥ गुरुके निमित्त यहां आकर जो मैंने फलसंग्रह करे हैं, इन सबको उनके देनेके निमित्त मेरी प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ ४६ ॥ तुम एकमुहूर्तके निमित्त इस स्थानमें मेरी राह देखो, मैं इसी अवसरमें गुरुदेवको फल देकर आता हूं॥४७॥ राक्षस बोला कि, हे ब्रह्मन् ! छैः दिनमें जो मनुष्य मेरे हाथमें आता है वह चाहैं देवता क्यों न हो परन्तु फिर नहीं छूटसकता, यही हमारी पापजीविका है॥ ४८ ॥ तब आपकी मुक्तिका एक मात्र उपाय है सो श्रवण करो मैं कहता हूं, आप यदि वह करैंगे तो निःसन्देह मैं मुक्त होजाऊंगा ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण बोले यदि गुरुके

विरुद्ध न होगा, धर्मकी यदि हानि न होगी, और हमारे व्रतकीभी यदि हानि नहोगी तो मैं उसे करसकताहूं ॥ ५० ॥ राक्षस बोला कि, मैंने स्वभावसे विशेषतः जातिदोषसे विवेकहीनहो सर्वदा पाप किये हैं ॥ ५१ ॥ बाल्यावस्थासेही मेरा मन पापमें आसक्त था, धर्ममें अनुरक्त नहीं था, जिससे उन सम्पूर्ण पापोंका नाश होजाय ॥ ५२ ॥ और बालकपनके वशसे जो कर्म इस दुष्टयोनिको प्राप्तकर किया हो, हे द्विज ! उन्हींकी मुक्ति कहिये ॥ ५३ ॥ हे द्विजनंदन ! आप यदि विस्तारसहित वर्णन करैंगे तो क्षुधासे आर्त हुए; मेरे हाथोंसे छूट जाओगे ॥ ५४॥ मैं ऐसा पापी नहीं हूं कि, जो क्षुधासे आर्त हुए और तृष्णासे आर्त होनेपरभी जो उस अन्नको भोजन करता तो मुझे घृणा नहीं और दयाका लेशभी नहीं, इसीकारण छै दिनमें भक्षण करताहूं ॥ ५५ ॥ प्रचंड प्रकृति निशाचरके यह वचन कहनेपर पापमुक्तिके

राक्षसउवाच ॥ मयानिसर्गतोब्रह्मन्जातिदोषाद्विशेषतः ॥ निर्विवेकेनचित्तेनपापकर्मसदाकृतम् ॥ ५१ ॥ आबाल्यान्ममपापेषुनधर्मेषुरतंमनः ॥ तत्पापसंक्षयान्मोक्षंप्राप्नुयांयेनतत्त्वतः ॥ ५२ ॥ यानियानिचकर्माणिबालत्वाच्चरितानिच ॥ दुष्टांयोनिमिमांप्राप्यतन्मुक्तिंकथयद्विज ॥ ५३ ॥ यद्येतद्द्विजपुत्रत्वंसमाख्यास्यस्यशेषतः ॥ततःक्षुधार्तान्मत्तस्त्वंनियतंमोक्षमाप्स्यसि ॥ ५४ ॥ नचैतत्पापशीलोऽहमद्म्यन्नंक्षुत्पिपासितः ॥ षष्ठेषष्ठेनृशंसात्माभक्षयिष्यामिनिर्घृणः ॥ ५५ ॥ एवमुक्तोमुनिसुतस्तेनघोरेणरक्षसा ॥ चिन्तामवापमहतीमशक्तस्तदुदीरणे ॥ ५६ ॥ सविमृश्यचिरंविप्रःशरणंजातवेदसम् ॥ जगामज्ञानदानायसंशयंपरमंगतः ॥ ५७ ॥ यदिशुश्रूषितोवह्निर्गुरुशुश्रूषणादनु ॥ व्रतानिवासुचीर्णानिसप्तार्चिःपातुमांततः ॥ ५८ ॥ नमातरंनपितरंगौरवेणयथागुरुम् ॥ यथाहमवगच्छामितथामांपातुपावकः ॥ ५९ ॥ यथागुरुंनमनसाकर्मणामनसापिच ॥ अवजानाम्यहंतेनपातुमांतेनपावकः ॥ ॥ ६० ॥ इत्येवंमनसासत्यंकुर्वतःशपथान्मुने ॥ सप्तार्चिषासमादिष्टाप्रादुरासीत्सरस्वती ॥ ६१ ॥ साप्रोवाचद्विजसुतंराक्षसग्रहणाकुलम् ॥ माभैर्द्विजसुताहंत्वांमोक्षयाम्यद्यसंकटात् ॥ ६२ ॥ यदस्यराक्षसःश्रेयोजिह्वाग्रेसंस्थितातव ॥ तत्सर्वंकथयिष्यामिततोमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ६३ ॥

उपायके कथनमें आसक्तहो वह ब्राह्मण चिन्ता करनेलगे ॥ ५६ ॥ बहुतकाल विचारनेके पीछे अत्यन्त शंकित हो ज्ञान देनेके अर्थ अग्निकी शरण ली ॥ ५७ ॥ और बोले कि, मैंने यदि गुरुकी सेवा और अग्निकी परिचरण और सब व्रतोंको यथावत् निधान किया है तो अग्नि मेरी रक्षा करै ॥ ५८ ॥ मैंने यदि पिता माताकी अपेक्षा गुरुओंके गौरवको जाना है तो हुताशन मेरी रक्षा करै ॥ ५९ ॥ मैंने यदि मनसे वचनसे और कर्मसे गुरुदेवका निरादर नहीं किया है तो अनल मेरी रक्षा करै ॥ ६० ॥ हे मुने ! उनके मनहीमनमें इसप्रकार शपथ करनेसे अग्निके आज्ञानुसार सरस्वतीने प्रगट होकर ॥ ६१ ॥ राक्षससे पकड़े हुए व्याकुलीभूत उन ब्राह्मणकुमारसे बोले कि, हे द्विजनंदन ! तुम्हैं भय नहीं है, मैं आज तुम्हैं संकटसे छुटाऊंगा ॥ ६२ ॥ जिससे इस राक्षसका कल्याण हो, मैं तुम्हारी जिह्वाके

आगे स्थित होकर वही वृत्तान्त कहता हूं तब तुम मुक्त होंगे ॥ ६३ ॥ यह कहकर देवी सरस्वतीजी राक्षसके कल्याण साधनका उपाय बताकर अन्तर्धान होगई, राक्षस उसे न देखसका ॥ ६४ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मण सरस्वतीकी आज्ञानुसार निशाचरसे बोले कि,जिससे तुम्हाराभी कल्याण और अन्यान्य पापियोंका समस्त पापमोचन और पुण्य बढ़सकै वही कहता हूं श्रवण करो ॥ ६५ ॥ प्रातः-कालही उठकर जप करे मध्याह्न और अपराह्ण इन दोनों समयमेंभी सर्वदा जप करनेसे निःसन्देह शान्ति और पुष्टि प्राप्त होती है, इस जपके प्रकरणको सुनो ॥ ६६ ॥ हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन और जगन्नाथको प्रणाम करता हूं, वह हमारे पापोंको नष्ट करैंगे ॥ ६७ ॥ जो चराचरके गुरु और नाथ हैं, उन परमदेवता शेषशायी गोविन्दको प्रणाम करताहूं, वही हमारे पापोंको व्यपोहित करैं ॥ ६८ ॥ जो शंखी, चक्री, शार्ङ्गी और स्रग्वी (वनमालाधारी) हैं उन लक्ष्मीपतिको प्रणाम करता हूं वह हमारे पापोंको व्यपोहित करैं ॥ ६९ ॥ जो दामोदर और सर्वत्र समदर्शी हैं, जो स्तुत्योंके अभिष्टुत हैं उन अच्युत और पुंडरीकाक्षको प्रणाम करता हूं, वह मेरे पापोंको नष्ट करैं ॥ ७० ॥ जो नारायण और नर हैं, जो धराधर, जो माधव और मधुसूदन हैं उन शौरि (वासुदेवनंदन) को मैं प्रणाम करता हूं वह हमारे पापोंको नष्ट करैं ॥ ७१ ॥ जो केशव और केशिहन्ता हैं उन महाबाहु कंस और अरिष्टके निषूदन (विनाशक) को मैं प्रणाम करता हूं वह मेरे पापोंको नष्ट करैं ॥ ७२ ॥ जिनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिह्न है जो श्रीश (लक्ष्मीपति) श्रीधर श्रीनिवास हैं उन्हीं श्रीकान्तको मैं प्रणाम करता हूं वह मेरे पापोंको नष्ट करैं ॥ ७३ ॥ जो सर्वभूतोंके ईश्वर और अक्षयस्व

अदृश्यारक्षसातेनप्रोक्त्वेत्थंचसरस्वती ॥ अदर्शनंगतासोऽपिद्विजःप्राहनिशाचरम् ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ श्रूयतांतवयच्छ्रेयस्तथान्येषांचपापिनाम् ॥
समस्तपापशुद्ध्यर्थंपुण्योपचयदंचयत् ॥६५॥ प्रातरुत्थायजप्तव्यंमध्याह्नेह्नःक्षयेऽपिवा ॥ असंशयंसदाजापोजपतांपुष्टिशांतिदः ॥ ६६ ॥ ॐहरिंकृष्णं
हृषीकेशंवासुदेवंजनार्दनम् ॥ प्रणतोस्मिजगन्नाथंसमेपापंव्यपोहतु ॥६७॥ चराचरगुरुंनाथंगोविंदंशेषशायिनम् ॥ प्रणतोऽस्मिपरंदेवसमेपापंव्यपो
हतु ॥६८॥ शंखिनंचक्रिणंशार्ङ्गधारिणंस्रग्धरंपरम् ॥ प्रणतोऽस्मिपतिंलक्ष्म्याःसमेपापंव्यपोहतु॥६९॥ दामोदरमुदारंतंपुंडरीकाक्षमच्युतम् ॥ प्रणतो
ऽस्मिस्तुतंस्तुत्यैःसमेपापंव्यपोहतु ॥७०॥ नारायणंनरंशौरिंमाधवंमधुसूदनम् ॥ प्रणतोऽस्मिधराधारंसमेपापं व्येपाहतु ॥ ७१ ॥ केशवंकेशिहंतारं
कंसारिष्टनिषूदनम् ॥ प्रणतोऽस्मिमहाबाहुंसमेपापंव्यपोहतु ॥ ७२ ॥ श्रीवत्सवक्षसंश्रीशंश्रीधरंश्रीनिकेतनम् ॥ प्रणतोऽस्मिश्रियःकांतसेमपापंव्य
पोहतु ॥ ७३ ॥ यमीशंसर्वभूतानांध्यायंतियतयोक्षरम् ॥ वासुदेवमनिर्देश्यंतमस्मिशरणंगतः ॥ ७४ ॥

रूप हैं, यती लोक जिनका ध्यान करते हैं, उन्हीं अनिर्वाच्यस्वरूप वासुदेवकी मैंने शरण ली ॥ ७४ ॥ यती सबप्रकारसे मनकी गतिको अवलम्बन और निवर्तित कर जिसका ध्यान करते हैं उन्हीं वासुदेवाख्य विष्णुकी मैंने शरण ग्रहण की ॥ ॥ ७५ ॥ जो सर्वव्यापी सर्वान्तरात्मा हैं जो सबके आधार और ईश्वर हैं, परब्रह्मरूपी उन्हीं वासुदेवकी मैंने शरण ग्रहण की ॥ ७६ ॥ सुन्दर बुद्धिमान् पुरुष कर्मोंके क्षय होनेपर जिसको प्राप्त होते हैं, उन्हीं अव्यक्त और अक्षयस्वरूप स्वप्रकाश चैतन्यरूपी परमात्मा वासुदेवकी मैंने शरणली ॥ ७७ ॥ जो पुण्यपापनिर्मुक्त हैं इसकारण जिनके प्राप्त होनेसे योगी पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं करते उन्हीं वासुदेवकी मैंने शरण ली ॥ ७८ ॥ जो ब्रह्मरूपसे देवता असुर और मानुषके सहित सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं उन्हीं भगवान् अच्युतकी मैंने शरण ली ॥ ७९ ॥ जिनके

समस्तालंबनेभ्योयंव्यावृत्यमनसोगतिम् ॥ ध्यायंतिवासुदेवाख्यंतमस्मिशरणंगतः ॥ ७५ ॥ सर्वगंसर्वभूतंचसर्वस्याधारमीश्वरम् ॥ वासुदेवंपरंब्रह्मतमस्मिशरणंगतः ॥ ७६ ॥ परमात्मानमव्यक्तंयंयांतिचसुमेधसः ॥कर्मक्षयेक्षयंदेवंतमास्मिशरणंगतः ॥ ७७ ॥ पुण्यपापविनिर्मुक्तोयंप्राप्यचपुनर्भवम् ॥ नयोगिनःप्राप्नुवंतितमस्मिशरणंगतः ॥ ७८ ॥ ब्रह्मभूत्वाजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ यःसृजत्यच्युतोदेवांस्तमस्मिशरणंगतः ॥ ७९ ॥ ब्रह्मत्वंयस्यवक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदमयंवपुः ॥ वपुःप्रभोःपराजज्ञेतमस्मिशरणंगतः ॥ ८० ॥ ब्रह्मरूपधरंदेवंजगद्योनिंजनार्दनम् ॥ स्रष्टृत्वेसंस्थितंसृष्टौतंनतोऽस्मिजनार्दनम् ॥ ८१ ॥ धृतामहीहतादैत्यापरित्रातास्तथामराः ॥ येनतंविष्णुमादेश्य प्रणतोऽस्मिजनार्दनम् ॥ ८२ ॥ यज्ञैर्यजंतियंविप्रायज्ञेशंयज्ञभावनम् ॥ तंयज्ञपुरुषंविष्णुंप्रणतोऽस्मिजनार्दनम् ॥ ८३ ॥ पातालवीथीभूतानितथालोकान्निहंतियः ॥ तमंतपुरुषंरुद्रंप्रणतोऽस्मिजनार्दनम् ॥ ८४ ॥ संभक्षयित्वासकलंयथासृष्टमिदंजगत् ॥ योवैनृत्यतिरुद्रात्माप्रणतोऽस्मिजनार्दनम् ॥ ८५ ॥

मुखसे चारों वेदरूपी शरीर प्रगट हुए हैं, जिन प्रभुका परमश्रेष्ठ यज्ञरूपी शरीर है, उन्हीं विभु वासुदेवकी भैंने शरण ली ॥ ८० ॥ जो जगत्के योनि हैं, इसी कारण सृष्टिमय ब्रह्मरूपको धारण कर स्रष्टारूपसे विराजमान हैं उन्हीं भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८१ ॥ जिन्होंने पृथ्वीको धारण कर दैत्योंका संहार और देवताओंका उद्धार किया है उन्हीं सर्वव्यापी जनार्दनको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८२ ॥ ब्राह्मण यज्ञमें सहायतासे जिनका यजन करते हैं, उन्हीं यज्ञभावन यज्ञपुरुष सर्वव्यापी जनार्दनको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ॥ ८३ ॥ जो पातालनगरनिवासी संम्पूर्ण प्राणी (दैत्यदानवगण) तथा अन्यान्य लोकोंको संहार करते हैं, उन्हीं अन्तपुरुष रुद्ररूपी जनार्दको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८४ ॥ जो अपने सृष्टि कियेहुए इस दृश्यमान जगत्को सम्यक्

भक्षित कर नृत्य करते हैं, उन्हीं रुद्ररूपी जनार्दनको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८५ ॥ सुर, असुर, पितृ, यक्ष, गंधर्व और राक्षस यह सभी जिनका अंश हैं, उन्हीं सर्वगत देव जनार्दनको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ८६ ॥ सम्पूर्ण देवता और सम्पूर्ण मनुष्यजाति जिनका अंश है, उन सर्वगत जनार्दनको मैं नमस्कार करताहूँ ॥ ८७ ॥ वृक्ष और गुल्मादि पशु और मृगादि यह जिनका अंश हैं उन्हीं सर्वगतवासुदेवको मैं नमस्कार करताहूँ ॥ ८८ ॥ जिनकी अपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कोईभी नहीं है, जो विराट्रूपसे सम्पूर्ण संसारके आधार और जो अनन्त अव्ययस्वरूप हैं, और जो सर्वगत सर्वरूप हैं उन्हींको मैं नमस्कार करताहूँ ॥ ८९ ॥ अग्नि जैसे काष्ठमें अन्तर्हित रहता है वह उसी प्रकारसे सब प्राणियोंमें विराजमान हैं, वही विष्णु मेरे अशेष पापोंका क्षय करैं ॥ ९० ॥ विष्णु जैसे ब्रह्मादि चराचर जगत्स्वरूप और सर्व

सुरासुराःपितृगणायक्षगंधर्वराक्षसाः ॥ यस्यांशभूतादेवस्यसर्वगंतंनमाम्यहम् ॥ ८६ ॥ समस्तदेवाःसकलामनुष्याणांचजातयः ॥ यस्यांशभूतादेवस्यसर्वगंतंनमाम्यहम् ॥ ८७ ॥ वृक्षगुल्मादयोयस्यतथापशुमृगादयः ॥ एकांशभूतादेवस्यसर्वगंतंनमाम्यहम् ॥ ८८ ॥ यस्मान्नान्यत्परंकिंचिद्यस्मिन्सर्वंमहात्मनि ॥ यःसर्वमव्ययोऽनंतःसर्वगंतंनमाम्यहम् ॥ ८९ ॥ यथासर्वेषुभूतेषुगूढोग्निरिहदारुषु ॥ विष्णुरेवंतथापापंममाशेषंप्रणश्यतु ॥ ९० ॥ यथासर्वमयंविष्णुंब्रह्मादिसचराचरम् ॥ यच्चज्ञानपरिच्छेद्यंपापंनश्यतुमेतथा ॥ ९१ ॥ शुभाशुभानिकार्याणिरजःसत्त्वतमांसिच ॥ अनेकजन्मकर्मोत्थंपापंनश्यतुमेतथा ॥ ९२ ॥ यन्निशायांचयत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः ॥ संध्ययोश्चकृतंपापंकर्मणामनसागिरा ॥ ९३ ॥ यत्तिष्ठतायद्व्रजतायच्चशय्यागतेनमे ॥ कृतंयदशुभंकर्मकायेनमनसापिवा ॥ ९४ ॥ अज्ञानतोज्ञानतोवामदाच्चलितमानसैः ॥ तत्क्षिप्रंविलयंयातुवासुदेवस्यकीर्तनात् ॥ ९५ ॥ परदारपरद्रव्यवांछाद्रोहोद्भवंचयत् ॥ परपीडोद्भवांनिंदांकुर्वतायन्महात्मनाम् ॥ ९६ ॥ यच्चभोज्येतथापेयेभक्ष्येचोष्येविलेहने ॥ तद्यातुविलयंतोयेयथालवणभाजनम् ॥ ९७ ॥

मय एक मात्र ज्ञानके गम्य हैं उसीप्रकार उसके प्रभावसे हमारे पाप विनष्ट हों ॥ ९१ ॥ और हमारा रज सत्त्व तमोमय शुभाशुभ सम्पूर्ण कार्य अनेक जन्मके किये हुए सम्पूर्ण पाप नष्ट होजायँ ॥ ९२ ॥ मैंने मन वचन कर्मद्वारा रात्रिमें, प्रातःकालमें, मध्याह्नमें, अपराह्णमें, अथवा दोनों संध्याओंमें जो जो पाप किये हैं ॥ ९३ ॥ अथवा सोते, बैठते और जानेके समयमें जिस २ कर्मका अनुष्ठान किया है ॥ ९४ ॥ अथवा अज्ञानतासे, ज्ञानतासे, और उन्मत्ततासे विचलित चित्तहो जो जो पाप कियेहैं, वासुदेवके नामके कीर्तनके बलसे वह सम्पूर्णही लयको प्राप्त होजायँ ॥ ९५ ॥ पराई स्त्री, पराये द्रव्यकी अभिलाषासे, पराये अनिष्टकी चेष्टा पराया पीड़न और उन महात्माओंकी निन्दा कर जो पापसंचय किये हैं ॥ ९६ ॥ और जो भोजन (खाने) पान (पीने) भक्षण (चबाने) चोषण

(चूसने) इन चारों प्रकारके व्यापारमें जो पाप किये हैं, जलमें लवण भाजन (पात्र) की समान वह सभी लयको प्राप्त होजायँ ॥ ९७ ॥ बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्थाके समयमें अथवा जन्मजन्मान्तरके समयमें जो जो पाप किये हैं ॥ ९८ ॥ नारायण, गोविन्द, हरि और कृष्ण नामको कीर्तन करनेसे जलमें लवण भाजनकी समान लयको प्राप्त होजाँय ॥ ९९ ॥ विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन और कृष्णको नमस्कार नमस्कार और पुनर्वार नमस्कार करता हूँ ॥ १०० ॥ जो भावी (होनहार) नरकसे उद्धार करते हैं उन्हीं कंसारिको नमस्कार है, जो अरिष्ट; केशी चाणूर इत्यादि देवशत्रुओंके क्षयकारी हैं उनको नमस्कार है ॥ १०१ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे अतिरिक्त और कौन बलवान् है, जो कार्तवीर्यराजाका दर्पहरण करसकै ॥ १०२ ॥ और तुम्हारे अतिरिक्त और

यद्बाल्येयच्चकौमारेयत्पापंयौवनेमम ॥ वयःपरिणतौयच्चयच्चजन्मांतरेकृतम् ॥ ९८ ॥ तन्नारायणगोविंदहरिकृष्णेतिकीर्तनात् ॥ प्रयातुविलयंतोये यथालवणभाजनम् ॥ ९९ ॥ विष्णवेवासुदेवायहरयेकेशवायच ॥ जनार्दनायकृष्णायनमोभूयोनमोनमः ॥ १०० ॥ भविष्यन्नरकघ्नायनमःकंसविघातिने ॥ अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षयिणेनमः ॥ १०१ ॥ कोऽन्योबलेर्वंचयितात्वामृतेवैभविष्यति ॥ कोऽन्योबलान्नाशयितादर्पं हैहयभूपतेः ॥ १०२ ॥ कःकरिष्यतिचान्योवैसागरेसेतुबंधनम् ॥ वधिष्यतिदशग्रीवंकःसामात्यपुरःसरम् ॥ १०३ ॥ कस्त्वामृतेऽन्योनन्दस्यगोकुलेरतिमेष्यति ॥ प्रलंबपूतनादीनांत्वामृतेमधुसूदन ॥ नियंताप्यथवाशास्तादेवदेवभविष्यति ॥ १०४ ॥ जपत्येवंनरःपुण्यं वैष्णवंधर्ममुत्तमम् ॥ इष्टानिष्टप्रसंगेभ्योज्ञानतोऽज्ञानतोपिवा ॥ १०५ ॥ कृतंतेनतुयत्पापंसप्तजन्मांतरेणवै ॥ महापातकसंज्ञंवातथाचैवोपपातकम् ॥ १०६ ॥ यज्ञादीनिचपुण्यानिजपहोमव्रतानिच ॥ नाशयेद्योगिनांसर्वमामपात्रमिवांभसि ॥ १०७ ॥ नरःसंवत्सरंपूर्णंतिलपात्राणिषोडश ॥ अहन्यहनियोदद्यात्पठत्येतच्चतत्समम् ॥ १०८ ॥

कोईभी समुद्रमें सेतुका बंधन और बंधु बांधव तथा सेवकोंके साथ दशाननकाविनाश करसकता ॥ १०३ ॥ अथवा तुम्हारे अतिरिक्त कौन ऐसा है जो गोकुलमें जाकर नंदरायके निरतिशय प्रीतिको प्राप्त करासकता था। हेदेव ! हे मधुसूदन ! तुम्हारे अतिरिक्त और कोईभी प्रलम्ब और पूतना इत्यादिकका नियमन अथवा शासन नहीं करसकता था ॥ १०४ ॥ जो मनुष्य इसप्रकारसे परमपवित्र और परमश्रेष्ठ वैष्णवधर्मका जप करते हैं उन्होंने इष्ट अथवा अनिष्टके प्रसंगसे ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे इस जन्मसे लेकर सात जन्मके बीच जो कुछ पाप किये हैं ॥ १०५ ॥ वह चाहैं महापातक या उपपातकही क्यों न हों उनके वह सम्पूर्ण पाप जलके स्पर्शसे कच्चे मिट्टीके बर्तनकी समान विनष्ट होजाते हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ जो मनुष्य पूर्ण सम्वत्सर षोड़श तिलपात्रोंको प्रतिदिन प्रदान

करता है; और जो मनुष्य इस वैष्णवधर्मका पाठ करता है; उनमें दोनोंही समान फलको प्राप्त होते हैं ॥ १०८ ॥ हरिके स्मरण और अविप्लुत (अखंड) ब्रह्मचर्य यह दोनोंही ब्राह्मणी विष्णुलोकको जाता है यह मैं सत्यही कहताहूँ ॥ १०९ ॥ मेरे यह वचन सर्वथा सत्य हैं इसमें किंचित्भी मिथ्या नहीं, इससमय वह भगवान् मुझे मुक्त करैं. कारण कि, मेरे सर्वांग राक्षसने ग्रस्त करलिये हैं ॥ ११० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, ब्राह्मण इसप्रकार स्तुति कर फिर उसी समय राक्षसके आक्रमणसे छूटकर फिर उससे बोले ॥ १११ ॥ कि, हे भद्र ! सरस्वती कह गईं थी कि, जो कोई विष्णुके इस सारस्वतस्तोत्रको कीर्तन करैगा उससे उसके सम्पूर्ण पाप मुक्त होजायँगे ॥ ११२ ॥ सरस्वतीने अग्निकी आज्ञाके अनुसार मेरी जिह्वाग्रपर बैठकर इस स्तोत्रका वर्णन किया, इससे सम्पूर्ण लोकोंकोही शान्ति प्राप्त होती है ॥ ११३ ॥ तुम इस स्तोत्रपाठके साथ जगन्नाथ केशवकी आराधना करो, जिसकी स्तुति करनेंसे तुम्हारे पाप नष्ट होजायँगे ॥ ११४ ॥ हे निशाचर ! तुम प्रत्यह दृढ़भक्ति दिखाकर ऊपर कहे हुए स्तोत्रसे हृषीकेशकी स्तुति करो, तब तुम्हारा पापोंसे छुटकारा होगा ॥ ११५ ॥ भक्ति सहित स्तुति करनेपर वह भगवान् हरि सम्पूर्ण मनुष्योंके पातक नष्ट करते हैं ॥ इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ११६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, बलशाली श्रीमान् निशाचर उन ब्राह्मणको प्रणाम कर और उनको साथ ले तप करनेके निमित्त शालिग्रामको गया ॥ ११७ ॥ उस स्थानपर दिनरात एकलखत देवकी क्रियामें आसक्तहो और पूर्वोक्त सारस्वतस्तोत्रके पाठमें प्रवृत्त होकर तपस्या करनेलगा ॥ ११८ ॥ फिर पुरुषोत्तम जगन्नाथकी आराधना कर सबपापोंसे मुक्तहो विष्णुलोकको प्राप्त किया ॥ ११९ ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्यंसंप्राप्यस्मरणंहरेः ॥ विष्णुलोकमवाप्नोतिसत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १०९ ॥ तदेतत्सत्यमुक्तंमेनह्यल्पमपिवैमृषा ॥ राक्षसग्रस्तसर्वांगं तथामामेषमुञ्चतु ॥ ११० ॥ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ॥ एवमुच्चारितेतेनमुक्तोविप्रस्तुरक्षसा ॥ अकामेनद्विजोभूयस्तमाहरजनीचरम् ॥ १११ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एतद्भद्रमयाख्यातंतवपातकनाशनम् ॥ विष्णोःसारस्वतंस्तोत्रंयद्यदूचेसरस्वती ॥ ११२ ॥ हुताशनेनदीप्ताचममजिह्वाग्रसंस्थिता ॥ जगादेमंस्तवंविष्णोःसर्वेषांचोशांतिदम् ॥११३॥ अनेनैवजगन्नाथंत्वमाराधयकेशवम् ॥ ततःशापापनोदंतुस्तुतेलप्स्यसिकेशवे ॥ ११४ ॥ प्रत्यहंत्वंहृषीकेशस्तवेपानेनराक्षस ॥ स्तुत्वाभक्तिंदृढांकृत्वाततःपापात्प्रमोक्ष्यसे ॥११५॥ स्तुतोहिसर्वपापानिनाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ स्तुतोहिभक्त्यानृणांससर्वपापहरोहरिः ॥११६॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःप्रणम्यतंविप्रमासाद्यचनिशाचरः ॥ तदैवतपसेश्रीमान्शालिग्राममगाद्बली ॥११७॥ अहर्निशंसएवैनंजपन्सारस्वतंस्तवम् ॥ देवक्रियारतिर्भूत्वातपस्तेपेनिशाचरः॥११८॥ समाराध्यजगन्नाथंसतत्रपुरुषोत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकमगाच्छुभम्॥११९॥

हे ब्रह्मन् ! यह मैंने आपके निकट विष्णुके सारस्वतस्तोत्रको कीर्तन किया, जो सरस्वतीजीने स्वयं ब्राह्मणके मुखपर स्थित होकर कहाथा ॥ १२० ॥ जो मनुष्य वासु
देवके इस श्रेष्ठ स्तोत्रका पाठ करैगा, उसके सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाँयगे ॥ १२१ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां सारस्वतस्तोत्रं नाम षड़शीति तमोऽध्यायः॥ ८६ ॥
पुलस्त्यजी बोले कि, हे जगन्नाथ ! तुमको नमस्कार है ! हे देवदेव ! तुमको नमस्कार है, हे वासुदेव ! तुमको नमस्कार है ! हे बहुरूप ! तुमको नमस्कार है ॥ १ ॥
हे एकशृंग ! तुमको नमस्कार है, हे श्रीनिवास ! तुमको नमस्कार है, हे भूतभावन ! तुमको नमस्कार है ॥ २ ॥ हे विष्वक्सेन ! तुमको नमस्कार है, हे नारायण ! तुमको
नमस्कार है, । हे वृषध्वज ! तुमको नमस्कार है, हे सत्यध्वज ! तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे यज्ञध्वज ! तुमको नमस्कार है, हे तालध्वज ! तुमको नमस्कार है,

एतत्तेकथितंब्रह्मन्विष्णोःसारस्वतंस्तवम् ॥ विप्रवक्त्रस्थयासम्यक्सरस्वत्यासमीरितम् ॥ १२० ॥ यएतत्परमंस्तोत्रंवासुदेवस्यमानवः ॥ पठिष्यति
ससर्वैभ्योदुःखेभ्योमोक्षमाप्स्यति ॥ १२१ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेसारस्वतस्तोत्रंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥
नमस्तेस्तुजगन्नाथदेवदेवनमोस्तुते ॥ वासुदेवनमस्तेस्तुबहुरूपनमोस्तुते ॥ १ ॥ एकशृंगनमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंवृषाकपे ॥ श्रीनिवासनमस्तेस्तुनमस्ते
भूतभावन ॥ २ ॥ विष्वक्सेननमस्तुभ्यंनारायणनमोस्तुते ॥ वृषध्वजनमस्तेस्तुसत्यध्वजनमोस्तुते ॥ ३ ॥ यज्ञध्वजनमस्तुभ्यंधर्मध्वजनमोस्तुते ॥
तालध्वजनमस्तेस्तुनमस्तेगरुडध्वज ॥ ४ ॥ वरेण्यविष्णोवैकुंठनमस्तेपुरुषोत्तम ॥ नमोजयंतविजयजयानन्तापराजित ॥५॥ कृतावर्तमहावर्तमहादेवन
मोस्तुते ॥ अनाद्याद्यंतमध्यांतनमस्तेपद्मजप्रिय ॥ ६ ॥ पुरंजयनमस्तुभ्यंशत्रुंजयनमोस्तुते ॥ धनंजयनमस्तेस्तुशुभंजयनमोस्तुते ॥ ७ ॥ सृष्टिगर्भ
नमस्तुभ्यंशुचिश्रवःपृथुश्रवः ॥ नमोहिरण्यगर्भायपद्मगर्भायतेनमः ॥ ८ ॥ नमःकमलनेत्रायकालनेत्रायवैनमः ॥ कालनाभनमस्तुभ्यंमहानाभनमो
स्तुते ॥ ९ ॥ वृष्णिमूलमहामूलमूलावासनमोस्तुते ॥ धर्मावासजलावासश्रीनिवासनमोस्तुते ॥ १० ॥

हे गरुड़ध्वज ! तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे वरेण्य ! हे विष्णो ! हे वैकुंठ ! हे पुरुषोत्तम ! तुमको नमस्कार है, हे जयन्त ! हे विजय ! हे जय ! हे अनन्त !
हे अपराजित ! तुमको नमस्कार है ॥ ५ ॥ हे कृतावर्त्त और महादेव ! तुमको नमस्कार है, हेअनादि, आदि, अन्त मध्यरहित और अनन्तस्वरूप ! हे पद्मज (ब्रह्म)
प्रिय ! तुमको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे पुरञ्जय ! तुमको नमस्कार है हे धनञ्जय ! तुमको नमस्कार है, हे शत्रुञ्जय ! तुमको नमस्कार है, हे शुभञ्जय ! तुमको
नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे सृष्टिगर्भ ! शुचिश्रवः ! पृथुश्रवः ! तुमको नमस्कार है, हे हिरण्यगर्भ ! और पद्मगर्भ ! तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे कमलनेत्र ! तुमको
नमस्कार है, हे कालनेत्र ! तुमको नमस्कार है. हे कालनाभ ! तुमको नमस्कार है, हे महानाभ ! तुमको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे वृष्णिमूल ! महामूल और मूलावास !

धर्माध्यक्षप्रजाध्यक्षलोकाध्यक्षनमोस्तुते ॥ सेनाध्यक्षनमस्तुभ्यंकालाध्यक्षनमोस्तुते ॥ ११ ॥ गदाधरश्रुतिधरचक्रधारिञ्छ्रियोधर ॥ वनमालाधरहरे
नमस्तेधरणीधर ॥१२॥ आर्ष्णिषेणमहासेननमस्तेस्तुपुरुष्टुत ॥ बहुकल्पमहाकल्पनमस्तेकल्पनामुख ॥१३॥ सर्वात्मन्सर्वगविभोविरिंचेश्वेतकेशव ॥
नमोनीलमहानीलअनिरुद्धनमोस्तुते ॥ १४ ॥ द्वादशात्मककालात्मन्सामात्मन्परमात्मक ॥ व्योमार्कात्मकसुब्रह्मन्सूक्ष्मात्मकनमोस्तुते ॥ १५ ॥
हरिकेशमहाकेशगुडाकेशनमोस्तुते ॥ मुंजकेशहृषीकेशसर्वनाथनमोस्तुते ॥१६॥ सूक्ष्मस्थूलमहास्थूलमहासूक्ष्मभयंकर ॥ श्वेतपीतांबरधरनीलवासो
नमोस्तुते ॥ १७ ॥ कुशेशयनमस्तेस्तुपद्मेशयजलेशय ॥ गोविंदप्रीतिकर्तश्चहंसपीताम्बरप्रिय ॥ १८ ॥ अधोक्षजनमस्तेस्तुशार्ङ्गध्वजजनार्दन ॥
वामनायनमस्तुभ्यंनमस्तेमधुसूदन ॥ १९ ॥ सहस्रशीर्षायनमोब्रह्मशीर्षायवैनमः ॥ नमःसहस्रनेत्रायसोमसूर्यानलेक्षण ॥२०॥ नमश्चाथर्वशिरसेमहाशी
र्षायतेनमः ॥ नमस्तेधर्मनेत्रायमहानेत्रायतेनमः ॥ २१ ॥ नमःसहस्रपादायसहस्रभुजमन्यवे ॥ नमोयज्ञवराहायमहारूपायतेनमः ॥ २२ ॥

तुमको नमस्कार है, हे धर्मावास ! और जलावास ! और श्रीनिवास ! तुमको नमस्कार है ॥ १० ॥ हे धर्माध्यक्ष ! प्रजाध्यक्ष ! और लोकाध्यक्ष ! तुमको नमस्कार है, हे सेनाध्यक्ष ! तुमको नमस्कार है, हे कालाध्यक्ष ! तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे गदाधर ! श्रुतिधर ! चक्रधर ! श्रीधर ! वनमालाधर और धरणीधर हरिहो तुमको नमस्कार है ॥ १२ ॥ हे आर्ष्णिषेण ! महासेन ! और पुरुष्टुत ! हे बहुकल्प ! महाकल्प ! और कल्पनामुख तुमको नमस्कार है॥ १३ ॥ हे सर्वात्मन् ! सर्वज्ञ ! विभो ! विरिंचि, श्वेत और केशव ! हे नील ! महानील ! और अनिरुद्ध ! तुमको नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे द्वादशात्मक ! कालात्मन् ! सामात्मन् ! परमात्मन् ! व्योमात्मन् ! अर्कात्मन् ! सुब्रह्मन् ! ! और सूक्ष्मात्मन् तुमको नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे हरिकेश ! और गुड़ाकेश ! तुमको नमस्कार है, हे मुंजकेश ! हृषीकेश ! और सर्वनाथ ! तुमको नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे सूक्ष्म ! स्थूल, महास्थूल, महासूक्ष्म ! और भयंकर, हे श्वेतपीताम्बरधर ! हे नीलवासा ! तुमको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे कुशेशय ! हे पद्मेशय ! और जलेशय ! तुमको नमस्कार है, हे गोविन्द ! हे प्रीतिकर्ता ! हे हंस ! हे पीताम्बरप्रिय ! तुमको नमस्कार है ॥ ॥ १८ ॥ हे अधोक्षज ! हे शार्ङ्गध्वज ! हे जनार्दन ! तुमको नमस्कार है, हे वामन ! तुमको नमस्कार है, हे मधुसूदन ! तुमको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे सहस्रशीर्ष ! तुमको नमस्कारहै, हेब्रह्मशीर्ष ! तुमको नमस्कारहै, हेसहस्रनेत्र ! हेसोमनेत्र ! हेसूर्यनेत्र ! हेअग्निनेत्र ! तुमको नमस्कारहै ॥ २० ॥ हे अथर्वशिरा ! हेसहस्रशिरा ! तुमको नमस्कार है, हे धर्मनेत्र ! तुमको नमस्कारहै, हे महानेत्र ! तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे सहस्रपाद ! हेसहस्रभुज ! हे यज्ञवराह ! तुमको नमस्कार है, हे महारूप ! तुमको

नमस्कार है ॥२२॥ हे विश्वेदेव ! हे विश्वसंभव ! तुमको नमस्कार है, हे विश्वरूप ! तुमसेही यह संसार आविर्भाव हुआ है, तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ तुम स्कन्ध (कंधे) पत्र अंकुर लता (वेल) उनके पल्लव इनकरके तथा मूल (जटा) पुष्पकरके उपलक्षित विशाल शाखायुक्त न्यग्रोध (वट) वृक्षहो तुमको नमस्कार है॥ २४॥ ब्राह्मण तुम्हारा मूल है, क्षत्रिय तुम्हारे स्कंध हैं, वैश्य तुम्हारी शाखा हैं, शूद्र तुम्हारी त्वचा (खाल) हैं तुम स्वयं वनस्पतिस्वरूपहो तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २५॥ अग्निसहित ब्राह्मण तुम्हारे वदनसे, शस्त्रसहित क्षत्रिय तुम्हारी भुजासे, वैश्य तुम्हारी ऊरूसे, शूद्र तुम्हारे चरणोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २६ ॥ सूर्य तुम्हारे नेत्रसे, पृथ्वी तुम्हारे चरणोंसे, दिशाएँ तुम्हारे श्रोत्रसे, आकाश तुम्हारी नाभिसे, और चंद्रमा तुम्हारे मनसे उत्पन्न हुआ है ॥ २७ ॥ वायु तुम्हारे प्राणसे, पितामह ब्रह्माजी

नमस्तेविश्वदेवायविश्वात्मन्विश्वसंभव ॥ विश्वरूपनमस्तेस्तुत्वत्तोविश्वमभूदिदम् ॥ २३ ॥ न्यग्रोधस्त्वंमहाशाखस्त्वंमूलकुसुमार्चितः ॥ स्कंधपत्रां
कुरलतापल्लवायनमोस्तुते ॥ २४ ॥ मूलंतेब्राह्मणाःस्कंधाःक्षत्रियाभवतःप्रभो ॥ वैश्याःशाखास्त्वचःशूद्रातेनमोस्तुवनस्पते ॥२५ ॥ ब्राह्मणाःसाग्नयो
वक्त्रात्सायुधाबाहुतोनृपाः ॥ पार्श्वाद्विशश्चोरुयुगाज्जाताःशूद्राश्चपादतः ॥२६॥ नेत्राद्भानुरभूत्त्वत्तःपद्भ्यांभूःश्रोत्रयोर्दिशः ॥ नाभ्याश्चाभूदंतरिक्षंशशांको
मनसस्तव ॥ २७ ॥ प्राणाद्वायुःसमभवत्कामाद्ब्रह्मापितामहः ॥ क्रोधात्त्रिणयनोरुद्रःशीर्ष्णोद्यौःसमवर्तत ॥२८॥ इंद्राग्नीवदनाज्जातौपशवोमलसंभवाः ॥
ओषध्योरोमसंभूताविरजास्त्वंनमोस्तुते ॥ २९ ॥ पुष्पहासनमस्तेस्तुमहाहासनमोस्तुते ॥ ॐकारस्त्वंवषट्कारोवौषट्त्वंचसुधास्वधा ॥ ३० ॥ स्वाहा
कारनमस्तुभ्यंहंतकारनमोस्तुते ॥ सर्वाकारनिराकारवेदाकारनमोस्तुते ॥ ३१ ॥ त्वंहिवेदमयोदेवःसर्वदेवमयस्तथा॥सर्वतीर्थमयश्चैवसर्वयज्ञमयोरसः ॥
॥ ३२ ॥ नमस्तेयज्ञपुरुषयज्ञभागभुजेनमः ॥ नमःसहस्रधारायशतधारायतेनमः ॥३३॥

तुम्हारे कामसे, त्रिणेत्र रुद्र तुम्हारे क्रोधसे, और स्वर्ग तुम्हारे शीर्षसे उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ इन्द्र और अग्निने तुम्हारे शरीरसे जन्म लिया है, पशु तुम्हारे मलसे उत्पन्न हुए हैं औषधी तुम्हारे रोमसे प्रगट हुई हैं, तुम स्वयं विरजाहो, मैं तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ तुम पुष्पहासहो तुमको नमस्कार है, तुम महाहासहो तुमको नमस्कार है, तुम ॐकारहो, तुम वषट्कार तुम वौषट्, तुम स्वधाहो ॥ ३० ॥ तुम स्वाहाकारहो तुमको नमस्कार है, तुम हन्तकारहो तुमको नमस्कार है, तुम सर्वाकार निराकर और वेदाकारहो तुमको नमस्कार है॥ ३१ ॥ तुम सर्ववेदमयहो, तुम सर्वतीर्थमय, तुम सर्वयज्ञमय, तुम साक्षात् रसस्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ तुम यज्ञपुरुषहो तुमको नमस्कार है, तुम यज्ञभागभागीहो तुमको नमस्कार है, तुम सहस्र धारहो तुमको नमस्कार है, तुम शतधारहो

तुमको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ तुम भुर्भुवः स्वः स्वरूप हो, तुम गो अमृत (मोक्ष) सुवर्ण और ब्रह्म (वेद) के दाताहो, तुम सबके धाताहो तुमको नमस्कार है॥ ३४॥ तुम ब्रह्मेशहो तुमको नमस्कार है, तुम ब्रह्म और ब्रह्मस्वरूपधरहो तुमको नमस्कार है, तुम परब्रह्महो तुमको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ तुम विद्या, तुम वैद्यरूप, तुम वंदनीय, तुम बुद्धि, तुम बोध्य और तुम्हीं बोधाहो तुमको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ तुम होता, तुम होम, हव्य हूयमान, और हव्यवाहहो, तुम पाता, पोता, पूत और पावनीयहो, तुमको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ तुम हन्ता, तुम हन्यमान और क्रियमाण हो, तुम हर्ता, नेता, नीति, पूजाग्र और विश्वधरहो ॥ ३८ ॥ तुम स्रुक् और स्रुवहो, तुम विश्वधाम, तुम कपालोलूखल, तुम अरणि, तुम यज्ञपात्र, तुम अरणेय, तुम एकधा, बहुधा और त्रिधास्वरूपहो ॥ ३९ ॥ तुम यज्ञ और यजमान, तुम

भूर्भुवःस्वःस्वरूपायगोदायामृतदायिने ॥ सुवर्णब्रह्मदात्रेचसर्वधात्रेचतेनमः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मेशायनमस्तुभ्यंब्रह्मणेब्रह्मरूपधृक् ॥ परंब्रह्मनमस्तेस्तुशब्दब्रह्म
नमोस्तुते ॥ ३५ ॥ विद्यात्वंवेद्यरूपस्त्वंवंदनीयस्त्वमेवच ॥ बुद्धिस्त्वमपिबोध्यश्चबोद्धात्वंचनमोस्तुते ॥३६॥ होताहोमश्चहव्यंचहूयमानश्चहव्यवाट् ॥
पातापोताचपूतश्चपावनीयश्चॐनमः ॥ ३७ ॥ हन्ताचहन्यमानश्चक्रियमाणस्त्वमेवच ॥ हर्तानेताचनीतिश्चपूज्योग्र्योविश्वधार्यपि ॥ ३८ ॥ स्रुक्स्रुवौवि
श्वधामासिकपालोलूखलोरणिः ॥ यज्ञपात्रारणेयस्त्वमेकधाबहुधात्रिधा ॥ ३९ ॥ यज्ञस्त्वंयजमानस्त्वमीड्यस्त्वमसियाजकः ॥ ज्ञाताज्ञेयस्तथाज्ञानं
ध्याताध्येयोऽसिचेश्वर ॥ ४० ॥ ध्यानयोगश्चयोगीचगतिर्मोक्षोधृतिःसुखम् ॥ योगांगानित्वमीशानःसर्वगस्त्वंनमोस्तुते ॥ ४१ ॥ ब्रह्माहोतातथोद्गातासो
मयूपोथदक्षिणा ॥ दीक्षात्वंत्वंपुरोडाशस्त्वंपशुःपशुहाह्यसि ॥ ४२ ॥ गुह्योधातापरमासिनरोनारायणस्तथा ॥ महाजनोनिरयणःसहस्रार्केन्दुरूपवान् ॥
॥ ४३ ॥ द्वादशारोथषण्णाभिस्त्रिव्यूहोद्विगुणस्तथा ॥ कालचक्रोमहामेधाःशंभुःशक्रःप्रभंजनः ॥ ४४ ॥

यजनीय और तुम्हीं याजकहो, तुम्हीं ज्ञाता और तुम्हीं ज्ञेय और तुम्हीं ज्ञानहो, तुम ध्याता, ध्येय ॥४०॥ और ध्यान, योग, तुम्हीं योगी, तुम्हीं गति, तुम्हीं मोक्ष, तुम्हीं धृति और तुम्हीं सुखस्वरूपहो, तुम्हीं योगांगहो, तुम्हीं ईशानहो, तुम्हीं सर्वज्ञहो, तुमको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ तुम ब्रह्मा, होता, उद्गाता, सोम, यूप और दक्षिणाहो, तुम दीक्षा, तुम पुरोडाश, तुम पशु तुम पशुहन्ताहो ॥ ४२ ॥ तुम गुह्य, तुम धाता, तुम नर और नारायणहो, तुम महाजनहो, तुम निरयणहो, तुम सहस्र अर्क और इन्द्रके समान रूपवान् हो ॥ ४३ ॥ तुम द्वादशार[1], षण्णाभी[2], त्रिव्यूह[3], द्विगुण[4] ऐसे कालचक्रस्वरूप हो, तुम महामेधा हो, तुम शम्भु, तुम

---

[1] बारहमास, यही कालचक्रके "आरा" घूमनेवाला प्रदेश है । [2] छैः ऋतु उनके नाभि (मध्यछिद्र) हैं । [3] तीन चौमासे यही उसके व्यूह घूमनेवाला धुरा हैं ।
[4] दक्षिणायन और उत्तरायण यही उसके (आवर्त्तन) हैं ।

शक्र, तुम प्रभंजन हो ॥ ४४ ॥ तुम मित्रावरुणमूर्त्ति, तुम अनघ, और शुभ स्वरूपहो, तुम प्राग्वंश[1]कायहो, तुम भूतादि, तुम महाभूत, तुम अच्युत, तुम द्विजहो ॥ ४५ ॥ तुम ऊर्द्धकेतु, तुम ऊर्द्धधर, तुम ऊर्द्धरेता हो, तुमको नमस्कारहै, तुम महापातकनिहन्ताहो, तुम उपघातकविनाशकर्ता हो ॥ ४६ ॥ तुम मुनियोंके ईश्वर हो और सर्वपाप निषूदन हो मैं तुम्हारी शरण हुआ, यह परमस्तोत्र सब प्रकारके पापोंको नाश करता है ॥ ४७ ॥ पहले महेश्वरने वाराणसीमें इस स्तोत्रका प्रचार किया, उस समय उन्होंने परमपवित्र तीर्थके जलमें स्नान कर आदिकेशवके सन्मुख हो, इस स्तोत्रका पाठ कर सब प्रकारसे शान्ति प्राप्त की थी ॥ ४८ ॥ हे महर्षे ! (नारद !) महादेवजीके कहेहुए इस स्तोत्रके पाठ करनेसे पापोंसे छूटकर उपशान्तमूर्त्ति हो विष्णुपुरमें जाता है,

मित्रावरुणमूर्तिस्त्वममूर्त्तिरनघःशुभः॥ प्राग्वंशकायोभूतादिर्महाभूतोऽच्युतोद्विजः ॥ ४५ ॥ त्वमूर्ध्वकेतोर्ध्वधरऊर्ध्व रेतानमोस्तुते ॥ महापातकहात्वं
चउपपातकहातथा ॥४६॥ मुनीशःसर्वपापघ्नस्त्वामहंशरणंगतः ॥ इत्येतत्परमंस्तोत्रंसर्वपापप्रमोचनम् ॥ ४७ ॥ महेश्वरेणकथितंवाराणस्यांपुरामुने ॥
केशवस्याग्रतोगत्वास्नात्वातीर्थोदकेशुभे ॥ ४८ ॥ उपशांतस्तदाजातोरुद्रःपापोपशांतिदम् ॥ एतत्पवित्रंत्रिपुरघ्नभाषितंपठन्नरोविष्णुपुरेमहर्षे ॥ विमुक्त
पापोप्युपशान्तमूर्तिःसंपूज्यतेदेववरैःससिद्धैः ॥ ४९ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेपापप्रशमनस्तवोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॥
पुलस्त्यउवाच ॥ द्वितीयंपापशमनंस्तवंवक्ष्यामितेमुने ॥ येनसम्यगधीतेनपापनाशंतुगच्छति ॥१॥ मत्स्यंनमस्येदेवेशंकूर्मंदेवेशमेवच ॥ हयशीर्षंनमस्ये
हंभवंविष्णुंत्रिविक्रमम् ॥ २ ॥ नमस्येमाधवेशानौहृषीकेशकुमारिलौ ॥ नारायणंनमस्येहंनमस्तेगरुडासन ॥ ३ ॥ जयेशंनरसिंहंचरूपधारंकुरुध्व
जम् ॥ कामपालमखंडंचनमस्येब्राह्मणप्रियम् ॥ ४ ॥

और देवता, सिद्ध, यह सब उनकी पूजा करते हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां पापप्रशमनस्तवो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हारे निकट यह दूसरा पापनाशकस्तोत्र वर्णन किया, इसके भलीप्रकारसे पाठ करनेपर सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ॥ १ ॥ जो देवताओंके ईश्वरहैं उन मत्स्यरूपी भगवान्को नमस्कारहै, जो देवताओंके नियन्ता हैं उन कूर्मरूपी भगवान्को नमस्कार है, जो हयग्रीव हैं, भव विष्णु और त्रिविक्रम हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं॥ २॥ जो माधव और ईशान हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं, जो हृषीकेश और कुमारिलहैं और जो नारायण हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं, हे गरुड़ासन ! तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे ईश ! तुम्हारी जय हो ! जो नरसिंह हैं, रूपधार, कुरुध्वज, कामपाल, ब्राह्मणप्रिय और

---

[1] "प्राग्वंशः प्राग्घविर्गेहाव" हविर्गृहके पूर्वभागमें स्थित जो प्राग्वंश है वही आपका शरीर है अर्थात् आप सबप्रकारसे यज्ञमूर्त्ति हो।

अखंडस्वरूप उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥ जो अजित हैं, विश्वकर्मा, पुंडरीक और द्विजप्रिय और जो हरि हैं, शंभु और प्रजापति ब्रह्मा हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ जो शूलबाहु, चक्रधर, शिव, विष्णु, सुवर्णाक्ष, गोपति और पीतवास हैं उनको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥ जो गदापाणि हैं उनको नमस्कार है, जो कुशेशय हैं उनको नमस्कार है, जो अर्द्धनारीश्वर हैं, और पापनाशन हैं उन भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ७ ॥ जो गोपाल हैं, वैकुंठ, शार्ङ्गधर, विष्णुरूप और ज्येष्ठेशय हैं उनको नमस्कार है ॥ ८ ॥ जो परम शान्तस्वरूप हैं, उन जम्बुकसहित मार्कंडेयरूपी भगवान्‌को नमस्कार करता हूं, जो पद्मकिरण हैं उनको नमस्कार है, जो वड़वामुख हैं उनको नमस्कार है, ॥ ९ ॥ जो कार्त्तिकेय, बाह्लिक और शंखधर हैं, उनको नमस्कार है, जो पद्मकिरण हैं उनको नमस्कार है,

अजितंविश्वकर्माणंपुंडरीकंद्विजाप्रियम् ॥ हरिंशंभुंनमस्येचब्रह्माणंसप्रजापातिम् ॥ ५ ॥ नमस्येशूलबाहुंचदेवंचक्रधरंतथा ॥ शिवंविष्णुंसुवर्णाक्षंगोपतिंपीतवाससम् ॥ ६ ॥ नमस्येचगदापाणिंनमस्येचकुशेशयम् ॥ अर्धनारीश्वरंदेवंनमस्येपापनाशनम् ॥ ७ ॥ गोपालंचसवैकुंठंनमस्येचापधारिणम् ॥ नमस्येविष्णुरूपंचज्येष्ठेशंपंचमंतथा ॥ ८ ॥ उपशांतंनमस्येहंमार्कंडेयंसजंबुकम् ॥ नमस्येपद्मकिरणंनमस्येवडवामुखम् ॥ ९ ॥ कार्तिकेयंनमस्येहंबाह्लिकंशंखिनंतथा ॥ नमस्येपद्मकिरणंनमस्येचकुशेशयम् ॥ १० ॥ नमस्येस्थाणुमनघंनमस्येवनमालिनम् ॥ नमस्येलांगलीशंचनमस्येहंश्रियःपतिम् ॥ ११ ॥ नमस्येचत्रिणयनंनमस्येहव्यवाहनम् ॥ नमस्येचत्रिसौवर्णंनमस्येधरणीधरम् ॥ १२ ॥ त्रिणाचिकेतंब्रह्माणंनमस्येशशिभूषणम् ॥ कपर्दिनंनमस्येचसर्वामयविनाशनम् ॥ १३ ॥ नमस्येशशिनंसूर्यंध्रुवंरुद्रंमहौजसम् ॥ पद्मनाभंहिरण्याक्षंनमस्येस्कंदमव्ययम् ॥ १४ ॥ नमस्येहंभीमहंसौनमस्येहाटकेश्वरम् ॥ सदाहंसंनमस्येचनमस्येघ्राणतर्पणम् ॥ १५ ॥

जो कुशेशय हैं उनको नमस्कार है ॥ १० ॥ जो स्थाणु और अनघ हैं उनको नमस्कार है, जो वनमाली हैं उनको नमस्कार है, जो लांगलीश हैं उनको नमस्कार है, जो श्रीपति हैं उनको नमस्कार है ॥ ११ ॥ जो त्रिनयन हैं उनको नमस्कार है, जो हव्यवहन हैं उनको नमस्कार है, जो त्रिसौवर्ण हैं उनको नमस्कार है, जो धरणीधर हैं उनको नमस्कार है, जो त्रिणाचिकेत, शशिभूषण और ब्रह्मा हैं उनको नमस्कार है, जो सर्वरोगविनाशन कपर्दी हैं उनको नमस्कार है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जो शशि, सूर्य, रुद्र, पद्मनाभ, हिरण्याक्ष, स्कंद और अव्ययस्वरूप हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥ जो भीम और हंस हैं उनको नमस्कार करता हूं, जो हाटकेश्वर हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं, जो हंसरूप हैं, उनको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूं, जो घ्राणतर्पण हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १५ ॥

नमस्येरुक्मकवचंमहायोगिनमीश्वरम् ॥ नमस्येश्रीनिवासंचनमस्येपुरुषोत्तमम् ॥ १६ ॥ नमस्येचचतुर्बाहुंनमस्येचसुधाधिपम् ॥ वनस्पतिंमधुपतिंनमस्येमनुमव्ययम् ॥ १७ ॥ श्रीकंठंवासुदेवंचनीलकंठंसदाशिवम् ॥ नमस्येशर्वमनघंगौरीशंलकुडेश्वरम् ॥ १८ ॥ मनोहरंचकृष्णेशंनमस्येचक्रपाणिनम् ॥ यशोधनंमहाबाहुंनमस्येचकुशाप्रियम् ॥ १९ ॥ भूधरंछादितगदंसुनेत्रंसुरशंसितम् ॥ भद्राक्षंवीरभद्रंचनमस्येशंकुकार्णिनम् ॥ २० ॥ वृषध्वजंमहेशंचविश्वमित्रंशशिप्रभम् ॥ उपेंद्रंचसगोविंदंनमस्येपंकजाप्रियम् ॥ २१ ॥ सहस्राशिरसंदेवंनमस्येकुंदमालिनम् ॥ कालाग्निरुद्रदेवेशंनमस्येकृत्तिवाससम् ॥२२॥ नमस्येछागलेशंचनमस्येपंकजासनम् ॥ सहस्राक्षंकोकनदंनमस्येहरिशंकरम्॥२३॥अगस्त्यंगरुडंविष्णुंकपिलंब्रह्मवाङ्मयम् ॥ सनातनंचब्रह्माणंनमस्येब्रह्मतत्परम् ॥ २४ ॥ अप्रतर्क्यंचतुर्बाहुंसहस्रांशुंतपोमयम् ॥ नमस्येधर्मराजानंदेवंगरुडवाहनम् ॥ २५॥ सर्वभूतगतंशांतंनिर्मलंसर्वलक्षणम् ॥ महायोगिनमव्यक्तंनमस्येपापनाशनम् ॥ २६ ॥ निरंजनंनिराकारंनिर्गुणंनिलयंपदम् ॥ नमस्येपापहर्तारंशरण्यंशरणंव्रजे ॥ २७ ॥

जो रुक्मकवच हैं, महायोगी और ईश्वर हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं, जो श्रीनिवास हैं उनको नमस्कार है, जो पुरुषोत्तम हैं उनको नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो चतुर्बाहु हैं उनको नमस्कार है, जो वसुधाधिप हैं उनको नमस्कारहै, जो वनस्पति, मधुपति, मनु और अव्ययस्वरूप हैं उनको नमस्कार है ॥ १७ ॥ जो श्रीकंठवासुदेव और नीलकंठ सदाशिव हैं, जो सर्व स्वरूप और अपापविद्ध हैं जो गौरीश्वर और लकुटेश्वर हैं उनको नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो मनोहर कृष्ण और ईश्वरस्वरूप हैं, जो चक्रपाणि हैं उनको नमस्कार है, जो महाबाहु और कुशेशय हैं उनको नमस्कार है ॥ १९ ॥ जो भूधर हैं, छादितगद और सुनेत्र और सुरशंसित जो भद्राख्य हैं, वीरभद्र और शंकुकर्ण हैं उनको नमस्कार है ॥ २० ॥ जो वृषध्वज, महेश्वर, विश्वामित्र और शशिप्रभ हैं, जो उपेन्द्र हैं, गोविन्द और पंकजप्रिय हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ जो सहस्रशिरा और कुन्दमाली है उनको नमस्कार है, तुम कालाग्निहो, रुद्र देवेश और कृत्तिवासहो तुमको नमस्कार है ॥ २२ ॥ तुम छागलेशहो तुमको नमस्कार है, तुम पंकजासनहो तुमको नमस्कार है, तुम सहस्राक्षहो, कोकनद और हरि शंकरहो तुमको नमस्कार है ॥ ॥ २३ ॥ तुम अगस्त्य, गरुड़, विष्णु, कपिल, ब्रह्म और वाङ्मयहो तुमको नमस्कार है तुम सनातन, ब्रह्मा, और ब्रह्म तत्परहो ॥ २४ ॥ तुम अप्रतर्क्य, चतुर्बाहु, सहस्रांशु और तपोमयहो, तुम धर्मराज देव और गरुड़वाहनहो तुमको नमस्कार है ॥ २५ ॥ तुम सर्वभूतगत, शान्त, निर्मल और सर्वलक्षणसम्पन्नहो, तुम महायोगी अव्यक्त और पापनाशहो तुमको नमस्कार है ॥ २६ ॥ तुम निरंजन निर्विकार, निर्गुण, निलय और पदस्वरूपहो, तुम पापहन्ता और सबके रक्षाकर्ता

हो तुमको नमस्कार है मैंने तुम्हारी शरण ली ॥२७॥ महर्षि अगस्त्यजीने यह परमपवित्र पुराण स्तुति कीर्त्तनकी है, इसके श्रवण, कीर्त्तन और धारण करनेसे यशकी प्राप्ति और सबपापोंका विनाश होता है ॥२८॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे त्रिपाठीकृतेभाषाटीकायां द्वितीयपापनाशनस्तवो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, दानवेश्वर प्रह्लादजीके तीर्थयात्राको जानेपर विरोचनके पुत्रबलि कुरुक्षेत्रके दर्शन करनेके निमित्त गये ॥ १ ॥ ब्राह्मणपुंगव भार्गवने उस परम धर्मयुक्त तीर्थमें ब्राह्मणश्रेष्ठोंको आमंत्रण किया ॥ २ ॥ उनके द्वारा आमंत्रितहो आत्रेय, गौतम, कौशिक और अंगिरा यह सभी तत्त्ववित् ब्राह्मण कुरुजांगलमें उत्तरकी ओर और शतद्रवी नदीके किनारेको गये, फिर उस नदीमें स्नानकर वहांसे चले ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकारसे यह विधिपूर्वक स्नानकर देवता और पितरोंकी

एतत्पवित्रंपरमंपुराणंप्रोक्तंत्वगस्त्येनमहर्षिणाच ॥ धन्यंयशस्यंबहुपापनाशनंसंकीर्तनात्स्मरणात्स्पर्शनाच्च ॥२८॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेप्रह्लादतीर्थयात्रायांद्वितीयःपापनाशनस्तवोनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥ पुलस्त्यउवाच ॥ गतेथतीर्थयात्रायांप्रह्लादेदानवेश्वरे ॥ कुरुक्षेत्रंसमभ्यागाद्द्रष्टुंवैरोचनोबलिः ॥ १ ॥ तस्मिन्महाधर्मयुतेतीर्थेब्राह्मणपुंगवः ॥ शुक्रोद्विजातिप्रवरानामंत्रयतभार्गवः ॥ २ ॥ भृगुणामंत्र्यमाणावैश्रुत्वात्रेयाःसगौतमाः ॥ कौशिकांगिरसश्चैवतत्त्वज्ञाः कुरुजांगलान् ॥ ३ ॥ उत्तराशांप्रजग्मुस्तेनदीमनुशतद्रवीम् ॥ शातद्रवेजलेस्नात्वाविप्रास्तेप्रययुस्ततः ॥ ४ ॥ विधायतत्रसुस्नानंसंपूज्यपितृदेवताः ॥ प्रजग्मुःकिरणांपुण्यांदिनेशकिरणच्युताम् ॥ ५ ॥ तस्यांस्नात्वाचदेवर्षे सर्वएवमहर्षयः ॥ ऐरावतींसुपुण्योदां स्नात्वाजग्मुरथेश्वरीम् ॥ ६ ॥ देविकायाजलेस्नात्वापयोष्ण्याश्चैवतापसाः ॥ अवतीर्णामुनेस्नातुमात्रेयाद्यास्तुतांनदीम् ॥ ७ ॥ ततोनिमग्नाददृशुःप्रतिबिंबमथात्मनः ॥ अंतर्जलेद्विजश्रेष्ठमहदाश्चर्यकारकम् ॥ ८ ॥ उन्मज्जन्तश्चददृशुःपुनर्विस्मितमानसाः ॥ ततःस्नात्वासमुत्तीर्णाऋषयःसर्वएवहि ॥ ९ ॥ जग्मुस्ततोपितेब्रह्मन्कथयंतःपरस्परम् ॥ चिंतयंतश्चसततंकिमेतादितिविस्मिताः ॥ १० ॥

पूजा करके दिनेशकिरणच्युत पवित्र किरणानदीको गये ॥ ५ ॥ हे देवर्षे ! वहां सभीने जाकर स्नान किया, और परमपवित्र इरावतीमें स्नान करनेके पीछे इरावतीको गये ॥ ६ ॥ पीछे क्रमानुसार देविकाके जलसे स्नानकर वह आत्रेयादिक तपस्वी स्नान करनेके निमित्त पयोष्णीमें उतरे ॥ ७ ॥ उसमें निमग्न होकर सबने अपने २ प्रतिबिम्बोंको देखा जलमें इसप्रकार अपने प्रतिबिम्बोंको देखकर वह अत्यन्तही विस्मित हुए ॥ ८ ॥ इसप्रकार उन्मग्न होकर भी वही देखा, तब अत्यन्तही चिन्तित हुए, पीछे सब स्नानकर नदीमेंसे बाहर आये ॥ ९ ॥ उस स्थानमें चलेजानेके समय परस्पर इसप्रकारकी वार्त्तालाप करते हुए चिन्ताकरने लगे कि,

इसप्रकारके चरित्रका कारण क्या है ? ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन्होंने दूरसेही विस्तारित वनका खंड देखा, यह वनखंड अत्यन्तही सघन और मेघमंडलीके समान श्यामवर्ण और पक्षियोंके परिश्रमका विनाश करनेवाला था ॥ ११ ॥ और इतना ऊँचा था कि, मानों आकाशको ढकरहाहै; उसकी मध्यकी भूमि विस्तारित लता जालसे पूर्णथी ॥ १२ ॥ युगयुगान्तके फलफूलोंके वृक्ष उसमें लगेहुएथे देखनेसे ऐसा बोध होता था कि, मानों तारागणसे आकाशमंडल छारहा है ॥ १३ ॥ उसमें कमल खिलरहेहैं, पुंडरीकों (श्वेतकमलों) का समूह शोभा पारहा है, कोकनद यह सब फूलरहेहैं, सम्पूर्ण कमल शोभाको विस्तार कर रहे हैं ॥ १४ ॥ यह देखकर वह अत्यन्तही सन्तुष्ट और परमप्रसन्न हुए और महासरोवरमें हंसके यूथोंके समान उसमें प्रवेश किया और जाकर देखा कि ॥ १५ ॥ सर्वलोकोंसे

ततोदूरादपश्यंस्तेवनषंडंसुविस्तृतम् ॥ घनंघनदलश्यामंखगश्रमविनाशनम् ॥ ११ ॥ अतितुंगतयाव्योमआवृण्वानंनरोत्तम ॥ विस्तृताभिर्लताभि
स्तुअंतर्भूमिंचनारद ॥ १२ ॥ काननंपुष्पितैर्वृक्षैःफलितैश्वततस्ततः ॥ दशार्धबाणसदृशैर्नभस्तारागणैरिव ॥ १३ ॥ तद्दृष्ट्वाकमलैर्व्याप्तंपुंडरीकैश्चशो
भितम् ॥ तद्वत्कोकनदैर्व्याप्तंवनंपद्मवनंयथा ॥ १४॥ प्रजग्मुस्तुष्टिमतुलांतेह्लादंपरमंययुः ॥ विविशुःप्रीतमनसोहंसाइवमहासरः ॥ १५ ॥ तन्मध्ये
ददृशुःपुण्यमाश्रमंलोकपूजितम् ॥ चतुर्णांलोकपालानांवर्गाणांमुनिसत्तमाः ॥ १६ ॥ धर्माश्रमंप्राङ्मुखंतुपलाशविटपावृतम् ॥ प्रतीच्यभिमुखंब्रह्मन्नथ
पुण्यवनावृतम् ॥ १७॥ दक्षिणाभिमुखंकाम्यंरंभाशोकवनावृतम् ॥ उदङ्मुखंचमोक्षस्यशुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ १८॥ कृतांतेत्वाश्रमीमोक्षकामस्त्रे
तायुगेस्थितः ॥ आश्रम्यर्थोद्वापरंतेतिष्यांतेधर्मआश्रमी ॥ १९ ॥ तमाश्रमंहिमुनयोदृष्ट्वात्रेयास्ततोव्ययाः ॥ तत्रैवाहिरतिंचक्रुरखंडेसलिलाप्लुते ॥२०॥
धर्माद्योभगवान्विष्णुरखंडइतिविश्रुतः ॥ चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथःपूर्वमेवप्रतिष्ठितः ॥ २१ ॥

पूजित, धर्मादिलोकपाल, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षस्वरूप चारों वर्गोंके पुण्य आश्रम विराजमान होरहेहैं ॥ १६ ॥ इसमें पूर्वमुख धर्मका आश्रम है, यह पलाश (ढाक) के वृक्षसे वेष्टित (घिरा) हुआ है, पश्चिममुख अर्थका आश्रम है यह पवित्रवनोंसे समाकीर्ण (घिरा) हुआ है ॥ १७ ॥ दक्षिणमुख कामका आश्रम है, यह रम्भा (केला) अशोकवनसे सेवित है मोक्षाश्रम उत्तरमुख है, यह शुद्ध (साफ) स्फटिकके समान उज्ज्वलवर्ण है ॥ १८ ॥ सतयुगके अंतमें मोक्ष स्वयं आश्रमी था, त्रेतायुगमें काम, द्वापरके युगके अन्तमें अर्थ और कलिके अंतमें स्वयं धर्म आश्रमी हुआ था ॥ १९ ॥ अत्रिके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषि उस अखंड जलसे व्याप्त आश्रमको देखकर उसके प्रति प्रेमी हुए ॥ २० ॥ धर्माद्यमूर्तिधारी भगवान् विष्णुको अखंड कहा है, वह चतुर्मूर्ति जगत्के नाथ हैं

वहाँ वह पूर्वसेही प्रतिष्ठित हैं ॥ २१ ॥ हे नारद ! वह योगात्मा बहुश्रुत सम्पूर्ण ऋषि शुश्रूषा, तपस्या और ब्रह्मचर्यके साथ उनकी उपासना करने लगे ॥ २२ ॥ वह असुरोंसे भयभीत हो भार्गवके साथ मिलकर इसप्रकार उस स्थानपर निवास करने लगे ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! (नारद) अश्मकुट्ट और मरीचि पायी अन्यान्य ब्राह्मण कालिन्दी (यमुना) के जलमें स्नानकर दक्षिणाभिमुखको गये ॥ २४ ॥ और अवन्तिदेशमें समागत होकर विष्णुभगवान्‌की शरण ली, विष्णुके प्रसादसे उस स्थानपर असुर प्रवेश नहीं करसकते ॥ २५ ॥ वालखिल्यादि अन्यान्य ब्रह्मचारि ऋषियोंने दानवके भयसे भयभीत हो रुद्रकोटिका आश्रय लिया ॥ २६ ॥ गौतम और अंगिरा इत्यादि ऋषियोंके इसप्रकार चले जानेपर शुक्राचार्यजी भार्गववंशके मुनियोंको नित्य २ यज्ञके विधानमें नियुक्त कर ॥ २७ ॥ स्वयं

तमर्चयंतिऋषयोयोगात्मानोबहुश्रुताः ॥ शुश्रूषयाचतपसाब्रह्मचर्येणनारद ॥ २२ ॥ एवंतेन्यवसंस्तत्रसमेताभार्गवेणहि ॥ असुरेभ्यस्तदाभीतास्त्वा श्रिताःखंडपर्वताः ॥ २३ ॥ तथान्येब्राह्मणाब्रह्मन्नश्मकुट्टामरीचिपाः ॥ स्नात्वाजलेहिकालिंद्याःप्रजग्मुर्दक्षिणामुखाः ॥ २४ ॥ अवंतीविषयंप्राप्यविष्णु मासाद्यसंस्थिताः ॥ विष्णोरपिप्रसादेनदुष्प्रवेशंमहासुरैः ॥ २५ ॥ वालखिल्यादयोजग्मुरवशादानवाद्भयात् ॥ रुद्रकोटिंसमाश्रित्यस्थितास्तेब्रह्मचा रिणः ॥ २६ ॥ एवंगतेषुविप्रेषुगौतमांगिरसादिषु ॥ शुक्रस्तुभार्गवान्सर्वान्नित्येयज्ञविधौमुने॥ २७ ॥ अधिष्ठितोभार्गवेणमहायज्ञेऽमितद्युतेः ॥ यज्ञदीक्षां बलेःशुक्रश्चकारविधिनास्वयम् ॥ २८ ॥ श्वेतांबरधरोदैत्यःश्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ मृगाजिनास्तृतपृष्ठोबर्हपत्रविचित्रकः ॥ २९ ॥ समास्तेविततेयज्ञे सदस्यैरभिसंवृतः ॥ हयग्रीवक्षुराद्यैस्तुमयबाणपुरोगमैः ॥ ३० ॥ पत्नीविंध्यावलीतस्यदीक्षितायज्ञकर्मणि ॥ ललनानांसहस्रस्यप्रधानमृषिकन्यका ॥ ॥ ३१ ॥ शुक्रेणाश्वःश्वेतवर्णोमधुमासेसुलक्षणः ॥ महींचरितुमुत्सृष्टस्तारकाक्षस्त्वगाच्चतम् ॥ ३२ ॥ एवमश्वेसमुत्सृष्टेविततेयज्ञकर्मणि ॥ गते चमासत्रितयेह्रियमाणेचपावके ॥ ३३ ॥

अमितद्युति बलिके यज्ञमें विराजमान हुए, और बलिको उस महायज्ञमें दीक्षित किया ॥ २८ ॥ बलि श्वेतवस्त्र धारणकर श्वेतमाला और श्वेतचंदनसे अलंकृत हो पृष्ठदेशपर मृगचर्मको ओढ़ मोरके पंखकी कलँगी लगा ॥ २९ ॥ सदस्योंसे घिरे हुए विस्तृत यज्ञमें विराजमान हुए. मय, बाण, हयग्रीव और क्षुरादि असुर यह उनके चारों ओर बैठे ॥ ३० ॥ उनकी स्त्री विन्ध्यावलि यज्ञकर्ममें दीक्षिता हुई, वह हजारों ऋषिकन्याओंके साथ थी ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त चैत्रमासके आनेपर शुक्रने श्वेतवर्ण सुलक्षणलक्षित अश्वको पृथ्वीपर विचरण करनेके अर्थ छोड़दिया, तारकाक्षनामक असुर रक्षार्थ उसके पीछे चला ॥ ३२ ॥ इसप्रकारसे उस वितत यज्ञकर्मके उपलक्षमें अश्व उत्सृष्टहुआ (छोड़ागया) तीन मासके बीतनेपर जब अग्निका आहरण (यज्ञार्थ उपसमाधन) हुआ ॥ ३३ ॥

और सूर्यभगवान् मिथुनराशिमें आये, उसीसमय देवजननी अदितिने वामनाकारसे माधव (लक्ष्मीपति विष्णु) को उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ सबके ईश्वर और परिपालक पुराणस्वरूप भगवान् नारायणके जन्म लेतेही ब्रह्माजी महर्षियोंके सहित आकर उनकी स्तुति करनेलगे ॥ ३५ ॥ हे सत्वमूर्त्ते ! हे माधव ! तुमको नमस्कार है, हेसात्वत ! हेविश्वरूप ! तुमको नमस्कार है, हेशत्रुरूपवनेन्धनकेअग्नि! तुमको नमस्कार है, हे पापके भस्मकारी महादावानल तुमको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे पुंडरीकाक्ष ! तुमको नमस्कार है, हेविश्वभावन ! तुमको नमस्कार है, हे जगदाधार ! तुमको नमस्कार है, हे पुरुषोत्तम ! तुमको नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ हे नारायण ! हे जगन्मूर्त्ते ! हे जगन्नाथ ! हे गदाधर ! हे पीतवासः ! हे श्रीकान्त ! हे जनार्दन ! तुमको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ तुम सबके त्राण और रक्षाकर्त्ताहो, तुम विश्वेश्वर आत्माहो, तुम सर्वज्ञ और अव्ययस्वरूपहो, हे सर्वधारिन् ! हे रूपधारिन् ! हे धराधारिन् ! तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ तुम स्वयं वर्द्धित होतेहो और सबको वर्धन करतेहो, देवता और सम्पूर्ण त्रिलोकी तुम्हारी पूजा करती है, तुम्हीं देवताओंके पतिहो इसकारण तुम इन्द्रके शत्रुका विनाश करो ॥ ४० ॥ तुम धाता, तुम विधाता, तुम संहर्ता, तुम महेश्वर, तुम महालय, तुम महायोगी, तुम योगशायी हो तुमको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीकी इसप्रकार स्तुतिकरनेपर सर्वात्मा सर्वज्ञ जगन्नाथ भगवान् हरि उनसे बोले कि, हे विभो ! हमारी उपनयनविधिको समाहित करो अर्थात् यज्ञोपवीत करदो ॥ ४२ ॥ तब महातेजस्वी तपोधन बृहस्पति भारद्वाज आदि ऋषियोंने जातकर्मादि सम्पूर्ण क्रिया सम्पादन करी ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त सर्वशास्त्रविशारद भरद्वाजजीने उनका व्रतबंध विधान किया, फिर

पूज्यमानेषुदैत्येषुमिथुनस्थेदिवाकरे ॥ सुषुवेदेवजननीमाधवंवामनाकृतिम् ॥ ३४ ॥ संजातमात्रंभगवंतमीशंनारायणंलोकपतिंपुराणम् ॥ ब्रह्मासमभ्येत्यसमंमहर्षिभिस्तोत्रंजगादाथसमंमहर्षे ॥ ३५ ॥ नमोस्तुतेमाधवसत्त्वमूर्तेनमोस्तुतेसात्वतविश्वरूप ॥ नमोस्तुतेशत्रुवनेंधनाग्नेनमोस्तुतेपापमहादवाग्ने॥ ॥ ३६ ॥ नमोस्तुपुंडरीकाक्षनमस्तेविश्वभावन ॥ नमस्तेजगदाधारनमस्तेपुरुषोत्तम ॥ ३७ ॥ नारायणजगन्मूर्तेजगन्नाथगदाधर ॥ पीतवासःश्रियःकांतजनार्दननमोस्तुते ॥ ३८ ॥ भवांस्त्राताचगोप्ताचविश्वात्मासर्वगोऽव्ययः ॥ सर्वधारिन्धराधारिन्रूपधारिन्नमोस्तुते ॥ ३९ ॥ वर्द्धिष्णोवर्द्धिताशेषत्रैलोक्यसुरपूजित ॥ कुरुष्वत्वंदेवपतेमघोनोऽश्रुप्रमार्जनम् ॥ ४० ॥ त्वंधाताचविधाताचसंहर्तात्वंमहेश्वर ॥ महालयोमहायोगीयोगशायीनमोस्तुते॥४१॥ इत्थंस्तुतोजगन्नाथःसर्वात्मासर्वगोहरिः ॥ प्रोवाचभगवान्मह्यंकुरूपनयनंविभो ॥ ४२ ॥ ततश्चकारदेवस्यजातकर्मादिकाःक्रियाः ॥ भारद्वाजोमहातेजाबार्हस्पत्यस्तपोधनः ॥ ४३ ॥ व्रतबंधंतथेशस्यकृतवान्सर्वशास्त्रवित् ॥ ततोददुःप्रीतियुतासर्वएवयथाक्रमम् ॥ ४४ ॥

---

१ वनकी सूखी लकड़ी ।

अन्यान्य सभी प्रसन्न होकर उन्हैं दानकरने लगे ॥ ४४ ॥ इनमेंसे पुलहजीने यज्ञोपवीत, पुलस्त्यजीने सितवस्त्र, अगस्त्यजीने मृगाजिन, (मृगचर्म) भरद्वाजजीने मेखला ॥ ४५ ॥ ब्रह्मपुत्र मरीचिने पलाशदंड, वारुणीने[1] अक्षसूत्र, अंगिराने कौशचीर ॥ ४६ ॥ द्युराजने छत्र, भृगुने उपानत् (जूते) बृहत्तेजा बृहस्पतिने कमंडलु प्रदान किया ॥ ४७ ॥ इसप्रकारसे भूतभावन भगवान्ने ऋषियोंके द्वारा कृतोपनयन और स्तुति किये जाकर सांग वेदका अध्ययन किया ॥ ४८ ॥ आंगिरस भरद्वाजने उन्हैं महाख्यानयुक्त गांधर्व सहित महास्वर सामवेदका अध्ययन कराया ॥ ४९ ॥ वह भगवान् एक मासमेंही श्रुतिमहार्णवको जानकर लोकाचारकी प्रवृत्तिके निमित्त सर्वशास्त्रविशारद होगये ॥ ५० ॥ इसप्रकारसे वह अव्यय और अक्षयस्वरूप

यज्ञोपवीतंपुलहःपुलस्त्यःसितवाससी ॥ मृगाजिनंकुंभयोनिर्भरद्वाजस्तुमेखलाम् ॥ ४५ ॥ पालाशमददाद्दंडंमरीचिर्ब्रह्मणःसुतः ॥ अक्षसूत्रंवारुणिस्तुकौशचीरमथांगिराः ॥ ४६ ॥ छत्रंददौद्युराजश्चउपानद्युगलंभृगुः ॥ कमंडलुंबृहत्तेजाःप्रादाद्विष्णोर्बृहस्पतिः ॥ ४७ ॥ एवंकृतोपनयनोभगवान्भूतभावनः ॥ संस्तूयमानऋषिभिर्वेदान्सांगानधीतवान् ॥ ४८ ॥ भारद्वाजात्सांगिरसात्सामवेदंमहास्वरम् ॥ महदाख्यानसंयुक्तंगांधर्वसहितंमुने ॥ ४९ ॥ मासेनैकेन भगवाञ्ज्ञातश्रुतिमहार्णवः ॥ लोकाचारप्रवृत्त्यर्थमभूत्सतुविशारदः ॥ ५० ॥ सर्वशास्त्रेषुनैपुण्यंगत्वादेवोक्षयोऽव्ययः ॥ प्रोवाचब्राह्मणश्रेष्ठंभारद्वाजमिदंवचः ॥ ५१ ॥ श्रीवामनउवाच ॥ ब्रह्मन्व्रजामिदेह्याज्ञांकुरुक्षेत्रंमहोदयम् ॥ तत्रदैत्यपतेःपुण्योहयमेधःप्रवर्तते ॥ ५२ ॥ समाविष्टानिपश्यत्वंतेजांसिपृथिवीतले ॥ येसंविधानाःसततंमदंशाःपुण्यवर्धनाः ॥ तेनाहंप्रतिजानामिकुरुक्षेत्रंगतोबलिः ॥ ५३ ॥ भरद्वाजउवाच ॥ स्वेच्छयातिष्ठगच्छामोनाहमाज्ञापयामिते ॥ गमिष्यामोवयंविष्णोबलेरध्वरमाश्रितः ॥ ५४ ॥ यद्भवंतमहंदेवपरिपृच्छामितद्वद ॥ केषुकेषुविभोनित्यंस्थानेषुपुरुषोत्तम ॥ सान्निध्यंभवतोब्रूहिज्ञातुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ५५ ॥

भगवान् सम्पूर्ण शास्त्रोंमें निपुणहो ब्राह्मणश्रेष्ठ भरद्वाजसे बोले ॥ ५१ ॥ कि, ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दो तो महोदय कुरुक्षेत्रको जाऊं, उस स्थानपर दैत्यपति बलि महाअश्वमेध यज्ञ कररहा है ॥ ५२ ॥ पृथ्वीपर तेजःपुंज समाविष्ट हुआ है, देखो ! जिस २ विधानसे मेरा अंश कहकर सतत पुण्यको बढाताहै, इससे मुझे यह प्रगट होताहै कि, बलि कुरुक्षेत्रको गयाहै ॥ ५३ ॥ भरद्वाजजी बोले कि, मैं तुम्हैं आज्ञा नहीं देसकताहूं तुम्हारी जो इच्छाहो वह होसकती है, हम सब बलिके यज्ञको जायँगे तुम खेदित न होना ॥ ५४ ॥ हेदेव ! अब मैं जो पुछताहूं सो आप कहिये, हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! किस २ स्थानमें आप सर्वदा विराजमान रहते हैं, उसके

---

[1] वरुणपुत्र ।

जाननेकी मैं इच्छा करताहूं सो आप कहिये ॥ ५५ ॥ विष्णुभगवान् बोले कि, हे गुरो ! जिन २ परम पवित्रस्थानोंमें बहुतसे रूपधारण कर सर्वदा निवास करताहूं सो श्रवण करो ॥ ५६ ॥ हेभरद्वाज ! मेरा अनुरूप अवतार वसुधा (पृथ्वी) आकाश पाताल, समस्त सागर, सब दिशा, सम्पूर्ण पर्वत और मेघमंडलीमें व्याप्त हुआ है ॥ ॥ ५७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो स्वर्गचर, भूमिचर, जलचर, गगनचर, वह इन्द्र चंद्रमा और सूर्य,यम और वसु,वरुण और अग्नि,सम्पूर्ण लोकपाल और ब्राह्मण,खग (पक्षी) सहित ब्रह्मादि स्थावर मूर्तिमान् जितने हैं उन समस्त विविधगुणशाली पदार्थोंको पृथ्वी[१] (लोकों) के पूर्णकरनेके अर्थ अमूर्ति (निराकार) मैंनेही सिरजा है ॥ ५८ ॥ हे द्विजवर्य ! सुर (देवता) सिद्ध, दानव जिसकी पूजा करते हैं, जिसके दर्शन वा कीर्तनसेही सम्पूर्ण पाप सहसा विध्वंस होजातेहैं, वह यह पुण्यस्वरूप पुरुष सम्पूर्ण पृथ्वीपर प्रगट हुएहैं ॥ ५९ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां वामनजन्मनि प्रह्लादतीर्थयात्रायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हमारा आद्यरूप मत्स्यमानसह्रदमें प्रतिष्ठितहै उसके कीर्तन और स्पर्शनादि करनेसे सब पाप विनाश होजातेहैं ॥ १ ॥ हमारा पापनाशक कौर्मरूप कौशिकीके तीरके निकट हयशीर्षमूर्ति, कृष्णामें गोविन्दमूर्ति, हस्तिनापुरमें ॥ २ ॥ त्रिविक्रमविग्रह, कालिन्दीमें भवस्वरूप, लिंगभेदमें माधव और ईशमूर्ति केदारमें, कृष्णमूर्ध्वज कुब्जाम्रमें ॥ ३ ॥ नारायणमूर्ति बदरिकाश्रममें, गरुड़ध्वजविग्रह वाराहमें, जयेशमूर्ति भद्रकर्णमें, द्विजप्रियस्वरूप विपाशामें प्रतिष्ठितहै ॥ ४ ॥

विष्णुरुवाच ॥ श्रूयतांकथयिष्यामियेषुयेषुगुरोत्वहम् ॥ निवसामिसुपुण्येषुस्थानेषुबहुरूपवान् ॥ ५६ ॥ ममावतारैर्वसुधानभस्तलंपातालमंभोनिधयो
दिवंच ॥ दिशःसमस्तागिरयोंबुदाश्चव्याप्ताभरद्वाजममानुरूपैः ॥ ५७ ॥ येदिव्यायेचभौमाजलगगनचराःस्थावरायेचब्रह्मन्सेंद्राःसार्काःसचंद्रायमवसुवरु
णाह्यग्नयःसर्वपालाः ॥ ब्रह्माद्याःस्थावरांताद्द्विजखगसहितामूर्तिमंतोह्यमूर्तैस्तेसर्वेमत्प्रसूताबहुविविधगुणाःपूरणार्थंपृथिव्याम् ॥ ५८ ॥ एतेहिपुण्याःसुर
सिद्धदानवैःपूज्यानराःसन्निहितामहीतले ॥ यैर्दृष्टमात्रैःसहसैवनाशंप्रयातिपापंद्विजवर्यकीर्तितैः ॥ ५९ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेप्रह्लादतीर्थयात्रायांवामन
प्रादुर्भावेवामनजन्मनामनवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आद्यंहिमत्स्यरूपंमेसंस्थितंमानसेह्रदे ॥ सर्वपापक्षयकरंकीर्तनस्पर्शना
दिभिः ॥ १ ॥ कौर्ममन्यत्सन्निधानेकौशिक्याःपापनाशनम् ॥ हयशीर्षंचकृष्णायांगोविंदंहस्तिनापुरे ॥ २ ॥ त्रिविक्रमंचकालिंद्यांलिंगभेदेभवंविभुम् ॥
केदारेमाधवेशौंचकुब्जाम्रेकृष्णमूर्द्धजम् ॥ ३ ॥ नारायणंबदर्यांचवाराहेगरुडध्वजम् ॥ जयेशंभद्रकर्णेचविपाशायांद्विजप्रियम् ॥ ४ ॥

---

[१] यहां पृथ्वी शब्द अजहल्लक्षावृत्तिसे लोकमात्रका कहता है ।

इसके अतिरिक्त ऐरावतीमें रूपधार, कुरुक्षेत्रमें कुरुध्वज, कृतशौचमें नृसिंह, गोकर्णमें विश्वधारण ॥ ५ ॥ प्राचीनमें कामपाल, महाजलमें पुंडरीक, विशाखयूपमें
अजितहै, हंसपदमें हंस ॥ ६ ॥ पयोष्णीमें यमखंड, वितस्तामें कुमारिल मणिमती ह्रदमें शंभु, ब्राह्मणमें प्रजापति ॥ ७ ॥ मधुनदीमें चक्रधर, हिमालयमें शूलबाहु,
और ओषधसानुमें विष्णुरूपसे विराजमानहूं, ऐसा हेद्विजश्रेष्ठ ! आपजानो ॥ ८ ॥ इसप्रकार भृगुतुंडमें मैं सुवर्णनामसे, नैमिषमें पीतवासा शरीरसे, गयामें गोपति
गदाधररूपसे ॥ ९ ॥ गोप्रतारमें त्रैलोक्यनाथ और सबके वरदाता कुशेशय शरीरसे, चक्रमें अर्द्धनारीश्वरमूर्तिसे, दक्षिणपर्वतमें महीध्ररूपसे ॥ १० ॥ उत्तरगिरिमें
गोपालस्वरूपसे, महेन्द्रपर्वतपर सोमपीथीरूपसे, सह्यपर्वतमें वैकुंठस्वरूपसे, और पारियात्रपवर्तमें अपराजितरूपसे, नित्य विराजमान रहताहूं ॥ ११ ॥ इसके अतिरिक्त

रूपधारमिरावत्यांकुरुक्षेत्रेकुरुध्वजम् ॥ कृतशौचेनृसिंहंचगोकर्णेविश्वधारणम् ॥५॥ प्राचीनेकामपालंचपुंडरीकंमहांभसि ॥ विशाखयूपेह्यजितंहंसंहंसपदे
तथा ॥ ६ ॥ पयोष्ण्यांयमखंडंचवितस्तायांकुमारिलम् ॥ मणिमत्याह्रदेशंभुंब्रह्मण्येचप्रजापतिम् ॥ ७ ॥ मधुनद्यांचक्रधरंशूलबाहुंहिमाचले ॥ विद्धि
विष्णुंमुनिश्रेष्ठस्थितमौषधसानुनि ॥ ८ ॥ भृगुतुंगेसुवर्णाख्यंनैमिषेपीतवाससम् ॥ गयायांगोपतिंदेवंगदापाणिंतमीश्वरम् ॥९॥ त्रैलोक्यनाथंवरदंगोप्रचारं
कुशेशयम् ॥ अर्द्धनारीश्वरंचक्रेमहीध्रंदक्षिणेगिरौ ॥ १० ॥ गोपालमुत्तरेनित्यंमहेंद्रेसोमपीथिनम् ॥ वैकुंठमपिसह्याद्रौपारियात्रेपराजितम् ॥ ११ ॥
कशेरुदेशेदेवेशंविश्वरूपंतपोधनम् ॥ मलयाद्रौचसौगंधिंविंध्यपादेसदाशिवम् ॥ १२ ॥ अवंतिविषयेधिष्ण्यंनिषधेष्वमरेश्वरम् ॥ पांचालिकंचब्रह्मर्षेपां
चालेषुसदास्थितम् ॥ १३ ॥ महोदयेहयग्रीवंप्रयागेयोगशायिनम् ॥ स्वयंभुवंमधुवनेह्यब्जगंधंचपुष्करे ॥ १४ ॥ तथैवविप्रप्रवरंवाराणस्यांचकेशवम् ॥
अविमुक्तंचतत्रैवगीयतेसुरकिन्नरैः ॥ १५ ॥ पंपायांपद्मकिरणंसमुद्रेवडवामुखम् ॥ कुमारधारेबाह्लीशंकार्तिकेयंचबर्हणे ॥ १६ ॥ ओजसेशंभुमनघंस्थाणुं
चकुरुजांगले ॥ वनमालिनमाहुर्मांकिष्किंधावासिनोजनाः ॥ १७ ॥ वीरंकुवलयारूढंशंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सांकमुदारांगंनर्मदायांश्रियःपतिम् ॥ १८ ॥

कशेरुदेशमें तपोधन विश्वरूपसे, मलयपर्वतपर सौगन्धि, विंध्याचलपरसदाशिव ॥ १२ ॥ अवन्तिदेशमेंधिष्ण्य, निषधमें अमरेश्वर और पांचालमें पांचालिकरूपसे सर्वदा विराजमान
रहताहूं ॥ १३ ॥ महोदयमें हयग्रीवशरीरसे, प्रयागमें योगशायी, मधुवनमें स्वयम्भु, पुष्करमें अब्जगंध ॥ १४ ॥ और वाराणसीमें केशव और अविमुक्तमूर्ति प्रति
ष्ठितहै, देवता और किन्नर उनकी स्तुति करतेहैं ॥ १५ ॥ पम्पासरोवरमें पद्मकी किरण, समुद्रमें वड़वामुख, कुमारधारमें बाह्लीश, बर्हणामें कार्तिकेय
॥ १६ ॥ ओजसमें केशव और कुरुजांगलमें स्थाणुमूर्तिरूपसे नित्य विराजमान रहताहूं, किष्किन्धापर्वतनिवासी मुझे वनमाली कहतेहैं ॥ १७ ॥ मैं नर्मदामें
वीर (रक्तकमल) कुवलयमें आरूढ़ (उपविष्ट) शंखचक्रगदाधारी श्रीवत्स (भगुपद) लांछित उदारदेह श्रीपतिविग्रहसे विराजमान रहताहूं ॥ १८ ॥

माहिष्मतीमें त्रिनयन और हुताशनरूपसे, अर्बुदमें त्रिसौपर्ण मूर्तिसे, सूकराचलमें क्ष्माधरशरीरसे ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! (भरद्वाज !) प्रभासमें तृणाचिकेत और तृतीयामूर्ति शशिशेखर नामसे प्रसिद्ध वहींपर प्रतिष्ठितहूं ॥ २० ॥ उदयपर्वतपर शशि, सूर्य और ध्रुवरूप त्रिमूर्तिसे, हिमकूटमें हिरण्याक्ष और शरवणमें स्कन्दरूपसे ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! महालयमें रुद्र, उत्तरकुरुमें सर्वसौख्यप्रदायक पद्मनाभ ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! सप्तगोदावरमें हाटकेश्वर और महाहंसनामसे विख्यातहूं, प्रयागमें महेश्वर ॥ २३ ॥ शोणमें रुक्मकवच, कुंडितमें घ्राणतर्पण, भिल्लीवनमें महायोग, मंत्रोंमें पुरुषोत्तम ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्लक्षावतरणमें विश्वरूप श्रीनिवास, सूर्यारकमें चतुर्बाहु, मगधामें सुधापति ॥ २५ ॥ गिरिव्रजमें पशुपति, यमुनाके तटमें श्रीकंठ, दंडकारण्यमें वनस्पति, कालंजरमें नीलकंठ, सरयूमें मनु, महाकोशीमें सर्वपापनाशक हंस ॥ २६ ॥ २७ ॥ दक्षिणमें गोकर्णहंस, प्रजामुखमें वासुदेव, विन्ध्यशृंगपर महागौर, कन्थामें मधुसूदन ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्रिकूटशेखरमें सबके ईश्वर चक्रपाणि, लौहदंडमें हृषीकेश और कौशलामें महोदयमूर्तिसे नित्य विराजमान रहताहूं ॥ २९ ॥ सुराष्ट्रमें मेरी महावासमूर्ति प्रतिष्ठित है, नवराष्ट्रमें मैं यशोधररूपसे विराजमान हूं और देविका नदीमें भूधर, विदेहामें कुशप्रिय ॥ ३० ॥ गोमतीमें गदाधर, शंखोद्धारमें शंखधर, सैन्धवारण्यमें सुनेत्र, सुरपुरमें सुर ॥ ३१ ॥ हिरण्यवतीमें रुद्र, त्रिविष्टपर वीरभद्र, शंकुकर्णमें नीलाभ, शालवनमें भीम ॥ ३२ ॥ घटितमें विश्वामित्र, कैलासमें वृषध्वज, महाशैलमें कामरूपधारी

माहिष्मत्यांत्रिणयनंतत्रैवचहुताशनम् ॥ अर्बुदेचत्रिसौपर्णंक्ष्माधरंसूकराचले ॥ १९ ॥ त्रिणाचिकेतंब्रह्मर्षेप्रभासेचकपर्दिनम् ॥ तत्रैवात्रापिचख्यातं
तृतीयंशशिशेखरम् ॥ २० ॥ उदयेशशिनंसूर्यंध्रुवंचत्रितयास्थितम् ॥ हेमकूटेहिरण्याक्षंस्कंदंशरवणेमुने ॥ २१ ॥ महालयेस्मृतंरुद्रमुत्तरेषुकुरुष्वथ ॥
पद्मनाभंमुनिश्रेष्ठसर्वसौख्यप्रदायकम् ॥ २२ ॥ सप्तगोदावरेब्रह्मन्विख्यातंहाटकेश्वरम् ॥ तत्रैवचमहाहंसंप्रयागेऽपिमहेश्वरम् ॥ २३ ॥ शोणेचरुक्मक
वचंकुंडिनेघ्राणतर्पणम् ॥ भिल्लीवनेमहायोगंमंत्रेषुपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ प्लक्षावतरणेविश्वंश्रीनिवासंद्विजोत्तमम् ॥ सूर्यारकेचतुर्बाहुंमगधायांसुधापतिम्
॥ २५ ॥ गिरिव्रजेपशुपतिंश्रीकंठंयमुनातटे ॥ वनस्पतिंसमाख्यातंदंडकारण्यवासिनम् ॥ २६ ॥ कालंजरेनीलकंठंसरय्वांमनुमुत्तमम् ॥ हंसयुक्तंम
हाकोश्यांसर्वपापप्रणाशनम् ॥ २७ ॥ गोकर्णेदक्षिणेशर्वंवासुदेवंप्रजामुखे ॥ विंध्यशृंगेमहागौरंकंथायांमधुसूदनम् ॥ २८ ॥ त्रिकूटशिखरेब्रह्मंश्चक्रपा
णिनमीश्वरम् ॥ लोहदंडेहृषीकेशंकौशलायांमहोदयम् ॥ २९ ॥ महावासंसुराष्ट्रेचनवराष्ट्रेयशोधरम् ॥ भूधरंदेविकानद्यांविदेहायांकुशप्रियम् ॥ ३० ॥
गोमत्यांछादितगदंशंखोद्धारेचशंखिनम् ॥ सुनेत्रंसैंधवारण्येशूरंशूरपुरेस्थितम् ॥ ३१ ॥ रुद्राख्यंचाहिरण्वत्यांवीरभद्रंत्रिविष्टपे ॥ शंकुकर्णेचनीलाभंभी
मंशालवनेविदुः ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रंचघटितेकैलासेवृषभध्वजम् ॥ महेशंमहिलाशैलेकामरूपंशशिप्रभम् ॥ ३३ ॥

शशिप्रभा महेश ॥ ३३ ॥ वलभीमें गोमित्र, कटाहमें ब्राह्मणप्रिय, सिंहलद्वीपमें उपेन्द्र, शक्राह्वेमें कुन्दमाली ॥ ३४ ॥ हे मुने ! रसातलमें विख्यात सहस्रशिरा,
कालाग्निमें कपिल और कृत्तिवासा ॥ ३५॥ सुतलमें अचलकूर्म, वितलमें पंकजानन, महातलमें सबके गुरु देवेश वृषलेश्वर ॥ ३६ ॥ तलमें सहस्रपाद, सहस्रभुज, सबके
ईश्वर और मुसलाकृष्ट दानवरूपी सहस्रनामक शरीरसे विराजमान रहताहूं॥ ३७ ॥ पातालमें योगीश्वर हरिहर,धरातलमें कोकनद, मेदिनीमें चक्रपाणि ॥ ३८॥ भूवर्लोकमें
गरुड़, स्वर्लोकमें विष्णु, महर्लोकमें अगस्त्य, जनोलोकमें कपिल ॥ ३९॥ हेब्रह्मन् ! तपोलोकमें सप्तस्वरसंयुक्त अखिल वाङ्मय (शास्त्र) स्वरूप, ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा ॥ ४०॥
शिवलोकमें सनातन,विष्णुलोकमें परब्रह्म, निरालम्बमें अप्रतर्क्य, निराकारमें तपोमय ॥ ४१ ॥ जम्बूद्वीपमें चर्तुबाहु, कुशद्वीपमें कुशेशय, प्लक्षद्वीपमें गरुडवाहन, क्रौंचमें

वलभ्यामपिगोमित्रंकटाहंब्राह्मणप्रियम् ॥ उपेंद्रंसिंहलद्वीपेशक्राह्वेकुंदमालिनम् ॥ ३४ ॥ रसातलेचविख्यातंसहस्रशिरसंमुने ॥ कालाग्निंकपिलंचैवतथा
न्यंकृत्तिवाससम् ॥ ३५ ॥ सुतलेकूर्ममचलंवितलेपंकजाननम् ॥ महातलेगुरुंख्यातंदेवेशंवृषलेश्वरम् ॥ ३६ ॥ तलेसहस्रचरणंसहस्रभुजमीश्वरम् ॥ सहस्रा
ख्यंपरिख्यातंमुसलाकृष्टदानवम् ॥ ३७॥ पातालेयोगिनामीशंसंस्थितंहरिशंकरम् ॥ धरातलेकोकनदंमेदिन्यांचक्रपाणिनम् ॥ ३८ ॥ भुवर्लोकेचगरुडं
स्वर्लोकेविष्णुमव्ययम् ॥ महर्लोकेतथागस्त्यंकपिलंचजनोस्थितम् ॥ ३९ ॥ तपोलोकेखिलंब्रह्मन्वाङ्मयंसप्तसंयुतम् ॥ ब्रह्माणंब्रह्मलोकेचसममेवप्रति
ष्ठितम् ॥४० ॥ सनातनंतथाशैवेपरंब्रह्मचवैष्णवे ॥ अप्रतर्क्यंनिरालंबेनिराकारेतपोमयम् ॥ ४१ ॥ जंबूद्वीपेचतुर्बाहुंकुशद्वीपेकुशेशयम् ॥ प्लक्षद्वीपेमु
निश्रेष्ठख्यातंगरुडवाहनम् ॥ ४२ ॥ पद्मनाभंतथाक्रौंचेशाल्मलेवृषभध्वजम् ॥ सहस्राक्षःस्थितःशाकेवामनःपुष्करेस्थितः ॥ ४३ ॥ तथापृथिव्यांब्रह्मर्षे
शालिग्रामेस्थितोप्यहम् ॥ सजलस्थलपर्यंतमशेषस्थावरेषुच ॥ ४४ ॥ एतानिपुण्यानिमहालयानिब्रह्मन्पुराणानिसनातनानि ॥ ब्रह्मप्रदानीहमहौजसा
निसंकीर्तनीयान्यघनाशनानि ॥ ४५ ॥ संकीर्तनान्नाशमुपैतिपापंसंदर्शनादेवचदेवतायाः ॥ धर्मार्थकामावपवर्गमेवदेवालभंतेमनुजाःससाध्याः ॥ ४६ ॥

पद्मनाभ शाल्मलमें वृषध्वज,शाकमें सहस्राक्ष पुष्कर॥ ४२ ॥ ४३ ॥और शालिग्राममें वामनरूपसे मैं नित्य वास करता हूँ, इसप्रकारसे जलस्थलतक सर्वत्रही मेरा वास है
॥ ४४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरा यह परमपवित्र पुराण निलय (स्थान) है किसी समयमें भी नष्ट नहीं होता, इसका तेज असीम है, इन २ स्थानोंमें निवास करनेसे
ब्रह्मको साक्षात् प्राप्त होता है, और उसके सम्पूर्ण पातक विनष्ट होजाते हैं, इसकारण इसका कीर्तन करना सर्वदा कर्त्तव्य है ॥ ४५ ॥ कीर्तन करनेसे जिसप्रकार पाप
नष्ट होजाते हैं, उसीप्रकारसे दर्शन करनेसे भी देवदर्शन प्राप्त होताहै । देवता, मनुष्य, साध्य, यह सभी उन स्थानोंके माहात्म्यसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको

प्राप्त करते हैं ॥ ४६ ॥ मैंने आपके निकट उन स्थानोंका वर्णन किया कि, जहाँ मैं सर्वदा विद्यमान रहताहूँ, हे विप्र ! इस समय उठो ! देवताओंका हितसाधन करनेके निमित्त महाअसुर बलिके यज्ञको चलो ॥ ४७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे महर्षे ! महात्मा विष्णु महर्षि भरद्वाजजीसे इसप्रकारके वचन कहकर लीला करनेके निमित्त पर्वतसे उतर कुरुजांगल (कुरुक्षेत्र) में आये ॥ ४८ ॥ इति श्रीवामनपुराणे वामनप्रादुर्भावे भाषाटीकायां भगवतः स्वस्थानकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

पुलस्त्यजी बोले कि, हे महर्षे ! वामनरूपी वासुदेवजी जानेलगे, तब पृथ्वी कंपायमान होगई, सम्पूर्ण पर्वत विचलित होनेलगे, सम्पूर्ण समुद्र क्षुभित हुए और स्वर्ग तथा सम्पूर्ण लोक तित्तर वित्तर होनेलगे ॥ १ ॥ बलिके यज्ञमेंभी अत्यन्तही व्याकुलता फैलगई, यह देखकर बलि विचारनेलगे कि, नहीं जानता कि, मधुसूदन आकर

एतानितुभ्यंविनिवेदितानिमहालयानीहमयानिजानि ॥ उत्तिष्ठगच्छामिमहासुरस्ययज्ञंसुराणांहिहितायविप्र ॥४७॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंमहर्षेर्विष्णुर्भरद्वाजमृषिंमहात्मा ॥ विलासलीलागमनोगिरींद्रात्सचाभ्यगच्छत्कुरुजांगलंहि ॥ ४८ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेस्वस्थानकथनंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ ततःसमागच्छतिवासुदेवेमहीचकंपेगिरयश्चचेलुः । क्षुब्धाःसमुद्रादिविसर्वलोकोबभौविपर्यस्तगतिर्महर्षे ॥ १ ॥ यज्ञःसमागात्परमाकुलत्वंनवेद्मिकिंमांमधुहाकरिष्यति ॥ यथाप्रदग्धोस्मिमहेश्वरेणकिंमांनसंवक्ष्यतिवासुदेवः ॥ २ ॥ ऋक्साममंत्राहुतिभिर्हुतास्तुतेप्यासुरीयाज्वलनास्तुभागात् ॥ भक्ष्याद्द्विजेंद्रैरपिसंप्रदत्तान्नैवप्रतीच्छंतिविभोर्भयेन ॥ ३ ॥ तंदृष्ट्वाघोररूपंतुनिमित्तंदानवेश्वरः ॥ पप्रच्छौशनसंशुक्रंप्रणिपत्यकृतांजलिः ॥ ४ ॥ किमर्थमाचार्यमहीसशैलारंभेववाताभिहताचचाल ॥ किमासुरीयाश्चहुतानपीहभागान्नगृह्णंतिहुताशनाच्च ॥ ५ ॥ क्षुब्धाकिमर्थंमकरालयाविभोऋक्षाणिखेनैवचरंतिपूर्ववत् ॥ दिशःकिमर्थंतमसापरिप्लुतादोषेणकस्याद्यवदस्वमेगुरो ॥ ६ ॥

मेरा क्या करेंगे, महेश्वरने जिसप्रकार मुझे दग्ध कियाथा, क्या वासुदेवभी उसी प्रकार करेंगे ॥ २ ॥ ब्राह्मण ऋक् सामकी आहुतिसे होमकर समस्त भक्ष्यस्वरूप आसुरीय भागको प्रदान करनेपरभी यज्ञमें तत्वत अग्निविभु वासुदेवके भयसे उसे ग्रहण नहीं करता ॥ ३ ॥ दानवेश्वर बलि घोररूपी कुलक्षणोंको देखकर शुक्राचार्यको प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोले ॥ ४ ॥ कि, हे आचार्य ! किसकारणसे पृथ्वी सम्पूर्ण पर्वतोंके सहित पवनसे सताये हुए केलेकी समान विचलित होरही है, और किसकारण असुरगण अग्निमें हवन कियेहुए भागको ग्रहण नहीं करसकतेहैं ॥ ५ ॥ हे विभो ! किसकारण समुद्र क्षुभित होरहेहैं, और किसकारणसेही आकाशमें नक्षत्र पहलेकी समान विचरण नहीं करते, किसनिमित्तही सम्पूर्ण दिशा अंधकारसे छारहीहैं, हे गुरो !

आज किसके दोषसे यह उपद्रव होरहेहैं? सो आप कहिये॥६॥पुलस्त्यजी बोले कि,शुक्राचार्य बलिके इन वचनोंको सुनकर कारणोंको जानकर बोले ॥ ७ ॥ कि, हे दैत्येश्वर ! जिसकारणसे अग्निमंत्राहुत होनेपरभी आसुरीभागको ग्रहण नहीं करती है, उसका कारण सुनो. वासुदेव भगवान् निश्चयही आरहे हैं ॥८॥ उनके चरणोंके वेगको सहन करनेमें असमर्थहो पृथ्वी पर्वतोंके साथ कंपायमान होरहीहै सम्पूर्ण सागर उद्वेल (उछलपछल) होगयेहैं, और सम्पूर्ण दिशा अंधकारसे ढकगई हैं॥९॥ पुलस्त्यजी बोले कि, शुक्राचार्यके वचन सुनकर बलि, सत्य और उत्साहयुक्त धर्मसंगत सबके हितकारी यह वचन बोले ॥ १० ॥ कि, हे भगवन् !आज्ञा दीजिये कि, वासुदेवके आनेपर मुझे धर्म, अर्थ, कामयुक्त किसप्रकारका अनुष्ठान करना कर्तव्य है. मणि, कंचन, राज्य, पृथ्वी, या धन इनमेंसे किस वस्तुका दान करनाही

पुलस्त्यउवाच ॥ शुक्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्यविरोचनसुतेरितम् ॥ अथोज्ञात्वाकारणंचततोवचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शुक्रउवाच ॥ शृणवद्यदैत्येश्वरयेनभागान्नामी
प्रयच्छंतिमहासुरेभ्यः ॥ हुताशनामंत्रहुतास्त्वमीभिर्नूनंसमागच्छतिवासुदेवः ॥ ८ ॥ तदंघ्रिविक्षेपमपारयंतीमहीसशैलाचलितादिशश्च ॥ तस्यांबलंगां
मकरालयाश्चतूद्वृत्तवेलादितिजाद्यजाताः॥९॥पुलस्त्यउवाच ॥ शुक्रस्यवचनंश्रुत्वाबलिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ धर्मसत्यंचपथ्यंचसत्त्वोत्साहसमन्वितम्॥१०॥
बलिरुवाच ॥ आयातेवासुदेवेवदममभगवन्धर्मकामार्थयुक्तंकिंकार्यंकिंचदेयंमणिकनकमथोराज्यमुर्वींधनंवा॥किंवावाच्यंमुरारेर्न्निजहितमथवातद्धितंवाप्रयुं
जेतथ्यंपथ्यंप्रियंभोवदममशुभदंतत्करिष्येनचान्यत् ॥११॥ पुलस्त्यउवाच॥तद्वाक्यंभार्गवःश्रुत्वादैत्यनाथेरितंमहत् ॥ विचिंत्यनारदप्राहभूतभव्यार्थमी
श्वरः ॥ १२ ॥ शुक्रउवाच ॥ त्वयाकृतायज्ञभुजोसुरेंद्राबहिष्कृतायेश्रुतिहष्टमार्गाः ॥ श्रुतिःप्रमाणंमखभागभाजिनःसुरास्तदर्थंहरिरभ्युपैति ॥ १३ ॥
तस्याध्वरंदैत्यसमागतस्यकार्यंशृणुत्वंपरिपृच्छसेयत् ॥ कार्यंनदेयंहिविभोतृणाग्रंयदध्वरंभूकनकादिकंवा ॥ १४ ॥

श्रेष्ठहै अपने अथवा उनके हितके निमित्त किन वचनोंका प्रयोग करना कर्त्तव्य हैं, इसकारण क्या करनेसे सत्यकी रक्षा होगी. उपकार प्राप्तहोगा, हमारा मंगल होगा और हमारा तुम्हारा दोनोंका प्रिय होगा सो आप कहिये,मैं उसके अतिरिक्त अन्य किसप्रकारका अनुष्ठान नहीं करूंगा ॥ ११ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि,हे नारद ! शुक्राचार्य दैत्यनाथ बलिके कहेहुए ऐसे वचनोंको सुनकर वर्तमान और भूतार्थ इनको विशेष विचारकर उनके वचनोंका उत्तर देते हुए ॥ १२ ॥ कि, तुमने असुरेन्द्रोंको यज्ञका भागी किया है, जिनकी श्रुतिदृष्टिमात्रहै उन देवताओंको विमुख कियाहै, परन्तु देवताही श्रुतियोंके प्रमाणसे यज्ञभागीहैं विष्णुभगवान् उसी निमित्त आरहे हैं॥ १३॥ जो हो उनके यज्ञमें आनेपर जो करनाहोगा, यह तुमने पूँछाहै सो कहताहूं श्रवणकरो. तुम इनको पृथ्वी और कनकादिक अथवा तृणाग्रतुनकेका अग्रभागभी प्रदान नहीं

करना ॥ १४ ॥ अर्थशून्य और सांत्व (प्रिय) वचन कहना, हेविभो ! कौन तुमको वर देसकताहै, देखो ! आपके उदरमें भूः भुवः और स्वर्गके अधिपति पातालेश्वर ईश्वर सर्वदा वासकरते हैं ॥ १५ ॥ बलिने उत्तर दिया कि, हे आचार्य ! मैं आपकी आज्ञानुसार अर्थीको कभी विमुख नहीं करसकता, अधिक क्याकहूं, हीनजातिके अर्थीके आनेपरभी जब उसको विमुख करनेमें समर्थ नहीं होता तब भला फिर स्वयं वासुदेवके आनेपर किसप्रकार पराङ्मुख (निराशा) करनेमें समर्थहूं ॥ ॥ १६ ॥ देखो ! जो सबलोकोंके पतिहैं, वह जनार्दन अर्थी होकर आरहेहैं इसकारण “नहीं” किसप्रकारसे कहूंगा ॥ १७ ॥ साधुओंका इसप्रकार उपदेश परस्पर सम्पूर्ण लोकोंमें सुनाजाता है कि, भूमिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य ब्राह्मणोंमें सद्भावयुक्तहो, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस उपदेशका यथार्थ अनुरूप विधानमें दृष्टि आता

वाच्यंतथासामनिरर्थकंविभोकस्त्वांवरंदातुमलंहिशक्नुयात् ॥ यस्योदरेभूर्भुवनाकपालरसातलेशानिवसंतिनित्यशः ॥१५॥ बलिरुवाच ॥ मयातवोक्तंवचनंहिभार्गवनचार्थि नेकिंचनदातुमुत्सहे ॥ समागतेप्यार्थिनिहीनवृत्तेतद्वद्धिदेवेकथमागतेहि ॥ १६ ॥ जनार्दनेलोकपतौमहर्षेसमागतेनास्तिकथंनुवच्मि ॥ एवंचश्रूयतेलोकेसतांकथयतांविभो ॥ १७ ॥ सद्भावोब्राह्मणेष्वेवकर्तव्योभूतिमिच्छता ॥ दृश्यतेऽपितथातच्चसत्यंब्राह्मणपुंगव ॥ १८ ॥ पूर्वाभ्यासेनकर्माणिसंभवंतिनृणांस्फुटम् ॥ वाक्कायमानसानीहयोन्यंतरगतान्यपि ॥ १९ ॥ किंवात्वयाद्विजश्रेष्ठपौराणीनश्रुताकथा ॥ यावृत्तामलयेपूर्वंकोशकारसुतस्यच ॥ २० ॥ शुक्रउवाच ॥ कथयस्वमहाबाहोकोशकारसुताश्रयाम् ॥ कथांपौराणिकींब्रह्मन्महाकौतूहलंहिमे ॥ २१ ॥ ॥ बलिरुवाच ॥ शृणुष्वकथयिष्यामिकथामेतांमखांतरे ॥ पूर्वाभ्यासेनविद्वान्हिसत्यंभृगुकुलोद्वह ॥ २२ ॥ मुद्गलस्यमुनेःपुत्रोज्ञानविज्ञानपारगः ॥ कोशकारइतिख्यातआसीद्ब्रह्मंस्तपोधनः ॥ २३ ॥ तस्यासीद्दयितासाध्वीधर्मिष्ठानामतःश्रुता ॥ सतीवात्स्यायनसुताधर्मशीलापतिव्रता ॥ २४ ॥

है ॥ १८ ॥ पूर्व कियेहुए अभ्यासके वशसे मनुष्योंमें मन, वचन, कायके कियेहुए जन्मान्तरीय कर्म सम्पूर्ण स्पष्टभावसे प्रगट होतेहैं ॥ १९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! पहले मलयपर्वतमें कोशकारपुत्रके सम्बन्धमें जो हुआथा आपने क्या वह पौराणिक कथा नहीं सुनी है ॥ २० ॥ शुक्राचार्य बोले कि, हेमहाबाहो ! कोशकारके पुत्रके सम्बन्धमें प्राचीन उपाख्यानको वर्णनकीजिये, मुझे उसके सुननेके निमित्त अत्यन्तकौतुक उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥ बलि बोले कि, श्रवण करो मैं इस यज्ञके प्रसंगमें उस प्राचीन कथाको वर्णन करूंगा । हे भृगुकुलोद्भव ! सत्यही कहताहूं कि, पहले अभ्यासके वशसेही मैं इसे जानताहूं ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! महर्षि मुद्गलके कोशकार नामसे विख्यात ज्ञान विज्ञानसंयुक्त एक पुत्र थे ॥ २३ ॥ उनकी भार्याका नाम धर्मिष्ठा था, वह वात्स्यायनकी पुत्री जैसी साध्वीथी उसीप्रकार सती और पतिव्रता

तथा धर्मशीला थी ॥ २४ ॥ उसके गर्भसे ब्राह्मणके एक पुत्र हुआ, यह पुत्र स्वभावसेही जड़ाकृति था, गूँगेकी समान कुछ वार्तालाप नहीं करताथा, और अंधेकी समान देखभी नहीं सकता था ॥ २५ ॥ छः दिनके पीछे ब्राह्मणी उस जड़ाकृति वाक्यशक्तिहीन अंधे पुत्रको घरके बाहर रख आई ॥ २६ ॥ इसी समयमें शूर्पाक्षिनामकी जातहारिणी दुराचारिणी निशाचरी अपने कृश बालकको लेकर आई ॥ २७ ॥ और घरके द्वारेपर बैठाल उसके बदलेमें ब्राह्मणपुत्रको ग्रहणकर भक्षण करनेके अर्थ लेगई ॥ २८ ॥ उसके पतिका नाम घटोदर था, वहनेत्रहीन उसको आतीहुई देखकर कहनेलगा कि, हे प्रिये ! तुम क्या ले आईहो ? ॥ २९ ॥ उसने उत्तर दिया कि, हे राक्षसपते ! मैं अपने बालकको रखकर ब्राह्मण कोशकारके पुत्रको ले आईहूं ॥ ३० ॥ घटोदर बोला कि, हे भद्रे ! तुमने यह व्यवहार अच्छा नहीं किया. वह

तस्यामस्यसुतोजातःप्रकृत्यावैजडाकृतिः ॥ नासौब्रूतेमूर्खवच्चनासौपश्यतिचांधवत् ॥ २५ ॥ तंजातंब्राह्मणीपुत्रंजडंमूकंविचक्षुषम् ॥ साचमातागृहद्वा
रिषष्ठेह्नितमवासृजत् ॥ २६ ॥ ततोगाच्चदुराचारारा‍क्षसीजातहारिणी ॥ स्वंशिशुंकृशमादायशूर्पाक्षीनामनामतः ॥ २७ ॥ तत्रोत्सृज्यस्वपुत्रंसाजग्राह
द्विजनंदनम् ॥ तमादायजगामाथभोक्तुंशालोदरेगुरौ ॥ २८ ॥ ततस्तामागतांवीक्ष्यतस्याभर्ताघटोदरः ॥ नेत्रहीनःप्रत्युवाचकिमानीतंत्वयाप्रिये ॥ २९ ॥
साब्रवीद्राक्षसपतेमयास्थाप्यशिशुंनिजम् ॥ कोशकारद्विजगृहेतस्यानीतःप्रभोसुतः ॥ ३० ॥ सप्राहनत्वयाभद्रेभद्रमाचरितंत्विदम् ॥ महाज्ञानीद्विजें
द्रोसौसनःशप्स्यतिकोपितः ॥ ३१ ॥ तस्माच्छीघ्रमिमंत्यक्त्वातन्नूनंघोररूपिणम् ॥ अन्यस्यकस्यचित्पुत्रंक्षिप्रमानयसुंदरि ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्तासारौ
द्रीराक्षसीकामरूपिणी ॥ समाजगामत्वरितासमुत्पत्यविहायसा ॥ ३३ ॥ सचापिराक्षससुतोनिसृष्टोगृहबाह्यतः ॥ रुरोदसत्वरंब्रह्मन्प्रक्षिप्यांगुष्ठमानने ॥
॥ ३४ ॥ साशब्दंतंचिराच्छ्रुत्वाधर्मिष्ठापतिमब्रवीत् ॥ पश्यस्वयंमुनिश्रेष्ठसुशब्दस्तनयस्तव ॥ ३५ ॥ त्रस्तासानिर्जगामाथगृहमध्यात्तपस्विनी ॥
सचापिब्राह्मणश्रेष्ठःसमपश्यच्चतंशिशुम् ॥ ३६ ॥ वर्णरूपादिसंयुक्तंतद्वत्स्वतनयंयथा ॥ ततोविहस्यप्रोवाचकोशकारोनिजांप्रियाम् ॥ ३७ ॥

द्विजेन्द्र महाज्ञानीहैं क्रोधित होकर हमैं शाप देदेंगे ॥ ३१ ॥ इसकारण हेसुन्दरी ! इस घोररूप बालकको त्यागकर अन्य और किसीके पुत्रको ले आओ ॥ ३२ ॥ वह कामरूपिणी रौद्रचारिणी निशाचरी स्वामीकी इसप्रकार आज्ञानुसार शीघ्रतासे आकाशमें उडकर वहांको गई ॥ ३३ ॥ हेब्रह्मन् ! वह राक्षसनंदन घरसे बाहर मासे छोड़े जाकर शीघ्रही मुखमें अँगूठेको डालकर रोदन करनेलगा ॥ ३४ ॥ धर्मिष्ठा रोदन शब्दको बहुत कालतक सुनकर स्वामीसे बोली कि, हे मुनिश्रेष्ठ! अपने पुत्रके सुन्दर शब्दको सुनो ॥ ३५ ॥ वह तपस्विनी यह कहकर भयभीत हो घरमेंसे चली गई, तब उन ब्राह्मणश्रेष्ठने देखा कि, ॥ ३६ ॥ यह बालक अपने पुत्रहीकी समान वर्ण और

रूपादि युक्तहैं, यह देखकर अपनी स्त्रीसे हँसकर बोले ॥ ३७ ॥ कि, हे धर्मिष्ठे ! इसके शरीरमें सम्प्रति भूतका आवेश हुआ है, कोई स्वरूपी हमें छलनेके निमित्त पृथ्वीपर आयाहै ॥ ३८ ॥ स्त्रीसे इसप्रकारके वचनकह उन्होंने यत्नसहित राक्षसकुमारको गोदीमें उठाकर बंधन किया, इसी समयमें पूर्वा राक्षसी वहाँ आई और अन्तर्धान होकर दूरसेही उस बालकको ब्राह्मणके घरमें फेंकदिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कोशकारजीने गिरतेही अपने बालकको उठालिया, परन्तु राक्षसी आकर अपने पुत्रको ग्रहण न करसकी ॥ ४१ ॥ इधर उधर ढूँढ़ पतिके निकट जाकर पुत्रके न मिलनेका समाचार सुनाया ॥ ४२ ॥ राक्षसीके चलेजानेपर महात्मा कोशकारने राक्षसके बालकको अपनी भार्याके हाथमें दिया ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त उसके पिताने अपने पुत्रको बच्चेवाली कपिलाका इक्षुरसकी समान स्वादिष्ठ क्षीर

एवमाविश्यधर्मिष्ठेभाव्यंभूतेनसांप्रतम् ॥ कोऽप्यस्माकंछलयितुंस्वरूपीभुविसंस्थितः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वावचनंपत्नींमंत्रैस्तंराक्षसात्मजम् ॥ बबंधो
ल्लिख्यवसुधांसकुशेनाथपाणिना ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नंतरेप्राप्ताशूर्पाक्षीविप्रबालकम् ॥ अंतर्द्धानंगताभूमौगृहेचिक्षेपदूरतः ॥ ४० ॥ सक्षिप्तमात्रंजग्राहको
शाकारस्तुपुत्रकम् ॥ साचाभ्येत्यगृहीतुंस्वंनाशकद्राक्षसीसुतम् ॥ ४१ ॥ इतश्चेतश्चविभ्रष्टासाभर्तारमुपागता ॥ कथयामासयद्वृत्तंस्वकीयात्मजहारिणम्
॥ ४२ ॥ एवंगतायांराक्षस्यांब्राह्मणेनमहात्मना ॥ सराक्षसशिशुर्ब्रह्मन्भार्यायैविनिवेदितः ॥ ४३ ॥ कपिलायाःसवत्सायाःपित्रात्मतनयस्तदा ॥
दध्नासंतोषितोत्यर्थंक्षीरेणेक्षुरसेनच ॥ ४४ ॥ द्वावेववर्द्धितौबालौसंजातौसप्तवार्षिकौ ॥ पित्राचक्रुतनामानौनिशाकरदिवाकरौ ॥ ४५ ॥ नैशाकरि
र्दिवाकीर्तिर्निशाकीर्तिःस्वपुत्रकः ॥ तयोश्चकारविप्रोसौव्रतबंधक्रियांक्रमात् ॥ ४६ ॥ व्रतबंधेकृतेवेदंपपाठासौदिवाकरः ॥ निशाकरोजडतयानपपाठे
तिनःश्रुतम् ॥ ४७ ॥ तंबांधवाःस्वपितरौमाताभ्राताग्रुरुस्तथा ॥ पर्यनिंदंस्तथान्येचजनामलयवासिनः ॥ ४८ ॥ ततःसपित्राक्रुद्धेनक्षिप्तःकूपेतुनिर्जले ॥
महाशिलांतदुपरिपितातस्याथव्याक्षिपत् ॥ ४९ ॥

और दधिसे संतोषित करनेलगे ॥ ४४ ॥ दोनों बालक बढ़कर इसप्रकारसे सात वर्षके हुए, पिता कोशकारने उनका नाम क्रमानुसार निशाकर और दिवाकर रखदिया ॥ ४५ ॥ इसमें निशाचरनंदनतो दिवाकर और अपना पुत्र निशाकरनामसे विख्यात हुआ. कोशकारजीने यथाक्रमसे उन दोनोंका व्रतबंधविधान किया ॥ ४६ ॥ व्रतबंधविधानके होनेपर दिवाकर वेदपाठ करनेलगा, परन्तु निशाकर जड़बुद्धिके होनेसे उसमें समर्थ न हुआ, मैंने इसप्रकार सुनाथा ॥ ४७ ॥ यह देखकर उसके पिता माता, भ्राता, बांधव गुरु और मलयवासी अन्यान्य मनुष्य सभी इसकी निन्दा करनेलगे ॥ ४८ ॥ तब पिताने क्रोधितहो उसको जलहीन कुएमें

डालदिया, और उस कुएके ऊपरसे महाशिला रखदी ॥ ४९ ॥ इसप्रकारसे कुएमें पड़ेहुए उसने बहुत वर्ष व्यतीत किये, उसमें जो एक आमलेका वृक्षथा
उसके पालन करनेके अर्थ उसपर फल लगआये ॥ ५० ॥ हे भार्गव ! इसके उपरान्त दशवर्ष व्यतीत होगये, उसकी माता कुएके निकट गई तो
उसपर शिला रक्खी देखी ॥ ५१ ॥ वह पर्वतकी समान शिलाको रक्खाहुआ देखकर ऊँचे स्वरसे कहनेलगी कि, कौन मनुष्य इस कुएको शिलासे
ढक गयाहै ॥ ५२ ॥ निशाकर कुएमेंसेही माताके वचन सुनकर कहनेलगा कि, हे अम्ब ! पिता कुएके ऊपर इस शिलाको रखगये हैं ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणी भयभीत
होकर बोली कि, तुम कुएके भीतरेसे इस अद्भुतस्वरसे उत्तर दे रहेहो, निशाकर बोला कि, मैं आपका पुत्रहूं, मेरा नाम निशाकरहै ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणी बोली कि,

एवंक्षिप्तस्तदाकूपेबहुवर्षगणान्स्थितः ॥ तत्रास्त्यामलकीगुल्मःपोषायफलितोभवत् ॥ ५० ॥ ततोदशसुवर्षेषुसमतीतेषुभार्गव ॥ तस्यमाता
गमत्कूपंतमपश्यच्छिलान्वितम् ॥ ५१ ॥ साहृष्ट्वानिचितंकूपेशिलयागिरिकल्पया ॥ उच्चैःप्रोवाचकेनेयंकूपोपरिशिलाकृता ॥ ५२ ॥ कूपांतस्थः
सुतोवाणींश्रुत्वामातुर्निशाकरः ॥ प्राहाम्बदत्तातातेनकूपोपरिशिलात्वियम् ॥ ५३ ॥ सातिभीताब्रवीत्कोसिकूपांतस्थोऽद्भुतस्वरः ॥ सोप्याहतवपुत्रो
स्मिनिशाकरइतिश्रुतः ॥ ५४ ॥ साब्रवीत्तनयोमेस्तिनाम्नाख्यातोदिवाकरः ॥ निशाकरेतिनाम्नाचनकश्चित्तनयोस्तिमे ॥ ५५ ॥ सचतत्पूर्वचरितंमातु
र्निरवशेषतः ॥ कथयामासपुत्रोसौयद्वृत्तंपूर्वमेवहि ॥ ५६ ॥ साश्रुत्वातांशिलांसुभ्रूःसमुत्क्षिप्यान्यतोऽक्षिपत् ॥ सतुकूपात्समुत्तीर्यमातुःपादौववंदच ॥
॥ ५७ ॥ सास्वानुरूपंतनयंदृष्ट्वास्वजनमग्रतः ॥ ततस्तमादायसुतंधर्मिष्ठापतिमेत्यच ॥ ५८ ॥ कथयामासतत्सर्वंचेष्टितंस्वसुतस्यच ॥ ततोह्यपृच्छ
द्विप्रोऽसौकिमिदंपातकारणम् ॥ ५९ ॥ प्रोक्तवान्यदभूत्पूर्वंमहत्कौतूहलंमम ॥ तच्छ्रुत्वावचनंधीमान्कोशकारंद्विजोत्तमम् ॥ प्राहपुत्रोऽद्भुतंवाक्यं
मातरंपितरंतथा ॥ ६० ॥ निशाकरउवाच ॥ श्रूयतांकारणंतातयेनमूकत्वमाश्रितम् ॥ मयाजडत्वमनघतथांधत्वंस्वचक्षुषा ॥ ६१ ॥

मेरा जो पुत्रहै उसका नाम दिवाकरहै, निशाकरनामका तो मेरे कोई पुत्र नहीं है ॥ ५५ ॥ तब निशाकरने पहले जो हुआथा, वह प्राचीन सकल वृत्तान्त वर्णन कर
दिया ॥ ५६ ॥ सुभ्रूधर्मिष्ठाने उसके वचन सुनकर शिलाको उठाकर एकओरको रखदिया ॥ ५७ ॥ तब निशाकरने कुएमेंसे निकलकर माताके चरणोंमें प्रणाम
किया, वह उसे लेकर स्वामीके समीप आई और अपने पुत्रका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणने उससे पूछा कि, हे तात ! इसप्रकारके
चरित्रका कारण क्याहै, तुमतो प्रथम बोलते नहीं थे, इसकारण सुननेके निमित्त मुझे परम कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ ५९ ॥ बुद्धिमान् निशाकर पिताके यह वचन
सुनकर पिता माता दोनोंसेही अद्भुत वचन कहनेलगे ॥ ६० ॥ कि, हेतात ! जिसकारणसे मैं अंधा, गूँगा और जड़ हुआथा सो श्रवण करो ॥ ६१ ॥

हे अनघ ! मैंने पूर्वजन्ममें वृन्दारकके वंशमें वृषाकपिके पुत्ररूपसे मालाके गर्भमें जन्म लियाथा ॥ ६२ ॥ पिताने मुझे धर्म, अर्थ, कामसाधक अपवर्गविषयक श्रुति और इतिहास शास्त्र पढ़ाये ॥ ६३ ॥ मैं महाज्ञानी और सर्वशास्त्रविशारद होगया, परन्तु मदान्ध और दुष्कर्ममें अभिरत हुआ ॥ ६४ ॥ मदसे मुझे लोभ हुआ लोभके वशसे मेरी प्रगल्भता (निपुणता) विनष्ट हुई, और ज्ञान नष्ट होगया ॥ ६५ ॥ मूर्खताके वशसे मैं पापमें रत होगया, पराई स्त्री और पराये धनमें मेरा मन सर्वदाही आसक्त रहने लगा ॥ ६६ ॥ इसप्रकार पराई स्त्रीके स्पर्श और पराये धनके हरण करनेमें युक्तहो समयसे मेरी मृत्यु होगई, तब मैं रौरवनरकमें गया ॥ ६७ ॥ सहस्रवर्षके बीतनेपर जब पापसे मुक्त हुआ तो मृगाधिपति (शेर) होकर वनमें पापवृत्तिके निमित्त सम्पूर्णमृगोंकी हत्याकरने लगा ॥ ६८ ॥ इसके उपरान्त व्याघ्रयोनिमें आनेपर बद्ध और

पूर्वमासमहंविप्रकुलेवृंदारकस्यतु ॥ वृषाकपेश्चतनयोमालागर्भसमुद्भवः ॥ ६२ ॥ ततःपितापाठयन्मांशास्त्रंधर्मार्थकामदम् ॥ मोक्षमार्गपरंतातसेतिहासं
श्रुतिंतथा ॥ ६३ ॥ सोऽहंतातमहाज्ञानीपरपारविशारदः ॥ जातोमदांधस्तेनाहंदुष्कर्माभिरतोऽभवम् ॥ ६४ ॥ मदात्समभवल्लोभस्तेननष्टाप्रगल्भता ॥
विवेकोनाशमगमन्मदोमेमोहमागतः ॥ ६५ ॥ मूढभावतयाचाथजातःपापरतोऽस्म्यहम् ॥ परदारपरार्थेषुसदामेमानसंस्थितम् ॥ ६६ ॥ परदाराभिम
र्शित्वात्परार्थहरणादपि ॥ भृतोह्युद्वंधनेनाहंनरकंरौरवंगतः ॥ ६७ ॥ तस्माद्वर्षसहस्रांतेमुक्तःशिष्टेतदागसि ॥ अरण्येमृगहापापःसंजातोऽहंमृगाधिपः ॥
॥ ६८ ॥ व्याघ्रत्वेसंस्थितस्तावद्बद्धःपंजरगःकृतः ॥ नराधिपेनविभुनानीतश्चनगरंद्विज ॥ ६९ ॥ बद्धस्यपंजरस्थस्यव्याघ्रत्वेपिस्थितस्यच ॥ धर्मार्थकाम
शास्त्राणिप्रत्यभासंतसर्वशः ॥ ७० ॥ ततोनृपतिशार्दूलोगदापाणिःकदाचन ॥ एकवस्त्रपरीधानोनगरान्निर्ययौबहिः ॥ ७१ ॥ तस्यभार्याजितानामरूपे
णाप्रतिमाभुवि ॥ सानिर्गतेभर्तरितुममांतिकमुपागता ॥ ७२ ॥ तांदृष्ट्वावबृधेचित्तेपूर्वाभ्यासान्मनोभवः ॥ यथैवकामशास्त्रेषुततोऽहमवदंचताम् ॥ ७३ ॥
राजपुत्रिसुकल्याणिनवयौवनशालिनि ॥ चित्तंहरसिमेभीरुकोकिलाध्वनिनायथा ॥ ७४ ॥

पंजरगत पींजरेके मध्यगत हुआ; हे ब्राह्मण ! इसी अवस्थामें कोई बलवान् राजा मुझे अपनी नगरीको लेगया ॥ ६९ ॥ इसप्रकारसे व्याघ्रहो बद्ध और पंजरगत हुआ, तोभी सब धर्म, अर्थ, काम, शास्त्र सर्वतोभावसे मेरेको प्रतिभात ज्ञानविषय रहा ॥ ७० ॥ इसके उपरान्त वह नृपतिशार्दूल एकसमय गदा हाथमें ले एक वस्त्रको धारण कर नगरीसे बाहर निकले ॥ ७१ ॥ उनकी भार्याका नाम अजिताथा पृथ्वीमें उसके रूपकी किसीसेभी बराबरी नहीं की जाती, पतिके चलेजानेपर वह मेरे निकट आई ॥ ७२ ॥ उसको देखकर मेरे हृदयमें पूर्वअभ्यासके वशसे मनोभवका आविर्भाव हुआ, कामशास्त्रको मैं जिसप्रकारका जाननेवालाथा, उसीके अनुसार उससे मैं बोला ॥ ७३ ॥ कि, हे नवयौवनशालिनि ! सुकल्याणि ! राजनंदिनि ! कोकिला जिसप्रकार कलध्वनिसे मनको

हरण करतीहै, उसीप्रकारसे तुमभी मेरे चित्तको हरण करतीहो ॥ ७४ ॥ उस तनुमध्यमाने यह वचन सुनकर उत्तर दिया कि, हे व्याघ्र ! किसप्रकारसे हम दोनों में रतियोग उपागतहोगा ? ॥७५॥ तब मैं उस सुमध्यमा राजपुत्रीसे बोला कि,तुम द्वारको खोलो तो मैं शीघ्रही निकल आऊँ ॥ ७६ ॥ वह बोली कि, हेव्याघ्र ! दिनमें तो सब लोग देखैंगे,इसकारण रात्रिमें किवाँड़ खोलदूंगी, तब इच्छानुसार दोनोंजने विहार करैंगे ॥ ७७ ॥ मैं बोला कि, मैं अब अधिक समयको सहन नहीं करसकता इसकारण द्वार खोलकर मुझे बंधनसे मुक्त करो ॥ ७८ ॥ यह वचन सुन उस वरश्रोणीने द्वार खोल दिया, तब उसीसमय मैं बाहर निकला ॥ ७९ ॥ मैं अत्यन्त बलवान्था, पाश और निगड़ (पैकड़) इत्यादि सभी छिन्न भिन्न करके फेंकदीं, और विहारकी इच्छासे उस राजरानीको ग्रहण किया ॥ ८० ॥ राजाके

सातद्वचनमाकर्ण्यप्रोवाचतनुमध्यमा ॥ कथमेवावयोर्व्याघ्ररतियोगउपैष्यति ॥ ७५ ॥ ततोहमब्रवंतातराजपुत्रींसुमध्यमाम् ॥ द्वारमुद्घाटयाद्य त्वांनिगंमिष्यामिसत्वरम् ॥ ७६ ॥ साप्यब्रवीद्दिवाव्याघ्रलोकोऽयंपरिपश्यति ॥ रात्रावुद्घाटयिष्यामिततोरंस्यावचेच्छया ॥ ७७ ॥ तामेवाहमवोचंवैकालक्षेपोनमेक्षमः ॥ तस्मादुद्घाटयद्वारंमांबन्धाच्चविमोचय ॥ ७८ ॥ ततःसापिवरश्रोणीद्वारमुद्घाटयच्छनैः ॥ उद्घाटितेततोद्वारेनिर्गतोऽहंबहिःक्षणात् ॥७९॥ निगडादिकपाशाश्चच्छिन्नाबलवतामया ॥ सातदानृपतेर्भार्यागृहीतारंतुमिच्छता ॥ ८० ॥ ततोदृष्टोऽस्मिनृपतेर्भृत्यैरतुलविक्रमैः ॥ शस्त्रहस्तैःसर्वतश्चतैरहंपरिवेष्टितः ॥ ८१ ॥ महापाशैःशृंखलाभिःसमाहृत्यचमुद्गरैः ॥ बद्धस्तानब्रवंमैवंमांहंतुंयूयमर्हत ॥८२॥ तेचमद्वचनंश्रुत्वामामेवंरजनीचरम् ॥ वटवृक्षेदृढंबद्ध्वाघातयन्वैतपोधन ॥८३॥ भूयस्ततश्चनरकंपरदारनिषेवणात् ॥ गतोवर्षसहस्रांतेजातोहंश्वेतगर्दभः ॥८४॥ ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्यगृहेबहुकलत्रिणः ॥ तत्रापिसर्वविज्ञानंप्रत्यभासतमेतदा ॥ ८५ ॥ उपवाह्यःकृतश्चास्मिद्विजयोषिद्भिरादरात् ॥ एकदानवराष्ट्रीयाभार्यातस्याग्रजन्मनः ॥८६॥ विमतिर्नामतःख्यातागंतुमैच्छद्गृहेपितुः ॥ तामुवाचपतिर्गच्छआरुह्यैनंचगर्दभम् ॥८७॥ मासेनागमनंकार्यंनस्थेयंपरतस्ततः ॥ इत्येवमुक्तासाभर्त्रातन्वीचारुह्यगर्दभम् ॥८८॥

सेवकोंने मुझे देख शस्त्र हाथमें ले मुझे चारोंओरसे घेर लिया ॥ ८१ ॥ इसके उपरान्त मुद्गरोंसे पीड़ितकर महापाश और जंजीरोंसे बांधदिया, मैं उन्हें निवारण करता हुआ बोला कि, मेरा तुम वध न करना ॥ ८२ ॥ हे तपोधन ! उन्होंने मेरेयह वचन सुनकर वटवृक्षको उखाड़कर मुझे मारा ॥८३॥ मैं पराई स्त्रीके सेवन करनेसे फिर नरकमें पड़ा, फिर सहस्रवर्षके बीतनेपर श्वेतगर्दभ होकर मैंने जन्म लिया ॥ ८४ ॥ इसके उपरान्त बहुकलत्री अग्निवेश्य नामक ब्राह्मणके घर रहनेलगा उससमय पूर्वार्जित ज्ञानका मुझे उदयहुआ ॥८५॥ ब्राह्मणकी स्त्रियोंने सन्मान करके मुझे वाहनमें नियुक्त किया, एक समय उस ब्राह्मणकी नवराष्ट्रदेशकी स्त्रीथी ॥८६॥ उसका नाम विमति था,उसकी अपने पिताके घर जानेकी इच्छा हुई,पति उससे बोले कि, तुम उस गर्दभपर चढ़कर ॥८७॥ एकमहीनेके भीतर आजाना, इससे अधिक न

रहना, स्वामीके इसप्रकार कहनेपर वह तन्वी गर्दभपर चढ़कर ॥ ८८ ॥ उसे बंधनसे खोलकर शीघ्रही चली, इसके उपरान्त आधेमार्गके अतिक्रान्त होनेपर
वह मेरी पीठपरसे उतरी ॥ ८९ ॥ और नदीमें स्नान करनेके निमित्त गई, उस स्वरूपाके वस्त्रहीन होनेपर उसे सर्वांगसुन्दरी देखकर मैंने आक्रमण किया ॥ ९० ॥
वह मेरे द्वारा गृहीतहो उसी समय पृथ्वीपर गिरगई, हे तात ! तब मैं आतुर होकर उसके ऊपर गिरा ॥ ९१ ॥ उसके अनुसारी लोग मुझे इस अवस्थामें देखकर
लकड़ी लेले शीघ्रतासे मेरे ऊपरको दौड़े ॥ ९२ ॥ उनके भयसे मैं ब्राह्मणीस्त्रीको त्यागकर दक्षिणकी ओरको मुखकर शीघ्रतासे जानेलगा, लगामकी डोरीसे शीघ्रही प्राण
नाश होगये, उसस्त्रीमें आसक्त होनेसे मैं छै रात्रिके बीचमेंही मृतक होगया ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ और फिर नरकमें जाकर गिरा, फिर उससे मुक्तहो महावनमें

बंधनादवमुच्याथजगामत्वरितामुने ॥ ततोर्द्धपथिसातन्वीमत्पृष्ठादवरुह्यवै ॥ ८९ ॥ अवतीर्णानदींस्नातुंसुरूपामार्द्रवाससम् ॥ सर्वैरंगैरूपवतींदृष्ट्वातामह
माद्रवम् ॥ ९० ॥ मयाचाभिद्रुतातूर्णंपतितापृथिवीतले ॥ तस्याउपरिभोतातपतितोऽहंतदातुरः ॥ ९१ ॥ दृष्टोऽभवंतदातस्यानृणातदनुसारिणा ॥ तदो
द्यम्यसयष्टिंमांसमधावत्त्वरान्वितः ॥ ९२ ॥ तद्भयात्तांपरित्यज्यप्रद्रुतोदक्षिणामुखः ॥ ततोऽभिद्रवतस्तूर्णंखलीनरशनामुने ॥ ९३ ॥ समासन्नातदाब्रह्मन्म
मासौप्राणनाशने ॥ तत्रासक्तस्यषड्रात्रादभून्मेजीवितक्षयः ॥ ९४ ॥ ततोऽस्मिनरकंभूयस्तस्मान्मुक्तोऽभवंशुकः ॥ महारण्येततोबद्धःशबरेणदुरात्मना ॥
॥ ९५ ॥ पंजरेन्यस्यविक्रीतोवणिक्पुत्रायशालिने ॥ तेनाप्यंतःपुरतरेयुवतीनांसमीपतः ॥ ९६ ॥ सर्वशास्त्रविदित्येवदोषघ्नश्चेत्यवस्थितः ॥ तत्रासतस्तरु
ण्यस्ताओदनादिफलादिभिः ॥ ९७ ॥ पक्वैश्चदाडिमफलैःपोषयन्त्योदिनेदिने ॥ एकदापद्मपत्राक्षीश्यामापीनपयोधरा ॥ ९८ ॥ सुश्रोणीतनुमध्याचव
णिक्पुत्रीप्रियाशुभा ॥ नाम्नाचंद्रावलीनामसमुद्धृत्याथपंजरम् ॥ ९९ ॥ मांजग्राहसुचार्वंगीकराभ्यांचारुहासिनी ॥ चकारोपरिपीनाभ्यांस्तनाभ्यांसा
तदाचमाम् ॥ १०० ॥ ततोहंकृतवान्भावंतस्यांविलसितुंप्लवन् ॥ ततोनुप्लवमानोहंहारेमर्कटबंधने ॥ १०१ ॥

तोतेके रूपसे उत्पन्न हुआ, दुरात्मा शबर (भील) ने मुझे बांधकर ॥ ९५ ॥ पींजरेमें बैठाले किसी धनवान् वैश्यपुत्रके हाथ बेंचदिया. उस वैश्यपुत्रने अपने अंतः
पुरमें युवतियोंके समीप ॥ ९६ ॥ मुझे सर्व शास्त्रविशारद और दोषघ्न जानकर रखदिया, वहाँ रहनेके समय स्त्रियें मुझे फलादि और ओदनादि ॥ ९७ ॥ और
पक्के २ अनार फल देकर प्रतिदिन मेरा पालन पोषण करनेलगी. एकसमय पद्मपत्राक्षी श्यामा पीनपयोधरा ॥ ९८ ॥ सुश्रोणी तनुमध्यमा, प्रिया, शुभा और चंद्रा
वली नामकी वणिक्पुत्री मेरे पींजरेको उतार ॥ ९९ ॥ वह सुचार्वंगी, चारुहासिनी अपने दोनों हाथोंसे पींजरेसे निकाल पयोधर (स्तन) के ऊपर
स्थापित किया ॥ १०० ॥ तब मैं प्लुतगतिकी सहायतासे उसमें विहार करनेके निमित्त उद्यत हुआ, इसीकारणसे उस मर्कटबंधनहारयष्टिसे बद्ध होनेसे ॥ १०१ ॥

पापात्मा मेरी मृत्यु होगई, फिर मैं अपने दुष्कर्मोंसे घोरनरकमें पतित हुआ॥ १०२॥इससे उन्मुक्त होकर शबरालय (भीलोंके घरमें) वृषरूपसे जन्म लिया; वह शबर एकसमय मुझे नियोजित कर अपनी विलासिनीको ॥ १०३ ॥ आरोपित कर महातेजसे वनमें जानेके लिये उद्यत हुआ, उसके आगे होनेपर उसकी विलासिनी पीठ पर चढ़कर चली ॥ १०४ ॥ जानेके समय गान करनेलगी, उसे सुनकर मेरी इन्द्रिय व्यथित होगईं, उससमय पृष्ठदेशको देखकर विपर्य्यस्त और आप्लुत ॥ १०५ ॥ और इसी कारणसे उसी समय पृथ्वीपर पतित हुआ, तब अत्यन्त भ्रम उपस्थित हुआ, फिर योक्तबद्ध होनेपर इस पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्त किया ॥ १०६ ॥ पुनर्वार नरकमें निमग्न और दशवर्षके बीतनेपर आपके गृहमें जातिस्मर होकर जन्मलिया. हे तात ! तबतें जन्मपरम्परा

तत्राहंपापसंयुक्तोमृतश्चतदनंतरम् ॥ भूयोपिनरकंघोरंप्रपन्नोस्मिसुदुर्मतिः ॥२॥ तस्मान्मृतोवृषत्वंचगतश्चांडालपक्कणे ॥ सचैकदामांशकटेनियोज्यस्वां
विलासिनीम् ॥ ३ ॥ समारोप्यमहातेजागंतुंकृतमतिर्वनम् ॥ तत्राग्रतःसचांडालोगतःसाचास्यपृष्ठतः ॥४॥ गायंतीयातितच्छ्रुत्वाजातोऽहंव्यथितेंद्रियः ॥
पृष्ठतस्तुसमालोक्यविपर्यस्तस्तथाप्लुतः ॥ ५ ॥ पतितोभूमिमगमंक्षणेनक्षणविभ्रमात् ॥ योक्त्रेणबद्धएवास्मिपंचत्वमगमंततः ॥ ६ ॥ भूयोनिमग्नोनरके
दशवर्षशतान्यहम् ॥ जातस्तवगृहेतातसोऽहंजातिमनुस्मरन्॥ तावंत्येवाद्यजन्मानिस्मरामिचानुपूर्वशः ॥ ७ ॥ पूर्वाभ्यासाच्चशास्त्राणांवचनंचागतंमम ॥
तदहंज्ञातविज्ञानोनाचरिष्येकथंचन ॥ ८ ॥ पापानिघोररूपाणिमनसाकर्मणागिरा ॥ शुभंवाप्यशुभंवापिस्वाध्यायःशास्त्रजीविका ॥ ९ ॥ बंधनंवावधोवा
पिपूर्वाभ्यासेनजायते ॥ जातिंयदापौर्विकींतुस्मरतेतातमानवः ॥ तदासतेभ्यःपापेभ्योनिवृत्तिंहिकरिष्यति ॥ ११० ॥ तस्माद्गमिष्येशुभवर्धनायपापक्षया
याथमुनेह्यरण्यम् ॥ भवान्दिवाकीर्तिमिमंसुपुत्रंगृहस्थधर्मेविनियोजयस्व ॥ ११ ॥ बलिरुवाच ॥ इत्येवमुक्तःसनिशाकरस्तदाप्रणम्यमातापितरौमहर्षे ॥
जगामपुण्यंसदनंमुरारेःख्यातंबदर्याश्रममाद्यमैशम् ॥ ११२ ॥

आनुपूर्वक्रमसे मुझे स्मरण होताहै ॥ १०७ ॥ पूर्वाभ्यासके बलसे शास्त्रवचनभी मुझे समागत हुए हैं. इनके प्रभावसे मैं ज्ञातविज्ञान हुआहूँ; किसी प्रकारभी मन, वचन और कर्मद्वारा घोररूप सबके पापोंका अनुष्ठान नहीं करूँगा, शुभ, अशुभ, स्वाध्याय, शास्त्रजीविका ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ बंधन, वध यह सभी पूर्वाभ्यासके वशसे होते हैं, लोकोंमें जब पौर्विकी जातिस्मृति मार्गपर उदित होतीहै, तब उन पापोंसे निवृत्त होना उसका अवश्य कर्तव्य है ॥ ११० ॥ इसीकारणसे मैं शुभ वर्द्धन और पापक्षय समुद्धावनके अर्थ वनको जाऊँगा, आप इस सुसंतान दिवाकरको गृहस्थधर्ममें नियुक्त कीजिये ॥ १११ ॥ बलि बोले कि, हे महर्षे ! निशाकरने इसप्रकार वचन कहे और पिता माता दोनोंको प्रणामकर भगवान् नारायणके आश्रित, सुविख्यात, आद्य, ईश, बदरिकाश्रमको गया ॥ ११२ ॥

इसप्रकारसे पूर्वाभ्यासके वशसेही मनुष्योंमें दान, अध्ययनादि चला आता है, मैंनेभी पूर्वमें दानादिका अभ्यास किया था, इसीकारणसे इसप्रकार कहताहूँ ॥ ११३ ॥
सारांश यह है कि–दान, तपस्या, अध्ययन, महापातक और अग्निदाहज्ञान, धर्म, अर्थ और यश इत्यादि सभी पूर्वाभ्यासके वशसे प्रगट होते हैं, किसीप्रकारभी इनका
व्यभिचार लक्षित नहीं होता ॥ ११४ ॥ बलवान् बलि अपने गुरु और ईश्वर (प्रभु) शुक्राचार्यसे इसप्रकार कहकर मधुकैटभारि चक्र गदापाणि नारायणका ध्यान
करनेलगे ॥ ११५॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां शुक्रबलिसम्वादे एकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इसी अवसरमें वामनाकृति भगवान् यज्ञवाटके
निकट आकर ऊँचे स्वरसे कहनेलगे ॥ १ ॥ कि, ॐकाररूप सम्पूर्ण श्रुतियें तपोधनोंके स्वरूपसे इस यज्ञमें विराजमान होरहीहैं, यह अश्वमेधयज्ञ सब यज्ञोंमें प्रधानहै,

एवंपुराभ्यासरतस्यपुंसोभवंतिदानाध्ययनादिकानि ॥ तस्माच्चपूर्वंद्विजवर्यवैमयात्वभ्यस्तमासीन्नतुतेब्रवीमि ॥ १३ ॥ दानंतपोवाध्ययनंमहर्षेस्तेयंमहा
पातकमग्निदाहः ॥ ज्ञानानिचैवाभ्यसनाच्चपूर्वंभवंतिधर्मार्थयशांसिनान्यथा ॥ १४ ॥ इत्येवमुक्तोबलवान्सशुक्रंदैत्येश्वरःस्वंगुरुमीशितारम् ॥ ध्यायं
स्तदातंमधुकैटभारिंनारायणंचक्रगदासिपाणिम् ॥ ११५ ॥ इति श्रीवामनपुराणेशुक्रबलिसंवादोनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥
एतस्मिन्नंतरेप्रांप्तेभगवान्वामनाकृतिः ॥ यज्ञवाटसमीपेसउच्चैर्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ॐकारपूर्वाःश्रुतयोमखेऽस्मिंस्तिष्ठंतिरूपेणतपोधनानाम् ॥ यज्ञो
ऽश्वमेधःप्रवरःक्रतूनांयुक्तंयथास्यात्कुरुदैत्यनाथ ॥ २ ॥ इत्थंवचनमाकर्ण्यदानवाधिपतिर्वशी ॥ सार्घ्यपात्रःसमभ्यागाद्यत्रदेवःस्थितोऽभवत् ॥३॥ ततः
सदेवदेवेशंपूजयित्वाविधानतः ॥ प्रोवाचभगवन्ब्रूहिकिंददामितवमानद ॥ ४ ॥ ततोब्रवीन्मधुरिपुर्दैत्यराजंतमव्ययः ॥ विहस्यसुचिरंकालंभरद्वाजमवे
क्ष्यच ॥ ५ ॥ गुरोर्मदीयस्यगुरुस्तस्यास्त्यग्निपरिग्रहः ॥ नसधारयतेभूम्यांपारक्यायांचपावकम् ॥ ६ ॥ तदर्थमभियाचेऽहंमममदानवपार्थिव ॥ मच्छरी
रप्रमाणेनदेहिराजन्क्रमत्रयम् ॥ ७ ॥ मुरारिवचनंश्रुत्वाबलिर्भार्यामवेक्ष्यच ॥ बाणंचतनयंवीक्ष्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥

इसकारण हे दैत्यनाथ ! जो योग्य है वही अनुष्ठान कीजिये ॥ २ ॥ जितेन्द्रिय बलि यह वचन सुनकर अर्घ्यपात्रके साथ वामनजीकी ओरको गये ॥ ३ ॥ और
विधिपूर्वक उनदेवाधिदेवकी पूजा कर बोले कि, हे भगवन् ! आप सबके सन्मानकी रक्षा करते हैं, मुझे क्या देना होगा सो आज्ञा दीजिये ॥ ४ ॥ अव्ययस्वरूप
मधुरिपु बहुत कालतक हँसकर भरद्वाजकी ओरको देखकर बोले ॥ ५ ॥ जो हमारे गुरुके गुरुहैं, उनके अग्निका परिग्रहहै, वह पराई भूमिमें अग्निको धारण
नहीं करते ॥ ६ ॥ हे दानव ! उसीके निमित्त मैं याचना करताहूं कि, मेरे शरीरके प्रमाणके अनुसार तीन चरण पृथ्वी दान करो ॥ ७ ॥ बलि मुरारिके यह वचन

सुनकर भार्या और पुत्रकी ओरको देखकर कहनेलगे ॥ ८ ॥ कि, यह प्रमाणके अनुसारही केवल वामन नहींहैं, स्वभावसेही लघुप्रियहैं, जिसकारण मुझ मनुष्यके निकट केवल तीनही चरणकी याचना करतेहैं ॥ ९ ॥ जो दिव्यपुण्यसे बहिष्कृतहैं और अल्पबुद्धिहैं, विधाता प्रायः उनको भूमिके परिमाणसे धनादि दान नहीं करते, इसी कारणसे उन विष्णुने बहुत प्रयास नहीं किया ॥ १० ॥ इसकारण जिसका भाग्य हीनहै विधाता उसको पृथ्वीदान नहीं करते, इसीकारणसे मैं दाताहूं, परन्तु यह केवल तीनही चरणकी याचना करतेहैं ॥ ११ ॥ महात्मा बलि इसप्रकार कह पुनर्वार भगवान् वामनजीसे बोले कि, हे विष्णो ! गज, वाजी, भूमि, दासी और हिरण्य आपकोभी इच्छितहैं ॥ १२ ॥ आप इनकी याचना कीजिये, मैं जगत्पति होकर वह सभी आपको दान करूंगा, इसप्रकारसे तीन पैर दान करनेमें किसप्रकार हमें लज्जा नहीं होगी ॥१३॥ रसातल, पृथ्वी, अथवा स्वर्ग इनमेंसे आपको क्या देना होगा ? हे वामन ! आप स्वस्थ होकर आज्ञा कीजिये ॥ १४ ॥ वामनजी बोले कि, जो हाथी घोड़े पृथ्वी और रत्नादिके प्रार्थीहैं उन्हें आप वही दान कीजिये और मैं तो तीन पैरकी प्रार्थना करताहूं मुझे आप यही दीजिये ॥ १५ ॥ महात्मा वामनजीके इसप्रकार कहनेपर बलि भृङ्गार (झारी टोंटीदार जलपात्र) को ग्रहण कर तीन पैर पृथ्वीदान करनेके निमित्त उद्यत हुए ॥ १६ ॥ हाथसे संकल्पके जलके गिरतेही भगवान् वामनजीने त्रिलोकीको धारण करनेके अर्थ जगन्मय दिव्यरूप धारण किया ॥ १७ ॥ तब उनके चरणोंसे भूमि, जघनसे आकाश, जानुमें सत्य और तपोलोक, ऊरुसे मेरु और मंदराचल पर्वत ॥ १८ ॥ कटिमें विश्वेदेव, बस्ति और शीर्षदेशमें मरुत, लिंगमें मन्मथ, वृषण (अंडकोश) में प्रजापति ॥ १९ ॥

नकेवलंप्रमाणेनवामनोऽयंलघुप्रियः ॥ येनक्रमत्रयंचोक्तंयातेतेमद्विधेपिच ॥ ९ ॥ प्रायोविधाताल्पधियांनराणांबहिःकृतानांखलुदिव्यपुण्यैः ॥ धनादिकंभूरिनवैददातियथैवविष्णुर्नबहुप्रयासः ॥ १० ॥ नददातिविधिस्तस्ययस्यभाग्यविपर्ययः ॥ मयिदातरियश्चायंयाचतेचक्रमत्रयम् ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वा वचनंमहात्माभूयोऽप्युवाचाथहरिंसुरारिः ॥ यावच्चविष्णोगजवाजिभूमिदासीर्हिरण्यंयदपीप्सितंच ॥ १२ ॥ भवांश्चयाचिताविष्णोत्वहंदाताजगत्पतिः ॥ दातुंवैममलज्जेयंकथंनस्यात्पदत्रये ॥ १३ ॥ रसातलंस्वांपृथिवींभुवंनाकमथापिवा ॥ एतेभ्यःकतमंदद्यांस्वस्थोयाचस्ववामन ॥ १४ ॥ वामनउवाच ॥ गजाश्वभूहिरण्यादितदर्थिभ्यःप्रदीयताम् ॥ एतावदेवसंप्रार्थीदेहिराजन्पदत्रयम् ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्तेवचनेवामनेनमहात्मना ॥ बलिर्भृंगारमादायददौ विष्णोःक्रमत्रयम् ॥ १६ ॥ पाणौतुपतितेतोयेदिव्यंरूपंचकारह ॥ त्रैलोक्यक्रमणार्थायवज्ररूपंजगन्मयम् ॥ १७ ॥ पादेभूमिस्तथाजंघेनभस्त्रैलोक्यवंदितम् ॥ सत्यंतपोजानुयुग्मेऊरूस्तोमेरुमंदरौ ॥ १८ ॥ विश्वेदेवाःकटीभागेमरुतोबस्तिशीर्षयोः ॥ लिंगस्थितोमन्मथश्चवृषणस्थःप्रजापतिः ॥ १९ ॥

कुक्षिमें सप्तसागर, जठरमें सम्पूर्णलोक, त्रिवलीमध्यमें सम्पूर्ण नदियें और उदरमध्यमें यज्ञ ॥ २० ॥और इष्टापूर्त्तादि सम्पूर्ण क्रियामंत्र, पृष्ठदेशमें वसु, स्कंदभागमें सम्पूर्ण रुद्र
॥ २१ ॥ भुजाओंमें दिशायें, अष्टकरमें आठवसु हृदयमें ब्रह्मा, हृदयके हस्थियोंमें वज्र ॥ २२ ॥ वक्षस्थलमें श्रीसहस्र, मनमें चंद्रमा, ग्रीवामें देवमाता अदिति, वलयमें
सम्पूर्ण विद्या ॥ २३ ॥ मुखमें अग्निसहित ब्राह्मण, अधरोंमें संस्कार धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सहित सम्पूर्ण शास्त्र ॥ २४ ॥ ललाटमें श्री, श्रवण (कान) में
अश्विनीकुमार, श्वासमें मातरिश्वा (वायु) सम्पूर्ण संधियोंमें (४९) मरुत् ॥२५॥दशनपंक्तिमें सर्वसूक्त, जिह्वामें देवी सरस्वती, नेत्रोंमें चंद्रमा और सूर्य पक्ष्म (पलक)
समूहमें कृत्तिकादि (२७) सबनक्षत्र ॥२६॥ भ्रूमध्यमें विशाखा, रोमकूपोंमें तारकागण और रोमोंमें सम्पूर्ण महर्षि अधिष्ठित हुए ॥ २७ ॥ इसप्रकारसे सर्वगुणाधार

कुक्षिस्थाअर्णवाःसप्तजठरेभुवनान्यथो ॥ वलिषुत्रिषुनद्यश्चयज्ञोंतर्जठरेस्थितः ॥ २० ॥ इष्टापूर्तादयःसर्वाःक्रियामंत्राश्चसंस्थिताः ॥ पृष्ठस्थावसवोदेवाः
स्कंधोरुद्रैरधिष्ठितः ॥ २१ ॥ बाहवश्चदिशःसर्वावसवोष्टौकराःस्मृताः ॥ हृदयेसंस्थितोब्रह्माकुलिशोहृदयास्थिषु ॥ २२ ॥ श्रीसहस्रमुरोमध्येचंद्रमा
मनसिस्थितः ॥ ग्रीवाऽदितिर्देवमाताविद्यास्तद्वलयेस्थिताः ॥ २३ ॥ मुखेतुसाग्नयोविप्राःसंस्कारादशनच्छदाः ॥ धर्मकामार्थमोक्षाश्चशास्त्रैश्चैवसम
न्विताः ॥ २४ ॥ लक्ष्म्यासहललाटस्थौश्रवणस्थौहिचाश्विनौ ॥ श्वासस्थोमातरिश्वाचमरुतःसर्वसंधिषु ॥ २५ ॥ सर्वसूक्तानिदशनाजिह्वादेवीसरस्वती ॥
चंद्रादित्यौचनयनेपक्ष्मस्थाःकृत्तिकादयः ॥ २६ ॥ विशाखादेवदेवस्यभ्रुवोर्मध्येव्यवस्थिताः ॥ तारकारोमकूपेभ्योरोमाणिचमहर्षयः ॥ २७ ॥गुणैःसर्व
मयोभूत्वाभगवान्भूतभावनः ॥ क्रमेणैकेनजगतींजहारसचराचराम् ॥ २८ ॥ ऊर्ध्वंविक्रममाणस्यमहारूपस्यतस्यवै ॥ दक्षिणोऽभूत्ततश्चेंदुःसूर्योभूत्सव्य
तस्तथा ॥ २९ ॥ तृतीयक्रमणेनाथस्वर्महर्जनतापसाः ॥ क्रांतास्त्वर्द्धेनवैराजन्नर्द्धेनापूर्यताम्बरम् ॥ ३० ॥ ततःप्रवर्धितोब्रह्मन्विष्णुर्वैदाक्षिणांतरे ॥ ब्रह्मां
डोदरमाहत्यनिरालोकंजगामसः ॥ ३१ ॥विश्वांघ्रिणाप्रसरताकटाहेभेदितेऽम्बरात् ॥ कुटिलाविष्णुपादात्तुससाराकुलिताततः ॥ ३२ ॥

भगवान् भूतभावनने सर्वमय होकर एकमात्र पाद प्रक्षेपसेही स्थावर जंगमके साथ सम्पूर्ण संसारको हरण करलिया ॥ २८ ॥ दूसरे पादप्रक्षेपसे ऊर्द्ध्व भागको आक्रमण
करतेहुए, उन विराट्रूपी वामन भगवान्के दक्षिण और वामभागमें सूर्य चंद्रमा स्थितहुए ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त तीसरे चरणसे उन्होंने आधेसे तो स्वर्गलोक,
मर्त्यलोक, जनलोक और तपलोकको आक्रमण किया और आधेसे आकाशको, नाँपकर पूर्ण करनेलगे ॥ ३० ॥ हेब्रह्मन् ! उससमय वह वर्द्धितहो क्षणभरके बीच
ब्रह्मांडमध्यको व्याप्तकर निजलोकको चलेगये ॥ ३१ ॥ उनके विश्वव्यापी चरण फैलकर अंडकटाहको भेदन करनेपर वह कुटिल (गंगा) उनके पादस्पर्श (टक्कर)

पातेही व्याकुल होकर विष्णुके चरणोंमें गिरी ॥ ३२ ॥ इसीकारणसे तपस्वियोंने विष्णुपदी कहकर उसकी स्तव की. इसके उपरान्त तीसरे चरणके पूर्ण न होनेसे भगवान् वामनदेव ॥ ३३ ॥ बलिके निकट जाकर मंद मुसकाते हुए बोले कि, हे दैत्येन्द्र ! ऋणसे विना मुक्तहुए घोर (भयंकर) बंधनमें पड़ना होताहै, इसकारण तुम मेरा तीसरा चरण पूर्ण करदो ॥ ३४ ॥ मुरारिके यह वचन सुनकर बलिके पुत्र बाण हँसकर उन देवाधिदेव वामनजीसे यह सारगर्भ वचन बोले ॥ ३५ ॥ कि, हे जगत्पते ! आप भुवनेश्वरोंके स्वयं विधाताहैं, आप पृथ्वीको अल्पाकार बनाकर फिर किसप्रकारसे विस्तृत आकारकी पृथ्वीकी बलिके निकट प्रार्थना करतेहो ? आपने क्यों नहीं पहले अपने आकारके अनुसार बड़ी पृथिवी नापा, जिसमें आपका पाद पूर्ण होता ॥ ३६ ॥ हेविभो ! आपने पृथ्वीको इस भुवनके बीच जिस परिमाणसे सृष्टि की है मेरे पितानेभी उसी परिमाणसे आज आपको दीहै, इसकारण अब किसनिमित्त वचनोंसे छलकर इनका बंधनकरनेके निमित्त उद्यत

तस्माद्विष्णुपदीत्येवंतांस्तुवंतिचतापसाः ॥ भगवानप्यसंपूर्णेतृतीयेनुक्रमेविभुः ॥३३॥ समभ्येत्यबलिंप्राहईषत्प्रस्फुरिताधरः ॥ ऋणेभवसिदैत्येंद्रबंधनं घोरदर्शनम् ॥ त्वंपूरयपदंतन्मेनोचेद्बंधंप्रतीच्छमे ॥ ३४ ॥ तन्मुरारिवचःश्रुत्वाविहस्याथबलेःसुतः ॥ बाणःप्राहामरपतिंवचनंहेतुसंयुतम् ॥ ३५ ॥ बाणासुरउवाच ॥ कृत्वामहीमल्पतरांजगत्पतेस्वयंविधाताभुवनेश्वराणाम्॥ कथंबलिंप्रार्थयसेसुविस्तृतांयांप्राग्भवान्नोविपुलांचकार ॥ ३६ ॥ विभोमहीयावतिचत्वयाद्यसृष्टासमेताभुवनांतराले ॥ दत्ताचतातेनहितावतीयंकिम्वाक्छलेनैषनिबध्यतेऽद्य ॥ ३७॥ ययैवशक्त्याभवताहिपूर्वंतयैवशक्त्यादितिजेश्वरोसौ ॥ शक्तस्तुसम्पूजयितुंमुरारेप्रसीदमाबंधनमादिशस्व ॥ ३८ ॥ प्रोक्तंश्रुतौभवतापीशवाक्यंदानंपात्रेजायतेसौख्यदायि ॥ देशेपुण्येतद्वदेवापिकालेतच्चाशेषंदृश्यतेचक्रपाणौ ॥ ३९ ॥ दानंभूमिःसर्वकामप्रदाताभवान्पात्रंदेवदेवोऽजितात्मा ॥ कालोज्येष्ठामूलयोगेमृगांकःकुरुक्षेत्रंपुण्यदेशःप्रसिद्धः ॥ ४० ॥ किंवादेवैर्मद्विधैर्बुद्धिहीनैःशिक्षांनेयःसाधुवासाधुचैव ॥ स्वयंश्रुतीनामपिचादिकर्ताव्यवस्थितःसदसद्योजगद्वै ॥ ४१ ॥

हुएहैं ? ॥ ३७ ॥ आपने पहले जैसी शक्तिसे आविष्ट (पूर्ण) कियाहै, यह दैत्यपतिभी उसी प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न हुएहैं, और उसीके अनुसार यथा शक्ति आपकी पूजाभी कीहै, इसकारण प्रसन्न हूजिये, बंधनकी आज्ञा करिये ॥ ३८ ॥ हेईश ! आपने श्रुतिमें निर्देश किया है कि, श्रेष्ठदेशमें श्रेष्ठ समय, पात्र (योग्यपुरुष) में दान करनेसे सौख्य सम प्राप्त होताहै, यह सभी गुण चक्रपाणि आपमें देखेजातेहैं ॥ ३९ ॥ कारण कि, आप भूमिदान लेनेके अर्थ सब कामनाओंके देनेवाले देवाधिदेव अजितात्मा होकरभी स्वयं पात्ररूपसे उपस्थित हुए हैं, यह समयभी श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्येष्ठा मूलके योगमें चंद्रमा है. और कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध पुण्य देश है ॥ ४० ॥ अथवा आप स्वयं श्रुति सबके आदिकर्ता और सदसद् (कारण कार्यात्मक) जगत्स्वरूप साक्षात् उपस्थित हुए हैं; इस स्थलमें मेरी बुद्धिहीन

अथवा देवताही क्यों नहीं कोईभी आपको सत् (उत्तम) अथवा असत् (अनुत्तम) शिक्षा क्या देसकता है ? ॥ ४१ ॥ आपने स्वयंही अपने प्रमाणोंका खंडनकर तीन
चरणकी याचना की है अब सर्व लोकोंके वंदना करने योग्य विराट् स्वरूपको धारणकर किसकारणसे ग्रहण (बन्धन) करतेहो ? ॥ ४२ ॥ फिर आज जो आपने
सम्पूर्ण जगत्को तीनों चरणोंसे नाँपलिया, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है. कारण कि, आप लोकनाथ हैं,एक चरणसेही सम्पूर्ण पृथ्वी आदिक लोकको लंघन करसकते हैं
॥ ४३ ॥ हे माधव ! हे पद्मनाभ ! आप स्वयं वसुन्धराको प्रमाणहीनकर किसप्रकारसे बलिका बंधन करतेहो ? अथवा आप विभुस्वरूप हैं जो इच्छाहो सो कीजिये
॥ ४४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, बलिके पुत्र बाणके इसप्रकार कहनेपर आदिकर्ता भगवान् जनार्दनने उत्तर दिया ॥ ४५ ॥ कि, हे बलिकुमार ! तुमने जो वचन

कृत्वाप्रमाणंस्वयमेवहीनंपदत्रयंयाचितवांस्तुयच्च ॥ किंत्वंहिगृह्णासिविभोमहात्मारूपेणलोकप्रतिवंदितेन ॥ ४२ ॥ नात्राश्चर्यंयज्जगदैसमग्रंक्रमत्रयेणैवपूर्णं
तवाद्य ॥ क्रमेणभोलंघयितुंसमर्थोमहींसमग्रांननुलोकनाथ ॥ ४३ ॥ प्रमाणहीनांस्वयमेवकृत्वावसुंधरांमाधवपद्मनाभ ॥ विष्णोनिबध्नासिकथंबलिंत्वंवि
भुर्यदेवेच्छसितत्कुरुष्व ॥ ४४ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्तेवचनेबलिनाबलिसूनुना ॥ प्रोवाचभगवान्वाक्यंह्यादिकर्ताजनार्दनः ॥ ४५ ॥ त्रिवि
क्रमउवाच ॥ यान्युक्तानिवचांसीत्थंत्वयाबालेयसांप्रतम् ॥ तेषांवैहेतुसंयुक्तंशृणुप्रत्युत्तरंमम ॥ ४६ ॥ पूर्वमुक्तस्तवपितामयाराजन्पदत्रयम् ॥ देहिमह्यं
प्रमाणेनतदेतत्समनुष्ठितम् ॥ ४७ ॥ किंनवेत्तिप्रमाणंमेबलिस्तवपितासुरः ॥ प्रायच्छद्येननिःशंकंममानंपदत्रयम् ॥ ४८ ॥ सत्यंक्रमेणचैकेनक्रमेयं
भूर्भुवादिकम् ॥ बलेरपिहितार्थायकृतमेतत्क्रमद्वयम् ॥ ४९ ॥ तस्माद्यन्ममबालेयत्वत्पित्राम्बुकरेमहत् ॥ दत्तंतेनायुरेतस्यकल्पंयावद्भविष्यति ॥
॥ ५० ॥ इदमुक्त्वाबलिसुतंबाणंदेवस्त्रिविक्रमः ॥ प्रोवाचबलिमभ्येत्यवचनंमधुराक्षरम् ॥ ५१ ॥

इससमय मुझसे कहे हैं, उसके हेतुयुक्त उत्तरको श्रवण करो ॥ ४६ ॥ पहले मैं ने तुम्हारे पितासे कहाथा कि, हे राजन् ! मुझे प्रमाणके अनुसार तीन चरण दान करो,
उन्होंने भी उसीके अनुसार किया ॥ ४७ ॥ तुम्हारे पिता बलि क्या हमारे प्रमाणको नहीं जानते थे, जो निःशंक होकर मुझे तीन चरण दान किये ॥ ४८ ॥ सत्य
वार्ता तो यह है कि, मैं तो केवल एक चरणसेही भूर्भुवःआदि सम्पूर्ण लोकोंको आक्रमण करसकताहूँ परन्तु तुम्हारे पिताके हितसाधनके निमित्तही इसप्रकारसे
दो चरणोंको निधान (स्थापन) किया ॥ ४९ ॥ इसकारण तुम्हारे पिताने जो हमारे हाथमें जलप्रदान कियाथा उसीके प्रभावसे वह कल्पायु
होंगे ॥ ५० ॥ त्रिविक्रम देव (वामन) बलिसुत बाणसे इसप्रकारके वचन कह स्वयं बलिके निकट जाकर मधुर वचनसे यह वचन बोले ॥ ५१ ॥

कि, हे राजन् ! दक्षिणा जो पूर्ण नहीं है, इसके निमित्त महाफलको ग्रहण करो सुतलनामक पातालमें जाकर निरामय (सर्वप्रकारके दुःखरहित) देहसे स्थिति करो, ॥ ५२ ॥ बलि बोले कि, हेनाथ ! सुतलमें निवास करनेपर कहांसे मेरा अक्षय भोग संग्रह होगा कि, जिसके प्रभावसे मैं निरामय होकर निवास करूं ॥ ५३ ॥ त्रिविक्रम बोले कि, सुतलमें निवास करनेके समय जिन २ द्रव्योंका तुम्हें भोग करना होगा वह विस्तारसहित वर्णन करताहूं श्रवण करो ॥ ५४ ॥ विना विधिके किये हुए दान विना श्रोत्रिय (वेदाभ्यासी ब्राह्मण) के श्राद्ध, विनाब्रह्मचर्य व्रतके अध्ययन इन सबका फल तुम्हें प्राप्त होगा ॥५५॥ इसके अतिरिक्त इन्द्रके महोत्सव होजानेपर तुम्हारे उद्देशसे परमपवित्र उत्सव सम्पादित होगा, यह महोत्सव दीपप्रदान नामसे विख्यातहोगा ॥ ५६ ॥ इसके उपलक्षमें हृष्ट, पुष्ट, नरश्रेष्ठ सब सुन्दर विधानसे अलंकृतहो

श्रीभगवानुवाच ॥ आपूरणाद्दक्षिणायागच्छराजन्महाफलम् ॥ सुतलंनामपातालंवसतत्रनिरामयः ॥ ५२ ॥ बलिरुवाच ॥ सुतलेवसतोनाथममभोगाः
कुतोऽव्ययाः ॥ भविष्यंतितुयेनाहंवसिष्यामिनिरामयः ॥ ५३ ॥ त्रिविक्रमउवाच ॥ सुतलस्थस्यदैत्येंद्रयानिभोग्यानितेऽधुना ॥ भविष्यंतिमहार्हाणिता
निवक्ष्यामिसर्वशः ॥ ५४ ॥ दानान्यविधिदत्तानिश्राद्धान्यश्रोत्रियाणिच ॥ तथाधीतान्यव्रतिभिर्दास्यंतिभवतःफलम् ॥ ५५ ॥ तथान्यमुत्सवंपुण्यंवृत्ते
शक्रमहोत्सवे ॥ दीपप्रदाननामासौतवभावीमहोत्सवः ॥५६॥ तत्रत्वांनरशार्दूलाहृष्टाःपुष्टाःस्वलंकृताः ॥ पुष्पदीपप्रदानेनअर्चयिष्यंतियत्नतः ॥५७॥
तत्रोत्सवोमुख्यतमोभविष्यतिसचापिलोकेतवनामचिह्नितः ॥ यथैवराज्येभवतस्तुसांप्रतंतथैवसाभाव्यथकौमुदीति ॥ ५८ ॥ इत्येवमुक्त्वामधुहादिती
श्वरंविसर्जयित्वाससुतंसभार्यम् ॥ उर्वींसमादायजगामतूर्णंसशक्रब्रह्मामरसंघजुष्टः ॥ ५९ ॥ दत्त्वामघोनेमधुजित्त्रिविष्टपंकृत्वाचदेवान्मखभागभोगिनः ॥
अंतर्दधेविश्वपतिर्महेशःसपश्यतामेवसुराधिपानाम् ॥ ६० ॥ स्वर्गंगतेधातरिवासुदेवेशाल्वोऽसुराणांमहताबलेन ॥ कृत्वापुरंसौभमितिप्रसिद्धंतदांतरिक्षे
विचचारकामात् ॥ ६१ ॥ मयश्चकामात्रिपुरंमहात्मासुवर्णताम्रायसमुग्रसौख्यम् ॥ सतारकाख्यःसहवैद्युतेनसंतिष्ठतेमित्रकलत्रवांश्च ॥ ६२ ॥

पुष्प दीपको प्रदानकर यत्नसहित तुम्हारी पूजा करैंगे ॥ ५७ ॥ यह मुख्य उत्सव तुम्हारे नामसे चिह्नित होगा, सम्प्रति तुम्हारे अधिकारमें जैसे लोकमें उत्सवसम्पादन करैंगे, भविष्यत्‌मेंभी उसीप्रकार होगा. उसका नाम कौमुदी महोत्सव होगा ॥५८॥ मधुसूदन दैत्येश्वर बलिसे इसप्रकारके वचन कहकर भार्या और पुत्रके सहित बलिको बिदा दे पृथ्वी ग्रहणकर ब्रह्मा और देवताओंसे पूजितहो शीघ्रही स्वर्गको चलेगये ॥ ५९ ॥ फिर इन्द्रको पृथ्वी दे देवताओंको यज्ञका भागीकर सुरपतियोंके सामनेही अन्तर्धान होगये ॥६०॥ उन विश्वपति विष्णुके स्वर्ग चले जानेपर असुरोंके बीचमें महाबलवान् शाल्यसोम नामसे प्रसिद्ध पुरको प्रतिष्ठित कर इच्छानुसार अन्तरिक्षमें विचरण करनेलगे ॥ ६१ ॥ महात्मा मयभी सुवर्ण, ताम्र और लोहनिर्मित परमसौख्ययुक्त त्रिपुरनामक पुरको निर्माणकर तारक और वैद्युत इत्यादिक सब

बाणोऽपिदेवेऽथगतेत्रिविष्टपंबद्धेबलौचापिरसातलस्थे ॥ कृत्वासुगुप्तंभुविशोणिताख्यंपुरंसचास्तेसहदानवेंद्रैः ॥ ६३ ॥ एवंपुराचक्रधरेणविष्णुनाबद्धोबलिर्वामनरूपधारिणा ॥ शक्रप्रियार्थंसुरकार्यसिद्धयेहितायविप्रर्षभगोद्विजानाम् ॥ ६४ ॥ प्रादुर्भवस्तेकथितोमहर्षेपुण्यःशुचिर्वामनस्याघहारी ॥ श्रुतेयस्मिन्कीर्तितेसंस्मृतेचपापंयातिप्रक्षयंपुण्यमेति ॥ ६५ ॥ एतत्प्रोक्तंवामनीयंचरित्रंबद्धोबलिःपुण्यकीर्तिर्यथासौ ॥ यच्चैवान्यच्छ्रोतुकामोऽसिविप्रतत्तेवक्ष्येब्रूहिब्रह्मन्नशेषम् ॥ ६६ ॥ इतिश्रीवामनपुराणेबलिबंधनंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ नारदउवाच ॥ श्रुतंयथाभगवताबलिर्बद्धोमहात्मना ॥ किमन्यत्त्विहप्रष्टव्यंतच्छ्रुत्वाकथयामिते ॥ १ ॥ भगवान्देवराजायविष्णुर्दत्त्वात्रिविष्टपम् ॥ अंतर्धायगतःक्वासौसर्वात्मातातकथ्यताम् ॥ २ ॥ परिचर्याथविधिनाब्रह्मापूजादिनाहरिम् ॥ पप्रच्छकिंचिरेणाथभवतागमनंकृतम् ॥ ३ ॥ अथोवाचजगत्स्वामीमयाकार्यंमहत्कृतम् ॥ सुराणांरिपुभोगार्थंस्वयंभोबलिबंधनम् ॥ ४ ॥ पितामहस्तद्वचनंश्रुत्वामुदितमानसः ॥ कथंकथमितिप्राहत्वंमांद्रष्टुमिहार्हसि ॥ ५ ॥ इत्येवमुक्तेभगवान्वचनेगरुडध्वजः ॥ दर्शयामासतद्रूपंसर्वदेवमयंलघु ॥ ६ ॥

मित्रों और भार्यादिकके सहित वास करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६२ ॥ भगवान् वासुदेवके स्वर्ग चलेजानेपर और बलिके बद्ध होकर रसातलमें प्रतिष्ठित होनेपर बाणासुरभी शोणित नामसे विख्यातपुरकी प्रतिष्ठाकर दानवेंद्रोंके सहित वास करने लगा ॥ ६३ ॥ इसप्रकार चक्रधर विष्णुने वामनरूपको धारणकर इन्द्रका प्रिय अनुष्ठान और देवताओंका कार्य सम्पादनकर, ब्राह्मण, ऋषि, गौ और द्विजोंके हितसाधनकी इच्छासे बलिको बद्ध किया था ॥ ६४ ॥ हे महर्षे ! वामनदेवका प्रादुर्भाव आपके निकट वर्णन किया यह जैसा पवित्र है वैसाही शुचि और पापहारी है इसके श्रवण, कीर्तन, करने और स्मरण करनेसे सब पाप एकसाथही नष्ट होजाते हैं और पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ ६५ ॥ पुण्यकीर्ति बलि जिसप्रकारसे बद्ध हुएथे, वामन देवका यह वह चरित्र मैंने कीर्तन किया अब जो सुननेकी इच्छाहो वह कहिये मैं उसेभी वर्णन करूंगा ॥ ६६ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां बलिबंधनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ नारदजी बोले कि, विराट्रूपी भगवान्ने बलिको जिसप्रकारसे बंधन किया सो मैंने सुना, अब अन्य विषयके सुननेको कहताहूँ ॥ १ ॥ सर्वात्मा भगवान् विष्णु देवराजको त्रिविष्टप (स्वर्ग) दान कर अन्तर्धानहो कहाँ चलेगये सो आप कहिये ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माजी विधिपूर्वक पूजाकर भगवान्से बोले कि, आप बहुत कालके पीछे आतेहैं इसका क्या कारण है ? ॥ ३ ॥ जगत्के स्वामी विष्णु भगवान् बोले कि, स्वयम्भू मैंने देवताओंकी ऋद्धि भोगसाधनके अर्थ बलिको बंधनरूप महत्कार्य साधन किया है ॥ ४ ॥ पितामहके यह वचन कहनेपर ब्रह्माजी प्रसन्नहो वारम्वार कहने लगे कि, आपने किसप्रकार बलिको बंधन किया है सो मुझे दिखादो ॥ ५ ॥ उनके इसप्रकारके वचन सुन

तंदृष्ट्वापुंडरीकाक्षंयोजनायतविस्तृतम् ॥ तावानेवोर्ध्वमानेनततोयंप्रणतोभवत् ॥७॥ सम्यक्सुचरितंसाधुसाधुसाध्वित्युदीर्यंच ॥ भक्तिगतोमहादेवेपद्मजः स्तोत्रमैरयत् ॥ ८ ॥ ॐनमस्ते देवाधिदेव वासुदेव एकशृंग बहुरूप वृषाकपे भूतभावन सुरासुरवृष सुरासुरमथन सुरपतिवास सुरनिर्माण अविघ्न कपिल महाकपिल विष्वक्सेन नारायण ध्रुवध्वज भालध्वज वैकुंठ पुरुषोत्तम वरेण्य विष्णो अपराजित जयजयंतविजयकृतावर्त महादेव अनादे अनंत अनाद्यंतमध्यनिधन पुरंजय धनंजय सुरस्तुत पृथुश्रवः पृश्निगर्भ हिरण्यगर्भ कमलगर्भ कमलायताक्ष कमलालयाप्रिय वृष्णिमूल भूताधिवासवर्गाध्यक्ष गदाधर श्रीधर वनमालाधर लक्ष्मीधर धरणीधर पद्मनाभ विरिंचे आर्ष्टिणषेण महासेन सेनाध्यक्ष परिष्टुत बहुकल्प महाकल्पकल्पनामुख अनिरुद्ध सर्वग सर्वात्मक द्वादशात्मक शर्वात्मक सोमात्मक कलात्मक भूतात्मक रमात्मक सनातन मुंजकेश हरिकेश हृषीकेश गुडाकेश केतुमन् नील सूक्ष्म स्थूल पीत रक्तश्वेत श्वेताधिवास रक्तांबरप्रिय प्रीतिकर प्रीतिवास हंससीरध्वज नीलवासः सर्वलोकाधिवास कुशेशय अधोक्षज गोविंद जनार्दन मधुसूदन

भगवान् गरुडध्वजने शीघ्रही ब्रह्माजीको सर्व देवमय विराट् स्वरूपको दिखाया ॥ ६ ॥ अयुत[१] (१००००) योजन विस्तारित (फैले हुए) और अमित योजन ऊँचे उस रूपको देखकर पितामहने प्रणाम किया. और वारम्वार धन्यवाद देनेलगे सर्वथा सम्यक् रूपका अनुष्ठान कियाहै यह कहकर वह महादेव वासुदेवके प्रति भक्तिमान्‌हो उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ तुम ॐकार स्वरूपहो तुमको नमस्कार है, हे देवाधिदेव ! वासुदेव ! हे एकशृंग बहुरूप और वृषाकपे ! हे भूतभावन ! हे सुरासुरवृष ! हे सुरासुरमथन ! हे सुरपतिवास ! हे सुरनिर्माण ! हे अविघ्न ! हेकपिल ! महाकपिल ! विष्कक्सेन और नारायण ! हेध्रुवध्वज ! और भालध्वज ! हेवैकुंठ और पुरुषोत्तम ! हेवरेण्य ! विष्णो ! और अपराजित ! हेजयजयन्त ! और विजय ! हेकृतावर्त्त ! महादेव अनादि और अनन्त ! हेअनाद्यन्तमध्यनिधन ! हेपुरंजय ! और धनंजय ! हेसुरस्तुत ! पृथुश्रवा ! पृश्निगर्भ ! हिरण्यगर्भ ! कमलगर्भ ! कमलायताक्ष ! और कमलालया (लक्ष्मी) प्रिय ! हे वृष्णिमूल ! भूताधिवास ! वर्गाध्यक्ष ! गंगाधर ! श्रीधर ! वनमालाधर ! लक्ष्मीधर ! और धरणीधर ! हेपद्मनाभविरिंचे ! आर्ष्टिणषेण ! और सेनाध्यक्ष ! हेपरिष्कृत ! बहुकल्प ! महाकल्प ! और कल्पनामुख ! हेअनिरुद्ध ! सर्वग ! सर्वात्मक ! द्वादशात्मक ! शर्वात्म ! सोमात्मक ! कलात्मक ! भूतात्मक ! रमात्मक ! और सनातन ! हेमुंजकेश ! हरिकेश ! हृषीकेश और गुडाकेश ! हेकेतुमन् ! हेनील ! सूक्ष्मस्थूल ! पीतरक्त ! श्वेत ! श्वेताधिवास ! रक्तवरप्रिय ! प्रीतिकर ! प्रीतिवास ! हंस ! और सीरध्वज ! हेनीलवास ! सर्वलोकाधिवास ! कुशेशय ! अधोक्षज ! गोविन्द ! जनार्दन ! मधुसूदन ! और वामन ! तुमको नमस्कारहै, तुम ॐकारस्वरूपहो ! तुम सहस्रशी

---

[१] यहां अयुत शब्द अपरिमितका वाचकहै जैसा कि, "शत मनुष्याः" यहां शतशब्द अनन्तका वाचक है, कारण कि, अयुतमात्र योजनसे विराट्रूपका परिच्छेद (परिमाण) होंना दुर्वचहै ।

र्षाहो ! तुम सहस्रनेत्रहो ! तुम सहस्रपादहो ! तुम अधोमुखहो । तुम महापुरुषहो ! तुम सहस्रबाहु और सहस्रमूर्तिहो ! वेद सब तुमको सहस्रमुख कहतेहैं । तुमको नमस्कारहै । नमस्कारहै । हे ॐकाररूपिन् विश्वदेवेश ! विश्वभृत ! विश्वात्मक ! तुम विश्वरूप ! और विश्वसंभवहो तुमको नमस्कारहै । तुमसे यह संसार उत्पन्न हुआहै, सब ब्राह्मणोंने तुम्हारे मुखसे जन्मलिया है, क्षत्रिय तुम्हारी बाहुसे उत्पन्न हुएहैं, वैश्य तुम्हारे ऊरुयुगलसे उत्पन्न हुएहैं, सबशूद्रोंने तुम्हारे चरणकमलोंसे जन्मलियाहै, तुम्हारी नाभिसे अन्तरिक्ष प्रगट हुआहै । इन्द्र और अग्नि तुम्हारे मुखकमलसे प्रगट हुएहैं, तुम्हारे मनसे चंद्रमा उत्पन्न हुएहैं तुम्हारे प्रसादसे मैं उत्पन्न हुआहूं, तुम्हारे क्रोधसे त्र्यम्बक (शिव) ने अवतार लियाहै, तुम्हारे प्राणसे मातरिश्वा (वायु) प्रगट हुएहैं, तुम्हारे मस्तकसे स्वर्ग उत्पन्न हुआहै, सम्पूर्ण दिशा तुम्हारे

वामन नमस्तेऽस्तु॥ॐसहस्रशीर्षाअसि सहस्रदृगसि सहस्रपादोऽसिअधोमुखोसि महापुरुषोसि सहस्रबाहुरसि सहस्रमूर्तिरसि त्वां वेदाः प्राहुः सहस्रवदनं नमस्ते नमस्ते ॥ ॐनमस्ते विश्वदेवेश विश्वभृत विश्वात्मक विश्वरूप विश्वसंभव त्वत्तो विश्वमिदमभवद् ब्राह्मणस्ते मुखमासीत् क्षत्रियो दोः समभूदूरुयुग्माद्विशोऽभवन् शूद्राश्चरणकमलेभ्यः ॥ नाभेस्तथांतरिक्षंच इंद्राग्नीवक्रपंकजात् ॥ मनसस्तुशशीजातः प्रसादात्तवचाप्यहम् ॥ क्रोधाज्जातस्तुत्र्यंबकः प्राणाज्जातोमातरिश्वाशिरसोद्यौरजायत श्रोत्राद्दिशोभवन् स्वयंभो॥भूरियंचरणाज्जातागोत्रोद्भवातिशोभिता॥त्वंनभस्त्वंचनक्षत्रंस्वेदोद्भिज्जास्तथांडजाः ॥ मूर्ताश्चैवाप्यमूर्ताश्चसर्वेत्वत्तःसमुद्भवाः॥अतोविश्वात्मनाद्योसि ॐनमस्तेपुष्पहासोसि परमोसि महाहासोसि ॐकारोसि वषट्कारोसि स्वाहा कारोसि मातरिश्वासि यज्ञचरोसि त्रिकोशिरसि होतासि होमोसि हूयमानोसि पातासि पठितासि हंतासि हन्यमानोसि नीतिरसिमेधासिअग्निरसि विश्वधामासि अर्घोसि

कर्णसे प्रगट हुईहैं, हे स्वयम्भो ! पृथ्वी तुम्हारे चरणकमलसे उत्पन्न हुईहै, यह नाना[1]गोत्र (पर्वत) के उद्भव होनेसे अत्यन्त रमणीक हुएहैं तुम नभः हो, तुम नक्षत्रहो, तुम स्वेदज[2], उद्भिज[3] और अंडज[4]हो, मूर्त्त (शरीरी)अमूर्त्त (अशरीरी) सभी तुमसे उत्पन्न हुएहैं, इसकारण हेविश्वात्मन् ! तुम आद्यस्वरूपहो, हे ॐकारस्वरूप तुमको नमस्कारहै, तुम पुष्पहासहो, तुम परम! तुम महाहास ! तुम ॐकार ! तुम वषट्कार तुम स्वाहाकारहो. तुम मातरिश्वाहो, तुम यज्ञचरणहो ! तुम त्रिकोशिहो! तुम होताहो तुम होमहो तुम हूयमानहो तुम पाताहो तुम पठिताहो; तुम हन्ताहो, तुम हन्यमानहो ! तुम नीतिहो ! तुम मेधाहो ! तुम अग्निहो ! तुम विश्वधामाहो, तुम अर्घहो ! तुम परम

---

[1] "अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः" इत्यमरः । [2] "स्वेदजाः कृमिदंशाद्याः" कीड़े मच्छर आदिक स्वेदज कहलातेहैं ।

[3] "उद्भिज्जास्तरुगुल्माद्याः" वृक्ष लताआदिक उद्भिज्ज कहलाते हैं । [4] "पक्षिसर्पादयोऽण्डजाः" पक्षी और सर्पआदिक अंडज कहातेहैं ।

धामहो ! तुम स्रुक्भांडहो ! तुम अरणीहो ! तुम अरणीयहो ! तुम ज्ञानमयहो ! तुम ध्यानहो ! तुम ध्येयहो ! तुम यज्ञहो ! तुम इष्टहो ! तुम यष्टा ! यजमान) हो : तुम पशुहो ! तुम पूज्यहो ! तुम इज्यहो ! तुम होताहो, तुम गीतहो ! तुम उद्गाताहो, तुम यजमानहो तुम गतिमानहो ! तुम ज्ञानियोंके ज्ञानहो ! तुम योगियोंके योगहो ! तुम मोक्षियोंके मोक्षहो ! तुम श्रीमानोंकी श्रीहो ! तुम गुह्यहो ! धाताहो ! तुम परहो ! तुम सोमहो ! तुम सूर्यहो ! तुम दक्षिणाहो ! तुम दीक्षितहो ! तुम नरहो ! तुम त्रिनेत्रहो ! तुम आदित्यप्रभहो ! तुम शुचिहो ! तुम शक्रहो ! तुम नभहो ! तुम नभस्यहो ! तुम यज्ञहो ! तुम सहहो, तुम सहस्यहो ! तुम तपहो, तुम तपस्याहो ! तुम मधुरहो, तुम माधवहो ! तुम कालहो ! तुम संक्रमहो ! तुम विक्रमहो ! तुम पराक्रमहो तुम अश्वग्रीवहो ! तुम महामेघहो ! तुम शंकरहो, तुम

परमधामासि स्रुग्भांडोसि अरणिरसि अरणीयोसि ज्ञानमयोसि ध्यानमसि ध्येयोसि यज्ञोसि इष्टोसियष्टासि दानमसि पशुरसि पूज्योसि इज्योसि होतासि गीतोसि उद्गातासि यजमानोसि गतिमानसि ज्ञानिनां ज्ञानमसि योगिनां योगोऽसि मोक्षगामिनांमोक्षोसि श्रीमतां श्रीरसि गृह्योसि धातासि परमसि सोमोसि सूर्योसि दक्षिणासि दीक्षितोसि नरोसि त्रिनयनोसि आदित्य प्रभोसि शुचिरसि शुक्रोसि नभोसि नभस्योसि यज्ञोसि सहोसि सहस्योसि तपोसि तपस्योसि मधुरसि माधवोसि कालोसि संक्रमोसिविक्रमोसि पराक्रमोसि अश्वग्रीवोसि महामेधोसि शंकरोसि हरीश्वरोसि सत्त्वमसि ब्रह्मचार्यसि स्वरसि मित्रावरुणोसि प्राग्वंशप्रकाशोसिभूतादिरसि महाभूतोसि ऊर्ध्वकर्मांतकर्तासि व्याप्तोसि सर्वपापविमोचनोसि त्रिविक्रमोसि नमस्ते ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्थंस्तुतोसौप्रपितामहेनविष्णुःसदैवाद्भुतकर्मचारी ॥ प्रोवाचचेदंप्रपितामहंतुवरंवृणीष्वामलसत्त्ववृत्त ॥ ९ ॥ तमब्रवीत्प्रीतियुतःपितामहोवरंममेहाद्य विभोप्रयच्छ ॥ रूपेणपुण्येनविभोरनेनसंस्थीयतांमद्भवनेमुरारे ॥ १० ॥ इत्थंवृतेतेनवरेवरेण्येदेवोऽप्यर्थाचिंतितमव्ययात्मा ॥ तस्थौस्वरूपेणहिवामनेन संपूज्यमानःसदनेस्वयंभोः ॥ ११ ॥

हरिहो ! तुम सत्वहो, तुम ब्रह्मचर्यहो, तुम स्वरहो ! तुम मित्रावरुणहो ! तुम प्राग्वंशप्रकाशहो, तुम भूतादिहो ! तुम महाभूतहो । तुम ऊर्द्ध्वकर्माहो ! तुम अन्तकर्ताहो । तुम व्याप्तहो, तुम सर्वपापविमोचनहो, तुम त्रिविक्रमहो तुमको नमस्कार है ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, पितामहके इसप्रकार स्तुतिकरनेपर सर्वदाही अद्भुतकर्मकारी विष्णु उनसे बोले कि, हे अमलसत्त्वव्रत ! वर माँगो ॥९॥ पितामह ब्रह्माजी प्रसन्नहो उनसे बोले कि, हेमुरारे ! आज मुझे आप यह वर दीजिये कि, आप इसी परमपवित्र वामनरूपसे चिरकालतक मेरे भवनमें विराजमान रहिये ॥ १० ॥ उनके इसप्रकार वर माँगनेपर अव्ययात्मा विष्णु भगवान् उनके भवनमें स्थित हुए तब सब

उनकी पूजा करने लगे ॥ ११ ॥ अप्सराओंने नृत्य करना प्रारंभ किया, देवताओंकी स्त्रियें गानकरने लगीं, विद्याधर बाजे बजाने लगे. देवता, असुर, सिद्ध इन्होंने स्तुति करनी प्रारंभ की ॥ १२॥ पितामह ब्रह्माजी मुरारिकी विशेष पूजाकर मलरहित और अत्यन्त पवित्र हुए. इसके उपरान्त इन्द्रने उन वामनरूपी भगवान्को पितामहके परमपवित्र भवनसे लेजाकर स्वर्गमें उनकी पूजा की ॥ १३ ॥ विष्णु स्वर्गमें उस अनेकसहस्र योजनका आश्रयकर रहनेवाले स्वरूपको छोड़ वामनरूपको धारण करके रहे. हे महर्षे ! इन्द्रने पितामहके समान उनकी पूजा की ॥१४॥ महात्मा भगवान् त्रिविक्रमने बलिको रसातलमें स्थापितकर देवताओंका इसप्रकार कार्य साधन किया, सो मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ १५ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां पुलस्त्यनारदसम्वादे ब्रह्मोक्तस्तवो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

नृत्यंतितत्राप्सरसांसमूहागायंतिगीतानिसुरेंद्रनार्यः॥विद्याधरास्तूर्यमवादयंतस्तुवंतिदेवासुरसिद्धसंघाः॥१२॥ततःसमाराध्यविभुंमुरारिंपितामहोधौतमलःसुशुद्धः ॥ स्वर्गंविरंचेःसदनात्सुपुण्यादानीयपूजांप्रचकारविष्णोः ॥१३॥ स्वर्गेसहस्रंसतुयोजनानांविष्णुःप्रमाणेनहिवामनोऽभूत् ॥ तत्रास्यशक्रःप्रचकारपूजांस्वयंभुवस्तुल्यगुणांमहर्षे ॥१४॥ एतत्तवोक्तंभगवांस्त्रिविक्रमश्चकारयद्देवहितंमहात्मा ॥ रसातलस्थांदितिजांहिकुर्वन्निवेदितंतेऽद्यमयाहिविप्र ॥१५॥ इतिश्रीवामनपुराणेवामनप्रादुर्भावेब्रह्मोक्तस्तवोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ गत्वारसातलंदैत्योमहामणिविचित्रितम् ॥ शुद्धस्फटिकसोपानंकारयामासवैपुरम् ॥ १ ॥ तत्रमध्येसुविस्तीर्णेप्रासादोबहुवेदिकः ॥ मुक्ताजालांतरद्वारोनिर्मितोविश्वकर्मणा ॥ २ ॥ तत्रास्तेविविधान्भोगान्भुञ्जन्दिव्यान्समानुषान् ॥ नाम्नाविंध्यावलीत्येवंभार्यास्यदयिताभवत् ॥३॥ युवतीनांसहस्रस्यप्रधानाशीलमंडना ॥ तयासहमहातेजारेमेवैरोचनिर्मुने ॥ ॥ ४ ॥ भोगासक्तस्यदैत्यस्यवसतःसुतलेतदा ॥ दैत्यतेजोहरंप्राप्तंपातालंवैसुदर्शनम् ॥ ५ ॥ चक्रेप्रविष्टेपातालेदानवानांभयंमहत् ॥ अभूद्धलहलाशब्दःक्षुभितार्णवसंनिभः ॥ ६ ॥ तंश्रुत्वासुमहच्छब्दंबलिःखड्गंसमाददे ॥ आःकिमेतदितीत्थंचपप्रच्छासुरपुंगवः ॥ ७ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि, दैत्यराज बलिने रसातलमें जाकर महामणि विचित्रित शुद्धस्फटिककी सीढ़ियोंसे भूषित पुरकी प्रतिष्ठा की ॥ १ ॥ विश्वकर्माने उस (रसातल) के विस्तृतदेशमें बहुतप्रकारकी वेदियों (चौतरों) से विराजित मुक्ताजाल (मोतीकी लर) से घटित अन्तर्द्वारयुक्त प्रासाद (मंदिर) निर्माण करदिये ॥ २ ॥ उस स्थानमें राजा बलि विविध दिव्य और मानुष्यभोग संभोगकर निवास करने लगे, विन्ध्यावलीनामकी उसकी प्रिया भार्याथी ॥ ३ ॥ वह शील गुणसे सहस्र ललनाओंमें प्रधान हुई. हे मुने ! महातेजस्वी बलि उसके साथ विहार करनेलगे ॥ ४ ॥ उससमय भोगमें आसक्तहो निवास करनेलगे, तब दैत्यतेजोहारक सुदर्शनचक्र पातालमें आया ॥ ५ ॥ चक्रने पातालमें प्रवेश किया, दैत्य अत्यन्त भयभीतहो उबलेहुए समुद्रके समान हल २ शब्द कर उठे ॥ ६ ॥ बलिने उस विपुल शब्दको सुनकर

खड्गको ग्रहण किया और अहह किसकारणसे यह उपद्रव हुआ, यह कहकर पूँछने लगे ॥ ७ ॥ तब धर्मपत्नी पतिव्रता विंध्यावली उस खड्गको कोश (म्यान) के भीतर रखवाकर स्वामीको धीरज देती हुई ॥ ८ ॥ सुनिश्चित मधुरवचनोंसे दैत्यराज बलिसे कहने लगी कि, यह दैत्योंके समूहका क्षय करनेवाला सुदर्शनचक्र भगवान्‌का है ॥ ९ ॥ हे दैत्येन्द्र ! महात्मा वामनजीके इसचक्रकी सब प्रकारसे पूजा करनी कर्तव्य है, चार्वंगी विन्ध्यावलीने इतना कहकर प्रयता (शुद्ध) हो उन (बलि) को साथले वहांसे चक्रके निकट पूजा करनेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ १० ॥ इसके उपरान्त पत्नीसहित बलि विष्णुके उस सहस्रार(सहस्र धारवाले) सुदर्शन चक्रके समीप गये, तब असुरपति बलि हाथ जोड़कर यथाविधानसे चक्रकीपूजा कर इन वचनोंसे स्तुति करनेलगे ॥ ११ ॥ कि, दैत्यचक्रविदारक हरिके

ततोविंध्यावलिःप्राहसांत्वयंतीनिजंपतिम् ॥ कोशेखड्गंसमाधायधर्मपत्नीशुचिव्रता ॥ ८ ॥ उवाचमधुरंवाक्यंदैत्यराजंसुनिश्चितम् ॥ एतद्भागवतंचक्रंदैत्यचक्रक्षयंकरम् ॥ ९ ॥ संपूजनीयंदैत्येंद्रवामनस्यमहात्मनः ॥ इत्येवमुक्त्वाचार्वंगीप्रयतासाविनिर्ययौ ॥ १० ॥ अथाभ्यागात्सहस्रारंविष्णोश्चक्रंसुदर्शनम् ॥ ततोऽसुरपतिःप्राहकृतांजलिपुटोमुने ॥ संपूज्यविधिवच्चक्रमिदंस्तोत्रमुदैरयत् ॥ ११ ॥ बलिरुवाच ॥ नमस्यामिहरेश्चक्रंदैत्यचक्रविदारणम् ॥ सहस्रांशुंसहस्राभंसहस्रारंसुदर्शनम् ॥ १२ ॥ नमस्यामिहरेश्चक्रंयस्यनाभ्यांपितामहः ॥ तुंगेत्रिशूलधृक्शर्वअरामूलेमहाद्रयः ॥ १३ ॥ अरासुसंस्थिता देवाःसेंद्रार्काश्चसपावकाः ॥ जवेयस्यस्थितोवायुरापोग्निःपृथिवीनभः ॥ १४ ॥ अरासंधिषुजीमूताःसौदाम्न्यृक्षाणितारकाः ॥ बाह्यतोमुनयोयस्यवालखिल्यादयस्तथा ॥ १५ ॥ तदायुधवरंदेवंवासुदेवस्यभक्तितः ॥ त्रिधापापंशरीरोत्थंवाग्जंमानसमेवच ॥ १६ ॥ तन्मेदहस्वदीप्तांशोविष्णोश्चक्रंसुदर्शनम् ॥ यत्कलौबहुलंपापंपैतृकंमातृकंतथा ॥ १७ ॥ तन्मेहरस्वतरसानमस्तेत्वच्युतायुध ॥ आपदोममनश्यंतुव्याधयोयांतुसंक्षयम् ॥ त्वन्नामकीर्तनाच्चक्रदुरितंयातुसंक्षयम् ॥ १८ ॥

सुदर्शनचक्रको प्रणाम करताहूं, यह चक्र सहस्रअंशु (किरण) सहस्र आभा (कांति) और सहस्र आरा (धार) से युक्त है ॥ १२ ॥ जिनकी नाभिमें पितामह, तुंगदेश (ऊर्द्ध्वभाग) में महादेव हैं, आरामूलमें महापर्वत सब हैं॥ १३ ॥ सब धारोंमें इन्द्र,अर्क और अग्नि इत्यादि देवता जब (वेग) में वायु,जल, अग्नि,पृथ्वी और नभस्थल, ॥ १४ ॥ आरा(धार)की सब सन्धियों(मध्यों)में मेघमंडल विद्युत ग्रह आरै तारकासमूह, वाह्यदेशमें वालखिल्यादि मुनिमंडली प्रतिष्ठित हैं ॥ १५ ॥ वासुदेवके उस आयुध श्रेष्ठ सुदर्शनचक्रको मैं भक्तिसहित नमस्कार करताहूँ मेरे शारीरिक मानसिक और कायजके भेदसे जो तीन प्रकारके पाप उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ हे दीप्तशो ! विष्णु चक्र सुदर्शन ! उनको दग्धकरदो, मेरे पिताके कुलसे माताके कुलसे जो पापसंचय हुए हैं ॥ १७ ॥ हे विष्णुचक्र ! उन्हेंभी शीघ्र हरण करो, मैं तुमको नमस्कार

करताहूं। हे चक्र ! तुम्हारे नामके कीर्तन करतेही मेरी सब आपत्तियें नाश होजाय, सब व्याधियें नष्ट हों और सम्पूर्ण अरिष्टोंका क्षय होजाय ॥ १८ ॥ बुद्धिमान् बलि इसप्रकारके वचन कह भक्तिसहित पूजा कर सर्वपापविनाशक पुंडरीकाक्षका स्मरण करनेलगे ॥ १९ ॥ सुदर्शनचक्र बलिकेद्वारा पूजित हो दैत्यगणको तेज हीन कर पातालसे विषुवसंक्रान्तमें[1] दक्षिणकी ओरको गये ॥ २० ॥ सुदर्शन चक्रके निष्क्रान्त होतेही बलिने व्याकुल हो अत्यन्तही आपत्तिमें ग्रस्त होकर अपने पितामह (प्रह्लादजी) को स्मरण किया ॥ २१ ॥ स्मरण करतेही दैत्येश्वर प्रह्लादजी सुतलको गये, महातेजस्वी बली दूरसेही देख हाथमें अर्घ्य ले आसनसे उठे ॥ २२ ॥ और उठकर अपने पितामह भगवत् प्रह्लादजीकी विधिपूर्वक पूजाकर हाथ जोड़कर बोले ॥ २३ ॥ कि, मेरे अत्यन्त विषादितचित्तसे स्मरण करतेही

इत्येवमुक्त्वामतिमान्समभ्यर्च्याथभक्तितः ॥ संस्मरन्पुंडरीकाक्षंसर्वपापविनाशनम् ॥ १९ ॥ पूजितंबलिनाचक्रंकृत्वानिस्तेजसोसुरान् ॥ निश्चक्रामा
थपातालाद्विषुवेदक्षिणेमुने ॥ २० ॥ सुदर्शनेविनिष्क्रांतेबलिर्विक्लवतांगतः ॥ परमामापदंप्राप्यसस्मारस्वंपितामहम् ॥ २१ ॥ सचापिसंस्मृतःप्राप्तः
सुतलंदानवेश्वरः ॥ दृष्ट्वातस्थौमहातेजाःसार्घ्यपात्रोबलिस्तदा ॥२२॥ सतमभ्यर्च्यविधिनापितुःपितरमीश्वरम् ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाइदंवचनमब्रवीत् ॥
॥ २३ ॥ संस्मृतोपिसमायातःसुविषण्णेनचेतसा ॥ तन्मेहितंचपथ्यंचश्रेयांसित्वंतदाशुभम् ॥ २४ ॥ किंकार्यंतातसंसारेवसतापुरुषेणहि ॥ कृतेनयेनवै
नास्यबंधःसमुपजायते ॥ २५ ॥ संसारार्णवमग्नानांनराणामल्पचेतसाम् ॥ तारणायभवेद्यस्तुतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ २६ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एतद्वच
नमाकर्ण्यतत्पौत्राद्दानवेश्वरः ॥ विचिंत्यप्राहवचनंसंसारेयद्धितंपरम् ॥ २७ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ साधुदानवशार्दूलयत्तेजातामतिस्त्वियम् ॥ प्रवक्ष्या
मिहितांतेद्यतथान्येषांनृणामपि ॥ २८ ॥

आप आगये हैं, इसकारण जिससे मेरा हित हो, उपकार हो, कल्याण हो, शीघ्र वही आज्ञा दीजिये ॥ २४ ॥ हे तात ! संसारमें साधुपुरुषकी समान क्या करना कर्तव्य है, जिसके करनेसे फिर बद्ध होनां नहीं होता ॥ २५ ॥ जिसके करनेसे संसारसागरमें मग्न हुए अल्पबुद्धि मनुष्योंका उद्धार होता है आप वही उपदेश कीजिये ॥ २६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, दानवेश्वर प्रह्लादजी पौत्रके मुखसे यह वचन सुन संसारमें जो परमहितकारी है उसकी चिन्ता कर कहनेलगे ॥ २७ ॥ कि, हे दानवशार्दूल ! तुम्हैं जो इसप्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई है, इसीकारणसे मैं तुम्हैं धन्यवाद देताहूँ, इससमय तुम्हारे और अन्यान्य मनुष्योंके हितकारी उपदेश

---

[1] "समरात्रिन्दिवे काले विषुवद्विषुवञ्च तत्" जिसमें दिनरात्रि समान होता है उसको 'विषुव' कहतेहैं अर्थात् उससमय कन्याके सूर्यथे, दक्षिणायनकी प्रवृत्ति तबभी रहती है ।

देताहूं ॥ २८ ॥ भवरूपी समुद्रमें पड़ेहुए सुखदुःखादिक द्वन्द्वरूपी पवनसे सतायेहुए सुत दुहिता और कलत्रोंके त्राणरूप भारसे अर्दित विषयरूप विषम जलसे मज्जित और सर्वथा उद्धारसाधनरहित मनुष्योंको विश्वरूप नावही एकमात्र आश्रय और रक्षाका स्थान है ॥ २९ ॥ जो अनिन्द्य, आद्य और अनन्तस्वरूप हैं, जो देवताओंके गुरु हैं, शुभसंपादक और सबके वरणीय, जो शुद्धस्वरूप खगेन्द्रवाहन हैं और लक्ष्मीपति हैं, उन नारायण हरिका आश्रय लेनेसे यमराजका दर्शन नहीं होता ॥ ३० ॥ यमने अपने दूतके हाथमें पाश देखकर उसके कानमें कहाथा कि, मधुसूदन जिसके ऊपर प्रसन्न हों उसको छोड़देना, मैं अन्यान्य मनुष्योंका प्रभु हूं परन्तु वैष्णवोंके ऊपर मेरा प्रभुत्व नहीं है ॥ ३१ ॥ नरश्रेष्ठ इक्ष्वाकुनेभी भक्तियुक्त होकर कहाथा कि, पृथ्वीमें विष्णुके भक्त मनुष्य

भवजलधिगतानांद्वंद्ववाताहतानांसुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ॥ विषयविषमतोयेमज्जतामप्लुवानांभवतिशरणमेकोविष्णुपोतोनराणाम् ॥ २९ ॥
येसंश्रिताहरिमनंतमनिंद्यमाद्यंनारायणंसुरगुरुंशुभदंवरेण्यम् ॥ शुद्धंखगेंद्रगमनंकमलालयेशंतेधर्मराजशरणंनविशंतिधीराः ॥ ३० ॥ स्वपुरुषमभिवी
क्ष्यपाशहस्तंवदतियमःकिलतस्यकर्णमूले ॥ परिहरमधुसूदनप्रसन्नान्प्रभुरहमन्यनृणांनवैष्णवानाम् ॥ ३१ ॥ तथान्यदुक्तंनरसत्तमेनइक्ष्वाकुणाभक्ति
युक्तेननूनम् ॥ येविष्णुभक्ताःपुरुषाःपृथिव्यांयमस्यतेनिर्विषयाभवंति ॥ ३२ ॥ साजिह्वायाहरिंस्तौतितच्चित्तंयत्तदर्पितम् ॥ तावेवकेवलौश्लाघ्यौयौ
तत्पूजाकरौकृतौ ॥ ३३ ॥ नूनंनतौकरौप्रोक्तौवृक्षशाखाग्रपल्लवौ ॥ नयौपूजयितुंशक्तौहरिपादाम्बुजद्वयम् ॥ ३४ ॥ नूनंतत्कंठशालूकमथवाप्रति
जिह्विका ॥ रोगश्चान्योनसाजिह्वायानवक्तिहरेर्गुणान् ॥ ३५ ॥ शोचनीयःसबंधूनांजीवन्नपिमृतोनरः ॥ यःपादपंकजंविष्णोर्नपूजयतिभक्तितः ॥
॥ ३६ ॥ येनरावासुदेवस्यसततंपूजनेरताः ॥ मृताअपिनशोच्योस्तसत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ ३७ ॥ शारीरंमानसंवाग्जंमूर्तामूर्तंचराचरम् ॥
दृश्यंस्पृश्यमदृश्यंवातत्सर्वंकेशवात्मकम् ॥ ३८ ॥

यमके अधिकारके बाहर हैं ॥ ३२ ॥ वह जिह्वा जो हरिकी स्तुति करतीहै, वह चित्त जो कि, उनमें अर्पित हुआ है वह हाथही केवल श्लाघ्य हैं, जो उनकी पूजा करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीहरिचरणारविन्दोंमें पूजा करनेकी जिनकी शक्ति नहीं है वह हाथ नहीं है केवल वृक्षशाखाके अग्र पल्लवमात्र हैं ॥ ३४ ॥ जो जिह्वा हरिके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं है; वह कंठशालूक वा प्रतिजिह्वका (कागके ही स्वरूपान्तर) मात्र है अथवा अन्य किसी प्रकारका रोगस्वरूप है ॥ ॥ ३५ ॥ वही मनुष्य शोचनीय है, वही मनुष्य जीवित होतेभी मृतककी समान है जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर भगवान्के चरणोंकी पूजा नहीं करते ॥ ३६ ॥ और जो मनुष्य वासुदेवकी पूजामें सर्वदा आसक्त हैं, मैं सत्यसत्यही कहताहूं कि, वह मरकरभी शोचनीय नहीं होते ॥ ३७ ॥ क्या शरीर, क्या मानस, क्या वाचिक,

क्या मूर्त, वा अमूर्त, क्या स्थावर वा जंगम, क्या दृश्य वा अदृश्य क्या, स्पृश्य वा अस्पृश्य सभी केशवात्मक हैं, अर्थात् उनसे भिन्न नहीं हैं ॥ ३८ ॥ जो चार
वारभी भगवान् त्रिविक्रमकी आराधना करताहै, उसने देवता और दानवोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंकी पूजा की है इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३९ ॥ हे पुत्रक ! समुद्रके
रत्नोंकी जिसप्रकारसे संख्या नहीं होती उसीप्रकारसे चक्रधर (विष्णु) के गुणभी असंख्य हैं ॥ ४० ॥ जो शंख और चक्र पद्मकर, गरुड़वाहन, शार्ङ्गधर, सबके
वरदाता श्रीपतिका आश्रय करताहै, उसको फिर कभी दुःखित होकर संसारमें आना नहीं होता ॥ ४१ ॥ गोविन्द जिसके हृदयमें वास करतेहैं वह कभी पराभूत और
मृत्युसे उद्वेजित नहीं होता ॥ ४२ ॥ भगवान् शार्ङ्गधर विष्णु सभीके एकमात्र आश्रय हैं जो उनकी शरणागत है,उसको यमलोकमें जाकर नरक नहीं भोगना होता ॥ ४३ ॥ हे

येनार्चितोहिभगवाश्चतुर्द्धापित्रिविक्रमः ॥ तेनार्चितानसंदेहोलोकाःसामरदानवाः ॥ ३९ ॥ यथारत्नानिजलधेरसंख्येयानिपुत्रक ॥ तथागुणाश्चदेवस्य
त्वसंख्येयाहिचक्रिणः ॥ ४० ॥ येशंखचक्राब्जकरंचशार्ङ्गिणंखगेंद्रकेतुंवरदंश्रियःपतिम् ॥ समाश्रितास्तेनभवन्तिदुःखिताःसंसारगर्तेनपतंतितेपुनः ॥
॥ ४१ ॥ येषांमनसिगोविंदोनिवासीसततंभवेत् ॥ नतेपरिभवंयांतिनमृत्योरुद्विजंतिच ॥ ४२ ॥ देवंशार्ङ्गधरंविष्णुंयेप्रपन्नाःपरायणम् ॥ नतेषांयमलो
कोस्तिनचतेनरकौकसः ॥ ४३ ॥ सतांगतिंप्राप्नुवंतिश्रुतिशास्त्रविशारदाः ॥ यांतिदानवशार्दूलविष्णुभक्ताव्रजंतिताम् ॥ ४४ ॥ यागतिर्दैत्यशार्दूलसं
ग्रामेनिहतात्मनाम् ॥ ततोधिकांगतिंयांतिविष्णुभक्तानरोत्तमाः ॥ ४५ ॥ यागतिर्धर्मशीलानांसात्त्विकानांमहात्मनाम् ॥ सागतिर्गदितादैत्यभगवद्भे
दिनामपि ॥ ४६ ॥ सर्वावासंवासुदेवंसूक्ष्ममव्यक्तविग्रहम् ॥ प्रपश्यंतिमहात्मानस्तीर्थभूताभवाच्छिदम् ॥ ४७ ॥ प्रणिपत्ययथान्यायंसंसारेनपुनर्भवेत् ॥
कृतेषुवसतेनित्यंक्रीडन्नास्तेमितद्युतिः ॥ ४८ ॥ आसीनःसर्वदेहेषुकर्मभिर्नसबध्यते ॥ येषांविष्णुःप्रियोनित्यंतेविष्णोःसततंप्रियाः ॥ ४९ ॥ नतेपुनःसंभ
वंतितद्भक्तास्तत्परायणाः ॥ ध्यायेद्दामोदरंयस्तुभक्तिनम्रस्तथार्चयेत् ॥ ५० ॥

दानवशार्दूल ! वेदश्रुतिशास्त्रविशारद पुरुष और विभुभक्तमनुष्य दोनोंही समान गतिको पातेहैं ॥ ४४ ॥ हे दैत्यशार्दूल ! संग्राममें निहत मनुष्यकी जो गति होती है, अथवा
धर्मशीलपुरुषोंकी जो गति होती है, भगवान्को जाननेवाले मनुष्योंकीभी वही गति कही गई है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जो संसारमें सर्वत्र वास करते हैं जो सूक्ष्मस्वरूप और
अव्यक्तविग्रह हैं और संसारको छेदन करते हैं जो महात्मा उन वासुदेवका दर्शन करतेहैं वह साक्षात् तीर्थस्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ वासुदेवको यथान्यायसे प्रणाम करै
तो संसारमें पुनर्वार जन्म नहीं होता, सबकार्यही उसके अधिष्ठान और नित्य विहारसे लक्षित होते हैं ॥ ४८ ॥ और वह सब देहोंमें सर्वदा विराजमान रहतेहैं परन्तु
कभी कर्मके द्वारा बद्ध नहीं होते, विष्णु जिनके नित्य प्रिय हैं, वह सर्वदा विष्णु प्रिय होतेहैं ॥ ४९ ॥ उनके भक्त और उनमें परायण मनुष्योंका पुनर्जन्म नहीं

होता. जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर उन दामोदरका ध्यान करताहै ॥ ५० ॥ वह कभीभी संसारकी कीचड़में मग्न नहीं होता, जो प्रातःसमयमें उठकर भक्तिसहित मधुसूदनका स्मरण करता है ॥ ५१ ॥ और उनके गुणगौरवको श्रवण कराते हैं और स्वयं करते हैं वह संकटोंको सहजमें तरण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे बलि ! कर्णरूपी पात्रकी सहायतासे हरिनामरूपी अमृतको पानकर जिसका अंतःकरण आनंदको अनुभव करताहै वहभी अत्यन्त दुर्गसे तरण करता है ॥ ५३ ॥ जो चक्रगदापाणि नारायणमें अचल भक्ति रखता है, जिस स्थानपर योगेश्वर हरि विराजमान हैं उस स्थानमें उसकी गति होती है ॥ ५४ ॥ विष्णुधर्ममें आसक्त उन मनुष्योंकी जो गति प्राप्त होतीहै सहस्रों जन्ममें तपस्या करनेपरभी ऐसी गति प्राप्त नहीं होती ॥ ५५ ॥ उसके जपका प्रयोजन क्या है ? मंत्रका फल क्या है ? तपस्यासेही क्या कार्य है, आश्रमहीकी आवश्यकता क्या है, जिसकी मधुसूदनमें सर्वदापरा (श्रेष्ठ) भक्ति नहीं है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य मधुसूदनसे द्वेष करताहै, उसका यज्ञ वृथा, दान वृथा, धर्म वृथा, आश्रम वृथा और तपस्याभी वृथा है ॥ ५७ ॥ और जो मनुष्य जनार्दनमें भक्ति करते हैं उनके बहुत प्रकारके मंत्रोंसे क्या करना है "नमो नारायणाय" नारायणको नमस्कार है, यही सप्ताक्षर मंत्र सर्वार्थ साधक है ॥ ५८ ॥ जिनके विष्णु इष्ट हैं उनकीही जय है, फिर उनकी पराजय कहाँ ? इन्दीवरश्याम जनार्दन जिनके हृदयमें स्थित हैं उनकीही सर्वथा जय होती है, वह कहीं भी परास्त नहीं होते ॥ ५९ ॥ जो सर्वमंगलमांगल्य हैं, वरेण्य हैं, वरद और प्रभु हैं, उन्हीं नारायणका स्मरणकर सम्पूर्ण कार्य करैं ॥ ६० ॥ विष्टि (भद्रा) व्यतीपात, दुर्नीति, सम्भव अन्यान्य आपत्तियें यह सब विष्णुभगवान्‌का नामस्मरण करतेही

नहिसंसारपंकेस्मिन्मज्जतेदानवेश्वर ॥ कल्पमुत्थाययेभक्त्यास्मरंतिमधुसूदनम् ॥ ५१ ॥ श्रावयंतिचशृण्वंतिदुर्गाण्यतितरंतिते ॥ ५२ ॥ हरिगाथामृतंपीत्वाबलेवैश्रोत्रभाजनैः ॥ प्रहृष्यतिमनोयेषांदुर्गाण्यतितरंतिते॥ ५३ ॥ येषांचक्रगदापाणौभक्तिरव्यभिचारिणी ॥ तेयांतिनियतंस्थानंयत्रयोगेश्वरोहरिः ॥ ५४ ॥ विष्णुधर्मप्रसक्तानांतेषांयापरमागतिः ॥ सातुजन्मसहस्रेणनतपोभिरवाप्यते ॥ ५५ ॥ किंजप्यैस्तस्यमंत्रैर्वाकिंतपोभिःकिमाश्रमैः ॥ यस्यनास्तिपराभक्तिःसततंमधुसूदने ॥ ५६ ॥ वृथायज्ञावृथोदानंवृथाधर्मोवृथाश्रमः ॥ वृथातपश्चकीर्तिश्चयोद्वेष्टिमधुसूदनम् ॥ ५७ ॥ किंतस्यबहुभिर्मंत्रैर्भक्तिर्यस्यजनार्दने ॥ नमोनारायणायेतिमंत्रःसर्वार्थसाधकः ॥ ५८ ॥ विष्णुर्येषांजयस्तेषांकुतस्तेषांपराजयः ॥ येषामिंदीवरश्यामोहृदयस्थोजनार्दनः ॥ ५९ ॥ सर्वमंगलमांगल्यंवरेण्यंवरदंप्रभुम् ॥ नारायणंनमस्कृत्यसर्वकर्माणिकारयेत् ॥ ६० ॥ विष्टयोव्यतिपाताश्चयेऽन्येदुर्नीतिसंभवाः ॥ तेनामस्मरणाद्विष्णोर्नाशंयांतिमहासुर ॥ ६१ ॥

नष्ट होजाती हैं ॥ ६१ ॥ तीर्थकोटिसहस्र वा तीर्थकोटिशत नारायणके प्रणामकी सोलहवीं कलाकोभी नहीं पासक्के हैं ॥ ६२ ॥ पृथ्वीमें जो सम्पूर्ण पवित्र तीर्थ और स्थान हैं, विष्णुनामके कीर्त्तनके प्रभावसे वह सभी प्राप्त होजातेहैं ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णको नमस्कार करनेमें लीन मनुष्य जिस २ लोकको प्राप्त करतेहैं, व्रत करनेवाले वा तपस्या करनेवालेभी उसको नहीं प्राप्त करसकते हैं ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य हृदयसे देवताका भक्त है, वह मिथ्या (लोक दिखावेसे) भी केशवकी आराधना करनेपर साधु और पुण्यात्माओंके स्थानको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ इसकारण सत्य सत्यही भगवान् केशवकी पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होताहै, लोकमें विधिविधानसे तपस्या करनेपरभी वह फल प्राप्त नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ जो परमबुद्धिमान् मनुष्य तीनों संध्याओंमें (अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायङ्कालके समय) विष्णुका स्मरण करते हैं. उनको निःसन्देह व्रत करनेका फल प्राप्त होता है ॥६७॥ अतएव तुम सर्वदा शास्त्रमें लिखेहुए कर्मोंके अनुसार विष्णुभगवान्की पूजा करो. उनके प्रसादसे परमसिद्धि प्राप्त होगी ॥ ६८ ॥ तुम उन्हींमें अपने मनको लगाओ, उन्हींकी भक्ति करो, उन्हींकी शरणागतहो और उन्हींको नमस्कार करो. हे पुत्रक! वह देवताओंके ईश्वर हैं, इसकारण उनका आश्रय करनेसे सुख प्राप्त होगा ॥ ६९ ॥ वह वासुदेव आद्य, अनन्त, अजर; अव्यय, सर्वत्रग; परब्रह्म और पुण्यस्वरूप हैं, शुद्धअन्तःकरणवाले मनुष्य निश्चय शाश्वत स्वरूप वैष्णवपदको प्राप्त करतेहैं ॥ ७० ॥ जो देवताओंमें श्रेष्ठ नारायणको सर्वदा स्मरण करताहै, उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं और वह पांडुरपट (शुक्ल पीतमिश्रित वस्त्र) युक्त राजहंसकी समान होजाता है। जो सबके ईशितार अच्युतको

तीर्थकोटिसहस्राणितीर्थकोटिशतानिच ॥ नारायणप्रणामस्यकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ ६२ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच ॥ तानिसर्वाण्यवाप्नोतिविष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ ६३ ॥ प्राप्नुवंतिनताँल्लोकान्व्रतिनोवातपस्विनः ॥ प्राप्यंतेयेतुकृष्णस्यनमस्कारपरैर्नरैः ॥ ६४ ॥ योप्यन्यदेवताभक्तोमिथ्यार्चयतिकेशवम् ॥ सोपिगच्छतिसाधूनांस्थानंपुण्यकृतांमहत् ॥ ६५ ॥ सुसत्येनहृषीकेशंपूजयित्वातुयत्फलम् ॥ नृणांसुचीर्णेतपसितत्फलंनकदाचन ॥ ६६ ॥ त्रिसंध्यंपद्मनाभंतुयेस्मरंतिसुमेधसः ॥ लभंतेतूपवासस्यफलंनास्त्यत्रसंशयः ॥ ६७ ॥ सततंशास्त्रदृष्टेनकर्मणाहरिमर्चय ॥ तत्प्रसादात्परांसिद्धिंबलेप्राप्स्यसिशाश्वतीम् ॥ ६८ ॥ तन्मनाभवतद्भक्तस्तद्याजीतंनमस्कुरु ॥ तमेवाश्रित्यदेवेशंसुखंप्राप्स्यसिपुत्रक ॥६९॥ आद्यंह्यनंतमजरंहरिमव्ययंचसर्वत्रगंपरमब्रह्मपरंपुराणम् ॥ तेयांतिवैष्णवपदंध्रुवमक्षयंचयेमानवाविगतरागपराभवंति ॥ ७० ॥ नारायणंसुरवरंसततंस्मरंतितेधौतपाडरपटाइवराजहंसाः ॥ संसारसागरजलस्यतरंतिपारंध्यायंतियेसततमच्युतमीशितारम् ॥ ७१ ॥

सर्वदा स्मरण करताहै वह (विष्णु) संसाररूपी समुद्रके जलसे उसे पार कर देतेहैं ॥ ७१ ॥ जो उन अपापविद्ध (पापसम्बन्धरहित) पद्मदलायत लोचन वासुदेवका ध्यान करताहै वहभी अपापविद्ध होजाताहै । जो वरदवर.पद्मनाभ विष्णुके नामका उच्चारण करतेहैं उनको फिर माताके पयोधर (स्तन) के रसका पान नहीं करना होता ॥७२॥ जो भक्तिपूर्वक उन शंख, चक्र, गदापाणि, शार्ङ्गधर वासुदेवके नामको सुनता है वह उनके निकट (वैकुंठस्थान) को प्राप्त होताहै ॥ ७३ ॥ आजन्ममें जो पाप कियेहैं, भगवान् माधवके नामको लेतेही वह सब पापोंसे मुक्त और अमृतशायी (देवता) की समान तृप्त और सुखी होजाताहै ॥७४॥ इसकारण श्रद्धावान् हो भगवान्का ध्यान, स्मरण, कीर्तन और उनके नामोच्चारणमें प्रवृत्त होकर सज्जनोंके निकट उनका नाम श्रवणकरना योग्य है देवता उनकी पूजाके समान उनसभीकी प्रशंसा करतेहैं ॥७५॥ बाह्य और आन्तरिकसे उन सर्वेश्वर भगवान् केशवकी पूजा करे ऋतुके फल फूल और पत्रोंको निवेदनकर उनके पूजनमें प्रवृत्त होय ॥ ७६ ॥ इति श्रीवामनपुराणे भाषाटीकायां भगवत्प्रशंसनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ बलि बोले कि, भगवान्केशवकी आराधना करके मनुष्य जिस गतिको प्राप्त करते हैं आपने वह सभी वर्णन किया. इससमय मैं यह पूछताहूं कि, किसप्रकारसे उनकी पूजा करनी होगी, और किसप्रकारकी पूजा करनेसे वह प्रसन्न होतेहैं, उन जगद्गुरु जनार्दनकी प्रीतिके निमित्त किसप्रकारका दान करना कर्तव्य है ॥ १ ॥ २ ॥ किस तिथिमें उपवासादि करनेसे महोदय प्राप्त होतेहैं ? और किसप्रकारका कार्य सभीसे श्रेष्ठ और पुण्यजनक है, जिसके अनुष्ठानसे विष्णु संतुष्ट होतेहैं ॥ ३ ॥ हे दैत्येन्द्र ! इसके अतिरिक्त आलस्यहीन और हृष्टरूप होकर जिन २ कार्योंका

निष्कल्मषंसपदिपद्मदलायताक्षंध्यानेनतेनहतकिल्बिषचेतनास्ते ॥ मातुःपयोधररसंनपुनःपिबंतियेकीर्तयंतिवरदंवरपद्मनाभम् ॥ ७२ ॥ शंखाब्जचक्रवरचापगदासिहस्तंपद्मालयावदनपंकजषट्पदाख्यम् ॥ नूनंप्रयांतिसदनंमधुधातिनस्तेशृण्वंतियेसुदृढभक्तिपरामनुष्याः ॥ ७३ ॥ संकीर्त्यमानंभगवंतमाद्यमाजन्मपापंयदकारियैस्तु ॥ तेमुक्तपापाःसुखिनोभवंतियथामृतप्राशनतर्पिताश्च ॥ ७४ ॥ तस्माद्ध्यानंस्मरणंकीर्तनंवानाम्नामपिश्रवणंपठतांसज्जनानाम् ॥ कार्यंविष्णोःश्रद्धधानैर्मनुष्यैःपूजातुल्यंतत्प्रशंसंतिदेवाः ॥ ७५ ॥ बाह्येनचांतःकरणेनेयागिष्वथार्चयेत्केशवमीशितारम् ॥ पुष्पैश्चपत्रैर्ऋतुसंभवैश्चनूनंसपूज्योविधिवन्नरेण ॥ ७६ ॥ इति श्रीवामनपुराणेभगवत्प्रशंसानामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ बलिरुवाच ॥ भवताकथितंसर्वंसमाराध्यजनार्दनम् ॥ यागतिःप्राप्यतेलोकेसचाराध्यःकथंचन ॥ १ ॥ केनार्चनेनदेवस्यप्रीतिःसमुपजायते ॥ कानिदानानिशस्तानिप्रीणनायजगद्गुरोः ॥ २ ॥ उपवासादिकंकार्यंकस्यांतिथ्यांमहोदयम् ॥ कानिपुण्यानिशस्तानिविष्णुतुष्टिकराणिवै ॥ ३ ॥ यच्चान्यदपिकर्तव्यंहृष्टरूपैरनालसैः ॥ तदप्यशेषंदैत्येंद्रममाख्यातुमिहार्हसि ॥ ४ ॥

करना कर्तव्य है सो आप मेरे निकट सविशेष वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, श्रद्धाशील और भक्तियुक्त होकर विष्णुके निमित्त जो दान किये जातेहैं
वह सभी अक्षय होतेहैं ॥ ५ ॥ वही तिथि श्रेष्ठ है कि, जिनमें जगत्पति जनार्दनकी पूजा कर उन्हींमें चित्त लगाय और उन्हींमें तन्मय होकर, मनुष्य उपवास व्रत
करतेहैं ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे जनार्दन पूजित होतेहैं जो उनसे द्वेष करताहै वह मूढ़ात्मा अवश्यही नरकको जाताहै ॥ ७ ॥ इसीकारणसे मनुष्य
विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो ब्राह्मणोंकी भक्तिसहित पूजा करै. स्वयं हरिने प्रथम कहाहै कि, ब्राह्मण मेरा शरीर है ॥ ८ ॥ अतएव पंडित हो वा मूर्ख हो किसी
ब्राह्मणकाभी निरादर करना योग्य नहीं, ब्राह्मणही विष्णुकी दिव्य देह है इसीकारण उनका पूजन करै ॥ ९ ॥ हे महासुर ! जिनमें रस है, गंध है, और वर्ण है, वह फूल सभी श्रेष्ठ

प्रह्लादउवाच ॥ श्रद्दधानैर्भक्तिपरैःसमुद्दिश्यजनार्दनम् ॥ दीयंतेयानिदानानितानियांतिनवैक्षयम् ॥ ५ ॥ ताएवतिथयःशस्तायास्वभ्यर्च्यजगत्पतिम् ॥
तच्चित्तस्तन्मयोभूत्वाउपवासीनरोभवेत् ॥ ६ ॥ पूजितेषुद्विजेंद्रेषुपूजितस्तुजनार्दनः ॥ यस्तान्द्वेष्टिसमूढात्मासयातिनरकंध्रुवम् ॥ ७ ॥ तानर्चयेन्नरो
भक्त्याब्राह्मणान्विष्णुतत्परः ॥ एवमाहहरिःपूर्वंब्राह्मणामामकीतनुः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोनावमंतव्योबुधोवाप्यबुधोऽपिवा ॥ सोऽपिदिव्यातनुर्विष्णोस्तस्मात्तं
ह्यर्चयेन्नरः ॥ ९ ॥ तान्येवचप्रशस्तानिकुसुमानिमहासुर ॥ यानिस्युर्वर्णयुक्तानिरसगंधयुतानिच ॥ १० ॥ विशेषतःप्रवक्ष्यामिपुण्यानितिथिभिःसह ॥
दानानीहप्रशस्तानिमाधवप्रीणनायतु ॥ ११ ॥ जातीशताह्वासुमनाःकुंदंबहुपुटंतथा ॥ बाणंचचंपकाशोकंकरवीरंचयूथिका ॥ १२ ॥ पारिभद्रंपाटलाचब
कुलंगिरिशालिनी ॥ तिलकंचजपापुष्पंपीतकंतगरंत्वपि ॥ १३ ॥ एतानिहिप्रशस्तानिकुसुमान्यच्युतार्चने ॥ सुरभीणितथान्यानिवर्जयित्वातुकेतकी
म् ॥ १४ ॥ बिल्वपत्रंशमीपत्रंपत्रंभृंगमृगांकयोः ॥ तमालमालतीपत्रंशस्तंचहरिपूजने ॥ १५ ॥

हैं ॥ १० ॥ सब तिथियोंमें जिसप्रकार दान करनेसे विष्णुभगवान् प्रसन्न होतेहैं इसीकी समान श्रेष्ठ दानको मैं विशेषरूपसे कीर्तन करूंगा ॥ ११ ॥
जाती (जूई) शताह्वा (सौंफ) सुमना (चमेली) कुन्द (बबूला) बहुपुट, बाण (नीले फूलका पियावासा) चम्पक (चंपा) अशोक, करवीर
(कनेर) यूथिका (जुही) ॥ १२ ॥ पारिभद्र (नीम) पाटला, बकुल (मौलसिरी) गिरिशालिनी (अपराजिता) तिलक (तिल) जपाकुसुम (गुड़हरकापुष्प)
पीतक (सरसोंका फूल वा सौनहुल) और तगर, इन सबके फूल विष्णुकी पूजामें श्रेष्ठ हैं, केतकी पुष्प (केंवड़ेका फूल) के अतिरिक्त और सभी सुगंधित फूल
भगवान्के पूजनमें श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ बेलपत्र, शमी (जन्ट) पत्र, भृङ्ग (भंगेरा) पत्र, मृगाङ्कपत्र, तमाल और आमलेके पत्र हरिकी पूजामें श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

इन सबके फूल वासुदेवकी पूजामें श्रेष्ठ हैं इन सबके पल्लवोंसे वासुदेव भगवान्‌की पूजा कीजाती है ॥ १६ ॥ वीरुध (वेलोंके) और बर्हि (कुश) के प्रवाल (पत्तोंके) द्वारा उनकी पूजा करै, इसके अतिरिक्त कमल और इन्दीवरादि नानारूप अनुभाव ॥ १७ ॥ हे बले ! वनस्पतियोंके किंचित् जलसे प्रक्षालित शुचिपल्लवोंसे दूर्वाग्र पल्लव इन सबोंसे उनकी पूजा करै ॥ १८ ॥ पत्र कलियें और पल्लवोंसे उनकी पूजा कीजाती है, कुंकुम और चंदनसे यत्नसहित उन्हें चर्चित कर ॥ १९ ॥ और उशीर (खस) पद्मक कालीयक दादहरद अथवा जायफल आदि द्वारा चर्चित करै. महिषाख्य, कर्णदारु, सिंहलक, नागरमोथा ॥ २० ॥ शंख और जातीफल इन सबकी यह धूप, लक्ष्मीपति विष्णुकी प्रीतिको उत्पन्न करती है. घृतमें मिलेहुए जौ, गोधूम और शाली ॥ २१ ॥ तिल

एषामपिहिपुष्पाणिप्रशस्तान्यर्चनेविभोः ॥ पल्लवान्यपितेषांस्युःपत्राण्यर्चाविधौहरेः ॥१६॥ वीरुधांचप्रवालेनबर्हिषांचार्चयेन्नरः ॥ नानारूपैश्चानुभावैः
कमलेन्दीवरादिभिः ॥ १७॥ प्रवालैःशुचिभिःसूक्ष्मजलप्रक्षालितैर्बले ॥ वनस्पतीनामर्चेततथादूर्वाग्रपल्लवैः ॥ १८ ॥ तथैवप्रतिपूज्योसौपत्रकुड्मल
पल्लवैः ॥ चंदनेनानुलिंपेतकुंकुमेनचयत्नतः ॥ १९ ॥ उशीरपद्मकाभ्यांसतथाकालीयकादिना ॥ महिषाख्यंकर्णदारुसिह्लकंनागरंतथा ॥ २० ॥
शंखजातीफलंश्रीशेधूपनेस्युःप्रियाणिवै ॥ हविषासंस्कृतायेतुयवगोधूमशालयः ॥ २१ ॥ तिलमुद्गादयोमाषाव्रीहयश्चप्रियाहरेः ॥ गोदानानिपवित्राणि
भूमिदानानियानिच ॥ २२ ॥ वस्त्रान्नस्वर्णदानानिप्रीतयेमधुघातिनः ॥ माघमासेतिलाःशस्तास्तिलधेनुश्चदानव ॥ २३ ॥ इंधनानिचदेयानिमाधवः
प्रीयतामिति ॥ फाल्गुनेव्रीहयोवस्त्रंतथाकृष्णाजिनादिकम् ॥ २४ ॥ गोविंदप्रीणनार्थंचदातव्यंपुरुषर्षभैः ॥ चैत्रेविचित्रवस्त्राणिशयनान्यासनानिच ॥
॥ २५ ॥ विष्णोःप्रीत्यर्थमेतानिदेयानिब्राह्मणेषुच ॥ गंधशालीनिवस्तूनिवैशाखेसुरभीणिच ॥ २६ ॥ देयानिद्विजमुख्येभ्योमधुसूदनतुष्टये ॥ उदकुं
भाब्धेनुंचतालवृंतंसचंदनम् ॥ त्रिविक्रमस्यप्रीत्यर्थंदातव्यंसाधुभिःसदा ॥ २७ ॥

और मूँग इत्यादि माष (उड़द) और व्रीहि यह सब मधुसूदन भगवान्‌के प्रिय हैं. गोदान, पवित्र भूमिदान ॥२२॥ वस्त्रदान, अन्नदान, स्वर्णदान, केशिमथन (विष्णु) को प्रीतिदान करताहै, हे दानव ! माघके महीनेमें सबमें तिल और तिलधेनुका दान श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ "माधवः प्रीयताम्" माधव प्रसन्न हों यह कहकर तापनेके अर्थ इन्धन (लकड़ी) प्रदान करै. फाल्गुनमें व्रीहि वस्त्र कृष्णाजिन (कृष्णमृगचर्म) आदिक ॥ २४ ॥ यह गोविन्दकी प्रसन्नताके निमित्त प्रदान करै चैत्रके महीनेमें विचित्र वस्त्र शयन (उपकरणसहित शय्या) और आसन ॥ २५ ॥ इन सभी द्रव्योंको विष्णुकी प्रसन्नताके निमित्त ब्राह्मणोंको अर्पण करै । वैशाखमें गंधशाली और सुरभि द्रव्य ॥ २६ ॥ मधुसूदनकी संतुष्टताकी अभिलाषासे ब्राह्मणोंको दान करै. उससमय साधुजन उदकुंभ (जलपूर्ण घट) धेनु, तालवृन्त (पंखा) चंदन,

त्रिविक्रमकी प्रीतिके निमित्त प्रदान करै ॥ २७ ॥ जो मनुष्य सर्वदा विष्णुगत होतेहैं, यह सर्वदा भार्या पुत्र और धनसे संयुक्तरह और भक्तिमान् होकर विष्णुकी पूजा करतेहैं, सर्वदा उनका नाम श्रवण करते हैं, उनके चरणकमलकी वंदना करते रहते हैं ॥ २८ ॥ वह हीनपाप होकर दक्षिणासहित सम्पूर्ण अश्वमेध यज्ञ और सुवर्ण; भूमि, अश्व, गौ, हाथी, रथ इन सब पदार्थोंके प्रदानके फलको प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥ जो स्त्री अथवा पुरुष पवित्र होकर "वामनपुराण" के एक पादकोभी श्रवण करताहै वही पृथ्वीमें अत्यन्त पुण्यवान् है. परमपवित्र तीर्थश्रेष्ठ गंगाजलसे नैमिषमें, पुष्करमें ॥ ३० ॥ अथवा कोकामुखमें, स्नान करनेसे या माघमासमें प्रयागमें स्नानकरनेसे ब्राह्मणोंने जो फल निर्देश किया है, इस (वामनपुराण) के अनन्यमनस्क (एकचित्त) होकर संकीर्त्तन करनेसे मनुष्य उन सम्पूर्ण फलोंको प्राप्तकर अन्तमें वामनभगवान्के पद (स्थान—वैकुंठ) को ॥ ३१ ॥ जाताहै, हे नारद ! मैं तुमसे कहताहूं कि, राजसूययज्ञका जो फल है उसको श्रवण मात्र

सदाभवेत्पुत्रधनेनभार्ययायुतश्चयोविष्णुगतःसदाभवेत् ॥ शृणोतिनित्यंविधिवच्चभक्त्यासंपूजयन्यःप्रणतश्चविष्णुम् ॥ २८॥ सचाश्वमेधस्यसदक्षिणस्य
फलंसमग्रंकिलहीनपापः ॥ प्राप्नोतिदत्तस्यसुवर्णभूमेरश्वस्यगोनागरथस्यचैव ॥ २९ ॥ नारीनरश्चापिचपादमेकंशृण्वञ्शुचिःपुण्यतमःपृथिव्याम् ॥
स्नानेकृतेतीर्थवरेसुपुण्येगंगाजलेनैमिषपुष्करेवा ॥ ३० ॥ कोकामुखेयत्प्रवदंतिविप्राःप्रयागमासाद्यचमाघमासे ॥ सतत्फलंप्राप्यचवामनस्यसंकीर्त
यन्नान्यमनाःपदंहि ॥ ३१ ॥ गच्छेन्मयानारदतेद्यचोक्तंयद्राजसूयस्यफलंप्रयच्छेत् ॥ यद्भूमिलोकेसुरलोकलभ्येमहत्सुखंप्राप्यनरःसमग्रम् ॥ ३२ ॥
प्राप्नोतिचास्यश्रवणान्महर्षेसौत्रामणेर्नास्तिचसंशयोमे ॥ रत्नस्यदानस्यचयत्फलंभवेत्सूर्यस्यचंद्रेग्रहणेचराहोः ॥ ३३ ॥ अन्नस्यदानेनफलंयथोक्तंबुभु
क्षितेप्राप्तवरेचसाग्निके ॥ दुर्भिक्षसंपीडितपुत्रभार्येज्ञातौसदापोषणतत्परेच ॥ ३४ ॥ देवाग्निविप्रर्षिरतेचपित्रोःसुतेतथाभ्रातरिज्येष्ठकेच ॥ यत्तेफलंतत्प्रवदं
तिदेवाःसतत्फलंलभतेचास्यपाठात् ॥ ३५ ॥

सेही यह पुराण देताहै, और जो कोई भूमिलोकमें अथवा स्वर्गलोकमें प्राप्त होनेवाले बड़े २ सुखहैं मनुष्य उन सम्पूर्ण फलोंको प्राप्तकर ॥ ३२ ॥ इस पुराणके श्रवणके बलसे सौत्रामणि यज्ञके फलकोभी प्राप्तकरताहै. हे महर्षे ! मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ सूर्य और चंद्रमाके ग्रहणके समयमें रत्नादि दान करनेसे जो फल होताहै ॥ ३३ ॥ अथवा गुरुकुलमें ब्रह्मचर्य्यव्रतपूर्वक वेदाध्ययन करके गुरु दक्षिणादे गुरुसे वरदान ले समावर्त्तन किया हुआ, बुभुक्षित (भूखे) साग्निक (अग्निहोत्री) ब्राह्मणोंको अन्नदानका जो फल है, अथवा दुर्भिक्षके होनेसे जिसके स्त्रीपुत्र पीड़ित हुएहैं, उसको अन्नदानका जो फलहै, सर्वदा पोषणमें तत्पर ॥ ३४ ॥ देवता और अग्नि ब्राह्मण और ऋषियोंकी परिचर्यामें तत्पर और ज्येष्ठभ्राताके प्रति प्रीतिमें रत होनेपर देवताओंने जो फल कहा है, वामनपुराणके पाठ करनेसे वही फल प्राप्त

होता है ॥३५॥ यह वामनपुराण सब १८ पुराणोंके बीचमें चतुर्दश (चौदहवाँ) और श्रेष्ठ कहा गया है, इसके श्रवण करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं. हे नारद ! महापाप सभी शीघ्रतासे लयको प्राप्त होते हैं इसमें किंचित् भी संदेह नहीं॥ ३६ ॥ हे मुने ! सर्वदा वामनपुराणका पाठ श्रवणकरै और दूसरेको सुनानेसे सब प्रकारके पाप दूर होजाते हैं ॥ ३७॥ विपश्चित् (विचारक) मनुष्य आषाढ़के महीनेमें उपानद (जूते) छत्री, लवण आमलकादि वामनजीकी प्रीतिके निमित्त प्रदान करै ॥ ३८॥ भादोंके महीनेमें खीर, शहद, घी, लवण और गुड़ चावलको हृषीकेशकी प्रसन्नताके निमित्त दानकरै ॥ ३९ ॥ नीलाघोड़ा, बैल, दही, ताँबा और लोहा आदि पद्मनाभ वासुदेवकी प्रीतिके अर्थ क्वाँरके महीनेमें दानकरै ॥ ४० ॥ कार्तिकके महीनेमें दामोदरकी प्रसन्नताके निमित्त चाँदी, सोना, दीपक, मणि, मोती और फल आदि दानकरै ॥

चतुर्दशंवामनमाहुरग्र्यंश्रुतेचयस्याघचयाश्विनाशम् ॥ प्रयांतिनास्त्यत्रचसंशयोमेमहांतिपापान्यपिनारदाशु ॥ ३६ ॥ पाठात्संश्रवणाद्विप्रश्रवणादपि
कस्यचित् ॥ नश्यंतिसर्वपापानिवामनस्यसदामुने ॥ ३७ ॥ उपानद्युगलंछत्रंलवणामलकादिकम् ॥ आषाढेवामनप्रीत्यैदातव्यानिविपश्चिता ॥ ३८ ॥
मासिभाद्रपदेदद्यात्पायसंमधुसर्पिषी ॥ हृषीकेशप्रीणनार्थंलवणंसगुडौदनम् ॥ ३९ ॥ नीलंतुरंगंवृषभंदधिताम्रायसादिकम् ॥ प्रीत्यर्थंपद्मनाभस्यदे
यमाश्वयुजेनरैः ॥४०॥ रजतंकनकंदीपान्मणिमुक्ताफलादिकम् ॥ दामोदरस्यतुष्ट्यर्थंप्रदद्यात्कार्तिकेनरः ॥४१॥ खरोष्ट्राश्वतरान्नागान्शकटाद्यमजावि
कम् ॥ दातव्यंकेशवप्रीत्यैमासिमार्गशिरेनरैः ॥ ४२ ॥ प्रासादनगरादीनिगृहप्रावरणादिकम् ॥ वामनस्यचतुष्ट्यर्थंपौषेदेयानिभक्तितः ॥ ४३ ॥ दासी
दासमलंकारमन्नंषड्रससंयुतम् ॥ पुरुषोत्तमतुष्ट्यर्थंप्रदेयंसार्वकामिकम् ॥ ४४ ॥ यद्यदिष्टतमंकिंचिद्यद्वाप्यस्यगृहेशुचि ॥ तत्तद्धिदेयंप्रीत्यर्थंदेवदेवस्यच
क्रिणः ॥ ४५ ॥ यःकारयेन्मंदिरंकेशवस्यपुण्यांल्लोकान्सजयेच्छाश्वतान्वा ॥ दत्त्वारामान्पुष्पफलाभिपन्नान्भोगान्सभुंक्तेकामतःश्लाघनीयान् ॥ ४६ ॥

॥ ४१ ॥ अगहनके महीनेमें केशवकी प्रसन्नताके निमित्त खर, ऊँट, खिच्चर, हाथी, गाड़ी आदिक और बकरी, भेडको दानकरै ॥ ४२ ॥ पौषके महीनेमें वामनदेवकी प्रीतिके निमित्त भक्तिके साथ प्रासाद (मकान) नगर आदिक और गृह ओढ़ना बिछौना आदिक उसके उपकरणको दानकरै ॥ ४३ ॥ इसके अतिरिक्त दासी, दास, अलङ्कार, अन्न और छहोंरसोंसे युक्त अन्न पुरुषोत्तमकी प्रीतिके अर्थ दानकरै जिससे सर्वप्रकारकी मनोकामनाएँ पूर्णहोंय ॥ ४४ ॥ सारांश यहहै कि, जो द्रव्य अपनेको तथा औरोंको अधिक प्रियहो, पवित्र होकर उन्हीं २ द्रव्योंको देवाधिदेव चक्रधरकी प्रीतिके अर्थ दानकरै ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य केशवके निमित्त मन्दिरकी प्रतिष्ठा करताहै वह सम्पूर्ण पवित्रशाश्वत (स्थिर) लोकोंको जय करताहै । फूल और फलआदिसे युक्त आराम (बाग) दान करनेसे इच्छानुसार श्लाघनीय भोगोंको

भोगताहै ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य विष्णुभगवान्‌के मन्दिरको निर्माण करताहै, वह अपने सहित पितृपितामहसे लेकर अष्टोत्तरशत (१०८) कुलोंको उद्धार करताहै ॥ ॥ ४७ ॥ पितर, देवता, योगी, तपस्वी आदि सभी अमोघ स्वरूप यदुसिंह श्रीकृष्णचन्द्रके निकट इसप्रकार गान करते भये ॥ ४८ ॥ हमारे वंशमें क्या कोई विष्णुभक्त मनुष्य उत्पन्न होंगे, जो शुचिव्रत होकर हरिके मंदिरकी प्रतिष्ठा करेंगे ॥ ४९ ॥ अथवा हमारी सन्तानोंके बीचमें क्या कोई विष्णुके मन्दिरका लीपनेवाला उत्पन्न होगा जो धर्मात्मा भक्तिके साथ झाडूबुहारी करैगा ॥ ५० ॥ वा हमारी सन्तानोंके बीचमें क्या कोई केशवके मन्दिरमें ध्वजादान, उन देवाधिदेवके

पितामहस्यपुरतःकुलान्यष्टोत्तराणितु ॥ तारयेदात्मनासार्धंविष्णोर्मंदिरकारकः ॥४७॥ इमाश्चपितरोदेवागाथागायंतियोगिनः ॥ पुरतोयदुसिंहस्य ह्यमोघस्यतपस्विनः ॥४८॥ अपिनःस्वकुलेकश्चिद्विष्णुभक्तोभविष्यति ॥ हरिमंदिरकर्तायोभविष्यतिशुचिव्रतः ॥४९॥ अपिनःसंततौजायेद्विष्णवालय विलेपनः ॥ संमार्जनंचधर्मात्माकरिष्यतिचभक्तितः ॥ ५० ॥ अपिनःसंततौजातोध्वजंकेशवमंदिरे ॥ दास्यतेदेवदेवायदीपंपुष्पानुलेपनम् ॥ ५१ ॥ अपिनःसकुलेभूयादेकादश्यांहियोनरः ॥ करिष्यत्युपवासंचसर्वपातकहानिदम् ॥ ५२ ॥ महापातकयुक्तोवापातकीचोपपातकी ॥ विमुक्तपापोभवति विष्णवावसथचित्रकृत् ॥ ५३ ॥ इत्थंपितॄणांवचनंश्रुत्वानृपतिसत्तमः ॥ देवतायतनंभूम्यांस्वयंचाकारयद्बले ॥ ५४ ॥ विभूतिभिःकेशवस्यकेशवायत नान्यथ ॥ चित्रयामासशुचिभिःपंचवर्णैस्तुचित्रकैः ॥ ५५ ॥ दीपपात्राणिविधिवद्वासुदेवालयेबले ॥ सुवर्णतैलपूर्णानिघृतपूर्णानिचस्वयम् ॥५६॥ नानावर्णावैजयंत्योमहारजनरंजिताः ॥ मंजिष्ठानवरंगीयाःश्वेतपाटलिकाश्रिताः ॥ ५७ ॥

उद्देशसे दीपदान और पुष्पानुलेपन करैगा ॥ ५१ ॥ अथवा हमारे कुलमें क्या कोई ऐसा उत्पन्न होगा जो एकादशीका सर्वपापनाशकव्रत करैगा ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य विष्णुके मंदिरको चित्रित करैगा वह महापातकी, पातकी वा उपपातकी होनेपरभी सब पापोंसे छूटजायगा ॥ ५३ ॥ हेअसुर ! नृपतिश्रेष्ठ ज्यामघने पितरोंके यह वचन सुनकर स्वयं भूमिमें देवालय लिखाथा ॥ ५४ ॥ और केशव भगवान्‌के दियेहुए ऐश्वर्योंको लगाकर परमपवित्र पञ्चवर्णद्वारा केशवकी प्रसन्नताके मिमित्त सभी चित्रित करदिया ॥ ५५ ॥ हे बलि ! इसके उपरान्त वासुदेवके मंदिरमें सुवर्णनिर्मित तैलपूर्ण तथा घृतसे पूर्ण विविध भाँतिसे दीपकोंको विधानपूर्वक दान किया ॥ ५६ ॥ कुसुमसे रँगीहुई तथा

मँजीठसे नारँगीसे सफेद पाटलिकी पुष्पके रंगसे रँगीहुई नानावर्णकी पताकाओंको उसमें लगाया ॥ ५७ ॥ फूलोंसे भरेहुए और फलोंसे शोभायमान, लतापल्लवोंसे आच्छन्न और देवदारुसे समाकीर्ण विविध मनोहर बाग उसमें बनाए ॥ ५८ ॥ और अत्यन्त रमणीक मञ्च (कुरसी-आदिक) उसमें रखाय उन पर दृढ़ (तरुण) राग और गान्धर्वविद्याके पारदर्शी परमचतुर पुरुषोंको बैठाया ॥ ५९ ॥ और उन मन्दिरोंमें सर्वदा यती, ब्रह्मचारी दानसे सन्तुष्ट, श्रोत्रियगण और अंध, दीन, विकल आदि मनुष्योंका सत्कार करने लगे॥ ६० ॥ मैंने सुनाहै कि, राजा ज्यामघ इसप्रकारसे श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय होकर भूमिमें चित्रपटमात्र लिखनेसे विष्णुके स्थान (वैकुंठ) को गयेथे ॥ ६१ ॥ सरसों तथा महुआ और अलसीके तेलोंसे भगवन्मन्दिरमें दीपदान करनेसे अन्धतामिस्र नामक नरकसे उत्तीर्ण

आरामाविविधाहृद्याःपुष्पाढ्याःफलशालिनः ॥ लतापल्लवसंछन्नादेवदारुभिरावृताः ॥ ५८ ॥ कारितालंकृतामंचाधिष्ठिताःकुशलैर्जनैः ॥ गंधर्वविद्यारागज्ञैःरत्नसंस्कारिभिर्दृढैः ॥ ५९ ॥ तेषुनित्यंप्रपूज्यंतेयतयोब्रह्मचारिणः ॥ श्रोत्रियादानसंपन्नादीनांधविकलादयः ॥ ६० ॥ इत्थंसनृपतिर्भूत्वाश्रद्दधानोजितेंद्रियः ॥ ज्यामघोविष्णुनिलयंगतइत्यनुशुश्रुम ॥ ६१ ॥ सर्षपस्यसतैलेनमधुकातसिसंभवैः ॥ दीपप्रदानान्नरकानंधतामिस्रसंज्ञकान् ॥ तीर्त्वासभार्ययाराजाविष्णुलोकमगात्ततः ॥ ६२ ॥ तमेवचाद्यापिबलेमार्गंज्यामघकारितम् ॥ व्रजंतिनरशार्दूलाविष्णुलोकंजिगीषवः ॥ ६३ ॥ तस्मात्त्वमपिराजेंद्रकुरुदेवालयंहरेः ॥ तमर्चयस्वयत्नेनब्राह्मणांश्चबहुश्रुतान् ॥ ६४ ॥ पौराणिकान्विशेषेणसदाचाररताञ्शुचीन् ॥ वासोभिर्भूषणैरत्नैर्गोभिर्भूकनकादिभिः ॥ ६५ ॥ विभवेसतिदेवस्यप्रीणनंकुरुचक्रिणः ॥ ६६ ॥ एवंक्रियायोगरतस्यतेद्यनूनंमुरारिःशुभदोभविष्यति ॥ नरानसीदंतिबलेसमाश्रिताविभुंजगन्नाथमनंतमच्युतम् ॥ ६७ ॥

हो वह राजा ज्यामघ भार्याके सहित विष्णुलोकको प्राप्तहुए ॥ ६२ ॥ हे बले ! विष्णुलोक जानेकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठमनुष्य आजतक ज्यामघकी अनुष्ठान कीहुई उल्लिखित पदवीका अनुसरण करतेहैं ॥ ६३ ॥ इसकारण हे राजेन्द्र ! तुम भी भगवान्के स्थानको प्रतिष्ठितकर यत्नसहित उनकी तथा बहुश्रुत ब्राह्मणोंकी पूजा करो ॥ ६४ ॥ विशेषकरके जो पौराणिक सदाचारमें रत शुद्ध स्वभाव हैं, उनको वस्त्र, भूषण, रत्न, गौ, भूमि और काञ्चन (सुवर्ण) आदिकसे ॥ ६५ ॥ विभवके होनेपर चक्रधरकी प्रीति सम्पादन करो ॥ ६६ ॥ जब इसप्रकारसे क्रियायोगमें रतहोंगे तो मुरारि निश्चयही तुम्हारा कल्याण करेंगे। हे बले ! अच्युतस्वरूप सर्व

जगन्नाथमें आश्रित पुरुष कभीभी दुःखी नहीं होताहै ॥ ६७ ॥ प्रह्लादजी इसप्रकारसे उपदेश देकर अपने नगरको चलेगये ॥ ६८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, हरि चरणभक्त दितीश्वर प्रह्लादजी बलिको इसप्रकार सत्व और अत्युत्तम उपदेश देकर उनके द्वारा पूजित हो सर्वथा आप्तकाम होकर विमुक्त होगये ॥ ६९ ॥ प्रसन्नमन प्रह्लादजीके चले जानेपर बलिका चन्द्रवर्ण मन्दिर परमशोभायमान हुआ, उसमें महेन्द्रके शिल्पिश्रेष्ठ विश्वकर्माने केशवकी मूर्तिको निर्माण करदिया ॥ ७० ॥ राजा बलि स्वयं भार्याके सहित देवमंदिरका मार्जन और लेपनादि कार्य करनेलगे और तथा शर्करा (चिनी) आदिसे मधुहन्ता भगवान्‌का सर्वोत्कृष्ट नैवेद्य विधान किया ॥ ७१ ॥ आयताक्षी (दीर्घनेत्रा) स्वयं विन्ध्यावली विष्ण भगवान्‌के मन्दिरमें प्रतिदिन दीपदान करने लगी, बुद्धिमान् बलि पौराणिक ब्राह्मणोंके द्वारा गेय (गानकरने योग्य) धर्मको ग्रहणकर सकल कार्य सम्पादन करने लगे ॥ ७२ ॥ असुरश्रेष्ठ बलिके इसप्रकारसे धर्ममार्गमें स्थित होनेपर जगत्पति दिव्यरूपी परमात्मा वासुदेव उनकी रक्षाकरनेके अर्थ वहींपर जाकर स्थित हुए ॥ ७३ ॥ वह अयुत (१००००) सूर्यके समान मूसलको ग्रहणकर उन दुष्ट शत्रुगणोंके नायकोंका संहार करतेहुए बलिके द्वारका आश्रय करके रहे। प्राकार गुप्ति (किलेके बीच) बलिके गृहमें किसीकोभी प्रवेश नहीं करने दिया ॥ ७४ ॥ सबके विधाता सर्वगुणाभिराम नारायण रक्षाकार्यमें नियुक्त हो द्वारपर स्थितहुए, बलि मंदिरके भीतरे उनकी पूजा करनेलगे॥ ७५॥ असुरपति बलिहरिके चरणकमलोंकी

प्रह्लादःसतदाचोक्त्वापुनर्नगरमध्यगात् ॥ ६८ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंदितीश्वरोवैरोचनंसत्यमनुत्तमंहि ॥ संपूजितस्तेनविमुक्तिमाययौ संपूर्णकामोहरिपादभक्तः ॥ ६९ ॥ गतेहितस्मिन्मुदितेपितामहेबलेर्बभौमंदिरमिंदुवर्णम् ॥ महेंद्रशिल्पिप्रवरोथकेशवंसकारयामासमहामहीयान्॥७०॥ स्वयंस्वभार्यासहितश्चकारदेवालयेमार्जनलेपनादिकाः ॥ क्रियामहात्मायवशर्कराद्याबलिंचकाराप्रतिमंमधुद्रुहः ॥ ७१ ॥ दीपप्रदानंस्वयमायताक्षी विंध्यावलीविष्णुगृहेचकार ॥ गेयंसधर्मग्रहणंचधीमान्पौराणिकैर्विप्रवरैरकारयत् ॥ ७२ ॥ तथाविधस्यासुरपुंगवस्यधर्मानुमार्गेप्रतिसंस्थितस्य ॥ जगत्पतिर्दिव्यवपुर्जनार्दनस्तस्थौमहात्माबलिरक्षणाय ॥ ७३ ॥ सूर्यायुताभंमुसलंप्रगृह्यनिघ्नन्सदुष्टान्नरयूथपालान् ॥ द्वारिस्थितोनप्रददौप्रवेशंप्राकारगुप्तौबलिनोगृहेतु ॥ ७४ ॥ द्वारिस्थितेधातरिरक्षपालेनारायणेसर्वगुणाभिरामे ॥ प्रासादमध्येहरिमीशितारमभ्यर्चयामाससुरर्षिमुख्यम् ॥ ७५ ॥ सएवमास्तेसुरराड्बलिस्तुसमर्चयन्वैहरिपादपंकजे ॥ सस्मारनित्यंहरिभाषितानिसतस्यजातोविनयांकुशस्तु ॥ ७६ ॥

पूजा और सर्वदा उनके वचनोंका स्मरण कर इसप्रकारसे समयको व्यतीत करतेहुए और भगवान् उनकी विनयका अङ्कुशस्वरूप हुए ॥ ७६ ॥ उनके पितामह और गुरु इन्द्रके समान प्रह्लादजी जो सम्पूर्ण कथा कह गयेथे, उन्हींकी स्मृतिमार्गमें सर्वदा विराजमान रहे, वही सम्पूर्ण वचन जैसे दोनों लोकोंके हितकारी थे उसीप्रकारसे यथार्थ गुणोंसे विभूषित और परममंगलदायक इन वचनोंसे पाठ करनेलगे ॥ ७७ ॥ वृद्धोंके वचन परम्परा आपाततः प्रथम २ दुरुक्त लगनेपरभी परिणामसे स्निग्धभावयुक्त हैं, जो उनवचनोंके श्रवणकर पालन करते हैं वह नवनीतकी समान शुद्ध और सर्वदा हर्षित रहतेहैं, इसमें कुछ विचारकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७८ ॥ वृद्धोंकी वचनरूपी औषधि आपत्तिरूप सर्पके द्वारा डसेहुए मंत्रहीन मनुष्यको निर्विष करदेतीहै ॥ ७९ ॥ वृद्धोंके वचनामृतको पान और

इदंचवृत्तंसपपाठदैत्यराट्स्मरन्सुवाक्यानिगुरोःशुभानि ॥ तथ्यानिपथ्यानिपरत्रचेहपितामहस्येंद्रसमस्यवीरः ॥ ७७ ॥ येवृद्धवाक्यानिसमाचरंतिश्रुत्वा दुरुक्तान्यपिपूर्वतस्तु ॥ स्निग्धानिपश्चान्नवनीतशुद्धामोदंतितेनात्रविचार्यमस्ति ॥ ७८ ॥ आपद्भुजंगदष्टस्यमंत्रहीनस्यसर्वदा ॥ वृद्धवाक्यौषधान्येवकुर्वंतिकिलनिर्विषम् ॥ ७९ ॥ बृहद्वाक्यामृतंपीत्वातदुक्तान्यनुमन्यच ॥ यातृप्तिर्जायतेपुंसांसोमपानेकुतस्तथा ॥ ८० ॥ आपत्तौपतितानांयेषांवृद्धानसंतिशास्तारः ॥ तेशोच्याबंधूनांजीवंतोऽपीहमृततुल्याःस्युः ॥ ८१ ॥ आपद्ग्राहग्रहीतानांवृद्धाःसंतिनपंडिताः ॥ एषांमोचयितारोवैतेषांशांतिर्नविद्यते ॥ ॥ ८२ ॥ आपज्जलनिमग्नानांह्रियतांव्यसनोर्मिभिः ॥ वृद्धवाक्यैर्विनानूनंनैवोत्तारःकथंचन ॥ ८३ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ तस्माद्योवृद्धवाक्यानिशृणुयाद्विदधातिवा ॥ ससद्यःसिद्धिमाप्नोतियथावैरोचनिर्बलिः ॥ ८४ ॥

उनकी युक्तिको अनुमोदन कर जिसप्रकारसे तृप्ति उत्पन्न होतीहै यज्ञके बीच सोमलताके रसके पानसेभी उसप्रकार तृप्ति नहीं होती ॥ ८० ॥ जिन आपत्तिग्रस्त मनुष्योंको वृद्ध शासन नहीं करते वह बन्धुओंके शोच्य होतेहैं. कारण कि, वह जीवित रहते हुएभी मृतककी समान हैं ॥ ८१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य आपत्तिग्रसित मनुष्योंको मुक्त न करै तो उनकी मुक्ति किसी प्रकारसेभी न हो ॥ ८२ ॥ आपद्रूपी जलमें मग्न और व्यसनरूप लहरोंमें बहेजातेहुए मनुष्योंको वृद्धोंके वचनोंके अतिरिक्त और कोईभी पार उतरनेका उपाय नहीं होताहै ॥ ८३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि, इसीकारणसे जो मनुष्य वृद्धोंके वचनोंको स्मरणकर उनका

पालन करते हैं वह विरोचनके पुत्र (बलि) की समान सर्वदा सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ८४ ॥ हे नारद ! तुम्हारे निकट यह जो पुण्यतम पुराणको कीर्तन किया भक्तिसहित इसको सुनने और कीर्तन करनेसे विष्णुपद प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ गंगाजीमें स्नान करनेसे जिसप्रकार सब पाप नष्ट होजाते हैं उसीप्रकारसे इसपुराणके श्रवण करनेसे समस्त दुष्कर्म नष्ट होते हैं ॥ ८६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य इस वामनपुराणकी कथाको सुनता है उसको कोई रोग नहीं होता और न उसके कुलमेंही कोई रोग होता है और उसके शरीरमें विषदोष तथा आभिचारिक कर्म (मारणादिक प्रयोग) प्रवेश नहीं कर सकते हैं ॥ ८७ ॥ यह जो तुम्हारे निकट

इतिश्रीवामनपुराणेश्रीत्रिविक्रमचरितंसमाप्तम् ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ एनन्मयापुण्यतमंपुराणंतुभ्यंतथानारदकीर्तितंवै ॥ श्रुत्वाचकीर्त्यापरयासमेतोभक्त्या चविष्णोःपदमभ्युपैति ॥ ८५ ॥ यथापापानिपूयेतंगंगावारिविगाहनात् ॥ तथापुराणंश्रवणाद्दुरितानांविनाशनम् ॥ ८६ ॥ नतस्यरोगाजायंतेनविषंचाभिचारिकम् ॥ शरीरेचकुलेब्रह्मन्यःशृणोतीहवामनम् ॥ ८७ ॥ इदंरहस्यंपरमंतवोक्तंनवाच्यमेवंहरिभक्तिवर्जिते ॥ द्विजस्यनिंदारतिहीनतारतेसहेतुवाक्याहृतपापसत्त्वे ॥ ८८ ॥ नमोनमःकारणवामनायनारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधरायनमोस्तुतस्मैपुरुषोत्तमाय ॥ ८९ ॥ इत्थंवदेद्योनियतंमनुष्यःकृष्णभावनः ॥ तस्यविष्णुःपदंमोक्षंददातिसुरपूजितः ॥ ९० ॥ वाचकायप्रदातव्यंगोभूस्वर्णविभूषणम् ॥ वित्तशाठ्यंनकर्तव्यं कुर्वञ्छ्रवणनाशकः ॥ ९१ ॥

परमपवित्र रहस्य कीर्तन किया. हरिभक्ति रहित मनुष्योंके निकट कभी इसको प्रकाश न करना, जो ब्राह्मणोंकी निन्दा, निरादर और मानहानिमें रत हैं और स्मृति पुराणादिक वैदिक वाक्योंमें लौकिक हेतुवादपूर्वक आदर[1] रखनेवाले अर्थात् लौकिक हेतुवादको आश्रय कर उन वाक्योंका निरादर करनेवाले पापी हैं ऐसे मनुष्यकोभी न सुनाना ॥ ८८ ॥ बलिके निग्रह तथा अनुग्रहके कारण वामनरूप धारी अमितपराक्रम नारायणको वारम्वार नमस्कार है ॥ ८९ ॥ इसप्रकार जो मनुष्य श्रीकृष्णमें भावना लगाय निरन्तर पाठ करता है, उसको देवपूजित विष्णुभगवान् मोक्षपदको देते हैं ॥ ९० ॥ इस पुराणके वाचक (पाठकर सुनानेवाले) को गौ,

---

[1] योवमन्येत तन्मूलहेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ (मनुः) ॥

भूमि और सुवर्णके भूषण दानकरै वित्तशाठ्य न करै अर्थात् अपने विभवके अनुसार दक्षिणा दे, यदि न दे तो उस पाठके श्रवण करनेका फल प्राप्त नहीं होताहै ॥९१॥ तीनों सन्ध्याओंमें (प्रातःकाल मध्यान्हकाल और सायंकालके) समय वामनपुराणके कथाके सुननेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं और जो ब्राह्मण असूया (निन्दा) रहित

त्रिसंध्यंचपठञ्शृण्वन्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ असूयारहितंविप्रः सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ॥ इति वामनपुराणं समाप्तम् ॥ ॐ शुभमस्तु ॥ श्रीकृष्णार्पितमस्तु ॥

हो वामनपुराणका पाठ करता है; उसको सब प्रकारकी सम्पत्तिएँ प्राप्त होती हैं ॥ ९२ ॥ इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे मुरादाबादनिवासी पण्डितश्यामसुन्दरलालत्रिपाठीकृते भाषाटीकायां पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ॥ इति वामनपुराणं भाषाटीकासमेतं सम्पूर्णम् शुभमस्तु, श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

इत्येतन्मुनिवरसूक्तिमौक्तिकाढ्यं लोकानामुपकृतये च वामनाख्यम् ॥ पौराणं शुचिनिजदेशभाषयेत्थं व्याख्यातं नवशररत्नभू (१९५९) मितेब्दे ॥ १ ॥
मुरादाबादवसता बरेलीजनुषा स्वयम् । श्रीमता सुधिया श्यामसुन्दरेण विदाम्मुदे ॥ २ ॥ (सर्कारीनियमानुसार सर्वाधिकार रक्षितहै)

इदं वामनपुराणं भाषाटीकासमेतं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मज क्षेमराजश्रेष्ठिना स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।
मार्गशीर्ष संवत् १९६०, शके १८२५.

पुस्तकमिलनेकापत्ता-खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस, खेतवाडी-बंबई.

अत्रेयमभ्यर्थना.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयकी परमोपयोगी स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें ।

यह विषय आज २५।३० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें नगर २ गाँव २ प्रसिद्धहै कि, इस यन्त्रालयकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे:—वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, योगमार्ग, छन्द, ज्योतिष, काव्य, अंलकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, साम्प्रदायिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहतेहैं । शुद्धता स्वच्छता तथा काग़ज़की उत्तमता और जिल्दकी बँधाई देशभरमें विख्यात है । इतनी उत्तमता होनेपरभी दाम बहुतही सस्ते रक्खे गये हैं और कमीशनभी पृथक् काट दियाजाता है । ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभवहै, संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें त्रुटि न करना चाहिये ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है.)॥ डाक खर्चके लिये भेजकर विनामूल्य "सूचीपत्र" मँगादेखो ॥

अधिकमस्मदीयसूचीपुस्तकानां भिन्न।भिन्नविषयाणां प्रापणेन "श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" पत्रिकाप्रापणद्वारा च ज्ञेयमितिशम् ।

मिलनेका पता—खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना—मुंबई.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS, 'SHRIVENKATESHWAR' STEAM PRESS,

BOMBAY.

3/97

॥ इति वामनपुराणं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥

```
[OrderDescription]
,CREATED=10.12.19 15:32
,TRANSFERRED=2019/12/10 at 16:46:26
,PAGES=557
,TYPE=STD
,NAME=S0002321
,Book Name=M-2168-VAMAN PURAN
,ORDER_TEXT=
,[PAGELIST]
,FILE1=00000001.TIF
,FILE2=00000002.TIF
,FILE3=00000003.TIF
,FILE4=00000004.TIF
,FILE5=00000005.TIF
,FILE6=00000006.TIF
,FILE7=00000007.TIF
,FILE8=00000008.TIF
,FILE9=00000009.TIF
,FILE10=00000010.TIF
,FILE11=00000011.TIF
,FILE12=00000012.TIF
,FILE13=00000013.TIF
,FILE14=00000014.TIF
,FILE15=00000015.TIF
```

```
FILE16=00000016.TIF
,FILE17=00000017.TIF
,FILE18=00000018.TIF
,FILE19=00000019.TIF
,FILE20=00000020.TIF
,FILE21=00000021.TIF
,FILE22=00000022.TIF
,FILE23=00000023.TIF
,FILE24=00000024.TIF
,FILE25=00000025.TIF
,FILE26=00000026.TIF
,FILE27=00000027.TIF
,FILE28=00000028.TIF
,FILE29=00000029.TIF
,FILE30=00000030.TIF
,FILE31=00000031.TIF
,FILE32=00000032.TIF
,FILE33=00000033.TIF
,FILE34=00000034.TIF
,FILE35=00000035.TIF
,FILE36=00000036.TIF
,FILE37=00000037.TIF
,FILE38=00000038.TIF
,FILE39=00000039.TIF
```

```
FILE40=00000040.TIF
,FILE41=00000041.TIF
,FILE42=00000042.TIF
,FILE43=00000043.TIF
,FILE44=00000044.TIF
,FILE45=00000045.TIF
,FILE46=00000046.TIF
,FILE47=00000047.TIF
,FILE48=00000048.TIF
,FILE49=00000049.TIF
,FILE50=00000050.TIF
,FILE51=00000051.TIF
,FILE52=00000052.TIF
,FILE53=00000053.TIF
,FILE54=00000054.TIF
,FILE55=00000055.TIF
,FILE56=00000056.TIF
,FILE57=00000057.TIF
,FILE58=00000058.TIF
,FILE59=00000059.TIF
,FILE60=00000060.TIF
,FILE61=00000061.TIF
,FILE62=00000062.TIF
,FILE63=00000063.TIF
```

```
FILE64=00000064.TIF
,FILE65=00000065.TIF
,FILE66=00000066.TIF
,FILE67=00000067.TIF
,FILE68=00000068.TIF
,FILE69=00000069.TIF
,FILE70=00000070.TIF
,FILE71=00000071.TIF
,FILE72=00000072.TIF
,FILE73=00000073.TIF
,FILE74=00000074.TIF
,FILE75=00000075.TIF
,FILE76=00000076.TIF
,FILE77=00000077.TIF
,FILE78=00000078.TIF
,FILE79=00000079.TIF
,FILE80=00000080.TIF
,FILE81=00000081.TIF
,FILE82=00000082.TIF
,FILE83=00000083.TIF
,FILE84=00000084.TIF
,FILE85=00000085.TIF
,FILE86=00000086.TIF
,FILE87=00000087.TIF
```

```
FILE88=00000088.TIF
,FILE89=00000089.TIF
,FILE90=00000090.TIF
,FILE91=00000091.TIF
,FILE92=00000092.TIF
,FILE93=00000093.TIF
,FILE94=00000094.TIF
,FILE95=00000095.TIF
,FILE96=00000096.TIF
,FILE97=00000097.TIF
,FILE98=00000098.TIF
,FILE99=00000099.TIF
,FILE100=00000100.TIF
,FILE101=00000101.TIF
,FILE102=00000102.TIF
,FILE103=00000103.TIF
,FILE104=00000104.TIF
,FILE105=00000105.TIF
,FILE106=00000106.TIF
,FILE107=00000107.TIF
,FILE108=00000108.TIF
,FILE109=00000109.TIF
,FILE110=00000110.TIF
,FILE111=00000111.TIF
```

```
FILE112=00000112.TIF
,FILE113=00000113.TIF
,FILE114=00000114.TIF
,FILE115=00000115.TIF
,FILE116=00000116.TIF
,FILE117=00000117.TIF
,FILE118=00000118.TIF
,FILE119=00000119.TIF
,FILE120=00000120.TIF
,FILE121=00000121.TIF
,FILE122=00000122.TIF
,FILE123=00000123.TIF
,FILE124=00000124.TIF
,FILE125=00000125.TIF
,FILE126=00000126.TIF
,FILE127=00000127.TIF
,FILE128=00000128.TIF
,FILE129=00000129.TIF
,FILE130=00000130.TIF
,FILE131=00000131.TIF
,FILE132=00000132.TIF
,FILE133=00000133.TIF
,FILE134=00000134.TIF
,FILE135=00000135.TIF
```

```
FILE136=00000136.TIF
,FILE137=00000137.TIF
,FILE138=00000138.TIF
,FILE139=00000139.TIF
,FILE140=00000140.TIF
,FILE141=00000141.TIF
,FILE142=00000142.TIF
,FILE143=00000143.TIF
,FILE144=00000144.TIF
,FILE145=00000145.TIF
,FILE146=00000146.TIF
,FILE147=00000147.TIF
,FILE148=00000148.TIF
,FILE149=00000149.TIF
,FILE150=00000150.TIF
,FILE151=00000151.TIF
,FILE152=00000152.TIF
,FILE153=00000153.TIF
,FILE154=00000154.TIF
,FILE155=00000155.TIF
,FILE156=00000156.TIF
,FILE157=00000157.TIF
,FILE158=00000158.TIF
,FILE159=00000159.TIF
```

```
FILE160=00000160.TIF
,FILE161=00000161.TIF
,FILE162=00000162.TIF
,FILE163=00000163.TIF
,FILE164=00000164.TIF
,FILE165=00000165.TIF
,FILE166=00000166.TIF
,FILE167=00000167.TIF
,FILE168=00000168.TIF
,FILE169=00000169.TIF
,FILE170=00000170.TIF
,FILE171=00000171.TIF
,FILE172=00000172.TIF
,FILE173=00000173.TIF
,FILE174=00000174.TIF
,FILE175=00000175.TIF
,FILE176=00000176.TIF
,FILE177=00000177.TIF
,FILE178=00000178.TIF
,FILE179=00000179.TIF
,FILE180=00000180.TIF
,FILE181=00000181.TIF
,FILE182=00000182.TIF
,FILE183=00000183.TIF
```

```
FILE184=00000184.TIF
,FILE185=00000185.TIF
,FILE186=00000186.TIF
,FILE187=00000187.TIF
,FILE188=00000188.TIF
,FILE189=00000189.TIF
,FILE190=00000190.TIF
,FILE191=00000191.TIF
,FILE192=00000192.TIF
,FILE193=00000193.TIF
,FILE194=00000194.TIF
,FILE195=00000195.TIF
,FILE196=00000196.TIF
,FILE197=00000197.TIF
,FILE198=00000198.TIF
,FILE199=00000199.TIF
,FILE200=00000200.TIF
,FILE201=00000201.TIF
,FILE202=00000202.TIF
,FILE203=00000203.TIF
,FILE204=00000204.TIF
,FILE205=00000205.TIF
,FILE206=00000206.TIF
,FILE207=00000207.TIF
```

```
FILE208=00000208.TIF
,FILE209=00000209.TIF
,FILE210=00000210.TIF
,FILE211=00000211.TIF
,FILE212=00000212.TIF
,FILE213=00000213.TIF
,FILE214=00000214.TIF
,FILE215=00000215.TIF
,FILE216=00000216.TIF
,FILE217=00000217.TIF
,FILE218=00000218.TIF
,FILE219=00000219.TIF
,FILE220=00000220.TIF
,FILE221=00000221.TIF
,FILE222=00000222.TIF
,FILE223=00000223.TIF
,FILE224=00000224.TIF
,FILE225=00000225.TIF
,FILE226=00000226.TIF
,FILE227=00000227.TIF
,FILE228=00000228.TIF
,FILE229=00000229.TIF
,FILE230=00000230.TIF
,FILE231=00000231.TIF
```

```
FILE232=00000232.TIF
,FILE233=00000233.TIF
,FILE234=00000234.TIF
,FILE235=00000235.TIF
,FILE236=00000236.TIF
,FILE237=00000237.TIF
,FILE238=00000238.TIF
,FILE239=00000239.TIF
,FILE240=00000240.TIF
,FILE241=00000241.TIF
,FILE242=00000242.TIF
,FILE243=00000243.TIF
,FILE244=00000244.TIF
,FILE245=00000245.TIF
,FILE246=00000246.TIF
,FILE247=00000247.TIF
,FILE248=00000248.TIF
,FILE249=00000249.TIF
,FILE250=00000250.TIF
,FILE251=00000251.TIF
,FILE252=00000252.TIF
,FILE253=00000253.TIF
,FILE254=00000254.TIF
,FILE255=00000255.TIF
```

```
FILE256=00000256.TIF
,FILE257=00000257.TIF
,FILE258=00000258.TIF
,FILE259=00000259.TIF
,FILE260=00000260.TIF
,FILE261=00000261.TIF
,FILE262=00000262.TIF
,FILE263=00000263.TIF
,FILE264=00000264.TIF
,FILE265=00000265.TIF
,FILE266=00000266.TIF
,FILE267=00000267.TIF
,FILE268=00000268.TIF
,FILE269=00000269.TIF
,FILE270=00000270.TIF
,FILE271=00000271.TIF
,FILE272=00000272.TIF
,FILE273=00000273.TIF
,FILE274=00000274.TIF
,FILE275=00000275.TIF
,FILE276=00000276.TIF
,FILE277=00000277.TIF
,FILE278=00000278.TIF
,FILE279=00000279.TIF
```

```
FILE280=00000280.TIF
,FILE281=00000281.TIF
,FILE282=00000282.TIF
,FILE283=00000283.TIF
,FILE284=00000284.TIF
,FILE285=00000285.TIF
,FILE286=00000286.TIF
,FILE287=00000287.TIF
,FILE288=00000288.TIF
,FILE289=00000289.TIF
,FILE290=00000290.TIF
,FILE291=00000291.TIF
,FILE292=00000292.TIF
,FILE293=00000293.TIF
,FILE294=00000294.TIF
,FILE295=00000295.TIF
,FILE296=00000296.TIF
,FILE297=00000297.TIF
,FILE298=00000298.TIF
,FILE299=00000299.TIF
,FILE300=00000300.TIF
,FILE301=00000301.TIF
,FILE302=00000302.TIF
,FILE303=00000303.TIF
```

```
FILE304=00000304.TIF
,FILE305=00000305.TIF
,FILE306=00000306.TIF
,FILE307=00000307.TIF
,FILE308=00000308.TIF
,FILE309=00000309.TIF
,FILE310=00000310.TIF
,FILE311=00000311.TIF
,FILE312=00000312.TIF
,FILE313=00000313.TIF
,FILE314=00000314.TIF
,FILE315=00000315.TIF
,FILE316=00000316.TIF
,FILE317=00000317.TIF
,FILE318=00000318.TIF
,FILE319=00000319.TIF
,FILE320=00000320.TIF
,FILE321=00000321.TIF
,FILE322=00000322.TIF
,FILE323=00000323.TIF
,FILE324=00000324.TIF
,FILE325=00000325.TIF
,FILE326=00000326.TIF
,FILE327=00000327.TIF
```

```
FILE328=00000328.TIF
,FILE329=00000329.TIF
,FILE330=00000330.TIF
,FILE331=00000331.TIF
,FILE332=00000332.TIF
,FILE333=00000333.TIF
,FILE334=00000334.TIF
,FILE335=00000335.TIF
,FILE336=00000336.TIF
,FILE337=00000337.TIF
,FILE338=00000338.TIF
,FILE339=00000339.TIF
,FILE340=00000340.TIF
,FILE341=00000341.TIF
,FILE342=00000342.TIF
,FILE343=00000343.TIF
,FILE344=00000344.TIF
,FILE345=00000345.TIF
,FILE346=00000346.TIF
,FILE347=00000347.TIF
,FILE348=00000348.TIF
,FILE349=00000349.TIF
,FILE350=00000350.TIF
,FILE351=00000351.TIF
```

```
FILE352=00000352.TIF
,FILE353=00000353.TIF
,FILE354=00000354.TIF
,FILE355=00000355.TIF
,FILE356=00000356.TIF
,FILE357=00000357.TIF
,FILE358=00000358.TIF
,FILE359=00000359.TIF
,FILE360=00000360.TIF
,FILE361=00000361.TIF
,FILE362=00000362.TIF
,FILE363=00000363.TIF
,FILE364=00000364.TIF
,FILE365=00000365.TIF
,FILE366=00000366.TIF
,FILE367=00000367.TIF
,FILE368=00000368.TIF
,FILE369=00000369.TIF
,FILE370=00000370.TIF
,FILE371=00000371.TIF
,FILE372=00000372.TIF
,FILE373=00000373.TIF
,FILE374=00000374.TIF
,FILE375=00000375.TIF
```

```
FILE376=00000376.TIF
,FILE377=00000377.TIF
,FILE378=00000378.TIF
,FILE379=00000379.TIF
,FILE380=00000380.TIF
,FILE381=00000381.TIF
,FILE382=00000382.TIF
,FILE383=00000383.TIF
,FILE384=00000384.TIF
,FILE385=00000385.TIF
,FILE386=00000386.TIF
,FILE387=00000387.TIF
,FILE388=00000388.TIF
,FILE389=00000389.TIF
,FILE390=00000390.TIF
,FILE391=00000391.TIF
,FILE392=00000392.TIF
,FILE393=00000393.TIF
,FILE394=00000394.TIF
,FILE395=00000395.TIF
,FILE396=00000396.TIF
,FILE397=00000397.TIF
,FILE398=00000398.TIF
,FILE399=00000399.TIF
```

```
FILE400=00000400.TIF
,FILE401=00000401.TIF
,FILE402=00000402.TIF
,FILE403=00000403.TIF
,FILE404=00000404.TIF
,FILE405=00000405.TIF
,FILE406=00000406.TIF
,FILE407=00000407.TIF
,FILE408=00000408.TIF
,FILE409=00000409.TIF
,FILE410=00000410.TIF
,FILE411=00000411.TIF
,FILE412=00000412.TIF
,FILE413=00000413.TIF
,FILE414=00000414.TIF
,FILE415=00000415.TIF
,FILE416=00000416.TIF
,FILE417=00000417.TIF
,FILE418=00000418.TIF
,FILE419=00000419.TIF
,FILE420=00000420.TIF
,FILE421=00000421.TIF
,FILE422=00000422.TIF
,FILE423=00000423.TIF
```

```
FILE424=00000424.TIF
,FILE425=00000425.TIF
,FILE426=00000426.TIF
,FILE427=00000427.TIF
,FILE428=00000428.TIF
,FILE429=00000429.TIF
,FILE430=00000430.TIF
,FILE431=00000431.TIF
,FILE432=00000432.TIF
,FILE433=00000433.TIF
,FILE434=00000434.TIF
,FILE435=00000435.TIF
,FILE436=00000436.TIF
,FILE437=00000437.TIF
,FILE438=00000438.TIF
,FILE439=00000439.TIF
,FILE440=00000440.TIF
,FILE441=00000441.TIF
,FILE442=00000442.TIF
,FILE443=00000443.TIF
,FILE444=00000444.TIF
,FILE445=00000445.TIF
,FILE446=00000446.TIF
,FILE447=00000447.TIF
```

```
FILE448=00000448.TIF
,FILE449=00000449.TIF
,FILE450=00000450.TIF
,FILE451=00000451.TIF
,FILE452=00000452.TIF
,FILE453=00000453.TIF
,FILE454=00000454.TIF
,FILE455=00000455.TIF
,FILE456=00000456.TIF
,FILE457=00000457.TIF
,FILE458=00000458.TIF
,FILE459=00000459.TIF
,FILE460=00000460.TIF
,FILE461=00000461.TIF
,FILE462=00000462.TIF
,FILE463=00000463.TIF
,FILE464=00000464.TIF
,FILE465=00000465.TIF
,FILE466=00000466.TIF
,FILE467=00000467.TIF
,FILE468=00000468.TIF
,FILE469=00000469.TIF
,FILE470=00000470.TIF
,FILE471=00000471.TIF
```

```
FILE472=00000472.TIF
,FILE473=00000473.TIF
,FILE474=00000474.TIF
,FILE475=00000475.TIF
,FILE476=00000476.TIF
,FILE477=00000477.TIF
,FILE478=00000478.TIF
,FILE479=00000479.TIF
,FILE480=00000480.TIF
,FILE481=00000481.TIF
,FILE482=00000482.TIF
,FILE483=00000483.TIF
,FILE484=00000484.TIF
,FILE485=00000485.TIF
,FILE486=00000486.TIF
,FILE487=00000487.TIF
,FILE488=00000488.TIF
,FILE489=00000489.TIF
,FILE490=00000490.TIF
,FILE491=00000491.TIF
,FILE492=00000492.TIF
,FILE493=00000493.TIF
,FILE494=00000494.TIF
,FILE495=00000495.TIF
```

```
FILE496=00000496.TIF
,FILE497=00000497.TIF
,FILE498=00000498.TIF
,FILE499=00000499.TIF
,FILE500=00000500.TIF
,FILE501=00000501.TIF
,FILE502=00000502.TIF
,FILE503=00000503.TIF
,FILE504=00000504.TIF
,FILE505=00000505.TIF
,FILE506=00000506.TIF
,FILE507=00000507.TIF
,FILE508=00000508.TIF
,FILE509=00000509.TIF
,FILE510=00000510.TIF
,FILE511=00000511.TIF
,FILE512=00000512.TIF
,FILE513=00000513.TIF
,FILE514=00000514.TIF
,FILE515=00000515.TIF
,FILE516=00000516.TIF
,FILE517=00000517.TIF
,FILE518=00000518.TIF
,FILE519=00000519.TIF
```

```
FILE520=00000520.TIF
,FILE521=00000521.TIF
,FILE522=00000522.TIF
,FILE523=00000523.TIF
,FILE524=00000524.TIF
,FILE525=00000525.TIF
,FILE526=00000526.TIF
,FILE527=00000527.TIF
,FILE528=00000528.TIF
,FILE529=00000529.TIF
,FILE530=00000530.TIF
,FILE531=00000531.TIF
,FILE532=00000532.TIF
,FILE533=00000533.TIF
,FILE534=00000534.TIF
,FILE535=00000535.TIF
,FILE536=00000536.TIF
,FILE537=00000537.TIF
,FILE538=00000538.TIF
,FILE539=00000539.TIF
,FILE540=00000540.TIF
,FILE541=00000541.TIF
,FILE542=00000542.TIF
,FILE543=00000543.TIF
```

```
FILE544=00000544.TIF
,FILE545=00000545.TIF
,FILE546=00000546.TIF
,FILE547=00000547.TIF
,FILE548=00000548.TIF
,FILE549=00000549.TIF
,FILE550=00000550.TIF
,FILE551=00000551.TIF
,FILE552=00000552.TIF
,FILE553=00000553.TIF
,FILE554=00000554.TIF
,FILE555=00000555.TIF
,FILE556=00000556.TIF
,FILE557=00000557.TIF
,
```